श्रीमते रामानुजाय नमः

भगवत् प्राप्ति के साधन

(अर्चागुणगान से)

ताप पुण्ड्र जप मन्त्र परिग्रह अर्चन ध्यान सदा करना।
पदसेवन वन्दन कीर्तन व्रत अरु तुलसी रोपन करना।31।
नाम रटन गुण श्रवण दिवस निशि वैष्णव की सेवा करना।
तीर्थ प्रसाद सदासेवन यह षोड़श भक्ति नहीं तजना।32।

= =

भगवत् कथा की महिमा

तद्वाग्विसर्गोजनताघविप्लवोयस्मिन् प्रतिश्लोकमवद्धवत्यपि।
नामान्यनन्तस्ययशोऽङ्कितानियत् श्रृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः।भागवत 1।5।11।

भगवान् की लीला कथा की रचना व्याकरण या अन्य नियमों के पालन नहीं भी होने पर भगवद् प्रेमी महात्माओं को ग्राह्य हैं।

राम भगति भूषित जियँ जानी।सुनिहहिं सजन सराहि सुबानी।मानस बाल 8।4।

= =

।। ॐ श्रीमन्नारायणचरणौ शरणम् प्रपद्ये। श्रीमते नारायणाय नमः ।।

दिव्यग्रन्थमाल भाग 1—16

श्रीमते रामानुजाय नमः

दिव्यग्रन्थमाल

स्वामी श्री पराङ्कुशाचार्य जी महाराज की सोलह पुस्तकों का यथारूप संग्रह



श्रीनिवास संस्करण 2019

(सकलमति - राघव समर्पण)

संग्रह : श्रीकृष्ण प्रपन्नाचारी

श्रीमतेरामानुजायनमः

स्वामीश्रीराजेन्द्रसूरि (परमहंस स्वामी) जी
(ई सन् 1853 से ई सन् 1915)



भारद्वाजन्ववाये धृततनुममलं वैष्णवेषु अग्रगण्यम्
श्रीमत् रंगार्यवर्या अमलपदकमले न्यस्तविश्वात्मभारम्।
तद्पादाम्भोजभृंगं तद्मितकृपया प्राप्तसंमन्त्रराजम्
श्रीमद्राजेन्द्रसूरिं वरगुणनिलयं धामराशिं श्रयेऽहम्।।

स्वामीश्रीपराङ्कुशाचार्य जी
(ई सन् 1864 से ई सन् 1980)



कौण्डिन्यगोत्रसरसीरुहबालभानुम्
श्रीरंगदेशिकपदाब्जरसैकभृंगम् ।
श्रीराजेन्द्रसूरिचरणाश्रितमप्रमेयम्
श्रीमत् पराङ्कुशगुरुं शरणं प्रपद्ये।।

श्रीमतेरामानुजायनमः

श्रीविष्णुचित्तकुलनन्दनकल्पवल्लीं
श्रीरङ्गराजहरिचन्दनयोगदृश्याम् ।
साक्षात्क्षमांकरुणयाकमलामिवान्यां
श्रीगोदाम् अनन्यशरणः शरणंप्रपद्ये।।





श्रीमद्भगवतोपराङ्कुशगुरोः पदरजस्यअनुचरम्।
भजाम्यऽहम् मातुः पितुः उभयोः पादारविन्दम् ।।

पिताश्रीराघवाचारी
माताश्रीमतीसकलमतीदेवी

श्रीमते रामानुजाय नमः



दिव्यग्रन्थमाल

स्वामी श्री पराङ्कुशाचार्य जी महाराज की सोलह पुस्तकों का यथारूप संग्रह

श्रीनिवास संस्करण 2019

(सकलमति - राघव समर्पण)

संग्रह ः श्रीकृष्ण प्रपन्नाचारी

Divya Granthamaal

First Edition : Oct. 2019

Compiler/ Author : Srikrishna Prapnnachari , Ph. D.
78 LIC Colony, Chitragupta Nagar, Kankarbagh
Patna 800020

Available at :

78 LIC Colony, Chitragupta Nagar
Kanakarbagh, Patna – 800020

84/G-1 North Chitra Veedhi
Srirangam, Trichy - 620006,

Lakshmi Narayana Temple
Hulasganj, Jehanabad – 804407

Sri Enterprises, CC 25, PC Colony
Kankarbagh, Patana - 800020

Printed Copies : 1000
Rs. 150 /= Postage Extra

Type set and Printed at :
Sri Enterprises, CC 25, PC Colony
Kankarbagh, Patana - 800020

Author's other published Titles:

1. Nalaayir Divya Prabandham (Hindi), ISBN 978-93-5067-885 -5
2. The Crest Jewel : Srimadbhagwat Mahapuran with Mahabharat (English)
   ISBN 978 - 81 - 7525 - 855 - 6
3. Thiruppavai (Hindi)

।।श्रीमते रामानुजाय नमः ।।
।।श्रीमत्पराङ्कुश गुरवे नमः।।



श्रीराजेन्द्रयतीन्द्रपादयुगले सद्भक्तिमानन्वहम्श्री कौन्डिन्यकुले पराङ्कुशमुनिर्जातो महाब्धौविधुः।
तद्पादाश्रितलब्धबोधनिखिलं श्रीरङ्गरामानुजम्श्रीमत्काश्यपवंशजं गुरुवरं भक्त्या सदासंश्रये ।।

प्राक्कथन

श्री स्वामी जी महाराज से कुछ लोगों ने जिज्ञासु बनकर पूछा कि श्री राम विष्णु या नारायण के अवतार हैं यानहीं ? श्री स्वामी जी ने कहा कि जिन लोगों ने वेद, पुराण, संहिता एवं श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण आदि इतिहास ग्रंथों को नहींपढ़ा है या उच्चकोटि के विद्वानों से संगति नहीं हुई है वे ही श्रीराम को नारायण(विष्णु) का अवतार नहीं मानते हैं।सभी वेद, पुराण एवं आर्षग्रंथों में श्री राम को विष्णु तथा नारायण के ही रूप में वर्णन किया गया है। इसकी परिपुष्टिमें श्री स्वामी जी महाराज ने श्री सीताराम परिचय नामक पुस्तक का निर्माण किया है जिसमें समस्त वेद, पुराण, संहिता तथा वाल्मीकि आदि आर्ष ग्रंथों का प्रमाण देकर यह सिद्ध कर दिया है कि श्री राम विष्णु एवं नारायण के ही अवतारहैं।

रामायण में 'सीताचरित्र महान है'को दर्शाया गया है। इसी गुणगौरव के कारण शेषावतार श्री रामानुजाचार्य ने अपने पूज्य आचार्यचरणोंद्वारा इस रामायण को अठारह बार पढ़ा और अठारह प्रकार के भाव समझे। ऐसे सात्विक ग्रंथ सात्विक वृत्ति से हीअध्ययन मनन करना चाहिए। अन्यथा इसका रहस्य ज्ञान तो दूर रहा पाप का भागी बनना पड़ेगा। कुछ रामायण के टीकाकारों ने मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्री राम को हिंसक और मांसभक्षी कहा है। किसी ग्रंथ के पद्य पद्यांश या वाक्यांशों के अर्थ विचार में सामान्यतया तीन बातों पर ध्यान चाहिए। प्रथम प्रकरण या प्रसंग, द्वितीय अधिकारी,तृतीय पूर्वापर विषयों के समन्वय में सजगता का अभाव। इण तीनों बातों को ध्यान में रखते हुए अर्थ करने से वह अर्थऔचित्यपूर्ण रहता है अन्यथा अनर्थ में परिणत हो जाता है।

श्री स्वामी पराङ्कुशाचार्य जी ने उपर्युक्त तीनों नियमों को ध्यान में रखते हुए मर्यादापुरुषोत्तम राम एवं हिंसापुस्तक को प्रकाशित कर भगवान श्रीराम परम श्रीवैष्णव इक्ष्वाकु कुल में प्रादुर्भूत हए थे यह प्रमाणित किया है। ये शुद्धशाकाहारी थे। अतः भगवान श्री राम पर मांसाहारी एवं हिंसक का आरोप लगाने वाले को नादान समझना चाहिए।

कुछ लोगों ने ऐसा लिखा कि नारियों को दीक्षा नहीं देनी चाहिए। इसके समाधान में श्री स्वामी जी महाराज ने श्रीपरमहंस

स्वामी जी का संदर्भ देते हुए साम्प्रदायिक प्रश्नोत्तर पुस्तक प्रकाशित कर यह सिद्ध कर दिया है कि नारियों कोभी दीक्षा लेने का पूर्ण अधिकार एवं आवश्यकता है।

एक महत्वपूर्ण संस्कार नारायणवलि श्राद्ध का उल्लेख वृहदहारीत संहिता में जीवात्माओं के कल्याण के लिएश्रीवैष्णव धर्म के अनुकूल किया गया है। श्री स्वामी जी महाराज ने ब्रह्ममेध संस्कार एवं नारायणवलि श्राद्ध की पुस्तकप्रकाशित कर जन कल्याण के लिए महान काम किया है। मृत्यु के बाद श्रीवैष्णव अर्चिरादि मार्ग से वैकुण्ठ जाते हैं। वैकुण्ठ जाने वाले श्रीवैष्णवों को गरुड़ पुराण न सुनाकर उसे अर्चिरादि मार्ग की ही कथा सुनानी चाहिए। अतः श्रीस्वामी जी महाराज ने हिन्दी टीका सहित अर्चिरादि मार्गकीपुस्तक प्रकाशित करवायी है।

अर्चा गुणगान की पुस्तक प्रकाशित कर संगीत के माध्यम से भगवान की शरणागति का उत्तम रहस्य श्री स्वामीजी महाराज ने भक्तों के समक्ष उद्घाटित किया। श्री स्वामी जी महाराज ने ऐसे अनेक कार्यो द्वारा समाज को दिव्य ज्ञानदिया है। उच्चकोटि के ऐसे सन्त के श्रीचरणों में हम सदा नतमस्तक रहेंगे।

रङ्गरामानुजाचार्य
हुलासगंज

श्रीमते रामानुजाय नमः ।

'दिव्य ग्रन्थमाल' का विहंगावलोकन

सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि......
गावत वेद पुरान अष्टदस। छओ सास्त्र सब ग्रंथन को रस।।
मुनि जन धन संतन को सरबस।सार अंस संमत सबही की। ....
दलन रोग भव मूरि अमी की। तात मात सब बिधि तुलसी की।।

भगवदस्वामी श्रीपराङ्कुशाचार्य जी महाराज द्वारा रचित पुस्तकों के वस्तुतथ्य भगवान् की परम भक्तिको प्राप्त करनेके एक मात्र सुगम साधनस्वरूप "शरणागति" को समाहित किये हुये है। भरत जी ने चित्रकूट के रास्ते प्रयागराज त्रिवेणी से प्रार्थना की "**मागउँ भीख त्यागि निज धरमु**" परम भक्ति की ही भीख मांगी - "**अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान । जनम जनम रति रामपद यह वरदान नआन**। रामचरितमानस अयोध्या काण्ड दोहा **204** ।" हमारे सभी आगम निगम "दास" भावना यानी "शरणागति" को ही सशक्त बनाने पर वल देते हैं। भगवान राम ने स्वयं काकभुशुण्डी जी से कहा हैः "**तिन्ह ते मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोहि न दूसरीआसा।.........मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं.........सुचि सुसील सेवक सुमति प्रिय कहु काहि न लाग। श्रुति पुरान कह नीति असि सावधान सुनु काग**। रामचरितमानस उत्तर काण्ड दोहा **85**।**86** ।"

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यम्आत्मनिवेदनम्। भागवत **7**।**5**।**23**। परम भक्ति की नौ सीढ़ियों में **...दास्यं सख्यम् आत्मनिवेदनम्**"अंतिम तीन हैं। इससे स्पष्ट है कि भक्ति मार्ग में उत्तरोत्तर विकास होते-होते दास भावना आती है और अंत में आत्मनिवेदन यानी शरणागति स्वीकार होती है। इसी को रामचरितमानस अरण्य काण्ड दोहा **34**।**35**।**36**। में भगवान श्रीरामजी ने स्वयं शबरी से कहा है ः "**कह रघुपति सुनुभामिनी बाता।मानउँ एक भगति कर नाता........... प्रथम भगति संतन्हकर संगा।दूसरी रति मम कथा प्रसंगा..............नवम सरल सब सन छल हीना।मम भरोस हियँ हरष न दीना।**"

भगवद्स्वामीश्री पराङ्कुशाचार्य जी द्वारा रचित पुस्तकें समय समय पर हुलासगंज से पुनर्प्रकाशित होती रहीं हैं जिसमें अद्यतन

"**अर्चा गुणगान**"पर टीका है। प्रारम्भ में सभी पुस्तकों को श्रीस्वामी जी महाराज स्वयं ही छपवाते रहते थे और भक्तों के बीच निःशुल्क वितरित करते थे। कुछ पुस्तकों को कोई-कोई भक्त ने भी सेवा सुमन भाव से प्रारम्भ में प्रकाशित कराया था। उदाहरणस्वरूप "देवतान्तरों की आराधनाक्यों नहीं ?" का प्रकाशन श्रीसुदर्शनाचार्य, लारी ग्राम निवासी ने किया। उसी तरह से "संपत् में विपत्और दीनता में राम" का प्रकाशन पं श्री अम्बिकादत्त शर्मा, सवजपुरा जयपुर ग्रामनिवासी द्वारा संपन्न हुआ। दोनों पुस्तकों का प्रथम संस्करण साधना प्रेस पटना से प्रकाशित है। "श्रीसीताराम परिचय व मानस शंका समाधान" पुस्तक के प्रकाशन का श्रेय डा कुञ्जबिहारी शर्मा , ग्राम बरपा ओबरा को है जिसे उन्होंने प्रथमतः श्रीविक्रम पंचांग प्रेस भदैनी, वाराणसी से छपवाया। "नाम माहात्य" पुस्तक श्रीस्वामीजी महाराज के विभिन्न काल में भक्तों के बीच सुनायी जानेवाली भगवान के विभिन्न गुणों को प्रकाशित करने वाले पदों कासंकलन है जो घनश्याम प्रेस, नवीन कोठी, पटना से छपी हुई है और प्रकाशक भक्त ने अपना नाम अज्ञात ही रखा है।

श्रीस्वामीजी महाराज द्वारा प्रणीत कुल सोलह पुस्तकों की सूची है ः

1 | **श्रीकृष्ण जन्मोत्सव** |

2 | **अर्चा गुणगान** |

3 | **स्वामीश्री राजेन्द्र सूरिजी महाराज की संक्षिप्त जीवनी** (प्रथम खण्ड) |

4 | **साम्प्रदायिक प्रश्नोत्तर स्त्री एवं मंत्र** (स्वामी श्रीराजेन्द्र सूरिजी महाराज की जीवनी) (द्वितीय खण्ड) |

5 | **रामरहस्य** (स्वामी श्रीराजेन्द्र सूरिजी महाराज की जीवनी) (तृतीय खण्ड) |

6 | **महाप्रयाण** (स्वामी श्रीराजेन्द्र सूरिजी महाराज की जीवनी) (चतुर्थ खण्ड) |

7 | **मर्यादा पुरुषोत्तम और हिंसा** |

8 | **ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण** |

9 | **श्रीसीताराम परिचय व मानस-शंका समाधान** |

10 | **नाम माहात्य** |

11 | **संपत्में विपत्और दीनता में राम** |

12 | **एक नारायण ही उपास्य क्यों ?**

13 | **देवतान्तरों की आराधना क्यों नहीं ?**

14 | **भक्तवर - ध्रुव -प्रह्लाद चरित्र** |

15 | **मित्र सुदामा-कृष्ण** |

16 | **ब्रह्ममेध संस्कार एवं नारायणवलि पद्धति**

उपर्युक्त पुस्तकों में से 'महाप्रयाण' 'नाम-माहात्य' 'ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण' एवं 'देवतान्तरों की आराधना क्यों नहीं ?' को छोड़कर बाकी अन्य पुस्तकें श्रीपरांकुश-संस्कृत-संस्कृति संरक्षा परिषद, हुलासगंज से कई आवृत्तियों में प्रकाशित होती रही हैं। जिज्ञासु श्रीवैष्णव भक्तों की सुविधा हेतु प्रस्तुत 'दिव्य ग्रन्थमाल' में सभी पुस्तकों को समेकितरूप से प्रकाशित किया जा रहा है। इन सभी पुस्तकों के अवलोकन से सर्वत्र यह अनुभव होता है कि श्रीस्वामीजी महाराज सतत **भागवत-भाव** में लीन रहते थे। सरौती स्थान के पशुओं को विशेषरूप से और अन्यत्र भी उन सबों को भगवान् का एक सेवक मानकर एक भागवत को दूसरे भागवत से कितना स्नेह करना चाहिए इसी भागवत-भाव से सबों से स्नेह रखते थे। यही बात स्थान के सभी विद्यार्थियों के प्रति भी थी। प्रायः अपना कम्वल या अपनी चादर इनलोगों को देते रहना भागवत भाव के द्योतक है।

श्रीवैष्णवता के प्रचार-प्रसार के लिए तमिलनाडु क्षेत्र में श्री रामानुज स्वामी द्वारा स्थापित चौहत्तर सिंहासनापतियों को कालक्रम में शिथिल देखकर श्री वरवर मुनि स्वामी ने आठ दिग्गजों की स्थापना की। इन आठ में से तीन ने जो उत्तर भारत तथा नेपाल में श्रीवैष्णवता की जड़ को सम्पुष्ट किया वे हैं वानमामलै जीयर या तोतादरी जीयर, कोईल कन्दाडै अण्णन तथा प्रतिवादी भयंकर अन्ना। कोईल कन्दाडै अण्णन ने वृन्दावन में गोवर्धन पीठ की पुनर्स्थापना की परन्तु अन्य दो अलग से उत्तर भारत में कोई पीठ नहीं स्थापित कर सके और दक्षिण भारत के तमिलनाडु से ही हिन्दी प्रधान क्षेत्र में श्रीवैष्णव धर्म का प्रचार-प्रसार करते रहे। इन तीनों में सबसे प्राचीन गोवर्धन पीठ है जो श्री रामानुज स्वामी के पूर्वोत्तरकाल दसवीं शताब्दी से क्रियाशील है जबकि तोतादरी पीठ पन्द्रहवीं शताब्दी से तथा प्रतिवाद भयंकर सतरहवीं शताब्दी से हिन्दी क्षेत्र में क्रियाशील हैं। तोतादरी पीठ का मुख्यालय तमिलनाडु में नांगुनेरी में ही रहा तथा प्रतिवाद भयंकर पीठ वाले अपने पुराने मुख्यालय काञ्चीपुरम्से ही कार्य करते रहे। गोवर्धन पीठ का मुख्यालय वृन्दावन में है। गोवर्धन पीठ का भी इतिहास चौदहवीं शताब्दी से ही मिल पाता है। दसवीं सदी में नाथमुनि ने, जो श्री यामुनाचार्य स्वामी के पितामह थे, इसकी स्थापना गोवर्धन पर्वत पर की थी जब वे उत्तर भारत के तीर्थों की यात्रा में आये थे। उन्होंने उस समय मथुरा में भगवान्कृष्ण के मन्दिर की भी पृथक स्थापना की थी जो बाद में मुगलों के अत्याचार के कारण मथुरा से हटाकर राजस्थान के अलवर के पास में मूल विग्रह को श्रीनाथ जी के रुप में श्रीवल्लभाचार्य द्वारा स्थानान्तरित किया गया जबकि प्राचीन मथुरा के मन्दिर में भी पूजा अर्चना होती है।

ई सन् **1819** में काञ्चीपुरम के पास से श्रीरंगदेशिक स्वामी गोवर्धन आये और गोवर्धन पीठ के तत्कलीन आचार्य से समाश्रित हुए। बाद में इन्होंने वृन्दावन में ई सन् **1851** में श्रीरंगजी मन्दिर की स्थापना कर यहीं गोवर्धन पीठ का मुख्यालय लाया। इसी परम्परा में श्री रंगदेशिक स्वामी जी के प्रधान छः शिष्यों में से श्री राजेन्द्रसूरि परमहंस स्वामी जी ने तरेत में स्थान बनाया और सरौती के स्वामी जी उनके प्रधान शिष्यों में से एक थे जो परमहंस स्वामी जी के ई सन् **1915** में परमपद हो जाने के उपरान्त ई सन् **1920** से सरौती स्थान के संरक्षक बने जबकि सरौती स्थान ई सन् **1912** से ही स्थापित है और श्री परमहंस स्वामी जी ने यहाँ विधिवत श्री राम-लक्ष्मण-सीता जी की पाषाण अर्चामूर्ति की स्थापना कराई थी।

स्वामी श्रीपराङ्कुशाचार्य जी महाराज ने उसी वेदी पर श्रीवेंकटेश भगवान की पाषाण अर्चामूर्ति की स्थापना ई सन् **1968** में करायी। श्रीवैष्णवता के प्रचार प्रसार में क्रियाशील रहते हुए आपने सोलह पुस्तकों का प्रणयन किया जिसका समेकित प्रकाशन यहाँ उपलब्ध है। सभी पुस्तकों में समस्त सृष्टि के एकमात्र आधार नारायण के परमतत्व का निरुपण है। **"राम रहस्य"** तथा **"श्रीसीता-राम परिचय"** तुलसीकृत रामचरित मानस की चौपाईयों के सारगर्भित गूढ़ार्थ के साथ भगवान राम के वैभव का साक्षात् दिग्दर्शन कराते हैं। **"मर्यादापुरुषोत्त एवं हिंसा"** श्री वाल्मीकि रामायण के कुछ द्वन्दात्मक श्लोकों की विधिवत व्याख्या करती है तथा जनमानस के भ्रान्त मन को शान्ति प्रदान करने वाली यह एक अनूठी पुस्तक है। इसी तरह से **"एक ही नारायण ही उपास्य क्यों ?"** **"देवतान्तरों की आराधना क्यों नहीं "** तथा **"नाम माहात्म्य"** भागवत महापुराण तथा पद्म पुराण के अतिरिक्त अन्य आर्ष ऋषिप्रणीत ग्रन्थों के उद्धरण से नारायण परमतत्व को प्रतिपादित करते हैं। **"सम्पत् में विपत् एवं दीनता में राम"** एक अनोखी कृति है जो जीवन यात्रा में धन की सीमित उपयोगिता को प्रकाशित करते हुए रामनाम यानी भगवत् नाम को शाश्वत और चिरन्तन धन बताता है जो इह लोक के साथ परलोक को संवारता है। और मानव जीवन का चरमलक्ष्य भी यही है। **"भक्तवर ध्रुव एवं प्रह्लाद"** तथा **"मित्र सुदामा कृष्ण"** के माध्यम से श्री स्वामी जी महाराज ने भक्ति के प्रपन्नामृत का रसास्वादन कराया है। "नारायणवलीएवंब्रह्ममेधसंस्कार"पुस्तक की रचना उन्होंने श्रीविक्रमसम्वत् **2010** यानी ई सन् **1953** मेंकीथीजोसंभवतः उनकी सभी पुस्तकों में सबसे पहले प्रकाशित हुई होगी। अधिकांश पुस्तकों के मूलप्रकाशन में उनके प्रकाशनकाल का ज्ञान नहीं मिल सकने के कारण ऐसा अनुमान है कि "श्रीसीताराम-परिचय व मानस-शंका समाधान"पुस्तकभी ई सन् **1953** के समय की होगी।

इस धराधाम पर मनुष्य की जीवन-यात्रा जन्मोत्सव एवं वैकुण्ठोत्सव के बीच ही सीमित है। अतः प्रस्तुत "दिव्यग्रन्थमाल" संग्रहमें काल-वद्धता के अनुमान का प्रयास छोड़ कर "श्रीकृष्णजन्मोत्सव" एवं "नारायणवली एवं ब्रह्ममेधसंस्कार"के वीच ही सभी पुस्तकों को संग्रहित किया गया है।

"अर्चा गुणगान" एक विशिष्ट पुस्तक है जिसके अवलोकन से यह परिलक्षित होता है कि श्रीस्वामीजी महाराज दिव्यदेश श्रीरंगम, कांचीपुरम् एवं तिरुमला के दिव्यविग्रह से सदा अन्तर्वार्ता में निमग्न रहते थे। औरत्रिपादविभूतिस्थितसाकेतमें "नख-शिख-छविधर" भगवान् राम के समक्ष नृत्य तथा संगीतमयी प्रस्तुति करने के साक्षात् आनन्द में भावाविभोर रहा करते थे।।

श्रीमन्नारायण चरणौ शरणं प्रपद्ये। श्रीमते नारायणाय नमः।।

कुछ भावुक भक्तों के संस्मरण

1। श्रीनिवास स्वामी जी, वृन्दावन।

अस अभिमान जाइ जनि भोरे । मैं सेवक रघुपति पति मोरे। मानस अरण्य 10।11। श्रीस्वामीजी महाराज के मुखारविन्द से सुनी गयी इस चौपाई की अनुगूंज का स्मरण करते हुए भाव-विह्वल हो श्रीनिवास स्वामीजी (श्रीनिवासाचार्य,श्रीवैष्णव आश्रम, परिक्रमा मार्ग, रामनगर, वृन्दावन) ने कहा - हमारे श्रीस्वामीजी महाराज (स्वामी श्रीपराङ्कुशाचार्य जी) भक्ति एवं वात्सल्य के जीवन्त मूर्ति थे। श्रीस्वामीजी महाराज सुतीक्ष्णजी एवं भगवान् रामजी के मिलन की इस चौपाई को प्रायः गुनगुनाया करते थे। श्रीमद्भागवत माहात्म्य की कथा पद्म पुराण में वर्णित है - भक्ति अपने दो पुत्रों, ज्ञान एवं वैराग्य के साथ तमिल नाडु से कर्नाटक एवं महाराष्ट्र होते हुए गुजरात पहुँची। गुजरात में तीनों वृद्धावस्था की शिथिलता से ग्रस्त हो गये। जब वहाँ से वे लोग वृन्दावन आये तो भक्ति को स्वतः तरुणावस्था की प्राप्ति हो गयी परन्तु दोनों पुत्र अचेत वृद्ध की अवस्था में बने रहे। नारद जी ने प्रयास किया, और हरिद्वार के आनन्द घाट पर सनत्कुमार मुनि के मुखारविन्द से भागवतकथा सुनकर दोनों पुत्र भी तरुण हो गये। हमारे स्वामीजी महाराज के साथ भागवतकथा जैसी सतत्तरुण भक्ति, ज्ञान एवं वैराग्य के अतिरिक्त भक्ति की अन्य सगी वहनें 'श्रद्धा', 'दया' एवं 'क्षमा' भी नित्य साथ रहा करती थीं।

ई सन् 1964 में, करीब 12 वर्ष की अवस्था में श्रीस्वामीजी महाराज से सरौती में श्रीनिवास जी समाश्रित हुए थे। सरौती से ही आपने शास्त्री तक की शिक्षा प्राप्त की। यद्यपि आपका जन्मस्थान औरंगावाद के समीपस्थ वरुणा गाँव है परन्तु लालन-पालन तथा प्रारम्भिक सातवीं कक्षा तक की शिक्षा ननिहाल में भोजपुर के वैसाडीह निकटस्थ नोनार गाँव में मिली। आपके पाँच भाई और चार वहनें हैं तथा भाई के क्रम में आप द्वितीय स्थान पर हैं। तीसरे भाई श्री वेंकटेश शर्मा जी हुलासगंज पराङ्कुश महाविद्यालय में व्याकरण के वरीय प्राध्यापक हैं। वचपन में ही वैसाडीह स्थित श्रीवैकुण्ठाचारी स्वामी जी के ठाकुरवारी से जुड़े रहने से आप श्रीवैष्णव-सत्संग से लाभान्वित होते रहते थे। श्रीवैकुण्ठाचारी स्वामी जी ने ही इनका प्रारम्भिक नाम श्रीनिवास रखा था जिसे सरौती में समाश्रित होने पर भी कायम रखा गया।

श्रीनिवास जी वचपन से हीं विरागी प्रकृति के हैं। श्रीस्वामीजी महाराज की सेवाहेतु भक्तों के क्षेत्र की रमता में उनके साथ रहने का ये सौभाग्य प्राप्त कर चुके हैं। समय मिल जाने पर ये विभिन्न तीर्थक्षेत्रों का स्वतन्त्र भ्रमण भी करते रहते थे। इसी क्रम में

ई सन् **1974** में वृन्दावन पहुँचे। यहाँ के गोवर्धन पीठ के श्रीरंगजी मन्दिर से जुड गये तथा **'श्रीरंगजी के नगला'** (जिसे पुराना श्रीरंगजी मन्दिर या लक्ष्मीनारायण मन्दिर भी कहते हैं) में रहने लगे। यहाँ श्रीगोदारङ्गमन्नार भगवान् के विभिन्न कैंकर्यो से दस वर्षो तक जुड़े रहे। ई सन् **1984** से वृन्दावन में ही एक स्वतंत्र आश्रम निर्मित कर श्रीनिवास जी श्रीवैष्णवों की सेवा में लगे हुए हैं। **"रामानुजार्य दिव्याज्ञावर्द्धताम् अभिवर्द्धताम्"** के अनुपालन में जिज्ञासु जनों के अतिशय आग्रह पर उनके चरम-कल्याण हेतु **'मूल मन्त्र'** से दीक्षित करते हैं।

श्रीस्वामीजी महाराज ई सन् **1980** में परमपद कर गये थे। श्रीस्वामीजी महाराज के परमपद के एक वर्ष बीतने पर प्रथम वार्षिक वैकुण्ठोत्सव के उपलक्ष में श्रीनिवास जी एवं पं. शिवनन्दन जी ने कुछेक अग्रणी वैष्णवों के सहयोग से श्रीस्वामीजी महाराज द्वारा रचित 'अर्चागुणगान'का तृतीय संस्करण प्रकाशित कराया। पूर्व के अन्य दो संस्करणों के अनुपलब्ध होने के कारण "दिव्य ग्रन्थमाल" पुस्तक में अर्चागुणगाण के इसी तृतीय संस्करण को प्रकाशन हेतु लिया गया है।

"दिव्यगन्थमाल" के साथ प्रकाशन हेतु श्रीनिवास जी से अनुरोध करने पर श्रीस्वामीजी महाराज के प्रति उन्होंने अपने हृदयोद्गार भेजा है जो यहाँ उद्धृत किया जा रहा है।

अनन्त कल्याणगुणसम्पन्न भगवान्श्रीमन्नारायण भक्त-वत्सलतावश साधु-परित्राण, दुष्ट-संहार एवं अन्य जीवों के उद्धार हेतु इस धराधाम पर अनेक रूपों में अवतरित होकर शरणागतों की रक्षा करते हैं। इस लोक के विभिन्न अवतार काल में भी पापी जीव भगवान्से लाभ नहीं ले पाते। इसके बाद भी भगवान्"व्रातरक्षैकदीक्षे" संकल्प का परित्याग नहीं करते और जगत-रक्षण प्रक्रिया को बनाये रखने के लिए अपने परमधाम से दिव्यपार्षदों एवं सूरियों को इस धराधाम पर भेजते हैं। जो कार्य भगवान् से बच गया था उसे दिव्यपार्षदगण सन्त के रूप में आकर पूरा करते हैं। पूज्य श्रीस्वामीजी महाराज परमदिव्यधाम के नित्यसूरियों में से एक थे। दास का दुर्भाग्य जो उस समय के अलभ्य लाभ का उपयोग नहीं कर पाया। आज जो कुछ भी श्रीवैष्णव-सन्त का सान्निध्य लाभ प्राप्त हो रहा है यह सब श्रीस्वामीजी महाराज की निर्हेतुक कृपा ही है, दास इस योग्य नहीं है। दास का वैष्णव संस्कार ई **1964** के जन्माष्टमी को हुआ। उसके पहले दास धर्म-विहीन एवं संस्कार-विहीन था और शरणागत होते जीवन ही बदल गया। गुरुदेव की कृपादृष्टि ने सभी कुसंस्कारों को सुसंस्कार में बदल दिया। जो कुसंस्कार है वह दासकृत है।

श्रीस्वामीजी महाराज की सक्रियता के मुख्य अवयव रहे हैं - **1**। समाज सेवा, **2**। विद्या-प्रदान की सम्यक व्यवस्था, **3**। आळवार कोटि का चिन्तन, **4**। आश्रितों के प्रति वात्सल्य, **5**। दीनबन्धुता, उदारता, सरलता, पवित्रता, मृदुभाषी स्वभाव, प्राणीमात्र के प्रति दया, समता, कृतित्व, कृतज्ञता, गुण महोदधि। **6**। भागवत निष्ठा, **7**। आचार्य निष्ठा, **8**। भगवद्निष्ठा, **9**। प्रसाद निष्ठा, **10**। धाम निष्ठा (दक्षिण यात्रा), **11**। क। वर्षात, धूप एवं सर्दी की यात्रा, ।ख। सादा जीवन, सादा खान-पान, मृदु व्यवहार, सामान्य आवास, ।ग। भूत-प्रेत की निज कल्याण की कामना की पूर्ति, ।च। सांसारिक व्यवहार चर्चा से दूर, ।छ। समय का क्षण-क्षण सदुपयोग।

श्रीस्वामीजी महाराज ने समाज के प्रत्येक जीव के उद्धार का आजीवन प्रयत्न किया। शिक्षा के क्षेत्र में, धार्मिक कृत्य के क्षेत्र में एवं गरीबों की उन्नत्ति के लिए उनके द्वारा किये गये सारे कार्य का आज फल मिल रहा है। श्रीस्वामीजी महाराज का खान-पान, वेष-भूषा, बोल-चाल एवं व्यवहार सादगी से ओतप्रोत था।

<u>गावः सर्वसुखप्रदा</u>

सरौती स्थान के सभी गाय, बैल, बछड़ा, घोड़ा आदि से श्रीस्वामीजी महाराज को आत्मीय प्रेम था। स्थान में रहने पर प्रायः गौशाला में जाकर बैलों,गायों तथा बछड़ो से प्रेम करते हुए उनके सिर एवं शरीर को सहलाते रहते थे। इसका परिणाम था कि जब कभी

भी श्रीस्वामीजी महाराज बाहर रमता से लौटते तब पशु-वृन्द हुँकारते हुए बोल-बोल कर उनके प्रति स्नेह प्रकट करने लगते थे। यहाँ तक कि श्रीस्वामीजी महाराज के निकट जाकर उनको स्पर्श करने हेतु रस्सी एवं खूँटा आदि भी तोड़ने का प्रयास करने लगते थे। यह था श्रीस्वामीजी महाराज का पशुओं से प्रेम।

<u>एक प्रेत के कल्याण की घटना</u>

एक बार श्रीस्वामीजी महाराज धोबी बिगहा से आ रहे थे। दास सेवा में था। श्रीस्वामीजी महाराज घोड़ी पर और दास पीछे-पीछे पैदल था। सरौती के निकट गौरा मोड़ की घटना है। सूर्यास्त के बाद की गोधूली वेला थी। दास क्या देखता है - दस साल का एक बालक श्रीस्वामीजी महाराज के पैरों के पास हाथ जोडे अस्पष्ट तोतली बोली में कुछ बोलते हुए चल रहा था। कुछ दूर चलने के बाद जहाँ आज सरौती मोड़ पर एक भव्य द्वार बना है वहाँ आने पर गायब हो गया। कुछ आगे आने पर दास ने श्रीस्वामीजी महाराज से पूछा - 'सरकार, यह सब क्या था !' उत्तर मिला - 'कुछ दुःखी जीव कल्याण चाहते हैं।' श्रीस्वामीजी महाराज से भूत-प्रेत भी उद्धार चाहते थे - "यं स्पृश्यति पाणिभ्यां यं यं पश्यति चक्षुषा। स्थावराणिऽपि मुच्यन्ते किं पुनः बान्धवाजनाः।"

<u>विद्यार्थियों के प्रति वात्सल्य</u>

बिना भेद-भाव के श्रीस्वामीजी महाराज सतत विद्यार्थियों के सम्पर्क में रहते थे। उनकी पढ़ाई-लिखाई की जानकारी रखते थे। एक बार की घटना है कि बह्मर्षि छात्रावास के विद्यार्थियों से मिलने बनारस चले गये। किसी छात्र के पास जाड़े में ओढ़ने का कोई साधन नहीं था। उन्होंने उसे अपना लोई-कम्बल दे दिया। कहीं रमता में गये तो स्वयं पैरपूजी में मिली हुई धोतियों को ओढ़कर जाड़े की रात बिताये। एकबार दास ने भात में घी डाल दिया। घी वाले भाग को उन्होंने छोड़कर अन्य भाग के प्रसाद को ग्रहण कर लिया, घी डालते समय मना भी नहीं किया था क्योंकि सेवारत विद्यार्थियों का भी खयाल रखते थे। दूध का प्रसाद थोड़ा लेकर बाकी दास के लिए छोड़ देते थे।

<u>भगवत्- प्रसाद निष्ठा</u>

सरौती स्थान में कभी भी श्रीस्वामीजी महाराज की अलग भोजन व्यवस्था नहीं देखी गयी। ठाकुर जी को चावल, दाल, साग, रोटी आदि जो सार्वजनिक रूप से भोग लगता था श्रीस्वामीजी महाराज भी वही प्रसाद लेते थे। कभी-कभी खेसारी दाल भी भोग लगायी जाती थी। खान-पान में भगवत्प्रसाद मानकर बड़े प्रेम से प्रसाद ग्रहण करते थे। जब कभी भी प्रसाद निर्माण के समय जल जाये या कच्चा रह जाये या कैसा भी ठाकुर जी को समर्पित भोग प्रसाद में भोग्य-बुद्धि (स्वाद पूर्त्ति)सेशिकायत नहीं करते थे। प्रसाद के नाम पर जितनी बार भी कहिए प्रसाद ग्रहण कर लेते थे, परन्तु लेते थे अपने हिसाब से कि विश्राम की आवश्यकता न रहे। विश्राम तो केवल रात्रि में ही करते थे। यह है श्रीस्वामीजी महाराज की भगवत्-प्रसाद निष्ठा।

<u>भगवत् धाम-निष्ठा</u>

एक बार दास श्रीस्वामीजी महाराज के साथ दक्षिण दिव्यदेश की यात्रा में गया। साथ में काञ्चीपुरम्उत्तराधिमठ के श्रीबालमुकुन्द स्वामी भी थे। सरौती में इस यात्रा की तैयारी में कई दिन लगे थे। जाते समय श्रीस्वामीजी महाराज, ठाकुर जी तथा अपना जूता और खड़ाउँ यात्रा में साथ नहीं ले गये। बाद में पूछने पर ज्ञात हुआ कि तीर्थो में नंगे पाँव जाना चाहिए। तीर्थ की महिमा बताते हुए श्रीभाष्यकार स्वामी की कथा सुनाये। वेंकटेश भगवान के दर्शन हेतु श्रीरामानुज स्वामी तिरुमला जमीन पर लोटकर ही जाने की इच्छा रखते थे परन्तु दुर्गम पहाड़ी मार्ग होने के कारण वैसा हो नहीं सका परन्तु अन्तिम कुछ दूरी घुटनों के बल चलकर गये थे। तिरुचानुर के तरफ से तिरुमला पैदल जाने के मार्ग में श्रीरामानुज स्वामी की एक सन्निधि मिलती हैं। यहाँ से ऊपर के मार्ग को आज भी तमिल भाषा में 'घुटनालोट मार्ग ' **कहते हैं।**

पंडित जी से सुना था कि जब श्रीस्वामीजी महाराज वृन्दावन जाते थे तो मुजफ्फरपुर के साढ़ा मन्दिर में रुकते थे। यहाँ के व्यवस्थापक श्री कमलनयन जी सरौती के निवासी थे। यहाँश्रीस्वामीजी महाराज सूर्योदय से पूर्व ही स्वयं मन्दिर में पूजा करके

परिक्रमा के लिए चले जाते थे। उनके अतिप्रिय शिष्य श्री नन्दकिशोर जी से सुना था कि वृन्दावन से श्रीस्वामीजी महाराज को इतना लगाव था कि उन्होंने एकबार अपनी अन्तिम ईच्छा में वृन्दावन में ही अज्ञातवास के रूप में रहते हुए जीवन बिताना चाहते थे। यह है श्रीस्वामीजी महाराज की धाम-निष्ठा।

<u>सामाजिक परिस्थिति की संवेदनशीलता</u>

करीब ई सन् **1966** की बात है। बिहार में घोर अकाल हो गया। गरीबों के बच्चे सरौती आश्रम में आने लगे। संख्या बढ़ने से पडित जी ने कहा कि सरकार विद्यार्थी बढ़ रहे हैं, व्यवस्था में कमी आयेगी। श्रीस्वामीजी महाराज ने कहा "माधव, मैं तो आश्रम में अन्न नहीं रहेगा तो माँगकर ला दूँगा, परन्तु इन बच्चों के गरीब माता-पिता कहाँ मांगने जायेंगे।"यह थी श्रीस्वामीजी महाराज की गरीबों के प्रति संवेदनशीलता।

<u>शत्-शत् नमन</u>

श्रीस्वामीजी महाराज के लिए गर्मी, बर्षात, जाड़ा, दिन-रात तथा बुढ़ापा उनके समाज-सेवा के कार्य में प्रतिबन्धक नहीं थे। एक बार दास श्रीस्वामीजी महाराज के साथ कोइलवां से रात्रि दस बजे प्रसाद लेने के बाद सरौती के लिए चल दिया। फाल्गुन का महीना था। रास्ते में चलते-चलते घोड़ी खड़ी हो जाये। श्रीस्वामीजी महाराज भी उसी पर बैठे-बैठे विश्राम कर लेते। दास भी पीछे खड़ा हो जाये। केयाल पहुँचते-पहुँचते सुबह हो गयी। श्रीस्वामीजी महाराज की ऐसी यात्रा होती थी ! विश्राम का, रुकने का कोई काम नहीं। आजीवन-अनवरत लोक-कल्याण के लिए समर्पित व्यक्तित्व को शत्-शत्नमन।

<u>रामते अधिक रामकर दासा</u>

पूज्यश्रीस्वामीजी की वाणी में भागवत श्रीवैष्णव भगवान्के चलते फिरते मन्दिर हैं। पंडित जी से सुना था कि श्रीस्वामीजी महाराज के एक गुरुभाई श्री मुमुक्षु स्वामी सरौती में रहते थे। उनकीखाट की बुनाई ढ़ीली पड़ जाने पर श्रीस्वामीजी महाराज अपने हाथो उसे ठीक करते थे। यह था उनका भागवत् प्रेम।

<u>मामनुस्मर युध्य च</u>

श्रीस्वामीजी महाराज का भगवत्चिन्तन श्री शठकोपादि सूरियों जैसा था। यह उनकी अर्चागुणगानादि रचनाओं के अवलोकन से ज्ञात होता है। अतिआश्चर्य की बात है कि लोक-कल्याणादि में सतत् लगे रहने के बाद भी उनके भगवत् चिन्तन का प्रवाह क्षणमात्र के लिए भी अवरुद्ध नहीं हुआ। "**माम अनुस्मर युध्य च।8।7।**" गीता का सिद्धान्त उनमें कूट-कूट कर भरा था।

<u>पूर्णतया कच्छप-वृत्ति</u>

दास ने हुलासगंज में एकबार श्रीस्वामीजी महाराज से उनके अंत के दो-तीन वर्षो की अवधि में तब पूछा था जब वे कच्छप-वृत्ति से विश्रामावस्था में रहते थे, "सरकार, सरौती को जानते हैं ?; घोड़ा को जानते हैं ? ; ब्रह्मचारी स्वामी को जानते हैं ?; श्रीरङ्गरामानुजाचार्य जी को जानते हैं ?; श्रीरामप्रपन्न जी को जानते हैं ?" दास का प्रश्न लम्बा था। श्रीस्वामीजी महाराज ने दो शब्दों में कहा, "**उल्लू! ये सब माला हैं कि इनको जपता रहूँ।**" लोकयात्रा के अन्त के दो-तीन वर्षो में कछुआ की तरह सभी सांसारिक वृत्तियों को समेट लिये थे।

<u>सतत् भगवत् नाम स्मरण</u>

श्रीस्वामीजी महाराज अनवरत भगवान्के नामों का स्मरण करते रहते थे। स्नानके समय बोला करते थे - "**कावेरीविरजातोयं वैकुण्ठं रङ्गमन्दिरम्। परवासुदेवरङ्गेशं प्रत्यक्षपरमं पदम्।।**" भगवान् के नाम में इनको अटूट विश्वास था जो इनकी पुस्तक "**नाम - माहात्म्य**" के अवलोकन से प्रकट होता है। प्रायः इनके मुख से "**हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। कलि संतरण उपनिषद।**" की गुनगुनाहट सुनाई पड़ती थी। यही कारण हैकि अन्तिम अवस्था में भी इस मन्त्र को ज्यादा स्मरण करते रहते थे। कहा करते थे कि यह मन्त्र **कलिसंतरणोपनिषद** का है और कलियुग में सभी मंगल कामनाओं को पूर्ण करने वाला है। यह भी कहा

करते थे कि भगवान्का नाम इतना शक्तिशाली है कि पापी के सारे पापों को ऐसा जला देता है कि पापी उतना पाप कर ही नहीं सकता। इसका अर्थ यह नहीं है कि नाम के सहारे नित्य पाप करते रहें। बत्तीस तरह के नामापराध सुने गये हैं।

जैसे आलवार सन्तों ने भगवद् लीलाओं का कई रूपों में चिन्तन किया है श्रीस्वामीी जी महाराज भी उसी तरह भगवद् लीलाओं का चिन्तन किया करते थे। इनकी पुस्तकें "**भक्तवर- ध्रुव प्रह्लाद चरित्र**" एवं "**मित्र सुदामा-कृष्ण**"आज भी भक्तों को भगवत्प्रेमभक्ति प्रदान करते हैं।

श्रीस्वामीजी महाराज की लीला-परक वाणी -

"कवन जाने कैसे रीझे गोपाल" "चितचोर मोर दहिया खा गइले हो"

"हे भगवन्यह कोई न जाने कब कैसे अपनाये हो"

"जानत सुदामा भाई हमरो सुभाउ तुम एक दल में जाउँ मैं बिकाये जी।
रोवत बुलाई वही द्रौपदी बेचारी तब चीर के बढ़ाई हम भारत करायो जी।
दूत-सूत नाम से कहाये हम जगत में बड़े बड़े तीर सही रथ को हँकाये जी।
तोर अस मित एक तुँही मोर लोकहुँ में मोर घर आये तुम काहे को लजाये जी।
तोर सम प्रेमी हूँ के चहत चरण-रज हम तेहि लग तिन पीछे-पीछे धाय जी।
मोर जन जब-जब जैसे-जैसे चाह तब तैसे-तैसे रूप धरि तहँ-तहँ धाय जी।
अम्बरीष ऋषि लागी दशो देह धरे हम भगत के दुःख मोरा देख न सहाये जी।

शठकोपादि सूरियों जैसे उनके ये आन्तरिक उद्गार भक्तिगीत के प्रवाह में दिखाई पड़ते हैं। इसमें अवगाहन से पामर जीव भी भगवद् लोक के अधिकारी हो जायेंगे।

"**अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः। तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्। भा.2।3।10।**"

"**एष मे सर्वधर्माणां धर्मोऽधिकतमो मतः। यद्भक्त्या पुण्डरीकाक्षं स्तवैः अर्चेत्नरः सदा। विष्णु स.।**"

<u>श्रीवैष्णव महिमा</u>

एकबार रघुनाथपुर से आते समय मार्ग के कालक्षेप में श्रीस्वामीजी महाराज ने कहा - "**रथ्यान्तरे मूत्रपुरीषमध्ये चण्डालवेश्मन्यऽथवाश्मसाने। कृतप्रयत्नोऽप्यकृतप्रयत्नो देहावसाने लभते च मुक्तिम्।**" भगवद् शरणागत श्रीवैष्णवों की महिमा का वर्णन करते हुए श्रीस्वामीजी महाराज ने उक्त श्लोक का भाव बताया कि वैष्णव की दुर्गति नहीं होती। किसी भी परिस्थिति में शरीर त्याग करते ही भगवद्धाम की प्राप्ति होती है। उसके लिए लौकिक क्रिया उतना महत्व नहीं रखता क्योंकि शरणागत भक्त भगवान् का है। भगवान्ने स्वयं कहा है "**करऊँ सदा तिनकी रखवारी। जिमि बालक राखै महतारी।।**" भगवान् अपने वात्सल्य गुण के कारण भक्त के दोषों को वैसे ही नष्ट कर देते हैं जैसे गाय बछड़े के मलमूत्र लिपटे शरीरको चाट-चाट कर साफ कर देती है।

श्रीस्वामीजी महाराज की महिमा को दास वाणी या लेखन से वर्णन नहीं कर सकता। अनुभव "**मूक -आस्वादनवत**" गूंगे के गुड़ जैसा होता है। आज मगधवासी अनुभव कर रहे हैं कि श्रीस्वामीजी महाराज ने भक्ति-शरणागति रूपी ऐसा वितान (सामियाना) तान दिया जिसके नीचे जो भी त्रिविध ताप-संतप्त जीव आते हैं उन्हें जीवन में परमशान्ति तथा भगवदभक्ति प्राप्त होती है।

<u>2। श्री लक्ष्मीप्रपन्न स्वामी जी के संस्मरण।</u>

आपका जन्म धुरिया बलवा गाँव में ई **1945** के फाल्गुन शुक्ल षष्ठी को हुआ। पाँच भाईयों में आप सबसे छोटे थे। बचपन का नाम लालवदन था। शिशुकाल में ही इनकी माँ का निधन हो गया था और इनका पालन पोसन सबसे बड़ी भाभी ने किया था। एक दिन बचपन में आप प्रातःकाल ब्रह्मवेला में नदी में शौच क्रिया के लिए जा रहे थे कि रास्ते में काक पक्षी को मैथुनरत देखा। एक सप्ताह बाद आप बीमार पड़े और डाक्टरों ने इन्हें टी बी रोग से ग्रस्त कहा। पटना के डाक्टर से चिकित्सा चल रही थी। एक

दिन दोपहर में इनके घर पर एक सन्त का पदार्पण हुआ। उनका रात्रि में एक ही शाम भोजन करने का नियम था। बहुत आग्रह पर ये गुड़ का शरबत पिये और बताये कि इस घर में एक बालक बीमार है। उन्होंने रामचरित मानस के सुन्दरकाण्ड का पाठ करने को कहा। पाठ का प्रारम्भ – " नाम पाहरु दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट । लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट। दोहा 30। निमिष निमिष करुनानिधि जाहिं कलप सम बीती। बेगि चलिअ प्रभु आनिअ भुजबल खल दल जीति। दोहा 31। " से करने को कहा तथा हर दोहा का सम्पुट "दीन दयाल बिरिदु संभारि। हरहु नाथ मम संकट भारी। सु 26।2। " से करने को बताया। सन्त जी यह कहते हुए चले गये कि – "यह पन्द्रह दिन में स्वस्थ्य हो जायेगा। इसने जीवन में कोई और मार्ग चुनने को सोंचा था परन्तु भगवान की ईच्छा कुछ और है।"

ई **1971** में आप सरौती आकर स्वामी रंगरामानुजाचार्य जी से दीक्षा लिये और आपका नाम लालवदन से लक्ष्मीप्रपन्न हो गया। उसके पश्चात्सरौती में ही भगवद्कैंकर्य में लग गये। ई **1972** के प्रयागराज के कुम्भ मेला में वृन्दावनवासी श्रीनिवास स्वामी जी से सम्पर्क हुआ और उनके साथ वृन्दावन जाकर रहने लगे। वहाँ भगवान कृष्ण के सवैया सुनने एवं गाने में इनको आनन्द मिलने लगा। मलूक दास के सवैयों में सर्वाधिक प्रिय इन्हें निम्नलिखित सवैया लगता है –

"दीनदयालु सुनी जब से तब से मन में कछु ऐसी जँची है।
तेरो कहाई के जाऊँ कहाँ अब तेरे ही नाम की फेंट कसी है।
अब तेरे ही आसर एक मलूक नहीं प्रभु सन कोई दूजे जँची है।
ऐहो मुरारी पुकारी कहौं अब मेरी हँसी नहीं तेरी हँसी है।

खेलत रार मचावत धावत कृष्ण सखा संग में बल भैया।
कीच सनी किलकियो हँसी लखि के करी कोप कहे जिमि मैया।
अब हम मानी सुमानी लियो गत जन्म के सूकर हो तू कन्हैया।
बहु रात गयी नहीं नींद भयी यशोदा इतिहास कहे हरि को।
पितु आयसु से मुनि वेष धरे रघुनाथ-सिय जो गये वन को।
जब पंचवटी वन में पहुँचे तब रावण आनि हरि सिय को।
सुनी चौंक कहा धनुवाण कहाँ यह व्यग्र गिरा सुख दे सब को। सियावर रामचन्द्र जी की जय।

वृन्दावन में आयोजित सावन के झूला-उत्सव में श्रीबिहारी जी के मन्दिर में हरियाली तीज यानी सावन शुक्ल तृतीया का झूला बहुत ही आकर्षित करता है। श्रीबिहारी जी मात्र एक ही दिन झूला झूलते हैं जबकि अन्य मन्दिरों में सावन एकादशी से भादो जन्माष्टी तक झूला का उत्सव चलता है। वृन्दावन में फोकिला आश्रम से पीछे रामस्वरूप जी की सावन अमावस्या से जन्माष्टमी तक चलने वाली रासलीला भी श्री लक्ष्मीप्रपन्न जी को बहुत आकर्षित करती है।

आप ई **1976** में हुलासगंज स्वामी जी के पास आकर भगवद्कैंकर्य में लग गये। हुलासगंज आश्रम में शीशम आदि के वृक्ष लगा कर उनको सिंचित करने में विशेष रुचि लेते हुए श्री कमल नयन जी को सहयोग करने लगे। श्रीलक्ष्मी जी को जगन्नाथपुरी की आषाढ़ माह की रथयात्रा में सम्मिलित होना विशेषरूप से पसन्द है। इन दिनों श्री लक्ष्मीप्रपन्न जी ऋषिकेश के आगे उत्तराखण्ड के तीर्थमार्ग में अवस्थित ब्रह्मपुर में गर्मी के महीनों में वास करते हैं। यहाँ श्रीरंगजी गोवर्द्धन गद्यी वृन्दावन से समाश्रित सन्त श्रीरामप्रपन्न जी का आश्रम है। जाड़े के मौसम में ये जगन्नाथपुरी या वृन्दावन आदि स्थलों पर रहते हैं।

सरौती के स्वामी श्री पराङ्कुशाचार्य जी महाराज उस समय हुलासगंज में ही रहने लगे थे। स्वामी श्री रंगरामानुजाचार्य जी की आज्ञा से श्री लक्ष्मीप्रपन्न जी सरौती स्वामाी जी महाराज की सेवा में श्री नकुल जी को सहयोग करने लगे। समय पर उन्हें शौचादि से निवृत्त करा च्यवनप्राश तथा दूध की सेवा के पश्चात् गाय के घी के साथ शीतोपलादि का सेवन नित्य कराने लगे। श्री

स्वामी जी महाराज प्रायः आँखें बन्द कर शान्त मौन भाव से भगवद् चिन्तन में लीन रहते थे। पंडित श्री रामानन्द जी श्री स्वामी जी महाराज को दूध में एक रोटी डालकर दोपहर तथा रात में भगवान्का भोग लगाकर तदीयाराधन कराया करते थे। अन्य भक्तगण, नन्द जी आदि, श्री स्वामी जी महाराज को पंखा झलने तथा अन्य सेवा किया करते थे। स्वामी श्री रंगरामानुजाचार्य जी भी स्थानीय क्षेत्र के रमता से लौटने पर श्रीस्वामी जी महाराज की सेवा स्वयं करते रहते थे। आज भी श्री लक्ष्मीप्रपन्न जी वर्तमान स्वामी जी को वार्षिक रूप से यज्ञोपवीत बनाकर समर्पित करने की सेवा किया करते हैं। जब श्री स्वामी जी महाराज को गीता सुनाया जाता था तब वे प्रसन्नचित्त से आँखें बन्द किये हुए ही अपनी शायिका से "बउआ जी ऐसा ही है" कहकर प्रशंसा करते थे। इस तरह से ई **1980** में श्री स्वामी जी महाराज के महाप्रयाण तक उनकी दैनिक सेवा में नकुल जी के साथ श्री लक्ष्मीप्रपन्न जी भी दिन रात समर्पित हो गये। इनके कुछ सेवा-संस्मरण निम्नवत हैं।

<u>एक नारायण ही की अनन्यता</u>

एक बार स्थानीय क्षेत्र से संगीतप्रेमी श्रीवैष्णव भक्तगण हारमोनियम पर श्री स्वामी जी महाराज को भजन सुनाने के क्रम में शिव जी के भजन की शुरुयात किये। श्री स्वामी जी महाराज ने "नारायण नारायण कहो, मुँह अशुद्ध हो गया"कहते हुए बीच में ही टोका। इस क्रम में श्री लक्ष्मीप्रपन्न जी ने "अर्चागुणगान" के पद "गिरा हूँ चरण में तो पड़ेगा रखना तुम ही"का उद्धरण देते हुए विनय पत्रिका के पद - " मन समेत यह तन के वासी जानकी जीवन के बलि जैहों। रोकही नयन विलोकत और ही शीश ईश ही नविहौं। जानकी जीवन के बलि जैहों। " को गाते हुए तुलसी दास जी की अनन्यता के समान श्री स्वामी जी महाराज की अनन्यता के बारे में कहा।

थानेदार की भक्ति

शरौती के विवाद के क्रम में एकबार अरवल, जहानाबाद तथा काको के तीनों थानेदार हुलासगंज आये और श्री लक्ष्मीप्रपन्न जी को श्री स्वामी जी महाराज को जहानाबाद कोर्ट में ले चलने को कहा। श्री लक्ष्मीप्रपन्न जी ने मना कर दिया और थानेदारों को अपने उत्तरदायित्व पर श्री स्वामी जी महाराज को कोर्ट में ले जाने को कहा। इसी बीच काको के मुसलमान थानेदार ने टोकते हुए अन्य दो थानेदारों को कहा कि जब मैं आज यहाँ आ रहा था तो मेरी माँ ने कहा था कि सरौती के स्वामी जी एक उच्च्व कोटि के सन्त हैं, ऐसा न हो कि तुम्हारे व्यवहार से क्षुब्ध हो वे कुछ बोल दें, अतः सावधानी से अपना दायित्व निभाना। तीनों थानेदारों ने कोर्ट को सूचित कर दिया कि श्री स्वामी जी महाराज को कोर्ट में नहीं लाया जा सकता है।

फलतः जज महोदय ने स्वयं हुलासगंज आकर श्रीस्वामी जी महाराज से भेंट की तथा उनके अभिवादन को सुन श्री स्वामी जी महाराज ने 'मंगलमय हो' कहकर उन्हें आशीर्वाद दिया। जब जज साहब ने श्री स्वामी जी महाराज से 'उनकी सेवा कौन करते हैं' **पूछा तब श्री स्वामी जी महाराज ने "जिनके अच्छे विचार हैं"** कहा। इसी बीच जज महोदय को एक बालक विद्यार्थी पैर छू कर प्रणाम किया। पूछने पर पास के खड़े वकील साहब ने कहा कि यह उनका पुत्र है और वह उसे यहीं हुलासगंज आश्रम में संस्कृत की शिक्षा प्राप्त करने हेतु रखे हैं। इससे जज साहब को हुलासगंज की महत्ता का आभास हुआ और वे श्री स्वामी जी महाराज की महानता से प्रभावित हो लौट गये।

<u>**मानस की चौपाई**</u>

प्रायः श्री स्वामी जी महाराज "**बड़े सनेह लघुन्ह पर करहीं। गिरि निज सिरनि सदा तृन धरहीं**। बा 166। 4। " दुहराया करते थे। "**कृष्णात्वदीय पादपंकज......**। " भी यदा कदा गुनगुनाते रहते थे।

<u>छौर कर्म</u>

महाप्रयाण के पूर्व की दो तीन वर्षो की अवधि में श्री स्वामी जी महाराज का छौर कर्म धर्मदेव नामके एक ठाकुर किया करते थे जो श्रीवैष्णव थे तथा सुन्दर कण्ठ में भगवान्का भजन गा गा कर श्रीस्वामी जी महाराज का सुगमता से छौरकर्म सम्पादित

किया करते थे। श्रीस्वामी जी महाराज के महाप्रयाण के बाद भी वे हुलासगंज में रहते थे। जीवन में उत्पन्न व्यवधान या व्याधियों के कर्मभोग के बारे में वे एक रोचक कथा सुनाते थे। एक बार कोई एक राजा जंगल से गुजर रहे थे कि रास्ते में पड़े एक अजगर साँप को देखा और उन्होंने उसे अपने धनुष की नोक से उठाकर रास्ते से बाहर फेंक दिया। वह अजगर एक कंटीली झाड़ी पर जा गिरा। उसके समस्त शरीर में झाड़ी का काँटा चुभ गया तथा अठारह दिनों में इस पीड़ा से ग्रस्त होकर वह साँप मर गया। कहते हैं इसी कर्म के कारण वह राजा दूसरे जन्म में भीष्मपितामह बनकर आया और कुरुक्षेत्र के युद्धक्षेत्र में बाणशय्या पर मरने के पूर्व छः माह तक पड़ा रहा।

3। प्रोफेसर पं. श्री वेंकटेश शर्मा जी के संस्मरण

श्री स्वामी जी महाराज का सरौती में प्रथम दर्शन

श्री वेंकटेश जी बारह वर्ष की अवस्था में पहली बार जब सरौती आये तो वहाँ प्रथम मुलाकात उन्हें श्री स्वामी जी महाराज से ही हुई। श्री स्वामी जी महाराज उस समय कुँए के पास स्थित एक खपड़ैल वरामदा से खपड़ा लेकर कुछ कर रहे थे। जब श्री वेंकटेश जी ने उन्हें साष्टांग किया तब उन्होंने इनका गाँव आदि पूछते हुए आने का उद्देश्य पूछा। जैसे ही श्री वेंकटेश जी ने पढ़ाई हेतु आने का उद्देश्य बताया तो श्री स्वामी जी महाराज जिस काम में लगे थे उसे बीच में ही छोड़ दिया और इनका हाथ पकड़ अपने कमरे में ले गये तथा पं. श्री माधव जी को बुलाया। उन्हें इनका हाथ पकड़कर सुपुर्त किया कि आप इनकी पढ़ाई लिखाई की उचित व्यवस्था करें।

विद्या अर्जन की प्राथमिकता

एक बार श्री वेंकटेश जी श्री स्वामीजी महाराज के साथ रमता में पालीगंज समीपस्थ रघुनाथपुर गाँव गये हुए थे। सामान्यतया पढ़ने के जिज्ञासु विद्यार्थी को श्री स्वामी जी महाराज रमता में साथ रखना पसन्द नहीं करते थे परन्तु किसी वाध्यता वश इन्हें श्री स्वामी जी महाराज के साथ भेजा गया था। रात्रि में भगवान् के तदीयाराधन के बाद श्री स्वामी जी महाराज ने वहाँ उपलब्ध लालटेन इन्हें देते हुए कहा कि तुम लालटेन ले जाकर कहीं किनारे में बैठ अपनी पढ़ाई करो। श्री वेंकटेश जी पढ़ते हुए जब देखे कि कोई एक ग्रामीण भक्त जन्मकुण्डली लेकर श्री स्वामी जी महाराज को दिखाना चाह रहे हैं तब इन्होंने शिष्टाचार वश लालटेन लाकर श्री स्वामी जी महाराज के पास रखा। लालटेन देखते ही श्री स्वामी जी महाराज ने इनको डांटते हुए कहा कि तुम लालटेन ले जाकर अपनी पढ़ाई करो। इनका जन्मकुण्डली का काम कल भी हो सकता है परन्तु तुम्हारा आज का समय व्यर्थ चला जायेगा जो कभी लौटकर नहीं आयेगा और तुम्हारी पढ़ाई अधूरी रह जायेगी। श्री स्वामी जी महाराज पढ़ाई एवं विद्या अर्जन को सर्वोच्च प्राथमिकता देते थे।

श्री सत्यनारायण स्वामी की कथा

एक बार होली के अवसर पर श्री वेंकटेश जी सरौती में ही थे और किसी निकटवर्ती गाँव में पूर्णिमा के कारण श्री सत्यनारायण भगवान की कथा कहने की आवश्यकता थी। पं. श्री माधव शर्मा जी ने श्री वेंकटेश जी को ही पूजा कराने की विधि का बोध कराते हुए उस गाँव में चले जाने का आदेश दिया। जैसे ही श्री स्वामी जी महाराज को साष्टांग कर ये उस गाँव को चलने को उद्धत हुए तब श्री स्वामी जी महाराज ने इनसे 'कहाँ जा रहे हो ' पूछा। वस्तुस्थिति बताने पर उन्होंने पं. श्री माधव जी को बुलाकर कहा कि पढ़ने वाले विद्यार्थी का समय व्यर्थ नहीं जाने दीजिए और इनके जगह पर मन्दिर के पुजारी को भेजवा दिया। पुजारी जी को आने में देर होने पर पं. श्री माधव शर्मा जी ने स्वयं भगवान्‌की आरती आदि की सेवा समर्पित की।

4। गोपाल जी, केउड़ी के संस्मरण।

गोपाल जी एक प्रपन्न श्रीवैष्णव हैं और वैष्णवता आप में कूट-कूट कर भरी है। आपके पिता जी भी वैष्णव-प्राण थे और उस क्षेत्र में सर्वप्रथम अगर कोई वैष्णव मन्दिर की स्थापना हुई थी तो वह केउड़ी का श्री लड्डू गोपाल भगवान का मन्दिर था। गोपाल जी का जन्म चैत्र कृष्णपक्ष चतुर्थी को विशाखा नक्षत्र में ई सन् 1960 में हुआ है। एक सफल गृहस्थ होने के अतिरिक्त आप में श्रीवैष्णव दिव्यदेशों में बड़ी संख्या के वैष्णव मण्डली के साथ भ्रमण की भगवत्-प्रदत्त अभिरुचि है। अनुमान किया जाता है कि शताधिक बार आपने तिरुमला श्रीवेंकटेश भगवान्, काञ्चीपुरम वरदराज भगवान्तथा श्रीरंगम श्रीरङ्गनाथ भगवान् के दर्शन तथा तीर्थ-प्रसाद प्राप्त करते रहने का सौभाग्य प्राप्त किया है।

श्रीविल्लीपुत्तुर में श्रीआण्डाल (गोदम्मा जी) के साथ-साथ विराजमान दुलहास्वरूप श्रीरङ्गनाथ भगवान का (द्रष्टव्य-श्रीगोदारङ्गमन्नार के इसीतरह के स्वरूप का दर्शन श्रीरंगजी मन्दिर वृन्दावन में होता है) तथा आळवार तिरुनगरी में आदिनाथ भगवान एवं नम्माळवार के दर्शन के अवसर से अन्य श्रीवैष्णवों को लाभान्वित कराते रहते हैं। बड़ी ही सहजता के साथ गोदम्मा जी का प्रियभोग पुआ समर्पित करने का सौभाग्य आपको प्राप्त है।

दक्षिण की यात्रा में प्रायः मदुरै में कूडल आळगर भगवान्एवं मदुरै से 20 कि मी पर स्थित आळगर कोईल में सुन्दरबाहु भगवान्के दर्शन के साथ नूपुर गंगा का स्नान भी आपकी यात्रा का एक अंग बन गया है। स्मरणीय है कि चोलराजा से प्रताड़ित होकर श्री रामानुज स्वामी के परमप्रिय शिष्य श्री कुरेश स्वामी जी आळगर कोईल में ही वास किये थे तथा पञ्चस्तवों में से अधिकांश की रचना यहीं हुई।

यात्रा-मण्डली के श्रीवैष्णवों को लाभान्वित कराने की आपकी सभी यात्राएँ प्रायः पुरी के श्रीजगन्नाथ जी के दर्शन एवं जगप्रसिद्ध महाप्रसाद के सेवन से प्रारम्भ होकर वापसी में पुनः पुरी के महाप्रसाद एवं दर्शन से ही पूर्ण होती है।

श्रीविल्लीपुत्तुर में निर्माणाधीन श्रीस्वामीजी महाराज के पंचधातु उत्सव विग्रह को भोग समर्पित करते हुए ई सन् 2018 के फाल्गुनमास में हुलासगंज पधरावाना आपके वैष्णव-जीवन की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि के रूप में स्मरणीय तथा अनुकरणीय है। इस प्रसंग में यह उल्लेखनीय है कि श्रीस्वामीजी महाराज के उत्सव विग्रह को हुलासगंज पधारने के पूर्व उनके प्रिय दिव्यदेश तिरुमला, काञ्चीपुरम, श्रीरंगम तथा श्रीजगन्नाथपुरी का भी आपने भ्रमण कराया। 'दिव्यग्रन्थमाल' पुस्तक के संकलन में आपसे अतुलनीय सहयोग मिला है। जब कभी द्वन्द उत्पन्न हुआ आपने तत्परता के साथ उसका समाधान किया है।

एक बार श्रीस्वामीजी महाराज केउड़ी पधारे। बाल्यावस्था के गोपाल जी श्रीचरणों की सेवा में लगे हुए थे। श्रीस्वामीजी महाराज ने पूछा - कोई पद अगर याद हो तो गा कर सुनाओ। श्रीगोपाल जी ने बड़ी तन्मयता से गा कर सुनाया - "हे गोविन्द ! राखो शरण अब तो जीवन हारे।" श्रीस्वामीजी महाराज ने एक श्लोक के उद्धरणसे गायन विद्या के प्रारम्भिक ज्ञान को स्पष्ट करते हुए कहा कि सभी ताल मात्राधीन होते हैं -

"चाषो वदत्येकं मात्रं द्विमात्रं वायसो वदेत्। त्रिमात्रं शिखिनश्चैव नकुलश्चार्ध मात्रकम्।।"

नीलकंठ की बोली एक मात्रा की, कौवे की बोली दो मात्रा की, मोर की बोली तीन मात्रा की और नकुल की बोली आधी मात्रा की है। मात्रा से उच्चारण काल समझना चाहिए।

ई सन् 1969 में श्रीस्वामीजी महाराज से आप समाश्रित हुए। उस समय चाँदी के बने चक्र एवं शंख से आपको वैष्णव संस्कार दिया गया था। चाँदी में सोना की अपेक्षा दहनशीलता कम होती है इसीकारण चक्रांकित करने में चाँदी से ही निर्मित शंख एवं चक्र उपयोग में लाने की अधिकांश प्रथा है। ई सन् 1971 के प्रयागराज कुम्भ में आप अपने पिता जी के साथ सम्मिलित हुए थे। उस समय आपकी बलवती ईच्छा ईलाहाबाद में आनन्दभवन देखने की थी परन्तु श्रीस्वामीजी महाराज सदा आपको अपने पास बुलाकर बैठा लिया करते थे जिसके कारण आपको आनन्द भवन जाने का समय ही नहीं मिल पाया।

एक बार श्रीस्वामी जी महाराज केउड़ी में भागवत सप्ताह सुना रहे थे। एक मरणासन्न बैल को श्रीस्वामीजी महाराज ने स्नेहवश अपने हाथो गुड़ खिलाया था। तिरुमला से लौटकर आये हुए श्रीस्वामीजी महाराज से प्राप्त बाला जी के बड़े- बड़े लड्डू को पहलीबार देखकर आप दंग रह गये थे। आज के दिन उतने बड़े लड्डू के भोग की प्रथा शायद ही दृष्टिगोचर होती है।

--ஃ ஃ--

श्रीमते रामानुजाय नमः

पुस्तक में दिये गये सन्दर्भो के संकेत

1 |कठो. 1 |2 |23 कठोपनिषद अध्याय 1 वल्ली 2 मंत्र 23
2 |गी. 3 |11 श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय 3 श्लोक 11
3 |तै.उ. 2-7 कृष्ण यजुर्वेद तैत्तिरीय उपनिषद द्वितीय भाग (ब्रह्म आनन्द वल्ली) अनुवाक/ अध्याय 7
4 |प.पु. उ. 24 |51 पद्म पुराण उत्तर खण्ड अध्याय 24 श्लोक 51
5 |ब्र.सू. 2 |3 |40 बह्म सूत्र अध्याय 2 पाद 3 सूत्र 40
6 |भा. 1 |9 |15 | अथवा भाग 1 |9 |15 | श्रीमद्भागवत महापुराण स्कन्ध 1 अध्याय 9 श्लोक 15
7 | |मानस बा. 15 |3 | अथवा बा. 15 |3 | | तुलसीदासकृत रामचरितमानस बाल काण्ड दोहा 15 के बाद की चौपाईयों की जोड़ी की संख्या 3 |
8 |वा रा अयो 91 |15 | अथवा वा. रा. अयो. 91 |15 | वाल्मीकि रामायण अयोध्या काण्ड सर्ग 91 का श्लोक 15 |
9 |वि.पु. 1 |9 |146 विष्णु पुराण अंश 1 अध्याय 9 श्लोक 146
10 |वि.स. विष्णुसहस्रनााम

<u>दिव्यग्रन्थमाल में संकलित 16 पुस्तकों की विषय सूची</u>

।।श्रीमते रामानुजाय नमः ।।

श्रीकृष्ण जन्मोत्सव

रचयिता

श्रीस्वामी पराङ्कुशाचार्य

सरौती मठाधीश

रामपुर चौरम

गया

श्रीमते रामानुजाय नमः

श्रीकृष्ण जन्मोत्सव।

भगवान् श्रीकृष्णके जन्माष्टमी की बधाई के अवसर पर श्रीस्वामीजी महाराज द्वारा विरचित निम्नांकित पद बहुत ही लोकप्रिय हैं एवं सरौती, हुलासगंज एवं मेहन्दियाके अतिरिक्त भक्तजन अपने गाँवोंमें भी बड़ी तन्मयता से इसकी प्रस्तुति करते हैं। स्वामीजी महाराज द्वारा प्रायः श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के अवसर पर इसे छपवाकर सरौती में भक्तोंके बीच वितरित कराते थे। श्रीस्वामीजी महाराज के हस्तलिखित इन पदों की पांडुलिपी ई सन् **1953** की गीताप्रेस की उनके द्वारा प्रयोग में लाये गये वार्षिक डायरी पर पृष्ठ **208** से **211** तक मिलती है। इन्हीं पदोंके बीच डायरी के पृष्ठ **210** पर एक और पद मिला है जो दक्षिण भारतमें श्रीरंगम से किसी कारणवश अनायास लौट जानेका संदेश देता है। यह पद भी यहाँ पद भी अन्त में प्रस्तुत किया जा रहा है।

पद **1** ः

धर्म के होत विनाश पाप जब घेरत ए।
तब सन्त देव सब मिलिजुलि हरिके सब टेरत ए।
कृपासिन्धु भगवान् सुनत दुःख जनकर ए।
प्रभु आवत दीनदयाल मनुज तन धरकर ए।
भादो की रजनी भयावनी अति दुःखदायिनी ए।
भये देवकी के सुवन सुहावन अति मनभावन ए।
अद्‌भुत रूप निहारती मन ही विचारती ए।
यह कृपा किये भगवान् पतिहुँ समुझावती ए।
शंख चक्र अरु पद्म गदा लिये शोभत ए।
सोई दिव्य प्रकाश विलोकत अति मनमोहत ए।
तनिक न पलक गिरावति विनय सुनावती ए।
प्रभु रूप सम्हारु भगवान कंस कहुँ जानव ए।
सुनत वचन भगवान् विहँस मुख बोलत ए।
तुम जनि मन डरपहु कंस दल नासव ए।
पूर्वजन्म ब्रत सुतपा पृश्नि मिलि कयेल तु ए।
सोई वर परिपूरण करन तनय हम भये अब ए।

पद **2** ः

नन्द घर जन्मे कन्हाइ घर-घर बाज बधाई जी। टेक।
दुन्दुभी ताल शंख मृदंग धुनि सरस राग सहनाइ जी। घर घर बाजे...
दधिके सिर मलि देत परस्पर गलियन की चमचाइ जी। घर घरबाजे...
गोप गोपी सब झुंड बांधके घर से चली सब धाइ जी। घर घरबाजे...
गावति गीत मनोहर सुन्दर दोउ करताल बजाइ जी। घर घरबाजे...
लाला लाख बर्षलो जीवै कीरति कर अधिकाइ जी। घर घरबाजे...

पद **3** ः

कृष्णा के लेके यशोदा जी मनरजना लाल।
प्रेम न हृदये समात ए मनरजना लाल। ।**1**

गोद राखि हलरावति बहुबिधि आनन्द हृदये अपार ए मनरजना लाल ।**2**
बारबार लै चुम्बति लख मुख मनहि-मनहि अगरात ए मनरजना लाल ।**3**
भाग सराहत सब जसोदा के मिलि-मिलि सब बृजनारि ए मनरजना लाल ।**4**
नन्दराए धन धन्य यशोदा धन यह बृज के भाग ए मनरजना लाल ।**5**
श्यामसुन्दर के देखन के लग भइ अति भीर दुआर ए मनरजना लाल ।**6**
चलु सखि देखन राजमहल में जसोदा जनि एकलाल ए मनरजना लाल ।**7**

पद **4** ः

हम सब भइ बड़ भागिन ये मनरजना लाल ।**1**
कमलनयन दोउ सुन्दर राजै दरसक लख मनहि मन गाजै
मुख अरविन्द सुहावन ये मनरजना लाल ।**2**
दरसन लग ब्रह्मा तहँ आये पितु के जन्म भूमि मन भाए
जमुन भँवर सम सुन्दर ये मनरजना लाल ।**3**
कोउ गोपिन लखि के त्रिण तोरे कोउ लखिके निज नयन न मोरे
कोउ मन मग्न भुलात ये मनरजना लाल ।**4**
महाभीर राजाजी के द्वारे अधिक कोलाहल टरत न टारे
नहीं कोउ लख के अघात ये मनरजना लाल ।**5**

पद **5** ः

राजा पुरोधा बुलावे, लगन सोंचवावै, गरह दिखवावै, समय शुभ कह करके ।**1**
पंडित समय अनुसारा, लगन को सुधारा, गरह को बिचारा,बलकवा अनकर के ।**2**
इनका के पुतना सतइहें, जहर ले पिलइहें, सो पीके बच जइहें, विषम विष पी करके ।**3**
बालक दुरजनशालक, गोद्विजपालक, धर्म सुचालक, गीतासुना करके ।**4**
अवगुन दो एक ए हैं, सखन संग लैहें, माखनको चुरैहें गोपिन घर घुस करके ।**5**
कतहुँ गोपिन घर जैहें, कतहुँ पकरैहें,सो नाच नचैहें,मखन दिखरा करके । **6**
दधिभाज फोर देइहें, माखन ले परइहें, उखल में बंधइहें, सो अरजुन उबारे के ।**7**
पनिघट पर जमघट लगइहें, गयल रोक देइहें, गोपिन अनसइहें, गगरिया धर करके ।**8**
कालिहु के ढिग जैहें, सो काटन धैहें, ता ऊपर जैहें, नचनिया बनकरके । **9**
सुरपतिके भी भगाके, अपने पुजवाके, व्यंजन सब खा के, गोबरधन बन करके । **10**
होगा सबन कर प्यारा,न काहु से न्यारा, जहाँले विचारा, सुनो राजन मन देके । **11**

पद **6** ः

रंग श्रीवेंकटेश्वर गुणगन सुना मन इधर भी झुका मन उधर भी झुका ।
रंग श्रीवेंकटेश्वर की यात्रा भइ मन इधर भी चला मन उधर भी चला ।
रंग श्रीवेंकटेश्वर पुरी को लखा मन इधर भी लगा मन उधर भी लगा ।
रंग श्रीवेंकटेश्वर के जन से मिले कुछ यहाँ भी रहा कुछ वहाँ भी रहा ।
रंग वेंकटाद्रि के सन्तन मिले कुछ यहाँ पढ़ा कुछ वहाँ भी पढ़ा ।
रंग वेंकटाद्रि में सुने औ गुने कुछ यहाँ रहा कुछ वहाँ करा ।
श्रीस्वामी की एक पत्री मिली रंगपुर से चलाआय चरणों लगा ।

।। सम्पूर्ण ।।

श्रीमते रामानुजाय नमः



अर्चा गुणगान

विशेष लयात्मक छन्द

रचयिता

श्री स्वामी पराङ्कुशाचार्य जी महाराज
सरौती स्थानाधीश

प्रकाशक
श्रीस्वामी पराङ्कुशाचार्य ग्रन्थमाला
प्रकाशन समिति

तृतीय संस्करण
28 फरवरी 1981
प्रथम वार्षिक वैकुण्ठोत्सव के अवसर पर

1। श्रीनिवास प्रताप दिनकर

श्रीनिवास प्रताप दिनकर भ्राजता सब लोक मे ।
सो दीन जन के तारने प्रभु आवते भूलोक में ।।1
वह कृपा चितवन नाथ के जन को सनाथ बनावता ।
वारीश करुण ऊमड़ घुमड़ अघ सकल दूर दहावता ।।2
ज्यों दिव्य दक्षिण हस्त में श्रीअस्त्रराज विराजहीं ।
त्यों तेजमय अति पाँञ्चजन्यसु वामकर वर गाजहीं ।।3
है कान्तिमत सुन्दर पीताम्बर अति विचित्र किनारियाँ ।
सो काछनी कटि में सुहावनी सबन के मन हारियाँ ।।4
वनमाल औ मनिमाल अगनित पुष्प मोतिन लर रहे ।
पुनि तैसेहीं भगवान के भगवान माला बन रहे।।5
औ श्रवण कुण्डल मुकुट भूषण गणन मे बहु मणिगणा ।
जनु श्याम घन में दामिनी बहु चन्द्र रवि तारे गणा ।।6
प्रभु दिव्य दक्षिण हस्त से निज चरण शरण बतावहीं ।
ना भव तुम्हारे जानु लो सो बाम से दिखलावहीं ।।7
वह ज्योति जगमग जासु दश दिश विदिशहूँ छायी महाँ ।
सो देखते दरशक गणों के भागते अघतम महाँ ।।8
फणिराज पंकज रूप धर कर दिव्य आसन सोहहीं ।
हो दल अनेकों पादतल सो लखत मुनि मन मोहहीं ।।9
व्यूह पर वैभवन व्यापेहुँ कौन पाते यत्न से।
भगवान अर्चा रूप धरकर जनन से मिल सुगम से ।।10
पर्ण फल जल पुष्प से सेवा सुलभ अति प्रेम से ।
इसके लिये यह तन मिला है व्यास के उपदेश से ।।11
भूधर समान न और भूधर भूमि पर पाते कहीं ।
सदग्रंथ में जब देखते इनके सुयश सर्वत्र हीं ।।12
है धन्य कुधर शिखर अहो तिहुँलोक नायक को धरे ।
ले साथ में आकाश गंगा धार झरझर झरझरे ।।13
औ अनंता अलवार के पावन सरोवर हैं जहाँ ।
है मुक्ति की ईच्छा जिसे वैकुण्ठ में रहते तहाँ।।14

भाष्यकार स्वयं जिन्हें बन श्वसुर गुरु सेवा किये ।
सब दास को शिक्षा दिये अरु आप पावन यश लिये ।।**15**
वह धन्य नर जो देखते पल स्वप्न में उस ठाम को ।
सो देव हैं नर नर नहीं हैं नरन में भगवान को ।।**16**
भव भीति का न डर कभी जो मन बसे हरिगीतिका ।
आशा बड़ी युग चरण की है है कृपा परिपालिका ।।**17**
है प्रणतपाल कृपालु हरि के चरण धर जीवन लहो ।
सो दीन बंधु कृपालुता बश द्रवित होंगे ही अहो ।।**18**

2। श्रीनिवास भगवान हमहि

श्रीनिवास भगवान हमहि अपने अपनाये जी।
ग्रन्थन में यह मिलत सबन में
नरतन सुर दुर्लभ भारत में
देकर के भगवान हमहिं
वैष्णव बनवाये जी।। श्रीनिवास भगवान ......
पञ्चरात्र से शास्त्र मनोहर
गीता के ज्ञान अति सुन्दर
ऐसे वचन सुनाय सुगम
मारग बतलाये जी ।। श्रीनिवास भगवान ......
भाष्यकार के चरण लगाकर
भगवत जन के सुहृद बनाकर
इनकर सेवा देकर सुलभ
उपाय बताये जी ।। श्रीनिवास भगवान.........
दीन हीन लख कृपा किये प्रभु
आरत हर गुण प्रकट किये हरि
युगल चरण अति सुन्दर
सिद्ध उपाय बताये जी ।। श्रीनिवास भगवान......

3। श्रीनिवास आश्रित हित

श्रीनिवास आश्रित हित अपना अर्चा रूप बनाते हैं।
द्रवित हृदय से आये गिरि पर वेङ्कटनाथ कहाते हैं।।
व्रात जनों के रक्षण हित रक्षा कङ्कण बन्धवाते हैं।
शरणागत पर प्रेममयी शीतल अँखिया दिखलाते हैं।।
दक्षिण कर से सब प्रकार युग चरण उपाय बताते हैं।
त्यों वामे करसे भव के लघु तरतर भाव बताते हैं।।

अन्य हाथ में शङ्ख सुदर्शन धर ऊँचे दिखलाते हैं।
डरो नहीं तुम डरो नहीं तुम डरो नहीं हम आते हैं।।
मैं हूँ अखिल लोक के नायक मुकुट पहन बतलाते हैं।
देखो वेद पुराण सूत्र गण मेरे ही गुण गाते हैं।।

4। वेङ्कट गिरि पर स्वामी

वेङ्कट गिरि पर स्वामी वैकुण्ठ से ही आये।
श्री श्रीनिवास जन को यह भाव हैं बताये।।
है हस्त कमल सुन्दर दक्षिण अधो अपाने।
करके उपाय सर्वोपरि चरण को दिखाये।।
है शङ्ख चक धर के प्रतिद्वन्द को हटाते।
तैसे ही वाम करसे भव नाप को बताते।।
जो दिव्य मुकुट माथे त्रैलोक्य नाथ नाते।
है दास को यहाँ से वैकुण्ठ को ले जाते।।
यह गिरि समान गिरिवर ब्रह्माण्ड में न पाते।
इनके समान जनहित तिहुँलोक में न आते।।
वह दीन वचन सुनकर हरि दूर से ही धाते।
भगवान कृपा करके हर रूप भी दिखाते।।

5। वेङ्कट गिरिपर भगवान

वेङ्कट गिरिपर भगवान ज़ी, आये अधम उधारन।
भू योगीश्वर महत भट्टवर, भक्तिसार अगवान जी।।आये...
कुलशेखर श्रीयोगी वाहन, भक्तचरण रजमान जी ।आये...
जामातृ परकाल वीरवर, जिनसे लुटाये भगवान जी। आये...
भाष्यकर यामुन मुनि योगी, राममिश्र परधान जी। आये...
स्वामी पुण्डरीक लोचन वर, कृपा किये जनजान जी।आये...
नाथमुनिहुँ शठकोप मुनीश्वर, विष्वकसेन परधान जी। आये...
माता श्री लक्ष्मी महारानी, दया करो जन जान जी।आये...
दीनहिं के हित भूतल आये, जानत परम सुजान जी।आये...

6। मन श्रीनिवास भज

मन श्रीनिवास भज रे।टेक।
होय परम कल्याण तुम्हारे, चरणन जाय परे।।**1**
लक्ष्मीमाता पास खड़ी हैं, तब तुम काह डरे।।**2**
युगल चरणहिं उपाय तुम्हारे, सब दुःख दूर करे।।**3**

नारायण के ध्यान धरे से, सब विधि काज सरे। ।4
दीनन हित वैकुण्ठ छाड़ि के, वेङ्कट गिरि पधरे। ।5

7। मोहि रङ्गनाथ अपनाये

मोहि रङ्गनाथ अपनाये। टेक।
परम दयालु कृपा करके प्रभु, अपने शरण बुलाये। ।1
मन्त्रराज द्वय चरम मन्त्र को, सब विधि से सुनवाये। ।2
सुन्दर चरण उपाय बताकर, अरचि राह दिखलाये। ।3
ऐसी कृपा दीन पर करि हरि, दुरित दूर भगवाये। ।4
मोहि रङ्गनाथ अपनाये।

8। कृपालो हे कृपा

कृपालो हे कृपा करके प्रभो क्यों ना चिताते हो।
बहुत अपराध जन्मों से किया है मोह के वश हो।
तुम्हारे देखते सबहीं बहिर अन्तर निवसते हो।
करुणाकर करुण वश हो क्षमा कर दे तु सकते हो।
यही है दीन की आशा सतत लखते ही रहते हो।
हमारा कर्म तव देखो नरक बाइस बनाना हो।
निजी गुण को लखें भगवन अपर अपवर्ग लाना हो।
बचना जो बहुत श्रम से हटा दो ही क्षमा करके।
गुणन गण में वही है जो अविज्ञाता कहाते हो।

9। वरद रइया सब

वरद रइया सब देले बनाय। टेक
चौरासी में भ्रमित श्रमित लख कृपादृष्टि प्रभु करके चिताय। वरद...
करुणा कर नर देह बनाय भव से तरण कर सुलभ उपाय।वरद...
अशरण शरण सुयश संभारे हरि दोउ चरणन दिन्ह धराय।वरद...
अस प्रभु मोहि दीन अपनाये तेहि कारण दीनबन्धु कहाय।वरद...

10। वरद रइया मग

वरद रइया मग देले दिखाय।टेक
भाष्यकर के सम्बन्धि बन तुम सोवहुँ भव भय को भगाय।वरद...
नारायण के चरण शरण एक भव से तरन कर सिद्ध उपाय।वरद...
दृढ़पन करि हरि दिन्ह अभय वर मा शुच पद प्रभु दिन्ह सुनाय।वरद...
दीन जनन के तारण कारण सदा रहे करि गिरि पर छाय।वरद...

11। बना है विश्व में

बना है विश्व में सबको वरद के वरद हस्तों से ।
यही सब वेद गाते हैं सकल मिल एकहीं स्वर से ।।
बना सुक वामदेवों को वरद ही के बनाने से।
सुधारा बाल ध्रुव को भी वरद ने वरद हस्तों से।।
बना जैसे विभीषण को वरद के वरद हस्तों से।
बना जैसे सुदामा को वरद के ही बनाने से।।
बने वैसे विदुर घर ही वरद के वरद हस्तों से।
अकिंचन दीन को सब दिन बनाये वरद हस्तों से।।
बना है जनन को सब दिन वरद के वरद हस्तों से।
बना उस गिद्ध को सबसे वरद के हस्त से जैसे।।
बनेगा दीन को वैसे वरद के वरद हस्तों से।

12। रङ्ग रइया ये

रङ्ग रइया ये करुणा नजर से चिताय
हो के करुणाकर जी ठाने निठुरइया
रङ्ग रइया ये हमनि के कवन उपाय ।।**1**
वेद सब तोहि नेति नेति कहि गावै
रङ्ग रइया ये प्रभु रूप अर्चा बनाय।।**2**
छोड़ दिव्य लोक अरू अवधि नगरिया
रङ्ग रइया ये रहले दक्षिण दिशि जाय।।**3**
बाहर भीतर रह के करे रखवरिया
रङ्ग रइया ये अब जनि रहतू भुलाय ।।**4**
दीन हीन दास तोर तुहीं मोर स्वामी
रङ्ग रइया ये कहु पग धरन उपाय।।**5**

13। अर्चारूप बनकर अपनी

अर्चारूप बनकर अपनी सुलभता दिखायो रङ्ग रइया।
ईक्ष्वाकू पर कृपा किये प्रभु कुल से पुजायो ।।**1**
कौसल्या जब पाक बनाई अपने मन खायो।।**2**
पुनि दो बालक देख देख डेराई स्वरूप दिखाओ।।**3**
रघुपति से लङ्कापति पाये दखिन दिश आयो ।।**4**
गङ्गा कावेरी की गोदी तुमहीं मन भायो।।**5**
राग भोग सैया सुखदाई वितान बनायो।।**6**
पान किये योगी वाहन को सुतन में मिलायो।।**7**

यह जन वत्सलता गुण तुम्हरे सुविरद बढ़ायो।।**8**
दीनन पर चरणों की छाया सदाहि बचायो।।**9**

14। दया दरसाये रङ्ग
दया दरसाये रङ्ग रइया
रङ्गनायकी के सङ्ग आके । दया...
यह जन वत्सलता गुण तुम्हरे सुअर्चा बनाये।।दया...
भाष्यकार के सब जन गन को चरण में लगाये।।दया...
श्रीस्वामी कुरेश के वर दे दीनहुँ अपनाये।दया...
सब कल्याण गुणन गण तुमरे । न गन हूँ गनाये।दया...

15। देखन चलिये रङ्गवर
देखन चलिये रङ्गवर की सवारी ।।टेक
सुरतरू वाहन अधिक सुहावन तापर रङ्गनाथ पगधारी।**1**।देखन...
आगे चतुर वेद पाठक गण पाछे प्रबन्ध सुरस ध्वनि न्यारी।**2**।देखन...
आलवार आचारिन वीथिन सबकी सन्निधियों में अधिक तैयारी।**3**।देखन...
सब भक्तन के घरनिन विविध भाँति नैवेद संवारी।**4**।देखन...
द्वार द्वार सब चौके पूरी नीराजन लिये हाथ में थारी।**5**।देखन...
आड़ा विविध ताल से बाजत तैसीन फीरीहुँ की पिहकारी।**6**।देखन...
महामेघ डंमर दो झलकत युगल काहली की ध्वनि भारी।**7**।देखन...
प्रति वीथिन में करूणाकर हरि दर्शन देहि दीनन हितकारी।**8**।देखन...

16। रङ्ग न लगा श्रीरङ्ग
रङ्ग न लगा श्रीरङ्ग का तुम नाहँक बना वेढंग का।।
दशो दिशा में व्यर्थ ही धाया रङ्गपुरी में कवहु न आया
मिथ्या चाल कुरंग का।**1**।तुम...
कावेरी गङ्गा न नहाया वह पवित्र जल तनिक न पाया
भूला यम के दण्ड का।**2**। तुम...
रङ्गनाथ पगतर न गिरा जो चरणामृत नहि पान किया सो
लगहिं लात बजरङ्ग का ।**3**। तुम...
माता रङ्गनायकी जानो रङ्गवरहिं पिता कर मानो
वचन ये वेद वेदान्त का ।**4**। तुम...
त्रिगुणों के घेरा में पड़कर त्रिविध ताप ज्वाला में जलकर
जैसा हाल पतङ्ग का ।**5**। तुम...
श्री रङ्गेश चरण मन धर कर दीनबन्धु के नाम सुमिरकर

महिमा लहत सतसङ्ग का।**6**। तुम...

17। रङ्गनाथ मम नाथ

रङ्गनाथ मम नाथ प्रभो अब ना तुम छोड़ो जी।
रक्षक पिता सखा भर्ता पति ज्ञाता भूति अधार रमापति
हौं शेषी गुरुदेव बहुत नाता जनि तोड़ो जी।**1**।
भोक्ता ज्ञाता प्रेरक अन्तर कहत वेद इतिहास निरन्तर
प्रभु तुम दीन दयाल दया से मुख मत मोड़ो जी।**2**।
स्वामी सेव्य अद्रभ्र गुणाकर सब कारण तारण भव सागर
शुभ गुण में अब आन निठुरता मत तुम जोड़ो जी।**3**।

18। यही वर भावै

यही वर भावै रङ्गरइया।टेक
श्रीरङ्ग पुर के भीतर हमको कुकुर्वा वनावै।
खाने को मोहि भक्तन के जूठन पत्तल ही चटावै।
प्यासे में कावेरी के पानी पीलावैं।। यही...
चतुरानन गोपुर के आगे रेती पर सुतावैं। यही...
भाँति भाँति उत्सव में बनके सुन्दरता दिखावैं। यही...
जब प्रभु परिकरमा में आवैं पीछे से लगावैं। यही...
मङ्गल गिरि पर आप विराजैं आगे में बैठावैं। यही...
रङ्गनायकी रङ्गनाथ प्रभु अपना बनावै। यही...
तुम स्वामी हो अन्तर्यामी अपने अपनावैं। यही...
यह तन रङ्गपुरी में छोड़ा के चरण में लगावैं। यही...
नित्य मुक्त वैष्णव गण सङ्ग में सेवन समुझावैं । यही...

19। लक्ष्मीनाथ के आसन

लक्ष्मीनाथ के आसन भवन बनके रहे पहले ।
प्रभु सो राम सीता के सुनायक भी कहाये हैं।।**1**
गोकुल कृष्ण के भैया जो वलदाउ कहाये हैं ।
प्रभु यह घोर कलि में आ जगत गुरु ही कहाये हैं।।**2**
पुनः अवतार धर करके सुजामाता कहाये हैं।
सुभगवत धर्म को सब विध दशो दिशि में बढ़ाये हैं।।**3**
पुनः सो दिव्य तनु धर के गोवर्धन को पधारे हैं।
सुवृज में बास कर सब विध सुधर्मों को चलाये हैं।।**4**
श्रीराजेन्द्र सूरी बन अनेकों देश को तारे।
प्रभु आकर मगह में दीन के स्वामी कहाये हैं।।**5**

20। हरि के नित शेष
हरि के नित शेष रहैं जो वहाँ पयसागर से चले आये यहाँ।**1**
इमली वन के वन छाये यहाँ नर देह ते कोटर आय महाँ।**2**
जन के हित ले अधिकार वहाँ पुनि कान्तिमती के कुमार यहाँ।**3**
सोई भाष्य किये भव सेतु महाँ किन्ह जीवन के उपकार यहाँ।**4**
तन के धर के बहुवार यहाँ कर पापिन केर उधार महाँ।**5**
कल्याण गुणों के आगार महाँ सब जीवन केर उधार यहाँ।**6**
तिनके चरणों धर के गिर के चलिहैं भवसागर पार वहाँ।**7**
सोई आस भरोस यही मन में भगवान अहैं रहिहौं तहवाँ।**8**
सब दीनन गे जिनके वनके तिनके वनके अब जाउँ वहाँ।**9**

21। अबहुँ हँसि हेरो
अबहुँ हँसि हेरो रङ्ग राया
रङ्ग चरण आश्रित मम कानहु
सो अण्णन वरवरमुनि चेरो।**1**।
ते पुनि भाष्यकर पद सेवक
सो प्रभु महापूर्ण पद नेरो।**2**।
वह भय यामुन मुनि कर पायक
तिन शिर आळवार कर फेरो।**3**।
तिनको सेनाधिप पद जानहु
सो सेवक श्री श्रीपद केरो।**4**।
श्रीकल्याण गुणन की खानी
संतत वसत हृदय मह तेरो।**5**।
1 श्री वृन्दावन श्रीरङ्गाचार्य ः ।
2 श्रीरङ्गाचार्य चरणः श्रीराजेन्द्र देशिका ः ।
3 तस्याश्रित ः शरणगतोऽस्मि। तद्वेतो ः
विकसित मुख पङ्कजेन मामवलोकय ।
यथा ः
रामानुजांघ्रि शरणोऽस्मि कुल प्रदीप ः ।
त्वासीत्सयामुन मुने ः स च नाथ वंश्या ।।
वंश्य ः पराङ्कुश मुने ः स च सोऽपि देव्या ः।
दासस्तवेति वरदोऽस्मि तवेक्षणीय ः ।।

22। अपने दयालु स्वामी

अपने दयालु स्वामी अपना बनाये हरि करुणा वश होके
सब दुःख दूषण दुराय हरि करुणा वश होके। ।**1**। ।
द्वय मंत्र राज चर्म सबहि सुनाये हरि करुणा वश होके।
धर कर चरण में लगाय हरि करुणा वश होके। ।**2**। ।
स्वस्वरूप पर रूप तेहि में बताय हरि करुणा वश होके।
एक कह चरण उपाय हरि करुणा वश होके। ।**3**। ।
साधन विरोधी फल सिद्धहुँ उपाय एक हरि करुणा वश होके।
अरु सब दुर विलगाय हरि करुणा वश होके। ।**4**। ।
कोरवा धरत प्रभु लोरवा पोछत कर करुणा वश होके ।
मा शुच पद समुझाय हरि करुणा वश होके । ।**5**। ।
अस दीनबन्धु प्रभु दीन अपनाये अति करुणा वश होके ।
तब दीनबन्धु कहलाय एके करुणा वश होके । ।**6**। ।

23। गिरा हूँ आ चरण

गिरा हूँ आ चरण में तो पड़ेगा राखना तुमहीं। टेक
हौं यदि आपके हम जो यही वेदान्त गाता है।
हमारी प्रार्थना सुननी पड़ेगी ही सभी तुमहीं । ।**1**। ।
सुने हो द्रौपदी रोदन हटाये नाग के बन्धन।
वही करुणा विवश होकर पड़ेगा तारना तुमहीं। ।**2**। ।
हमारे एक हो तुमहीं न जानो और के कवहीं।
हृदय में खोज देखोगे मिलेगा सत्य ही तुमहीं। ।**3**। ।
अभय वरदान दीनों है सुसाक्षी भाल बन्दर हैं।
तथा माशुच वचन को भी पड़ेगा राखना तुमहीं। ।**4**। ।
हमारी आपकी सब विधि अनेको नातेदारी है।
इसे ही दावदारी है पड़ेगा मानना तुमहीं। ।**5**। ।

24। श्रुति सत्य वचन

श्रुति सत्य वचन हरि चाहेंगे तो निर्हेतुक अपनावेंगे।
हरि अपना हमें बनावेंगे तो अशरण शरण कहावेंगे।
यदि हमारे और चेतावेंगे तो करूणा सिन्धु कहावेंगे।
और अधम उधारण हैं प्रभु जो तो पहले हमें उधारेंगे।
पतितों के तारण चाहेंगे हमरे पहले प्रभु तारेंगे।
अपने जन को यदि खोजेंगे तो हमरे नाम उचारेंगे।
प्रण राखन को प्रभु चाहेंगे चरणों को हमें धरावेंगे।
यदि हमरे जो प्रतिपालेंगे तो प्रणत पाल कहलावेंगे।
हमरे से दीन निवाहेंगे हरि दीनबन्धु कहलावेंगे।

25। करके कृपा कृपानिधान

करके कृपा कृपानिधान कृपासिन्धु यों किये।
श्रीचरण के समीप ही बल से बुला लिये। ।**1**। ।
हृदय निवास करके मन को मना लिये।
छिन छिनहि आप अपने चिन्तन करा लिये। ।**2**। ।
करतूति कालिमा को मन से मिटा दिये।
यह दीन से दयालु दीन बन्धुता किये।
भली भाँति कृपा करके अपना बना लिये। ।**3**। ।

26। श्रीवेंकट गिरि पर

श्रीवेंकट गिरि पर से तारने को बहती है संसार।टेक।
श्रीनिवास के हृदय सरोवर करुणा सहस्त्रों करके धार । ।**1**। ।
कोन कोन दक्षिण दिशि भरके उमड़ी उमड़ी के बार बार।**2**। ।
अमृत वाहिनी सब जीवन के है श्रीभाष्यकार के प्रचार। ।**3**। ।
सोइ सरिता पावन वृज आइ अति पावन गोवर्धन पहार । ।**4**। ।
पूर्व दिशा को तारन धायी पहुँची आके मगह मझार । ।**5**। ।
श्रीराजेन्द्रसूरी चरणन एक देख लेहुँ नयन पसार। ।**6**। ।
ग्राम तरेत ठाम एक सुन्दर हो तहँ जीवन के उद्धार । ।**7**। ।

27। हे आरत हरण

हे आरत हरण मैं शरण में गिरा हूँ । टेक।
दिये हो वचन की उबारेंगे भव से।
उसी से तुम्हारे भरोसे रहा हूँ । ।**1**। ।
उबारो नहीं नाथ झूठे बनोगे ।
अयश हो न तुम्हरे इसी से डरा हूँ। ।**2**। ।
भगे हैं गरूड़ का अकेला परे हो।
सुदर्शन भुलाते न कबहुँ सुना हूँ । ।**3**। ।
क्या वह निठुरता दया सिन्धु सोख्यो।
मैं सफरी तड़पते तलफते रहा हूँ। ।**4**। ।
करूणामयी माता खबर क्यों न लेती।
ढनकते लुढ़कते चरण में गिरा हूँ। ।**5**। ।
सब ग्रन्थ गाता तुम्हें दीन प्यारे।
सुयश सुन तुम्हारे हि अरनी अरा हूँ। ।**6**। ।

28। हे अम्ब तेरी करुणा

हे अम्ब तेरी करुणा जग को जगा रही है।टेक ।

जिसके अभाव से ही जग उनमुनी नहीं थी।
सीकर सुपात होते शाखा निकल रही है। ।**1**। ।
किञ्चित कृपा तुम्हारी सब लोक को बनाकर ।
नित नव विचित्र सब विध शोभा बढ़ा रही है। ।**2**। ।
यह सूर्य चन्द्र ऐसे सब लोक के सितारे।
सवही प्रभा तुम्हारी यह जगमगा रही है। ।**3**। ।
कोना कटाक्ष केरी पल पल बदल बदल कर ।
भगवान के हि सारी सृष्टि बना रही है। ।**4**। ।
तुम करुण वचन सुनकर निज नाथ को सुनाती ।
गुण को बढ़ा बढ़ा कर अवगुण जला रही है। ।**5**। ।
सब काल निकट रहकर भगवत पदों को सेवै।
वैसे ही जनगणों से सेवा करा रही है। ।**6**। ।
छोड़ी कमल व्योमन पयनिधि प्रभु हृदय को।
यह दीन के लिये ही धरनी से अवतरी है। ।**7**। ।
तेरी दया उदधि सम रघुनाथ की रतनाकर।
अकिञ्चन जन पर गिर संगम बना रही है। ।**8**। ।
तीन बार अम्बे भगवान से विलग हो ।
भोगत्व पारतन्त्रता शेषत्वता कही है। ।**9**। ।
अनायास कभी करुणा जिस जीव पर परे जो।
उसको ही हरि चरण में धर के लगा रही है। ।**10**। ।
विधि हर पुरन्दरों ने करते चरण की आशा।
तेरी कला कला में हलचल मचा रही है। ।**11**। ।
हे जननि तेरी महिमा दुःख दूर से हटाकर ।
सुख सम्पति मिलाकर छिन छिन सजा रही है। ।**12**। ।
अर्घ उर्ध्व स्वर्ग नर्क देव मनुज रचकर ।
वह कल बल से कैसी चक्री चला रही है। ।**13**। ।

29। बड़ी मातु की

बड़ी मातु की बड़ाई बढ़के त्रैलोक छाई।टेक
रघुनन्दन गये वन में लग संग ही सिधाई।
वनिता गणों की शिक्षा करके सभी दिखाई। ।**1**
तृण वान के लहर से वह प्राण विकल होकर ।
चरणों में आ गिरा तो शिर काक को बचाई। ।**2**। ।
जब चाहे बजरंगी सब निश्चरी संहारन ।
तव करुणा वस में होकर सबको लई बचाई। ।**3**। ।
श्रीराम की प्रतिज्ञा सुन मन में अकुलाई।

रावण को सिखाने को वह लङ्क में सिधाई।।**4**।।
वह पापी नहीं माना तव मन में पछताई।
दै आग की परीक्षा हरि संग अवध आई।।**5**।।
निर्हेतु तेरी करूणा जब दीन पर सिधाई।
वह तुरत दीनता को निरमूल कर दिखाई।।**6**।।

30। नेक करुण नजरिया

नेक करुण नजरिया बरद बल्लभे । टेक ।
जगमगात तव ज्योति जगत में । अग्नि चन्द्र रवि तव कलभे।।**1**।। ये बरद बल्लभे
दुहू देविन के अग्रभाग रह । भक्त जनन के अधिक सुलभे।।**2**।। ये बरद बल्लभे
लीला बरदराज तव देखे। सर्व स्वतंत्र सबल कलभे।।**3**।। ये बरद बल्लभे
जनहित करिगिरि पर आयी तुम। जनक बरद तु जननि बल्लभे।।**4**।। ये बरद बल्लभे
त्रिगुण खेल हरि के मन भावत । चरण धरन के प्रबल बल्लभे।।**5**।। ये बरद बल्लभे
इन्द्र तनय सम मोहिं विलोकहुँ । लहन विराम कतहु पलभे।।**6**।। ये बरद बल्लभे
तव चरण में धाय गिरा हूँ। जरत जगत में नगन सलभे ।।**7**।। ये बरद बल्लभे
एक बार टुक मोहि निहारो । दीन के ओर तनक पलभे ।।**8**।। ये बरद बल्लभे

31। माता की कृपा

माता की कृपा दृष्टि नवजात पर पड़ी।
नहिं पलकहुँ गिराकर टक से चिता रही।।**1**।।
धर कोमल सब अंग संभार कर रही।
जनु लेके नवजात को उपजीव्य दे रही।।**2**।।
कहुँ हाँथे लै गोदी से अंक लगाती।
जो मुग्धता अति शिशुको करुणा बढ़ रही।।**3**।।
अति मातु की वत्सलता मन को झुका रही।
वह गाढ़ी अति करुणा माता हि बन रही।।**4**।।

32। लेन खबरिया मेरी

लेन खबरिया मेरी मातु जानकी । टेक ।
लंकहि दहन करन जब लागे
सीतल आग करी हुनमान की ।।**1**।।
रजनीचरी को मारन चाहे
वह आज्ञा न दयी हनुमान की ।।**2**।।
इन्द्र तनय का अघ नहीं मानी
दोनों चरण धरी भगवान की ।।**3**।।
ःदोहा ः

जन के हित बन के चले घोर लंक में आय।
विविध भाँति उपदेश दे धरती माँह समाय ।।

33। प्रभो हमसे अधम

प्रभो हमसे अधम को जो उवारो तो सुयश होगा । टेक ।
गिरा हूँ आ चरण में जो न तारो तो अयश होगा। ।**1**।।
महालक्ष्मी वचावेंगी चहौं जो कर्म भोगाने।
यही लेकर हरे अपने परस्पर में बहस होगा।।**2**।।
धरोगे पक्ष वेदों का धरेगी पक्ष ही गुण को।
अपाने पक्ष टुटन पै घरेलु वैमनस होगा।।**3**।।
अये प्रभु दीनबन्धु हो बताते सत्य साक्षी जो।
हमारे कष्ट से भी तो बचाना भी अवस होगा।।**4**।।
सुकोमल हृदय के कारण दया जब देख आवेगी।
इसी से घोर संकट से बचाने को विवस होगा।।**5**।।
सुगम से सुगम है मारग यही मन में विचारो जो।
मिटेगा द्वन्द ही सब जब अभय कर शिर परस होगा।।**6**।।

34। प्रभु दीनबन्धु दीन

प्रभु दीनबन्धु दीन हित ही कहायो स्वामी ।
कहो जग दीन मोरे सम कहाँ पाओगे।।**1**।।
अधम पतित प्रभु कोइ मोरे योग नाहीं।
तारोगे न नाथ तो सुयश कहाँ पाओगे।।**2**।।
आगे हुँ अजामिल ते गिद्ध गणिका ते बड़।
अघ लख केही मुहि नाते अपनाओगे।।**3**।।
नीचन के तारे से विरद बड़ तोर प्रभु।
मोरे हुँ उवारे अति कीरती कमाओगे।।**4**।।
तेरे एक आस औ भरोसा नहीं दूसरे को।
चरण धरे से कहो कैसे के हटाओगे।।**5**।।

35। प्रभो पापियों को

प्रभो पापियों को बनाते न आते
तो पावन सुयश तुम कभी भी न पाते।टेक
सभा मध्य में वह जो गाली सुनाया।
सो शिशुपाल को आप तन में मिलाया।।**1**
तथा ब्याध को भी विधाते के नाते।
तरी वह गणिका सदन और अजामिल।।**2**
किया घोर जो पाप सो काहु न माना।

बचा नर्क से एक नामो के नाते। ।**3**। ।
तुम्हें बक बकी कंस भी मारने का
किया था यतन तु मति सी तारने का। ।**4**
किये हो यतन एक बैरी के नाते।
गौतम त्रिया जो जो प्रिया पाप की थी।
वह पत्थर बनी आइ भू पर परी थी।
उसे तुम सुधारे मुनी को दिखाते। ।**5**। ।
दयालो सदा तुम दया वस में होकर
जटायु उवारे हो पापों के नाते।
हैं भक्त तुम्हारे इसी गुण को गाते। ।**6**। ।
यही चाल की एक आशा हमारी
न जायेंगे कभी भी किसी के दुवारी।
औ तुमसे तरेंगे ही चरणों में आते। ।**7**। ।

36। हे प्रभो नेक
हे प्रभो नेक मन में विचारो नहीं ।
पतित जन के लिये पतित पावन बने।
हौं कहो नाथ सो याद है या नहीं। ।**1**। ।
विप्र गौतम की घरनी अहिल्या रही।
पाप मयी जो परी सो तरी की नहीं।
क्या उसे कर्म से भी घिनाये कहीं। ।**2**। ।
बहुत आजन्म से पाप करती रही।
नीच नारी अधम जात में तन धरी।
ऐसी गणिकाहु तुम से तरी की नहीं। ।**3**। ।
जन्म से नित्य क्या क्या पचाता रहा।
नीचे से नीच तुर्का कहाता रहा।
आप ऐसे के निजपद दिये कि नहीं। ।**4**। ।
जैसे योगी मुनिन भक्त तरते गये।
भाव सेवन भजन नित्य करते गये।
तुरत जाकर मिला सोई सदना तहीं। ।**5**। ।
तिन अधम से अधम हम कभी कम नहीं।
नाथ वह नियम से आप टलते नहीं।
है भरोसा कि मैं भी तरेंगे सही। ।**6**। ।

37। दर्शन दिन्यों भगवान
दर्शन दिन्यों भगवान जन जान के।अपने अपना मान के हरि । टेक।

लक्ष्मी माता मोहि चितायो। यह कह भगवत को समुझायो।
प्रभु शरण में आया लेके प्राण के। ।**1**। ।
सन्मुख में करूणानिधि देखे । अपने दासन में करि लेखै।
दोनों चरणों बतावैं जन जान के । ।**2**। ।
माशुच कहते हैं सुरनायक । अब तुम हौ हमरे निज पायक।
रखिहौं करके मैं अपने विधान के । ।**3**। ।
चरणन देखत नयन जुड़ायो।मन के तीनों ताप मिटायो।
धर कर चरण हृदय में भगवान के। ।**4**। ।
जिनके दीन सदा मन भायो । ऐसे कह के वेद बतायो।
तैसे वचन है सबही पुराण के। ।**5**। ।

38। अपना दयालु प्रभु

अपना दयालु प्रभु के दरसन करबई कब वेंकट में जाके।
कैसे दोनों नयन जुड़ायब कब वेंकट में जाके । ।**1**। ।
अपने दयालु प्रभु के हृदये टिकायब कब वेंकट में जाके।
चरणहि मनवाँ लगाय कब वेंकट में जाके। ।**2**। ।
अपना दयालु प्रभु के मथवा नेवायब कब वेंकट में जाके।
यह दोनों अखियाँ बहायब कब वेंकट में जाके। ।**3**। ।
अपने दयालु प्रभु के भोगवा लगायब कब वेंकट में जाके।
सब नैवेदवा बनाय कब वेंकट में जाके। ।**4**। ।
अपना दयालु प्रभु के आरति उतारब कब वेंकट में जाके।
दोनों कर धर के घुमाय कब वेंकट में जाके। ।**5**। ।

39। अपने दयालु प्रभु

अपने दयालु प्रभु जी दरसन देतन कब वेंकट से आके ।
दिन हित करुण चिताय कब वेंकट से आके । ।**1**। ।
अपने दयालु प्रभु जी चरण धरवतन कब वेंकट से आके ।
बड़ बड़ हँथवा बढ़ाय कब वेंकट से आके । ।**2**। ।
अपने दयालु प्रभु जी संगहि लगवतन कब वेंकट से आके ।
सब विध अपन बनाय कब वेंकट से आके । ।**3**। ।
मोर मोर कहु प्रभु जी संग बइठवतन कब वेंकट से आके ।
शिर धर कर अपनाय कब वेंकट से आके । ।**4**। ।
परम दयालु प्रभु जी टुकहुँ विलोके कब वेंकट से आके ।
करुण नयन सितलाय कब वेंकट से आके । ।**5**। ।

40। श्रीनिवास मोरे प्रभु

श्रीनिवास मोरे प्रभु जी । नर तन देलन ये करुणावश होके ।
यह भूमि भारत बसाय ये करुणावश होके ।।**1**।।
अपने दयालु प्रभु जी कर धर लेलन ये करूणावश होके ।
निज जन संग में लगाय ये करुणावश होके ।।**2**।।
अपने दयालु प्रभु जी जोतिया दिखवथी ये करुणावश होके ।
घोर घन तिमिर हटाय ये करुणावश होके ।।**3**
अपने दयालु प्रभु जी कटलन बन्धनवाँ ये करुणावश होके ।
सब विध लेके अपनाय ये करुणावश होके ।।**4**।।
अपने दयावस होके चरण बतावैं जी करुणानिधि मोरे।
एही एक कह के उपाय ये करुणावश होके ।।।**5**।।

41। नित ही दयालु

नित ही दयालु प्रभु के टहल बजायेब कब वेंकट गिरि रह के।
साम और सवेरे दोनों साम कब वेंकट गिरि रह के।।**1**।।
श्रीनिवास श्रीनिवास रटन लगायेब कब वेंकट गिरि रह के।
नित नित आठो जाम कब वेंकट गिरि रह के।।**2**।।
दिन प्रति झारु ले के गलिया बहारब कब वेंकट गिरि रह के।
साम और सवेरे दोनो साम कब वेंकट गिरि रह के।।**3**।।
भोरे ही सनिधि जाके दरसन करबो कब वेंकट गिरि रह के।
साम और सवेरे दोनो साम कब वेंकट गिरि रह के।।**4**।।
तुलसी कुसुम लेके नित पहुँचायब कब वेंकट गिरि रह के।
तीरथ परसादी माँगी नित नित पायब कब वेंकट गिरि रह के।
साम और सवेरे दोनो साम कब वेंकट गिरि रह के।।**5**।।

42। अपने से नाथ

अपने से नाथ बनाना पड़ेगा।टेक
समय सुहावन सोई जब चाहो धमनी हमें धराना पड़ेगा।।**1**।।
तुमरी कृपा मिलन की आशा अतिवाहिक भेजवाना पड़ेगा।।**2**।।
माया कृत को दूर भगाकर सब विधि से अपनाना पड़ेगा।।**3**।।
नित्य मुक्त जन संग जहाँ प्रभु परिजन वहाँ बनाना पड़ेगा।।**4**।।
श्री भू नीला मिल जस सेवैं । तस सेवा हरि लेना पड़ेगा।।**5**।।

43। अय भगवन यह

अय भगवन यह कोइ न जाने कब कैसे अपनाये हो ।
गणिका सदन अजामिल ऐसे को वैकुण्ठ बसाये हो।।**1**।।
ऊधव औ गोपिन का रोदन एक हृदय नहीं लाये हो।

कौरन कंजर कोलन के घर जा जा कर अपनाये हो। ।**2**। ।
यवन कहा हा राम विवश हो तेहि निज धाम पठाये हो।
दशरथ राम करुण रट लायो सुर पुर माँह टिकाये हो। ।**3**। ।
दशरथ से परिचय नहि था क्या यवन कवन उपकारी हो।
दरसन दे सबरी को तार्यो मातन भले रुलाये हो। ।**4**। ।
मुनि गण सब तुम्हरे नहीं हैं तुम दीन वन्धु कहलाते हो।
ज्ञानीजन को ठुकराकर तुम अधमन धाम बुलाये हो। ।**5**। ।
खोज खोज गुंजा जंगल से माला गले बनाये हो।
अंजलि भर मुक्ता मणि गण से बैर बदल ले आये हो। ।**6**। ।

44। पहुनाई मनमाना प्रभु

पहुनाई मनमाना प्रभु जी पहुनाई । टेक ।
जंगलिन कोल किरात भील गण तिनके घर पहचाना प्रभु जी।
यह कछु बड़ी बात नहि तुम्हरे ऐसे कृपा निधाना। प्रभुजी पहुनाई मनमाना। ।**1**। ।
कन्द मूल फल विविध भाँति के दोन भरि भरि आना।
ते तुम खात सराहत बहुविध औ थोरो लै आना। प्रभुजी पहुनाई मनमाना। ।**2**। ।
पुनि पुनि कह मृदु वचन लखन संग सिय यह अमिय समाना।
कहाँ से लायो कहाँ होत है कैसे यह पहचाना। प्रभुजी पहुनाई मनमाना। ।**3**। ।
पाहुन हो दीन ही के सवन यह रहस्य कोउ जाना।
सो दीन पियारे तुम्हरे को दीनन के घर जाना। प्रभुजी पहुनाई मनमाना। ।**4**। ।

45। कवन जाने कैसे

कवन जाने कैसे रीझे गोपाल। टेक।
ज्ञानी ध्यानी को चाहत नाहीं काहे जोलहवा पर कइले खयाल। ।**1**। ।
ऋषि मुनि गण सब खोज के हारे सो कैसे मलहवा के मिलले कृपाल । ।**2**। ।
गोकुल छाड़ि द्वारिका भागे रोवत रोवत गोपी भइले वेहाल। ।**3**। ।
चारों पदारथ को नहीं चाहे तइयो सुदामा के कइले नेहाल। ।**4**। ।
पितुहि मरण सुनि जस दुःख पायो। जादे जटायु ला कइले मलाल। ।**5**। ।
वैदिक ब्राह्मण को नहीं खोज्यो । शवरी मइया कहके कइले गुदाल। ।**6**। ।
श्रीसाकेत अवधपुर छाड़यो।शवरी मड़इया में दशरथ के लाल। ।**7**। ।
श्रुति पुराण सन्तन जन गावैं। सबहीं दीनन प्रिय दीन के दयाल। ।**8**। ।

46। राम चरणों में

राम चरणों में जाके लगेंगे।
देह देहि के भार राम पद दै निर्द्वन्द रहेंगे। ।**1**। ।
दुर्जन संग से दूर भागकर एक अकेले रहेंगे। ।**2**। ।

कबहुँक मठ कबहुँ मन मठ में बैठे मौन रहेंगे। ।**3**। ।
कंठ में ठाकुर हाथ सुमिरनी संतन संग चलेंगे। ।**4**। ।
बोलूं तो संतन संग बोलूं ना तो मौन रहेंगे। ।**5**। ।
मा शुच पद के भाव हृदय धर मन में मगन रहेंगे। ।**6**। ।
सब विध सिद्ध उपाय हमारे अब का पच पच मरेंगे। ।**7**। ।

47। है बड़ी भगवत
है बड़ी भगवत जन की आशा।
इनके पद तीरथ के तीरथ कहत धर्म इतिहासा। ।**1**
इनके पद पावन के पावन करत फिरैं सब आसा। ।**2**
इनके पद सरोज के पीछे धावत रमा निवासा। ।**3**
इन पद की महिमाँ वह सबविध जानतु हैं दुर्वासा। ।**4**
व्रत जप तप कर योग यज्ञ बहु कोउ ज्ञान हि के प्यासा। ।**5**
दीन सदा हरि जन पद पनही केर करत इक आशा। ।**6**
हरि विमुखन गुरु विमुख लही गति यह अनेक इतिहासा। ।**7**
हरिजन विमुख लहि न काहु गति इन्हें सदा यम त्रासा। ।**8**

48। हमारे दीन जन
हमारे दीन जन पर कब कृपा करके चितावोगे।
अपने दिव्य चरणों में प्रभो अब कब लगावोगे। ।**1**। ।
सुना पावन विरद जब से लगी है आसरा तब से।
अपाने योग अपने से प्रभो अब कब बनावोगे। ।**2**। ।
सो पावन पाद कमलों को तू मछुओं से धुलाये हो।
प्रभु वह दिव्य को कब दो तु आकर के दिखावोगे। ।**3**। ।
अकिञ्चन दीन ही तुम्हरे सदा से प्यारे लगते हैं।
हमारे अस जगत में ही कहीं ढूंढे न पावोगे। ।**4**। ।
कहाते दीनबन्धु हो प्रणत जन पाल औ तैसे।
कहो यह नाथ अपने से सुयश कैसे नशावोगे। ।**5**। ।

49। अपने से नाथ बुलाना
अपने से नाथ बुलाना पड़ेगा।टेक
समय सुहावन सोई जब चाहो कर धर धमनी धराना पड़ेगा। ।**1**। ।
तुमरौ कृपा हि मिलन की आशा अतिवाहिक भेजवाना पड़ेगा। ।**2**। ।
माया कृत को दूर हटाकर सकल विधि से अपनाना पड़ेगा। ।**3**। ।
नित्य मुक्त जन संग जहाँ प्रभो परिजन तहवाँ बनाना पड़ेगा। ।**4**। ।
श्री भू नीला जेहि विधि सेवैं । सोई सेवा हरि लेना पड़ेगा। ।**5**। ।

50। यह दीन के लिए

यह दीन के लिए दिन भगवान लायेंगे।
हरि दीन बन्धु दीनहि तुरते बुलायेंगे।।**1**।।
वह भेजेंगे दूत को लिवाय जायेंगे।
करुणानिधान पास दीन को टिकायेंगे।।**2**।।
वह नित्य मुक्त गण से चितवन हटायेंगे।
सो हि दीन पर दयालु दृष्टिकोण लायेंगे।।**3**।।
वह परिषद में हमरी चरचा चलायेंगे।
कर प्रेम बार बार दीन को चितायेंगे।।**4**।।
धर सूँघ करके माथ अंक में लगायेंगे।
भगवत हीं सब विधि से अपना बनायेंगे।।**5**।।
अरु करुणामयी माता अति प्यार करेगी।
ले हाव भाव चाव से दुलार करेगी।।**6**।।
वह बार बार गोद ले संभार करेगी।
त्यों चुम्बन औ चितवन चुचुकार करेगी।।**7**।।
बाबू कहि लाला कहि के बुलायेंगी।
मोहि देखि बार बार ही विचार करेगी।।**8**।।
पाया हूँ बहुत काल पै स्वामी न मॉग लैं।
नहि दूँगि तो अपने से आप ले न लैं।।**9**।।
व्यामोह को सम्हार कर सुधार करेगी।
दे जीवन पद सेवन स्वीकार करेगी।।**10**।।
तहँ नित्य मुक्तगण सब उपचार करेंगे।
सब बाजन संग अस्तुति जैकार करेंगे।।**11**।।
अरु गुण गण सम्भोग से सम तुल्य करेंगे।
पुनि नव विध सम्बन्ध को चरितार्थ करेंगे।।**12**।।

51। अब हम जायेब

अब हम जायेब हो राम। टेक।
हरि हङ्कार तुरत अब आवत
सुन के बहुत अगरायेब हो राम ।।**1**।। अब हम जायेब हो राम
राम नाम के साथ कलेवा
प्रेम से पावत जायेब हो राम।।**2**।। अब हम जायेब हो राम
वेद बीज के रथ पर बैठव
मगन से हरि गुण गायेब हो राम।।**3**।। अब हम जायेब हो राम
बाबा लोक देन जब लगिहैं

तबहुँ कबहुँ न ठगायेब हो राम।।**4**।। अब हम जायेब हो राम
सातों घेर तुरत हम लांघव
वेदशीर्षहुँ नद देखव राम।।**5**।। अब हम जायेब हो राम
डुब डुब कर मल के हम धोअब
पुनि प्रभु माथ नवायेब राम ।।**6**।। अब हम जायेब हो राम
अतिशय ब्रह्म गन्ध हु सुन्दर
ब्रह्म प्रभा लख पायेब राम ।।**7**।। अब हम जायेब हो राम
साम गान के तान विविध विधि
सो सुन के सुख पायेव हो राम।।**8**।। अब हम जायेब हो राम
भेरी मृदंग काहलि के स्वर
पिहकारिन सहनाई के राम।।**9**।। अब हम जायेब हो राम
तिरमाली वीथिन के वाहर
भीतर चौका पुरायेत राम।।**10**।। अब हम जायेब हो राम
छत्र चौर उपचार अनेकों
कलस द्वार सजायत राम।।**11**।। अब हम जायेब हो राम
चोवा चन्दन इतर अर्गजा
दिव्य कुसुम वर्षायेत राम।।**12**।। अब हम जायेब हो राम
तहँ सब दिव्य सूरि गृह जाके
बहु विधि हम पुजायेब राम।।**13**।। अब हम जायेब हो राम
प्रभु से मिलन सुरस रस पाके
ब्रह्म हम हुँ तहँ बोलब राम।।**14**।। अब हम जायेब हो राम
दिव्य अनेक देह ताना विध
मन माना जहँ पायव राम।।**15**।। अब हम जायेब हो राम
सर्वकाल औ सर्वअवस्था
श्रीसंग हरि पद सेवब राम।।**16**।। अब हम जायेब हो राम

52। दया किन्ह भगवान

दया किन्ह भगवान सन्त मोहि मिललन ये।
तव सन्त किये उपदेश शरण हरि के भये ये।।**1**।।
दीन्ह ज्ञान भगवान हृदयतम भागल ये।
तव तन धन से मन भगवत के चरण लगाये।।**2**।।
अन्तर्यामी कृपा करि धमनी धरवतन ये।
हरि अर्चि के पथ वतलवतन उपर दिखवतन ये।।**3**।।
अतिवाहिक देव मिलि मोहि रथ बइठवतन ये।
तव दिन पक्ष मास वर्ष पति पूजन करवतन ये।।**4**।।
बात सूर्य विधु चपल वरुण इन्द्र विधि पुर ये।

पुनि जायेव बिरजा नहाएब तनहुँ विलायेब ये। ।**5**। ।
अतिमानव भगवान स्वरूप निज देतन ये।
तब दिव्य विमान चढ़ाई देव लै जयतन ये। ।**6**। ।
आरंग ताल नहायब गन्ध लगवाएब ये।
पुनि तिल तर भूषण वसन पहिर वनि जायेव ये। ।**7**। ।
लक्ष्मी सरोवर पहुँचव बहुरि नहायेब ये।
पुनि बहुविधि से बहुमानित हो चल जायेव ये। ।**8**। ।
नित्य सूरी तहँ मिलि सब हरि ध्वनि गवतन ये।
तब दिव्यलोक हम देखव शीश नवाएब ये। ।**9**। ।
पाँव पाँव हम दौड़व हावु हावु बोलव ये।
मन देखतहि भगवान हुँभर के बुलवयतन ये। ।**10**। ।
जातहि हम गिर जायेव हरि के चरण तर ये।
प्रभु चारिउ कर धर मोहि हृदय में लगवतन ये। ।**11**। ।
शिर पर कर धर पुछतन बबुआ तु कहाँ हल हो।
तब तनु कर जन्म मरण दुःख कह समुझायेव ये। ।**12**। ।
लक्ष्मी के गोद प्रभु देतन हम हँस बैठव ये।
मैया मुख चुम्बत चुचुकारत अधिक दुलारत ये। ।**13**। ।
हृदय के जलन बुतायेत शान्ति सुखद जल से।
अति मोद उछाह प्रवाह सुनेह निवाहन ये। ।**14**। ।
सेवन विधिहुँ बताई सेवा सब देतन ये।
तब नित नव नेह लगाइ सदा हम सेवव ये। ।**15**। ।
ब्रह्मानन्द अघा के परम रस पायेब ये।
श्रीलक्ष्मीनाथ के साथ सुमाथ झुकायेब ये। ।**16**। ।

53। शुभ मन्दिर कभी

शुभ मन्दिर कभी आसन सिंहासन बन रहेंगे ही।
सुछत्रक वाद्य वादक हो कभी नर्तक बनेंगे ही। ।**1**
व्यजन चाँवर पगन पनही विताने तन रहेंगे ही।
अहो मैं दिव्य चरणन पादुका बनके रहेंगे ही। ।**2**
स्तुति प्रार्थना करके चरण लै शिर धरेंगे ही।
सुसेवन के लिए अभ्यर्थना छन छन करेंगे ही। ।**3**
स्वरूपों रूप गुण गण को सदा गायन करेंगे ही।
सुपूजक हो सदा परिजन तहाँ वन के रहेंगे ही। ।**4**
मनहिं माना अनेको दिव्य तनु धर के रहेंगे ही।
तिनहु अम्ब के हरिसंग पगतर जा पड़ेंगे ही। ।**5**
कहीं वन बाग उपवन वाटिका सुन्दर बनेंगे ही।

अनेको पुष्प औ लतिका सुहावनि तन रहेंगे ही। ।**6**
मनभावन पखेरु मधुप रव सुन्दर करेंगे ही।
अतिशय तनु प्रभा सन्मुख अनेकों रवि छिपेंगे ही। ।**7**
सुस्वामी दीन बन्धुहीं सभी अनुभव करेंगे ही।
दयालु प्रभु दया करके वही अंगी करेंगे ही। ।**8**
सब विध सब प्रकारो से सुभोगादिक बनेंगे ही।
भगवत श्रीपति प्रभु जी सुभोक्ता बन रहेंगे ही। ।**9**

54। देवन किन्ह पुकार

देवन किन्ह पुकार जगत पति सुनलन ये।
ललना भक्तन बस भगवान कृपा प्रभु कएलन ये। ।**1**
कश्यप अदिति अवधपुर नरतन धएलन ये।
ललना तिनकर घर भगवान चतुर्भूज अएलन ये। ।**2**
शंख चक्र अरु कमल गदा लिये शोभत ये।
ललना देख रूप अनूप विनय तब कएलन ये। ।**3**
अदभुद रूप सुहावन अतिमन भावन ये।
ललना तबहुँ तजहु भगवान केउ न पतिअएतन ये। ।**4**
विनय सुनत भगवान बालरूप धएलन ये।
ललना कएलन तुरत केहँयें केहँये सब सुनलन ये। ।**5**
जहँ तहँ लोग लुगाई पूछे लरिका कवन भेल ये।
ललना कौशिल्या केकई सुत एक एक जमल सुमित्रा दोउ ये। ।**6**
सुनत अवध के लुगाई धाई के वधाई देत ये।
ललना भाग सराहत सब मिली सफल जनम भेल ये। ।**7**
सुन्दर होत उछाह अवधपुर घर घर ये।
ललना देवन चढ़ के विमान सुमन वरषावत ये। ।**8**
दान देत सनमान लोग सब विध सब ये।
ललना भए परि पूरन काम कहत सब जै जै ये। ।**9**

55। मनुजी बनाये एक

मनुजी बनाये एक नगर अवध जहाँ सरयू वहे।
जेहि लख नरन के बड़बड़ सब अघ दूर दहे। ।**1**
तहँ नृप दशरथ गृह प्रभु त्रिभुवन नाथ अवतरे।
श्रीनिवास शेष शंख चक्र संग दिव्य नरतन धरे। ।**2**
कौशिल्या सुअन भगवान भये आप सब भाई में बड़े।
कैकेई कुमार शंख दिव्य तनु सोई भये भरत भलें। ।**3**
लखन अहीश चक्र रिपुहन जमल सुमित्रा सुत ये।

वाजत वधाई घर घर सुरनर पुर अवध छये। ।**4**
आनन्द मँगन नरनारी सबलोग जहँ तहँ सुन ये।
समय विचारी गुरुदेवजी वशिष्ठ नाम करण किये ये। ।**5**

56। नृपति तव चार

नृपति तव चार लाला ये मुवारक हो मुवारक हो।
कौशिल्या कैकेई धन्य हैं सुमित्रा धन्य हैं जननी।
जनी ये चार लालन ये मुवारक हो मुवारक हो।। **1**
अयोध्या धन्य धामों में जनन सब धन्य जो बसते।
लखे यह चार लाला ये मुवारक हो मुवारक हो। ।**2**
वत्सर मास तिथि अरु लग्न दिन खेचर सभी धन्य सो।
जने यह चार लालन ये मुवारक हो मुवारक हो। ।**3**
धन्य इच्छवाकु नगर जो अराधे रंगवर प्रभु को।
सो आये चार तन धर के मुवारक हो मुवारक हो। ।**4**
दीनन के हो लिए प्रभुजी धरे हैं आप नरतन को।
तिन्हूँ यह चार लालन को मुवारक हो मुवारक हो। ।**5**

57। लालन को लेकर

लालन को लेकर कनीयाँ के कनीयाँ।
वाजन वाजत मंगल गावत मिली मिली । घर घर के जनियाँ के जनियाँ।**1**
दो श्यामल दो गौर मनोहर । शोभा अति भावनियाँ भावनियाँ।**2**
काजल दे दृग मुख चुम्बत जनी । नजर न लगावै कोई जोगनियाँ जोगिनियाँ।**3**
सुत सुख पाकर जगत भुलाकर । सकल ब्रह्म से रनियाँ रनियाँ।**4**

58। आज उछाह अवधपुर

आज उछाह अवधपुर ये मनरजना लाल। होत नेहाल ये मनरजना लाल।
चलु डगरिन धन्य भाग तुम्हरो राजा के भये सुत चार । ये मन...
लेहों नेग जोग मनमाना जो कुछ मन में तुम्हारे ये मन...
डगरिन सुनत महल में आयी आनन्द प्रेम अपार ये मन...
बोली प्रेम मगनमयी वाणी दो रानी नेग हमार ये मन...
नैहर के धन तोहरा से लैहों राजा से और अपार ये मन...
कोशलपुर कौशिल्या से लैहों सुन्दर सरयू के पार ये मन...
काश्मिर कैकेई से सरवस यही है अरज हमार ये मन...
खोंइछा की भूमि सुमित्रा से लैहों गया के देश विहार ये मन...
जाति के चमइन वसूं अयोध्या परसो के सेवा हमार ये मन...

59। चलु चलु चलु

चलु चलु चलु सब दइया, राजाघर बधइया, भये।
चार भइया, के लेके बलइया, कहब मिली जै जै जै।।**1**
राजाजी बैठे दुआरी, जुरे नर नारी, करै नेगचारी,
सकल बार बारी, कहत सब जै जै जै।
गोद में लेके ललनवाँ, भये हैं मगनवाँ, न जाने
भवनवाँ, भुलाये अगनवाँ, कहत मिली जै जै जै।
राजा जी खोले खजाना, मिलत मनमानाऽ न कोई
बिराना, सबे है अपाना, कहत मिली जै जै जै ।
सकल अवध नर नारी, चहत अवगारी, महा भीड़
भारी, राजा के दुआरी, बोलत मिली जै जै जै ।

60। मा शुच पद

मा शुच पद जेही जान लिया तेही शोचब का
भगवत भयउ उपाय भला तब शोचब का।।**1**।।
मंत्र युगल माला युग जाके, युगल भावना मन वस ताके
युगल चरण के ध्यान धरे, तेहि शोचब का।।**2**।।
उर्ध्वपुण्ड्र जाके शिर शोभत, तेहि लखि के भगवत मनमोहत
आये चतुर्भुज हृदय बसे, तेहि शोचब का।।**3**।।
मन्त्र रत्न जेहि जपत निरन्तर, तेहि भगवान से नहीं कुछ अन्तर
यह श्रुति सन्त पुराण कहै, तब सोचब का।।**4**।।
लक्ष्मी माता के दृष्टि तल होकर के, ना भुलव कबहु पल भरके
भये भगवान के प्रेम विषय तब सोचब का।।**5**।।

61। त्रिपाद विभूति कैसी है

भोग अर्थ वह परम व्योम लीलार्थ अखिल जग की रचना।
लीला भोग विभूति उभय सो, सुन्दर सब श्रुति की वचना।।**1**
भोग नित्य लीला अनित्य, हरि शक्तिमान धारक इसके।
तीन चरण में उर्ध्वव्योम यह, एक चरण में सब प्रभुके।।**2**
युग विभूति के बीच सीमा विरजा कहिके जेहि श्रति गावैं।
सदा रहत वेदान्त स्वेद जल मुक्त जननको अन्हवावैं।।**3**
यथा सर्वगत विष्णु सदा तैसी लक्ष्मी माता रहती।
नारायणी जगन्माता यह लोक सदा धारण करती।।**4**
जस भूदेवी पृथ्वी बनती तस नीला लीला करती है।
श्रीदेवी प्रभु के दाहिने दिशि वक्षस्थल में नित बसती है।।**5**
इन्दीवर सम श्याममनोहर कोटि रविहुँ छिपते जिससे।
अति कोमल कुमार सुन्दर वपु ब्रह्मतेज छिटके जिससे।।**6**

फुल्ल रक्त अम्बुज सम सुन्दर अंघ्रि सरोज सुहावन है।
उनमें रेख कमलध्वज अंकुश छत्रक जन मनभावन है।।**7**।।
मत्सी यव अमृत घट स्वस्तिक भक्तन हृदय चुरावन है।
नयनन दो प्रबुद्ध पंकज सम भूलतिका मनभावन है।।**8**
नाशा शुक कपोल सुन्दर सस्मित मुख कंज सुहावन है।
मुक्ताफल सम दन्तपंक्ति अरु विद्रुम अधर लजावन है।।**9**
तरूण दिवाकर समकुण्डल युग कबरी कच मनभावन सी।
महावक्ष माला राजत अरु कौस्तुभ रविहुँ लजावन सी।।**10**
नाभि जलज विधि जन्मभूमि गो लख मुनिजनमन मोहत है।
बालातप निभ पीत वस्त्रों सो अति सुन्दर तन सोहत है।।**11**
दोउ चरण में कटक सुहावन नाना रत्न जड़े सब हैं।
नख पंक्तिन प्रकाश अति सुन्दर हिमकर कोटि छिपे सब हैं।।**12**
अति शीतल जन हृदय शीत करने को ध्यान लगावत हैं।
भक्त हृदय के अंध तिमिरको निमिष में दूर भगावत है।।**13**
दोउ कर शंख चक्र धारण कर मुद्रा अभय बतावत हैं।
सोलख चरणाश्रित विरोधि को चिन्ता सतत हटावत हैं।।**14**
औरो दोउ कर गदा पद्म धर दिव्य स्वरूप बने रहते।
उर्ध्वलोक में नित्यमुक्त को भोक्ता भोग्य बने रहते।।**15**

प्रथम परिक्रमा

पूर्व दिशा में वासुदेव श्रीरमा हुतासन दिशि शोभे।
श्रीसंकर्षण दक्षिण दिशि औ सारस्वती अस्त्रप शोभे।।**16**
पश्चिम में प्द्युम्न विराजत वायुदिशा रति ही गाजै।
श्रीअनिरूद्ध उत्तरदिशि भ्राजैं ईश दिशहुँ शान्ति राजै।।**17**

दूसरी परिक्रमा

लक्ष्मीसह केशव विष्णु श्री श्रीधर दिशि पूर्व विराजत हैं।
दक्षिण नारायण मधुसूदन हृषिकेश तह भ्राजत हैं।।**18**
माधव और त्रिविक्रम पश्चिम पद्मनाभ अति शोभ रहे।
श्रीगोविन्द तहाँ दामोदर वामन उत्तर लोभ रहे।।**19**
भिन्न भिन्न सुन्दर तनु धरकर निज देविन सह रहते हैं।
दिव्यलोक में दिव्यमुक्तन घर सब दिन सब बसते हैं।।**20**
शक्ति विमला पूर्व दिशा में उत्कर्षिणी अगिन दिशि में।
ज्ञाता याम्यदिशा नैऋत में क्रिया सुहावनि संमुख में।।**21**
योग पश्चिम में वायु दिशि प्रह्वो भली विराज रहे।
सत्या उत्तर दिशि ईशान में ईशाता निज भ्राज रहे।।**22**

तीसरी परिक्रमा

मत्सादिक अवतार सकल जेही वैभव कह श्रुति गावत है।

सो भगवान दिव्य वपु से तीसर में व्यूह बनावत हैं। ।**23**

चौथी परिक्रमा

सत्यायुत अनन्त दुर्गा सेनप गजमुख तहँ भ्राजत हैं।
शंख चक्रनिधि पद्मलोक चौथे में साथ विराजत है। ।**24**

पांचवीं परिक्रमा

ऋक्‌यजु साम अथर्व चारदिशि सावित्री संग सोहत हैं।
तन धरके विहगेंश धर्म तहँ पञ्चम मण्डल शोभत हैं। ।**25**

छठी परिक्रमा

शंख चक्र धनु हल मूशल अरू पद्म गदा असि सब जो हैं।
सुन्दर दिव्य सुतमधुर करसो छट्ठें व्यूह बने सो हैं। ।**26**

सातवीं परिक्रमा

इन्द्र हुतासन समनक नैऋत नीर पवन विधु जो जो हैं।
सप्तम में सकल दिशाधिप दिव्य रूपधर सो सो हैं। ।**27**

द्वारपाल

चण्ड प्रचण्ड पूर्वक पालक भद्र सुभद्र दक्षिण भरते ।
पश्चिम में जय विजय दिव्यतनु भातृविधातृ उत्तर रहते। ।**28**

दिक्पाल

प्राची कुमुद अनल कुमुदाक्षहुँ पुण्डरीक यमदिशि बसते।
श्रीवामन नैर्ऋत्य दिशाके शंकु कर्ण वारूण रहते। ।**29**
वाम दिशा में सर्व नेत्र उत्तर दिशि सुमुख विराजतु हैं।
सुप्रनिषित ईशान में रहकर शोभा अधिक बढ़ावतु हैं। ।**30**

भगवत्प्राप्ति के साधन

ताप पुण्ड्र जप मन्त्र परिग्रह अर्चन ध्यान सदा करना।
पद सेवन वन्दन कीर्तन व्रत अरु तुलसी रोपन करना। ।**31**
नामरटन गुण श्रवण दिवस निशि वैष्णव की सेवा करना।
तीर्थप्रसाद सदा सेवन यह षोड़श भक्ति नहीं तजना। ।**32**

62। श्रीनिवास भगवान की भली आरती

श्रीनिवास भगवान की भली आरती कीजै।टेक
जनहित निज पद छोड़के प्रभु भूतल आये।
ऐसे कृपा निधान की भली आरती कीजै। ।**1**। ।
दिव्य रूप विसराय के अर्चा बनि आये।
ऐसे दीन दयाल की भली आरती कीजै। ।**2**। ।
दूषण भूषण मान के जनको अपनाये।
ऐसे परम सुजान की भली आरती कीजै। ।**3**। ।
नित्य सूरी गण भूल के दीनन मन भाये।

ऐसे श्रीभगवान की भली आरती कीजै। ।**4**। ।
दीन दीन को बीन के सबहिं बुलवाये।
हरि भक्तन जन प्राण के मिलि आरती कीजै। ।**5**। ।

63। श्री लक्ष्मी जी (गोदा जी) की आरती ।परिशिष्ट से।
श्रीगोदा जगदम्ब की भली आरती कीजिए। टेक
यह करुणामयी मातु की भली आरती कीजिए।**1**।श्री गोदा.
हरिवक्षस पंकज वन त्यागी दीन हीन आरत हित लागी।
दयामयी जगदम्ब की भली आरती कीजिए।**2**। श्री गोदा.
जन दुःख सुनि भगवत्ही सुनावे अपराधी को क्षमा करावे।
यह लग हरि के संग में शुभ आरती कीजिए।**3**। श्री गोदा.
हम सब जन से सेवा लेवै श्रीहरि चरणन के नित सेवै।
सदा रंग के संग में शुभ आरती कीजिए।**4**। श्री गोदा.
दीनन लग कहुं समय न देखी करती सदा अति कृपा विशेषी।
जन समुझै सत्संग से शुभ आरती कीजिए।**5**। श्री गोदा.

अर्चा गुणगान संपूर्णम्

श्रीमते रामानुजाय नमः

तरेत स्थानाधीश अनन्त श्री -

स्वामी राजेन्द्र सूरिजी

महाराज की

संक्षिप्त जीवनी

(प्रथम खण्ड)



रचयिता
श्री स्वामी परांकुशाचार्य
सरौती स्थानाधीश
।

संवत् **2017** वि

प्रकाशक ः -
श्रीराम संस्कृत विद्यालय सरौती
पो0 रामपुर चौरम (गया)

श्रद्धालु पाठकों से ः-

प्रस्तुत पुस्तिका स्वामी जी महाराज के संक्षिप्त जीवन चरित्र का प्रथम खंड है। इसके बाद क्रमशः निम्नांकित खण्ड प्रकाशित होंगे ः -

द्वितीय खण्ड ‘स्त्री और मन्त्र’
तृतीय खण्ड ‘राम रहस्य'
चतुर्थ खण्ड 'स्वर्गारोहण - महाप्रयाण'

विनीत ः -
प्रकाशक

यह प्रथम भाग विभिन्न अध्यायों में बँटी है जिसकेशीर्षक हैं ः

श्रीमतेरामानुजाय नमः

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।गी 4।7-8

इस लीला विभूति में जब जब धर्म का नाश होने लगता एवं पाप की वृद्धि होने लगती तब तब मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान नारायण सत्पुरुषों की रक्षा तथा दुष्टों के संहार द्वारा सृष्टि- लीला को सुव्यवस्थित रखने के लिए युग युग में अवतार लेते हैं। भगवान के अवतार का यही प्रधान हेतु है। अवतार- स्थल श्री अयोध्या जिसको "साकेत" और मथुरा जिसको "गोलोक" कहते हैं विख्यात ही है। इसी प्रकार दक्षिण भारत के भी कुछ दिव्य स्थल भगवान के दिव्य पार्षदों का अवतार स्थल प्रसिद्ध हैः

ताम्रपर्णी नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी।
कावेरी महापुण्या प्रतीची च महानदी।
ये पिबन्ति जलं तासां मनुजा मनुजेश्वर।
प्रायो भक्ता भगवती वासुदेवेऽमलाशयाः।।भा 11।5।39-40

दक्षिण भारत की ताम्रपर्णी, कृतमाला, पयस्विनी, परम पवित्र कावेरी, महानदी और प्रतीची नामक नदियों के समीप प्रायः भगवान के दिव्य पार्षद ही अवतार लेते हैं। इन नदियों का जल पीने से अन्तःकरण शुद्ध होजाने के कारण मनुष्य भगवद्भक्त हो जाता है। भगवान के दिव्यपार्षदों के अवतार में भी वही हेतु है जो भगवान के अवतार हेतु हैं।

"त्वं मे, अहं मे, कुतस्तत्" ।श्रीरंगनाथ तिरूमंजन कट्टियम -श्लोक 25। पराशर भट्टर

ईश्वर जीव से कहते हैं कि तुम मेरा हो किन्तु जीव अनादि-कर्म-वासना-लिप्त होने से अहंकार ममकार वस संसार चक्र में घूमते हुए रहने पर भी ईश्वर से यही कहता है कि -

"अहं ब्रह्मास्मि", "ईश्वरोऽहं अहं भोगी" मैं आपका नहीं हूँ बल्कि मैं भी ब्रह्म ही हूँ। इस प्रकार का जीव का उत्तर सुनकर भगवान मूक हो विशेष चिन्ता करने लगते कि ये सभी पापात्मा हैं इसीलिए मेरी शिक्षा नहीं मानते, तो इन सबों का उद्धार कैसे होगा ? इत्यादि। इस अवस्था में भगवान के दिव्य पार्षद श्रीशेष जी इनकी चिन्तित मुद्रा देखकर भगवान से पूछते हैं कि भगवान! आप चिन्तित क्यों है ? और उपर्युक्त कारण जानकर श्री शेष जी भगवान से प्रार्थना पूर्वक कहते हैं कि यदि दास को आज्ञा हो तो मैं पापियों को सुधारकर आपके चरण कमलों में लगाऊँ, किन्तु हमपर इतनी विशेष कृपा हो कि मैं जिन सबों को आपकी शरण में भेजूँ उनसबों के शुभाशुभ कर्मो के ऊपर ध्यान न देकर अपनी शरण में अवश्य रखें। यह सुन भगवान अति प्रसन्न हो कहते हैं कि 'विभूति द्वय नायक' आप दोनों विभूतियों (लीला विभूति और त्रिपाद विभूति अर्थात्वैकुण्ठ)के नायक बनाये गये। आप जो करेंगे हमें मान्य होगा। अतः स्वकथनानुकूल वही श्रीशेष जी जीवों के कल्याणार्थ दक्षिण भारत के मद्रास प्रान्तीय भूतपुरी ग्राम में अवतरित हो स्वामी श्री रामानुजाचार्य नाम से विख्यात हुए। इन्हीं के सम्बन्ध में यह है कि -

प्रथमोऽनन्तरूपश्च द्वितीयो लक्ष्मणस्तथा।
तृतीयो बलरामश्च कलौ रामानुजो मुनिः।।

अर्थात् श्रीशेष जी प्रथम अनन्तरूप से हैं। द्वितीय लक्ष्मण रूप से श्रीराम जी के साथ। तृतीय बलराम रूप से श्रीकृष्ण जी के साथ और चतुर्थ कलि में श्री रामानुज रूप से जनकल्याणार्थ अवतीर्ण होते हैं। और इनके सम्बन्धियों के सम्बन्ध में यह विख्यात है कि

"रामानुज प्रपन्नाय रक्षां दीक्षां करोम्यहम्।"
"मोक्षयिष्यामि मा शुचः।"
"करौ वक्षसि निक्षिप्य निद्रां कुर्वन्तु निर्भयाम्।"

भगवान कहते हैं कि रामानुज प्रपन्नों के लिए मैनें रक्षा बन्धन पूर्वक प्रतिज्ञा की है कि संसार से मुक्त कर दूँगा। शोक करने की आवश्यकता नहीं है; निश्चिन्त होकर सुख की नीन्द सोओ। कहा भी है - "आचार्यवान्पुरुषो वेद।"आचार्यवान पुरुष ही

(श्रीरामानुज प्रपन्न) भगवान को जान सकता है। आचार्य पद श्रीरामानुजाचार्य में ही रूढ़ है।

"देवतायाः गुरोश्चापि मन्त्रस्यापि प्रकीर्तनात्।
ऐहिकाष्मुष्मिकी सिद्धि द्विजस्यास्ते न संशयः।।
"यस्माद्देवो जगन्नाथः कृत्वा मर्त्य मयीं तनुम्।
मग्नामुद्धरते लोकान्करुणया शस्त्र पाणिना।।

देवता अर्थात् श्रीमन्नारायण, गुरु और मन्त्र कीर्तन द्वारा ब्राह्मण सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त कर लेता है। श्रीमन्नारायण ही मानव रूप से अवतीर्ण हो आचार्य बनकर अपनी करुणा से संसारियों का उद्धार करते हैं।

मन्त्रनाथं गुरुं मन्त्रं समत्वेनाभिपूजयेत्।"
"चक्षुर्गम्यं गुरुं त्यक्त्वा घनस्थमपि वांछति।।
सुलभन्तु गुरुं त्यक्त्वा दुर्लभं य उपासते।
वद्धं त्यक्त्वा धनं मूढ़ो गुप्तमन्वेषते क्षितौ।।

जो प्रत्यक्ष ज्ञानी गुरु को छोड़कर शास्त्रागम्य विषय के अनुसन्धान में रत रहता है वह करस्थ जल को छोड़कर मेघस्थ जल के लिये प्रयास करने जैसी मूर्खता करता है। सुलभ गुरु को छोड़कर दुर्लभ गुरु के लिए इच्छा करना वैसा ही है जैसा कि गठरी का धन छोड़कर पृथिवी में गड़ा धन खोजता है।

श्रीशेष जी रामानुजावतार के पश्चात् पाचवीं बार स्वामी श्री वरवर मुनि के रूप में अवतीर्ण हुए और जब इससे भी कार्य पूरा नहीं हुआ तो फिर भी वही श्री स्वामी राजेन्द्र सूरि जी महाराज (परमहंस स्वामी)के रूप में अवतीर्ण हुए। इस अवतार से औरों के साथ साथ विशेषतः मगध वासियों का ही कल्याण हुआ। भगवान् तथा उनके दिव्य पार्षदों के अवतार स्थलों के तुल्य ही स्वामी श्री राजेन्द्र सूरि जी का भी अवतार स्थल अति पवित्र एवं मुक्तिदायक है।

स्वामी श्री राजेन्द्र सूरि जी का परिचय

"जगाम नैमिषं यत्र ऋषयः सत्रमासते।"

भारतवर्ष का नैमिषारण्य क्षेत्र ऋषियों का यज्ञ स्थल है।

"यं धर्म कर्मठ महर्षि जनस्य भव्यम्, व्याजृम्भणाय विवुधारि निरासदीक्षम्।
चक्रं हरेर्भगवतो दिशतिस्म देशम्, तेनैव नैमिष यशः पदमश्रुवानाम्।।"

यों तो सम्पूर्ण भारतवर्ष कर्मक्षेत्र है ही इसमें भी कर्मकाण्ड के लिए नैमिषारण्य क्षेत्र प्रधान है जो अस्त्रराज श्रीसुदर्शन जी के द्वारा निर्दिष्ट हुआ है। वहां आज भी चक्रतीर्थ वर्तमान है। इसी क्षेत्र में अट्ठासी हजार बालखिल्यादिकों का जन्म हुआ था। यहीं पर इन सबों की तपस्या सूत-शौनक-ज्ञान-यज्ञ-प्रसंग, मनु-शतरूपा की पुत्रार्थ तपस्या, तीर्थ यात्रा प्रसंग में श्री वलदेव जी का जाना इत्यादि उस क्षेत्र की पवित्रता का विशेष प्रमाण है।

गव्यूति पंचकयुगं दिशि पावमान्याम् मित्रावलीति किल संवस्थोऽस्ति तस्मात्।
तत्रस्म संवसति विप्रकुलं च भारद्वाजान्वयं जगति मित्रपदास्पदञ्च।।

नैमिषारण्य के चक्रतीर्थ से वायुकोण में बारह कोस की दूरी पर एक मित्र की मितौली नामक ग्राम है। उसी ग्राम के निवासी श्री अयोध्या मिश्र नामक एक कान्य कुब्ज ब्राह्मण थे जिनके पुत्र रूप में श्री स्वामी राजेन्द्र सूरि जी अवतीर्ण हुए जैसे कश्यप के पुत्र रूप में भगवान विष्णु का वामनावतार हुआ था। स्पष्ट है कि कलि में शेष जी के प्रथम अवतार रामानुज स्वामी, द्वितीय श्री वरवर मुनि, तृतीय श्री रंगदेशिका चार्य और चतुर्थ श्री स्वामी राजेन्द्र सूरि के रूप में सं०वि० **1909** (रामानुज सं० **835**) में प्रभव नामक संवत्सर के फाल्गुन कृष्ण द्वादशी मघा नक्षत्र में अवतीर्ण हुए।

फाल्गुनस्यासिते पक्षे मघायां द्वादशीतिथौ। श्री मद्रंगार्य सद्भक्तं राजेन्द्रार्यमहं भजे।।

तुलसी में छोटी अवस्था से ही जैसे पवित्र गंधादि उसके सभी गुण विद्यमान रहते हैं इसी प्रकार इनमें वाल्यावस्था से ही जड़भरत, ध्रुव, प्रह्लाद, शुक, वामदेवादिकों की तरह लोक-विलक्षण प्रकृति आचरणादि विद्यमान थे। बाल्यकाल से ही अध्ययनरत रहने के कारण कुछ ही समय में संस्कृत व्याकरण न्याय वेदान्तादि शास्त्रों में पारंगत हो गये थे। संगीत प्रेमी होने के कारण इसमें भी निपुण गे गये थे। स्मृतियों में भगवान की तुष्टि के लिए गान प्रशंसा की गयी है -

स्तोत्र पाठैश्च सन्तोष्य शक्तश्चेद्गानविद्यया। स्वरयोगेन देवेशं तोषयेद्भक्तिवृद्धये।।
पंचकालक्रमपरागानविद्याविशारदाः। शुद्धाचाराः महात्मानः पूज्या भागवतास्स्वयम्।।
सुस्निग्धकंठतालज्ञास्स्वराचारादि वेदिनः। मागधाभिनयाः पूज्या अनिन्द्या भगवानिह।।
भक्त्या पुलकितस्वांगआनन्दाश्रुपरिप्लुतः। गद्गद्स्वरयोगश्च यथाहि स्यात्तथाचरेत्।।
अतिवेलायदिभवेत्भक्तिसंकीर्तनादिभिः। तदानो परमेत्तस्माद्यत्र या क्रियते मुदा।।
गानविद्या समर्थस्सन्गानेन पुरुषोत्तमम्। तोषयेत्तु यथा कालं मनस्थसन्निधौ हरेः।।

गान विद्या में समर्थ भगवद्भक्त भक्ति वृद्धि के लिए निरन्तर गान करते आये हैं इससे भगवान की प्रसन्नता होती है। श्री स्वामी जी महाराज गान प्रेमी होने के साथ साथ गान के विशेष मर्मज्ञ भी थे। गान सीखने वालों को आप संस्कृत तथा हिन्दी गान के मर्म निम्न रूप से बताया करते थे -

यथाकुटुम्विनः सर्वे एकी भूतावसन्ति हि। तथास्वाराणां सन्दोहो ग्रामेत्युच्यते बुधैः।।

प्रत्येक ग्रामों में सातो स्वरों के साथ पाँच पाँच कोमल स्वर भी लगते हैं। इस प्रकार सबमिलकर (15 कोमल और 21 कड़े स्वर) अर्थात् कुल 36 स्वर हुए। उपर्युक्त सभी स्वरों को भेदन कर सभी स्थानों से केवल एक अकार ही निकलता है। इसी से अकार को शव्द व्रह्म कहते हैं। सातो स्वरों में प्रत्येक में सात सात मूर्च्छना होने से 49 मूर्च्छनाएँ होती हैं - सप्त सप्तैक मूर्च्छना। सातो स्वरों के सात नाम हैं - 1। षड्ज, 2। ऋषभ, 3। गांधार,4। मध्यम, 5। पञ्चम, 6। धैवत, एवं 7। निषाद। पुराकाल में ऋषियों ने वन्य जन्तुओं की वोलियों से ही सात स्वरों का अनुसन्धान किया था। यथा -

षड़ज वेदे शिखण्डीस्या ऋषभस्तु अजा मुखे। गावः रंभन्ति गान्धारं क्रौंञ्चचैवाति मध्यमम्।।
कोकिलः पंचमोज्ञेयो निषादन्तु वदेङ्गजः। अश्वस्तु धैवते ज्ञेयः स्वरसप्तविधीयते।।

मोर षड़ज का, वकरा ऋषभ का, गौ गान्धार का, क्रौंञ्च मध्यम का, कोयल पंचम का, घोड़ा धैवत का, और हाथी निषाद स्वर का ठीक ठीक उच्चारण करता है।

जैसे सभी प्रकार के गानों में सात ही स्वर प्रधान हैं उसी तरह सबों में सात ही ताल प्रमुख हैं। सभी मिलकर अनेक ताल (वाद्य में) हो जाते हैं।

ध्रुवमठ्यौ रूपकश्च झंपा त्रिवटमेव च। अड़तालैक तालैश्च सप्तालाः विधीयते।।

सभी ताल मात्राधीन हैं - "चाषो वदत्येकं मात्रं द्विमात्रं वायसो वदेत्। त्रिमात्रं शिखिनश्चैव नकुलश्चार्धमात्रकम्।।"

नीलकंठ की वोली एक मात्रा की, कौवे की बोली दो मात्रा की, मोर की बोली तीन मात्रा की और नकुल की बोली आधी मात्रा की है। मात्रा से उच्चारण काल समझना चाहिए। इसी को ह्रस्व दीर्घ और प्लुत कहा करते हैं। किसी एक ग्राम तथा स्वर में गाना और वाद्य के मेल को लय (अर्थात् लीन हो जाना) या रास्ता कहते हैं। श्रवण करने वालों को यही प्रिय होता है। लय का दो प्रधान भेद है। एक देशी जो सभी देशों का पृथक पृथक होता है। इसलिये गान में इसका कोई नियम नहीं है। दूसरा मार्गी है, इसका नियम वन्धन का प्रमाण सर्वत्र मिलता है। सर्व व्यापक संस्कृत बोली या शव्द के समान यह सर्वत्र एक ही है। इसे ही शास्त्रीय संगीत भी कहते हैं। इसी मार्गी विधान से लव और कुश श्री रामायण गाया करते थे। गान में व्यञ्जन अर्द्धमात्रा भी प्लुत हो जाता है। यह व्याकरण सम्मत सिद्धान्त है। ताल स्वरों का भेद सूत्ररूप में पद्यों में -

कहवाँ सिखे हो लाल जी वंशी बजावना। कर ललित ललित स्वर से सुन्दर सुहावना।।
स्वर मोर के षड़ज में ले चार मूर्च्छना। औ ऋषभ स्वर अजा के ले तीन मूर्च्छना।।1

गान्धार को गौओं से दो, दो करके मूर्च्छना। चकवा समान मध्यम में चार मूर्च्छना।।2
कोकिल से मीठ पंचम और चार मूर्च्छना। घोड़े के स्वर में धैवत के तीन मूर्च्छना।।3
सप्तम निषाद गज के स्वर दो ही मूर्च्छना। अनुदात्त औ उदात्त स्वरित ग्राम जानना।।4
स्वर सात के बदल कर सब राग जानना। तैसे ही सात ताल से सब ताल मानना।।5
मात्रा अधीन ताल स्वर सब को भी गिनना। पर बोलता नीलकंठ ही एक मात्र सुनना।।6

देशी गान में राग रागनियों के नियम नहीं है। मार्गी गान में रागों का विधान है। एक प्रहर रात शेष से भैरव राग गाने को कहा है, सूर्योदय से मालकोश, एक प्रहर दिन शेष से हिंडोल, मध्याह्न में दीपक और सन्ध्या में श्रीराग का विधान पाया जाताहै। एक और छठाँ मेघ राग है जिसको मेघ या वर्षा के समय गाने को कहा है। इन सभी रागों के छः छः रागनियाँ हैं। प्राचीन बाजा मृदंग (पखावज), तन्त्री, तानपूरा आदि हैं। हारमोनियम आदि आधुनिक वाद्य - यन्त्र हैं। गान विद्या भगवान् को अतीव प्रियहै। नारदादि भक्तगण वीणा बजाकर गाया करते थे। इनकी वीणा का नाम शास्त्रों में कच्छपी पाया जाता है - "कच्छपी नारदस्य स्यात्।" श्री शुकदेव जी से परीक्षित कथा सुनते थे। उस समय होने वाले कीर्तन के सम्बन्ध में यह लिखा है -

प्रह्लादस्तालधारी तरलगतितया चोद्धवः कांसधारी। वीणाधारी सुरर्षिः स्वरकुशलतया रागकर्ताऽर्जुनोऽभूत्।
इन्द्रोऽवादीनमृदंगं जयजयसुकराः कीर्तने ते कुमराः। यत्राग्रे भाववक्ता सरसरचनया व्यासपुत्रो वभूव।।

इस कीर्तन को प्रत्यक्ष होकर भगवान सुनते थे। इस कीर्तन मण्डली में किन किन रागों में किन किन स्वरों को किस स्थल में कैसे प्रयोग करना चाहिए इसके ज्ञाता अर्जुन आगे गाने वाले थे। इन्द्र मृदंग, प्रह्लाद शीघ्र गति से करताल, उद्धव मञ्जीरा , सुरर्षि नारद जी वीणा बजाने वाले तथा सनकादि कुमार जय जय कार करने वाले और सरस रचना द्वारा भाव बताने वाले श्री शुकदेव जी थे। रस में मतभेद है। कोई नव और कोई दस मानते हैं।

रौद्राद्भुत्श्रृङ्गारो हास्यवीरो दयास्तथा। भयानकश्च वीभत्साः शान्तः प्रेमभक्तिकः।।

1-रौद्र (कठोर), **2**-विभत्स (घृणित), **3**-श्रृङ्गार (सुन्दर), **4**-हास्य (प्रहसन), **6**-दया (करुणा), **7**-भयानक (भयोत्पादक), **8**-अद्भुत (आश्चर्यकारक), **9**-शान्त (स्थिर), **10**-प्रेमभक्ति (प्रेमाभक्ति)। इन्हीं दस रसों में सभी गान गाये जाते हैं। लोगों को छन्दों का बोल सिखाया जाता था।

हरि गीतिका - इसका बोल - धीन धीन धीनन। कधिट धिट धा कतिट तिटता- इसे साधारण ठेका जानना चाहिए।

सात मात्रा की आवृत्ति में (त्योरा में)

न च त सु ढं ग ये ये ये, ये ये ये ये। उदाहरण- मैं हरि पतित पावन सुन्यो

भुजंग प्रयात - इसका बोल - नाधिं धिना नाधिं धिना नाधिं धिना ताधिंता ताधिंता ताधिंता ता तिरकिट तक।

16 मात्रा तीन ताल (दादरा में)। उदाहरण - "भजे भाष्यकारं भजे लक्ष्मणार्यम0।" "प्रभो पापियों को बचाते न आते।"

स्वागताछन्द - बोल - धिधिन धिनक धिन (ठुमरी लयदारी में), उदाहरण - "कोमलांगुलिभिराश्रित मार्गम्0।" "सिय के समाज सुहाग सुन्दरी, आये रघुवर जनक के नगरी।"

नगस्वरूपिणी (परज में) - "प्रपन्न लोक कैरवं प्रसन्न चारु चन्द्रिका, शठारि हस्त मुद्रिका हठात्धुनोतु मे तमः।"
"हमें समान दीन पै सुदृष्टि से निहार के दयालु ही सदा कृपा करेगी मातु जानकी।"

अनुष्टुप - बोल - ताधींता ताधींता ताधींता तिरकिट तक। उदाहरण - "हे जिह्वे रस सारज्ञे" **16** मात्रा।

मालिनी - तीन ताल - उदाहरण- "अपगत मदमानैः।"

शशि वदना - तीन ताल - उदाहरण- "भजयति राजं भजयति राजम्।"

उपेन्द्र बज्रा - झंप सिन्दूरा - उदाहरण - "अहो वकीय स्तन काल कूटं।"

गोपी गीत (दादरा) - उदाहरण - जयति तेऽधिकम्।

तोटक (दादरा) - उदाहरण - अच्युतं केशवं रामनारायणम्.................

झंप – “मंगलं भगवान विष्णुः ....

इस प्रकार संस्कृतज्ञों को संस्कृत छन्द का और हिन्दी जानने वालों को हिन्दी के छन्द का मर्म बताया जाता था। पचरुखिया वाले भागवताचार्यदिक इस विषय के विशेषज्ञ होकर गान किया करते थे। स्वयं श्री स्वामी जी महाराज भागवत परक संस्कृत श्लोक, तुलसीदास और सूरदास के पदों को गाया करते थे। तुलसी दास के पद्यों में विनय पत्रिका और गीतावली के तथा सूरदास के बाल्यभाव वाला मुग्धावस्था के पद्यों को गाते थे। अन्यदेव सम्बन्धी पद्य तो दूसरों को भी गाने से मना करते थे।
श्रीस्वामी जी महाराज को घर छूटने पर ही शास्त्राध्ययन छूटा था। यद्यपि संसार आत्मा को बांधने वाला है किन्तु दिव्यात्मा को कैसे बांध सकता है ? क्योंकि ऐसे महापुरुष कर्म वाशना वश संसार में नहीं आते बल्कि सामर्थ्यवान होने के कारण सृष्टि संरक्षण हेतु ही। इसीलिए संसार उन्हें स्पर्श नहीं करता। जैसे –

"अहि अघ अवगुण मणि नहीं गहई। हरै दोष दुःख दारिद दहई। अयो 183।4।"

विषधर सर्प में मणि उपजता है किन्तु वह मणि विष नहीं ग्रहण करता बल्कि विष को दूर करता है। श्री स्वामी जी महाराज को वचपन से ही लौकिक वस्तुओं से अरुचि थी। परिवार वालों ने सांसारिक बन्धनों से बान्धना चाहा था जैसे विवाहादि सम्बन्ध कराना किन्तु श्री रामजी तथा हनुमान जी को जैसे ब्रह्मास्त्र का बन्धन नहीं कुछ बिगाड़ सका वैसे ही विवाहादि बन्धन इन्हें नहीं बांध सका। दूर ही विलीन हो गया। यह सब कृत्य सोलह वर्ष तक ही समाप्त हो गये थे।

श्री स्वामी जी महाराज का विराग

भगवान् अपने अवतार में जैसे कुछ न कुछ कारण मान लेते हैं- रामावतार में श्री दशरथ जी का पुत्रेष्टि यज्ञ, कृष्णावतार में मनु-शतरूपा की तपस्या, जंगल जाने में कैकेयी-वरदान इत्यादि। इसी प्रकार मगध वासियों के कल्याणार्थ ही श्री स्वामी जी महाराज को गृह-त्याग करना पड़ा।
नैमिषारण्य को प्रधान तीर्थ होने के कारण तीर्थाटन में गये साधु समाज श्री स्वामी जी महाराज के घर (मितौली ग्राम) पर बराबर ठहरा करते थे। आप श्रीमन्त तथा साधु सेवी थे, अतः सबों का यथोचित सत्कार किया करते थे। यात्राक्रम में ही एक बार एक साधु मण्डली द्वार पर आ गयी। नियमतः स्वागतार्थ भोजनादि सामग्री लायी गयी जिनमें दाल उड़द की थी किन्तु किसी सन्त ने अरहर की दाल मांगी। श्री स्वामी जी महाराज दाल मांगने घर गये किन्तु माँ से उत्तर मिला कि अरहर की दाल नहीं है अतः साधुओं को वह दाल नहीं मिल सकी। पुनः सन्तगण उस क्षेत्र का गुड़ जो अत्यन्त स्वच्छ और स्वादिष्ट होता है, मांगे। उत्तर मिला- अमुक स्थाान में अमुक पात्र में है, ले लो। गुड़ अन्वेषण क्रम में ही अरहर की दाल संयोग से मिल गयी। गुड़ तो साधुओं को दिया गया किन्तु दाल के बहाना का प्रपंच हृदय में खटका। वह रात्रि तो साधु सेवा में व्यतीत हुई किन्तु प्रातः होते ही, 'यह सोचते हुए कि जिस स्थल में साधुओं के साथ प्रपंच किया जाए वहां नहीं रहना चाहिए।' अतः आप घर पर से निकल पड़े और गोमती गंगा में जल लेकर संकल्प किए आज से यह शरीर स्वसम्बन्धियों के लिए नहीं है। यही घटना श्री स्वामी जी की विरक्ति और मगध वासियों के लिए कल्याण का कारण हुई। पता चलने पर परिवार के लोग इनको घर लाने के लिए दौड़ धूप बहुत किए किन्तु – "माता पितरौ रुदति प्रव्रजति पुत्रः।" इस कथनी को चरितार्थ करना था, अतः घर नहीं लौट सके और पूर्व संकल्पानुसार शुक्ल सन्यासी वृत्ति स्वीकार कर लिए।

"अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः। स संन्यासी च योगी च न निरग्निः न चाक्रियः।।" गी 6।1

कर्मफल की अपेक्षा विना कर्म करने वाला व्यक्ति संन्यासी है, न कि निरग्नि या अक्रिय। सन्यासियों के कुटीचर बहूदक हंस और परमहंस इन भेदों में परमहंस सर्वश्रेष्ठ समझे जाते हैं। इसी वृत्ति में श्रीस्वामी जी महाराज रहने लगे, न कि केवल दण्ड

कमण्डलुधारी। आसन के लिए मृगचर्म, पात्र के लिए पंचपात्रों (धातुपात्र, मृण्मयपात्र, काष्टपात्र, वेणुपात्र, और फलपात्र) में से फलपात्र लौका का तुम्बा और दो कटिवस्त्र के अलावे और पास में कुछ नहीं रखना, द्रव्य नहीं छूना और न संग्रह करना, किसी से कभी कुछ नहीं मांगना, तेल नहीं लगाना या नहीं छूना, काष्टपादुका के अलावे किसी प्रकार की सवारी पर नहीं चढ़ना इत्यादि।
यद्यपि संन्यासियों को बैलगाड़ी पर चढ़कर चलने का विधान है फिर भी इनमें तो ऐसा उत्कट विराग था कि निर्जीव रेल और मोटर गाड़ी पर भी कभी नहीं चढ़ते थे। सतत पदयात्रा ही किया करते थे। किसी के पात्र से अपना काम नहीं करना, खाट से नहीं छुआना, विना दिए स्वयं मांग कर भोजन नहीं करना इत्यादि उदासीन वृत्तियों को अपनाये हुए घूमते घूमते आप वृन्दावन आए। उस समय वहां वर्तमान श्री रंग मन्दिर के पीठाधीश श्री स्वामी रंगदेशिकाचार्य जी थे। उत्तर भारत में वैष्णवता के प्रचार में गोवर्ध न पीठ को ही प्रमुख स्थान है। अष्टदिग्गजों की स्थापना के पूर्व श्री स्वामी शठकोप जी ने गोवर्धन पर्वत पर ही अपनी कुटी बनाकर वैष्णवता के प्रचार का श्रीगणेश कर दिया था। पश्चात् जब स्वामी श्री वरवर मुनि जी द्वारा अष्टदिग्गजों की स्थापना हुई , तब सर्वप्रथम श्री स्वामी कण्दाडै अण्णन जी ने इस गोवर्धन पर्वत को गोवर्धन पीठ का रूप दिया। इसीलिए इस पीठ को अण्णन पीठ भी कहते हैं। इसी परम्परा में जब स्वामी श्री शेषाचार्य जी के शिष्य श्रीनिवासाचार्य जी पीठाधीश थे, उसी समय दक्षिण भारत से श्री स्वामी रंगदेशिका चार्य जी वहां पधारे और उनसे (श्रीनिवासाचार्य जी से) समाश्रित हो गोवर्धन पीठ का भार अपने ऊपर लिए। आपके उपदेश से प्रभावित होकर मथुरा निवासी सेठ श्री लक्ष्मीचन्द्र जी तथा उनके अनुज श्री गोविन्द दास जी आप से समाश्रित हुए। एक बार सेठ जी श्रीरंगदेशिकाचार्य जी के साथ दक्षिण यात्रा में गये और उधर की दिव्यदेशों की अलौकिकता देखकर वृन्दावन में भी एक दिव्यदेश की स्थापना की इच्छा आपके हृदय में जगी। फ्लस्वरूप वृन्दावन में भी श्री रंगमन्दिर की स्थापना **1906** वि संवत्में हुई। यहीं से भक्तिगंगा की अमन्दधारा फूट कर उत्तर भारत को सिञ्चत करने लगी। श्रीस्वामी राजेन्द्र सूरि जी महाराज स्वामी श्री रंगदेशिकाचार्य जी से समाश्रित हो मथुरा में यमुना के पश्चिम तट पर भतरौढ़ नामक स्थान में (जहाँ ब्राह्मण पत्नियों ने कृष्ण को भोजन कराया था) कुछ दिनों तक मन्त्रानुष्ठान में रत रहे।
नृसिंह भगवान का मंत्रानुष्ठान करते हुए कुछ काल तक निवास किए। जब श्री रंगदेशिकाचार्य वैकुण्ठ पधार गये तो आप उदास होकर वहां से पूर्व दिशा की ओर यात्रा किए। सभी वृत्तियां पूर्ववत् ही थीं। श्रीवैष्णव से पर्दा आदि का भेद नहीं था। इस यात्रा में आप अयोध्या काशी एवं भोजपुर होते हुए मगध पधारे। एक दिन आप पटना मण्डल के महमतपुर ग्राम में पधारे, वहां एक विशाल महुआ का वृक्ष था उसी की छाया में विश्राम किए। पीछे ग्रामवासियों को जानकारी हुई तो ग्राम से बाहर ही घिनावन शर्मा के मकान में निवास के लिए आप से लोग आग्रह किये तो आप भक्त पारवश्यता गुण के कारण उस गृह में पधारे। आप को ग्राम से बाहर ही रहने का सदा नियम था। आम पकने का समय था अतः भक्तगण सुपक्व मधुर आम्रफल भोग लगाने के लिए ले आये। भगवान् को भोग लगाया गया और श्री स्वामी जी महाराज ने प्रसन्नता पूर्वक प्रसाद ग्रहण किया। तत्पश्चात् शेष प्रसाद भक्तगण भी पाये। इन सवों में अतीव प्रेम- भक्ति देखकर श्री स्वामी जी महाराज अत्यन्त प्रसन्न हुए। कुछ दिन वहीं ठहरने के लिए लोगों ने आग्रह किया तो उस रात्रि में भी आप वहीं ठहरे जब कि कहीं भी एक काल से अधिक ठहरने का नियम आपका नहीं था। रात्रि में आराधन का सामान आया। चावल दाल शाकादि सभी वस्तुएँ एक ही साथ मिट्टी के पात्र में सिद्ध की गयीं। पत्तल पर परोस कर ठंढा होने पर भगवान को भोग लगा, आप पाये और शेष प्रसाद भक्तगण भी पाये। भक्तों की ऐसी दशा देखकर, "विनु पहिचाने प्राण ते प्यारे। मानस बाल **321**।**3**", इन लोगों के ऊपर श्रीचरणों की विशेष कृपा हुई। दूसरे दिन भी ठहरने के लिए लोगों द्वारा आग्रह किये जाने पर उत्तर मिला कि जगदीश से लौटकर पुनः तुम सबों से मिलूंगा। शिष्य बनाने के लिए भी लोगों का आग्रह हुआ तो विना संस्कार किये ही "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" यह मंत्र सतत जपने की आज्ञा मिली। उपर्युक्त भक्तों में महमतपुर के चित्तवहाल शर्मा, काली शर्मा, घिनावन शर्मा, अचरज शर्मा, मनबोध शर्मा आदि प्रधान थे।

तरेत का सौभाग्य

श्री स्वामी जी महाराज जगदीश यात्रा से लौटकर पुनः यहीं चले आये। स्थानीय लोग कृपाभागी बने। अब इनका वास स्थान "विविक्त देश सेवित्व मरतिर्जन संसदि" के अनुकूल पटना मण्डलान्तर्गत एकान्त तरेत ग्राम के पश्चिम भाग में एक पीपल वृक्ष के नीचे बना। कुछ पीछे चलकर वर्तमान नहर से पूर्व गढ़ पर निवास स्थान बना जिसका रूप बदल जाने पर भी आज गढ़ सा ही प्रतीत होता है। यह स्थान घनघोर जंगल था। इसमें अनेकों प्रकार की जड़ी बूटियाँ, विदारी, वराहीकन्द, श्वेत श्याम मुसली आदि पाये जाते थे। बघनखा, भिलावा आदि कांटेदार लतागुल्मों से आच्छादित सभी वृक्ष थे, इस कारण यह दुष्प्रवेश जंगल था। इसी जंगल में श्री स्वामी जी महाराज रहने लगे और उसी में होने वाले कन्द मूलों द्वारा भगवान की आराधना भी करते थे। इसके लिए बाहर जाने की आवश्यकता नहीं समझते थे तथा बाह्य मनुष्यों से संपर्क भी नहीं चाहते थे। किन्तु अवतार का हेतु तो और ही था। सूर्योदय की आभा कैसे छिपती। सन्देश सर्वत्र फैला और कल्याणार्थियों का समूह किसी न किसी प्रकार श्री चरणों तक पहुँचने लगा। सेवा सत्कार के लिए लोग निवेदन करने लगे। महमतपुर वाले कुछ लोग एक ठाकुरवारी बनाकर उसे छः बीघा जमीन के साथ श्री स्वामी जी महाराज को समर्पण कर दिए "हेतु रहित युग युग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी। ।मानस -उत्तर- 46।3"

तरेत, पाली, चेसी, हदसपुरा, महमतपुर यही चार पांच वस्ती के भक्त गण सर्वप्रथम श्री स्वामी जी महाराज के सम्पर्क में आए। इन सबों पर भगवान की कृपा का ही यह लक्षण था। इस समय तक वैष्णवों को केवल वासुदेव मन्त्र ही दिया जाता था। कुछ समय पश्चात् श्री स्वामी जी महाराज वद्रीनारायण भगवान् के दर्शनार्थ यात्रा किए। इस यात्रा में तरेत के श्री भागवताचार्य और हदसपुरा के श्री वासुदेवाचार्य साथ थे। इस यात्रा से लौट आने के पश्चात् भक्तगण श्री स्वामी जी महाराज के निवासार्थ तरेत से पश्चिम एक फूस की झोपड़ी बनवाए और इसके पश्चात् मिट्टी का एक किता मकान बनाकर उसमें भगवान को पधराये गये। मिट्टी जहां से खोदी गयी थी वह गड्ढा तालाव में परिणत हो गया। किसी भक्त ने उसका कच्चा घाट पक्का बनवा दिया जो आज भी वर्तमान है। उस समय तरेत ग्राम बाबू श्री रामखेलावन शर्मा जी (चेसी ग्रामनिवासी) की ठीकेदारी में था। आप श्री सम्पन्न सज्जन थे अतः सभी प्रकार की भगवान् के लिए जमीन आदि के प्रबन्ध में सहायता किया करते थे। तरेत ग्राम से पश्चिम दक्षिण दिशा में श्री स्वामी जी द्वारा एक बाग लगाया गया था जिसका नाम कलम बाग है जो अभी भी विद्यमान है। पहले भगवान् फूस की झोपड़ी में ही थे। पश्चात् जब दूसरा मकान बना और उसी में भगवान् को पधराने का विचार हुआ तो इस यज्ञ के याज्ञिक ब्राह्मण वृन्दावन से आये थे। इस समय तक श्री स्वामी जी महाराज की कीर्ति सर्वत्र फैल चुकी थी। इसी समय महमतपुर में भी पुनः श्री लक्ष्मी नारायण के विग्रह की प्रतिष्ठा की गयी। वृन्दावन के श्रीरंगाचार्य जी की धर्मपत्नी श्री अम्बा जी ने स्वयं सुदर्शन चक्र बनवा कर श्री स्वामी जी महाराज के लिए भेजा था और साथ साथ यह आदेश भी भेजा कि आप इच्छुक भक्तों को पंच संस्कार पूर्वक वैष्णव बनाया करें। यह आज्ञा पाकर श्रीस्वामी जी पूर्व के केवल वासुदेव मंत्र वाले भक्तों को भी पंच संस्कार विधि पूर्वक अष्टाक्षर मंत्र द्वारा वैष्णव बनाने लगे। तरेत और महमतपुर के दोनों स्थानों में पूजा करने के लिए दो पुजारी नियुक्त कर दिये। ये दोनों अनाथ थे, अतः वाल्यकाल से ही श्रीस्वामी जी के आश्रय में पले थे। एक का नाम रघुनन्दन जो महमतपुर के पुजारी थे, दूसरे का नाम यदुनन्दन था, जो तरेत के पुजारी थे। उक्त दोनों स्थान दोनों व्यक्तियों को स्वतन्त्र रूप से दे दिया था क्योंकि आप तो उत्कट वैराग्य के उपासक थे। स्थान- बन्धन तो भक्तों का लगाया हुआ था। कुछ काल के अनन्तर दोनों पुजारी स्वतन्त्र होने के कारण भ्रष्ट हो गये। एक ने विवाह कर लिया और दूसरे ने धन के लोभ में सोन नद से पश्चिम बागा नामक स्थान का शिष्य बनकर महन्थ बना। इस तरह दोनों स्थान खाली हो गये। पुनः महमतपुर का एक गरीब ब्राह्मण महमतपुर का पुजारी बनाया गया

और इसी तरह दूसरा तरेत का, किन्तु दोनों विशेष धूर्त होने के कारण कुछ द्रव्य संग्रह कर अन्यत्र जाकर विवाह कर भ्रष्ट हो गये। तब से स्थानों में स्वतन्त्र अधिकारी नहीं रखा जाने लगा बल्कि केवल पुजारी मात्र रखे जाते थे। आगे चलकर यहां की सारी सम्पत्ति पंचों के अधीन कर दी गयी थी, वे ही लोग इसकी रक्षा एक महान्त की सहायता द्वारा किया करते थे। महान्त के निर्वाचन में पंचों का ही मत लिया जाता था। इसका विवेचन आगे किया जायेगा। जीवन-मरण रूपी संसार ताप से संतप्त आत्मा भगवान से प्रार्थना पूर्वक कहती है कि "मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये।" हे भगवन् संसार-दुःख से छूटने की इच्छा से मैं आपकी शरण आया हूँ। जैसे जयन्त तीनों लोक घूम कर शक्ति हीन असहाय हो पुनः जब सीता जी की शरण में आया और कहा कि आप मुझे बचावें तो उन्होंने कहा - "वधार्हमपि काकुत्स्थ कृपया परिपालय। वा रा 38।33।" हे भगवन्! यद्यपि यह वध्य है फिर भी अपनी कृपा द्वारा इसकी रक्षा करें। ठीक इसी प्रकार भ्रांत जनों के उद्धारार्थ आचार्य स्थल तरेत की भूमि भगवान के शरण में लाने की सहायिका बनी। इसी से इसका नाम "तरेत" अन्वयर्थक संज्ञा है। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार समझनी चाहिए - "तरति इतः" यहाँ से लोग तर जाते हैं अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। इसमें दो पद हैं 'तरति' और 'इतः'। 'तरति' - तरणार्थक तृ धातु से तिप् जोड़ने से बना है। इसमें तिप् प्रत्यय और 'इतः' पद में विसर्ग दोनों आर्ष लोप और सन्धि करने पर 'तरेत' शव्द सिद्ध हुआ है - "तरति शोकमात्मवित्।" अब तरेत वैष्णव संतों का आश्रम बन गया।

गंगापापं शशीतापं दैन्यं कल्पतरोर्यथा । पापं तापश्च दैन्यञ्च हरते सन्तसमागमः।।

गंगा पाप, चन्द्र ताप और कल्प तरु दीनता का नाश करता है, किन्तु सन्त समागम अकेले पाप ताप और दीनता तीनों का नाश करता है।

"सहस्रवार्षिकीपूजा विष्णोर्भगवतो द्विजाः। सकृद्भागवतार्चायाः कलानार्हति षोडशीम्।।" भगवान की हजारों वर्ष की पूजा वैष्णवों की एक बार की पूजा के षोडषांश भी नहीं है।

"यथा तुष्यति देवेशो महाभागवतार्चनात्। तथा न तुष्यति श्रीशः विधिवत्स्वार्चनादपि।।" भागवत के अर्चन पूजन से भगवान को जितनी सन्तुष्टि होती है उतनी सन्तुष्टि अपनी पूजा से भी नहीं होती।

"षष्टि वर्षसहस्राणि विष्णोराराधने फलम्। सकृद्वैष्णव पूजायां लभते नात्र संशयः।।" साठ हजार वर्ष तक लगातार भगवान की पूजा से जो फल प्राप्त होता है वह एक बार के वैष्णव पूजन से ही प्राप्त हो जाता है।

"महाभागवता यत्र वसन्ति विमला शुभाः। तत्स्थलं मंगलं प्रोक्तं यथा विष्णु पदं शुभम्।।" जहां जिस स्थल में वैष्णव रहते हैं वह स्थल विष्णुपद के तुल्य पवित्र और मंगल प्रद है।

"उत्तरे नवगव्यूति दक्षिणे योजनत्रयम्। द्यापीकूपतडागानां सर्वं जाह्णवी जलम्।।" गंगा से उत्तर अट्ठारह कोस और दक्षिण बारह कोस तक गंगा क्षेत्र है। इस बीच जितने कूप तड़ागादि हैं, सबों का जल गंगा जल के तुल्य है।

"शंखचक्रांकितो विप्राः यत्र यत्र वसन्तिहि। योजनानि यथा त्रीणि ममक्षेत्रवसुन्धरे।" वराह भगवान् ने पृथ्वी से कहा है - चक्रांकित वैष्णव जहां जहां रहते हैं वहां वहां बारह कोस तक का क्षेत्र रंग वेंकटाद्रि के तुल्य मेरा क्षेत्र है।

तुलसीकाननो यत्र यत्र पद्मवनानि च। वैष्णवाः यत्र निवसन्ति तत्र सन्निहितो हरिः।" तुलसी, कमल और श्री वैष्णव जहां रहते हैं वहां भगवान् वास करते हैं।

ये कंठलग्नतुलसीनलिनाक्षमाला, ये बाहुमूलपरिचिह्नित शंखचक्राः।
ये वा ललाटफलके लसदूर्ध्वपुण्ड्राः, ते वैष्णवाः भुवनमाशुपवित्रयन्ति। प पु उ 224।70।

गले में तुलसी कमलाक्ष की माला वाहुमूल में शंख चक्र और ललाट में उर्ध्वपुण्ड्र धारण किए हुए श्री वैष्णव तीनों लोकों को पवित्र करते हैं।

तत्रैव गंगा च यमुना च वेणी, गोदावरीसिन्धुसरस्वती च। सर्वाणि तीर्थानि वसन्ति तत्र यत्राच्युतोदारकथाप्रसंगः।।

जहां भगवत् कथा वार्ता होती है वहां सभी तीर्थ आकर निवास करते हैं।

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च। मद्भक्ताः यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।प पु उ 92।22। भगवान् नारद से कहते हैं कि मैं वैकुण्ठ और योगियों के हृदय में नहीं रहता हूँ बल्कि मेरे भक्त जहां गाते हैं वहीं मैं रहता हूँ।

शालिग्रामोद्भवादेवा यत्र द्वारावती भवः।उभयो संगमो यत्र तत्र मुक्तिर्न संशयः।।जहां शालिग्राम और गोमती चक्र रहते हैं वह मुक्ति के स्थान हैं।

यत्र यत्र हि मद्भक्ताः प्रशान्ताः समदर्शिनः। साधवः समुदाचारास्ते पूयन्त्यपि कीकटाः। श्री वैष्णव कीकट याने मगध वासियों को भी पवित्र करते हैं। पूर्व में मगध अपवित्र था - "अंग वंग कलिंगेषु सौराष्ट्र मगधेषु च।तीर्थ यात्रां विना गत्वा पुनः संस्कारमर्हति।। अंग (भागलपुर),वंग (बंगाल), कलिंग (उड़ीसा), सौराष्ट्र (काठियावाड़ प्रायद्वीप) तथा मगध इन प्रदेशों में यदि कोई द्विज विना तीर्थ यात्रा के जाय तो स्वदेश लौटने पर पुनः उसे जातीयोचित उपनयन संस्कार द्वारा पवित्र होना चाहिए। इससे ऊपर के स्थानों की अपवित्रता इतिहास सूचित करता है।

क्षणोर्द्धनापि तुलये न स्वर्ग ना पुनर्भवम्।भगवत्संगि संगस्य मर्त्यानां किमुताशिपः।।स्वर्ग मोक्षादि का सुख वैसा नहीं जैसा कि भागवत की संगति द्वारा क्षणार्द्ध में होता है।

शब्दब्रह्म परब्रह्म ममोभे शाश्वती तनुः। शब्दब्रह्माणि निष्णातः परं ब्रह्माधि गच्छति।वि पु 6।5।64।भगवान् कहते हैं कि शब्द ब्रह्म और परब्रह्म ये दोनों मेरे अनादि कालिक देह हैं। शब्द ब्रह्म में निपुण व्यक्ति ही परब्रह्म को प्राप्त करता है।

"अनावृत्तिः शब्दात् अनावृत्तिः शब्दात्।ब्र सू 4।4।22।" ब्रह्म सूत्र, श्रीभाष्यादि के शब्दों को अध्ययन अध्यापन श्रवण मनन द्वारा अनावृत्तिः याने मोक्ष पश्चात् इस संसार में कभी आना नहीं पड़ता।

उपर्युक्त सभी विषयों का ही तरेत में अध्ययन, अध्यापन, श्रवण, मनन हुआ करता था। कालक्षेप में यही सब विषय रहते थे। श्रीभाष्य पढ़ाने के लिए दक्षिणात्य विद्वान रखे गये थे। और भी व्याकरण न्यायादि शास्त्रों को पढ़ाने के लिए विद्यालय खोला गया था। सर्वत्र के विद्यार्थी आकर पढ़ते थे। सबों को यथोचित सहायता दी जाती थी। इस समाज के अतिरिक्त अन्य समाज वाले बहुत से पण्डित बने थे। इस समाज में संस्कृत अध्ययन की प्रवृत्ति नहीं थी। जो महान पाप था और आज भी है। इस विद्यालय में पहले सनारी ग्राम के एक पण्डित पढ़ाते थे। पश्चात् एक दक्षिणात्य विद्वान आये। भागवताचार्यादि भी यहां अध्यापन किए थे।

परिआरी निवासी श्री रघुनाथाचार्यादि श्रीभाष्य के विद्वान थे। साम्प्रदायिक विषय, भगवद्विषय, श्री रामायण कथा, मन्त्रार्थ तथा स्तोत्रादि का पाठ नियमतः चलते रहता था। इन विषयों के अनेक वक्ता थे। इन सबों में एक वृन्दावनवासी चेफूल (छपरा)वाले श्री मुमुक्षु स्वामी थे। भावी कल्याणार्थी श्रोताओं में बाबू रामखेलावन शर्मा जी, बाबू वासुदेव शर्मा जी, श्री वासुदेवाचार्यादि प्रधान थे। शरणागति (मुमुक्षुओं का आत्म समर्पण) महान यज्ञ तथा भागवत सेवा सतत होती रहती थी। समय समय महान व्यक्तियों का आगमन बराबर होते रहता था। जैसे गोवर्धन पीठाधीश्वर, महान्त श्रीरामप्रपन्नाचार्य जी (रीवाँ राज्य), तोताद्रि पीठाधीश, प्रतिवाद भयंकर श्री अनन्ताचार्य जी तथा अन्यान्य अखाड़े वाले, हरिक्षेत्र मेला से नागाओं का समूह, दाक्षिणात्य विद्वान आदि।

"द्वादश कोटि विप्राणां श्वपचो एक वैष्णवः।"
वैष्णवोऽस्य गृहे भुंक्ते तस्य भुंक्ते स्वयं हरिः।हरिः यस्य गृहे भुंक्ते तस्य भुंक्ते जगत्त्रयम्।
अन्नाद्याः परतो नित्यं चक्षुषा गृह्यते मया। रसन्तु दास जिव्हाया गृहणामि कमलोद्भवे।।

द्वादश कोटि अवैष्णव विप्रों की अपेक्षा एक श्वपच कुल का वैष्णव श्रेष्ठ है। "किं पुनर्बाह्मणाः पुण्याः भक्ता राजर्षयस्तथा।" ब्राह्मण कुल का यदि कोई वैष्णव हो तो उसकी महत्ता को तो कहना ही क्या है। जिस घर में एक वैष्णव भोजन करता है उस घर में स्वयं भगवान ही भोजन करते हैं। और यदि घर में भगवान का भोग लगा तो तीनों लोक उसके घर में भोजन कर लिए।

भगवान श्री लक्ष्मी जी से कहते हैं कि मैं सामने रखे हुए अन्नादि भोगों को केवल आँख से देखता रहता हूँ। यह भगवान का सामान्य नियम है किन्तु कभी कभी भगवान भक्तों के अधीन होने के कारण सामान्य नियमों का उल्लंघन भी कर जाते हैं, जैसे सुदामा जी के चूड़ा के समय - "तर्पयन्त्यङ्ग मां विश्वमेते पृथुक तण्डुलाः। भा 10।81।9।" श्रीकृष्ण भगवान सुदामा का चूड़ा खाते समय कहते हैं कि यह चूड़ा विश्वमात्र को तृप्त कर रहा है। आप किसी तरह संकोच नहीं करें कि यह चूड़ा तुच्छ वस्तु है। इस प्रकार तरेत में भगवत् भागवत् सेवा होने के कारण सर्व महान विश्व यज्ञ हुआ करता था।

न यत्र वैकुण्ठ कथा सुधापगा, न साधवो भागवताः तदाश्रयाः।
न यत्र यज्ञेश मखाः महोत्सवाः, सुरेन्द्र लोकोऽपि न तत्र सेव्यताम्।।

जहां भगवान की कथा रूपी गंगा नहीं बहती हो, वैष्णव लोग नहीं रहते हों, भगवान के आराधनोत्सव नहीं होता हो वह लोक इन्द्रलोक के तुल्य सुखद क्यों न हो, किन्तु वहां नहीं रहना चाहिए।

"तव दास सुखैव संगिनाम्भवनेष्वस्त्वपि कीट जन्म मे।"भगवत्दासत्व सुख से सुखी रहने वाले भक्तों के घर में कीट भी होकर रहने में कल्याण होता है। इसी लिए वैष्णव -स्थल श्रीरंग वेंकटाद्रि के समान दिव्य देश माना गया है। 'अर्चा वैभव दर्पण' नामक ग्रन्थ में दिव्य देशीय यात्रा प्रकरण में तरेत का नाम आया है। यहां की धूल देवताओं को भी शिरोधार्य है। यहां के मनुष्य तो बड़भागी हैं ही, पशु पक्षियों को भी मुक्ति मिलेगी। लौकिक जीवन यात्रा के लिए भी यह स्थान अत्यन्त स्वास्थ्यप्रद है। वृन्दावन के श्री सुदर्शनाचार्य जी महाराज श्री स्वामी जी महाराज के दर्शनार्थ यहां आये थे तो स्थान से कुछ दूर से ही अपना वाहन छोड़कर पैदल चलने लगे। जब लोगों का आग्रह हुआ कि वाहन से ही चला जाए तो वे बोले कि श्री स्वामी जी के चरण स्पर्शित भूमि में हमें शिर के बल से चलना चाहिए था किन्तु विवश होकर श्रीभाष्यकार स्वामी को मुक्ति नारायण की शालिग्रामी भूमि पर पांव पांव चलने के ऐसा चलना पड़ रहा है। वृन्दावन के गोपियों के पाद स्पर्शित भू-रज को श्रीकृष्ण जैसे अपने मुख में रखे थे उससे भी बढ़कर यह भूमि श्री राजेन्द्र सूरि जी के पादस्पर्श से पवित्र हो गयी है, इत्यादि गुण गान करते हुए तरेत स्थान तक आए। यहां के परमार्थ में कल्पतरू के समान इच्छित फल मिला करता था। दीनों को याचना करने पर उपनयन, विवाह, श्राद्ध आदि के लिए भी सहायता दी जाती थी। किसी को किसी भी वस्तु के लिए, रहने पर अस्वीकार नहीं होता था। "मंगन लहही न जिनके नाहिं। मानस - बाल-230।4" चौपाई चरितार्थ होती थी। किसी भी प्रकार की विद्या के अध्ययनार्थी विद्यार्थी को सहायता दी जाती थी। इस प्रकार अनेकों प्रकार से मगध वासियों को कल्याण का कार्य होने लगा जिससे अनेकों जन्मों का पाप दूर हुआ। मगध का कलंक मिटा।

विपक्षियों से संघर्ष

श्री स्वामी जी महाराज के मुख से शुद्ध सात्विक कल्याणप्रद उपदेश की धारा प्रवाहित होते देख तत्कालीन नकली गुरुओं को जो दूसरों को झूठे उपदेशों के द्वारा फँसा कर अपना केवल स्वार्थ साधन करते थे, श्री स्वामी जी महाराज के प्रताप के प्रकाश से उन सबों की आँखें उलूक की तरह दुखने लगीं।

कर्मकाण्डे प्रवृत्तो यः सर्वदा विष्णुनिन्दकः। निन्दकस्तज्जनानाञ्च महाचाण्डाल उच्यते।।लौकिक कर्मकाण्ड में प्रवृत्त विष्णु और वैष्णव निन्दक महाचाण्डाल होता है। किन्तु इस प्रवृत्ति के लोग भी अपनी मूर्खता वश, श्री सम्प्रदाय को अवैदिक सिद्ध करने का दुःसाहस करने लगे। फिर भी - "न च प्रत्यनुरौति ग्राम सिंहस्य सिंहः।" जैसे ग्राम सिंह (कुत्ता) का अनुकरण सिंह नहीं करता इसी प्रकार श्री स्वामी जी महाराज का व्यवहार शान्ति पूर्ण हीं बना रहा। फिर भी - "स्वभावो दुष्करो नाथः।" प्राणियों का स्वभाव नहीं बदलता, अतः खलों का स्वभाव पूर्ववत् ही रहा। निन्दा वाक्यों की चोपड़ियाँ छपीं, गीतें बनीं। परिणाम यह हुआ कि "अति संघर्ष करै जो कोई। अनल प्रकट चन्दन ते होई। मानस-उत्तर-110।8" सागरपुर, दतियाना आदि ग्रामों में सभायें हुईं। सर्वत्र के पक्ष विपक्ष वाले विद्वान एकत्रित हुए थे। विपक्षियों की ओर से अनेकों कुतर्क पूर्ण प्रश्न किये गये। सबों का यथेष्ट समाधान हुआ। उन सबों के

प्रश्नों में 'श्री सम्प्रदाय अवैदिक, शंख चक्र धारण अवैदिक' इत्यादि प्रश्नों का समाधान जो श्री स्वामी जी की ओर से हुआ था उसका प्रधान अंश नीचे दिया जाता है – तीनों वेदों में पठित श्रुति –

"पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषिविश्वतः अतप्ततनूर्न तदामोऽश्नुते श्रृतासः इद्वहन्तस्तत्समासत।"

अन्वय – हे ब्रह्मस्पते ! प्रभुः त्वं विश्वतः गात्राणि पर्येषिते पवित्रं विततं तेन अतप्त तनूः आमः तत्न अश्नुते, इत्वहन्तः श्रृतासः तत्समाशत। हे ब्रह्म के अधिष्ठाता देव परमात्मा ! आप विश्व के नियामक रूप से सर्वत्र व्यापक हो। आपका सुदर्शन चक्र आस्तिक जनों की भुजा पर चिन्ह रूप से विद्यमान रहता है। तप्त सुदर्शन चक्र के चिन्ह रहित जनों का पाप नष्ट नहीं होता अतएव उन्हें परमात्मा की प्राप्ति नहीं होती। इस तप्त सुदर्शन चक्र को धारण करने वाले दग्ध पाप होकर परमात्मा को प्राप्त कर लेते हैं। उपर्युक्त श्रुति में पवित्र शब्द का अर्थ सुदर्शन चक्र है। इसका प्रमाण नीचे दिया जाता है।

"सुदर्शने च दर्भे च पवित्रचरणसूत्रके" (वेद निघन्टु)

"सुदर्शनं सहस्रारं पवित्रं चरणं पविः।" "सुदर्शनं हरेश्चचक्रं पवित्रं चरणं पविः।" "पवित्रं चरणं नेमीरथचक्रं सुदर्शनम्। प पु उ **224**।**62**।"

"सहस्रारं प्राकृतघ्नं लोक द्वारं महौजसम्। नमामि विष्णुचक्रस्य पर्यायेण निवोध मे। प पु उ **224**।**63**।" उपर्युक्त उद्धरणों में पवित्र शब्द सुदर्शन चक्र का वाचक है। "पवित्रं चरणं चक्रं लोकद्वारं सुदर्शनम्। प्र्याय वाचका ह्येते चक्रस्य परमात्मनः।। (श्री शास्त्र)।" पवित्र शब्द परमात्मा के चक्र का वाचक है।

"पवित्र शब्दस्य परिशुद्धित्राणकर्तृत्वावच्छिन्ने, योग शक्तेस्सुदर्शनत्वावच्छिन्ने रूढ़ेश्च सत्वात्योगरूढ़ता। पुनाति त्रायते चेत्यतः पवित्रम्इति। (एकायन ब्राह्मण निरुक्त)।" उपर्युक्त श्रुति में तत् शब्द ब्रह्म वाचक है।

"तदिति वा एतस्य महतो भूतस्य नाम भवति" "ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः" इन प्रमाणों द्वारा पवित्र शब्द सुदर्शन चक्र का वाचक और तत्शब्द परमात्मा का वाचक है।

पवित्र मित्यग्निः अग्निर्वै सहस्रारः सहस्रारो नेमिः। नेमिना तप्त तनुः ब्रह्मणः सायुज्यं सलोकतामाप्नोति।" (सामवेद मैत्रायणीय शाखा)। शुद्ध करने वाला भगवच्चक्र अग्नि के संयोग से तप्त होने से अग्नि रूप होने के कारण सहस्रों छेदन योग्य अर वाला वर्तुलाकार चक्र से तपे हुए भुजा वाला प्रपन्न भक्त परमात्मा के अपहत पापमत्वादि समान गुणवाला होकर भगवत्लोक प्राप्त कर लेता है।

विष्णोर्नुकेन मन्त्रेण तापयित्वा सुदर्शनम्। चरणं पवित्रमिति द्वाभ्यां तदभि मन्त्रयेत्।

पवित्रं ते विततमिति मुद्रयेद्दक्षिणे भुजे। ज्ञान वैराग्यमास्तिक्यं श्रद्धा चास्याभिवर्धते।। (सनक स्मृति)

इस वचन के द्वारा यह सिद्ध होता है कि "विष्णोर्नुकेन **0**" इस मन्त्र से सुदर्शन चक्र को अग्नि में तपा कर चरण और पवित्र श्रुति से उसे अभिमन्त्रित करे। पुनः "पवित्रं ते विततं**0**" इस मन्त्र से सुदर्शन चक्र को दाहिनी भुजा पर मुद्रित करे। इससे जीव प्रपन्न भक्त बन जाता है और उसकी श्रद्धा एवं ज्ञान वैराग्य और आस्तिक्य सभी बढ़ जाते हैं।

चरणं पवित्रं विततं पुराणं वाङ्मयं शुभम्। तेन चक्रेण सन्तप्ताः तेरयुः पातकाम्बुधिम्।।
पवित्रं ब्रह्मणस्पत्यं जगद्वयाप्तं हरेस्सदा। तेन तप्ता तनुर्येषांन ते यान्ति परं पदम्।।
तेन तप्ता तनुर्येषां ते प्रयान्ति परं पदम्। शुद्धेन तेन तप्तेन ब्रह्मणस्तेन पुनीहि नः।।
येन देवाः पवित्रेण आत्मानं पुनते सदा। तेन सहस्रधारेण पावमान्यः पुनन्तु नः।।
प्रजापत्यं पवित्रं तच्छतो द्यामं हिरण्य मयम्। तेन ब्रह्म विदो वयं पूतं ब्रह्म पुनीमहे।।
सनेमिः चक्रमजरं चक्षुरस्य महात्मनः। तस्मिन्हि विधृते देवा महोन्नत पदं ययुः।।
यत्ते पवित्रमर्चिषि अग्ने तेन पुनीहि नः। इत्येवं श्रुतयः सर्वाः कथयन्ति वरानने।
तस्माद्वै विधिवद्धार्याः शंखचक्रादि हेतयः। पद्म पुराण। उत्तर **224**।**60-68**)।।

इण वाक्यों के अन्तर्गत "तेन चक्रेण सन्तप्ताः तेरयुः पातकाम्बुधिम्।" इस वाक्य से पातक रूप समुद्र से पार करने के लिए तप्त सुदर्श न चक्र को भुजा पर धारण करना चाहिए। और तप्त सुदर्शन चक्र को नहीं धारण करने वाले "तेन तप्ता तनुर्येषांन ते यान्ति हरे पदम्।" मोक्ष नही प्राप्त करते। "तेन तप्ता तनुर्येषांन ते यान्ति परं पदम्।" उस सुदर्शन चक्र से जिसका शरीर तप्त हुआ है वे मोक्ष

पद प्राप्त कर लेते हैं। "तस्मिन्हि विधृते देवा महोन्नत पदं ययुः।" उस तप्त सुदर्शन चक्र के धारण से बहुत से भागवत उन्नत पद अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर लिए। इसलिए प्रपन्न भक्त होने के लिए ऐहलौकिक पारलौकिक सुखाभिलाषी और मुमुक्षुओं को शास्त्रविधान पूर्वक तप्त शंख चक्र अवश्य धारण करना चाहिए। "ततो लोका महामूढाः विष्णुभक्ति विवर्जिताः। निश्चयं नाधिगच्छन्ति पुनर्नारायणं हरिम्।।" शिवजी ने पार्वती से कहा कि जो लोग विष्णु भगवान की भक्ति छोड़कर अन्य देवों की उपासना करते हैं वे महामूर्ख हैं। निश्चय वे भगवान को नहीं प्राप्त करते।

"चरणं पवित्रं विततं पुराणं येन पूतस्तरति दुष्कृतानि तेन पवित्रेण शुद्धेन पूताः अति पाप्मानमरातिं तरेम। लोकस्व द्वारमर्चिमत्पवित्रं ज्योतिष्मत् भ्राजमानं महस्वत्अमृतस्य धारा बहुधा दोहामानं चरणं नो लोके सुधितां दधातु। (यजुर्वेद कठ शाखा)।"

अन्वयः - पवित्रं पुराणं चरणं विततं येन पूतः दुष्कृतानि, तरति शुद्धेन तेन (धृतेन सुदर्शनेन)।पूताः वयम्अरातिं पाप्मानं अति तरेम लोकस्य द्वारम्अर्चिमत्ज्योतिष्मत्महस्वत् भ्राजमानं अमृतस्य धारा बहुधा दोहमानं एतादृश पवित्रं चरणं लोके नः सुधितां दधातु।" तप्त सुदर्शन के मुद्रा रूप से आचार्य द्वारा अपनी दाहिनी भुजा पर धारण करने वाले प्रपन्न भक्त के अनादि काल का संचित पाप नष्ट हो जाता है। इसलिए पवित्र करने वाला तथा सभी पापों को विनष्ट करने वाला तप्त सुदर्शन चक्र को हम भी अपनी भुजा पर धारण कर पाप रूपी शत्रु को नाश कर संसार से तर जायें। भगवल्लोक प्राप्ति के उपायभूत प्रचण्ड ज्वालाओं से युक्त देदीप्यमान किरणों से सुशोभित अत्यन्त अप्रतिहत प्रकाशवाला परम तेजस्वी मोक्ष का अनन्य समर्पक परम पवित्र सुदर्शन हमको दिव्य वैकुण्ठ में प्रदर्शित करे।

"मोक्षकामः नरः सुदर्शनं धारणं कुर्यात्। पपनिवृत्तिकामः सुदर्शनं धारणं कुर्यात्।।"

चमूषच्छ्येनश्शकुनो विभृत्वा गोविन्दुर्द्रप्स आयुधानि विभ्रत्। अपामूर्मिं सचमानः समुद्रं तुरीयम् धाममहिषो विवक्ति।

अन्वयः - अपामूर्वि समुद्रं सचमानः द्रप्स गोविन्दुः आयुधानि विभूत्, चमूषत्स्येनः शकुनः विभृत्वा तुरीयं धाम महिषः सन्विवक्ति। पञ्चभौतिक शरीर से सर्वदा सम्बन्ध रखने वाला परमात्मा के शरीर रूप जीव भगवान्के शंख चक्रादि आयुधों को तप्त मुद्रा रूप से आचार्य द्वारा धारण करे तो वह जिन नित्य सूरियों से अनुगम्यमान होकर वैकुण्ठ में पहुंच अपने सम्बन्धियों को भी संसार सागर से पार कर मोक्ष प्राप्ति का अक्षय्य सुख भोगता है।

"गोविन्दस्यायुधान्यङ्गे विभ्रत्सुश्रोणि वैद्विज। तुरीयं धाम तद्विष्णोर्महिष्ठः प्राप्नुयादिति।।" "चमूषच्छ्येनश्शकुनो विभृत्वेति ऋगब्रवीत्।" भगवान्के आयुधों को मुद्रा रूप से अपने अंगों पर धारण करे तो वह जीव नित्य सूरियों से पूज्य हो परमात्मा के लोक अवश्य प्राप्त कर लेता है। यह चमूष श्रुति से सिद्ध है। इस प्रकार श्रीस्वामी जी महाराज का उत्तर सुनकर विपक्षियों का मुख बन्द हुआ किन्तु "स्वभावो दुस्त्यजोनाथ" के अनुकूल पेट में वायुविकार रह ही गया था। इसी प्रकार आर्य समाजियों से भी मुठभेड़ हुई। ढिवरा आदि ग्रामों में सभायें हुई। उन सबों ने भी अपनी बुद्धि का परिचय दिया। जिन्हें पूर्वोक्त उत्तर दिये गये। अर्थात् श्री सम्प्रदाय की वैदिकता पोषक उत्तर दिया गया। मूर्ति खण्डन विषय प्रश्नों का समाधान श्रीस्वामी जी महाराज द्वारा जो हुआ था उसका कुछ अंश नीचे दिया जाता है।

आर्य समाजियों का प्रश्न - 1। श्री स्वामी जी महाराज ! " नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्च न मध्ये परिजग्रभत्। न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः।" इस वैदिक मन्त्र में "न तस्य प्रतिमा अस्ति" अर्थात् उस ईश्वर की कोई मूर्त्ति नहीं है इस निषेध वाक्य से स्पष्ट ही मूर्त्ति पूजन का खण्डन सिद्ध है तो फिर मूर्त्ति पूजन के विषय में लोगों की प्रवृत्ति क्यों है ?

उत्तर -1। आपलोग पूर्वोक्त मन्त्र का जो ऐसा अर्थ करते हैं वह भूल है। क्योंकि 'न तस्य प्रतिमा अस्ति' इस वाक्य में प्रतिमा शव्द का अर्थ उपमा है। अर्थात् उस परमप्राप्य ब्रह्म को कोई भी मनुष्य न तो ऊपर से पकड़ सकता है न नीचे से और न मध्य तथा इधर उधर से ही पकड़ सकता है। ये सर्वथा आग्रह्य हैं। जिनका नाम महान यश है, जिनका महान यश सर्वत्र प्रसिद्ध है उस परात्पर ब्रह्म की कोई भी उपमा नहीं है जिनके द्वारा उनको समझा जाए या किसी अन्य को समझा जा सके। "न तत्समश्चाभ्यधिकश्च

दृश्यते।" "गगनं गगनाकारं सागरः सागरोपमः।"

प्रश्न 2 - यदि वेदों के आधार पर मूर्त्ति पूजन मानते हैं तो क्या वैदिक मन्त्रों में मूर्त्ति वर्णन दिखा सकते हैं ?
उत्तर 2 - हाँ, अनेको मन्त्र मूर्त्ति वर्णन में व्यस्त हैं। आप ध्यान से सुनें - "सहस्रस्य प्रभासि सहस्रस्य प्रतिमा असि सहस्रस्योन्मासि सहस्रायत्वा।। यजुर्वेद 15।35।" सहस्रों का तू प्रभा है, सहस्रों की प्रतिमा है, सहस्र का उन्मान है, सहस्रार्ह है, सहस्र फल देने वाला है। "अभयं वा एतत्प्रजापतिर्निरुक्तश्च परिमितश्च अपरिमितश्च ...। श का 14 अ 1 ब्रा 2 मं 18।" "द्वावेव ब्रह्मणे रूपे मूर्तञ्चामूर्तञ्च...। अ 2 ब्रा 3 कं 1।" "रूपं रूपं प्रतिरूपो वभूव तदस्यरूपं प्रतिचक्षणाय। ऋ मं 6 अ 4 सू 47।" "याते रुद्र शिवा तनूरघोरा पाप काशिनी। यजु 16।2।49।" हे रुद्र ! तेरा शरीर कल्याण करने वाला है, सौम्य है, और पुण्य फल देने वाला है। "आदित्यं गर्भं पयसा समङ्धि सहस्रस्य प्रतिमां विश्वरूपम्। यजु 13।40।" विश्व स्वरूप आदित्य को पय में स्थापित करे। वह सहस्रों की प्रतिमा है। "अजात इत्येवं कश्चिद्भीरु प्रपद्यते। रुद्र यत्ते दक्षिणं मुखं तेन मां पाहि नित्यम्।" इस मन्त्र में रुद्र के मुख का वर्णन है। किसी के साकार रूप विना मुख या किसी अंग का होना असम्भव है।
प्रश्न 3 - जब निराकार के ध्यान से भी मुक्ति हो सकती है तब मूर्त्ति पूजा की विडम्बना में लोग क्यों पड़ते हैं ?
उत्तर 3 - किसी के ध्यान में तीन पदार्थ का ध्यान आवश्यक है। ध्याता, ध्यान और ध्येय। इन तीनों के ज्ञान विना ध्यान बन नहीं सकता है। अतः साकार में ही ध्यान बन सकता है।
प्रश्न 4 - यदि परमात्मा साकार है तो किसके आधार पर ठहरा हुआ है ? साकार को आधार अवश्य चाहिए।
उत्तर 4 - यदि निराकार ब्रह्म को आप सभी व्यापक मानते हैं तो उसका भी कोई आधार होना चाहिए अन्यथा उसकी व्यापकता सिद्ध नहीं हो सकती। अतः निराकार का भी आधार अवश्य मानना होगा। वही आधार साकार का भी होगा।
प्रश्न 5 -यदि वेदों से मूर्त्ति पूजन सिद्ध है तो वह वैदिक मंत्र बताइए कि जिसमें ईश्वरादि को पाषाणादि की मूर्त्ति बनाने का वचन हो।
उत्तर 5 - "अथ मृतपिण्डमुपादाय महावीरं करोति मखायत्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। प्रादेशमात्रं प्रादेशमात्रमिवहि शिरोमध्ये संगृहीतम्, मध्ये संगृहीतमिवहि शिरोऽथास्य उपरिष्टात्त्र्यङ्ल मुखमुन्नयति। नासिकामेवास्मिन्नेतद्दधाति तं निष्ठतमभि मृषति मखस्य शिरोऽसीति। शतपथ ब्राह्मण।" मिट्टी का पिण्ड लेकर "मखा यत्वा नखस्य त्वा शीर्ष्णे" मन्त्र पढ़कर प्रादेश मात्र लम्बा यज्ञरूप प्रजापति के शिर महावीर को बनावे। बीच में संकोच करे। इससे तीन अंगुल ऊपर मुख बनावे और उसके ऊपर नासिका बनावे। "पश्चात्मखस्य शिरोऽसीति" पढ़कर दायाँ हाथ से मूर्त्ति स्पर्श करे। इस प्रकार पुरुषाकार मूर्त्ति बनाने का संविधान वेदों में अनेकानेक पाया जाता है।
प्रश्न 6 - यदि ईश्वर साकार है साकार की भांति प्रत्यक्ष रूप में क्यों नहीं दीख पड़ता ?
उत्तर 6 - ईश्वर साकार है और उत्तम उपासकों द्वारा देखा भी अवश्य जाता है। अर्जुन आदि सद्भक्तों ने उसके विराट्रूप का दर्शन किया था। इसलिए "नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि।" इत्यादि मन्त्रों में वायु आदि रूपों में ब्रह्म को प्रत्यक्ष बतलाया गया है। काम क्रोधादि ग्रस्त व्यक्तियों को ईश्वर का प्रत्यक्ष दर्शन नहीं हो तो इसमें ईश्वर का क्या दोष। "नैष स्थाणोरपराधो यदेनमन्धोन पश्यति। (निरुक्त) ।" "विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञान चक्षुषः। गी 15।10।" ईश्वर विश्वरूप में प्रकट होकर सबों के प्रत्यक्ष ही हैं।
प्रश्न 7 - यदि मूर्त्ति पूजन वेद विहित है तो पूजारी शालिग्राम वेंकटेश्वर आदि शब्दों का क्या अर्थ है ?
उत्तर 7 - पूजारी शब्द का अर्थ पूजा का अरि याने शत्रु समझना महान भूल है। इस शब्द से ह्रस्व इकार नहीं है दीर्घ ईकार वाला संस्कृत का शब्द है। इसकी बनावट इस प्रकार जानना चाहिए। "पूजाया ः अरो = ज्ञानं पूजारः।" "ऋगतौ" धातु से "ऋदोराप्" पाणिनीय सूत्र से अप्प्रत्यय होता है। गति का ज्ञान, गमन प्राप्ति आदि अर्थ होता है। "अतः प्रशस्त पूजारः अस्यास्तीति पूजारी" अर्थात् सम्यक् देव पूजा विधि और तत्व विज्ञाता को पूजारी कहते हैं। पाणिनीय सूत्र "अत इनि ठनौ" इससे इन्प्रत्यय के द्वारा

पूजारी शब्द बनता है। अथवा "पूजायाः रोदानं पूजारः" रादानो धातु से घञर्थ में 'क' प्रत्यय होता है। पुनः मत्वर्थीय इन् के द्वारा उक्त शब्द की सिद्धि होगी। अर्थात् पूजा का फल अपने स्वामी को अर्पण करे या पूजा प्रसाद तुलसी पत्रादिक जो भक्तों को वितरण करे उसको पूजारी कहते हैं। इसी प्रकार प्रशंसा अर्थ वाला शाल धातु से शाल शब्द बना है और ग्राम शब्द समूहार्थक है। अतः "शालानां = प्रशंसानां ग्राम-समूहो यस्मिन्स् शालग्रामो भगवन्मूर्त्ति विशेष गण्डक्याम्नद्यामुत्पन्नो मोक्षार्थिभि पूज्यः उपास्यश्च अर्थात् मोक्षार्थियों के उपास्यदेव गण्डकी नदी में होने वाले स्वयंव्यक्त भगवान की मूर्त्ति विशेष।

प्रश्न 8 - निश्चेष्ट पाषाणादि की मूर्त्तियों में क्या कोई शक्ति है कि उसकी पूजा की जाती है ?

उत्तर 8 - आर्य समाजी लोग यह समझते हैं कि सनातन धर्मी केवल पाषाणादि की मूर्त्ति की पूजा करते हैं वह महान भूल है। बल्कि हमलोग मूर्त्तिमान सर्वशक्ति सम्पन्न परब्रह्म परमेश्वर की पूजा उनकी प्रसन्नता के लिए किया करते हैं। जिस ब्रह्म में अनेकों अघटित घटना शक्ति है, इस विषय में वैदिक प्रमाण है -

"यः पृथिव्यां तिष्ठन्यः पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरम्। यः पृथिवीमन्तरो यमयति।"

"भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः। भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पंचमः"।

"तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्, तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।"

इन प्रमाणों से सर्वशक्तिमान ईश्वर की शक्ति स्पष्टतया झलकती है। सम्पूर्ण सृष्टि की स्थिति, पालन और संहार करने की शक्ति उसी ईश्वर में है -"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रत्यामि संविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व ब्रह्म इति।" इसीलिए ब्रह्म - सूत्र - कर्ता भगवान वेद व्यास ब्रह्म के सम्वन्ध में परिचय यों दिए हैं - "जन्माद्यस्य यतः।1।1।2।"

प्रश्न 9 - पाषाण मूर्त्तियों में पडित लोग जो वैदिक मन्त्रों से प्रतिष्ठा करवाते हैं तो क्या मूर्त्ति में प्राण आ जाता है ? यदि ऐसी बात है तो उसमें नश नाड़ी का परिज्ञान होना चाहिए ?

उत्तर 9 - प्राण शक्ति दो प्रकार की होती है। एक स्थूल और दूसरा सूक्ष्म। योगियों की समाधि अवस्था तथा वृक्ष वनस्पति कन्दमूल फलादिकों में सूक्ष्म प्राण शक्ति रहती है किन्तु नश नाड़ी का परिज्ञान नहीं होता। योगियों की समाधि मास वर्षो की होती है। उस अवस्था में वे जीवित रहते हैं किन्तु निश्चेष्ट होकर। इसी प्रकार मूर्त्ति में सूक्ष्म प्राण शक्ति ही मन्त्र द्वारा प्रतिष्ठित होती है। अतः नश नाड़ी का परिज्ञान वहां नहीं होता।

प्रश्न 10 - सर्वव्यापक ईश्वर को एक छोटा स्थान मन्दिर में रहना समझ कर पूजनादि करना क्या उनकी व्यापकता को सीमित करना नहीं है ? या अपने विचार को संकुचित करना नहीं हुआ ?

उत्तर 10 - ईश्वर अपने भक्तों के कल्याणार्थ पांच रूपों में विद्यमान रहते हैं - **1**। पर, **2**। व्यूह, **3**। विभव, **4**। अन्तर्यामी और **5**। अर्चा।

1। पर - 'पर' वासुदेव वैकुण्ठ में भू नीलादि देवियों के साथ नित्य मुक्त जनों को सदा अनुप्राणित करते रहते हैं - **"वैकुण्ठे तु परे लोके श्रिया सार्ध जगत्पतिः। उभाभ्यां भूमि नीलाभ्यां सेवितः परमेश्वरः।।"**

2। व्यूह - सृष्टि के स्थिति पालन संहार के लिये षड्गुण सम्पन्न ईश्वर दो दो गुणों के साथ संकर्षण प्रद्युम्न और अनिरुद्ध तीन रूपों में अवतरित होते हैं। इन्हीं तीन मूर्त्तियों के साथ पर वासुदेव को मिला देने से चतुर्व्यूह संज्ञा हो जाती है। **"चतुर्विधः सभगवान मुमुक्षूणां हिताय वै। अन्येषामपि लोकानां सृष्टि स्थियन्त सिद्धये।"**

3। विभव - भक्तों के विशेष कार्यार्थ तथा दुष्टों के संहारार्थ वही ईश्वर राम कृष्ण नृसिंहादि रूपों में अवतरित होते हैं।

4। अन्तर्यामी - सबों के हृदय में बैठकर नियमन करते रहते हैं अर्थात् सबों को सदा यह निर्देश देते रहते हैं कि तुम शुभ या अशुभ कर रहे हो। **"यः आत्मानमन्तरो यमयति, अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानाम्, शास्ता विष्णुरशेषस्य जगतो यो हृदि स्थितः।"**

5। अर्चा - चेतनों के विशेष अभिमत सुलभतया सिद्धि के लिए उनसबों के पूर्व पापों को नहीं विचारते हुए देश काल तथा अधिकारी आदि की अपेक्षा बिना केवल अपनी निर्हेतुक कृपा द्वारा भगवान अर्चकाधीन होकर मन्दिर में अर्चारूप में परिणत हो गये। अर्चा के दो भेद हैं। एक **स्वयंव्यक्त भगवान्**, जैसे - **रंगनाथ, वेंकटेश, जगन्नाथ, बद्रीनारायण, शालिग्राम** आदि। दूसरा

प्रतिष्ठित भगवान - पाषाणादि निर्मित मूर्त्ति जिसमें प्राण प्रतिष्ठा की गयी है। ईश्वर के इन पांच भेदों में चेतनों के परम कल्याण कारक अर्चा विग्रह ही हैं। क्योंकि पर व्यूह विभव और अन्तर्यामी का ध्यान दर्शन एवं पूजन सर्वथा असंभव है और अर्चा को सुलभ। यद्यपि उक्त सभी रूपों में वही सर्वशक्ति सम्पन्न ईश्वर रहते हैं फिर भी जैसे गौ के सर्वांग में दूध की व्यापकता रहते भी केवल थन से ही दूध प्राप्त किया जा सकता है। उसी प्रकार चेतनों के कल्याण के लिए उपजीव्य केवल अर्चा विग्रह ही हैं। ऐसी परिस्थिति में मन्दिर में भगवान का रहना कैसी उनकी व्यापकता को सीमित करना हुआ, अथवा इस तरह के विचार रखने वालों का विचार ही कैसे संकुचित हुआ ? इस विषय को संकुचित समझने वालों की महान भूल है।

इस प्रकार अनेकों प्रश्न आर्यसमाजियों ने किया था। कई दिनों तक शास्त्रार्थ होते रहे, किन्तु समुचित उत्तर मिलते गये जिससे सबों को हार माननी पड़ी। आकाश में उछाला कीचड़ अपने ही माथे पड़ता है। सबों का मुख बन्द हुआ। इस शास्त्रार्थ में वृन्दावन के सुदर्शन शास्त्री जी के विद्यार्थी श्री गोविन्द नारायण जी भी थे। इन्होंने आर्यसमाजियों के सत्यार्थ प्रकाश से ही मुंहतोड़ उत्तर सबों को दिए थे। यद्यपि इस मुठभेड़ में आर्यसमाजी परास्त हुए थे फिर भी वे सभी श्री गोविन्द नारायण जी तथा श्री स्वामी जी महाराज की विद्वत्ता की भूरि भूरि प्रशंसा किए थे। इस तरह के संघर्षो के पश्चात् श्री स्वामी जी महाराज की ख्याति और बढ़ी। ग्रामसिंहों की चिल्लाहट दूर हुई। इसी अवसर पर क्षेत्रीय लोगों की अज्ञानता दूर करने के लिए तरेत में विद्यालय खोला गया था जिसकी चर्चा पूर्व में हो चुकी है।

श्रीमते रामानुजाय नमः

श्रीस्वामी जी महाराज का योगाभ्यास

स्थान - वृन्दावन धाम से दक्षिण यमुना के पश्चिम तट भतरौढ़ नामक स्थान जहां मथुरा की ब्राह्मण स्त्रियों ने श्रीकृष्ण को भोजन कराया था।

1। शरीर पांच भौतिक है। पांच भूतों का संमिश्रण। पंचीकरण कहते हैं। आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी ये ही पांच भूत हैं।

2। **सात धातुयें हैं - 1-** रस, **2-** शुक्र इसके जगह को **1** लोम, **2** चर्म, **3** रुधिर, **4** मांस, **5** हड्डी, **6** मज्जा, **7** मेद। **"सप्तत्वगष्ट विटपो नवाक्षः।** भागवत **10।2।27।"**

3। **इस शरीर में साढ़े तीन लाख नाड़ियाँ हैं - "सार्द्धत्रयलक्षनाड्यः सन्ति देहान्तरे नृणाम्। प्रधानभूता नाड्यस्तु तासु मुख्याश्चतुर्दश।।"**

4। **प्रधान चौदह ये हैं - 1** सुषुम्ना, **2** ईडा, **3** पिंगला, **4** गान्धारी, **5** हस्तिजिह्वा, **6** कुहू, **7** सरस्वती, **8** पूषा, **9** शंखिनी, **10** पयस्विनी, **11** वारुणा, **12** अल्मवुषा, **13** विश्वोदरी, **14** यशस्विनी।

5। **शरीर में सात पद्म हैं - 1** चतुर्दल पद्म, **2** षटदल पद्म, **3** दशदल पद्म, **4** द्वादशदल पद्म, **5** षोडश दल पद्म, **6** द्विदल पद्म, **7** सहस्रदल पद्म। ये सभी भगवान के प्रकाश से प्रकाशित रहते हैं।

6। **द्विदल पद्म भूमध्य में है।** यहीं से 'ॐ' प्रणव बीज का उच्चारण होता है। यही महत्तत्व स्थान है। यहीं से सभी तत्व प्रकट होते हैं और पुनः यहीं पर विलीन हो जाते हैं। यहां ज्योति ही ज्योति करोड़ो सूर्य के समान चमकती रहती है - **"नारायण परो ज्योति...।"**

7। **पद्मों के अधिष्ठाता देव नारायण और अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी हैं।** साधक गणों को चाहिए कि वे चित्त वृत्ति निरोध पूर्वक वायु को धीरे धीरे मूलाधार से प्रत्येक पद्म होते हुए सहस्रदल कमल तक ले जाने उपर्युक्त दोनों देवों का ध्यान पूर्वक अभ्यास करे। **8। मस्तिष्क में आठ सत्तायें गुप्त हैं।** जिनको योगी जन ही योग विद्या से ही जानते हैं। और यही आठों द्वारा आठ सिद्धियाँ भी योगियों को मिलतीं हैं।

9 | **शरीर में सात शक्तियाँ हैं -** 1 आश्रमिका, 2 स्वसंरक्षिणी, 3 स्वोत्कर्षिणी, 4 सत्प्रवर्तिनी, 5 मनः प्रवर्तिका, 6 बुद्धि प्रवर्तिका, विषय ग्राहिणी, 7 विवेचनी |

10 | सत्प्रवर्तिनी शक्ति के पांच भेद हैं जिसमें एक आत्मज्ञान सत्ता है। इस सत्तावाले और भक्ति सत्ता वाले का मस्तक का मध्यभाग ऊँचा और उठा हुआ होता है। वे सदा आत्मा और परमात्मा में विश्वास रखते हैं।

11 | विवेचनी शक्ति के चार भेद हैं जिसमें एक न्यायसत्ता है। इस सत्तावाले का ललाट का अग्रभाग विशाल और ऊँचा होता है। वह बुद्धिमान, न्यायशास्त्र में प्रवीण, ब्रह्म सृष्टि का आदि कारण सिद्धान्त करने वाला और चित्तवृत्तियों का निरोधक होता है। जिसमें यह सत्ता पूर्णमात्रा में रहती है वह नवीन विद्याओं का आविष्कारक होता है। जैसे कपिल ने सांख्य, व्यास ने वेदान्त, और भास्कराचार्य ने पृथ्वी का आकर्षण निकाला है।

12 | मेरुदण्ड की वाहर की ओर वाम और दक्षिण भाग में चन्द्र और सूर्य से अधिष्ठिता दो नाड़ियाँ ईडा और पिंगला हैं। ईडा मेरु की बायीं ओर से और पिंगला दाहिनी ओर से लिपटी हुई हैं। फिर इसी मेरुदण्ड के मध्य में सुषुम्ना नामकी नाड़ी है जो सत्व रज और तम इन तीनों गुणों से युक्त है। अथवा तीन गुण के सूत वा रज्जु ऐसी लिपटी हुई चन्द्र सूर्य और अग्नि से अधिष्ठित तथा अत्यन्त प्रकाशमान है। यह सुषुम्ना नाड़ी धथूर के पुष्प सदृश खिली हुई मूल द्वार से निकल कर दोनों कन्धों के मध्य होती हुई मस्तक में सहस्रदल कमल तक चली गयी है। इसी के मध्य एक वज्रा नामकी नाड़ी भी है जो लिंग देश से निकलकर मस्तक तक चमकती हुई लगी रहती है। इस वज्रानाड़ी के मध्य प्रणव अर्थात् ॐकार युक्त मकरे के सूत ऐसी पतली योगाभ्यास द्वारा योगियों को ही विदित होनेवाली चित्रिणी नामकी एक तीसरी नाड़ी है जो मेरुदण्ड मध्यस्थ षट्चक्रों को भेदती हुई प्रकाशमान हो रही है। इसी के मध्य एक चौथी ब्रह्म नामकी नाड़ी है जो प्रसिद्ध षट्पद्मों को माला के समान पिरोती हुई और साधकों को शुद्ध ज्ञान देती हुई सहस्रदल कमल की कर्णिका में स्थित आदिदेव नारायण के समीप चली गयी है।

13 | पृथिवी चक्र के गोद में प्रातःकालीन सूर्य सदृश श्यामवर्ण बालस्वरूप सृष्टि कर्त्ता नारायण अपनी चारों भुजाओं में शंख चक्र गदा और पद्म इन आयुधों से युक्त गरुड़ पर विराजमान हैं ऐसा समझना चाहिए। **"यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्व वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।" "मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये।"**

14 | पुनः चतुष्कोण चक्र के पृथिवी बीज में ब्रह्मा की अपूर्व शक्ति अत्यन्त प्रकाशमान चार भुजाओं वाली रक्त नयना प्रलय काल के द्वादश सूर्य के समान तेजस्वी प्रकाशमान हो रही है। और शुद्ध बुद्धि जो शिशु रूप ब्रह्मा, उसको प्रकाश दे रही है। अर्थात् सृष्टि रचने की सत्ता दे रही है। क्योंकि बिना शक्ति के कोई भी देव कुछ करने को समर्थ नहीं है। अथवा शुद्धबुद्धि जो योगीजन, उनको ईशित्व सिद्धि प्रदान कर रही है।

15 | मूलाधार पद्म के गह्वर में अत्यन्त श्रेष्ठ प्रकाश धारण किए हुए कमल नाल की सूत सी अत्यन्त पतली सुषुम्ना नाड़ी के मुख को अपने मुख से ढंकते हुए शंख के आवेष्टन ऐसी कुण्डलिनी है। यह अत्यन्त सुन्दर काव्य रचना शक्ति देने वाली और श्वासोच्छ्वास द्वारा अर्थात प्राण अपान के गमन द्वारा जीवों के प्राण को धारण करती है। इसी कुण्डलिनी के मध्य अत्यन्त ज्ञान प्रकाशक विद्युतमाला के समान रश्मियों से प्रकाशमान नारायण श्रीदेवी के साथ अपनी कृपा कटाक्ष द्वारा जीवों का अभ्युदय कर रहे हैं।

16 | मूलाधार चक्र की कर्णिकास्थित त्रिकोण यन्त्र में कुण्डलिनी के मध्य करोड़ो सूर्य के समान प्रकाशमान नारायण और महालक्ष्मी का जो ध्यान करता है वह वचन में वृहस्पति के समान वक्ता, मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ शीघ्र सभी विधाओं को जानने वाला, काव्य प्रबन्ध में निपुण एवं नारायण की भक्तिवाला वह हो जाता है।

17-ध्यान करने वालों को चाहिए कि कम से कम पांच मिनट एक-एक चक्र पर ध्यान द्वारा चित्तवृत्ति को ठहराते हुए चतुर्दल कमल से सहस्र पर्यन्त आधा घन्टा में जाये। ऐसा अभ्यास करने से प्राण और मन दोनों का ऐसा अवरोध हो जाता है जिसका

आनन्द अकथनीय है।

18- सुषुम्ना नाड़ी के मध्य जो चतुर्दल पद्म के ऊपर दूसरा पद्म छः दल का है, इसको अधिष्ठान चक्र कहते हैं। यह पद्म कोमल सिन्दूर के रंग के समान गुलाबी रंग से सुशोभित है। इसके छवों दलों पर श्री विष्णु भगवान चतुर्भुज नील प्रकाश से प्रकाशित अर्थात् श्यामवर्ण शरीर अत्यन्त सुन्दर युवावस्था से गर्वित पीतवस्त्रधारी, हृदय में श्रीवत्स और कौस्तुभ मणि धारण किए शोभायमान हो रहे हैं।

19- उक्त चक्र से ऊपर नाभि के मूल में नीलवर्ण प्रकाशित दशदल का कमल है। इस चक्र के मध्य में बालसूर्य के समान लक्ष्मी सहित विष्णु का ध्यान करना चाहिए। यह मणिपूरक चक्र है।

20- मणिपूरक चक्र के ऊपर हृदय में अति सुन्दर वन्धूक (दुपहरिया) फूल के समान लालवर्ण द्वादश दल का एक कमल है। इसका नाम अनाहत चक्र है। यह कल्पवृक्ष के समान फलदायक है। इसी के ऊपर जीवमात्र के मुक्तिदाता श्रीलक्ष्मी नारायण विद्यमान हैं।

21-षोडशदल कमल के मध्य गोलाकार आकाशमण्डल है। यह पूर्ण चन्द्र के प्रकाश से प्रकाशित हो शोभ रहा है। इसी स्थान में शुक्ल वस्त्र धारण किए चतुर्भुजी विष्णु चारों पदार्थों के दाता शोभायमान हो रहे हैं। पुनः इसी कमल की कर्णिका में निष्कलंक षोडशकला युक्त पूर्णचन्द्रमण्डल शोभायमान हो रहा है। जो सफल श्री वा पराक्रम के अभिलाषी जितेन्द्रिय पुरुषों का मोक्ष का द्वार है।

22- भ्रूमध्य में प्रकाशमान ललाट स्थान में दो दल का एक कमल चन्द्रमा के समान शुक्ल वर्ण का है। इसी को आज्ञाख्य पद्म कहते हैं। इसके एकदल पर विष्णु, दूसरे दल पर लक्ष्मी रहती है। ये दोनों आश्रितों को अभिलषित पदार्थ एवं मोक्षदाता हैं। भगवान् को इस स्थान में ध्यान करने से दिव्यलोक मिलता है। "**भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्, सतं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्। गी 8।10।**

23- शंखिनी नाड़ी मूल द्वार में स्थित है और वहां से सीधे ब्रह्माण्ड तक चली आयी है। उसीके शिखर पर सहस्रदल वर्त्तमान है। अर्थात् ब्रह्माण्ड में फैला हुआ विसर्ग नामकी शक्ति के नीचे अत्यन्त प्रकाशमान सहस्रदल कमल है जो अधोमुखी है। प्रातःकालीन बालरवि की भांति सुशोभित हो रहा है।

24- उक्त ब्रह्म को जो परम प्रकाशमान हैं और इसी स्थान में निवास किए हुए हैं उनका चिन्तन करना चाहिए। भगवद्भक्त लोग इसी ब्रह्माण्डस्थल को भेदन करके अर्चिरादि मार्ग को ग्रहण करते हैं। अर्थात् विरजापार पर वासुदेव भगवान को प्राप्त करते हैं।

श्रीमते रामानुजाय नमः

श्रीस्वामी जी महाराज की तीर्थयात्रा

देहधारियों के लिए तीर्थ यात्रा दो प्रकार की होती है। एक तो सर्व साधारण के पाप प्रक्षालन के लिए, दूसरी भगवत्प्रेमी लोगों के लिए। यों तो श्री वैष्णव पादप्रक्षालित जल से बढ़कर किसी तीर्थ का शुद्ध जल नहीं है -

"**नान्यत्परतरं तीर्थं वैष्णवांघ्रिजलाच्छुभात्। तेषां पादजलं शुद्धं गंगामपि पुनाति हि।।**"

"**तिस्रः कोट्यर्ध कोटीच तीर्थानां भुवनत्रये। वैष्णवांघ्रिजले पुण्ये कोटिभागेन नो समाः।**"

तीनों लोकों में साढ़े तीन करोड़ तीर्थ प्रसिद्ध हैं। किन्तु ये सभी मिलकर भी श्रीवैष्णव पादप्रक्षालन जल के करोड़वाँ भाग के वरावर नहीं हैं। सीताहरण काल में श्री रामजी वृक्षादिकों से पूछते चलते थे कि सीता को इधर कोई देखो हो ? इसी क्रम में गोदावरी से भी पूछे, किन्तु वह उत्तर नहीं दे सकी तो उसे शाप दे दिए तुम अपवित्र हो जाओ। जब पुनः गोदावरी भगवान् के चरणों पर गिरी तो वे कहे कि तुम शबरी के पादप्रक्षालन जल से शुद्ध होगी और ऐसा ही हुआ भी।

श्रीवैष्णवों की तीर्थ यात्रा तीर्थों को पवित्र करने एवं लोक संग्रह तथा शास्त्र मर्यादा की रक्षा के लिए होती है। जैसे जटायु को मोक्ष देने पर भी भगवान शास्त्र मर्यादा के रक्षार्थ उनका श्राद्ध तर्पण भी किए। "**नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिला मया। ते पुनन्त्युरुकालेन**

दर्शनाद्देव साधवः।।" तीर्थ देवादि बहुकाल पश्चात् पवित्र करते हैं किन्तु महत्पुरुष तो दर्शन देते ही पवित्र कर देते हैं। "**भगवन्भवतो यात्रास्वस्तये सर्वदेहिनाम्।**" महत्पुरुषों की यात्रा जीवमात्र, जड़-चैतन्य, पशु-पक्षी, कीट-पतंगादि तथा वृक्ष लता गुल्मादिकों के भी कल्याणार्थ होती है।

" **यं यं स्पृशति पाणिभ्यां यं यं पश्यति चक्षुषा। स्थवराण्यपि मुच्यन्ते किं पुनर्ब्राह्मणाः जनाः।।** " सन्त जन जिसको देखते हैं, जिसको स्पर्श करते हैं, उन-उन जड़ वृक्षादिकों को भी मुक्ति मिल जाती है। अन्य भक्तिमान जनों की बात क्या। तीर्थ पापियों का पाप छुड़ाता है न कि तीर्थ बनाता है किन्तु सन्त जन तो अपने ही समान सन्त बना देते हैं। श्री स्वामी यामुनाचार्य जी पदयात्रा किया करते थे। इन्हीं की पदयात्रा की कथा है कि वे एक समय अपनी मण्डली के साथ यात्रा-क्रम में एक स्थान पर आटिके थे। समीप में ही हल जोतते एक हलवाहक को देखे जिनका नाम स्वामी रामनेर था। वे भूख की अवस्था में फाल के अग्र में लगी मिट्टी छोड़ा-छोड़ा कर खा रहे थे। यह देखकर श्री स्वामी यामुनाचार्य जी पूछे, यह क्या करते हो ? उत्तर मिला, मिट्टी को मिट्टी में मिलाता हूँ। पुनः पूछे ऐसा क्यों ? उत्तर - अन्न खाने को नहीं है। अतः जठराग्नि शान्त कर रहा हूँ। जो भोजन का अन्न था किसी भूखे को खिला दिया। इस प्रकार की उनकी बातें सुनकर वे इनको अपना लिये जिससे इन्हें छुटकारा मिला। भाष्यकार स्वामी श्री रामानुजाचार्य जी की भी यात्रा इसी प्रकार की होती थी।

श्री रंग करिशैल मज्जन गिरौ, शेषाद्रि सिम्भाचलम्। श्री कुर्म पुरुषोत्तमञ्च बदरी, नारायणं नैमिषम्।।
श्रीमद्वारवती प्रयाग मथुरा, अयोध्या गया पुष्करम्। शालग्राम निवासिनो विजयते, रामानुजोऽयं मुनिः।।

श्री स्वामी भाष्यकार का देशाटन एवं दिग्विजय दोनों साथ ही साथ हुआ था। इसी प्रकार श्री स्वामी जी महाराज भी लोक संग्रहार्थ ही यात्रा किया करते थे न कि कोई निजी स्वार्थ वस। क्योंकि - "**गंगागयानैमिषपुष्कराणि, काशीप्रयागकुरुजांगलानि। तिष्ठन्ति देहे कृतभक्तिपूर्वम्, गोविन्दभक्तिवहतां नराणाम्।।**" भगवद्भक्तों के देह में सभी तीर्थ निवास करते हैं तो उनको तीर्थाटन से क्या लाभ ? सिवा तीर्थ पवित्र करना छोड़कर।

श्रीसंवत् 1956 में श्री स्वामी जी महाराज की दूसरी यात्रा जगदीश के लिए हुई थी। आपकी यात्रा तो सतत पैदल ही हुआ करती थी। साथ में अधिक संख्या में लोग थे। सामान ढोने के लिए साथ में बैलगाड़ी थी। जगदीश पहुंचकर महान्त श्री राजगोपालाचार्य जी के बगीचा में निवास हुआ। साथ के और लोग यहां के अन्यान्य स्थानों में पड़ाव डाले। सब के सब स्थान भर गये। वहां के लोग यह कहना प्रारम्भ किए कि न मालूम कि कितने तरेत पाली के सम्बन्धित श्री वैष्णव हैं कि जिससे पूछा जाए सब के सब तरेत ही अपना गुरु स्थान बताते हैं। यह महान आश्चर्य का विषय लोगों के लिए हुआ। वहां रथयात्रा के उत्सव काल में जब भगवान का रथ निकला उस समय श्री स्वामी जी महाराज रथ के दायें तरफ अपनी परमहंस वृत्ति में शुक्ल कटिवस्त्र और वैसी ही एक चादर ओढ़े खड़े थे जबकि दूसरी तरफ सब के सब वहां के महान्त गण सुन्दर-सुन्दर वस्त्रादिकों से सुसज्जित खड़े थे। श्री स्वामी जी महाराज की दृष्टि तो भगवान् की ओर लगी थी किन्तु और दर्शकों की दृष्टि भगवान् की ओर से श्री स्वामी जी महाराज के अलौकिक अकृत्रिम दिव्यमंगलविग्रह की ओर वलात् आकर्षित हो रही थी। ऐसी ही उनकी शोभा निखरती थी। "**अवनि आंखतर आव न कोई।**" "**भये कोउ अहहि न होनेउ हारा।** मानस।बा।**293**।**3**।" "**यह शोभा समाज सुख कहत न बनै** खगेश।मानस।उ।**12**।"

दर्शकों को श्री स्वामी जी महाराज के दर्शन से नेत्र तृप्त नहीं होते थे। इश वर्ष का चार्तुमास (वर्षाकालीन समय) यहीं जगदीश में ही व्यतीत हुआ। इस अवसर पर यहां के सभी पण्डे पूजारियों के यहां तरेतपाली की ही चर्चा चलती रहती थी। यहां के धनाढ्य से भी धनाढ्य मठाधीश्वर यही आश्चर्य में पड़े रहे कि हम सब धनाढ्य होकर क्या किए कि एक दिन भी इतने वैष्णवों की सेवा नहीं कर सके और यह एक त्यागी जिनके पास दूसरे दिन के लिए भोजनादि का संग्रह नहीं रहता किन्तु वे इतने वैष्णवों की सेवा कर लेते हैं। यह महान आश्चर्य की बात है।

यहां से दक्षिण भारत की यात्रा प्रारंभ हुई। इधर प्रदेश में वर्षा नहीं होने के कारण सर्वत्र दुर्भिक्ष छाया था। अतः द्वितीय वर्ष का

चातुर्मास बराबर यात्रा में ही व्यतीत हुआ। दक्षिण भारत में जितने भी दिव्यदेश हैं सर्वत्र जाकर दर्शन सेवा किया करते थे। धीरे-धीरे मण्डली में साधुओं की संख्या बढ़ती गयी और सामान ढोने के लिए बैलगाड़ियाँ भी बढ़ायीं गयीं। तृतीय चातुर्मास हैदराबाद में व्यतीत हुआ। जहां भी मण्डली जाती थी लोग आश्चर्य में पड़ जाते थे कि कहां तो त्यागी धन संग्रह नहीं करने वाला साधु , और दूसरी ओर इतनी बड़ी मण्डली का भरण पोषणभार, यह सचमुच श्री स्वामी जी महाराज की अलौकिकता है। चतुर्थ चतुमास बम्बई के माटूंगा में व्यतीत हुआ। यह यहां का एक महल्ला तथा स्टेशन भी है। यहां सन्तों की संख्या और भी बढ़ी किन्तु सबों की सेवा में किसी प्रकार का अन्तर नहीं पड़ा। यहां तो यह भी परिस्थिति आयी कि भक्तों को सन्तों की आराधना के लिए अपना-अपना नाम लिखाकर पंद्रह पंद्रह दिनों की प्रतीक्षा करनी पड़ती थी और तब कहीं उनका स्वागत सामान स्वीकृत होता था। इन्हीं भक्त समूहों में एक रामदास नामक अन्त्यज (धोबी) भक्त भी अपना नाम लिखा गया। किन्तु जब उसकी बारी आयी तो उसके अशोभनीय व्यवहारवश उसका सामान नहीं स्वीकृत हुआ। हालां कि उसको धनी होने के नाते लोभी सन्त महान्त उसका स्वागत सामान स्वीकार किया करते थे। किन्तु जब श्री स्वामी जी महाराज के इस प्रकार के व्यवहार से लोग शिक्षित हुए तो अपनी-अपनी भूल समझे। यह समाचार सर्वत्र फैला, श्री स्वामी जी महाराज का त्याग और निखरा। इनके लिए कर्त्तव्य पथ के सामने अर्थाभिलाषा तुच्छ वस्तु थी। यहां से जब श्री स्वामी जी महाराज चलने के लिए प्रस्तुत हुए तो यहां के धनीमानी भक्त सेठों ने सम्पत्ति की बड़ी राशि भेंट की जिसको आप सन्त मण्डलियों में यह कह कर बांट दिए कि जिनको जहां कहीं भी तीर्थ स्थानों में जाना है जायें, खर्च दिया जाता है और दिया गया। आप रिक्त हाथ यहां से चले। फिर भी दो हजार के लगभग धनराशि पूजा भेंट में आयी जिसे सीधे वृन्दावन भगवान की आराधना के लिए भेज दिए। बम्बई से बाहर होने पर पुनः कुछ भक्तों ने कुछ रुपये भेंट चढ़ाये जो आगे के मार्ग व्यय में काम आये। बम्बई से चलकर द्वारका, नारायण सरोवर, प्रभास क्षेत्र आदि होते हुए पुष्कर में पहुँचे। यहीं छठा चातुर्मास व्यतीत हुआ था।

इसके पश्चात् विन्दु-सरोवर आदि तीर्थों में होते हुए वृन्दावन आए। इस समय गोवर्धन गद्दी पर श्री रंगाचार्य (श्रीबालक स्वामी) विद्यमान थे। श्री स्वामी जी महाराज की कीर्ति सर्वत्र फैली हुई थी। अतः इनको यहां आने पर सर्वत्र के दर्शनार्थी तीर्थयात्री यहां आ गये। मथुरा से वृन्दावन तक यात्रियों का तांता लगा रहता था। श्री स्वामी जी महाराज वृन्दावन के सभी स्थानों में जा-जा कर भगवान् भागवतों की आराधना करवाये थे। श्रीरंग मन्दिर में विशेष आराधनोत्सव हुआ था। जितने भी स्थायी तीर्थवासी या अभ्यागत यात्री लोग वहां थे सबों को भोजन कराया जाता था। सभी स्थानों के महान्त या अन्यान्य साधु सन्तों को यथायोग्य वस्त्र रुपये से विदाई की गयी थी। इस अवसर पर वरांव के राजा, रंगमन्दिर के पंचों में से एक आप भी पंच थे, श्री स्वामी जी महाराज के यहां आनेपर स्वागातार्थ अपना दायित्व समझकर यहां आये थे और यथाशक्ति स्वागत किए। पश्चात् अपने यहां भी एक दिन के लिए श्री स्वामी जी महाराज को विशेष निमन्त्रण देकर ले गये थे। वहां से होकर श्री स्वामी जी महाराज मार्ग के निवासियों को दर्शन दे कृतार्थ करके सातवें वर्ष तरेत पहुंचे। आपके आने से सभी भक्तों में नवजीवन का संचार हो गया। सबों का समय दर्शन सेवा सत्संगति में व्यतीत होने लगा।

कुछ ही दिनों के बाद कुछ ऐसा प्रसंग आया कि श्री स्वामी जी महाराज का जी उचट गया और वे नासिक यात्रा के लिए प्रस्थान कर दिए। धीरे-धीरे अपनी प्रक्रिया के अनुकूल वहां पहुँच भी गये। इसकी सूचना रीवाँ राज्य के देउरा ग्राम निवासी महान्त श्री रामप्रपन्नाचार्य (जो श्री स्वामी जी महाराज के गुरुभाई थे) को मिली। यह सम्वाद पाते ही श्री स्वामी जी महाराज को तरेत पुनः लौटाकर ले आने के विचार से वे भी नासिक की यात्रा किए और वहां पहुंच गये जहां श्री स्वामी जी महाराज थे। वर्षा काल वहीं व्यतीत होने लगा। इसी मध्य कभी एकान्त समय पाकर वार्ता प्रसंग में श्री महान्त जी श्री स्वामी जी से पूछे कि आप अपने को भगवत् परतन्त्र मानते हैं या स्वतन्त्र ? उत्तर मिला कि मानने की बात नहीं स्वरूप ही परतन्त्र है। पुनः प्रश्न हुआ - क्या आपका

शरीर सम्बन्धी वस्तु आपका है या श्री रंगदेशिक, भगवान् या भागवत का ? उत्तर मिला – सर्वसत्ता से भगवान् भागवत तथा आचार्य श्रीरंग देशिक का । प्रश्न – यदि आपका ऐसा सिद्धान्त है तो आपने भगवान् भागवत तथा श्री रंगदेशिक की वस्तु स्वतन्त्रता पूर्वक किसी स्वतन्त्र व्यक्ति को क्यों दे दिया ? इसका उत्तर नहीं मिला। श्री स्वामी जी चुप हो गये। संकोच में पड़ गये। पुनः उत्तर की जिज्ञासा की गयी तो उत्तर मिला – जिस विषय का प्रश्न है वह तो काम हो चुका। यह सुनकर श्री महान्त जी बोले कि यदि किसी से भूल हो जाए और उसमें सुधार की संभावना हो तो क्या उसमें सुधार नहीं किया जा सकता है ? मैं तो समझता हूँ कि उसमें सुधार नहीं करना ही दोष है। मैं इसे सुधारूंगा किन्तु आप चलने की प्रतिज्ञा करें और चलें। इस प्रकार श्री स्वामी जी महाराज को तरेत नहीं आने की इच्छा रहते हुए भी विवश कर तरेत आने के लिए वाध्य किया गया। यहां से श्री महान्त जी महाराज की आज्ञानुसार उज्जैन यात्रा की तैयारी हो गयी। सब के सब चलने को तैयार हो गये। **"को न चहै जगजीवन लाहू।"**
यहां नासिक में श्री स्वामी जी का एक स्थान था। इस स्थान के एक संरक्षक के लिए यहां के डोंगर सिंह नाग जी, सूरजीनथु, धर्म सीभवान, देवजी हीरावाला आदि भक्तों ने श्री स्वामी जी से आग्रह किये कि यहां किसी को अवश्य रहना चाहिए। अतः हम सबों की सम्मति है कि श्री वासुदेवाचार्य को आप यहां अवश्य रहने दें। किन्तु आप तो इनको छोड़ना नहीं चाहते थे और श्री वासुदेवाचार्य भी श्रीचरणों को क्षणभर के लिए नहीं छोड़ना चाहते थे। किन्तु भक्तों का आग्रह भी टालना भक्तवत्सलों के लिए असंभव था, असमञ्जस पड़ा। भक्त पारवश्यता गुण के कारण श्री स्वामी जी श्री वासुदेवाचार्य को नासिक रहने के लिए आज्ञा दिए। सुनते ही आपका हृदय कमल कुम्हलाया किन्तु **"गुरुराज्ञा गरीयसी।" "आज्ञा सम न सुसाहेब सेवा।** मानस। अयो। **300। 2"** के अनुकूल भरत जी को श्रीराम जी की आज्ञा मान अयोध्या में रहने के समान आप नासिक रहकर श्रीवैष्णवों की अटूट सेवा करने लगे। मकान आदि भी बनाये। तुलसी पुष्पवाटिका तथा अंगूर बाग भी लगाया गया। उज्जैन की यात्रा में श्री स्वामी जी की मण्डली श्री महान्त जी के अतिरिक्त रामटेकरी के महान्त श्री जगन्नाथाचार्य जी की भी मण्डली साथ थी। बीच बीच में और लोग भी साथ होते गये। मार्ग में गर्म जल का एक उनाई कुण्ड है। इसका जल अत्यन्त गर्म है। इसी के लिए लोहा के तार से घेर दिया गया है कि किसी को धोखा नहीं हो जाए। इस कुण्ड से आगे चलकर कुछ दूर पर एक विश्राम हुआ था। यहीं पर श्री जगन्नाथाचार्य को शरणागति विधि सुनने की इच्छा होने पर श्री स्वामी जी महाराज ने उन्हें सांगोपांग सुनाया था जो निम्न प्रकार है।

तापः पुण्ड्रं तथा नाम मन्त्र यागश्च पञ्चमः। अमी हि पञ्चसंस्काराः परमैकान्त्य हेतवः।।

शरणागत विधि ग्रन्थों में भिन्न भिन्न प्रकार की है। कहीं विशद और कहीं संक्षिप्त रीति से पायी जाती है। विशद में पांचों संस्कारों को पांच बार और भिन्न भिन्न काल में तथा संक्षिप्त में एक ही समय करने को लिखा है।

1। नित्य नियम के पश्चात् सुवर्ण चांदी या ताम्बा अथवा कांसे का सुदर्शन चक्र तथा शंख निर्माण कराकर कहीं भगवान् की सन्निधि में भगवान् की पूजा पश्चात् सुदर्शन और शंख को पंचामृत से स्नान कराकर वैदिक या तान्त्रिक या नाम मन्त्र से ही आवाहन और प्रतिष्ठा कर षोडशोपचार से पूजन करे। यदि पूर्व से ही प्रतिष्ठित शंख चक्र हो तो पुनः प्रतिष्ठा की आवश्यकता नहीं होती है। केवल पूजन कर लेना चाहिए।

2। स्वगृह्योक्त या पाञ्चरात्र शास्त्र विधि से एक कलश स्थापन तथा अग्नि स्थापन करना चाहिए।

3। गौ के दूध में बनी खीर से या गोघृत से एक हजार बार या **108** बार या यथा साध्य बीस ही बार मूल मन्त्र, विष्णु मन्त्र, पुरुष सूक्त, षड्क्षर या अन्य कोई भगवन मन्त्रों से अग्नि में हवन कर तर्पण और मार्जन करे।

4। शरणार्थी को भगवत सम्मुख या पूर्वाभिमुख कुशासन या अन्य किसी आसन पर बैठाकर तीर्थ पान करावे और हाथ में अक्षत नारियल या सुपारी देकर कंकण बांधे तथा माथे पर तीन बार मूल मन्त्र से जल छिड़के।

5। सुदर्शन और शंख को वेदी की अग्नि में तप्त करे तथा **108** बार मूल मन्त्र जपे और स्वयं हाथ जोड़कर तथा शरणार्थी को भी

हाथ जुड़वा कर - "सुदर्शनमहाज्वालाकोटिसूर्यसमप्रभ। अज्ञानान्धस्य मे देव विष्णुमार्गप्रदर्शय।।" यह मन्त्र उच्चारण करवा कर उसके दायें बाहुमूल में सुदर्शन से अंकन करे। पुनः "पाञ्चजन्यं महाशुभ्रं शशिकोटिनिभप्रभम्। शरणार्थीभवेत्सद्यः श्रीमत्पादयुगार्चनात्।।" यह मन्त्र उच्चारण करवा कर उसके वाम बाहुमूल में तप्त शंख से अंकन करे। पश्चात्-

6। इन दोनों आयुधों को स्नान करवा कर पुनः पूजन करे। पूर्व स्थापित कलश जल से शरणार्थी को अभिषेक कर स्वयं आचमन करे।

7। शरणार्थी को भगवान् के द्वादश नामों से द्वादश तिलक लगावे।

8। भगवान् के किसी नाम से ही शरणार्थी का नामकरण करे।

9। आचार्य सभी सम्पूर्ण भगवन् मंत्रों को अथवा मूल, द्वय, चरम मन्त्रों और इन सबों का अर्थ वैष्णव को सुनाकर आचारणीय नियमों को भी सुना दे। पश्चात् शिष्य भगवान्, गुरु और भागवतों को साष्टांग प्रणाम करे। यह संक्षिप्त क्रिया पाद्मोत्तर खण्ड (अध्याय 226) की है। इससे विशेष पांचरात्र, वृहद्ब्रह्म संहिता, पराशर उत्तर खण्ड तथा वृद्ध हारीत आदि में है। शरणागति के छः अंग हैं - "अनुकूलस्य संकल्पः प्रतिकूलस्य वर्जनम्। रक्षतीति विश्वासो गोप्तृत्व वरणं तथा। आत्मनिक्षेप कार्पण्यं षड्विधाः शरणागतिः। लक्ष्मी तन्त्र 17। 51।"

इस प्रकार अनेकों विषयों पर विचार विमर्श सतत होते रहता था। यहां से आगे की यात्रा में साथ के रसोइआ पुजारी किसी विशेष कारणवस जो यहां अव्यक्त रखा गया है छोड़कर चले गये थे। श्री स्वामी जी महाराज स्वयं भगवान् की सेवा पूजा करते हुए उज्जैन पधारे। इस चढ़ाव पर आपका पधारना जानकर अधिकाधिक संख्या में यात्रिगण यहां पहुंचे थे। जितने भी लोग संग में लग जाते थे सबों का उचित सत्कार किया जाता था। इस चढ़ाव पर से जावरा, रतलाम, मन्दसूर आदि होते हुए रीवाँ आये और यहां से पुनः तरेत आये। इसी वर्ष श्री महान्त जी महाराज (रीवाँ) चातुर्मास व्यतीत करने के लिए अपनी मण्डली के साथ तरेत आये। वृन्दावन श्रीरंगमंन्दिर के पञ्चायत के आप एक प्रमुख सदस्य थे अतः आते समय वहां के पंचायती के कागज साथ लेते आये थे। कुछ दिनों तक निवास करने के पश्चात् श्री महान्त जी महाराज तरेत के समीपवर्ती ग्रामों के मुखियों को बुलाकर स्थानीय सम्पत्ति को एक पंचायत के अधीन कर देने का परामर्श किए और वृन्दावन के पंचनामा कागज लोगों को पढ़कर सुनाए। उसे सुनकर लोग अत्यन्त प्रसन्न हुए और सबों ने यही विचार दिया कि ठीक इसी प्रकार यहां की सारी सम्पत्ति पंचायत के अधीन कर दी जाए। साथ साथ यह भी कहे कि जितना शीघ्र हो सके यह कार्य हो जाना चाहिए। सर्व सम्मति से श्री रामखेलावन शर्मा (चेसी ग्राम वासी), श्री रघुवीर प्रसाद जी (करजा ग्राम वासी), श्री गोवर्धन लाल जी (अमरपुरा ग्राम वासी), श्री दिनेश्वर उपाध्याय जी (तरेत ग्राम वासी), श्रीकैलासपति शर्मा जी (पाली ग्राम वासी), श्री वासुदेव शर्मा जी तथा श्री पं दामोदरा चार्य जी (महमदपुर ग्राम वासी) पंच चुने गये। सबों में प्रधान श्री रामखेलावन शर्मा जी चुने गये थे। सेवइत पुजारी के स्थान पर 108 श्री स्वामी वासुदेव ब्रह्मचारी जी को रखा गया था। श्री रामखेलावन शर्मा जी ने बाबू गोवर्धन लााल जी से कहा कि आप वृन्दावन की पंचायती के कागज के अनुकूल ही दूसरा कागज लिखकर तैयार करें जिस पर तरेतपाली, महमदपुर, पटना, वैदराबाद आदि जगहों की जमीन आदि सम्पत्ति लिख दी जाए और नौबतपुर में ही श्री स्वामी जी महाराज से रजिस्ट्री करवा ली जाए। ऐसा ही किया गया। इस प्रकार तरेत और उसके शाखा स्थानों को पंचायत के अन्तर्गत कर दिया गया। इस व्यवस्था से सर्वत्र प्रसन्नता छा गयी। स्थानीय खेती व्यवहारादि देखने के लिए श्री चतुर्भुज जी और श्री राम प्रपन्न जी रखे गये थे। ये लोग भगवत्कैंकर्य आचार्य - सेवा मानकर किया करते थे। कुछ दिनों के पश्चात महमदपुर का स्थान इन दोनों मूतियों को दे दिया गया था। इसके अतिरिक्त अन्यान्य सार्वत्रिक व्यवहार श्री स्वामी जी महाराज स्वयं निभाते थे। कुछ दिनों तक श्री महान्त जी महाराज यहां ठहरे थे और पंचों या अन्यान्य कार्यकर्ताओं का कार्यकलाप निरीक्षणात्मक दृष्टि से देखा करते थे कि कौन किस ढंग से और क्या करते हैं।

श्रीमते रामानुजाय नमः

यज्ञ - प्रकरण

"**वेदैश्च तुभिस्संयुक्ता व्यासस्याद्भुत्कर्मणः।**" व्यास रचित महाभारत वेद स्वरूप है। इसमें पांच रत्न हैं - "**गीता सहस्रनामञ्च स्तवराज अनुस्मृतिः। गजेन्द्र मोक्षणञ्चैव पंच रत्नानि भारते।।**" गीता, विष्णुसहस्रनाम, स्तवराज, अनुस्मृति और गजेन्द्रमोक्ष ये पांचरत्न महाभारत में हैं। इन पांचों रत्नों में यज्ञ विषय का वर्णन किया गया है। यथा -

"**भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्। सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्ति मृच्छति।** ।गी 5।29।" जो मुझको सभी यज्ञों का भोक्ता, स्वर्ग आदि सभी लोकों का स्वामी एवं सभी प्राणियों का मित्र रूप से जानता है वही शान्ति पाता है।

"**अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम्। मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम्।** । गी 9।16।" क्रतु (श्रौतयज्ञ) मैं हूँ, यज्ञ(स्मार्त यज्ञ) मैं हूँ, स्वधा (श्राद्ध में पितरों को अर्पित अन्न) मैं हूँ, मन्त्र मैं हूँ, घृत अग्नि और अग्नि में छोड़ी हुई आहुति मैं ही हूँ। औषध (यव आदि अन्नों का बना हुआ चरु पुरोडाशादि रूप हवि) मैं हूँ।

"**यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः। टदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर।** ।गी 3।9।" यज्ञ अर्थात् विष्णु के निमित्त किये हुए कर्म के अतिरिक्त अन्य कर्म में लगा हुआ ही मनुष्य कर्मो द्वारा बन्धता है। इसलिए हे अर्जुन ! आसक्ति से रहित होकर उस परमेश्वर के निमित्त सावधान चित्त से कर्म करो।

"**अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च। न तु मामभिजानन्ति तत्वेनातश्च्यवन्ति ते** ।गी 9।24।" सम्पूर्ण यज्ञों का भोक्ता और स्वामी भी मैं ही हूँ। जो मुझे अधियज्ञ स्वरूप परमेश्वर को तत्व से नहीं जानते हैं इसी से वे गिरते हैं अर्थात् पुनर्जन्म ग्रहण करते हैं।

"**यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोसि ददासि यत्। यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।** ।गी 9।27।" हे अर्जुन ! तू जो कुछ करता है, जो दान करता है, जो तप करता है, उन सबों को मुझे ही अर्पण किया करो। "**यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि** ।गी 10।25।" यज्ञों में जप यज्ञ मैं हूँ अर्थात् हमारा मन्त्र जपो।

"**ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते। एकत्वेन पृथकत्वेन बहुधा विश्वतो मुखम्।** ।गी 9।15।" कितने ही महात्मा एकत्व रूप से अर्थात् सखाभाव से और कितने ही पृथकत्व रूप से अर्थात दास्यभाव से अनेकों प्रकार के वातसल्य श्रृंगार इत्यादि भावनामय ज्ञान यज्ञ के द्वारा सर्वतोमुख अर्थात् सर्वव्यापी उपासना किया करते हैं।

" इजे च यज्ञं क्रतुभिरात्मविद्भूरि दक्षिणैः। सर्वदेवमयं देवं सर्वात्मकमतीन्द्रियम्।।
द्रव्यं मन्त्रोविधिर्यज्ञो यजमानस्तथर्त्विज। धर्मो देशश्च कालश्च सर्वमेतद्यदात्कम्।। ।भा 9।6।35-36।"

सर्वदेव सबों की पूजा, सभी प्रकार के यज्ञ, सबों की दक्षिणा, सभी प्रकार की क्रिया, सर्वमन्त्र, सर्वतन्त्र, द्रव्य, सभी विधियाँ, यजमान, ऋत्विज, देश, काल, धर्म, उपदेश, और उपदेशक इन सबों को ईश्वरात्मक जानना चाहिए। अतएव श्रुतियाँ भी ईश्वर को "**सर्वकारण कारणम्**" कहती हैं अर्थात् परमेश्वर सभी कारणों का भी कारण है।

"**येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः। तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्।** ।गी 9।23।" जो मुझ परमेश्वर को छोड़ अन्यान्य देवों के भक्त हैं और उन उन देवों का श्रद्धायुक्त पूजन किया करते हैं वे भी मेरा ही पूजन करते हैं किन्तु हे अर्जुन ! वे विधिहीन पूजन करते हैं।

"**ये यजन्ति पितृन् देवान् ब्राह्मणान् सहुताशनान्। सर्वभूतान्तरात्मानं विष्णुरेव यजन्ति ते।**" जो देवता पितृ ब्राह्मण और अग्नि की सेवा पूजा करते हैं वे सभी पूजायें सर्वान्तर्यामी विष्णु को प्राप्त होती है क्योंकि वह विष्णु प्राणीमात्र की आत्मा है।

"**यज्ञ इज्यो महेज्यश्च क्रतुः सत्रं सतां गतिः** ।वि सहस्रनाम 61।" "**यज्ञ ः - यज्ञाराधनतया भगवत्सेवनम्।** भगवान की आराधना ही यज्ञ है।निरुक्त।" "**इज्य ः - कर्मभिरर्चितः।भगवदर्चन कर्म**।निरुक्त।" "**महेज्यः - महतीज्याऽस्याव्यवधानेन इति महेज्यः।** अर्थात् सम्यक

प्रकार से भगवान की पूजा।" "**क्रतुः - आराधनं क्रियते तैस्तैरेति क्रतुः।** अर्थात् जिन जिन साधनों से भगवान् की पूजा की जाये।"

"**यज्ञो यज्ञपतिर्यज्वा यज्ञाङ्गो यज्ञ वाहनः। यज्ञभृद्यज्ञकृद्यज्ञी यज्ञभुग्यज्ञसाधनः। यज्ञान्तकृद्यज्ञगुह्यमन्नमन्नाद एव च।** वि सहस्र 117-118। यज्ञ - "**स्वारौधन धर्मसमृद्धि रिक्तानां तदर्थिनां स्वयमेव।** अर्थात् यज्ञ साधन हीन भक्तों के लिए स्वयं यज्ञ स्वरूप हैं। श्रुति कहती है "**यज्ञो वै विष्णुः।** यज्ञ स्वरूप विष्णु ही स्वयं यज्ञ कर्ता को फल देकर पोषण करते हैं।" "**यज्ञपति - यज्ञ फल प्रदः।** अर्थात् यज्ञ रक्षक एवं यज्ञ फल दाता हूँ।" "**यज्वा - असक्तानां स्वयमेव यजमानः। तेषां तु पावनायाहं नित्यमेव युधिष्ठर। उभे सन्धयेऽनुतिष्ठामि ह्यस्कन्नं तद्व्रतं मम।** हे युधिष्ठर ! मैं शक्तिहीन भक्तों के पावनार्थ उनके प्रतिनिधि हो दोनों साम सन्ध्यावन्दन करता हूँ। जैसे (पद्म पुराण की कथा) - विभीषण के बदले मैंने ही ब्रह्महत्या का प्रायश्चित किया था।" "**यज्ञवाहन - यज्ञं वाहयति इति यज्ञवाहनः।** अर्थात् यज्ञ कर्ता का सवप्रकार से यज्ञ-भार वहन करता हूँ।" "**यज्ञभृत - विकलमपि यज्ञं स्वस्मरण पूर्णाहतिभ्यां पुष्णातीति। यथा - प्रमादात्कुर्वतां कर्म प्रच्यक्त्यध्वरेषु यत्। स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः।** अर्थात् भक्तों के यज्ञ में प्रमादवश किसी प्रकार की हुई त्रुटियों को मैं पूर्ण करता हूँ।" "**यज्ञकृत - जगद्धिताय यज्ञमादौ सृजतीति यज्ञकृत्।** अर्थात् संसारहित के लिए मैंने सृष्टि के आदि में यज्ञ की स्थापना की है। जैसे - **सहयज्ञाः प्रजाः सृष्टवा पुरोवाच प्रजापतिः। अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्ट कामधुक्।** गी 3।10। प्रजापति परमात्मा सृष्टि के प्रारम्भ काल में यज्ञ सहित प्रजा को उत्पन्न कर बोले कि इस यज्ञ से तुम सब वृद्धि करो। यह यज्ञ तुम सबों की कामनाओं को पूरा करेगा।" "**यज्ञी - सर्व यज्ञानां शेषी यज्ञी** अर्थात् सभी प्रकार का यज्ञ हमारे ही निमित्त है।" "**यज्ञभुक्- यज्ञान्भुंक्ते।** अर्थात् सभी यज्ञों का भोक्ता मैं ही हूँ।" "**यज्ञसाधन - अस्य ज्ञान द्वारा सिद्धयुपाया इति**अर्थात् मैं ज्ञान द्वारा सर्वयज्ञों का सिद्धोपाय हूँ।"

"**सहस्रार्चिः सप्तजिह्वः सप्तैधाः सप्तवाहनः।** वि सहस्र 102।" "**सहस्रार्चि -** पाचन शोषण प्रतापन प्रकाशन इत्यादि धर्म हमारी अध्यक्षता में रहते हुए सूर्य चन्द्रादि में वर्तमान है। यथा -

"**अग्निषोमात्म संज्ञस्य देवस्य परमात्मनः। सूर्याचन्द्रमसौ विद्धि साकारौ लोचनेश्वरौ।।**
यदादित्य गतं तेजो जगद्भासयेतऽखिलम्। यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्।।"
अर्थात् अग्नि सूर्य चन्द्र तथा इनका तेज सभी ईश्वरात्मक हैं।

"**सप्तजिह्व - तदबक्त्रं देवतानाञ्च हुतभुक्परमेश्वरः। मन्त्रपूतं यदादाय हुतमाज्य पुरः परम्।।**
ब्रह्माण्ड भुवनं सर्व सन्तपर्यति सर्वदा।" अग्नि की सात जिह्वायें हैं। इन्हीं सबों के द्वारा देवताओं को भोज्य पदार्थ प्राप्त होते हैं। इनमें प्राप्त करानेवाली शक्ति ईश्वरात्मक है।

1। दिप्ति, **2**। प्रकाशा, **3**। सौदामिनी, **4**। मरीची, **5**। तापिनी। **6**। कराली। **7**। लेलिहा। ये सात आग की जिह्वायें हैं। प्रत्येक क्रिया कलाप में भिन्न अग्नियों की स्थापना होती है। यथा -

भगवत् समवन्धी कर्म में वैष्णवाग्नि। गर्भाधान में मारुत। पुंसवन में पावन। सीमन्त में मंगल। जातकर्म में प्रवल। नामकरण में पार्थिव। अन्नप्राशन में शुचि। चूड़ाकरण में सभ्य। उप्नयन में समुद्भव। केशान्त में सूर्य। विवाह में योजक। आवस्थान में द्विज। प्रायश्चित् में विट्। पाकयज्ञ में पावक। पितृयज्ञ में कव्यवाहन। शान्तिकर्म में वरदाता। पुष्टिकर्म में बलवर्धन। मृतदाह में क्रव्यात्। पूर्णाहुति में मृड। अभिचार (मारण) में क्रोध। वशीकरण में पावक। वनदहन में दूषक। उदर में वैश्वानर। विश्वदेव होम में रुक्म। दैव्य में हव्य। लक्षहोम में वह्निकोटि। समुद्र में बड़वानल। अग्नि होत्र में गार्हपत्य। आहवनीय में दक्षिणाग्नि। ये सभी अग्नियाँ ब्रह्मात्मक यज्ञमय विष्णु हैं।

"**सप्तैधा - सप्त वानस्पत्यास्समधिरेऽस्येति सप्तैधाः।** अर्थात् सात वनस्पतियों की सात समिधायें। यथा - पलाश, बट, पीपल, पांकड़, शमी, गूलर, देवदारु - ये सभी यज्ञमय हैं।"

"**सप्तवाहन - सप्तवायु स्कन्धान्वहतीति सप्तवाहनः।** अर्थात् त्रिष्टुव, महति, जगति, वृहति, पंक्ति, गायत्री, अनुष्ठुप्। इन

सप्तवाहनों के प्रकाशक विष्णु हैं।"

यज्ञों का नाम और अर्थ

नरमेध - 'रीङ्क्षये' इति धातु निष्पन्न 'र' शब्द क्षयिष्णु वाची। रः क्षयिष्णु न भवति इति नरः = नित्यः (आत्मा)। "मेधृ संगमे" इति धातु निष्पन्न मेध शब्द संगम वाचकः। अनयो शब्दयोः परस्पर नरस्य, नरेण वा मेधः इति समासे कृते नरमेध पदस्य सिद्धिर्भवति। अर्थात् आत्मा को परमात्मा के साथ संगम कराना ही नरमेध का स्पष्ट अर्थ हुआ। यथा - सुग्रीव विभीषण जयन्त आदि की शरणागति प्रसिद्ध है। गीता में इसका प्रवल प्रमाण है - **"मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।** गी 7।14।" जो मेरी शरण में आते हैं वही इस माया से तरते हैं।

गोमेध - गो का अर्थ इन्द्रिय है। **"गो गोचर जहं लग मन जाई।** मानस अर 14।2।" अर्थात् गोमेध का अर्थ हुआ इन्द्रिय वर्ग तथा मन को परमात्मा में लगाना। **"मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु। मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे।** गी 18।65।" मुझ में मन लगा मेरा भक्त बनो, मेरी पूजा और नमस्कार करो। इस प्रकार मत्परायण होकर योग का अभ्यास करने से मुझ को प्राप्त करोगे। **"स वै मनः कृष्णपदारविन्दयोः वचांसि वैकुण्ठ गुणानुवर्णने।करौ हरिमन्दिर मार्जनादिषु श्रुतिञ्चकाराच्युतसत्कथोदये।** ।भा 9।4।18।" मन भगवान के चरणों में, वचन उनके गुण वर्णन में, हाथ उनके मन्दिर -मार्जन में तथा कान उनके गुण सुनने में लगाना चाहिए। तभी इन तीनों की सफलता है। यथा अम्वरीष की दिनचर्या में मिलती है।

अश्वमेध या वाजिमेध - न श्वः अनित्यमिन्द्रादि पदं येषाम् तेषु नियामकतया तिष्ठति इति अश्वत्थः, अथवा न श्वः अश्वः जागृत अवस्था। वि सहस्र 101। अर्थात् सर्व नियामक (इन्द्रिय नियामक) ईश्वर की शरण प्राप्त करना अश्वमेध का अर्थ हुआ। अथवा **"आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव च। इन्द्रियाणि हयान्याहुः मनः प्रग्रहवान् स्वयं।** कठोप 1।3।3।" **"आहुः शरीरं रथमिन्द्रियाणि हयानभीषून् मन इन्द्रियेशम्।** भा 7।15।41।" यहां पर अश्व या हय शब्दों से इन्द्रियों को घोड़ा कहा गया है। इसी प्रकार वाजिमेध शब्द को भी जानना चाहिए। **"वाजं शुक्रमस्यास्तीति वाजी तस्य मेधः वाजिमेधः।** अर्थात् शुक्र का निरोध कर हनुमान के समान ब्रह्मचारी बनन चाहिए न कि घोड़ा का मस्तक काटना।

छागमेध - छः = स्वच्छः, आगः = जड़देहः तेन मेधः।अर्थात् पवित्र देह तथा शुद्ध मन से भगवदाराधन।

इस प्रकार नारायणेष्टि, वासुदेवेष्टि, वैष्णवेष्टि आदि वैदिक यज्ञों में वैकुण्ठपार्षदों, कश्यपादि महर्षियों, श्रीवैष्णवों, वेदों, ब्राह्मणों तथा गौओं को पूजने का विधान है। क्योंकि देवों का देव और सनातन देव विष्णु ही हैं। उक्त यज्ञों का शेष तथा नित्याराधन यज्ञ स्वरूप विष्णु का शेष ही आत्माओं को पवित्र करने वाला है। **"यज्ञ शिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः। भुञ्जते ते त्वघं पापा ते पचन्त्यात्मकारणात्।** गी 3।13।" यज्ञ शेष अर्थात् भगवान् का निवेदित प्रसाद पाने वाले श्रेष्ठ पुरुष सभी पापों से छूट जाते हैं। जो अपने शरीर पोषण के लिए पकाते और खाते हैं वे तो पाप ही खाते हैं। भगवत्प्रसाद में यही विशेषता है कि जो लोग इसको सेवन करते हैं वे लोग आवागमन से छुटकारा पा जाते हैं - **"यद्गत्वा न निवर्तन्ते...** ।गी 15।6।" जो लोग मेरे धाम में पहुंच जाते हैं वे लौटकर यहां कभी नहीं आते हैं।

यज्ञ अहिंसात्मक है।

गोमेध, नरमेध, अश्वमेध, छागमेध इत्यादि शब्दार्थों से स्पष्ट है कि यज्ञ अहिंसात्मक है। शास्त्रों में इसका अनेक प्रवल प्रमाण है जो अहिंसात्मक है - वलि का सौ यज्ञ, विश्वामित्र तथा युधिष्ठर का यज्ञ। वृषल ने हिंसात्मक यज्ञ किया था जिसका फल उसका मस्तक काटकर यज्ञ देवी ने अपनी क्रोधाग्नि शान्त की थी। अव रह जाती है शास्त्रों के हिंसात्मक विधि वाक्यों की वात जिसके

द्वारा मांस भक्षण, मैथुनादि का बहाना बनाया जाता है तथा हिंसा वृत्ति अपनायी जाती है। वस्तुतः शास्त्रों में जिन वाक्यों को हिंसात्मक वतलाया जाता है वे सभी अहिंसात्मक ही हैं अपने अपने हृदय के अनुकूल ही लोग उसको समझते और अर्थ करते हैं – "**लोके व्यावायामिष मद्य सेवा, नित्यास्तु जन्तोर्नहि तत्र चोदना। व्यवस्थितिस्तेषु विवाह यज्ञ सुराग्रहैरासु निवृत्तिरिष्टा।**

वेदों में मांस भक्षण तथा मैथुन का विधान नहीं है वल्कि निषेध है। क्यों कि स्वाभाविक प्रवृत्ति में विधान की क्या आवश्यकता है। प्राणियों में यहां तो मांस भक्षण, मैथुनादि की प्रवृत्ति स्वाभाविक ही पायी जाती है। "**यद्घ्राण भक्षो विहितः सूरायाः, तथा पशोरालम्भनं न हिंसा। एवं व्यवायः पूजाया न रत्या, इमं विशुद्धं न विदुः स्वधर्मम्।** । अर्थात् यज्ञों में पशुहनन करना हिंसा नहीं है – ऐसा समझना श्रेष्ठ पुरुषों का धर्म नहीं है वल्कि अधर्म है। यथा – "**त्वमेवं विदोऽसन्तः स्तब्धाः सदभिमानिनः। पशून द्रुह्यन्ति विस्रब्धाः प्रेत्य खादन्ति ते च तान्।**"

यज्ञ में पशु मारना, मद पीना इसकी विधि वतलाने वाले अभिमानी मिथ्यावादी हैं। क्योंकि मारने वाले को दूसरे जन्म में वही पशु मारकर खाता है। यदि सचमुच गोवध अश्ववध से ही यज्ञ की पूर्ति एवं मुक्ति होती है तो इससे सुगमता और उत्तमता इसी में थी कि पितृभक्त अपने पिता और पुत्रभक्त अपने पुत्रों को वध (नरमेध) कर जीते जागते मुक्ति के भागी बन जाते क्योंकि पशुओं से तो मनुष्य कहीं अधिक श्रेष्ठ हैं। पर ऐसा किया नहीं जाता है। इससे सिद्ध होता है कि हिंसात्मक यज्ञों से केवल अपनी विषय वासना एवं विषय लिप्सा की पूर्ति की जाती है। इसमें कोई आश्चर्य की वात नहीं है। क्योंकि प्राचीन काल में स्वार्थ बुद्धि वाले पुरोहित वर्ग जघन्य कृत्यों से अपनी इच्छा पूरी किया करते थे। विश्वरूप ने देवयज्ञों में अपने पक्षपाती दैत्यों को भाग दिया, फलतः उनका मस्तक इन्द्र ने काट लिया।

वृत्रासुर ने इन्द्र का नाश करने के लिए यज्ञ किया था। मन्त्र था "**इन्द्र शत्रुर्विवर्धस्व** । भा । 6 । 9 । 11" इसमें वहुव्रीहि समास और पूर्व पद पकृतिश्वर के स्थान पर तत्पुरुष समास और अन्तोदात्त स्वर का उच्चारण भूल से हो गया था। जिसका विपरीत फल हुआ अर्थात् वृत्रासुर मारा गया।

कुछ स्वार्थी पुरोहितों ने अम्बरीष द्वारा हिंसात्मक पशु यज्ञ करवाना चाहा था किन्तु संयोगवश इन्द्र ने यज्ञ पशु को चुरा लिया। फिर भी पुरोहितों ने अपनी वासना पूर्ति के लिए शाप की धमकी देकर पशु की जगह ब्राह्मण-वध के लिए उनको विवश किया। धर्मभीरु अम्बरीष ने हजारों गौएँ देकर एक ब्राह्मण खरीदा जिसका नाम शुनःशेष था। वह ब्राह्मण विकल होकर अपनी रक्षा के लिए मामा विश्वामित्र के यहां पहुंचा तो करुणार्द्र विश्वामित्र ने धर्म संकट से मुक्ति के लिए उसे विष्णु मन्त्र का उपदेश दिया कि तुम वधकाल में विष्णु मन्त्र का स्मरण करना जिससे तुम्हारी रक्षा हो जायेगी। बस अब क्या था ब्राह्मण देव ने मन्त्र स्मरण से अपनी जान बचायी। ईश्वर की दया से राजा का धर्म बचा तथा विष्णु को यज्ञ में प्रत्यक्ष होने से यज्ञ पूरा हुआ। इसीलिए तो अहिंसा परमोधर्म कहा गया है – "**परम धर्म श्रुति विदित अहिंसा** । मानस उ 120 । 11 ।

इन सभी प्रमाणों से एक मात्र यही सिद्ध होता है कि हिंसात्मक विचार वाले स्वार्थियों ने स्वार्थपूर्ति के लिए हिंसात्मक यज्ञों का प्रचार किया है। इसका प्रवल प्रमाण महाभारत में है – "**सुरामतस्याः मधुमांसमासवं कृसरौदनम्। धूर्तैः प्रवर्तितं ह्येतन्नैतद्वेदेषु कल्पितम्।**" यज्ञ में सुरापान, मछली खाना, मदिरा पीना, आसव पीना, तिल मिला हुआ भात खाना आदि धूर्तों का चलाया हुआ है। यज्ञ में इन सबों का उपयोग करना वेद से निषिद्ध है।

विष्णु-यज्ञ की सुलभता

देवगण असंख्य हैं। सबों की प्रसन्नता के लिए अनेकों प्रकार का यज्ञ करना दुर्लभ ही नहीं असंभव है। ईश्वर में यह विशेषता है कि उनकी पूजा से सबों की पूजा एवं प्रसन्नता हो जाती है क्योंकि ईश्वर सभी कारणों के भी कारण हैं। अर्जुन ने भगवान् से कहा है – "**पश्यामि देवांस्तव देव देहे, सर्वास्तथा भूत विशेष संघान्। ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थम्, ऋषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान्** । गी 11 । 15 ।" ऐ

देव ! आप के शरीर में सम्पूर्ण देवों को तथा अनेक भूतों के समुदायों को और कमलासन पर बैठे हुए ब्रह्मा को, महादेव को, सम्पूर्ण ऋषियों को तथा दिव्य सर्पों को देखता हूँ अर्थात् अर्जुन एक ईश्वर की देह में सम्पूर्ण जगत को देख रहे हैं।

यथा तरोर्मूल निषेचनेन तृप्यन्ति भुजोप शाखाः। प्राणोपहारच्च यथेन्द्रियाणाम् तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या। भा 4।31। 14।" जैसे वृक्ष की जड़ में जल देने से वृक्ष का सर्वाङ्ग हरा भरा रहता है, जैसे मुख में आहार देने से सर्वाङ्ग परिपुष्ट होता है उसी प्रकार एक सर्वमय विष्णु की पूजा से सभी की पूजा हो जाती है और उनकी पूजा में या यज्ञ में विशेष यज्ञ साधन की आवश्यकता भी नहीं है। केवल अनन्य भाव या अनन्य भक्ति चाहिए। ईश्वर को विना प्रेम का दिया हुआ हिमालय के तुल्य वस्तुराशि भी एक तुच्छ कण के बराबर भी नहीं होता और भक्ति पूर्वक समर्पित एक कण भी सुमेरु के बराबर हो जाता है।

"**पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्तया प्रयच्छति। तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः।** गी 9।26।" हे अर्जुन ! मेरे पूजन में यह सुलभता भी है कि पत्र पुष्प फल जल इत्यादि जो कोई भक्त मेरे लिए प्रेम से अर्पण करता है उस शुद्ध बुद्धि निष्काम प्रेमी भक्त का अर्पित पत्र पुष्पादि को मैं सगुण रूप से प्रकट होकर प्रीति सहित खाता हूँ। "**णन्वेतदुपनीतं मे परम प्रीणनं सखे। तर्पयन्त्यङ्ग मां विश्वमेते पृथुक तण्डुला।** भा 10।81।9।" भगवान् श्रीकृष्ण सुदामा से कहते हैं कि प्यारे मित्र ! यह तो तुम मेरे लिए अत्यन्त प्रिय भेंट ले आये हो। यह चिउड़ा न केवल मुझे बल्कि सारे संसार को तृप्त करने के लिए पर्याप्त है। "**किञ्चित्करोत्युर्वपि यत्स्वदत्तं सुहृत्कृतं फल्ग्वपि भूरिकारी। मयोपनीता पृथुकैकमुष्टिं प्रत्यग्रहीत् प्रीतियुत महात्मा।** भा 10।81।35।।" द्वारिका से लौटते समय मार्ग में सुदामा मन ही मन कहते हैं कि देखो तो मित्र की उदारता ! श्रीकृष्ण जी परम दयालु हैं। वे देते तो हैं बहुत किन्तु उसे मानते हैं बहुत थोड़ा और उनका प्रेमी भक्त उनके लिए थोड़ा भी दे, तो वे उसको बहुत मान लेते हैं। देखो तो सही, मैंने तो उन्हें केवल एक मुट्ठी चिउड़ा भेंट किया पर परम उदार उन्होंने कितना प्रेम से उसे स्वीकार किया है !

इसी प्रकार भाग्यवती विदुर पत्नी की प्रेमा-भक्ति देखें। विदुर की धर्म पत्नी परम साध्वी त्यागमूर्ति तथा भगवद्भक्ति में तल्लीन थी। भगवान श्रीकृष्ण जब दूत बनकर हस्तिनापुर पधारे थे तव दुर्योधन के प्रेम रहित स्वागत सत्कार का परित्याग कर उन्होंने विदुर के घर की रूखी सूखी शाक भाजी खाकर ही परम प्रसन्नता पायी थी। कहा जाता है कि जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण दुर्योधन के घर से विना भोजन किए प्रस्थान कर विदुर के घर पहुंचे, उस समय विदुर की स्त्री घर में स्नान कर रही थी। विदुर तो घर पर थे भी नहीं। धनाभाव या स्वेच्छाकृत दरिद्रता से विदुर के घर में वस्त्रों का अभाव था। अतएव वह नग्न ही स्नान कर रही थी। द्वार पर पहुंच कर श्रीकृष्ण बोले - "किवाड़ खोलो, मैं कृष्ण भूखों खड़ा हूँ, मुझे बहुत भूख लगी है।" भगवान् का आह्वान सुनते ही वह सुधबुध भूल गई और उन्मत्त सी होकर झट किवाड़ खोल बाहर दौड़ आयी। भगवान् कृष्ण ने उनकी प्रेमोन्मत्त स्थिति देखते ही उसी क्षण अपना पीताम्बर उनके शरीर पर डाल दिया। दिव्य पीत-पट ने उनके समस्त शरीर को ढक लिया। तत्पश्चात् विदुरानी उसी अवस्था में उनका हाथ पकड़े भीतर लिवा ले गयी। उस समय उसे केवल इतना ही याद था - " मैं कृष्ण भूखा हूँ।" अब क्या खिलाउँ ? कुछ केला ले आयी और प्रेमोन्मत्त होकर उनके पास बैठकर केला छलि-छील कर गुद्दा तो फेंकने लगी और छिलका भगवान् को खिलाने लगी। भगवान् तो प्रेम ही चाहते हैं, अतः प्रमोपहार को प्रशंसा पूर्वक खाने लगे। दोनों प्रेम में मग्न थे। इतने में विदुर जी आ गये और भगवान् को छिलका खिलाते देख स्त्री को डाँटे तथा स्वयं केला का गुद्दा खिलाने लगे। भगवान् विदुर से बोले कि विदुर जी ! आप तो मुझे सावधानी से खिलाये किन्तु छिलका जैसा स्वाद इसमें नहीं मालूम होता है। जिस प्रेम से मैं छिलका खा रहा था उसको आपने अकस्मात भंग कर दिया। यही है ज्ञान से भक्ति की श्रेष्ठता।

अर्जुन ने कृष्ण से किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर पूछा था - "**कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्म सम्मूढ़ चेताः। यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।** गी 2।7।" दीनता से मेरी वृत्ति नष्ट हो गयी है। मुझे अपने धर्म अर्थात् कर्त्तव्य का मन में मोह हो गया है। इसलिए आपसे मैं पूछता हूँ कि जिससे मेरा कल्याण हो वह मुझे बतलावें। मैं आपका शिष्य हूँ। इसके उत्तर में भगवान ने साफ कहा कि "**मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु। मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः।** गी 9।34।" ुझ में मन लगा

मेरा भक्त बनो, मेरी पूजा और नमस्कार करो। इस प्रकार मत्परायण होकर योग का अभ्यास करने से मुझ को प्राप्त करोगे। **"सर्व कर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः। मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्।गी 18।56।"** मेरा आश्रित होकर सभी कर्मों को करो। मेरी प्रसन्नता से शाश्वत एवं अविनाशी स्थान (वैकुण्ठ) प्राप्त कर लोगे। **"मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि। अथ चेत्त्वमहङ्कारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि। गी 18।58।"** मुझ में चित्त लगाये रहने पर तू मेरे अनुग्रह से सारे संकटों को अर्थात् कर्म के शुभाशुभ फलों को पार कर जायेगा। किन्तु अहंकारवश हो मेरी नहीं सुनोगे तो तुम विनष्ट हो जाओगे।

"सर्वगुह्यतमं भूयः श्रृणु मे परमं वचः। इष्टोऽसि मे दृढ़मिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्।गी 18।64।" सभी गोप्यों में भी अति गोप्य मेरा परम वाक्य फिर से सुनो। तुम मेरे अतिदृढ़ प्रिय हो, इसीलिए तुमको यह हित उपदेश करता हूँ।

"सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।गी 18।66।" हे अर्जुन ! तुम सभी धर्मों के फल को त्याग कर एक मात्र मुझे ही शरण या रक्षक समझो। अर्थात् मेरा पूजनरूप स्वधर्म युद्ध करो। मैं तुमको युद्ध में होनेवाला हिंसा-पाप से तथा वासना जनित पूर्व के पाप एवं भावी पापों से मुक्त करा दूंगा। तुम सोच मत करो। इसका परम रहस्य यह है कि भगवान श्रीकृष्ण ही अपने भक्तों एवं सर्व यज्ञों का एक मात्र सिद्धोपाय हैं।

श्रीमते रामानुजाय नमः

मूर्ति पूजा अनादि कालिक

प्रश्न - मूर्ति पूजा सनातन नहीं है वल्कि कुछ ही काल पूर्व से कुछ विशेष स्वार्थियों द्वारा चलायी हुई एक जीविका निर्वाहार्थ विशेष परम्परा है।

उत्तर - अखिल कोटि ब्रह्माण्ड नियन्ता भगवान् के रूप, गुण, वैभव, महिमा, शक्ति, ज्ञान लीलादि सभी अनन्त हैं। सृष्टि चक्र भी अनादि और अनन्त है। इन सबों को सीमित समझना अल्पज्ञता है। इसमें विशेष कारण है - "अभक्तस्य परे शास्त्रे भगवान्न प्रकाशते।" अभक्तों के हृदय में अध्यात्म ज्ञान का प्रकाश नहीं होता है। **"जन्मान्तरसहस्रेषु बद्धिर्या जायते नृणाम्। तामेव लभते जन्तुरुपदेशो निरर्थकः।"** पूर्व जन्मों के उत्तम संस्कार के अभाव के कारण भगवद्भक्तिशून्य हृदयवाले व्यक्तियों को सद्ग्रन्थों में विश्वास नहीं होता है। सन्तों का उपदेश उन्हें स्पर्श नहीं करता इसीलिए वे सब नास्तिक समझे जाते हैं। उन सबों की दृष्टि में सृष्टि क्रम, वेदादि सद्ग्रन्थ, मूर्ति पूजन आदि प्रथा परिगणित काल से हैं। इसकी पुष्टि में वे लोग आधुनिक कुछ लेखकों का मत उपस्थित किया करते हैं जो ऋषि प्रणीत ग्रन्थों के सिद्धान्त से सर्वथा प्रतिकूल है। श्रुति स्मृति पुराणादि के वचनों को मनमाना कुतर्कों द्वारा खण्डन करना नास्तिकों का प्रधान कार्य है।

उक्त प्रश्न के ऊपर यह विचार करना चाहिए कि जब हम सब एक बट और उसके बीज के पूर्वापर की मीमांसा नहीं कर सकते कि कौन पहले हुआ तो अदृश्य एवं अटित घटना सामर्थ्यवान भगवान् और उनकी लीलाओं का आदि, अन्तकाल के ज्ञान की क्षमता क्यों कर रख सकते हैं ? नीचे के उद्धरणों में मूर्ति पूजा की अनादिकालिकता स्पष्ट है - **"तज्जलानि शान्त उपासित।श्रुति।"** जिससे इन भूतों का प्रादुर्भाव पालन और लय होता है उस शान्त स्वरूप परब्रह्म की उपासना करनी चाहिए। **"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभि संविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व बह्म।"** जिससे सभी प्राणियों की उत्पत्ति पालन और विलयन होता है उसको ब्रह्म जानना चाहिए।

इन श्रुतियों पर ध्यान देने से यह स्पष्ट झलकता है कि सृष्टि कभी दृश्य रूप में तो कभी अदृश्य रूप में रहती है। दृश्य कार्यरूप की और अदृश्य कारण रूप की स्थिति कहलाती है किन्तु स्थिति रहती है अवश्य। धारा प्रवाह न्याय से सृष्टि नित्य कहलाती है। **"अचिद्विशेषतान्प्रलय सीमनि संसरतः करण कलेवरैर्घटयितुं दयमान मनाः।"** परमात्मा प्रलयकाल में अपने उदरस्थ

जीवात्माओं को जड़ की भांति देखकर उद्धारार्थ उन सबों को शरीरधारी बनाने के लिए अपनी कृपा द्वारा सृष्टि की रचना करते हैं। भगवान् मूर्तिमान हैं। उनकी सृष्टि मूर्तिमती है। शरीरधारी सभी प्राणी मूर्तिमान हैं। सृष्टि के आरम्भ से ही मूर्ति की मान्यता है। यही मूर्ति पूजा है। "**सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः** । गी 8 । 17 ।" सत्ययुग, त्रेता, द्वापरऔर कलयुग इन चारों युगों के आयुमान मिलाकर एक महायुग होता है। एक हजार युग का ब्रह्मा का एक दिन और इतने ही समय की एक रात्रि होती है। इनका दिन के प्रारम्भ में सृष्टि का आरम्भ और रात्रि के आरम्भ में विनाश हो जाता है। प्रारम्भ में "**यथापूर्वमकल्पयत्** ।" के अनुसार पूर्वसृष्टि के अनुरूप ही दूसरी सृष्टि की रचना होती है। इसकी स्थिति काल में दैवी बुद्धि वाले मनुष्य भगवान की आराधना द्वारा संसार से मुक्त हो जाते हैं। "**त्रिपादस्या मृतं दिवि** । पु सू ।" - भगवान की त्रिपाद्विभूति वैकुण्ठ में मुक्तात्माओं का वास होता है। "**यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्** । गी 9 । 25 ।"- मेरा भजन पूजन करने वाले प्राणी मुझको प्राप्त कर लेते हैं। यह भगवान का वचन है। भक्तों के हित के लिए परमात्मा पांच रूप में सतत वर्तमान रहते हैं। 1। पर - त्रिपाद्विभूति में सदा रहने वाले। 2। व्यूह - संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध। यही क्रमशः ब्रह्मा विष्णु और महेश रूप में परिणत होते हैं। 3। वैभव - भगवान का मत्स्य कच्छप वराह नृसिंह राम कृष्णादि रूपों में अवतार। 4। अन्तर्यामी - विश्वव्यापक परमात्मा। 5। अर्चा - श्रीरंग, वेङ्कटादि, बदरिकाश्रम, जगन्नाथादि स्थानों में स्वयं व्यक्त भगवान, शालिग्राम, मन्दिरों में प्रतिष्ठापित भगवान की मूर्ति ये सभी अर्चा कहलाते हैं। ऊपर के भगवान के पंचविध प्रकारों में आराधकों के लिए अर्चावतार ही अधिक सुलभ सुगम एवं उपादेय हैं।

अर्चा विग्रहधारी भगवान् सर्वदेश सर्वकाल सर्वावस्था में भक्तों से सेवा पूजा ग्रहण कर कल्याण करते हैं। यह प्राणियों के ऊपर उनकी निर्हेतुक कृपा है। अन्यथा परमप्रिय भक्त अर्जुन को भगवान् ने जब अपना रूप दिखलाना चाहा तो पहले उन्हें दिव्यदृष्टि देनी पड़ी तभी अर्जुन ने उनका रूपा देखा। तो हम सब क्षुद्रों की कौन गणना है कि इस चक्षु से उनके तेजमय रूप को देख सकते थे। "**अप्रमेयो हि तत्तेजो** । वा रा अरण्य 37 । 18 ।" "**न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः** । गी 15 । 6 ।" भगवान के अप्रमेय दिव्यतेज के सामने चन्द्र सूर्य भी नहीं चमकते अर्थात्इन सबों का तेज मन्द पड़ जाता है। प्रतिबार की सृष्टि में कुछ न कुछ भक्तों का कल्याण अवश्य ही हो जाया करता है। सृष्टिलीला का यही मुख्य उद्देश्य है। इसीलिए यह लीला भगवान को अतिप्रियहै। मुक्तात्माओं की मुक्ति में अर्चामूर्ति की आराधना की ही विशेषता का प्रमाण सर्वत्र मिलता है।

आदिकवि श्री वाल्मीकि रचित रामायण में मूर्तिपूजा का सबल प्रमाण है। इनकी रचना वर्तमान सृष्टि के प्रथम स्वायम्भुव मनु के शासनकाल के एक महायुग के पश्चात् द्वितीय महायुग के त्रेता में है। श्रीराम जी के राज्याभिषेक वर्णन में आया है-

"**गते पुरोहिते रामः स्नातो नियतमानसः। सह पत्नया विशालाक्ष्या नारायणमुपागमत्**। वा. रा. अयो. 6 । 1 ।

ध्यायन्नारायणं देवं स्वास्तीर्णे कुशसंस्तरे। वा. रा. अयो. 6 । 3 ।

वाग्यतः सह वैदेह्या भूत्वा नियतमानसः। श्रीमत्यायतनं विष्णोः शिश्ये नरवरात्मजः। वा. रा. अयो. 6 । 4 ।"

राज्याभिषेक की निश्चित तिथि के पूर्वदिन श्री वशिष्ठ जी के उपदेश से भगवान श्रीरामचन्द्र जी पत्नी सहित श्रीरंगनाथ भगवान् की आराधना कर उन्हीं के मन्दिर में विशुद्ध भाव से शयन किये। इसी अभिषेकोत्सव में अयोध्या के देव मन्दिरों को भी सजाने का विशेष आयोजन हुआ था। "**सिताग्रशिखराग्रेषु देवतायतनेषु च** । वा रा अयो 6 । 11 ।"

यह स्पष्ट मूर्तिपूजा का प्रमाण है। आज हम संकल्प में "**अष्टाविंशतितमे कलियुगे ...**।" इत्यादि वाक्य बोलते हैं। वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर है। इसके पूर्व छः मन्वन्तर बीत चुके हैं - "**मनवोऽस्मिन्व्यतीता षट्कल्पे स्वायम्भुवादयः** । भा 8 । 1 । 4 ।" इस वाराह कल्प से पूर्व स्वयम्भु, स्वारोचिष, औत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुष इन छः मनुओं का राज्यकाल समाप्त हो गया है। ब्रह्मा के एकदिन की अवधि में चौदहों मनु का राज्यकाल सम्मिलित है। एक मनु का राज्यकाल दो सौ पचासी साधारण युग - 1000 भाग 14 गुणा 4 - अर्थात् मनुष्यों के वर्ष में नवलाख अनठावन हजार वर्ष का होता है। प्रत्येक युग में कुछ सन्धिकाल भी होता है। सन्धिरहित इस कालमान को छः से गुणा करने पर एक हजार सात सौ दस साधारण युग अर्थात मनुष्यों के वर्ष में सन्तावन लाख

अड़तालीस हजार वर्ष छवों मनुओं का व्यतीत राज्यकाल हुआ। सृष्टि के आरंभ में एक महायुग बीतने पर द्वितीय महायुग के त्रेता युग में भगवान श्री रामजी का अवतार हुआ था। अब विचारना चाहिए कि कितने काल पूर्व से मूर्ति पूजा प्रचलित है।

श्रीरामजी के आदिपुरुष इक्ष्वाकु थे। इन्हीं के नाम से उनका वंश इक्ष्वाकु वंश कहलाता है। ब्रह्मा से मरीचि का जन्म, मरीचि से कश्यप, कश्यप से श्राद्धदेव और श्राद्धदेव से इक्ष्वाकु का जन्म हुआ था। यही अपनी तपस्या द्वारा रंगनाथ भगवान को प्राप्त किये थे। तभी से रंगनाथ भगवान इस कुल में कुलदेव के रूप में रहते आये थे। श्रीरामजी के द्वारा विभीषण को दिये जाने पर दक्षिण भारत के रंगपुरी में प्रतिष्ठित जो आज विराजमान हैं। "इत्युक्त्वा स काकुत्स्थः शार्ङ्गं विष्णुं सनातनम्। श्रीरंग शायिनं सौम्यमिक्ष्वाकु कुल दैवतम्। संप्रीत्या प्रददौ तस्मै रामो राजीवलोचनः। पद्म पु0 उ0 ख0 **271**। **64** तथा अन्य प्रकाशन में **244**। **61**।" "लब्ध्वा कुलधनं राजा लंकां प्रायाद्विभीषणः (प्रायान्महायशाः)। वा0 रा0 लंका **131**। **87**।" विभीषण श्रीरामजी के कुलधन रंगनाथ भगवान को प्राप्त कर लंका ले जाते हुए श्रीरंगपुरी में रखे थे। भगवान के नाम से ही उस पुरी का नाम रंगपुरी रखा गया। **वह सभी धामों में प्रधान धाम है।** इससे यह सिद्ध होता है कि रामावतार के पहले से ही मूर्ति पूजा प्रचलित है। इसी रंगनाथ भगवान् के सम्बन्ध में श्रीतुलसीदास जी भी लिखे हैं - "**ममकुल इष्टदेव भगवाना। पूजा हेतु किन्ह पकवाना**। मानस बाल. **200**। **1**।" कौशल्या ने भगवान् के नैवेद्यार्थ पकवान बनाया था।

"**यथापूर्वमकल्पयत ...**।" सृष्टि की रचना पूर्व सृष्टि के तुल्य ही होती है। अतः पूर्व सृष्टि की सारी लीलायें इसमें भी होती हैं। जिसमें रामावतार, रामायण की रचना और उसमें मूर्ति पूजन प्रसंग आदि सभी बातों का वर्णन रहता है। इस प्रकार ईश्वर, वेद, आत्मा एवं सृष्टि की नित्यता के समान मूर्ति पूजा भी अनादि कालिक नित्य है। "**नारदाय पुरा प्रोक्तः ब्रह्मकल्पउपावृते।।**" ब्रह्म कल्प में ब्रह्मा ने सर्व प्रथम नारद को श्री रामचरित्र सुनाया था। वर्तमान श्वेत वाराहकल्प के छः मन्वन्तर के उपरान्त सातवाँ वैवस्वत मन्वन्तर के अठाइसवां चौयुगी का कलियुग बीत रहा है। यह कितना बड़ा लम्बा काल हुआ, इसके आरंभ से ही मूर्ति पूजा चली आ रही है।

श्रीरामजी के एक पूर्वज अम्बरीष थे। इनका अटल नियम था एकादशी व्रत करना। एक समय इनके यहां अतिथि के रूप में दुर्वासा जी पधारे थे। उस समय एकादशी व्रत के द्वितीय दिन द्वादशी तिथि समाप्तप्राय थी। एकादशी के व्रतियों को द्वादशी तिथि में पारण करने का विधान है। अन्यथा व्रतभंग होता है। प्रतिदिन कुछ अतिथियों को खिलाकर पश्चात् स्वयं भोजन करने का भी उनका अटल नियम था। किसी कारणवस अम्बरीष उनको द्वादशी तिथि में नहीं खिला सकते थे। द्वादशी में स्वयं भोजन नहीं करने से व्रतभंग, अतिथि को खिलाये विना स्वयं खाने से अतिथि-सेवा भंग, इस प्रकार धर्मसंकट में पड़कर वे उक्त दोनों अपचारों से बचने के लिए भगवान का केवल तीर्थ पान कर पारण विधि समाप्त किये। किन्तु इतने पर भी दुर्वासा को शान्ति नहीं मिली, अत्यन्त क्रोधातुर हो अम्वरीष को आपदग्रस्त करना चाहे थे। किन्तु परम भगवद्भक्त रहने से सुरक्षित रह गये थे। यही अम्बरीष की दिनचर्या में पाया जाता है - "**करौ हरेर्मन्दिर मार्जनादिषु श्रुतिञ्चकाराच्युत सत्कथोदये**। भा **9**। **4**। **18**।" शरीर के अवयव भगवान् की सेवा में लगें यही इसकी सार्थकता है। इसीसे शान्ति मिलती है। यही अम्बरीष का प्रधान उद्देश्य था।

श्रीमद्भागवत् पुराण में सर्वत्र मूर्तिपूजा की ही कथायें मिलती है। इस पुराण के रचयिता वेदव्यास जी विष्णु के अवतार हैं। "**व्यासाय विष्णुरूपाय**", "**वासव्यां कलया हरेः**", "**अचतुर्वदनोब्रह्माद्विवाहुरपरोहरिः। अभाललोचनः शंभुः भगवान् बादरायणः।।**" सभी पुराणों में श्रीमद्भागवत ही सात्विक पुराण है। स्वायम्भुव मनु के पुत्र उत्तानपाद और इनके पुत्र ध्रुव हुए। ध्रुव अर्चामूर्ति की आराधना द्वारा भगवान को प्राप्त किये थे। वे इस धराधाम पर छत्तीस हजार वर्ष राज्य कर ध्रुवलोक गये और आज भी यहां वर्त मान हैं। उत्तानपाद के भाई प्रियव्रत थे, इनका पुत्र अग्निध्र, अग्निध्र के नाभि, नाभि के ऋषभदेव और ऋषभदेव के पुत्र भरत थे। इन्ही के नाम से भारत देश विख्यात हुआ। भरत के पुत्र नवयोगेश्वर कहलाये। एकबार राजा निमि ने इन्हीं नवयोगश्वरों से भागवद्धर्म पूछा था। उत्तर में वे सब अर्चामूर्ति की आराधना बतलाये थे - "**अर्चायामेव हरये पूजां ...**। भा.। **11**। **2**। **47**।।" अर्थात्

अर्चामूर्ति की सेवा परम भागवद्धर्म है।

"**अर्चादौ हृदये चापि यथा लब्धोपचारकैः**। भा.।11।3।50।

सांगोपांगां सपार्षदां तां तां मूर्तिं स्वमन्त्रतः।पाद्यार्घ्याचमीनयाद्यैः स्नान वासो विभूषणैः। भा.।11।3।52।"

अर्चामूर्ति की पूजा द्वारा निमि को कल्याण प्राप्त हुआ था।

भक्तियोग प्रकरण में कपिलदेव जी ने अपनी माँ देवहुति से कहा है - "**अर्चादावर्चयेत्तावदीश्वरं मां स्वकर्मकृत्**। भा.।3।29।25।" हे माँ ! स्ववर्णाश्रम धर्म को मानते हुए मेरी अर्चामूर्ति की पूजा करो। ये सभी कथायें सत्ययुग की हैं।

कयाधु, हिरण्यकशिपु की पत्नी, ने नारद के उपदेश में भगवत् पूजन विधि सुना था। उस समय प्रह्लाद गर्भ में हीं थे। अतः उनको भी वह उपदेश याद हो गया था। वे अपने सहपाठियों से कहा करते थे - "**श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्म निवेदनम्**।भा. 7।5।23।" परमात्मा की प्रसन्नता के लिए भक्ति सबसे श्रेष्ठ साधन है। वह नव प्रकार की है - **1**. भगवद्गुणों का श्रवण, **2**. कीर्तन, **3**. स्मरण, **4**.चरण सेवा, **5**.अर्चन, **6**. वन्दन, **7**. दास्यभाव, **8**. सखाभाव, **9**. आत्मसमर्पण (शरणागति)। यह भी अर्चापूजा की प्राचीनता का द्योताक है।

सृष्टि के प्रारंभ में मनुरचित उनकी स्मृति में सृष्टि के आदि पुरुष द्वारा - "**देवाभ्यर्चनञ्चैव समिधादानमेव च**।" अर्चामूर्ति की आराधना का निर्देश मिलता है। कृष्णावतार में गोपियों ने अर्चापूजा की है-

"**आप्लुत्याम्भसि कालिन्द्या जलान्ते चोदितेऽरुणे। कृत्वा प्रतिकृतिं देवीमानर्चुः नृप सैकतीम्**।।

गन्धमाल्यैः सुरभिभिर्वलिभिर्धूपदीपकैः। उच्चावचैश्चोपहारैः प्रवालफलतण्डुलैः। भा.।10।22।23।।"

ब्रज की गोपियों ने सूर्योदय के समय यमुना में स्नान कर उसी के तट पर कात्यायनी देवी की वालू की प्रतिमा बनाकर यथासाध्य चन्दन सुपारी पुष्पादि से पूजा की थी। इसी प्रकार रुक्मिणी भी - "**पूर्वेद्युरस्ति महतो कुलदेवि यात्रा, यस्यां बहिर्नववधूः गिरिजामुपेयात्**। भा.।10।52।42।" रुक्मिणी ने अपना पाणिग्रहण संस्कार के निश्चित दिन के पूर्व दिन कुलाचार के अनुकूल गिरिजा पूजन निमित्त यात्रा की थी। कृष्ण द्वारा संचालित गोवर्धन पूजा सर्वविदित ही है - **यवसं च गवां दत्वा गिरये दीयतां वलिः**। भा.।10।24।28।" कृष्ण भगवान ने गोपों को निर्देश किया था कि गौओं को जौ आदि देकर गोवर्धन पर्वत के लिए वलि दी।

अपौरुषेय वेदों में सर्वत्र मूर्तिपूजा तथा मूर्ति का वर्णन मिलता है - "**द्वावेव ब्रह्णो रूपं मूर्तञ्चामूर्तञ्चेति**।" ब्रह्म की दो मूर्तियाँ हैं, एक मूर्त और दूसरी अमूर्त। विपत्ति सूचक प्रतिमा चलन्ति हसन्ति रुदन्ति इत्यादि। भक्तप्रवर विदुर ने कुसंग को दूर करने के लिए तीर्थयात्रा की थी। सर्वत्र देवमूर्ति पाये थे -

"**अन्वाक्रमत्पुण्य चिकीर्षयोर्व्यां स्वधिष्ठतो यानि सहस्रमूर्तिः**। भा.।3।1।17।

अनन्त लिङ्गैस्समलङ्कृतेषु चचार तीर्थायतनेष्वनन्यः। भा.।3।1।18।।"

पुण्यार्जन की इच्छा से विदुर जी अनन्त रूपों में स्थित देव मूर्तियों वाले तीर्थ स्थानों में घूमे थे -"**कृतानि नावायतनानि विष्णोः प्रत्यंग मुख्यांकित मन्दिराणि यद्दर्शनात्कृष्णमनुस्मरन्ति** । भा.।3।1।23।"

"**विविधकुसुमकिसलयतुलसीकाम्बुभिः कन्दमूलफलोपहारैश्च समीहमानो भगवदाराधनं विविक्त उपरतविषयाभिलाषः**।भाग. 5।7।11।" भरत पुलहाश्रम में रहकर तुलसी जल कन्दमूलादिकों से शालिग्राम की पूजा किया करते थे। ये सभी प्रमाण मूर्तिपूजन के हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता सर्वमान्य है। इसका प्रचार सर्वत्र है। मानव मात्र के लिए उपादेय है। इस ग्रन्थ के प्रवक्ता स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हैं - "योगं **योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयः स्वयम्**।" इसके संमुख वेद भी लघु है - "**त्रैगुण्य विषयाः वेदाः निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन**।गी. 2।45।" वेद सतोगुण रजोगुण तमोगुण विशिष्ट है। अतः श्रीकृष्ण अर्जुन को लुभावन वेदवार्ताओं से अलग रहने की चेतावनी देते हैं कि हे अर्जुन ! तुम उक्त तीनों गुणों से रहित बनो। अर्जुन के कल्याण विषयक प्रश्न करने पर भगवान् कहते हैं - "**पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति**। गी. 9।26।" इस कथन के द्वारा भगवान स्पष्ट ही मूर्तिपूजा बतला रहे हैं। यह कथन

गीता के सार परम मन्त्र के समान है। इस उपदेश परम्परा की अनादिकालिकता को भी भगवान स्वयं ही बतलाये हैं - " **एवं परम्परा प्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः। स काले नेह महता योगो नष्ट परन्तप।। स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।गी. 4।23।** " अर्जुन से भगवान् कहते हैं कि आज तुमको वही उपदेश सुना रहा हूँ जिसको सृष्टि के आदि में सुनाया था, जिसे परम्परया राजर्षिगण जानते हैं। कालक्रम में वह नष्ट हो गया था। अतएव यह पुरातन है। क्या इससे बढ़कर मूर्तिपूजा का कोई दूसरा प्रमाण भी हो सकता है ?

नारद द्वारा व्यक्त पञ्चरात्र शास्त्र के दो सौ आठ संहिताओं के विष्वकसेन संहिता में कल्याणार्थ अर्चामूर्ति की पूजा का विशेष महत्व बतलाया गया है।

"**मम प्रकाराः पञ्चेति प्राहु वेदान्तपारगाः। परो व्यूहश्च विभवो नियन्तासर्वदेहिनाम्।।**
अर्चावतारश्च तथा दयालुपुरुषाकृतिः। इत्येवं पञ्चधाप्राहुर्मा रहस्यविदोजनाः।।"

भगवान जन कल्याणार्थ पाँच रूपों में विद्यमान रहते हैं। प्रतिमा में दो विभाग हैं। एक स्वयं व्यक्त दूसरा प्रतिष्ठापित। प्रतिष्ठापित मूर्ति की अपेक्षा स्वयं व्यक्तों का महत्व अधिक है। स्वयं व्यक्तों में श्रीरंगनाथ (श्रीरंगपुरी दक्षिण भारत), श्रीवेंकटेश (वेंकटाद्रि दक्षिण भारत), नर नारायण (बद्रिकाश्रम उत्तर भारत), मुक्तिनारायण (भारतोत्तर नेपाल), जगन्नाथ (उड़ीसा राज्य पूर्व भारत) और शालिग्राम मूर्ति (शालिग्रामी या गण्डकी नदी से उत्पन्न) हैं। गण्डकी नदी हिमालय के मुक्तिनारायण नामक पहाड़ से निकलती है। पहाड़ के जो भी अंश टूट फूट जाते हैं वही सब भगवान के विग्रह बन जाते हैं। इसीलिए शालिग्राम की मूर्ति इसी नदी में मिलती है। पहाड़ पृथिवी सृष्टि के आरम्भ से ही हैं। इस विषय को नये पुराने सभी विद्वान मानते हैं। इसलिए यह सिद्ध है कि अर्चामूर्ति की पूजा परम्परा अनादि काल से ही चली आ रही है। भगवान का उद्देश्य अर्चामूर्ति धारण कर भक्तों की पूजा ग्रहण कर उनका उपकार करना ही है। यह भाव भगवान के हृदय में सदा जागरु रहता है।

श्रीमते रामानुजाय नमः

पुण्य और पाप का लक्षण

प्रश्न - पाप और पुण्य का लक्षण क्या है ?

उत्तर -

1। "**न हि सत्यात्परो धर्मः।**" सत्य से श्रेष्ठ दूसरा कोई धर्म नहीं है। इसलिए दशरथ जी तथा हरिश्चन्द्र ने इसी धर्म को अपनाया था। "**नहि असत्य सम पातक पुंजा।मानस ।अयो 27।3।**"असत्य के समान दूसरा कोई पाप पुंज नहीं है। सामान्य से विशेष नियम बलवान होता है। ऊपर के सभी धर्माधर्म के लक्षण सामान्य हैं। विशेष नियम की मीमांसा करने पर सद्शास्त्रों द्वारा यह बोध होता है कि किस नियम के पालन करने से इहलोक और परलोक में कल्याण (मोक्ष) प्राप्त हो यही विशेष नियम (धर्म) है। "**यत्त्वत्प्रियं तदिह पुण्यम पुण्यमन्यत्।**" जिस कार्य से भगवान की प्रसन्नता हो वही पुण्यजनक कार्य है। इससे अन्य सभी कार्य पाप जनक हैं। अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए किया हुआ पुण्य भी पाप जनक और परार्थ पाप भी पुण्य जनक होता है। स्वार्थ बुद्धि से दशरथ जी ने सत्य पालन किया था किन्तु वह उनके लिए बन्धन हो गया, अर्थात् उनको मोक्ष नहीं मिला। जटायु का परार्थ रावण से युद्ध करना मोक्ष का कारण बना। "**गिद्ध देह तजि धरि हरि रूपा। भूषण बहु पट पीत अनूपा।मानस अरण्य 31।1।**" "**या गतिर्य ज्ञशीलानामाहिताग्नेश्च या गतिः। अपरावर्तिनां या च ।बा रा अर 68।29।**"

2। श्रीरामजी का पक्ष पूरा करने के लिए अंगद ने रावण से झूठ कहा था कि हनुमान अभी तक श्री राम जी के समीप नहीं गये हैं। "**अब लगि गयउ न राम पहँ तेहि भय रहेउ लुकाइ।मानस लंका 23 क।**"

वसुदेव जी ने कंस से प्रतिज्ञा पूर्वक कहा था कि मैं देवकी के गर्भ से उत्पन्न सभी बच्चों को आपको दे दूंगा किन्तु इनसे इस प्रतिज्ञा

का निर्वाह करते नहीं बन सका। सत्यता छोड़े, चोरी, झूठ और धूर्तता को अपनाये। प्रतिज्ञा नहीं पूरी करना झूठ, कृष्ण को गोकुल में यशोदा के पास ले जाना चोरी, वहीं से कन्या लाकर देवकी की गोद में रखना धूर्तता हुई। ये सब करने पर भी वसुदेव को मोक्ष मिला। इनका सभी कार्य भगवान् के लिए ही हुआ था। "**मन्निमित्तं कृतं पापं तद्धर्माय च कल्पते।**" भगवान के लिए किया हुआ पाप भी पुण्य जनक होता है।

3। स्त्रियों के लिए सतीत्व धर्म का पालन करना परम कर्त्तव्य है - "**पतिरेव देववत्पूज्यः।**" स्त्रियों को चाहिए कि पति को देव तुल्य माने और सत्कार करे किन्तु इसके विपरीत ब्रज की गोपियों को कृष्ण में जार बुद्धि करने पर भी मोक्ष मिला। उन गोपियों की चरण-धूल के लिए ब्रह्मा भी तरसते हैं - "**आसामहोचरणरेणुजुषामहं स्याम्।**"

4। आचारी सम्प्रदायान्तर्गत आळवारों में एक स्वामी श्री परकाल जी थे। वे भगवान् और भागवतों के तदीयाराधन (भोजन) के लिए अपनी सारी सम्पत्ति समाप्त कर पश्चात् चोरी और डकैती भी किया करते थे। यह भगवद्कैङ्कर्य महापुण्य जनक था। इनको मोक्ष मिला। भगवान भी श्री परकाल जी को उक्त कार्य में सहायता किया करते थे। यह कथा प्रख्यात है।

5। शुक्राचार्य ने लिखा है - "**स्त्रीषु नर्म विवाहे च वृत्यर्थे प्राण संकटे। गो ब्राह्मणार्थे हिंसायां नानृतं स्याज्जुगुप्सितम्।।**" स्त्री से, विवाह विषय में जीविका के लिए, प्राण संकट आने पर गौ तथा ब्राह्मण की हिंसा से मुक्ति में झूठ बोलने का कोई दोष नहीं लगता है। यहां यह सोचना चाहिए कि जब इन संसारी कार्यो में झूठ बोलने का कोई दोष नहीं लगता बल्कि पुण्य होता है तो भगवान् के निमित्त बोला हुआ झूठ या किया पाप क्योंकर बड़ा पुण्य न होगा। इसीलिए श्री स्वामी कुरेश जी ने पुण्य और पाप के लक्षण में यही लिखा कि "**यत्त्वत्प्रियं तदिह पुण्यमपुण्यमन्यत्।** अतिमानुष **53**।"

6। भगवान् को प्रियकर पुण्य होता है और अप्रियकर पाप होता है। इसका उदाहरण श्रीकृष्ण लीला है। "**धूर्तायितं हि तव यत्किल रास गोष्ठयाम्तत्कीर्तनं परमपावनमामनन्ति।**" - हे कृष्ण भगवान ! आपका निन्दासूचक नाम रासविहारी माखनचोर आदि का जो कीर्तन करता है वह आपको भी प्रिय लगता है। अतः आपका प्रिय होने से आपकी निन्दा भी पुण्य जनक और अप्रिय स्तुति भी पाप जनक है। किसी को गाली देना सबसे बढ़कर पाप है। शिशुपाल ने कृष्ण को गाली देने के साथ साथ अपमानित भी किया था किन्तु सभी के लक्ष्य श्रीकृष्ण ही थे, अतः उसे मुक्ति मिली। यहां विचारने का विषय यह है कि ऐसे अहित चाहने वाले शिशुपाल को मुक्ति मिली तो क्या भगवान् के निमित्त हित की दृष्टि से झूठ बोलने या पाप करने वाले को क्यों नहीं मुक्ति मिलेगी। भगवान् तो सर्वदर्शी हैं, सभी जानते ही हैं कि मेरे निमित्त कौन क्या कर रहा है। यदि किसी को झूठ बोलने का या पाप करने का निमित्त मैं बना तो कर्त्ता का इसमें क्या दोष है बल्कि कर्त्ता आत्मस्वरूप ज्ञानी है ऐसा भगवान् जानते हैं।

7। "**सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।** गी **18**।**66**।"

भगवान् तो अपने लिए सभी धर्मो का छोड़ने का उपदेश करते हैं। सत्य को छोड़ना तो एक साधारण सी बात है।

8। हत्या करना महापाप है। कीड़ों की अपेक्षा पशुओं की, पशुओं में गौओं की और उन सबों की अपेक्षा ब्राह्णों की हत्या बड़ी है। पूतना ने तो कृष्ण को मारकर हत्या लेना चाहा था। उसने उन्हें विषपान कराया। किन्तु भगवान् ने सोचा कि इस हत्या का लक्ष्य तो मैं ही हूँ, अवश्य मोक्ष देना चाहिए और दिये भी। "**यातुधान्यपि सास्वर्गमवाप जननीगतिम्।** भा. **10**।**6**।**38** ।" श्रीकृण भगवान् उसे अपनी जननी की भांति उत्तमगति मोक्ष दिए।

9। मथुरा की ब्राह्मण स्त्रियाँ अपने पति पुत्रादिकों को अपमानित कर यज्ञार्थ देवी देवताओं के निमित्त बने हुए सभी हविष्यान्न पकवानों को लिए हुए श्रीकृष्ण के समीप पहुँच गयीं। यह सभी कृष्ण के उद्देश्य से ही हुआ था। अतः महापुण्यजनक कार्य हुआ। भगवान प्रसन्न हो उन सबों को पति पुत्रादिकों के साथ दिव्यज्ञान प्रदान कर अपनाये अर्थात् मोक्ष मिला। स्वयं चौवे लोगों ने कहा है "**अहो वयं धन्यतमा येषां नस्तादृशीः स्त्रियः। भक्त्या यासां मतिर्जाता अस्माकं निश्चला हरौ।** भा. **10**।**23**।**49**।" हम सभी धन्य हैं कि ऐसी स्त्रियाँ हम सबों को मिलीं कि जिन सबों के द्वारा भगवान् की निश्चला भक्ति मिल गयी।

10। चोरी करना महापाप है। श्रीकृष्ण के साथ व्रज के अन्यान्य गोपाल बालकों ने रात्रि में घूम घूम कर सबों के घर चोरी की थी, अनेकों उपद्रव मचाया था, किन्तु पाप और पुण्य के नेता तो साथ ही थे, अतः वे दोष के भागी नहीं हुए। इन सबों को दोषी ठहराने का भी साहस किसी को नहीं हुआ। पुराण रचयिता श्री वेदव्यास जी भी कुछ आलोचना नहीं कर सके। क्यों करते जब भगवान् की इच्छानुसार ही यह कार्य किया गया था। अतः यह सिद्ध होता है कि भगवान् की अनुकूलता का पोषक पुण्य और प्रतिकूलता का पोषक पाप है।

11। एक संन्यासी ने किसी एक निरपराध कुत्ते को एक छड़ी मार दिया था। कुत्ता श्री राम जी के यहां न्याय के लिए उक्त अभियोग (मुकदमा) लेकर गया। श्रीराम जी ने कुत्ते से ही उसे दण्डित करवाया था। किन्तु इनके द्वारा किया गया अश्वमेध यज्ञ में मरे अनेकानेक सैनिकों के लिए प्रायश्चित्त तक भी किसी से नहीं करवाया था क्योंकि उक्त यज्ञ तो भगवान के आज्ञानुकूल ही किया गया था। तन्निमित्तक ही युद्ध भी हुआ था और सैनिक मारे गये थे। वर्तमान में जब कोई प्रजा किसी को मार डालता है तो उसे भी प्राण दण्ड दिया जाता है। किन्तु जब राजा की आज्ञा से युद्ध होता है तो जो वीर जितनी ही अधिक संख्या में विरोधियों को मारता है, उसकी प्रशंसा होती है और उसे पुरस्कार दिया जाता है। इसी प्रकार भगवान् के निमित्त किया हुआ सभी कार्य पुण्य है और कर्त्ता प्रशंसाभागी होता है।

12। लक्ष्मण जी ने भगवान के आगमन के समय दुःखी होकर कहा था "**अहं हनिष्ये पितरं कामवशं गतम्**। वा. रा. अयो. **21**।**19** ।" मैं अभी वृद्ध पिता को मारूंगा। भरत जी ने अपनी माता कैकेयी के प्रति कहा है "**धिक कैकेयी अमंगल मूला**।" "**गिरेउ न जीह मुख परेउ न कीरा**। मानस अयो. **161**।**1**" यह माता के प्रति फटकार है। भरत ने वसिष्ठ जी को भी फटकारा है किन्तु वे सभी दोष भी भरत जी को दूषित न कर सके। "**पूरन राम सप्रेम पियूषा। गुरु अपमान दोष नहीं दूषा**। मानस अयो **208**।**3**।" श्री राम जी के लिए ही भरत जी ने सभी का अपमान किया, अतः दोष नहीं हुआ। लक्ष्मण जी ने परम भागवत भरत जी को भी अपमानित किया है। "**सोवहु समर सेज दोउ भाई**। मानस अयो **229**।**2**।" भगवान् के निमित्त होने के कारण यह महान दोष भी नगण्य हो गया।

13। प्रह्लाद ने अपने कुलधर्म, जातिधर्म, पितृवचन, गुरुवचन सभी का परित्याग किया है। उन दोषों के साथी प्रह्लाद के सहपाठी भी थे किन्तु कोई भी दोषी नहीं हुआ क्योंकि प्रह्लाद ने सभी पाप भगवान् के निमित्त किया है। इसीलिए भगवान ने कहा है कि "**अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्। साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः**। गी ।**9**।**30**।" श्रुति विहित निज पथ को छोड़कर जो भी मुझे अनन्य भाव से जानता है वह साधु है।

14। अपने लिए किया हुआ धर्म कार्य भी बन्धन हो जाता है जैसे नृग एवं बलि आदि को हुआ। स्वार्थ बुद्धि से तृण छेदन भी पाप है किन्तु भगवान् के निमित्त तुलसी छेदन किया जाता है। जितनी ही तुलसी भगवान् को अर्पित की जाय अधिकाधिक पुण्य है। भगवान प्रसन्न होते हैं। यह सद्ग्रन्थों का वचन है। इसी प्रकार के कर्मों को पाप भय होते हुए भी पुण्य जनक कहा गया है क्योंकि भगवान् को वह प्रिय है।

15। हरिवंश की कथा है घण्टाकर्ण जब मुक्ति के लिए भगवान् के यहां चला तो उनके लिए नैवेद्यार्थ भोग लगाने के लिए एक ब्राह्मण को मारकर वह ले चला। भगवान ने उसकी हृदयस्थ भावना जानकर वह उपहार लिया और प्रसन्न होकर उसको मोक्ष दिया तथा ब्राह्मण को जिला दिया था।

16। दक्षिण भारत के श्रीरंगपुरी के समीप पहाड़ के ऊपर उद्भट महादेव की एक मूर्ति थी। उस पर प्रतिदिन उनके भक्तगण दूध चढ़ाया करते थे जो एक गढ़ा में जमा हो जाता था। कोई वैष्णव उस दूध को अपने घर लाकर हविष्य बना भगवान् को भोग लगाते और वैष्णवों को प्रतिदिन खिलाया करते थे। किसी दूसरे वैष्णव ने उस वैष्णव से पूछा कि तुम शिव के निर्माल्य दूध से खीर बना भगवान् और भागवत को खिलाते हो, यह घोर पाप क्यों करते हो ? उसने उत्तर दिया मैं तो जानता हूँ कि मूर्ख लोग पत्थर पर दूध गिरा देते हैं। मैं उसको भगवान् के काम में लगा देता हूँ तो क्या अनुचित हुआ ? यह सुनकर सभी प्रसन्न हुए। यह

अपचार उस वैष्णव को नहीं लगा क्योंकि भगवान् के लिए उसने यह किया था।

17। ययाति ने अपने पुत्र यदु से युवास्था मांगी थी किन्तु यदु ने नहीं दिया। उसने सोचा था कि अपनी युवास्था दे देने से मैं बूढ़ा बन जाऊंगा तो भगवान् की आराधना करते नहीं बनेगी। अतः पिता की आज्ञा नहीं माना किन्तु आज्ञा उल्लंघन का दोष उसे नहीं लग सका। इसी के विषय में कहा है कि "**यदोश्च धर्मशीलस्य** ।भा. **10**।**1**।**2**।" यदु को धर्मशील विशेषण दिया गया है क्योंकि इसने भगवान् के निमित्त अपनी युवास्था सुरक्षित रखी थी।

18। ईश्वर को मित्र भाव या शत्रु भाव से जिस प्रकार हो सके जानना चाहिए इससे भलाई होती है। शत्रु भाव से ईश्वर को जानने वाला शिशुपालादि, मित्र भाव से जानने वाले उद्धवादि थे।सबों का कल्याण हुआ। ईश्वर को जानकर उपेक्षा करने वाले वेणु आदि की भलाई नहीं हुई इसलिए कहा है "**तुलसी अपने राम को रीझ भजे या खीझ। उलटा सीधा जामि है खेत परे सब बीज।** ।" खेत में पड़ा वीज चाहे वह उलटा सीधा क्यों न हो जमकर समान ही बढ़ेगा और सबों में समान ही फल लगेगा। इसी प्रकार का भगवान का स्मरण है। वह चाहे किसी प्रकार का क्यों न हो किन्तु उससे कल्याण होगा ही। "**पुण्यं पापमिति द्वयं खलु तयोः पूर्वेण यत्साध्यते।**" "**तत्व द्विस्मृति कारकं तनुभृतां ...**।" पुण्य का फल सुख है किन्तु वह सुख भगवान् को भुलादेने वाला है। सुख भोगने के लिए बहुकाल तक देवलोकादि में रहना पड़ता है, जो भगवान् की प्राप्ति का विरोधी है। अतः वह पाप हुआ।

श्रीमते रामानुजाय नमः

सत्संग क्यों ?

सन्तसंग अपवर्ग कर कामी भवकर पंथ। कहहिं सन्त कवि कोविद श्रुति पुराण सद्ग्रन्थ ।मानस उत्तर **33**।

सज्जनों के साथ संगति करने से मोक्ष मिलता है। संसार के मनुष्यों में दो विभाग है। एक दैवी बुद्धि वाला दूसरा आसुरी बुद्धि वाला। दोनों के दो मार्ग, दो कार्य और दो स्थान भी हैं। दैवी बुद्धिवााले संसार से मुक्त होकर अपने साथ अनेकों को भगवान्के यहाँ ले जाते हैं और आसुरी बुद्धिवाले अपने साथियों के साथ नरक में पहुँचते हैं। " **दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी** मता।गी 16।**5**।"

दैवी बुद्धिवाले पवित्र कर्म में रत रहते हैं और आसुरी बुद्धिवाले पाप कर्म में रत रहते हैं। जैसे एक ही मैकल पहाड़ से निकले हुए सोनभद्र और नर्मदा की सहायक नदियाँ सोनभद्र के साथ बंगााल की खाड़ी में और नर्मदा के साथ अरब समुद्र में गिरती हैं। इस प्रकार एकही संसार में जन्म लेने पर भी कुछ लोग सज्जनों के संग से मोक्ष प्राप्त करते हैं और कुछ लोग दुष्टों के संग से नरक पाते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि अपनी भलाई चाहने वालों को सज्जनों की संगति करनी चाहिए।

"**गंगा पापं शसी तापं दैन्यं कल्पतर्रोयथा। पापं तापञ्च दैन्यञ्च हरते सन्त समागमः**।।" गंगा पाप, चन्द्रमा ताप और कल्पतरु दीनता को नाश करता है किन्तु सन्तों की संगति पाप ताप और दीनता सबों को नाश करती है। यहाँ ताप शब्द दैविक, दैहिक और भौतिक तीनों का वाचक है। प्रह्लाद ताप से तप्त नहीं हुए, नव योगिश्वरों सनकादिकों तथा नारद कर्दमादिकों को दरिद्रता नहीं सता सकी। "**श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत्**।भा. **11**।**23**।**19**।" कल्याण चाहने वालों को चाहिए कि धन से बहुत दूर रहे। "**ससुखी यस्त्वकिञ्चनः**।" अकिंचन ही परम सुखी है। किन्तु यह ज्ञान तो सज्जनों को संगति द्वारा ही प्राप्त होता है। दरिद्रता उन्हें नहीं सताती। काक भुसुण्डी ने गरुड़ से कहा है - "**सत्संगति दुर्लभ संसारा।निमिष दण्ड भरि एको बारा**।मानस उ. **122**।**3**।" इसी प्रकार लंकिनी ने भी कहा है - "**सात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिए तुला इक अंग। तुलै न ताही सकल मिली जो सुख लव सत्संग**।मानस सु. **4**।**0**।" किन्तु "**राम कृपा विनु सुलभ न सोई**। मानस बा. **2**।**4**।" भगवान् की कृपा विना सत्संगति का अवसर नहीं प्राप्त होता। "**सत्संगति**

संसृति कर अन्ता। मानस उ. 44।3।" सत्संगति द्वारा संसार-बन्धन छूटता है। ऐसे महान कार्य में भगवान् की कृपा अवश्य ही अपेक्षित रहती है। उनकी कृपा होते ही जन्म-मरण बन्धन छूट जाता है। नारद पूर्वजन्म में दासीपुत्र थे। इनकी माँ वेद पाठी ब्राह्मण के यहाँ रहती थीं। पिता मर चुके थे। इनके भरण पोषण का भार माँ के ऊपर था। जिस ब्राह्मण के यहाँ नारद की माँ रहती थीं वहाँ कभी कुछ साधु लोग आये और अपनी दयावस भगवान्का तीर्थ प्रसाद बच्चा नारद को भी दिये। इससे नारद का हृदय पवित्र हो गया ज्ञान पट खुल गया। इसी समय इनकी माँ सर्प दंश से मर गयी। नारद इससे अत्यन्त प्रसन्न हुए कि मेरे भरण पोषण के लिए ही माँ को टहलनी का काम करना पड़ता था। इस कष्ट से वह मुक्त हो गयी और मैं भी माँ के प्रेम बन्धन से मुक्त हुआ। साधुओं की संगति के प्रभाव से नारद भगवान्की आराधना करने लगे। भगवान् प्रसन्न होकर इन्हें दर्शन दिए किन्तु क्षण भर के लिए। इस दर्शन से विश्लेष होने पर उसके लिए नारद को व्याकुल देखकर पुनः आकाशवाणी हुई - तुम्हारी देह अभी शूद्र का है। आगे के जन्म में ब्राह्मण की देह मिलेगी तब मनोकूल दर्शन होगा और अभिलाषा पूरी होगी। वही नारद जब ब्राह्मण हुए तब पुनः भगवान्का दर्शन हुआ।

सत्संग महिमा । नारद -

अहं पुरातीत भवेऽभवं मुने दास्यास्तु कस्याश्चन वेदवादिनाम्।
निरोपिते बालक एव योगिनाम् शुश्रुषणो प्रावृषि निर्विविविक्षताम्।।
ते मय्य पेताखिलचापलेऽर्भके दान्तेऽधृतक्रीड़नकेऽनुवर्तिनि।
चक्रुः कृपां यद्यपि तुल्य दर्शनाः शुश्रुषमाणे मुनयोऽल्प भाषिणी।।
उच्छिष्टलेपाननुमोदितो द्विजैः सकृत्स्म भुञ्जे तदपास्तकिल्विषः।
एवं प्रवृत्तस्य विशुद्ध चेतसस्तद्धर्म एवात्मरुचिः प्रजायते।।
तत्रान्वहं कृष्णकथाः प्रगायताम् अनुग्रहेण श्रृणवं मनोहराः।
ताः श्रद्धया मेऽनुपदं विश्रृण्वतः प्रियश्रवस्यङ्ग ममाभवद्रुचिः।भा. 1।5।23-26।

नारद जी ने अपनी कथा द्वारा लोगों को सत्संग की महिमा बतायी है।

न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च। न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्त न दक्षिणा।।
ब्रतानि यज्ञछन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः। यथावरुन्धे सत्सङ्गः सर्व सङ्गापहो हि माम्।।
सत्सङ्गेन हि दैतेया यातुधाना खगाः मृगाः। गन्धर्वाऽप्सरसो नागाः सिद्धाश्चारणगुह्यकाः।।
विद्याधरा मनुष्येषु वैश्याः शूद्राः स्त्रियोऽन्त्यजाः। रजस्तमः प्रकृतयस्तस्मिंस्तस्मिन् युगेऽनघ।।
बहवो मत्पदं प्राप्तास्त्वाष्ट्रकायाधवादयः।भा. 11।12।1-4।

भगवान् अपने विषय में कहते हैं कि हे उद्धव ! मुझको जितना सत्संग अवरुद्ध (वश में) करता है उतना और कोई साधन योग, तप, सांख्य, धर्म, स्वाध्याय, इष्ट, आपूर्त, व्रत, यज्ञ, तीर्थ, नियम, यमादि नहीं अवरुद्ध (वश में) कर सकता है। सभी कुसंगों को नाश करने वाला सत्संग के द्वारा दैत्य, राक्षस, मृग, पक्षी, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण, गुह्यक, विद्याधर, मनुष्य आदि सभी रजोगुणी, तमोगुणी प्रकृति वाले प्राणी, त्वाष्ट्र , कयाधु (प्रह्लाद) आदि भक्त मेरा पद (वैकुण्ठ) प्राप्त कर चुके हैं।

वृषपर्वा वलिर्वाणो मयश्चाथ विभीषणः। सुग्रीवो हनुमानृक्षो गजो गृद्धो वणिक्पथः।।
व्याधः कुब्जा व्रजे गोप्यो यज्ञपत्न्यस्तथापरे।
तेनाधीतश्रुतिगणा नोपासितमहत्तमाः। अव्रतातप्ततपसः सत्सङ्गान्मामुपागताः।।
केवलेन हि भावेन गोप्योगावो नगा मृगाः। येऽन्ये मूढधियो नागाः सिद्धामामीयुरञ्जसा।।
यं न योगेन सांख्येन दानव्रततपोऽध्वरैः। व्याख्या स्वाध्याय संन्यासैः प्राप्तनुयाद् यत्नवानपि।भा. 11।12।5-9।

वृषपर्वा, वलि, वाण, मय, विभीषण, सुग्रीव, हनुमान, गज, गृद्ध, तुलाधार वैश्य, धर्म, व्याध, कुब्जा, व्रज की गोपियाँ, यज्ञ पत्नियाँ, व्रज की गौएँ, वृक्षादि, मृग, पशुपक्षियाँ जो कभी न तो स्वाध्याय, किसी प्रकार का व्रत, महापुरुषों की उपासना, कृच्छ चान्द्रायणादि व्रत ही किये थे। इन सबों में अधिकांश तो साधन-साध्य के सम्बन्ध में सर्वथा मूढ़ बुद्धि वाले ही थे किन्तु सत्संग बल

से ही उत्तम गति प्राप्त किये।

सत्संग के सम्बन्ध में श्रीवरद गुरु विरचित दो श्लोक यों हैं-

सत्संगाद्भव निस्पृहो गुरुमुखाच्छ्रीशं प्रपद्यात्मवान्। प्रारब्धं परिभुज्यकर्मसकलं प्रक्षीणकर्मान्तरः।।

न्यासादेवनिरंकुशेश्वर दया निर्लूनमायान्वयो। ज्र्द्रानुग्रहलब्धमध्यधमनीद्वाराद्वहि निर्गतः।।

मनुष्यों का जब सज्जनों के साथ संगति होती है तब उसे सांसारिक विषयों से अरुचि हो जाती है। प्श्चात् गुरु द्वारा नारायण की शरणागति और नारायण मन्त्र प्राप्त होता है। इससे इसी जन्म में पूर्व के संचित कर्म नष्ट हो जाते हैं। ज्ञान हो जाने के कारण कर्तृ त्वाभिमान नहीं रहने से भावी कर्मबन्धन लगता ही नहीं है। यदि स्वभाव से कुछ हो भी जाय तो भगवान् नाश कर देते हैं। प्रारब्ध भोगकर यहीं स्वच्छ हो जाता है। अथवा भगवान् शरणागत के पापों को - उसके शत्रु को और उसके पुण्यों को - उस के मित्रों को देकर उसे स्वच्छ बना देते हैं। हृदयस्थ अन्तर्यामी भगवान् अपनी कृपा द्वारा जीव को सुषुम्ना नाड़ी द्वारा बाहर कर देते हैं। कर्मवासनावस प्राप्त शरीर से छुटकारा पा कर जीव अर्चिरादि मार्ग से आगे बढ़ता है।

मुक्तोऽर्चिदिन पूर्वपक्षषडुदङ्मासाब्दा वातो शुभत्। म्लौर्विद्युद्वरुणेन्द्र मरुतः सीमान्त सिन्ध्वाप्लुतः।।

श्रीवैकुण्ठमुपेत्य नित्यमज्डं तस्मिन् परब्रह्मणः। सायुज्यं समवाप्य नन्दतिचिरं तेनैव धन्यः पुमान्।।

अग्निलोक के देवगण अर्चिरादि पहुंचा देते हैं। दिनाभिमानी लोक, शुक्लपक्षाभिमानी, उत्तरायण छः मास, सम्वत्सर देवताओं के लोक होते वायु, सूर्य, चन्द्र, विद्युत, वरुण, इन्द्र लोक होते हुए और उन सबों से सम्मानित होते हुए ब्रह्मलोक जाता है। वहाँ भी उनसे पूजित होकर प्रकृति मण्डल की सीमा तथा त्रिपादविभूति के मध्य में ज्ञान की धारा वाली विरजा नदी में स्नान कर प्राकृत शरीर को छोड़ कर **पञ्चोपनिषण्मय** भगवान्की सेवा योग्य चतुर्भुज शरीर धारण करता है। विरजा के तट पर अमानव भगवान् के स्पर्श से दिव्यज्ञान प्राप्त होता है। मुक्तात्मा को यहाँ से अतिवाहिक लोग दिव्य विमान में बैठाकर विरजा तक ले जाते हैं और वहाँ से दिव्यसूरि विमान से भगवान्के यहाँ ले जाते हैं। वैकुण्ठ के समीप पहुँचने पर यह वैकुण्ठ नगर को "**श्री वैकुण्ठाय नमः**" कह कर प्रणाम करता है। इसको गोपुर के अभ्यन्तर प्रवेश करने पर भगवान्के दिव्यपार्षदगण उसे अपने स्थान एवं घर में लिवा जाते और पूजन स्तुति करते हैं। पुनः भगवान्के दिव्य विमान को "**श्रीवैकुण्ठ दिव्यविमानाय नमः**" कह कर प्रणाम कर शेष पर बैठे हुए भगवान्को प्रणाम करता है। लक्ष्मी के सहित भगवान् इस मुक्तात्मा को प्रेम से अपने पास बुलाते और पूछते हैं कि अब तक तुम कहाँ था और यहाँ कैसे आया ? यह सुनकर मुक्तात्मा पुरुष अपनी जन्मान्तर की बात कह कर यह भी बतलाता है कि अब तक मैं माया के बन्धन में पड़ा था। जब आप की कृपा हुई तब मैं आप की शरण में आया हूँ। यह सुनकर भगवान् उसे लक्ष्मी को दे देते हैं। लक्ष्मी उसे पुत्र के समान दुलारती हुई सभी प्रकार से भगवान्की सेवा करने की विधि बताती हैं। इस भाँति वह सतत भगवान्की सेवा में रहता हुआ आनन्द से कालक्षेप करता है और वहाँ से कभी भी इस लोक में नहीं आता। यह सत्संगति का ही फल है। इस विषय को लोकाचार्य स्वामीने ऐसा कहा है - **निर्हेतुक भगवत्कटाक्ष द्वारा अज्ञान सुकृतं भवति, तद्वारा अद्वेषो भवति, तस्मात्भागवत विषयाभिमुख्यं भवति।** भगवान्की निर्हेतुक कृपा द्वारा ही सत्संगति का संयोग होता है। इसी से "**सत्संगति दुर्लभ संसारा** । मानस उ. **122**।**3**।" कहा गया है क्योंकि संसार बन्धन छूट जाता है।

(द्रष्टव्य - श्री वरदगुरु, श्री वेदान्त स्वामी जी के गुरु के गुरु थे। आपका कांचीपुरम में मुख्यालय था। एक बार अर्चक वरदराज भगवान को अत्यन्त गरम दूध अर्पित करने ही जा रहे थे कि आपने बीच में ही अर्चक को रोककर उस दूध को पीने लायक, न अधिक गरम न अधिक ठंढ़ा, देने का अनुरोध किया। अर्चक ने वैसा ही किया और वरदराज भगवान ने प्रसन्न होकर वरदगुरु को अपनी माँ कहकर सम्बोधित किया। उस दिन से आप "नदडूर अम्मल" के नाम से ही कांचीपुरम में विख्यात हुए।)

महर्षि वाल्मीकि के सम्बन्ध में भी यही कथानक है - वाल्मीकि जी पहले घोर हिंसक थे। लूट मार द्वारा धन लाकर परिवार का भरण पोषण करना ही इन का काम था। एकवार सप्तर्षियों से इन्हें भेंट हुई। उन सबों के सामान भी इन्होंने ने छीनने का उपक्रम किया। उन सबों ने उनसे पूछा - क्या तुम्हारे परिवार भी तेरे इस दुष्कर्म के भागी होंगे ? वाल्मीकि अपने परिवार के लोगों से पूछने

गये। उन सबों ने उत्तर दिया – हम सब तुम्हारे लाये हुए धन के केवल भोक्ता हैं तुम्हारे पाप के भागी नहीं। यह उत्तर सप्तर्षियों को वाल्मीकि जी ने सुनाया। तब ऋषियों ने अपने उपदेशों के द्वारा इनका अज्ञानान्धकार दूर कर कल्याणार्थ राम नाम जपने को प्रेरित किया। इसके बाद तो इनका भाग्य जग गया। तब से दिव्यज्ञान इन्हें मिल गया। इनसे मिलने ब्रह्मा आये। उन्हीं के उपदेश से इन्होंने रामायण की रचना की। इसीलिए ये आदिकवि कहलाये। भगवान् भी मिले। इस प्रकार सत्संग द्वारा ही ये महान बने। वृत्रासुर को चित्रकेतु जीवन में नारद और अंगिरा के सत्संग से ज्ञान प्राप्त हुआ था अतः भगवान् मिले। मतंग ऋषि के सत्संग से शवरी भगवान् की कृपा पात्र हुई थी। उसकी झोपड़ी में भगवान् श्रीरामचन्द्र स्वयं पहुंच कर जूठे बेर भी खाये थे। रहुगण को जड़भरत से ज्ञान प्राप्त हुआ था जिससे वे राज्य छोड़ जंगल में तपस्या करने चले गये थे। विदुर के उपदेश द्वारा धृतराष्ट्र और गान्धारी को ज्ञान मिला था। दक्ष पुत्रों को नारद से उपदेश मिला था।

अनेक जन्मों का कर्म संस्कार आत्मा में रहता है। जैसे शीतकालीन पौधे शीत के संयोग से और ग्रीष्मकालीन पौधे उष्मा के संयोग से बढ़ते हैं उसी प्रकार सत्पुरुषों के सम्पर्क से पुण्य बढ़ता है, ज्ञान निर्मल बनता है, जो आत्मा के लिए हितकर है, और उसी से मोक्ष मिलता है। यही जन्य जनक भाव से सत्संग को बड़ा कहा गया है। पापात्मा के संग से पाप बढ़ता है जो नरक देने वाला है। इसी से कहा है – **"दुष्ट संग जनि देहु विधाता।** मानस सु 45।4।" भाव यह है कि नरक जाने पर तो पाप नाश होता है किन्तु दुष्टों के साथ संगति करने से पाप बढ़ता है। अतः दुष्टसंगति नरक से भी बढ़कर दुखदायी है। पापियों के संयोग से पुण्य अवरुद्ध और सज्जनों के संयोग से पाप अवरुद्ध रहता है, जैसे शीतकाल में होने वाले पौधे का बीज ग्रीष्म काल में नहीं उगता और ग्रीष्म काल में होने वाले पौधे का बीज शीत ऋतु में नहीं उगता है। पुण्य और पाप में परस्पर वैर भाव है। ये दोनों एक दूसरे को आक्रान्त करना चाहते हैं। यद्यपि बलवान दुर्बल को आक्रान्त करता है तथापि अन्योन्य सम्पर्क से किसी की हानि अवश्य होती है। अतः पुण्यात्माओं को पापात्मा से बहुत अलग ही रहना चाहिए, नहीं तो पुण्य की हानि होगी।

"खल के संग सदा दुखदाई। खल परिहरिये श्वान की नाई। मानस उ 105।8।" कुत्ते के स्पर्श से जैसे हड्डी तक को स्पर्श दोष लग जाता है उसी प्रकार दुष्टों के संयोग से आत्मा गिर जाती है। अतः दूर ही रहना चाहिए। **"काहु सुमति कि खल संग जामी।** मानस उ 111।2।" दुष्टों की संगति से पहले बुद्धि भ्रष्ट होती है। पश्चात् **"बुद्धिनाशात्प्रणस्यति।** गी. 2।63।" बुद्धि नष्ट होने पर सर्वस्व नष्ट हो जाता है। इसी का फल प्रचुर मात्रा में दृष्टिगोचर हो रहा है। अनाचार का साम्राज्य बढ़ा है। मानव का आचरण प्रायः बदल ही गया है। वर्णाश्रम व्यवस्था बदल गयी, रहन सहन, वेष भूषा, छुआछूत, खानपान, सबों में निवृत्ति आ गयी है। नंगा, चोंगा, नील, काकुल का ही भरमार है। **"मुक्त कक्षस्तु यो विप्रः धरण्यां पादतश्चरेत्। पदे पदे सुरापानं प्रायश्चित्तं न विद्यते।।"** जो गृहस्थ विना पिछुआ खोंसे चलता है उसे एक एक डेग चलने में सुरापान का दोष लगता है जिसका प्रायश्चित्त भी नहीं है। लुंगी चोंगा वाला व्यक्ति नंगा है। **"किञ्चिन्नीलं यदा वस्त्रं विप्रत्वंगेषु धारयेत्। अहोरात्रोश्वितो भूत्वा पञ्च गव्येन शुद्धयति।।"** यदि ब्राह्मण नीला वस्त्र धारण किया हो तो उसे एक दिन और रात उपवास कर पञ्चगव्य पान द्वारा शुद्ध होना चाहिए। त्रिशंकु को नील वस्त्र धारण किये देखकर ही मलेक्ष कहकर राज्य से निकाल दिया गया था। **"मोहाच्छिन्दति ये केचिद्दिजातीनां शिखां नरः। चरेयुस्ते दुरात्मनः प्रजापत्यं विशुद्धये।"** यदि कोई ब्राह्मण अज्ञानता वश शिखा कटवा दिया हो तो वह प्राजापत्य व्रत करके शुद्ध होवे। कुसंगति द्वारा कुकृतियाँ हुआ करती हैं। अतः कुसंग से बचना चाहिए। सत्संगति द्वारा कल्याण होता है अतः सत्संग ही करना चाहिए।

श्रीमते रामानुजाय नमः

श्रीस्वामीजी महाराज के शिष्य प्रशिष्य

1। **श्री भागवताचार्य जी** – आप परम विरक्त साधु थे। दक्षिण भारत के काञ्ची में, जो सप्त पुरियों में प्रधान है, एक बहुत बड़ा स्थान बनाकर वहीं पर रहते थे। आजकल उस स्थान में महान्त श्रीवासुदेवाचार्य जी (तरेत) के दो शिष्य रहकर पूर्ववत् परमार्थ

किया करते हैं। उत्तर भारत के वैष्णवों को ठहरने का वह स्थान परम आश्रय है।

2 | **श्रीरामकृष्णाचार्य जी -** आप एकान्त प्रिय भक्त परम विरक्त थे। जन समुदाय के कोलाहल से दूर रहना ही आपको अच्छा लगता था। गया जिला के मानिकपुर ग्राम (टिकारी थाना)में सुन्दर मन्दिर बना उसमें भगवान् को पधराकर भगवत्सेवा, भागवत सेवा तथा आचार्यानुसन्धान में रत रहते थे। अब आप वैकुण्ठवास कर गये। अपना स्थान जीविका सहित महान्त श्रीस्वामी वासुदेवाचार्य जी (तरेत) को दे गये हैं। पूर्ववत् ही वहां परमार्थ चल रहा है।

3 | **श्री स्वामी दाशरथी जी -** आप प्राचीन वैष्णवों में से एक अद्वितीय विरक्त थे। मनिआरी ग्राम (अरवल थाना)में स्थान बनाकर श्रीवैष्णवों की सेवा किया करते थे। अन्तिम अवस्था में आप अपनी समस्त भूमि और स्थान श्री स्वामी वासुदेवाचार्य जी महान्त (तरेत)को दे दिये थे। यही विशुद्ध भाव का समर्पण सर्व प्रथम श्री स्वामी जी को प्राप्त हुआ था। आपको इतना आगे बढ़ने में वही शुभ अंकुर था जो अविस्मरणीय है।

4 | **श्री राजीवलोचनाचाार्य जी -** आप मिथिला निवासी थे। अपनी जन्म भूमि में ही एक ठाकुरवारी बनाकर अपनी सारी सम्पत्ति उसी के अन्तर्गत कर उसका संरक्षण भार पंच कमिटी को दे दिया था। उस भाग में आपके शिष्य गण अधिक पाये जाते हैं। । इस समय उस स्थान की दशा शोचनीय है।

5 | **श्री वाजपेयी जी -** भक्त प्रवरों में एक श्री संकर्षणाचार्य जी थे जो वाजपेयी जी कहाते थे। आप भगवान्‌की मूर्त्ति के श्रृंगार में परम प्रवीण थे। श्रीस्वामी जी महाराज की चरण सेवा में आप बहुत दिनों तक रहे थे। आपके शिष्य कन्नौज में अधिक हैं। वहीं पर आपका परमपद हुआ था।

6 | **श्री मथुरा जी (मधुसूदनाचार्य) -** आप वाल्यावस्था से ही श्रीस्वामी जी महाराज के साथ रहकर गान विद्या का अभ्यास किया करते थे। गान विद्या में आप निपुण थे। आपका गान नासिक में छत्तीसगढ़ वालो लोगों ने सुना और आप से इतना प्रभावित हुए कि सब आपको छत्तीसगढ़ में ही बुलाकर ले गये। वहीं पर आप रह गये और एक स्थान बनाकर वैष्णव सेवा करने लगे। आपकी प्रतिष्ठा उधर विशेष है। आपके एक सहोदर भ्राता श्री जनार्दनाचार्य जी भी आप ही के साथ रहकर श्री आचार्य चरणों की सेवा करते रहते हैं।

7 | **श्रीरामानुजाचार्य -** आप श्री स्वामी जी महाराज के कृपा पात्र विरक्त महात्मा थे। बहुत दिनों तक आप तरेत ही रहकर कैंकर्य किया करते थे। प्श्चात् इक्कील ग्राम में एक स्थान बनाकर वहीं रहते हुए भगवत् भागवत सेवा करते थे। वहां आम का एक बाग भी आपका लगाया हुआ वर्तमान है जो अभी वहां के हाई स्कूल के अन्तर्गत हो गया है। आपके शिष्य विरक्तराज श्री सूरी जी के नाम से विख्यात हैं। आप भी बड़े परमार्थी हैं। आप का कई एक स्थान बनाया हुआ है। आप आयुर्वेद एवं यन्त्र तन्त्र के विशेषज्ञ हैं। कुछ धन संचय हो जाने पर आप उसे तदीयाराधन में लगा दिया करते हैं।

8 | **श्री नारायणाचार्य -** आप नागपुर जिले में स्थान बनाकर वहीं परमार्थ किया करते थे। आपकी सेवक मण्डली में बड़े बड़े धनाढय लोग हैं। श्रीस्वामी जी महाराज को आप अपने यहां बुलाकर बहुत सेवा किये थे।

9 | **श्री माधवाचार्य -** श्री स्वामी जी महाराज के परमभक्त एक श्री माधवाचार्य जी थे। आप तीर्थाटन में श्री स्वामी जी के साथ रहकर सेवा कैंकर्य किया करते थे। आप के एक शिष्य श्री संकर्षणाचार्य जी बूढ़े पुष्कर क्षेत्र के जंगल में ही एक मन्दिर बनाकर वहीं रहते हैं और भगवत् भागवत् सेवा के साथ भगवान्‌की सन्निधि में सतत गोघृत का पाँच अखण्ड दीप जलाया करते हैं। आपको उक्त क्षेत्र में जाने के पूर्व जंगली जानवर बाघ आदि से वह क्षेत्र उपद्रवग्रस्त था किन्तु जब से आप वहां अखण्डदीप द्वारा भगवान् की सेवा करने लगे तब से वह उपद्रव विल्कुल ही दूर हो गया। हिंसक जन्तुओं ने हिंसा छोड़ दी। आप के प्रभाव से उस क्षेत्र के लोग अधिक प्रभावित हुए। आपके स्थान में वैष्णवों का ताँता सतत लगा रहता है। आपके शिष्यगण उस क्षेत्र में अधिक रहते हैं।

10। श्री माधवाचार्य जी (उचिटा ग्राम)- श्रीचरणों की एक शाखा श्री माधवाचार्य जी थे। आप उचिटा ग्राम में स्थान बनाकर भगवत् भागवत् कैंकर्य किया करते थे। वहां आपका बनाया हुआ एक विशाल एवं परम मनोहर मन्दिर है जिसमें श्रीराम जानकी एवं लक्ष्मण जी की मूर्ति पधरायी हुई है। समीप ही एक विशाल तालाव भी है जिसका चारो घाट पक्का बना हुआ है। आप भगवान् के लिए पर्याप्त जीविका भी अर्जन कर छोड़े हैं। वहीं पर एक संस्कृत पाठशाला संस्कृत की रक्षा के लिए खोली गयी थी किन्तु समाज के दुर्भाग्यवश वह कुछ दिनों के पश्चात् बन्द हो गयी। अपनी जन्मभूमि निरखपुर में भी आपने एक मन्दिर बनवाया है। आपके पुरुषार्थ से पण्डुई आदि ग्रामों में अधिक सुधार हुआ है। आपके शिष्य उस क्षेत्र के परम वैष्णवसेवी और सुशिक्षित हैं। आपके उत्तराधिकारी वर्तमान महान्त श्री देवराजाचार्य भगवत् भागवत् कैंकर्यनिष्ठ हैं। आप काशी के नगवाँ महल्ले में शान्ति सदन नाम से एक स्थान बनाकर अचार्य - चरण - कैंकर्य कर रहे हैं। भूले भटके अनाथ अध्ययनार्थियों का वह स्थान परम आश्रय है जहाँ छात्रों को सभी सुविधायें प्राप्त हैं।

11। महान्त श्रीधराचार्य (बैदराबाद) - श्री स्वामी जी महाराज के शिष्यों में उनके कृपा पात्र एक श्रीधराचार्य जी भी थे। आप बहुत दिनों तक श्री स्वामी जी महाराज के साथ रहकर सेवा किया करते थे। आपको सत्पात्र विरक्त जानकर श्री स्वामी जी महाराज ने आज्ञा दी थी कि तुम बैदराबाद स्थान में रहकर वैष्णव सेवा किया करो। यह स्थान बड़ी नहर के किनारे चारों दिशाओं से आये हए अतिथि अभ्यागतों के लिए सुविधापूर्ण आश्रयस्थल है। इस दृष्टि से इसका निर्माण किया गया था। पहले इस स्थान में श्री शत्रुघ्न जी नामक एक वैष्णव को रखा गया था अत्यन्त शान्त स्वभाव वाले कैंकर्यपरायण थे। रस रसायन के भी वे विशेषज्ञ थे। श्रीधराचार्य जी के पश्चात् आप को यहाँ का अधिकारी बनाया गया। बैदराबाद की वैष्णवता पहले से ही प्रशंसनीय थी और आज भी है जबकि समय में बड़ा परिवर्तन आ गया है।

आप स्वरूपानुरूप परम उदार चित्तवाले थे। अटूट वैष्णव सेवा और परमार्थ यहाँ करने लगे। प्रारम्भ से आज तक वैष्णवगण ही स्थान का व्यय भार सहर्ष वहन कर रहे हैं। आप का लगाया हुआ आम का एक सुन्दर उद्यान भी है जिसका नाम रामबाग है। इसका फल परमार्थ में ही लगता है। आपके परमपद के पश्चात् आपके उत्तराधिकारी परमार्थी श्रीदामोदराचार्य जी हैं। आप स्वतः भगवान्का समाराधन किया करते हैं। बैदराबाद के भक्तों की सहायता से स्थान की उन्नति उत्तरोत्तर कर रहे हैं। यह स्थान सेवाश्रम के नाम से भी विख्यात है।

12। श्री पंडित दामोदराचार्य - श्री स्वामी जी महाराज की विभूतियों में महमतपुर (पटना) निवासी एक पंडित दामोदर जी भी थे। ये एक भावुक गायक थे। इनकी कथा में सरसता एवं युक्ति की प्रधानता रहती थी। कथाओं में श्री राम कृष्ण की झाँकी सुनकर श्रोतागण विमुग्ध हो जाया करते थे। आपकी वाणी में अलौकिक आकर्षण था। कथा के रोचक उपदेश द्वारा हिंसक वृत्ति वाले भी सम्पूर्ण ग्राम निवासी हिंसा छोड़कर वैष्णव हो जाया करते थे। इस प्रकार बहुतों का कल्याण हुआ है। आपके द्वारा हरिकीर्तन का बहुत प्रचार हुआ। भगवान् के स्वरूप वर्णन में आप अद्वितीय थे इसीलिए आपकी कथा से बड़े बड़े विद्वान मुग्ध हो जाते थे। व्याख्यान भी अलौकिक ही होता था। स्वयं पद रचना भी करते और गाते थे। आपके शिष्य भागलपुर, मुंगेर, छपरा, मगध आदि विभागों में बहुत से हैं। उन्हीं शिष्यों में एक प्रधान धर्मोपदेशक कीर्तन कला कुशल पंडित श्री यामुनाचार्य जी हैं। आप प्रतिवर्ष श्रीहरिहर क्षेत्र मेले में आकर धर्मोपदेश किया करते हैं। पं. श्री दामोदराचार्य जी श्री स्वामीा जी महाराज को हरिहरक्षेत्र के बाड़ा की परमार्थसेवा में सहायता दिया करते थे। आप अल्पवय से ही श्रीचरणों के साथ लगे थे। आपकी धर्मपोषक भगवत् कथा, उपदेश, हरिकीर्तन, व्याख्यानादि बड़े ही भावपूर्ण होते थे। अतः लब्धप्रतिष्ठित पंडित बन गये थे।

13। पं. श्री गदाधराचार्य जी - आप बाल ब्रह्मचारी थे। यथार्थ में फलवती विद्या आप ही को हुई थी। विद्वान का लक्षण भी आप ही में था। श्री स्वामी जी महाराज आप को काशी पढ़ने के लिए भेजे थे। व्याकरण न्याय अध्ययन के पश्चात् वेदान्त

प्रारम्भ किये थे। अकस्मात् अध्यापक का देहावसान हो गया, जिससे आप पढ़ते थे। उसी समय आपके हृदय में भावना जगी कि जब सबों को एकदिन काल कवलित होना ही है तो मनुष्य होने का वास्तविक फल की ही प्राप्ति का प्रयास क्यों न किया जाय ? वस, आचार्य चरण सेवा, भगवत् सेवा कैंकर्य सम्पादन करने के हेतु से श्री स्वामी जी महाराज के समीप वहां से आ गये। श्री स्वामी जी ने उनसे पूछा कि कैसे आना हुआ ? उत्तर मिला, आपकी सन्निधि में रहकर आपकी सेवा करने का विचार है। श्री स्वामी जी महाराज से आज्ञा हुई कि तुम भगवान्की सेवा किया करो। आप साथ में सदा रहकर भगवान् की सेवा किया करते थे। एक बार दक्षिण यात्रा में आप संन्यास लेने का विचार व्यक्त किये थे। श्री स्वामी जी **'संन्यास आश्रम की कठिनता और भगवान्की प्राप्ति का उपाय शरणागति से बढ़कर कोई दूसरा नहीं है'** ऐसा समझा इन्हें कुछ दिनों तक रोक रखा था किन्तु उत्तरोत्तर इनकी उत्सुकता संन्यास की ओर बढ़ती देखकर श्री स्वामी जी महाराज, वृन्दावन श्री रामानुज स्वामी की सन्निधि में वहां के विद्वान कर्मकाण्डियों द्वारा आपको संन्यास दिलवाये। संन्यास ग्रहण के पश्चात् भी कुछ दिनों तक आप श्री स्वामी जी महाराज की सेवा वृत्ति में रहकर अन्त में बदरिकाश्रम जाकर शरीर त्याग किये।

14।श्री सियारामाचार्य जी - आप कन्नौज के रहने वाले थे। गान विद्या के प्रेमी थे। परम सन्तोषी विरक्त महात्मा भगवद्भजन में सदारत रहते थे। युवावस्था में ही आप वैकुण्ठ पधार गये थे।

15। महान्त श्री वासुदेव ब्रह्मचारी - आप बाल्यावस्था से ही श्री स्वामी जी महाराज के साथ लगे थे। तरेत स्थान में तथा काशी भी कुछ दिनों तक आप संस्कृत अध्ययन किये थे। जब श्री स्वामी जी महाराज दक्षिण की यात्रा में गये थे, जिसमें सात वर्ष का समय लगा था, आप उनका कृपापात्र होने से बाबू रामखेलावन शर्मा (चेसी)आदि सज्जनों की संगति से तरेत स्थान के उत्तराधिकारी बना दिये गये थे। आप भलीभांति स्थान का उत्तरदायित्व सम्भालते हुए भगवत् भागवत् सेवा, परमार्थ एवं वैष्णवता की वृद्धि किये थे। आपके शिष्य सर्वत्र गया पटना आरा आदि जिलाओं में हैं।

उन शिष्यों में प्रधान एक पं. अनन्ताचार्य जी हैं। ये स्वरूपानुरूप श्री वैष्णव धर्मोत्थान में सतत तत्पर रहते हैं। इनके द्वारा भलीभांति भाष्यकार की सेवा हो रही है। इस प्रकार उक्त ब्रह्मचारी जी के शिष्यों में श्री वैष्णव धर्म के ज्ञााता स्वरूपानुरूप भगवत् भागवत् सेवा कैंकर्यनिष्ठ अधिक लोग पाये जाते हैं। तरेत स्थानीय सम्पत्ति जब पञ्चायती हो गयी थी तब आप का नाम उसमें सेवइत में रखा गया था।

16। महान्त श्री स्वामी लक्ष्मी प्रपन्नाचार्य जी - श्री स्वामी जी महाराज के परम सन्त स्वामी श्री लक्ष्मीप्रपन्नाचार्य जी हैं। आप का बाल्यकाल एवं विद्यार्थी जीवन मथुरा वृन्दावन में व्यतीत हुआ। अन्यान्य शास्त्रों के ज्ञाता होने के साथ ही साथ आयुर्वेद के आप विशेष मर्मज्ञ हैं। शास्त्राध्ययन के पश्चात् आप तरेत श्री स्वामी जी महाराज की छत्रछाया में रह श्री वैष्णवों के स्वरूपानुरूप सेवा किया करते थे। पार्श्ववर्ती ग्रामों के रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा करने के कारण आपकी ख्याति अधिक बढ़ गयी है। किसी से विना मांगे जो कुछ द्रव्य मिल जाता था उसको श्री स्वामी जी के चरणों पर प्रतिदिन रख दिया करते थे। जब श्री स्वामी जी महाराज स्थान में नहीं रहते तो आप प्राप्त द्रव्यों को चेसी ग्राम वासी बाबू रामखेलावन सिंह जी के समीप रख दिया करते थे। उन रुपयों से वे आपके नाम कुछ भूमि व्यवस्था कर दिया करते थे। सबों की दृष्टि में आप अत्यन्त उदारमना प्रतीत होते थे। इन्हीं कारणों से आप तरेत स्थान के महान्त बना दिये गये थे किन्तु त्यागशील वृत्ति के कारण स्थान के झमेलों से अलग रहकर सदा श्री चरणों के अनुसन्धान में ही रत रहते थे। जब आपका शरीर शिथिल हो गया तब आप अपने नाम की सारी भूमि और अन्यान्य द्रव्यों के साथ अपना सर्वस्व भगवान् को समर्पण कर महन्थी का सर्वस्व अधिकार श्री स्वामी वासुदेवाचार्य जी को समर्पण कर अपने स्थान पर उनको बिठा दिया और आप स्वयं भगवच्चिन्तन में सतत रत रहते हैं। आप ही ऐसे सद्बुद्धिमान यदि साधु समाज में लोग हुआ करें तो विश्वमात्र का मंगल हो सकता है।

17। श्री सीतारामाचार्य जी - आप श्री स्वामी जी महाराज के अनन्य भक्त थे। इनकी श्यामल मूर्ति में प्रतिदिन द्वादश तिलक

लगता था। श्री स्वामी जी महाराज तथा सभी भागवतों को प्रतिदिन दो बार साष्टांग प्रणाम किया करते थे। आवश्यकता से अधिक बोलना आपका अभ्यास नहीं था। नित्य स्तोत्र पाठ, भगवच्चिन्तन तथा अन्यान्य भगवत् - भागवत्- कैंकर्य किया करते थे। बोलने में प्रतिवाक्य **'श्रीरामानुज स्वामी की कृपा से'** ऐसा बोलने का अभ्यास था। **दक्षिण भारत के ताम्रपर्णी नदी के समीप आळवार तिरुनगरी में आप एक स्थान बनाकर श्री वैष्णवों की सेवा आराधना किया करते थे। आप श्री स्वामी जी महाराज की चरण - पादुका को भरत के समान ले जाकर अपने स्थान में पधराये थे और उसकी पूजा सतत किया करते थे।** अन्त में आप यह स्थान श्रीस्वामी रंगदेशिकाचार्य (वृन्दावन) को दे दिये थे जो आज भी वर्तमान है।

18। **महान्त श्री स्वामी वासुदेवाचार्य** (तरेत) - श्री स्वामी जी महाराज के शिष्यों में आप सर्व प्रधान हैं। आपके सम्बन्ध में बहुत कुछ अधिक कहना भी थोड़ा ही है। आप का जीवन चरित्र छप गया है। उसमें आपके जीवन कृत्यों के सभी पहलुओं पर भलीभांति विचार किया गया है जिसके लेखक कविवर श्री राम प्रसाद शर्मा पुण्डरीक जी हैं। अतः आपके जीवन कृत्यों पर अब कुछ प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती है किन्तु नियम है कि भागवत् के सम्बन्ध में कुछ कहने से मुख पवित्र, लिखने से हाथ पवित्र और चिन्तन से अन्तःकरण पवित्र होता है। इसलिए कुछ लिखना अनिवार्य ही है।

श्री स्वामी वासुदेवाचार्य जी (तरेत) कौण्डिन्य गोत्रीय हैं। इस गोत्र के लोग आथर्वणिक होते हैं। वर्तमान युग में भगवान् नारायण धर्म रक्षार्थ व्यासरूप में अवतीर्ण होकर वेद को चार भागों में विभक्त किये हैं - "**ऋगथर्व यजुः साम्नाम्......**।भा. 12।6।50।" ऋग् साम यजुः और अथर्व । इन चार भागों में पूर्व के तीन भाग ऋग् , साम और यजु का प्रधान विषय ही अथर्व में रखा गया है। अथर्व का ज्ञाता चारों वेदों का ज्ञाता होता है। यही आथर्वणिक है। "**अथर्वाङ्गिरसीं नाम स्व शिष्याय सुमन्तवे**।भा. 12।6।53।" भगवान वेदव्यास अपना शिष्य सुमन्तु को अथर्वाङ्गिरसीं नामक संहिता पढ़ाये थे। "**अथर्व वित्सुमन्तुश्च शिष्यमध्यापयेत्स्वकाम्। संहितां सोऽपि पथ्याय वेददर्शयाय चोक्तवान्**।भा. 12।7।1।" अथर्व वेद ज्ञाता सुमन्तु ने अपनी संहिता शिष्य कबन्ध को पढ़ायी थी और कवन्ध उस संहिता को दो भाग करके पथ्य और वेददर्श नामक शिष्यों को पढ़ाये थे। "**शौक्लायनिर्ब्रह्मवलिर्मोदोषः पिप्लायनिः। वेददर्शस्य शिष्यास्ते पथ्यशिष्यानथो श्रृणु**।भा. 12।7।2।" वेददर्श के चार शिष्य थे - शौक्लायनि, ब्रह्मवलि, मोदोष और पिप्लायनि।

पथ्य के शिष्य कुमुद, शुनक और जाजलि थे - "**कुमुदः शुनको ब्रह्मन्जाजलिश्चाप्यथर्ववित्। वभ्रुः शिष्योऽथाङ्गिरसः सैन्धवायन एव च। अधीयेतां संहिते द्वे सावर्ण्याद्यास्तथा परे**।भा. 12।7।3।" शुनक के दो शिष्य थे वभ्रु और सैन्धवायन। इन दोनों ने दो संहिताओं का अध्ययन किया था।

"**नक्षत्रकल्पः शान्तिश्च कश्यपाङ्गिरसादयः। एते आथर्वणाचार्याः श्रृणु पौराणिकान्मुने**। भा. 12।7।4।" नक्षत्रकल्प, शान्ति, कश्यप, आङ्गिरस तथा सैन्धवायन के शिष्य सावर्ण्य आदि आचार्य आथर्वणिक हुए हैं। कौण्डिन्य ऋषि के सम्बन्ध में यह कथानक है कि नैमिषारण्य क्षेत्र में पार्वती का रूप देखकर ब्रह्मा का वीर्य स्खलित हुआ और उससे वहां का बालू भींगा, जिससे अट्ठासी हजार एक सौ अट्ठासी ऋषियों का प्रादुर्भाव हुआ। ये सभी वाल्यखिल्य कहलाये। इन सबों में से कुछ तो सूर्य की उपासना करके सूर्यलोक चले गये। कुछ भारत के पश्चिम भाग में बसे जो आज गारिले ब्राह्मण से विख्यात हैं और कुछ नैमिषारण्य में ही रह गये। इन्हीं सबों में एक कौण्डिन्य भी थे। इनका विवाह वशिष्ठ गोत्रीय सुमन्तु की कन्या से हुआ था। सुमन्तु (आथर्वणिक) की चर्चा ऊपर आ गयी है। कौण्डिन की स्त्री भगवद्भक्तिमति थी। इसकी कथा अनन्त व्रत में है। कौण्डिन्य को ही अनन्तशयन भगवान् जिनको पद्मनाभ जनार्दन भी कहते हैं, खोजने पर समुद्र में मिले थे। भगवान् को प्राप्त कर कौण्डिन्य स्त्री के साथ वहीं समुद्र किनारे बस गये। वह भाग (भारत दक्षिणी समुद्र तट) राम राजा के राज्य से आज प्रसिद्ध है। वहीं से कुछ कौण्डिन्य गोत्रीय ब्राह्मण बीजापुर, भागनगर, पण्डलपुर, सोलापुर में आ बसे हैं। अयोध्या से दक्षिण सह नदी के किनारे भी ये ब्राह्मण सइपारे के नाम से ख्यात पाये जाते हैं। वहीं सइ नदी है जहां पर भरत जी जंगल

जाते समय विश्राम किये थे - "**सइतीर बसि चले विहाने। श्रृंगवेरपुर सब नियराने**। मानस अयो. 188।1।" इस गोत्र के और भी कई एक मूल हैं। जैसे - इलाहाबाद में कण्टौली ग्रामवासी कण्टौनियाँ कहाते हैं किन्तु कौण्डिन्य गोत्रीय हैं। आरा जिला में सोनभद्र किनारे अन्धारी प्रगना, पटना में बलिया प्रगना और गया के वेलखरा गढ़ कौण्डिन्यों का अड्डा है। ये सभी दक्षिण भारत से ही आये हैं। इसी गोत्र के श्रृंगी ऋषि भी थे। ये आथर्वणिक थे। सभी वेदों का इन्हें ज्ञान था। अतः दशरथ जी ने अपने पुत्रेष्ठि यज्ञ में इनको बुलाया था। श्रृंगी ऋषि ने भी यही कहा है कि - "**इष्टिं तेऽहं करिष्यामि पुत्रीयां पुत्रकारणात्**। वा. रा. बाल. 15।2।।" राजा भीष्मक के पुरोहित भी आथर्वणिक ही थे - "**चक्रुर्सामर्ग्य यजुर्मन्त्रैर्वदध्वा रक्षा द्विजोत्तम। पुरोहितोऽथर्वविद्वैर्जहाव ग्रह शान्त ये**। भा. 10।53।12।"

गृह्य सूत्रों में लिखा है कि यदि आथर्वणिक सुयोग्य विद्वान् कोई नहीं मिले तो अभाव में अन्यान्य ब्राह्मण यज्ञ में ब्रह्मा बनाया जा सकता है। ब्रह्मा यज्ञ का निरीक्षक होता है अतः उसको प्रौढ़ विद्वान् सभी वेदों का ज्ञाता होना चाहिए। इस प्रकार के महान् कौण्डिन्य गोत्र को और भी महान् बनाने के लिए इस गोत्र में श्री स्वामी वासुदेवाचार्य जी का अवतार हुआ है। बड़ों का सबकुछ बड़ा ही होता है। महापुरुष का अवतार उच्चकुल वंश, गोत्र में ही हुआ करता है। आप प्रायः युवास्था के होते ही श्री चरणों से जा लगे थे। तब से बराबर साथ रहकर श्री स्वामी जी महाराज की सेवा में तत्पर रहने लगे। उनसे एकक्षण का वियोग भी आपको असह्य होता था। आचार्य-सेवा आप में भरी हुई है। आचार्याभिमान होने से ही - "**आचार्यवान्पुरुषो वेद।** ।""**आचार्य चरणों में प्रेम करने वाले लोग ही तत्वज्ञाता होते हैं**" के अनुकूल आपको सभी शास्त्र करामलकवत्हो गये। आचार्य चरणों में आपका नैसर्गिक प्रेम है जो शास्त्रविहित है।

यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। यस्य ते कथिताह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।।
तस्माद्भक्ति गुरौ कार्या संसार भय भीरुणा। आचार्य प्लाविता तस्यं ज्ञानं प्लवइहोच्यते।।
मन्त्रे तद्देवतायाञ्च तथा मन्त्रप्रदे गुरौ। त्रिषु भक्ति सदा कार्या साहि प्रथम साधनम्।।
दण्डवत्प्रणोद्भूमौ निर्लज्जो गुरु सन्निधौ। शरीरमर्थ प्राणञ्च सद्गुरुभ्यो निवेदयेत्।।
आचार्यस्य प्रसादेन मम सर्वमभिप्सीतम्। प्राप्नुयामिति यस्यास्ति विश्वास स सुखी भवेत्।5।
विष्णोरर्चावतारेषु लोहं भावं करोति यः। यो गुरोर्मानुषं भावमुभौ नरक गामिनौ।6।

ऊपर के श्लोक में देव शब्द से नारायण को जानना चाहिए। '**शुद्धो देवो ह्येको नारायणः।**' '**देवदेवो जनार्दनः।**'
भगवान नारायण में जैसी पराभक्ति हो वैसे ही गुरु में भी होनी चाहिए। जो अर्थ नारायण का है वही गुरु शब्द का भी है। यह महापुरुषों का कहा हुआ है। "**गुरुः साक्षात्परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।**" इसीलिए संसार के जन्म-मरण के भय से डरने वालों को गुरु में प्रेम करना चाहिए और गुरु से पारलौकिक ज्ञान प्राप्त कर संसार भय से मुक्त हो जाना चाहिए। "**ज्ञानं गृणाति इति गुरुः।**" ज्ञानोपदेशक को ही गुरु कहते हैं।

"**गु शब्दस्त्वन्धकारोऽस्ति रु शब्दस्तन्निरोधकः। अन्धकार निरोधत्वाद्गुरुरित्यभिधीयते।।**"

अज्ञानान्धकार को नाश करने वाला गुरु का दिया हुआ ज्ञान सूर्य के प्रकाश के समान है। इसी से गुरु कहे जाते हैं।इसी से गुरु कहे जाते हैं। यही ज्ञान संसार सागर से पार होने के लिए जहाज के समान है। मन्त्र (मूल, चरम, द्वय) में, मन्त्र के अधिष्ठातृ देव नारायण में और मन्त्र प्रदाता आचार्य, इन तीनों में समान ही भक्ति करनी चाहिए। यही सद्गति का प्रथम साधन है। गुरु के समीप जाकर लज्जारहित होकर दण्ड को भूमि पर गिरा देने के तुल्य साष्टांग प्रणाम करे। "**उरसा शिरसा दृष्टया मनसा वचसा तथा। पदभ्यां कराभ्यां जानुभ्यां प्रणामोऽष्टांगमुच्यते।।**" तन धन प्राण सभी आचार्य के लिए समझे और समर्प ण करे। यह विश्वास रखना चाहिए कि आचार्य की कृपा से मेरा मनोरथ पूर्ण होगा। ऐसी भावना करने से शिष्य सुखी रहता है। भगवान की प्रतिमा में धातुबुद्धि रखना, आचार्य में मनुष्य बुद्धि रखना, ये दोनों ही नरक देने वाले हैं। उपर्युक्त आचार्य चरण की सभी निष्ठा आप में प्रत्यक्ष देखने में आती है। इसीलिए -

"गुरुमुखमनधीत्य प्राह वेदान शेषान्, नरपति परिक्लृप्तं शुल्कमादातु कामः।
श्वसुरममरवन्द्यं रंगनाथस्य साक्षात्, द्विजकुलतिलकन्तं विष्णुचित्तं नमामि। गुरु तनियन।"

गुरुमुख अध्ययन विना ही केवल उनकी कृपावल से सम्पूर्ण वेदों की व्याख्या करने वाले विष्णुचित्त स्वामी के समान ही आप भी सम्पूर्ण शास्त्रों के गूढ़ तत्वों के ज्ञाता होकर उसके प्रचार प्रसार में सतत उद्यत रहते हैं। किसी विषय के व्यावहारिक या पारमार्थिक प्रश्न आने पर उसका सचमुच उत्तर आप देकर प्रश्नकर्त्ता को संतुष्ट किया करते हैं। शिष्य मण्डलियों में सतत्सद्विषयों में कालक्षेप किया करते हैं। आपका यही कहना है कि –

"असारे संसारे विषय विषसंगा कुलधियः, क्षणार्ध क्षेमार्ध पिवत शुकगाथातुलसुधाम्।
किमर्थं व्यर्थं भो व्रजत कुपथे कुत्सित कथे, परीक्षित साक्षी यच्छ्रवण गत मुक्तयक्तिकथने।।"

"जे गुरुपद अम्बुज अनुरागी। ते लोकहुं वेदहुं बड़भागी। मानस अयो. 258।3।" "जे गुरु चरण रेणु शिर धरहीं। ते सब लोक विभव वश करहीं। मानस अयो. 2।3।" गुरु की सेवा से सभी ऋद्धि सिद्धयाँ आपके वशवर्ती हो गयी हैं। जहां रहते हैं वहीं द्रव्यों की वर्षा होती रहती है। इसी से महान् से महान् द्रव्ययज्ञ, ज्ञानयज्ञादि रूप परमार्थ आप से होते रहते हैं। "जिमि सरिता सागर पहि जाहीं। यद्यपि ताहि कामना नाहीं। मानस बाल 293।1।" "तिमि सुख सम्पति विनहीं बुलाये। धर्मशील पहँ जाहिं सुहाये। मानस 293।2।"
आपके पास आये हुए धन का वास्तविकरूप से सद्व्यय होता है, अतः आपकी अनिच्छया भी धन आते ही रहता है। आचार्य-चरण-परायणता आपकी अवर्णनीय है। एकबार श्री स्वामी जी महाराज उज्जैन की यात्रा के लिए तरेत से चले। साथ मण्डली भी थी। मिर्जापुर (बनारस के समीप) पहुंचने पर यह ज्ञात हुआ कि वृन्दावन पीठाधीशश्री तरेत पधार रहे हैं। अतः श्रीस्वामी जी महाराज तरेत लौट आये और आपको आज्ञा दिये कि तुम मण्डली को नासिक ले चलो। उस समय श्रीचरणों का वियोग आपको वैसा ही मालूम हुआ जैसे श्रीरामजी का वियोग दशरथ को – "मीन दीन जनु जल ते काढ़े। मानस अयो. 69।2।" तथापि "आज्ञा सम न सुसाहेब सेवा। मानस अयो. 300।2।" मानकर आप मण्डली के भरण पोषण का सम्पूर्ण दायित्व अपने ऊपर लेकर नासिक के लिए आगे बढ़े। भयावह जंगली पहाड़ी मार्ग में भी जहां दिनरात बाघ सिंहादिकों के आक्रमण का भय बना रहता था आप निर्भीक आचार्य कैङ्कर्य मानकर आगे बढ़ते गये। मण्डली नासिक सकुशल पहुंच गयी। श्रीस्वामी जी की इस अनुपस्थिति में दो वर्षों तक निरावलम्ब रहने पर भी आप भलीभांति भगवत्- भागवत्- कैङ्कर्य करते रहे। अन्यान्य अतिथि अभ्यागत साधुओं की सेवा भी अनवरत चलती थी। जब पुनः श्रीस्वामी जी महाराज तरेत से नासिक आ गये और वहां से आगे उज्जैन चलने की तैयारी होने लगी। किन्तु, आपके भक्तिभाव, भगवान और भागवतों की सेवा सुश्रूषा से प्रसन्न होने के कारण वहां के सेठ साहुकार भक्तगण श्रीस्वामी जी महाराज से आग्रहपूर्वक यह कहने लगे कि श्रीस्वामी वासुदेवाचार्य जी यहीं छोड़ दिया जाये। ये यहां इस स्थान (श्रीस्वामी जी महाराज का पुराना स्थान) की रक्षा किया करेंगे। भक्तों के आग्रहवश आज्ञा हो गयी कि तुम यहीं रहो। आपका हृदय कमल कुम्हलाया किन्तु 'गुरु आज्ञा गरीयसी' मानकर आप वहां रह गये ओर वहां का समुचित कैङ्कर्य करने लगे। इसीलिए आप नासिक के स्वामी जी भी कहाते हैं। कुछ दिनों के पश्चात् मगधवासियों के सौभाग्यवश आप इधर ही आ गये और भाष्यकार के कैङ्कर्य करने लगे। इस समय तक श्रीस्वामी जी महाराज का परमपद हो गया था। आपके कैङ्कर्य से श्रीस्वामी जी महाराज पूर्ण सन्तुष्ट रहते थे। उन्हें विश्वास हो गया था कि मेरे पीछे यह भाष्यकार का कैङ्कर्य अवश्य रहेगा। इसीलिए अपने उत्तराधिकारी की चिन्ता से मुक्त हो गये थे जैसे भगवान्की सन्निधि में जाने पर मुक्तात्मा भी। "ममसाधर्म्यमागता ...।" "भोगमात्रसाम्यलिङ्गाच्च। ब्र. सू. 4।4।21। भगवान् के रूपरंग, गुण, भोगवाला हो जाता है। इसी से "ईश्वर नियोगात्सृष्टि स्थिति संहार कर्त्तुशक्ताः।" भगवान् की आज्ञा से वह सृष्टि करने में समर्थ हो जाता है। इसी प्रकार श्रीस्वामी जी महाराज ने भी अपने जीवन में ही अपना वरद हस्त आपके मस्तक पर रखकर मंगलानुशासन करते हुए कहा था कि तुम वैष्णव बनाया करो, यह भाष्यकार का दिव्य कैङ्कर्य है। इस सम्प्रदाय की

वृद्धि से लोक कल्याण के साथ साथ भगवान्‌की प्रसन्नता होती है। एक वैष्णव बनाने से भगवान् को कौस्तुभ मणि की प्राप्ति के समान प्रसन्नता होती है। अपने सामने ही श्रीस्वामी जी महाराज आप से सभी प्रकार के लौकिक पारलौकिक कैङ्कर्य करा कर आपकी क्षमता देख चुके थे।

सभी दिव्य लौकिक गुण आप में विद्यमान हैं। आपके कार्यकलाप से स्पष्ट यही झलकता है कि जिस कार्य को करने के लिए श्रीस्वामी रामानुजाचार्य, श्रीस्वामी रंगदेशिकाचार्य और श्रीस्वामी राजेन्द्रसूरि जी महाराज यहां आये वही शेष कार्य को पूरा करने के लिए भगवान ने अपने दिव्य गोष्ठि से आपको यहां भेजा है। इसी से आप से सभी अलौकिक कार्य जन कल्याण के लिए हो रहे हैं। श्रीवैष्णवों में भगवत्-भागवत् और आचार्य इन तीनों की सेवा प्रधान कैङ्कर्य माना जाता है। नासिक से आने के पश्चात् आप सर्वप्रथम आचार्य कैङ्कर्य तरेत स्थानीय सुधार में लग गये। वहां पूर्व से संस्कृत प्रचारार्थ साधारण पाठशाला थी। उसको आपने 'राजवंशान् शत गुणान्' के समान संस्कृत महाविद्यालाय (कालेज) में परिणत कर दिया जिसका पूरा नाम राघवेन्द्र संस्कृत महाविद्यालय है। इसके साथ साथ अनेकों जिलाओं में संस्कृत प्रचार के लिए संस्कृत पाठशाला, संस्कृत विद्यालय और संस्कृत महाविद्यालय खोल चुके हैं जिन सबों के द्वारा व्याकरण, न्याय, साहित्य, ज्योतिष, वैद्यक, कर्मकाण्ड, धर्मशास्त्र तथा श्रीसाम्प्रदायिक ग्रन्थों की शिक्षा हो रही है।

संस्कृत प्रचार से ब्राह्मणत्व की रक्षा होती है जिससे संस्कृति सुरक्षित रहती है और विश्व का कल्याण होता है। आप से जितना संस्कृत का उद्धार हो सका है कभी ऐसी संभावना नहीं थी। इसके लिए ब्राह्मण मात्र आपके आभारी हैं। प्रतिवर्ष भारत प्रसिद्ध हरिहर क्षेत्र मेला में आपका बाड़ा (जन सेवा केन्द्र) जाता है। उसमें सर्वसामान्य लोगों के साथ साथ सभी सम्प्रदाय के साधु सन्त विरक्तदीन दुखियों को आश्रय दिया जाता है। आठ दिनों तक परमार्थ चलते रहता है। उसमें विशेष रूप से विद्वानों का समागम होता है। सतत् सदुपदेश द्वारा जनकल्याण के कार्य होते रहते हैं। पहले इस कार्य के लिए भू-भाड़ा (कर) देना पड़ाता था किन्तु अब पर्याप्त भूमि खरीद ली गयी है। इसमें भी एक संस्कृत विद्यालय की स्थापना हुई है। श्रीस्वामी जी के समय में जहां पर पांच स्थानों से कैङ्कर्य चलता था वहां आज पचासो स्थानों से कैङ्कर्य चल रहा है। उनके द्वारा श्री भाष्यकार की फहरायी ध्वजा को आपने सभी दिशाओं में चिरस्थायी कर दिया। आपके करकमल में श्रीरेखा है और चरण कमल में वाहन की रेखा है जिसका फल प्रत्यक्ष दिखाई पड़ रहा है। बड़ा से बड़ा स्थान, भूमि, द्रव्यादि विना मांगे प्राप्त होते रहते हैं। इस कुल परम्परा में मांगने की प्रथा पूर्व से ही नहीं है। जैसे श्रीस्वामी रंगदेशिकाचार्य (वृन्दावन), श्री स्वामी राजेन्द्र सूरि जी महाराज (तरेत)में याचना वृत्ति नहीं की थी। आप में भी वही बात है। एक तो आप पंक्तिपावन हैं -

ये शान्ता दान्ता श्रुतिपूर्ण कर्णाः, जितेन्द्रिय प्राणिवधे निवृत्ताः।
प्रतिग्रहे संकुचिताग्र हस्ताः, ते ब्राह्मणस्तारयितुं समर्थाः।।

हस्ताग्र संकुचित का यही भाव है कि जिसे देने पर भी लेने में संकोच हो वही पंक्तिपावन है। "**असन्तुष्टस्य विप्रस्य ब्रह्मतेजो प्रशाम्यति।**" असन्तोषी ब्राह्मण का ब्रह्मतेज विनष्ट हो जाता है। आप में विशेष वह व्यक्तित्व है, प्रभा है जिससे भक्तगण अनुप्राणित होकर आपकी आराधना के लिए उद्यत हो जाते हैं। गरीब भक्तों को यज्ञादि की अभिलाषा होने पर आपको वह यज्ञस्थल में बिठा देता है। बस, आपके प्रभाव से उसे किसी वस्तु की कमी नहीं रह जाती, यज्ञ पूरा हो जाता है। उसकी अभिलाषा पूरी होती है। जैसे सूर्य को किसी अन्य से प्रकाश मांगने की आवश्यकता नहीं पड़ती है, ठीक आपको भी दूसरों से धन सम्पत्ति मांगने की आवश्यकता नहीं पड़ती। हां, जो भक्त स्वयं किसी प्रकार का आपसे कैङ्कर्य की याचना करता है उसको उचित कैङ्कर्य प्रदान कर उसका मनोरथ पूरा करते हैं। "**प्रभुता तजि प्रभु किन्ह सनेहू। भयउ पुनीत आजु मम गेहू।** मानस अयो. 8।4।"

शिष्य बनाने के पश्चात् गुरु पर यह उत्तरदायित्व हो जाता है कि शिष्य से किसी प्रकार का अपचार न हो जावे, अतः

गुरु सतत् शिष्य मण्डली में घूम-घूम कर शिष्यों को औचित्य पालन का सदुपदेश दिया करे। इसी नियम से निर्वाहार्थ आप शिष्य मण्डली में सतत् घूमा करते हैं। जिसके यहां जाते हैं वह अपने को भाग्यवान् मानता है, कृतकृत्य हो जाता है। शिष्यों में उच्चवर्ग के लोग हैं। भूमिहार ब्राह्मण, कान्यकुब्ज, सरयूपारी, महाराष्ट्रीय, गौड़, मैथिल आदि ब्राह्मण सम्पूर्ण भारत में आपके शिष्य हैं। "**अर्चयन्तोऽपि गोविन्दं तदीयान्नर्चयन्ति ये। न त विष्णोः प्रसादस्य भाजनाः दाम्भिका जनाः।।**" जो भगवान् नारायण को अर्चन करते हुए उनके भक्तों की अर्चना नहीं करता है वह भगवान् का कृपा पात्र नहीं बनता है। "**तस्माद्विष्णो प्रसादाय वैष्णवान्परितोषयेत्। प्रसाद सु मुखो विष्णुस्तेवैव स्यान्न संशयः।।**" भगवान् की प्रसन्नता के लिए भागवतों की सेवा अवश्य करनी चाहिए। "**कृते तु दास्य कृत्येषु दासानां कृत्य कृत्यतता। अकृते दास कृत्येषु दास्यमेव न सिद्धयति।।**" भगवद्भक्तों का कैङ्कर्य करने से ही दास अर्थात् भगवद्भक्त कृतकृत्य होते हैं। दास्यकृत्य किये विना दास्यता हीं नहीं सिद्ध होती है। अतः मानव मात्र का यह परमकर्त्तव्य है कि भगवद्भक्तों के प्रति श्रद्धाभक्ति अवश्य करे।

श्रीस्वामी वासुदेवाचार्य के प्रधानशिष्य वर्ग

18-1। श्री विष्वकसेनाचार्य - आपके शिष्यों में सर्वप्रधान् श्री विष्वकसेनाचार्य जी थे (वेदान्ती जी) थे। इनका जन्म अवाँरी ग्राम (गया जिला) के कौण्डिन्य गोत्र में हुआ था जिस कुल में साधुसेवी जोरी शर्मा थे। साधु सेवा के प्रभाव से ही उनके यहां कद्दू के फल से चना पैदा हुआ था। वेदान्ती जी सम्प्रति प्राकृत देह और प्राकृत लोक छोड़कर दिव्यदेह धारण कर दिव्यलोक वैकुण्ठ में श्रीमन्नारायण की सेवा में तत्पर हैं। तुलसी में दो पत्र होने की अवस्था से ही जैसे पवित्रता गन्धादि गुण विद्यमान रहते हैं उसी प्रकार इनमें भी साधु-सेवा-वृत्ति वाल्यावस्था से ही थी। बुद्धि अत्यन्त तीव्र थी। रामायण, तुलसीकृत मानस आदि सम्पूर्ण अभ्यस्त था। गानविद्या में भी प्रेम था। एक साधु आपको ठग कर ले निकला था किन्तु दैवात् उसके पञ्जे से छूटकर नासिक में श्रीस्वामी जी के द्वारा भगवान् के शरणागत हुए। उन्हें और संस्कृत अध्ययन की इच्छा हुई। साम्प्रदायिक विषय की जानकारी के लिए पंचनदीय पंडित श्री सुदर्शनाचार्य शास्त्री जी के यहां काशी में श्रीभाष्यादि पढ़ने गये किन्तु पहले उन्होंने व्याकरण न्यायादि पढ़ने के लिए कहा। अतः वहां से आकर दक्षिण भारत चले गये। वहां प्रतिवाद भयंकर श्री अनन्ताचार्य जी से अन्यान्य विषयों के साथ-साथ प्रधान रूप से वेदान्त का अध्ययन करते सर्वत्र उनके साथ शास्त्रादि पढ़ते घूमने लगे। कुछ दिन आसूरि श्री रामानुजाचार्य जी से भी वेदान्त अध्ययन किये थे। इनके ऊपर भगवान की कृपा थी। अतः कुछ ही दिनों में वेदान्त के प्रौढ़ विद्वान हो गये। दक्षिण भारत में रहजाने के कारण सदा संस्कृत में ही बोलने का अभ्यास हो गया था। कांचीपुरी में श्री भागवताचार्य जी वाला स्थान जो वृन्दावन गोवर्धन पीठाधीश के अधीन था, श्री रंगाचार्य, श्रीगोवर्धन पीठाधीश वृन्दावन ने आपही को दे दिया था जो आज भी वर्तमान है। किन्तु आप उस स्थान के झमेले से अलग ही रहकर वेदान्त का प्रचार - प्रसार रूप श्रीभाष्यकार के कैङ्कर्य में सदा रत रहते थे। समाज - विद्रोहियों के मान मर्दन में आप प्रौढ़ थे।

18-2। महान्त श्री वंशीधराचार्य जी - श्री स्वामी जी के विरक्त शिष्यों में आप एक हैं। भोरी में रहकर आप यहां के सांगदर्शन विद्यालय और ठाकुरवारी का संचालन भार अपने ऊपर लिए हुए हैं। भगवत् भागवत् सेवा रूप परमार्थ आप भली भांति कर रहे हैं। आप स्वयं उस क्षेत्र मे घूम घूम कर वैष्णव बनाते हैं तथा उन सबों को स्वरूपानुरूप ज्ञान प्रदान कर वैष्णव धर्म को बढ़ाकर श्री स्वामी रामानुजाचार्य का कैङ्कर्य कर रहे हैं। नासिक स्थान का संचालनभार आप ही के ऊपर है। यथा समय वहां के चढ़ाव या प्रयाग उज्जैन के चढ़ाव में जाकर परमार्थ कार्य किया करते हैं।

18-3। श्री मुरलीधराचार्य - आप विरक्त हैं। गया के मानपुर में संस्कृत विद्यालय का संचालन कैङ्कर्य आप को दिया गया है। सभी प्रकार के कैङ्कर्य में आप अग्रगण्य हैं। शरीर से अधिक परिश्रमी हैं। इसी के बल पर विद्यालय संचालन भार के साथ साथ अन्यान्य अतिथि

अभ्यागत साधु सन्तों की सेवा का भार आप ढो रहे हैं। इस स्थान के भार से श्री स्वामी जी निश्चिन्त रहते हैं।

18-4 । कवि श्री रामप्रसाद शर्मा जी (पुण्डरीक) - श्रीस्वामी जी के जीवनी के लेखक आप ही हैं। आपने गीता के तत्व को सर्वसाधारण जनता में प्रचार की दृष्टि से उसको गीता पंचामृत, हरि गीतिका, आल्हा, विरहा, कुँवर विजयी इत्यादि लयों में परिणत किया है। श्रोताओं को विभिन्न लयों में परिणत गीता अत्यन्त हृदयाकर्षक है। इसका प्रचार भी बहुत हुआ है।

18-5 । **पं. श्री प्रसिद्ध नारायण शर्मा** - श्री स्वामी जी के शिष्य पण्डितों में सर्वप्रधान आप हैं। '**यथा नामस्तथा गुणः**' आपका अन्वर्थक है। श्री पं. जटाशंकर झा जी (प्राचार्य राजकीय सं. कालेज पटना) के आप विद्यार्थी थे। न्याय, व्याकरण विषय में सर्व प्रथम होने के कारण आपको पुरस्कार में स्वर्ण पदक मिला है। इन विषयों में शास्त्रार्थ महारथी आपको कहा जा सकता है। राघवेन्द्र संस्कृत महाविद्यालय (तरेत) के प्राचार्य आप हैं। हृदय से विद्यादान में आप निरत रहते हैं। दुर्भाग्य का विषय यह है ऐसा कोई सुयोग्य विद्यार्थी ही नहीं मिल सका जो आपसे सांगोपांग विद्याध्ययन कर आपका अनुगामी बने। लोभ ही सब को बिगाड़ने वाला है। नौकरी के द्वन्द में पड़कर लोग पिछड़ जाते हैं। आप दुनियाँ के अन्यान्य झमेलों से अलग रहकर विद्यादान करते रहते हैं। ईश्वर आपको ऐसी बुद्धि सतत् प्रदान करते रहें कि आप इसी निष्ठा से समाज-सेवा करते रहें।

18-6 । **पं. श्री रामावतार शर्मा जी** - आप बड़े तीव्र बुद्धि के हैं। व्याकरण, साहित्य और न्याय के आचार्य हैं। आप भी उक्त विषयों में पुरस्कार (स्वर्णपदक) प्राप्त किये हैं। विद्यादान में ही आपका समय व्यतीत होता है। आप में दूरदर्शिता अपूर्व है। आप ठोस परिवार के हैं तथापि विद्या प्रेमी होने के कारण से सभी प्रकार के अन्यान्य उलझनों को सहते हुए भी विद्या प्रचार में अपना सम्पूर्ण समय लगाया करते हैं। आप में श्रद्धा है कि "**जिस प्रकार का शास्त्राधिकारी मैं हूं, औरो को भी वैसा ही बनाउँ।**"

18-7 । **श्री ब्रह्मचारी जी** - आप परम त्यागी हैं। बनारस के समीप सर्वत्र घूम-घूम कर वैष्णव धर्म का प्रचार करते रहते हैं। मानस रामायण के प्रधान पण्डित हैं। कीर्तन रूप में रामायण उत्तम स्वर से गाया करते थे।

18-8 । **वेदान्ती श्री कृष्णाचार्य** - पण्डितों में आप हयग्रीव भगवान् के विशेष कृपा पात्र हैं। आप में स्मरण-वक्तृत्व एवं विषय प्रतिपादन शक्ति अपूर्व है। आप न्याय, व्याकरण, साहित्य एवं वेदान्त के आचार्य हैं। वेदान्त एवं श्री सम्प्रदाय के उच्च कोटि के सभी ग्रन्थों के अध्ययन की उत्कण्ठा आपकी सदा बनी रहती है किन्तु "**श्रेयांसि बहुविघ्नानि**" श्रेयस्कर मार्ग की प्राप्ति में विघ्नों की अधिकता रहती है। संसार अपनी ओर खींचता है किन्तु भगवान् की कृपा बचाते आयी है आगे बचावेगी भी। भगवान् अपने संकल्प मात्र से ब्रह्मा को सभी वेदों का वक्ता बना दिये थे। इसी प्रकार आपका मनोरथ पूर्ण होगा। "**श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्** । गी 4 । 39 ।" सांसारिक उलझनों में रहते हुए भी आपसे वैष्णव समाज तथा ब्राह्मण समाज का उपकार अनवरत होता रहता है। व्याख्यान में किसी विषय को आप युक्तियुक्त ढंग से प्रतिपादित करते हैं जिससे श्रोताओं का आकर्षण विशेष होता है।

18-9 । **पं. श्री धरनीधराचार्य** (उच्चीरमा गया) - आप उच्च कोटि के विद्वान् त्यागवृत्ति वाले एकान्त प्रिय हैं। अत्यन्त मधुर एवं शान्त स्वाभाव के हैं। विशेष उलझनों से अलग रहकर दक्षिणी गया में आप एक विद्यालय चला रहे हैं। सर्वत्र घूम-घूम कर वैष्णव धर्म के प्रचार-प्रसार में आप सर्वदा व्यस्त रहते हैं। आपके उपकार से जनसमुदाय कृतकृत्य हो रहा है। उच्चीरमा में आपका देव भारती विद्या मन्दिर नामक विद्यालय है। उससे उस क्षेत्र में संस्कृत का विशेष प्रचार हो रहा है।

18-10 । **पं. श्री धरणीधराचार्य** (तरेत) - आप व्याकरण-न्याय और वेदान्त के आचार्य हैं। विद्याध्ययन में सतत निरत रहते हैं। सत्सम्प्रदायनिष्ठ स्वारूपानुरूप ज्ञानयुक्त निरपेक्ष भगवत् भागवत् सेवा परायण हैं। आप बड़े ही शान्त वृत्ति के हैं। बहुत दिनों तक सरौती रहकर श्रीराम संस्कृत विद्यालय में आप विद्या प्रदान किये हैं। सम्प्रति आप बनारस छात्रावास में रहकर वेदान्त अध्ययन और उस छात्रावास की व्यवस्था सुधार में लगे हैं।

18-11 । **पं. श्री मनस्वी जी** - श्री विष्वकसेनाचार्य जी के आप शिष्य हैं। आप उत्तम साहित्यिक हैं। वक्तृत्व कला के आप

कलानिधि हैं। वाणी से मधुरता सदा टपकती रहती है। श्रोता व्याख्यान से मुग्ध हो जाते हैं। कुछ दिनों तक तरेत विद्यालय में आप विद्या प्रदान करते थे। इस समय आप सरकार द्वारा व्याख्यान में पुरस्कृत होने से मुजफ्फर कालेज में आचार्य पद पर सुशोभित हैं। अवकाश के समय में आप निरपेक्ष भाव से सर्वत्र घूम-घूम कर स्वरूपानुरूप वैष्णव धर्म का प्रचार करते हैं।

18-12। श्री यामुनाचार्य जी - श्री विष्वकसेना चार्य जी के द्वितीय शिष्य श्री स्वामी यामुनाचार्य जी हैं। आप परम त्यागी विरक्त भगवत्-भागवत्-सेवी हैं। कणाद ऋषि के समान भक्तों के घर से कण-कण संग्रह कर तदीयाराधन किया करते हैं। यद्यपि आप वृद्ध हैं तथापि आपका शारीरिक श्रम देखकर बड़े-बड़े युवक भी हतप्रभ हो जाते हैं। हरिहर क्षेत्र मेला के समय प्रायः मेला में इधर से (गंगा के दक्षिण भाग) जाने वाले लोगों को आप कुटिया में अवश्य पधरवाते और स्वागत पूर्वक भोजन कराकर मेला के लिए विदा करते हैं। गंगा के उत्तर किनारे पर ही (पटना के सामने उत्तर) आपकी सेवा कुटिया है। सभी वैष्णवों को आप काकागुरु बाबागुरु कहकर स्वागत करते हैं। यथार्थरूप में वैष्णवता आप ही में लक्षित होती है। प्रतीत होता है कि पूर्वाचार्य श्रीस्वामी यामुनाचार्य जी ही दूसरा अवतार ग्रहण कर आपके रूप में विद्यमान हैं।

18-13। पं. श्री वेंकटेशाचार्य - व्याकरण शास्त्र में आप उद्‌भट विद्वान हैं। गन्थ बिना देखे ही छात्रों का अध्यापन करते हैं। शान्तप्रिय एवं मधुरभाषी हैं। सांगदर्शन विद्यालय भोरी में आप विद्या प्रदान कर रहे हैं। " **वें कहते जन पाप को 'कट' तेहि नाशक जान। ईश ताहि को जानिये वेंकटेश भगवान्।** " इस नाम के प्रभाव से अवश्य प्रभावित हैं।

18-14। विरक्तराज श्री रामप्रपन्नाचार्य जी - श्री स्वामी जी के शिष्यों में परम त्यागी हैं। श्री स्वामी जी द्वारा संचालित संस्थाओं में जहां कहीं भी किसी प्रकार की कमी हो रही है, बस आप उस कमी को पूरा करने के लिए कटिबद्ध हो जाते हैं। इस प्रकार सतत् आप में यही वृत्ति जागरुक रहती है। सम्पूर्ण समय इसी प्रकार के कैङ्कर्य में व्यतीत होता है। भगवत्-भागवत्-सेवा में तल्लीन हो जाने पर अपने को भूल जाते हैं। श्री स्वामी जी जिस किसी कैङ्कर्य को करने का आदेश देते हैं तो आप उसे अवश्य पूरा करते हैं। इस समय आप ब्रह्मर्षि छात्रावास लक्ष्मीकुण्ड काशी, जिसकी अवस्था सोचनीय है सुधार के लिये प्रयत्न कर रहे हैं।

18-15। पं. श्री सूर्यदेवाचार्य - देश काल के ज्ञान में आप अग्रगण्य हैं। स्थिर भाव से तरेत रहकर विद्या प्रदान कर रहे हैं। वैष्णवों के प्रति श्रद्धाभक्ति यथेष्ट रूप में आप में पायी जाती है।

18-16। श्री सुदर्शनाचार्य और श्री बालमुकुन्दाचार्य - श्री स्वामी रामानुजाचार्य जी शिष्यों में प्रधान दो शिष्य श्री स्वामी कुरेश जी और श्री स्वामी दाशरथी जी थे। श्री राम जी के सहायकों में दो हनुमान और अंगद थे। उसी प्रकार श्री स्वामी जी के शिष्यों में दो प्रधान श्री सुदर्शनाचार्य तथा श्री बालमुकुन्दाचार्य हैं। आप दोनों दक्षिण भारत के कांचीपुरी में रहा करते हैं। दोनों में परस्पर का प्रेम ठीक वैसा ही दीख पड़ता है जैसा कि श्री राम और लक्ष्मण तथा भरत और शत्रुघ्न में परस्पर था। इस वैष्णव सम्प्रदाय के उत्तर देशीय महात्माओं में अधिकांश आचार्याभिमान वाले लोगों में ऐसी निष्ठा देखी गयी है कि वे अपने आचार्य के देश में ही रहकर वहीं भगवत्-भागवत्-सेवारूप-कैङ्कर्य द्वारा संतुष्ट रहते हुए अपना शरीर भी वहीं छोड़े हैं। श्री स्वामी लक्ष्मीप्रपन्नाचार्य जी भूतपुरी में, श्रीस्वामी जीयर श्रीरंगपुरी में, श्री स्वामी लक्ष्मणाचार्य शास्त्री जी, श्री स्वामी देवराजाचार्य जी, श्री स्वामी मधुसूदना चार्य जी, श्री स्वामी रामकिंकराचार्य जी आदि भूतपुरी में, श्री स्वामी सीताराम जी आलवार तिरुनगरी में, श्री स्वामी भागवताचार्य जी कांचीपुरी में, इस प्रकार अनेकों महानुभाव आचार्याभिमानी लोग दक्षिण भारत के दिव्यदेशों में रह भगवत्-भागवत्-सेवा करते हुए अपने शरीर त्याग किये हैं। यही निष्ठाभाव हृदय में रखकर कांचीपुरी में वरदराज भगवान के सम्मुख फाटक पर जय विजय के समान श्री स्वामी बालमुकुन्दाचार्य जी तथा श्री स्वामी सुदर्शनाचार्य जी दोनों मूर्त्ति निवास करते हुए आचार्य कैङ्कर्य कर रहे हैं। भगवान की श्री वृद्धि में आप दोनों मूर्त्ति सदा संलग्न रहते हैं। अतिथि अभ्यागतों की सेवा भलीभांति होती है। जहां तहां घूम कर धन संग्रह कर तदीयाराधन (वैष्णव भोजन) समय समय पर कराया करते हैं।

श्री परमहंस स्वामी जी की जीवनी का प्रथम भाग संपूर्ण

श्रीमते रामानुजाय नमः



तरेत स्थानाधीश अनन्त श्री -

स्वामी राजेन्द्र सूरिजी

महाराज की संक्षिप्त जीवनी

(द्वितीय खण्ड)

स्त्री और मन्त्र

- साम्प्रदायिक प्रश्नोत्तर

रचयिता
श्री स्वामी परांकुशाचार्य
सरौती स्थानाधीश
।

संवत्2062 वि.
(तृतीय संस्करण)

प्रकाशक ः -
श्री पराङ्कुश संस्कृत-संस्कृति-संरक्षा परिषद्
हुलासगंज (जहानाबाद)

मुद्रक ः-
श्री स्वामी पराङ्कुशाचार्य प्रेस
हुलासगंज (जहानाबाद)

प्राप्ति स्थान -
श्री पराङ्कुश संस्कृत-संस्कृति-संरक्षा परिषद्
हुलासगंज (जहानाबाद)

विषय - सूची

श्रीमतेरामानुजाय नमः

1। पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम् में गुरु शब्द का अर्थ

यह प्रसंग तब का है जब श्री स्वामी जी महाराज दूसरी बार दक्षिण यात्रा से लौट चुके थे। पटना जिले के नौबतपुर थाने में जो तरेत स्थान श्री स्वामी जी महाराज का था, वहीं रह रहे थे। स्थान से सटे एक अमरूद का रमणीक बाग था जिसे अजवां के हीरा भगत ने लगाया था। उनके बीच में एक सुन्दर वेदिका थी। प्रायः श्री स्वामी जी महाराज सुबह-शाम कुछ काल तक उसी पर बैठा करते थे। एक दिन की बात है कि उसी पर श्री स्वामी जी महाराज (परमहंस स्वामी) विराजमान थे। एक खजुरी ग्रामवासी पं. मुकुन्द शर्मा जी ने यह प्रश्न किया कि स्त्रियों के विषय में लोग कहा करते हैं कि - **पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम्-** अर्थात् स्त्रियों के लिए एक पति ही गुरु है, तथा पूज्य एवं मान्य है न कि अन्य कोई गुरु या देवता। किन्तु श्रीसम्प्रदाय के आचार्य लोग स्त्रियों को भी मन्त्र देते हैं, इसमें भी वैदिक मन्त्र, इसका हेतु या प्रमाण क्या है ? ऐसा सुनकर श्री स्वामी जी महाराज हँसे और बोले कि यह सर्वथा अनभिज्ञों का प्रश्न है। विद्वानों का ऐसा प्रश्न नहीं हो सकता। सद्ग्रन्थों में तो स्त्रियों के लिए यह लिखा है। सुनो मैं सुनाता हूँ - "**गुरुरग्निद्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः। पतिरेको गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः।।**" द्विजातियों के लिए अग्नि पूज्य हैं, सभी वर्णो के लिए ब्राह्मण पूज्य हैं, स्त्रियों के लिए पति पूज्य हैं अभ्यागत सबों का पूज्य होता है।

उक्त श्लोक के "**पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम्**" इस अंश का "स्त्रियों के लिए एक पति ही धर्मगुरु है, वही मन्त्रदाता है, पति सेवा ही स्त्रियों का परमधर्म है अन्य कोई नहीं," ऐसा अर्थ करके स्त्रियों के लिए लोक प्रचलित पति से अन्य धर्म गुरु, अन्य धर्म का अपनाना अनुचित है ऐसा होता है क्यों ? यह प्रश्न है।

इस प्रश्न के समाधान में सर्वप्रथम श्लोक के वास्तविक अर्थ निर्णय पर ध्यान देना आवश्यक है। अर्थ निर्णय में -

"**संयोगो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता। अर्थः प्रकरणं लिङ्गं शब्दस्यान्यस्य सन्निधिः।।**
सामर्थ्यमौचितो देशः कालो व्यक्तिस्वरादयः। शब्दार्थस्थानवच्छेदे विशेषस्मृतिहेतवः।।"

संयोग, विप्रयोग, साहचर्य विरोध, अर्थ, प्रकरण लिङ्गादि नियमों का पालन करना अनिवार्य होता है। इन सबों के नियन्त्रण बिना किया गया अर्थ अनर्थ हो जाता है। गुरु शब्द अनेक अर्थो में व्यवहृत होता है -

"**माता पिता तथाऽचार्यो मातुलः श्वशुरस्तथा। गुरवः पञ्च सर्वेषां चतुर्णां श्रुतिचोदिता।।**
तेषां मुख्यस्त्रयः प्रोक्ता आचार्यः पितरौ तथा। एषां मुख्यतमस्त्वेकः आचार्यः परमार्थवित्।।"

माता, पिता, आचार्य, माता का भाई, श्वशुर ये सभी गुरु कहलाते हैं और चारो वर्णो के ये सभी गुरु हैं। यह श्रुतिसम्मत है। प्रसंग से अनुकूल अर्थ किया जाता है।

"**गुरुरग्निर्द्विजातीनाम्**" इस श्लोक में गुरु शब्द पूज्य बोधक है, क्योंकि पूज्य अर्थ निदर्शन में ही गुरु शब्द का प्रयोग हुआ है। यही अर्थ उपर्युक्त नियमों से नियन्त्रित है। यदि इस स्थल में गुरु शब्द मन्त्र-दाता बोधक मानें तो प्रकरण विरोध होगा क्योंकि अग्नि जड़ वस्तु है, यह ज्ञानदाता मन्त्रदाता कैसे हो सकती है ? यदि किसी के आग्रहवश मान भी लें तो जब यह द्विजातियों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों) के लिए गुरू हुई तो द्विजों से इतर एक शूद्र बचा, केवल इसके लिए गुरु विधान में "**वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः**" वर्ण शब्दोत्तर बहुवचन अनुपयुक्त होगा। यदि बहुवचन उपयुक्त माना जाये तो सभी वर्णो के लिए ब्राह्मण गुरु, और ब्राह्मणोत्तर द्विजातियों के लिए अग्नि और ब्राह्मण दोनों गुरु हुए। वर्णो के अन्तर्गत स्त्रियाँ भी आ जाती हैं जो पुरुषों की अर्द्धांगिनी हैं तो इन सबों के लिए अग्नि, ब्राह्मण और पति भी गुरु हुए। अभ्यागत सबों का गुरु होता है। गुरु की संख्या और बढ़ गयी। ऐसी स्थिति में स्त्रियों के लिए एक पति ही गुरु, यह अर्थ नितान्त असंगत प्रतीत होता है। यदि "**पतिरेको गुरुः स्त्रिणाम्**" इस अंश में गुरु शब्द मन्त्रदाता गुरुबोधक और अन्य अंशों में पूज्यबोधक माना जाय तो भी साहचर्य विरोध होगा। यह पूर्वापर विरोध हुआ। तीसरा श्रुति स्मृति इतिहासादि से भी विरोध होगा, क्योंकि सर्वत्र स्त्रियों को पति से अन्य धर्मगुरु, अन्य धर्म पालन करने

का प्रमाणऔर उदाहरण मिलते हैं जिसका दिग्दर्शन आगे कराया जाता है।

2। सभी अवस्थाओं में नारियों के लिये देवपूजन आवश्यक

स्त्रियों की तीन अवस्था होती है - 1। कुमारी, 2। सौभाग्यवती और 3। विधवा। कुमारी-अवस्था में उत्तम पति प्राप्ति के लिए भगवान् की भक्ति करनी चाहिए। देवाराधन करना चाहिए। इसमें इतिहास और पुराण प्रमाण है। कुमारी अवस्था में पार्वती, सीता, रुक्मिणी, कालिन्दी आदि ने देवाराधन किया है। ये सब उदाहरण मिलते हैं।

विवाहितावस्था में शतरूपा, देवहूति, अदिति, दिति, कयाधु, कुन्ती, धर्मशीला, गान्धारी, मथुरावासिनी, शवरी, कौण्डिन्य की स्त्री, गोपियाँ, मीरा, दिल्ली, तुर्की, ताज, वरिया, रानी रत्नावली, निर्मला, आनन्दीवाई, जनावाई, सखूवाई, करमैती, कर्मठी, मीरा, गंगा, यमुना, कृष्णा, जगदेवी, हरदेवी, सरस्वती, अंकुरानी, चन्द्रलेखा, नन्दी, शान्ति, यशोदावाई इत्यादि ने देवाराधन किया है।

यद्यपि स्त्रियों के लिए पतिरूप का ध्यान, उसके नाम का जप, शरीर सेवा आदि का वर्णन आया है, किन्तु यह सामान्य धर्म है। विशेष धर्म देखिए -

"या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप प्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितेक्षणमार्जनादौ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठयो धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचिन्तयानाः। भा. 10। 44। 15।"

व्रज की गोपियाँ धन्य हैं। निरन्तर श्रीकृष्ण में चित्त लगा रहने के कारण प्रेम भरे हृदय से आँसुओं के कारण गद्गद कण्ठ से वे इनकी लीलाओं का गान करती रहती हैं। वे दूध दुहते, दही मथते, धान कूटते, घर लीपते, बालकों को झूला झुलाते, रोते हुए बालकों को चुप कराते, उन्हें नहाते धुलाते, घरों को झाड़ते बुहारते सारे कामों के समय श्रीकृष्ण के ही गुणगान में विभोर रहती हैं।

पार्वती ने तपस्या की थी, सीता ने गौरी-पूजन की थी। तुलसीकृत रामायण इनकी साक्षी हैं।

"अहं देवस्य सवितुर्दुहिता पतिमिच्छती। विष्णुं वरेण्यं वरदं तपः परममास्थिता।।
नान्यं पतिं वृणे वीर तमृते श्रीनिकेतनम्। तुष्यतां मे स भगवान मुकुन्दोऽनाथसंश्रयः। भा. 10। 58। 20-21।"

कालिन्दी ने अर्जुन से कहा कि हे वीर! मैं सूर्य की कन्या हूँ और शरणागति करने के योग्य वरद विष्णु को पति बनाने की इच्छा से तपस्या करती हूँ। अन्य किसी को मैं पति नहीं बनाऊँगी। षडगुण सम्पन्न भगवान मुकुन्द अनाथों के सम्यक् प्रकार से आश्रय हैं, वे मुझ पर अवश्य कृपा करेंगे।

"शंखचक्राङ्कणं कुर्यादात्मनो बाहुमूलयोः। कलत्रापत्यभृत्येषु पश्यादिषु चमुक्तयः। मत्स्य पु.।"

मुक्ति के लिए स्त्री, सन्तान, भृत्य, पशु आदि के साथ चक्रांकित होना चाहिये। पुनः भागवत का कथन है -

"पूर्तेष्टदत्तनियम व्रतदेव विप्र गुर्वर्चनादिभिरलं भगवान्परेशः।
आराधितो यदि गदाग्रज एत्य पाणिं गृह्णातु मे न दमघोषसुतादयोऽन्ये। भा. 10। 52। 40।"

रुक्मिणी कहती हैं कि यदि मैंने इष्टापूर्त्ति (बाग लगाना, कुँआ खोदवाना, तालाब आदि बनवाना) नियम, व्रत, देव, विप्र, गुरु की अर्चनादि तथा भगवान की भलीभांति आराधना की है तो हमारा पाणिग्रहण श्रीकृष्ण ही करें, शिशुपाल आदि से मेरा विवाह न हो। यहाँ रुक्मिणी ने स्पष्ट गुरु की अर्चना को कहा है। भगवान की पूजा भी भगवन्मन्त्रों से करती रही होगी क्योंकि वह पण्डिता थीं तथा मन्त्र भी द्वादशाक्षर ही था।

"तावद्रागादयस्तेनास्तावत्कारागृहं गृहम्। तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत्कृष्ण न ते जनाः। भा. 10। 14। 36।"

ब्रह्मा ने कहा है कि हे श्रीकृष्ण! जीव तभी तक संसार-बन्धन में रहता है, जबतक वह आपका जन नहीं हुआ है।

विवाह के पश्चात् पार्वती तथा महादेव दोनों ही वैष्णव होने के कारण कैलास पर्वत के ऊपर तुलसी पुष्प लगाकर उसी से भगवान् की पूजा किया करते थे। एक बार विष्णुसहस्रनाम के पाठ करने में पार्वती को विलम्ब हुआ तो महादेव ने कहा - **"राम रामेति रामेति**

रमे रामे मनोरमे। सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने। पद्म पु. उ. 254।20।" इसी को तुलसीदास जी ने कहा है - "**सहसनाम सम सुनि शिववानी। जपी जेंई पिय संग भवानी**।मानस बाल 18।3।" इन दोनों को वैष्णव रहने के कारण ही भागवत में "**वैष्णवानां यथा शम्भुः**।भा. 12।13। 16।" कहा है।

इसी प्रकार कश्यप-अदिति तथा मनु-शतरूपा ने साथ-साथ तपस्या की थी। पद्मपुराण की कथा है। तुलसीदास जी ने भी लिखा कि मनु-शतरूपा छः हजार वर्षो तक जल पीकर, सात हजार वर्षो तक हवा पीकर और दस हजार वर्षो तक निर्वात होकर अर्थात् सम्पूर्ण तेईस हजार वर्षो तक एक पांव पर खड़े होकर भगवान को प्राप्त करने के लिए तप करते रहे। इसलिए इन दोनों को दशरथ और कौसल्या के रूप में होने पर भगवान रामचन्द्र पुत्ररूप से हुए। द्रोणवसु तथा उनकी स्त्री धरा ने भगवान् की आराधना की तो नन्द और यशोदा के रूप में होने पर श्रीकृष्ण पुत्र रूप में हुए - "**द्रोणो वसूनां प्रवरो धरया सह भार्यया**।भा. 10।8।48।" "**जज्ञे नन्द इति ख्यातो यशोदा सा धराभवत्**।भा. 10।8।50।" उसी तरह वशिष्ठ की आज्ञा पाकर राज्याभिषेक के पूर्व - "**सह पत्न्या विशालाक्ष्या नारायणमुपागतम्**। वा रा अयो 6।1।" "**श्रीमत्यायतनं विष्णोः शिश्ये नरवरात्मजा**। वा रा अयो 6।4।" स्त्री का यह भी धर्म है कि पति के कल्याण तथा योगक्षेम के लिए भी भगवद्भक्ति करे। "**कौशल्यादि तदा देवी रात्रिं स्थित्वा समाहिता। प्रभाते चाकरोत्पूजां विष्णोः पुत्रहितैषिणी**।वा रा अयो 20।14।" "**मम कुल इष्टदेव भगवाना। पूजा हेतु कीन्ह पकवाना**।मानस बाल 200।1।"
कौशल्या जी श्रीरंगनाथ की पूजा नारायण मन्त्र से करती थीं।

"**मय्यनन्येन भावेन भक्तिं कुर्वन्ति ये दृढ़ाम्**। भा 3।25।22।" "**तत् एते साधवः साध्वी सर्वसङ्गविवर्जिताः**।भा 3।25।24।" जो पुरुष या स्त्री अनन्य होकर मेरी भक्ति करते हैं वे सभी बन्धनों से छूटकर मुझे प्राप्त करते हैं। देवहूति ने भी अपने पति कर्दम से कहा कि -

"**नेह यत्कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते। न तीर्थपदसेवायै जीवन्नपि मृतो हि सः**।भा. 3।23।56।"

हे पतिदेव ! जिस शरीर से भगवत्सम्बन्धी धर्म-कर्म अथवा भगवत्पद की सेवा नहीं हुई वह देह जीवितावस्था में भी मृतक के तुल्य है। मैं प्रवल माया के पंजे में पड़ गयी हूँ। उत्तर में कर्दम ने कहा है कि भगवान कृपा कर तुमको मुक्तिका उपाय बतला देगें और कृपापात्र बनने का उपाय उनकी भक्ति ही है।

"**श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्**।भा. 7।5।23।"

इसमेंआत्मनिवेदन का ही दूसरा नाम शरणागति है। अनेक स्त्रियों ने पति को छोड़कर इस विशेष धर्म को अपनाया है। क्षत्राणी मीरा आदि इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। सौभाग्यवती स्त्रियों के लिए गर्भावस्था में पालनीय नियमों में कहा गया है कि -

"**धौतवासाः शुचिर्नित्यं सर्वमंगलसंयुता। पूजयेत्प्रातराशात्गोविप्राञ् श्रियमच्युतम्**।भा. 6।18।52।"

प्रातः काल स्नान करके पवित्र वस्त्र धारण कर सौभाग्य चिह्न से विभूषित हो सर्वप्रथम गौ, ब्राह्मण और लक्ष्मी सहित भगवान की पूजा करनी चाहिए। किसी जीव की हिंसा न करे, झूठ न बोले, नख-रोम को दाँत से न काटे, अमंगल वस्तु के स्पर्श से बचे, जल में घुस कर स्नान न करे, क्रोध न करे, दुर्जन से न बोले, माला न पहने, जूठा न खाये, व्यभिचारिणी रजस्वला से न छुआए, सूप, झाड़ू, केश, चण्डी प्रकृति कलही स्त्रियों से न छुआए। सन्ध्या में माथा न खोले, पाँव धोकर सोवे, मल-मूत्र त्याग के बाद (लघु करने के पश्चात्) पाँव धोवे, कुल्ला करे, डरे नहीं, अपवित्र वस्तु न खाए और चिन्ता -शोक न करे। भगवच्चरित्र सुने या पढ़े। नीच प्रसंग की वार्ता न करे। इन्हीं नियमों के पालन करने के प्रभाव से दिति का गर्भ इन्द्र द्वारा उनचास टुकड़े किये जाने पर भी विनष्ट नहीं हुआ। अतः गर्भवतियों को चाहिए कि उपर्युक्त सभी नियमों का पालन करे।

इसी प्रकार गर्भवती कयाधु को भी इन्द्र ने मारना चाहा था किन्तु वह भी विशेष नियमानुकूल रहने के कारण ही बच गयी थी। नारद के आश्रम में रहकर उनकी सेवा करती थी और नारद ने ही उसे शरणागति करायी थी।

"**ऋषि पर्यचरत्तत्र भक्त्या परमया सती। अन्तर्वत्नी स्वगर्भस्य क्षेमायेच्छा प्रसूतये।।**
ऋषिः कारुणिकस्तस्याः प्रादादुभयमीश्वरः। धर्मस्य तत्वं ज्ञानं च मामप्युद्दिश्य निर्मलम्।।

तत्तु कालस्यदीर्घत्वात्स्त्रीत्वान्मातुस्तिरोदधे। ऋषिणानुगृहीतं मां नाधुनाऽप्यजहात्स्मृतिः। भा. 7।7।14-16।"

गर्भवती कयाधु ने यथासाध्य नारद की सेवा की और नारद ने तो - "**स्त्रीवालानां च मे यथा।** भा. 7।7।17" गर्भ समेत कयाधु को भगवत् शरण में रखा था। गर्भ के कल्याण की इच्छा से धर्मतत्व, भगवत्परत्व, निर्मल विज्ञान, आत्मस्वरूप, शेषत्व, पारतन्त्र्य आदि उसे सुनाया करते थे। प्रह्लाद लोगों से कहते थे - हे भाईयों ! मेरी माँ नारद के उपदेशों को भूल गयी हैं किन्तु मैं नहीं भूलूँगा। वही प्रह्लाद काटने पर भी नहीं मरा। आग में नहीं जला। इसका कारण था गर्भ में ही ज्ञानों का श्रवण करना। गर्भवती जो स्मरण करती है वह गर्भ के लिए स्मारक होता है। मथुरा के ब्राह्मणों के स्त्रियों ने भी भगवान्की पूजा की थी। यही नहीं गर्भ वती उत्तरा आदि स्त्रियों ने भी यह कह कर भगवान की शरणागति की थी, जैसे -

उत्तरा - "**पाहि पाहि महायोगिन्देवदेव जगत्पते।** भा. 1।8।9।"

देवहूति - "**अथापि मे प्रपन्नाया अभयं दातुर्महसि।** भा. 3।23।51।"

नागभार्या - "**तस्माद्भवत्प्रपदयोः पतितात्मनां नो, नान्याभवेद्गतिरन्दम तद्विधेहि।** भा. 10।23।30।"

पिंगला- "**त्यक्ता दुराशा शरणं व्रजामि।** भा. 11।8।39।"

गोपी- गोप - "**गोपा गोप्यश्च शीतार्ता गोविन्दं शरणं ययुः।** भा. 10।25।11।"

पृथ्वी - "**प्रणता प्राञ्जलिर्प्राह।**"

स्त्री - पुरुष दोनों - "**सोऽहं व्रजामि शरणं ह्यकुतोभयम्।**"

ऊपर के उदाहरणों द्वारा यह व्यक्त होता है कि स्त्रियों को या तो पति के साथ ही अथवा अकेले भी शरणागति करने का अधिकार है। अतः उन्हें भगवान की शरणागति अवश्य करनी चाहिए।

विधवा के लिए भी विशेष विधान है। भक्तिमती शवरी को कौन नहीं जानता। श्रीराम जी ने उससे कहा है -

"**कह रघुपति सुनु भामिनी बाता। मानउँ एक भक्ति कर नाता।** मानस अरण्य 34।2।
सो अतिशय प्रिय भामिनी मोरे। सकल प्रकार भक्ति दृढ़ तोरे। मानस अरण्य 35।4।"

मैं तो एक भक्ति का नाता मानता हूँ। हमें तो वही प्रिय है जिसमें भक्ति है, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष - "**नारि पुरुष सचराचर कोई** ।मानस अरण्य 35।3।" तुममें तो नवो प्रकार की भक्ति है - "**गुरु पद पंकज सेवा तीसरी भगति अमान।** मानस अरण्य 35।0" इससे स्पष्ट है कि नारियों के लिए पति के सिवा धर्मगुरु का विधान है - "**मंत्र जाप मम दृढ़ विश्वासा।** मानस अरण्य 35।1।" दृढ़ विश्वास पूर्वक मन्त्र का जपना पाँचवीं भक्ति है। इस प्रसंग में स्त्री - शबरी। गुरु - मतंग ऋषि। मन्त्रजाप - भगवत् सम्बन्धी मूल-मन्त्र है। आत्मनिवेदन ही शरणागति है।

इसी तरह - "**कच्चित्ते गुरु शुश्रूषा सफला चारुभाषिणी।** वा. रा. अरण्य 74।9।" श्रीराम जी शवरी से पूछते हैंकि तुमगुरु सेवा भलीभांति करती हो न। "**शबर्या पूजितः सम्यग्रामो दशरथात्मजः।** वा. रा. बाल 1।58।" मतंग ऋषि ने राम की सेवा के निमित्त शवरी को प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त किया था और उसने गुरु क बदले राम की सेवा की। गुरु के वचनों का पालन करना यही उसकी सेवा थी। इसी कारण विराध ने कहा था - "**श्रमणां धर्मनिपुणामभिगच्छेति राघव।** वा. रा. बाल 1।57।"

अहिर्बुधन्य संहिता में तो - "**श्रियः प्रवृत्यै परिपूजनीयौ ह्यभीष्टसिद्धिं कुरुते सुदर्शनः।कन्या च भर्तुः पुरुषो वधूनां लभेच्च विद्याधनधान्ययुक्तम्।**।" इस प्रकार सुदर्शन की आराधना बतायी गयी है। स्त्रियों के लिए भगवान्ने स्वयं कहा है - "**स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्।** गी 9।32।" स्त्री वैश्य शूद्रादि भी मेरी भक्ति शरणागति तथा उपासना द्वारा मोक्ष प्राप्त करते हैं।

3। सामान्य धर्म एवं विशेष धर्म

धर्म के दो विभाग हैं - एक सामान्य तथा दूसर विशेष। विशेष धर्म में स्त्री तथा पुरुष का समानाधिकार है। सच्छास्त्रों में स्पष्ट रूप से लिखा है कि सामान्य धर्म को छोड़कर विशेष धर्म में लग जाना चाहिए। श्रेष्ठ पुरुषों ने सामान्यधर्म को त्यागकर भी विशेष धर्म

का पालन किया है। उदाहरण में - लक्ष्मण, भरत, प्रह्लाद, गोप, शुकदेव आदि हैं। इनके लिए भगवान्‌ने स्वयं आदेश भी दिया है। "**सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज**। गी. 18।66।" इसके अनुसार स्त्री पुरुष की बात क्या कही जाय, इसमें तो पशु-पक्षी जीवमात्र का समान अधिकार हुआ। कल्याण भी तो सबों का होना ही है। इस कल्याण के लिए भगवत्शरणागति के सिवा अन्य कोई मार्ग नहीं है। श्रुति कहती है - "**मुमुक्षुर्वे शरणमहं प्रपद्ये**।" "**यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः**।" "**नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय**।"

सुमित्रा ने लक्ष्मण से कहा है - "**रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम्। अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम्**। बा. रा. अयो. 40।9।" इसी को तुलसीदास जी ने भी कहा है - "**तात तुम्हार मातु बैदेही। पिता राम सब भाँति सनेही**। मानस अयो 73।1।" जब वशिष्ठ ने भरतजी को राजा बनने के लिए कहा तो भरत ने उत्तर दिया - "**विललाप सभामध्ये जगर्हे च पुरोहितम्**। बा. रा. अयो.82।10।" **राज्यञ्चाहञ्च रामस्य**। बा. रा. अयो.82।12।" मैं और अयोध्या का राज्य दोनों ही भगवान्‌के हैं, फिर तो राज्य करने का प्रश्न ही नहीं उठता।

प्रह्लाद ने भी पिता के वचन को न मानकर भगवदाश्रय में अपने को लगा दिया था। उनका कहना था - "**दैतेयायक्षरक्षांसि स्त्रियः शूद्रा व्रजौकसः। खगामृगाः पापजीवाः सन्ति ह्यच्युततां गताः**। भा. 7। 7।54।" अर्थात् स्त्री की बात कौन कहे सभी पशु पक्षी भी भगवत् शरण के अधिकारी हैं। यज्ञपत्नी (मथुरा की ब्राह्मणी) तथा गोपियाँ सामान्य धर्म को छोड़कर भगवान् को प्राप्त कर ली थीं। यही नहीं शुकदेवजी भी व्यास को प्रत्यत्तर में रोते छोड़ जंगल में चले गये थे।

विवाह में सप्तपदी और बायाँ भाग में बैठाने के समय में पति ने स्त्री से प्रतिज्ञा की है कि हम श्रेष्ठ कर्मो में तुमको साथ रखेगें। भगवत्शरणागति से बढ़कर दूसरा कोई पवित्र कर्म नहीं है। इसलिए पति का परम कर्त्तव्य है कि स्त्री को भगवत्शरणागति में साथ ले ले। अन्यथा पति को प्रतिज्ञा भंग का दोष लगेगा और स्त्री के आत्मकल्याण में हानि होगी। भारद्वाज संहिता में तो यहाँ तक है - "**स्त्रिया सहैव कर्त्तव्यं ब्राह्मणस्य विधानतः**।" विधिपूर्वक ब्राह्मणों की पत्नी के साथ साथ भगवान्‌की शरणागति करनी चाहिए। इसमें जीवमात्र का समान अधिकार है।

सुदामा की सेवा में रुक्मिणी बरावर श्रीकृष्ण के साथ थीं। वह प्रसाद में अपना भाग स्वयं माँगी है। वेद के प्रधान अंग पुरुषसूक्त में कहा है - "**यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः**।" इसका अर्थ इसप्रकार है - '**यज्ञेन यजनीयेन द्रव्येण** (आराधन- योग्य वस्तु आत्मा से) **यज्ञं भगवन्तं नारायणम्**।' यहाँ यज्ञ भगवान् विष्णु का नाम है। श्रुति भी कहती है - "**यज्ञो वै विष्णुः**" "**यज्ञो वै पुरुषः**" विष्णुसहस्रनाम में "**यज्ञ इज्यो महेज्यश्च**" "**यज्ञो यज्ञपतिर्यज्वा**" आया है। अयजन्त क्रिया है। जैसे - तुलसी पुष्प भगवान् को समर्पण करना उनकी पूजा है। उसी प्रकार आराधन योग्य वस्तु आत्मार्पण द्वारा भगवान्‌की पूजा करता हूँ। यहाँ आत्म-त्याग-रूपी यज्ञ है और '**ईश्वराय निवेदितुम्**' परमात्मा के निवेदन के लिए यह शरीर और आत्मा है।

"**यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः**। गी. 3।9।" कल्याण साधन के लिए यह निवेदन मर्म स्थान है। इसमें स्त्री को साथ रखना उचित है। विवाह-काल में वर को विष्णु और कन्या को लक्ष्मी कहा गया है। इसका अर्थ है कि उचित समय पर दोनों की एकता है। अतः "**यज्ञे होमे च दानादौ भवेयं तव वामतः। यत्रत्वं तत्र चैवाहं पदे षष्ठे ब्रवीम्यहम्**।।" यज्ञ होम दान आदि सभी श्रेष्ठ कर्मो में जहाँ-जहाँ आप रहेंगे वहाँ-वहाँ आपके वाम भाग से भी उस कर्म को करूँगी।

इसी प्रकार - "**तीर्थव्रतोद्यापनयज्ञदानं मया सह त्वं यदि कान्त कुर्यात्। वामाङ्गनायामि तदा त्वदीयं जगाद वाक्यं प्रथम कुमारी**।।" हे स्वामिन्! मैं आपके वामभाग में तभी बैठूँगी जब आप तीर्थ व्रत दान यज्ञ बाग तड़ाग के उद्यापनादि पवित्र कर्मो में मुझको साथ रखने की प्रतिज्ञा कर लेंगे और पति - "**यदेतद्हृदयं तव तदस्तु हृदयं मम। यदिदं हृदयं मम तदस्तु हृदयं तव**।" हे भद्रे ! हमारा तुम्हारा हृदय एक रहे। कभी भी विभिन्न न हो। हम और तुम एक जीव दो देह हों।

"**इहार्थे साक्षिणो विष्णुरग्निः सोमो द्विजस्तथा। उभयोः प्रीतिसंभूताः सप्तम्येषा ब्रवीम्यहम्**।।" हमारे तुम्हारे प्रेम और प्रतिज्ञा का साक्षी विष्णु अग्नि महादेव ब्राह्मण तथा मण्डप में आवाहित सभी देव अन्यान्यजन हैं। इसलिए दोनों का साथ रहना ठीक है।

पति-पत्नी के बीच एक यह भी रहस्य है कि पति यदि अपने उचित पथ से भ्रष्ट हो तो स्त्री उसे एकान्त में प्रार्थना पूर्वक सिखाकर उचित पथ पर लावे। इसके अनेक उदाहरण हैं। जैसे - पार्वती के विवाह के सम्बन्ध में मैना ने हिमाचल से कहा है - "**पतिहि एकान्त पाय कह मैना। नाथ न मैं मानी मुनि वैना।** मानस वाल 70।1।" मन्दोदरी कही है - "**कन्त कर्ष हरि सन परिहरहू। मोर कहा अतिहित चित धरहू।** मानस लंका 13।4।" तारा कही है - "**सुनि पति आहि मिला सुग्रीवाँ। ते दोउ बन्धु तेज बल सीवाँ।** मानस किष्क 6।14।" सुशीला अपने पति सुदामा को समझाकर कृष्ण के समीप भेजी है। श्री जानकी - "**वधार्हमपि काकुत्स्थ कृपया परिपालय।** वा. रा. सुन्दर 38।33।" हे भगवन्! यह जयन्त तो मारने योग्य तो अवश्य है किन्तु आपके श्रीचरण में आकर लगा है, इसलिए अपनी कृपा द्वारा इसकी रक्षा अवश्य कीजिए। आप शरणगतवत्सल शरण्य गुणसागर हैं। अतः अपने सुन्दर गुण तथा यश में दोष नहीं लगने दें। इस प्रकार कहकर इन्होंने जयन्त को बचा लिया है। इसीको तुलसीदास जी भी लिखे हैं - "**कबहुँक अम्ब अवसर पाय। मेरोइसुधि देहवी कछु करुण कथा चलाय।** विनय पत्रिका 41।"

चैतन्यों के कर्म देखकर भगवान्कहते हैं - "**तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्। क्षिपाम्यजस्रमशुभान्आसुरीष्वेव योनिषु।** गी. 16।19।" ऐसे अधमों को आसुरी योनि में डाल दूँगा। क्षमा नही करूँगा। उसी समय महालक्ष्मी भगवान् का चरण पकड़कर जयन्त सदृश पापी को भी क्षमा दान दिलवा देती है। अतः यह सिद्ध होता है कि आवश्यकता पड़ने पर स्त्री पति से औचित्य का पालन करवावे। स्त्री को यह अधिकार है कि पति यदि अनर्थ करता हो (बीड़ी, गांजा, भांग, मद्य, मदिरा, मांसादि का सेवन करता हो)तो उसका निषेध करे और ऐसे पति की बात भी न माने। कहा है - "**जिन कृत महामोह मद पाना। तिनके वचन करिए नहीं काना।** मानस वाल 114।4।" "**मद्यपाः किं न जल्पन्ति किं न खादन्ति वायसाः।**" कौआ क्या नहीं खाता है, शराबी क्या नहीं बोलता। अतः इनकी बातों का प्रमाण नहीं मानना चाहिए। रावण की बातों को मन्दोदरी ठुकरा देती है, वह सोच ली थी कि - '**भयउ कन्त पर विधि विपरीता।**' रावण और बाली अपनी स्त्रियों की सद शिक्षा से अलग रहे, अतः उनका विनाश हुआ। इसी तरह की कथा पुराणों में और भी मिलती है। जैसे - सुमन्त की कन्या अनन्त भगवान् की पूजा अपनी बाल्यावस्था से ही करती थी। वह कन्या कौण्डिन्य ऋषि से ब्याही गई। कौण्डिन्य ने क्रोधवश अनन्त सूत्र आग में फेंक दिया। जब उनकी स्त्री ने उनकी स्त्री ने उनको फटकारा तो उनको ग्लानि हुई। फिर तो स्त्री के सदुपदेश से ही उनमें भगवान की भक्ति हुई और पुनः उनकी आराधना करने लगे। वही अनन्त भगवान् आज भी दक्षिण समुद्र के किनारे पद्मनाभ -जनार्दन के नाम से विख्यात है। वह स्थान मालावार रामराज्य के नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ की मुद्रा में राम-लक्ष्मण-जानकी की मूर्ति है। यही अनन्त की कथा आज संसार में अनन्त व्रत के नाम से प्रचलित है। कौण्डिन्य के वंशज आज भी वहाँ बहुत दूर में वसे हैं और वे सब पद्मनाभ- जनार्दन की आराधना करते हैं। यह स्त्री के उपदेश का ही प्रभाव है।

महात्मा तुलसीदास की भी कथा इसी प्रकार की है। उनकी स्त्री नारीरत्न रत्ना ने यह दिव्य उपदेश दिया था -

"**लाज न लागत आपको दौरे आयो साथ। धिक्धिक्ऐसो प्रेम को कहा कहहु मैं नाथ।।**
अस्थि चर्ममय देह मम ता में जैसी प्रीत। तैसी जो श्रीराम महँ होत न तो भव भीत।।"
यदिस्थिभिर्निमित वंशवंश्य स्थूणां त्वचारोमनखैः पिनद्धम्।
क्षरन्नवद्वारमगारमेतद्विणमूत्रपूर्णमदुपैति कन्या।

आप हमारे इस कुत्सित शरीर के प्रेम में पड़कर दौड़े हुए ससुराल में भी आ गये। यदि चित्त में परमात्मा से प्रेम करते तो आपका यह मानव जन्म सफल हो जाता। इस धिक्कार का प्रभाव उन पर ऐसा पड़ा कि तुलसी गोस्वामी बन गये। अपनी स्त्री शिक्षा द्वारा उनका भाग्य खुल गया जिससे लोक और परलोक दोनों बना। यह वात सभी जानते हैं। ऐसी स्त्री की बात मानने वालों की भलाई होती है। अनेक उदाहरण इस तरह के मिलेंगे जिसमें स्त्री द्वारा पुरुषों का सुधार लक्षित होता है। पुरुषों के सुधार में स्त्रियों का पूर्ण अधिकार भी है। चण्डी, ताड़का, शूर्पणखा के समान स्त्रियाँ अमान्य हैं यह विचार कर लेना चाहिये। शैव्या,

कुन्ती, सीता,गार्गी इत्यादि अतः इन सबों के चरित्रों पर स्त्रियों को विशेष ध्यान देकर उनके आचरण को अपनाना चाहिए।

पतिं प्रयान्तं सुबलस्य पुत्री पतिव्रता चानुजगाम साध्वी।

हिमालयं न्यस्त दण्डप्रहर्षं मनस्विनामिव सत्संप्रहारः। भा.1।13।29।"

धृतराष्ट्र के साथ उनकीस्त्री गान्धारी हिमालय में चली गयी और उनकी चिता के समीप ही अपना शरीर भस्म कर दिया, पति-पत्नी का सम्बन्ध यहाँ तक है। श्रीरामजी श्रीजानकी जी की अनुपस्थिति में जब यज्ञ करना चाहे तो उनकी स्वर्ण की प्रतिमा बनाकर ही किये। गृहस्थों के लिए यह सुन्दर सदुपदेश है।

4। नारियों के लिए दीक्षा आवश्यक

कल्याण के लिए स्त्रियों का मन्त्र लेना आवश्यक है। यदि पति से ही स्त्री मन्त्र ले तो पति गुरु हुआ, स्त्री गुरु-गामिनी होगी ? पति से मन्त्र लेने की विधि भी कहीं नहीं है। अतः पति के साथ या उससे पृथक भी गुरु से मन्त्र ले। पुरुषों का उपनयनादि संस्कार करने वाला आचार्य गुरु कहलाता है। स्त्रियों के सभी संस्कार के बदले में एक विवाह संस्कार ही माना गया है। विवाह कराने वाले आचार्य उसके गुरु कहलाते हैं। ऐसा प्रमाण शास्त्र सम्मत है। **"गुरु पञ्च तु सर्वेषाम"** पाँच गुरु तो सबके होते हैं। किन्तु प्रधान गुरु सबों में वही है जो संसार चक्र से निवृत्त कराता हो।

मंत्र दीक्षा पूर्वक जो भगवान से सम्बन्धित नहीं हुआ उसे कल्याण नहीं होता। अतः उपर्युक्त विधि से भगवान से सम्बद्ध कराने वाला आचार्य ही प्रधान गुरु हैं। ऐसे गुरु की योग्यता के सम्बन्ध में बतलाया गया है कि **'सर्ववेदविदोवापि सर्वयज्ञेषु दीक्षितः।महति कुल जातोऽपि न गुरुः स्यादवैष्णवः।।'** ब्राह्मण विद्वान हो कुलीन हो किन्तु अवैष्णव होने पर उसे गुरु होने का अधिकार नहीं है। यह हारीत का कहा हुआ है। शास्त्रों में देवाराधन से श्रेष्ठ भगवदाराधना को बतलाया है।स्त्रियों के सम्बन्ध में यह स्पष्ट है कि विवाहित या अविवाहित सभी अवस्था में भगवान की पूजा करनी चाहिए। परन्तु पूजा के सम्बन्ध में भी विधान है कि **'देवो भूत्वा देवं यजेत'** देवता का स्वरूप धारण कर ही देव पूजन किया जाना चाहिए। अन्यथा **'विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम्। श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते।** गी. 17।13।' विधिहीन क्रिया तामसी होने से निष्फल या विपरीत फल की होती है। दशरथ जी ने इसी सावधानी की रक्षार्थ आचार्यो को बार बार चेतावनी दी है। **'विधिहीनस्य यज्ञस्य सद्यः कर्त्ता विनश्यति।'** विधिहीन यज्ञ कर्मकर्त्ता का भी नाश करता है। इसलिए स्त्रियों को भी उचित है कि आचार्य से मन्त्र लेकर ही भगवान्की आराधना करे। पूर्व की स्त्रियाँ ऐसा ही किया करती थीं। कौशल्या वैष्णवी थीं, रंगनाथ भगवान की पूजा किया करती थीं। भगवत्-शरणागत होने में स्त्री पुरुष की अवस्था का प्रश्न ही नहीं उठता और सभी अवस्थाओं में शरणागति करे। गर्भवास काल से मरण पर्यन्त शरणागति की जा सकती है।

'सर्वाश्रमेषु वसतां सर्वेषु च। न देशकाला नावस्था योगो ह्यमपेक्षते। ।भारद्वाज संहिता।'

राजा परीक्षित और प्रह्लाद दोनों माता के गर्भ में रहते हुए ही भगवान की शरणागति किये थे। ध्रुव अनुपवीत पाँच वर्ष की अवस्था में भगवान्की शरण में आये। इसमें देश काल वय का विचार नहीं झलकता है। कपिल ने भागवत में कहा है

"मय्यनन्येन भावेन भक्तिं कुर्वन्ति ये दृढ़ाम्। मत्कृते त्यक्तकर्माणस्त्यक्त स्वजनबान्धवाः।।

मदाश्रयाः कथा मृष्टाः श्रृण्वन्ति कथयन्ति च। तपन्ति विविधास्तापा नैतान्मद्गतचेतसः। भा.3।25।22, 23।"

'त एते साधवः साध्वि सर्वसंगतिवर्जिताः।' यहाँ पर पद्मपुराण में लिखा है **"अवैष्णवस्य यन्मन्त्रं तत्सर्वं परिवर्जयेत्। पुनश्च विधिना सम्यक्वैष्णवाद्ग्राहयेन्मनुः।** प. पु. उ. खण्ड 227।2।" जो पञ्च संस्कार रहित व्यक्ति से मन्त्र ले चुका है उसे पुनः वैष्णव से पञ्च संस्कारपूर्वक मन्त्र लेना चाहिए। **"रसलुब्धो यथा भृंगः पुष्पाद्पुष्पान्तरं व्रजेत्। ज्ञानलुब्धः तथा शिष्यः गुरोः गुरुतरं व्रजेत्।।"** जैसे भौंरे को एक फूल पर तृप्ति नहीं होती है तो अन्य फूल पर जाकर रस लेता है उसी प्रकार मूर्ख या असंस्कृत से मन्त्र ले चुका हो तो उसे पुनः ज्ञानी गुरु से मन्त्र लेना चाहिए।

5 । सभी वर्णों एवं नारियों के लिए दीक्षा का विधान

"सर्वाश्रमेषु वसतां स्त्रीणां च द्विजसत्तमाः । कर्म संस्कार सिद्धयर्थ जातकर्मादि कारयेत् ।

मन्त्र संस्कारसिद्धयर्थ मन्त्रदीक्षाविधिं तथा । ।" ऊपर के वचनों से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि स्त्रियों को मुक्ति की कामना से दीक्षा-गुरु करने का अधिकार है। फिर भी इसके पोषक कुछ वचनों को उद्धृत कर दिया जाता है जिसमें किसी को यह भ्रम न रह जाय कि पति के अतिरिक्त दीक्षा गुरु करने का अधिकार स्त्रियों को सचमुच है या नहीं ?

5 । 1 - उद्वाहसमये स्त्रीणां पुमांश्चैवोपनायने । चक्रादिधारणं प्रोक्तं मन्त्रैः पञ्चायुधन्तथा । पराशर स्मृति **1-5-6** ।
स्त्रियों को विवाह - संस्कार और पुरुषों को उपनयन संस्कार के पूर्व ही सुसंस्कृत भगवद्भक्त दीक्षा गुरु से पञ्चसंस्कार पूर्वक दीक्षित होना चाहिए।

5 । 2- आश्रमाणां चतुर्णाञ्च स्त्रीणां च श्रुतिचोदनात् । अङ्कयेच्चक्रशंखाभ्यां प्रतप्ताभ्यां विधानतः । हारीत स्मृति
चारों आश्रमों में रहने वाले स्त्री तथा पुरुषों को तप्त शंख चक्र से विधिपूर्वक अंकित होकर दीक्षित होना चाहिए यह श्रुति की आज्ञा है।

5 । 3- ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः स्त्रियः शूद्रास्तथेपरे । तस्याधिकारणः सर्वे सत्वशीलगुणा यदि । हारीत स्मृति ।
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य एवं शूद्र तथा स्त्री कोई भी हो जिसमें सत्व गुण हो, शीलवान हो सब को भगवान्की शरणागति का पूरा अधिकार है।

5 । 4- ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः स्त्रियः शूद्रास्तथेतरे । तस्याधिकारणः सर्वे मम भक्ता भवन्ति चेत् । पद्म. पु. उ. खंड **223** । **27** ।
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र और स्त्री कोई भी भगवद्भक्त हो सब को भगवान्की शरणागति का पूरा अधिकार है।

5 । 5 - प्राप्ता ये वैष्णवीं दीक्षां वर्णाश्चत्वार आश्रमाः । चातुर्वर्ण्य स्त्रियश्चैते प्रोक्तास्तत्राधिकारिणः । । इस वैष्णवी दीक्षा के अधिकारी चारों वर्णों और आश्रमों के पुरुष तथा स्त्रियाँ सभी हैं।

5 । 6- नारायणाराधन तत्परा स्त्री कामानवाप्नोति न संशयाऽस्ति । सुदर्शन मीमांसा । इसमें सन्देह नहीं है कि नारायण की आराधना करने वाली स्त्रियाँ अपने इच्छित समस्त फलों को प्राप्त कर लेती हैं।

5 । 7- विशेषात्कन्यकायास्तु कर्त्तव्यं मंगलेन च । शाण्डिल्य स्मृति । विशेषरूप से वचपन में ही पुरुष या स्त्री को भगवान् का समाश्रित होना चाहिए।

5 । 8 - यथार्ह विभूयुः सर्वे पुमांसस्त्री जनोऽपि वा । उत्थाय पूर्वं गृहिणी सुस्नाता यतमानसा । ।

स्नुषा दुहितृ पुत्राद्यान्यथार्ह शुचितां नयेत् । स्त्रीणामर्चनीयः स्ववणस्यानुरूपतः । हारीत स्मृति ।
स्त्रियों को अपनी वर्ण व्यवस्थानुकूल भगवान्की अर्चना करनी चाहिए।

5 । 9 - वसन्ते दीक्षयोद्विप्रं ग्रीष्मे राजन्यमेव च । शरत्समये वैश्यं च हेमन्ते शूद्रमेव च । ।

स्त्रियञ्च वर्षाकाले तु पञ्चरात्रविधानतः । महा भा. शा. प. । पाञ्चरात्र शास्त्र की विधि से ब्राह्मणों को वसन्त ऋतु में, क्षत्रियों को ग्रीष्म ऋतु में, वैश्यों को शरद ऋतु में तथा शूद्रों को हेमन्त ऋतु में और स्त्रियों को वर्षा ऋतु में दीक्षित करें। यही बात सुदर्शन सुरद्रुम के पृष्ठ **136** में वाक्यान्तर से दुहराई गयी है।

5 । 10 - स्त्रियः शूद्रादयश्चापि बोधय्येर्हिताहितम् । यथार्ह माननीयाश्च नार्हन्त्याचार्यतां क्वचित् । वाराह पु. ।
स्त्रियों तथा शूद्रों को भी आत्मकल्याण की वात वताने का पूर्ण अधिकार है। वे यथायोग्य मान्यता भी प्राप्त कर सकते हैं। हाँ, वे आचार्य या आचार्या नहीं हो सकती हैं।

5 । 11 - स्त्रियश्च वार्षिके काले दीक्षयेद्यलतस्तथा । स्त्रियों को वर्षाकाल में ही दीक्षित करना चाहिये ।

5 । 12 - ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो नारी तथेतरः । चक्रादिनाङ्कयेद्गात्रमात्मीयस्याखिलस्य च । पद्म. पु. उ. खंड **223** । **27** । वैष्णव -

आचार्य को ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र तथा नारियों को भी चक्राङ्कण पूर्वक दीक्षित करने का अधिकार है।

5।13 - स्त्रीणां च पतिपित्रादीननतिकम्य सत्तमान्। अनुज्ञया वाप्यन्येभ्यः स्मृतो मन्त्रपरिग्रहः। ।स्त्रियों के लिए पति पिता और श्वसुर इनमें से कोई भी आचार्य लक्षण युक्त हो तो उसे दीक्षित करने का अधिकार है। पर इन तीनों के योग्य न होने पर इनकी आज्ञा से आचार्य गुणसम्पन्न दूसरे गुरु से भी दीक्षा उचित है।

5।14 - शिष्यपुत्र कलत्राणं भृत्यानाञ्च गवामपि। ।आचार्य को चाहिए कि अपने पुत्र शिष्य स्त्री तथा भृत्यों एवं कुटुम्बों को भी चक्राङ्कित करे।

5।15 -अनुज्ञाताः स्त्रियश्चैवमर्चयन्त्यो जगद्गुरुम्। ।पति पुत्रादि की आज्ञा से आचार्य से दीक्षित हो जो स्त्री श्रीमन्नारायण की अर्चना करती है वह मोक्ष प्राप्त करती है।

5।16 - नारी वा पुरुषो वापि प्रपद्ये शरणं हरिः। स्त्री हो या पुरुष हरि की शरणागति का अधिकार दोनों को बराबर है।

5।17 - तृर्ष्णीं प्राया क्रियाः स्त्रीणां मन्त्रश्रावणबोधने। स्त्रियों को मन्त्रादि पञ्चसंस्कार मूक भाव से करना चाहिए।

5।18 - श्रीकृष्णशस्त्राङ्कितहीन गात्रश्मशान तुल्याः पुरुषोथ नारी। दृष्ट्वानरस्तं नृपतेः सवासाः स्नात्वा समर्चेद्धरि मंगलाय। नारद पु.। जिस स्त्री या पुरुष का शरीर शंख चक्र से अङ्कित नहीं है श्मशान तुल्य है। इस प्रकार के व्यक्ति को देखकर जब तक स्नान नहीं करता और भगवान की पूजा नहीं कर लेता तब तक पवित्र नहीं होता।

5।19 - नारी वा पुरुषो वापि गुरुवन्दनपूर्वकम्। पद्म.पु.। स्त्री या पुरुष गुरु-वन्दना का अधिकार सबों को है।

5।20 - स्त्रीणां च सर्ववर्णानां पुरुषो वा तथा विदुः। द्वयेन मन्त्ररत्नेन प्राप्नुयात्परमं पदम्। । सभी वर्ण की स्त्री तथा पुरुष दोनों ही द्वय मंत्र का अनुसन्धान कर वैकुण्ठ प्राप्त कर सकते हैं। विप्राणां सततं धार्यं स्त्रीणां च शुभदर्शने। ब्राह्मण जाति का स्त्री हो या पुरुष सबों को ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण सतत करना चाहिए।

5।21 - स्त्रिया सहैव कर्त्तव्यं गृहस्थस्य विधानतः। संस्कारं पञ्चकं तेन भवेत्सा धर्मचारिणी। शाण्डिल्य स्मृति। **स्त्रियों के साथ-साथ उनके पति का भी पञ्चसंस्कार होना चाहिए क्योंकि इससे स्त्रियाँ धर्मचारिणी होती हैं।**

5।22 - सर्वाश्रमेषु वसतां स्त्रीणां च द्विजसत्तमाः। अग्नितप्तेन चक्रेण बाहुमूले तु लांछिताः। पराशरस्मृति उत्त.। सभी आश्रमों में रहनेवाली स्त्रियों को एवं ब्राह्मण को तप्तशंखचक्र से अंकित करना चाहिए।

5।23 - कलत्रापत्य भृत्येषु पश्वाविश्व सर्वशः। पद्म पु.**224।74**। वैष्णव को चाहिये कि अपनी स्त्री पुत्र भृत्य तथा पशुओं को भी चक्रांकित करे।

5।24 - स्त्रियाश्च वार्षिके काले दीक्षयेद्यत्नस्तथा। एवं स्त्री सप्रयत्नेन गुरुमेव समाश्रयेत्। मन्त्रसारे। वर्षाकाल में स्त्रियों को दीक्षा-गुरु की शरण में जाकर पञ्चसंस्कार से संस्कृत होना चाहिए।

5।25 - बालगोपालवेषश्च स्त्री शूद्रः पूजयेत्सदा। स्त्रियों तथा शूद्रों को बालगोपाल वेषधारी भगवान की अर्चना करनी चाहिए।

5।26 - सर्वाश्रमेषु वसतां सर्वेषु वर्णेषु च। स्त्रिया सहैव कर्त्तव्यं ब्राह्मणस्य विधानतः। सभी आश्रमों तथा सभी वर्णो के लोगों को चाहिए कि अपनी स्त्री के साथ ही यथासम्भव मन्त्र ग्रहण करें और ब्राह्मण तो अवश्य ऐसा करे।

5।27 - ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः स्त्रियः शूद्रास्तथेतरे। मन्त्राधिकारिणः सर्वे ह्यनन्यशरणा यदि। हारीत। अनन्य भाव से गुरु की शरणागति करने वाले ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र और उनकी स्त्रियाँ सभी मन्त्र के अधिकारी हैं।

5।28 -जायायाः भक्तिनभ्राया रताया अर्चने हरेः। सम्बन्धिनाञ्च मित्राणां भगवद्धाम सेविनम्। परा. स्मृ. 14। श्रद्धा भक्तियुक्त भगवान्की पूजा करने वाली स्त्रियों के तथा वैकुण्ठवासी प्राणियों के सम्बन्धियों का भी कल्याण हो जाता है।

5।29 - स्त्री वा नरो वा तद्भक्तो धर्मार्थी सुदृढव्रतः। गृहणीयान्नियमानेतान्दन्तधावनपूर्वकम्।

पुत्रदाराकुटुम्बेषु कदाचित् केनचित्सह। वियोगो नाप्नुयत्किञ्चत् योषित् वा पुरुषः तथा। अनन्य शरणागत स्त्री या पुरुष कोई भी हो उसे पुत्रादि कुटुम्बियों से न तो वियोग होता और न उनकी अधोगति ही होती है। इसलिए स्त्री तथा पुरुष सभी को नित्य क्रिया करके इन नियमों का पालन करना चाहिए।

5 | 30- अथवा नित्यमुक्तानि तानि संगृह्य योषितः। सुस्नाता शुद्धवसना द्विजातिभावितात्मनः।। ललाटे तिलकं दत्वा सर्वालङ्कार भूषिता। योषितो दीपपात्राणि गृहीत्वा प्रोक्तमात्मनः। पा. अ. 15। स्त्रियों को चाहिए कि नित्य क्रिया से निवृत्त हो दैनिक काम में आानेवाली वस्तुओं को एकत्र कर स्नान करे, पवित्र वस्त्र धारण कर तिलक लगावे और पुष्प दीपादि उपचारों से भगवान्‌की पूजा करे।

5 | 31 – त्रिकालमर्चयेन्नित्यं वासुदेव सनातनम्। ध्यायन्जपन्नमस्कुर्वन्कीर्तयन्नामभिः शुभैः।।

एवं ब्रतं समाचारा नारायण परायणा। सापि भर्तारमुद्धृत्य प्रयाति परमां गति। ।वशि. स्मृ. अ. 5।जो स्त्री तीनों काल में सनातन वासुदेव भगवान का ध्यान, उनके मंत्रों का जाप, नमस्कार तथा उनके नामों का कीर्तन करती है, इस तरह की अनन्य-शरण-भगवद्-ब्रत परायण स्त्रियाँ अपने साथ-साथ अपने पति का भी उद्धार कर देती है।

5 | 32 – शंखचक्राङ्कणं कुर्यादात्मनो बाहुमूलयोः। प पु उ 224।29। कलत्रापत्यभृत्येषु पश्वादिषु विमुक्तये। प पु उ 224।7।

स पुत्र-पश-दाराणां ब्राह्मणानां विशेषतः। कुर्यातचिन्तनं चैव वैष्णवं नाम लक्षणम्।।

सर्वाश्रमेषु वसतां स्त्रीणाञ्च श्रुतिचोदनात्। प पु उ 224।26। मुक्ति की कामना वाले पुरुष को चाहिये कि अपने पुत्र स्त्री नौकर एवं पशुओं को भी चक्रांकित करावे। यही नहीं उन सबों का नामकरण भी विष्णु भगवान के नामों में से ही करे। विशेषरूप से ब्राह्मणों को तो अपनी पत्नी सहित नित्य भगवान्‌की अर्चा तथा उनके नामों का चिन्तन करना चाहिए।

5 | 33 – विष्णुभक्तिपरान्साधून्दीक्षयेत्विधिना गुरुः। ब्राह्मणान्क्षत्रियान्वैश्यान् सच्छूद्रान सस्त्रियोऽपि वा।।

अदीक्षितस्य वामोरुः कृतं सर्वमनर्थकम्। पशुयोनिमवाप्नोति दीक्षाहीनो नरो मृतः।।

विना श्रीवैष्णवीं दीक्षां प्रसादं सद्गुरोर्विना। विना श्रीवैष्णवं धर्म कथं भागवते भवेत्। विष्णु यामले। आचार्य को चाहिए कि विष्णु भक्ति परायण साधु स्वभाव वाले ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्रों को मोक्ष की कामना से पञ्चसंस्कारपूर्वक दीक्षित करे।

5 | 34 – मतङ्गं शवरीञ्चैव पृथुभागवतोत्तमम्। सुशीलां त्रिजटां गौरीं शुभां विद्यावलीं तथा।

अनुसूयां द्रौपदीञ्च यशोदां देवकीन्तथा। सुभद्राञ्चैव गोपीश्च शुभां नन्दब्रजे स्थिताः।

सभ्रातृकाञ्चैव कौशल्यां कन्यामपि च वैष्णवान्। मतंग ऋषि, उनकी शिष्या शवरी, सुशीला, त्रिजटा, गौरी, शुभा, विद्यावली, अनुसूया, द्रौपदी, यशोदा, देवकी, सुभद्रा और ब्रजवासी गोपियाँ एवं राजा दशरथ के साथ कौशल्या आदि असंख्य आदर्श नारियों ने गुरु के द्वारा भगवान की शरणागति की थी।

"गुरु पद पंकज सेवा तीसरी भक्ति अमान।

णव महुँ एको जाकहँ होई। नारी पुरुष सचराचर कोई। मानस अरण्य 35।3।"

जिस स्त्री पुरुष में नवधा भक्ति से में एक भी हो वह भगवान्‌का प्रिय है।

5 | 35 – दृष्टवा स्त्रीणां भगवति कृष्णे भक्तिमलौकिकीम्। आत्मानञ्च तया हीनमनुतप्ता व्यगर्हयन्। भाग. 10। 23। 38। मथुरा के ब्राह्मणों को एक ओर तो आत्मग्लानि इसलिए है कि उन्हें भगवान की भक्ति नहीं है। दूसरी ओर आत्मगौरव इसलिए है कि उनकी स्त्रियाँ भगवद्भक्ता हैं।

5 | 36 –धिग्जन्म नस्त्रिवृद्विद्यां धिग्व्रतं धिग्बहुज्ञताम्। धिक्कुलं धिक्क्रियादाक्ष्यं विमुखा ये त्वधोक्षजे। 39

अहो वयं धन्यतमा येषां नस्तादृशीः स्त्रियः। भक्त्या यासां मतिर्जाता अस्माकं निश्चला हरौ। भाग. 10।23।49।

यद्यपि मथुरावासी ब्राह्मण यज्ञशील थे किन्तु यज्ञपुरुष अधोक्षज पर उनकी दृढ़ आस्था नहीं थी। जब उन्होंने अपनी स्त्रियों को जाना कि वे अनन्य भगवद्-भक्ता हैं, सचमुच वे हीं यज्ञपुरुष की अर्चना जानते हैं, तो उन्हें आत्मग्लानि होती है, किन्तु यह कहकर धैर्य बाँधते हैं कि हम धन्य हैं इसलिए कि हम सब की कृष्णभक्ता स्त्रियाँ मिली हैं।

5 | 37 – नारीणामपि कर्त्तव्या अहन्यहनि शाश्वतीम्। उत्थाय पश्चिमे यामे भर्त्तुः पूर्वमतन्द्रिता।

कृत्वा शौचं विधानेन दन्तधावनमाचरेत्। कृत्वाऽथामलं स्नानं धृत्वा शुक्लाम्वरं तथा।।

आचम्य धारयेदूर्ध्वपुण्ड्रं शुभ्रं मृद्वैव तु। अप्त्वा मंत्रं गुरुं यश्चादभिनन्द्य च वैष्णवान्।।

णमस्कृत्वा जगन्नाथं कृत्वा च शरणागतिम्। केशवाराधनं कुर्यातस्त्रियश्च पुरुर्षभ।।नारी मात्र को चाहिये कि नित्य क्रिया से

निवृत्त होकर स्नान करे और शुभ वस्त्र धारण कर श्वेत मृत्तिका का ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक लगाकर पवित्र हो आचमन करे। इसके बाद यथासाध्य गुरु-मंत्र का जप करे। पुनः वैष्णवों को प्रणाम करे फिर भगवान्‌की शरणागति उनकी विधिवत्‌पूजा करे।

5।38- नारायणः पूज्यतमो हि लोके नारायणः सर्वगतः प्रधानः।
नारायणाराधनतत्परा स्त्री कामानवाप्नोति न संशयोऽत्र।।
वेदमन्त्र पुराणोक्तैर्मन्त्र मूलेन द्विजः पूजेयुर्दीक्षिता योगाः सच्छूद्रा मूलमन्त्रतः।
आदौ तु वैष्णवां दीक्षां गृहणीयात्सद्‌गुरोः पुमान्।।
सदैकान्कि धर्मस्थाद्‌ब्रह्म नातेर्दयानिधे। पौरुषञ्च तथा सूक्तं श्रीसूक्तेन च संयुतम्।।
एतत्प्रोक्तं द्विजातीनां स्त्री शूद्रेषुं तथा श्रृणु। द्वादशाष्टाक्षरी मन्त्रस्तथा तेषां महात्मनाम्।।

इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि स्त्रियों को पति से अन्य मोक्ष की कामना से दीक्षा गुरु करना चाहिये। यही नारी मात्र के लिए प्रशस्त मार्ग है। इसके प्रतिकूल चलनेवाली नरक गामिनी होती है। अतः "**पतिरेको गुरु स्त्रीणाम्**" का वचन केवल पूज्यत्व के लिए व्यहहृत हुआ है। यहाँ गुरु शब्द का प्रयोग पूज्य अर्थ में है न कि दीक्षागुरु अर्थ में। ऐसा मानना भ्रम और अज्ञानमूलक होगा। बुद्धिमान पुरुय को चाहिए कि ऊपर कहे गये शास्त्रीय प्रमाणों को ध्यान में रखकर इस श्लोक का अर्थ करे तभी सच्ची संगति और उचित अर्थ होगा। अन्यथा अनर्थ होगा।

प्राणी मात्र के कल्याण की कामना से इस विचार का प्रसार आवश्यक है, तभी - "**सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे निरापदाः सन्तु मा कश्चिद्‌दुःख भाग्भवेत्।।**" विश्व का सच्चा कल्याण सम्भव है।

श्रीस्वामी जी महाराज के इस सारगर्भित उपदेश के बाद पण्डित बालमुकुन्द शर्माजी की आँखें खुल गयीं और उन्होंने हाथ जोड़कर यह कहते हुए कि आज ही श्रीचरणों के प्रसाद से दास की अज्ञानता दूर हो गयी। क्षमा याचना की।

-ः इति शुभम् ः-

6। वैकुण्ठ स्तवः

कदा मायापारे विशदविरजापारसरसि परे श्रीवैकुण्ठे परमरुचिरे हेम नगरे।
महारम्ये हर्म्ये वरमणिमये मण्डपवरे समासीनं शेषे तव परिचरेयं पदयुगम्।1।

हे भगवन् ! वह समय कब आयेगा जब प्रकृति मण्डल आवरण से परे अति विस्तृत विरजा नदी के पार आरंगह्रद सरोवर से परे चित्र विचित्र मणियों से जटित परम मनोहर सुवर्णपुरी श्रीवैकुण्ठ महानगर में अत्यंत रमणीय सर्वोच्च्व स्थान श्रेष्ठमणियों से प्रकाशित रत्नमणि मंडप में सहस्र फणयुक्त शेष शय्या पर नित्यमुक्तों से सम्मिलित होकर सुख से बैठे हुए आपके दोनों चरणकमलों की परिचर्या मैं करुँगा।

महासिन्धोः नीरे विगतकलुषो दिव्यगुणको हरे सद्‌गात्रोऽमानव परिसरेऽलंकृततनुः।
भवेयं संश्लाध्योऽमरनिकर संमानित भवन्कदाहं संरूढ़ो वरगरुडयाने समचरम्।2।

हे हरे !कब वह समय आवेगा जब मैं लीलाविभूति से छूटकर विरजा नदी के जल स्पर्श से सूक्ष्म प्रकृति एवं सूक्ष्म प्राकृत वासना रहित दिव्यगुण युक्त होकर आपके द्वितीय दिव्यमंगलविग्रह अमानव भगवान की सन्निधि में दिव्य वस्त्र एवं आभूषण से अलंकृत होकर नित्यमुक्तों से सम्मानित गरुड़यान से आपके चरण-सन्निधि में पहुँचूंगा।

कदा वा प्राविष्टं सुरतरुगणैराविलसितम् पदार्थे नित्यौघैरमितविभवैः पूरितमशम्।
सदाशुद्धं शान्तं प्रभुमुपनिषद्‌भिर्विरचितम् पुरं तत्पश्येयं तव करुणया दिव्यमजडम्।3।

कब वह शुभ समय आयेगा जब मैं देव वृक्षों से (कल्पवृक्षों से) से सुशोभित नित्य पदार्थो से युक्त निरवधिक निरतिशय वैभवों से परिपूर्ण शुद्ध सत्वमय शांत सर्वसमर्थ **पञ्चोपनिषण्मय** (प पु उ **228।4**) रचित नित्य चैतन्य दिव्य श्रीमहावैकुण्ठ आपकी कृपा के अवलम्ब से देखूँगा।

कदा हर्म्यं गत्वा सुखमयमहामण्डपमणौ तदा वैतन्यमध्ये सदसिवरपीठेऽब्जशिरसि।
निषण्णं शेषांके सुरजितगणैकांतिनिकटे प्रियाविद्युन्मध्ये घनसदृशमब्जाक्षसुमुखम्।4।
यथावद्विश्वांग प्रियमुचितमेकं सममलं शुभाढ्यं चास्त्रद्याभरणनिजदीप्त्याविलसितम्।
प्रपश्यञ्श्रीकान्तं सुरनिकासं सेव्यमनिशम् प्रबोधानन्दं त्वां परमनुदधेयं सुरवरम्।5।

हे भगवन्! वह समय कब आयेगा जब मैं आपके निजभवन (वैकुण्ठ) में जाकर आनन्दमय महामणि मण्डप में नित्यमुक्तों की सभा के बीच सहस्रफण मण्डित शेषजी को गोद में सहस्रदल कमल के ऊपर बैठे हुए विद्युत सदृश श्री, भूमि, नीला देवियों के मध्य में कमलनयन सुन्दर मुख मण्डल महामेघ सदृश सम्पूर्ण विश्व का भरण पोषण करने वाले सबके परमप्रिय जग के अधिपति मंगलमय शंख चक्रादि आयुध वस्त्र भूषणों से विभूषित स्वयं प्रकाश से प्रकाशित श्री लक्ष्मीपति आपको देखता हुआ वैकुण्ठ निवासी सभी अमरों से सदा सेव्यमान ज्ञानानन्दमय देवाधिदेव आपका अनुभव करूँगा।

कदा तस्मिन्दिव्ये वरगुणतरङ्गैश्च वृत्तिभिः भ्रमित्वा संस्तुत्वा कृतकरपुटः सामनिगमम।
सुगायन्संमोदे तव गुणगणान्मुक्तसुलभान पदद्वद्वं दत्तं परमनुदधेयं शिरसि च।6।

वह सुअवसर कब मिलेगा जब उस दिव्यलोक (श्रीवैकुण्ठ महानगर) में मुक्तों को सुलभ आपके दिव्यगुणों का हम स्मरण करते हुए आनन्द के तरंगों में भ्रमण करते हुए हाथ जोड़कर स्तुति करते हुए सामवेद गान करते हुए आनन्द सागर में गोता लगाते हुए आनन्दित होंगे और आपका दिया हुआ प्रसाद रूप आपके दोनों चरणकमलों को मैं अपने मस्तक पर धारण करूँगा।

नुतं यद्ब्रह्माद्यैर्जगदखिलजं स्वस्तिनिलयम् महाल्क्ष्मीलाल्यं प्रवरसुरसेव्यं वरसुवम्।
विचित्रं त्वां प्राप्य सकलविधिसम्बन्धसहितं समं जोरं साकं सरसिकमलं कीर्तिधवलम्।7।

हे भगवन्! आपके जिस चरणकमल को ब्रह्मादि देव बारम्बार नमस्कार करते हैं जो सम्पूर्ण जगत को सुखदायी सकल मंगल का स्थान श्रीदेवी से लालित नित्यमुक्तों से सुसेवित सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण करने वाला नूपुरादि भूषणों से भूषित स्वच्छ कीर्तियुक्त नवीन कमल के समान सर्वसम्बन्ध सहित अतिविचित्र आपके उन दोनों चरणकमलों को अपने मस्तक पर कब धारण करूँगा।

कदाहं जातस्तेऽनुभवजमहानन्दविभवात् स्वसंकल्पादेशादुररिकृत त्वद्दास्यमखिलम्।
करिष्ये तत्प्रीतं मुहूरनुभवाञ्छ्रीप्रियसखम्भवेयं प्रीतोऽहं तव परिजनैर्मंगलपरम्।8।

हे भगवन् ! वह सुसमय कब आयेगा जब मैं आपके अनुभव से उत्पन्न महानन्द रूपवैभव से आपके आदेशानुसार सर्वदेश सर्वकाल सर्वावस्था में आपकी दास्यता को शिर पर धारण कर बारम्बार लक्ष्मी जी के अतिप्रिय आपको प्रसन्न करता हुआ आपके सेवकों के साथ मंगलानुशासन करते हुए प्रसन्न होऊँगा।

न कामये ह्यत्र परत्र भोगे न चात्मभोगे प्रवणो भवेयम्।
विहाय सर्वं हि विरोधिवर्गं त्वद्दासदास्यं सततं भजेयम्।9।

हे भगवन् ! ऐहलौकिक और पारलौकिक स्वर्गादि सुखों की मुझे कामना नहीं है तथा केवल आत्मानुभव कैवल्य सुख में भी हमको प्रेम नहीं है। आपके चरणसेवा के विरोधी वर्ग जितने हैं सबसे अलग होकर सदैव आपके दासों की दास्यता मैं करता रहूँ यही मेरी प्रार्थना है।

न मे जगन्नाथ विना दयायाः त्वदङ्घ्रि रामानुजपादपङ्कजम्।
त्वयैव दत्तं करुणैकसिन्धो त्वमेवमेनं किल यां कुरुष्व।10।

हे जगन्नाथ भगवन् ! आपकी दया के बिना आपके चरणकमल स्वरूप जो श्रीस्वामी रामानुजाचार्य थे उनका चरणकमल मुझे नहीं प्राप्त हो सकता था। वह आपही ने कृपा द्वारा मुझे दिया है। हे भगवन् ! आपही इस प्रकार आत्मसात् कीजिए।

मुररिपुपदपद्म कारीसूनुशठारि। षट्रिपुपदपद्म देशिकोन्द्रो यतीन्द्रः।
यतिपतिपदपद्म सौम्यजामात्रयोगी। वरवरपदपद्म मानकादेशिकास्युः।।

7 लक्ष्मी जी को भगवान्से दाहिने या बायें

पटना मण्डलीय देवकुली ग्रामवासी भक्तिसार जी ने श्रीस्वामी जी महाराज (परमहंस स्वामी) से यह प्रश्न किया था कि 'लक्ष्मी

जी को भगवान से कहीं पर दाहिने रहना और कहीं पर बायें रहना देखा जाता है' इसका वास्तविक रहस्य क्या है? उत्तर में श्रीस्वामी जी महाराज जो बतलाये थे नीचे लिखा गया है।

अखिल कोटि ब्रह्माण्डनायक सर्वतन्त्र स्वतन्त्र भगवान् यद्यपि किसी के अधीन नहीं रहते तथापि अपना भक्तपारवश्यता गुण के कारण भक्तों के अधीन रहते हैं - "**अहं भक्तपराधीनः।**" भगवान् स्वयं ही यह कहे हैं कि मैं अपने भक्तों के अधीन रहता हूँ। इसी विषय को श्रीस्वामी कुरेश जी इस प्रकार कहे हैं - "**अनन्याधीन त्वं तव किल जगुर्वेदिक गिरः। पराधीन त्वान्तु प्रणत परतन्त्रं मनुमहे।।**" भगवान् को वेदवचन अनन्याधीन अर्थात् किसी के वशीभूत नहीं बतलाया है किन्तु वे अपने प्रणत -भक्तों के परतन्त्र अवश्य हैं। अतः भक्त उनको जैसे रखे वे रहते हैं। यह तो दूसरा ही देशकाल का विषय हुआ।

यद्यपि शास्त्रों में लक्ष्मी जी को भगवान् से बायें और दायें दोनों ओर रहने का प्रमाण मिलता है-

1-"**राम वाम दिशि जानकी लषन दाहिने ओर।ध्यान सकल कल्याण कर तुलसी सुरतरु तोर।**" **2-** "**सीता समारोपित वाम भागम्।** मानस अयो. मंग्लाचरण **3**।" **3-** "**वामांके च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके।** मानस अयो. मंग्लाचरण **1**।" **4-** "**वाम भाग शोभित अनुकूला।आदिशक्ति छवि निधि जगमूला।** मानस बा. **147**।**1**।" **5-** "**जनक वाम दिशि सोह सुनयना।** मानस बा. **323**।**2**।" इन सभी प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि देवता या मनुष्यों की स्त्रियाँ वामांगी हैं। अतः स्त्रियों को पति से बाम भाग में रहना चाहिए। इसीलिए मन्दिरों में देवियों को बायें भी स्थापित देखी जाती हैं।

इसी प्रकार लक्ष्मी जी के भगवान्से दाहिने रहने के बहुत से प्रमाण हैं।

आनन्द संहिता (विखानस) में**1** - "**दक्षिणे प्रियमावाहयेत्, वामे राहिणीम्।पृ 19।**" **2-** परिषद स्थापन प्रकरण में - "**दक्षिणे श्रीः वामे हरिणीम्। पृ 57।**" **3-** भोग विधि में - "**दक्षिणे श्रियं देवीं रुक्माभां।पृ 93।**" **4-** भोगासन में "**दक्षिणे श्रियं देवीम्। पृ 95।**" **5-** वीरासन में "**दक्षिणे श्रियं देवीं वामे महीं देवीम्।पृ 96।**" **6-** प्रथमावरण में "**दक्षिणवामयोः श्रीभूसहितो विष्णुः।पृ 103।**" **7-** अर्चन में "**दक्षिणे सीतां हेमाभाम्। पृ 143।**" **8-** विमानार्चन में "**दक्षिणे रुक्माभारुक्मिणी कृष्णस्य।पृ 146।**"**9-** "**श्रीदेव्या दक्षिणे श्रीकाम।पृ 239।**" **10-** "**दक्षिणे श्रियं वामे हरिणीम्।पृ 240।**" **11-** कौतुक आवाहने "**दक्षिणे श्रियं वामे हरिणीम्। पृ 262**" **12-** स्थापने "**दक्षिणे देवी भारतीं श्वेताभां।पृ 265।**" **13-** विवाहे "**दक्षिणे श्रीदेव्या वामे मही देव्याश्चेति।पृ 275।**" **14-** विवाहे जलप्रदान काले "**देवस्य दक्षिणवामयोः देव्यो संस्थाप्य। पृ 276।**" **15-** अर्चना में "**दक्षिणे श्रीकमलां वामे मेदिनीम्।पृ 298।**" **16-** "**दक्षिणे पवित्रीमिन्दिरां लक्ष्मीमच्युतप्रियाम्।पृ 298।**" **17-** "**दक्षिणे देवीम्।पृ 367।**" **18-** "**तस्य दक्षिणे देवी श्रियम्।पृ 367।**" **19-** "**नृसिंहस्य दक्षिणे देवीं श्रिय वाम पादं समाकुञ्च्य।पृ 370।**" **20-** "**सीतारामस्य दक्षिणे।पृ 377।**" **21-** "**दक्षिणे रुक्मिणी देवीम्।पृ 381।**"। **22-** "**श्रीभूमिभ्यां सहितं पार्श्वयोः।पृ 385।**" **23-** "**बलभद्रस्य दक्षिणे रेवतीम्।पृ 385।**" **24-** "**दक्षिणवामयोः स्वाहास्वधाभ्याम्।पृ 479।**" **25-** "**दक्षिणवामयोः श्रीभूमिभ्याम्।पृ 503।**"

26- आदित्य पुराण अ. **5**, श्लो. **6-** "**लक्ष्मीपुरस्तात्पश्चाच्च दक्षिणोत्तरतश्चया।**"

27- श्रीजगन्नाथपूर्या प्रत्यक्षे विराजमानः- "**भद्रायां वामभागे रथचरणयुतम्ब्रह्मरुद्रेन्द्रवन्द्यम्।**"

28- ब्रह्म संहितायाम्- "**दक्षे भूमिसुता पुरस्तु हनुमान्वामे सुमित्रासुतः रामस्य।**"

29- धर्मशास्त्रे - "**श्राद्धे यज्ञे विवाहे च भार्या तिष्ठति दक्षिणे।**"

30- वाल्मीकिरामायणे - "**रामस्य दक्षिणे पार्श्वे पद्मा श्रीः समुपाश्रिता। सव्येऽपि च महादेवी व्यवसायस्थाग्रतः**।उ. का. **109**।**6**।"

31- भगवान जहां तीनों देवियाँ (श्रीदेवी, भू देवी, नीला देवी)के साथ रहते हैं वहाँ श्रीदेवी प्रधान और दाहिने रहती हैं। दो देवियों के साथ में श्रीदेवी दाहिने और भू देवी बायें, जहाँ पर भगवान के साथ एक ही देवी हैं वह श्रीदेवी हैं और दाहिने ही रहती हैं।

32- विष्णु पुराण में - "**यथा सर्वगतः विष्णुस्तथैवेयं द्विजोत्तम्।प.** पु. **1**।**8**।**17**।" श्रीरामजी के समान ही सीता भी सर्वव्यापी का ईश्वरी तत्त्व हैं।

33- भगवान् जगत्-पिता हैं और लक्ष्मी जगन्माता हैं।"**मातरं प्रथमं पूज्या पितरस्तदनन्तरम्।**" "**पितुर्शतगुणं माता गौरवेणातिरिच्यते।**" पिता की अपेक्षा माता का महत्व बड़ा है। अतः पिता की पूजा से माता की पूजा प्रथम करे।

भगवान्के वाम, सम्मुख और पृष्ठ भाग से साष्टांग प्रणाम न करे, केवल दाहिने भाग से ही करना चाहिए। "**अग्रे पृष्ठे वामभागे संमुखे गर्भमन्दिरे। जपहोमनमस्कारान्न कुर्यात् केशवालये।**" शरणागति काल में लक्ष्मी के पुरुषकारयुक्त शरणागति करने का विधान है। इसके बिना शरणागति सफल नहीं होती है। लक्ष्मी भगवान् के दाहिने रहेंगी तभी तो साष्टांग प्रणाम करने के समय भगवान्के दाहिने गिरेंगे तो लक्ष्मी दोनों हाथों से शरणागत को उठाकर भगवान् के चरणों में अर्पण कर कहेगी कि "**एनं रक्ष जगन्नाथ बहुजन्मापराधिकनम्।**" जैसे जयन्त के लिए कहीं थीं "**वधार्हमपि काकुत्स्थ कृपया परिपालय**। वा. रा. सु. काण्ड **38**। **35**।"

34- सद्ग्रन्थों के प्रवल प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध है कि शेष लक्ष्मण जी जीव कोटि में हैं और लक्ष्मी सीताजी जीवकोटि से उत्कृष्ट विलक्षण तथा ईश्वर कोटि में हैं। इसीलिए लक्ष्मी सीता को प्रधान मानकर भगवान् उनको हृदय में रखते हुए अपने दाहिने रखते हैं और इनसे न्यून जीवकोटि में लक्ष्मण (शेष) को रहने के कारण उनको वाम भाग में रखते हैं। शरीर के दोनों भागों में दायाँ भाग उत्कृष्ट माना जाता है।
भगवत्पूजन में दो ही पद्धति निर्दिष्ट है - **1**। पाञ्चरात्र शास्त्र "**पाञ्चरात्रस्य शास्त्रस्य वक्ता नारायणः स्वयम्।**" **2**। वैखानस (ब्रह्मा द्वारा चलायी हुई पद्धति)। इन दोनों पद्धतियों में परस्पर सांकर्य दोष नहीं आना चाहिए। **पाञ्चरात्रोक्तेन मार्गेण पूज्यमाने प्रतिष्ठिते। वैखानसः पूजिते तु प्रतिष्ठां पुनराचरेत्।।** अर्थात् पंचरात्र शास्त्र की विधि के अनुसार प्रतिष्ठित मूर्ति की पूजा वैखानस पद्धति से नहीं होनी चाहिए। यदि ऐसा किया गया तो पुनः प्रतिष्ठा की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार वैखानस विधि से प्रतिष्ठित मूर्ति की पूजा पञ्चरात्र शास्त्र की विधि से नहीं होनी चाहिए। ऐसा करना ही संकर दोष कहलाता है।
पञ्चरात्र विधान उत्तम है और वैखानस मध्यम। पञ्चरात्र संहिता में "दक्षिणे च महालक्ष्मीस्तस्य पार्श्वे द्वयेऽपि च।"
भगवान् के दाहिने महालक्ष्मी हैं और दोनों पार्श्व (बगल) में भूदेवी और नीला देवी हैं।
35- "**वामाङ्कस्था भूदेवी तस्य देव स्वरूपिणी। दक्षिणे तस्य श्रीश्चैव सदृशी गुणभूषिता।।**"
36- ब्रह्मवैवर्त पुराण के कृष्ण खण्ड के अ. **6** - "**कृष्णस्य वामे वाग्देवी दक्षिणे कमलालया। पुरतो देवता सर्था पार्वती चैव नारद।**"
37- आश्वलायन गृह्यसूत्र में मनुष्यों के लिए भी "**आत्मनो दक्षिणे पार्श्वे वधूनामुपवेश्य च।**" विवाह प्रकरण में वधू को दाहिने रखने का विधान है।
38- प्रतिष्ठा पद्धति में भी "**ॐ श्रियै नमः इति दक्षिणे श्रियम् वामे भूमीम्पुरतो नीलाम्।**"
39- धर्मशास्त्रे "**सीमन्ते च विवाहे च तथा चातुर्थ्य कर्मणि। मखे दाने व्रते होमे पत्नी दक्षिणतो भवेत्।।**
सर्वेषु शुभकार्येषु पत्नी दाक्षिणतो शुभाः। अभिषेके विप्रपादप्रक्षालने चैव वामतः।।" सीमान्तसंस्कार, विवाह, चतुर्थी कर्म, यज्ञ-व्रत और होम इन कार्यो में पत्नी पतिदेव से दाहिने रहती है और अभिषेक (आशीर्वाद ग्रहण) में, ब्राह्मणों का पाँव धोने में वाम भाग में।
40- वृद्धहारीत स्मृति में "**चिन्तये दक्षिणे पार्श्वे लक्ष्मी कांचनसन्निभाम्।**" पूजन काल में लक्ष्मी को भगवान से दाहिने रखने का विधान है।
41- सामान्य शास्त्र, सामान्य धर्म और सामान्य कर्म की अपेक्षा विशेष शास्त्र, धर्म और कर्म बलवान होता है।
इस नियमानुसार लक्ष्मी को भगवान् के वाम भाग में रखने का प्रमाण जो कुछ शास्त्रों में आया है वह शास्त्र सामान्य शास्त्र है और उसकी मान्यता नहीं है। विशेष शास्त्रों में अधिक प्रमाण लक्ष्मी को दाहिने रहने ही का है। विशेष शास्त्र की ही मान्यता है।
42- हारीत संहिता "**वरदं पुण्दरीकाक्षं वामाङ्कस्थं श्रियं हरिम्**। श्लो. **136**।
43- ब्रह्म संहिता संस्कार विधि प्रकरण में "**एवं सम्पूज्य देवेशं श्रीदेवी दक्षिणे यजेत्। भूदेवी वामतः पूज्या लीला चाग्रे समर्चयेत्।।**"
44- "**दक्षे भूमिसुता परस्तु हनुमान्वामे सुमित्रासुतः।**"
45- व्याघ्रपात्स्मृति में "**कन्या दाने विवाहे च प्रतिष्ठायज्ञकर्मणि। सर्वेषु धर्मकार्येषु पत्नीदक्षिणतः स्मृता।।**"
46- "**दक्षिणे वसति पत्नी हवने देवतार्चने। जातकर्मादिकर्माणां कर्मकर्तुश्च दक्षिणे।।**
श्राद्धे पत्नी च वामांगे पादप्रक्षालने तथा। नान्दी श्राद्धे च सोमे च मधुपर्के च दक्षिणे।।"
कन्या दान, विवाह, देवप्रतिष्ठा, यज्ञ, होम, देवपूजन, जातकर्म, नान्दीश्राद्ध, सोमपान और मधुपर्क में स्त्री को कर्त्ता से दाहिने और श्राद्ध, पादप्रक्षालन में बायें रहनी चाहिए।

यह शास्त्रीय उत्तर सुनकर भक्तिसार जी तथा अन्य श्रीवैष्णव लोग बड़े प्रसन्न हुए।

8। परगत शरणागति

एक बार श्रीस्वामी जी महाराज वैदराबाद (अरवल- गया) की ठाकुरवाड़ी में पधारे हुए थे। वहाँ के श्री वैष्णवों को भगवान् एवं भागवतों में अपार श्रद्धा प्रेम था। श्री गरुड़ध्वज जी और कमलनयन जी श्रीस्वामी जी महाराज की चरण सेवा कर रहे थे। श्रीमुख से श्रीवैष्णव सदुपदेश हो रहा था। अवसर पाकर श्रीगरुड़ध्वज जी श्रीस्वामी जी महाराज से प्रेमपूर्वक बोले - महाराज ! भगवत्कृपा का लक्षण क्या है ? श्रीस्वामी जी महाराज से उत्तर मिला - "**जब द्रवहिं दीन दयाल राघव साधु संगति पाइये**। विनय प. 136।10।" "**बिनु हरि कृपा मिलहिं नहीं सन्ता**। मानस सु. 6।2।" "**सत्संगति संसृति कर अन्ता**। मानस उ. 44।3।" यदि सज्जनों से संगति हो तो भगवान्‌की कृपा का उदय समझना चाहिए।

अजामिल दुर्भाग्यवश पापी हुआ था। एक बार उसके द्वार पर कुछ साधु आकर टिक गये थे। उन्हीं साधुओं की संगति से अजामिल की स्त्री ने अपने पुत्र का नाम नारायण रखा जो अजामिल की मुक्ति का कारण हुआ। बाल्मीकि सन्तों की संगति एवं सदुपदेश से ही महर्षि बन गये। भगवान्‌की कृपा से ही नारद को साधुओं का सम्पर्क हुआ था। जिससे वे भी भगवद्भक्त बने। "**सो जानव सत्संग प्रभाऊ। लोकहुं वेद न आन उपाऊ**। मानस बा. 2।3।"

इसी प्रकार - "**सत्संगेन हि दैतेया जातुधाना खगा मृगा**। भा. 7।7।54।" प्रह्लाद ने दैत्यपुत्रों से कहा है कि सत्संग द्वारा पशुपक्षियों का भी संसारबन्धन छूटता है। ज्ञानी मनुष्यों के लिए तो कहना ही क्या है। भगवान्‌की कृपा से भागवत मिलते हैं, भागवत की कृपा से आचार्य और आचार्य की कृपा से भगवान् प्राप्त होते हैं अर्थात् संसार से निवृत्ति हो जाती है। यही भगवान्‌की कृपा का लक्षण और फल है।

9। भगवान्‌की निर्हेतुक कृपा

श्री कुरेश स्वामी जी का कहा हुआ है - "**वंशंरघोरनुजिघृक्षुरिहावतीर्णो दिव्यैर्ववर्षिथ तथाऽत्र भवद्गुणौघैः**। अतिमानुष 30।" भगवान् श्रीरामचन्द्र जी ने जब अवतार लेना चाहा तो अवतार के पूर्व कल्याणादि दिव्य गुणों की वर्षा द्वारा अयोध्या को दिव्य ज्ञानमय बना दिया था जिससे वहाँ के तृण वृक्षादि भी श्रीरामजी के वियोग काल में मुरझा गये थे - "**वृक्षा श्चतान्तिमलभन्त भवद्वियोगे**। अतिमानुष 30।" वृक्षादि ने सब दिव्यज्ञान की वर्षा के लिए भगवान् को प्रेरित नहीं किया था किन्तु उनकी निर्हेतुकी कृपा हो गयी जिससे सबों में दुःख सुख में दुःखी सुखी होने का ज्ञान हो गया था। "**सरिता सर गिरि औ घट घाटा। पति पहिचानि देहिं वर वाटा**। मानस अरण्य 6।2।" "**सब तरु फरै राम हित लागी। ऋतु अनऋतु काल गति त्यागी**। मानस लंका 4।3।"

शुकदेव जी की छाया पड़ने से सभी वृक्ष ज्ञानी हो गये थे। उन सबों की जड़ता दूर हो गयी थी। इसीलिए जब व्यास शुकदेव को खोजते हुए जंगल में पहुँचे तो - "**यत्त्वत्प्रियं तदिहं पुण्यमपुण्यमन्यत्**। अतिमानुष 53।" ज्ञानमय सभी वृक्षों ने उनको स्पष्ट उत्तर दिया। भगवान्‌की निर्हेतुकी कृपा द्वारा ही वृक्षादिकों की अनिच्छया भी शुकदेव संत मिल गये। प्रकृति का स्वभाव अधोगामिनी है। चेतन भगवान्‌को नहीं चाहता है किन्तु भगवान् अपनी कृपा द्वारा चेतनों को अपनाते हैं। यही उनका स्वभाव है जो कभी छूटता नहीं है।

भगवान्‌की कृपा नीचे से डोरी द्वारा जल निकालने की भाँति अधोगत चेतनों को ऊपर लाकर उनकी शरण में लगाती है। इसी से कहा है - "**हरिर्दयामहैतुकीम्**।" भगवत्प्राप्ति के हेतु या साधन अनेक हैं - कर्म ज्ञान भक्ति आदि। कर्म के दो भेद हैं। एक पुण्यजनक शुभ कर्म और दूसरा पाप जनक अशुभ कर्म। पुण्य का फल स्मृतियों में स्वर्ग एवं पाप का फल नरक कहा गया है किन्तु ये सभी भगवान्‌की इच्छा पर ही निर्भर हैं। पुण्य और पाप का यह भी लक्षण है - "भगवान्‌का प्रिय पुण्य और अप्रिय पाप है।"

पूतना का पाप भगवान्‌को विष पिलाना, शिशुपाल का पाप भगवान्‌को गाली देना था, किन्तु सबके निमित्त भगवान्‌ही थे , अतः "**मनिमित्तं कृतं पापं तद्धर्माय च कल्पते।**" इस नियम के अनुकूल उन पापियों को भी मोक्ष मिला। ऐसा क्यों न हो, "**तद्गुणसारत्वात्तु तद्व्यपदेशः ......** ।ब्र. सू. **2**।**3**।**29**।" भगवान में निर्हेतुकी कृपा करने का गुण ही सार है। यदि सहैतुकी कृपा मानें तो विरोध पड़ेगा क्योंकि "**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन**।गी. **2**।**47**।" भगवान् कहते हैं कि कर्म करने का ही मनुष्यों को अधिकार है फल चाहने का नहीं। अर्थात् कर्म का फल देना या नहीं देना, कम देना, अधिक देना, पूर्व संचित कर्मो का फल नहीं भोगना इत्यादि सब मेरी इच्छा पर निर्भर है। इसमें प्राणियों का कोई अधिकार नहीं है। कर्मो का फल अनन्त है।

"**यद्ब्रह्मकल्प नियुतानि भवाप्यनाशं, तत्किल्विषं सृजति जगद्धेतुरिह क्षणार्द्धे।एवं सदा सफल जन्मसु सापराधम्।।**"
अर्द्धक्षण में किया हुआ कर्म का फल ब्रह्मा के नियुत संख्या के वर्षो में भी भोगने से नाश होनेवाला नहीं है। पूर्वसंचित कर्मफल के सम्बन्ध में कहना ही क्या है। अतः कर्म करके उसके फल द्वारा भगवत्प्राप्ति होगी ऐसा सोचना अज्ञानता है। इसलिएउनकी निर्हे तुकी कृपा की ही आशा रखनी चाहिए। निर्हेतुकी कृपा प्रदान में भी गुण ही कारण है। श्री राम जी ने मार्ग याचनार्थ समुद्र की शरणागति की किन्तु उसमें शरण्य गुण नहीं था, अतः उक्त कार्य नहीं हो सका। श्री राम जी में शरण्य गुण था, अतः जयन्त जैसे अपराधी को भी क्षमा मिली है। भगवती सीता का वचन है – "**विदितः सर्वधर्मज्ञः शरणागतवत्सलः**।वा. रा. सुन्दर **21**।**20**।" आश्रितों के कल्याण में शरणागत वत्सलता गुण कारण है। शमदमादि गुणों द्वारा अपराधियों का अपराध क्षन्तव्य होता है। भगवान्‌में सभी गुण दया के अधीन है। दया कोमलता से होती है। अर्थात् कोमल हृदय वाले व्यक्ति में दया होती है। दया से क्षमा होती है। इसीलिए कहा है – "**क्षान्तिस्ते करुणा सखी विजयताम्।**" सृष्टि करने में भी भगवान् की स्वतन्त्रता ही प्रधान है, प्रेरक दया है। "अचिदविशेषितां प्रलय सीमनि संसरतः करण कलेवरैर्घटयितुं दयमान मनाः।" "**तदैच्छत बहुस्याम प्रजामेय।**" "**यस्मिन् यतो येन च यस्य यस्मै यद्यो यथा कुरुते कार्यते च।परावरेषां परमं प्राक्प्रसिद्धं तद्ब्रह्म तद्धेतुरनन्यदेकम्**।भा. 6।4।30।" "**सर्वकारणकारणम्।**" परमात्मा कर्त्ता कर्मादि सब स्वयं है न कि अन्य कोई। "**ॐ नमो नारायणाय पुरुषाय महात्मने।**" "**यस्य नाम महद्यशः।**"
"**ब्रह्महा पितृहा गोत्रो मातृहाचार्यहाघवान्। श्राद्धः पुल्कसो वापि शुद्धयेरन् यस्य कीर्तनात्।।**"
"**तपस्विनो दानपरा यशस्विनो मनस्विनो मन्त्रविदः सुमंगलाः। क्षेमं न विन्दन्ति विना यदर्पणं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः।।**"
कल्याण अर्थात् मुक्ति अन्यान्य किन्हीं साधनों से नहीं होती है। इसीलिए अर्पण शब्द से आत्मसमर्पण (शरणागति) कहा है।

"**श्रुतेन तपसा वा किं वचोभिश्चित्तवृत्तिभिः।बुद्धया वा किं निपुणया बलेनेन्द्रियराधसा।।**
किं वा योगेन सांख्येन न्यासस्वाध्याययोरपि। किं वा श्रेयोभिरन्यैश्च न यत्रात्मप्रदो हरिः।।
श्रेयसामपि सर्वेषामात्मा ह्यवधिरर्थतः। सर्वेषामपि भूतानां हरिरात्माऽऽत्मदः प्रियः।।भा. **4**।**31**।**11-13**।"
नामोच्चारणमाहात्म्यं हरेः पश्यत पुत्रकाः। अजामिलोऽपि यैनैव मृत्युपाशादमुच्यत। भा. **6**।**3**।**23**।"

संसार में किसी प्रकार के ऐशवर्य शक्ति आदि प्राप्त करने में कोई लाभ नहीं हो सकता है यदि प्राणी भगवान्‌का भक्त नहीं बना हो।
"**यत्र येन यतो यस्य यस्मै यद्यद्यथा यदा। स्यादिदं भगवान्साक्षात् प्रधानपुरूषेश्वरः** ।भा. **10**।**85**।**4**।"
प्राणियों के लिए सर्वविध कल्याणकर्त्ता नारायण ही हैं। "**त्वमकरणः स्वराडखिलकारक शक्तिधरः ......** ।भा. **10**।**87**।**28**। वेद स्तुति।" इसी प्रकार महाभारत युद्ध का प्रेरक बनना तथा उसमें एक पक्ष का सारथी बनना, गीता का उपदेश द्वारा जनकल्याण करना आदि निर्हेतुकी कृपा ही है। "**लोकवत्तु लीला कैवल्यम्**। ब्र सू **2**।**1**।**33**।" सृष्टि लीला में कोई प्रयोजक नहीं है वल्कि अपनी निर्हेतुकी कृपा ही कारण है। "**श्रीशाहेतु कृपा...**।श्रीवचनभूषण।" श्री स्वामी लोकाचार्य का कहना है कि श्री का ईश की अहैतुकी कृपा होती है। "**हरिं दयामहैतुकीम्...**।श्रीवचनभूषण।"
"**हेतु रहित जग जुग उपकारी।तुम तुमार सेवक असुरारी** ।मानस उ. का. **46**।**3**।" "**कबहुँ कि करि करूना नर देही। देत ईश बिनु हेतु सनेही।** मानस उ. का. **43**।**3**।" "**अस प्रभु दीनबन्धु हरि कारण रहित कृपाल।तुलसीदास सठ ताहि भज छाड़ि कपट जंजाल**।मानस बा. का. **211**।" "**बिनु सेवा जो द्रवै दीन पै राम सरिस कोउ नाहीं**।विनय प. **162**।" विना सेवा ही भगवान् कृपा करते हैं। "**यस्मिन्यतो यर्हियेन च यस्य**

यस्मादयस्मै यथा यदुत यस्त्वपरः परो वा। भावः करोति विकरोति पृथक्स्वभावः संचोदितस्तदखिलं भवतः स्वरूपम्। भा. 7।9।20।"

इस संसार में जो कुछ भी कार्य देखा जाता है उसके जो भी कर्त्ता हैं वे सभी आपकी प्रेरणा पाकर ही किया करते हैं। अतः सहैतुकी कृपा का कोई आधार प्राणी रह ही नहीं जाता जिससे कहा जाय कि भगवान्‌की सहैतुकी कृपा होती है।

"नान्यथा तेऽखिल गुरो घटेत करुणात्मनः। यस्य आशिष आशास्ते न स भृत्यः स वै वणिक्।।

आशासानो न वै भृत्यः स्वामिन्याशिष आत्मनः। न स्वामी भृत्यतः स्वाम्यमिच्छन्यो रति चाशिषः। भा. 7।10।4-5।

जो मनुष्य सेवा के बदले स्वामी से अपनी कामनाओं की पूर्त्ति चाहता है वह सेवक नहीं वल्कि लेन-देन करने वाला बनिया है और जो स्वामी सेवा के लिए स्वामी बनता हो वह स्वामी नहीं है। "**अहं त्वकामस्त्वद्भक्तस्त्वं च स्वान्यनपाश्रयः। नान्यथेहावयोरर्थो राजसेवकयोरिव**। भा. 7।10।6।" सेवक को चाहिए कि निष्कामभाव से अपना कर्त्तव्य समझकर भगवान्‌की सेवा करे जैसे स्त्री पुत्र अपने पति और पिता की सेवा करते हैं। स्वामी में ऐसा उदार गुण होना चाहिए।

"**दातुं नालं वशंगतः**" भक्त को देने योग्य अवशिष्ट कुछ नहीं रहने पर भगवान् भक्त के वश हो जाते हैं। पिता जैसे पुत्र को अपनी सारी सत्ता देकर भी चाहता है कि और कुछ होता तो उसे देते। इस प्रकार भगवान् का सर्वस्व भक्त का है और भक्त सर्वस्व भगवान्‌का है। भक्तों के उद्धार में भगवान् की निर्हेतुकी कृपा की प्रधानता है। इनमें प्रकृति द्वारा सम्पन्न क्रिया को अपना मानना तथा भगवान्‌की कृपा को अपना कर्म का फल मानने से ऐसा मानना महान भूल है। "**सत्संगादभव निस्पृहो गुरुमुखाच्छ्रीशं प्रपद्यात्मवान्**।" सत्संग द्वारा संसार से स्नेह रहित होकर मनुष्य नारायण को प्राप्त कर आत्मवान् अर्थात् आत्मस्वरुप ज्ञानी हो जाता है। "**सत्संगति संसृति कर अन्ता**। मानस उ. 44।3।" किन्तु "**बिनु हरि कृपा मिलहि नहिं सन्ता**। मानस सु. 6।2।" इन्द्र ने प्रह्लाद की माता कयाधु को गर्भावस्था में विनष्ट करने की इच्छा से पकड़ा था किन्तु तत्काल ही नारद जी वहाँ आ गये और उससे उसको छुड़ाये - "**यदृच्छयाऽऽगतस्त्र देवर्षिर्ददृशे पथि**। भा. 7।7।7।" कयाधु ने नारद के समीप में रहकर पवित्र कथा सुनी जिसके प्रभाव से ज्ञानी प्रह्लाद उत्पन्न हुए। इसी से कहा है - "**जब द्रवहिं दीनदयाल राघव साधु संगत पाईये**। विनय. प. 136।10।" परीक्षित को संत शुकदेव मिले थे- "**तत्रोपजग्मुर्भुवनं पुनाना महानुभावा मुनयः स शिष्याः। प्रायेण तीर्थाभि गमापदेशैः स्वयं हि तीर्थानि पुनन्ति सन्तः**। भा. 1।19।8।" "**तत्राभवद् भगवान्व्यासपुत्रो यदृच्छया गामटमानोऽनपेक्षः। अलक्ष्यलिङ्गो निजलाभतुष्टो वृतश्च वालैरवधूतवेषः**। भा. 1।19।25।"

जैसे माता- पिता पुत्र के जनन पालन में तत्पर रहते हैं किन्तु पुत्र निरपेक्ष रहता है। उसी प्रकार भगवान् सृष्टि पालन एवं कल्याण आदि कार्यों में सदा संलग्न रहते हैं, तब परमात्मा उपाय नहीं बनते। जैसे -"**प्रौढ़ भये तेहि सुत पर माता। प्रीति करै नहीं पाछिल बाता**। मानस अरण्य 42।4।" अबोध बच्चे के ऊपर माता-पिता का सतत ध्यान रहता है और प्रौढ़ों के लिए कभी नहीं।

"मामेकं शरणं ब्रज। गी 18।66।" भगवान्‌की ऐसी प्रतिज्ञा सुनकर भी यदि चेतन उपाय अपना करता है और मानता है तो उसके लिए भगवान् उपाय नहीं रहते। जैसे हुनमान् का ब्रह्मास्त्र बन्धन अन्य बन्धनों के लगने पर स्वयं छूट गया। रावण के धनुष- मूठ सहायक न होकर घातक बन रही थी। यह रहस्य जब रावण ने जाना कि मेरे हाथ में धनुष की मूठ है इसीलिए भगवान्‌का बाण अभी तक मेरे ऊपर चल रहा है यद्यपि मेरा धनुष भग्न हो गया है। तव उसने उसको फेंका - "**चचाल चापं च मुमोच वीरः**। वा. रा. युद्ध 59।139।" तव भगवान्‌का बाण चलना बन्द हो गया।

मथुरा की स्त्रियों पर भगवान् की कृपा हुई तो स्वयं गोपबालों को भेजकर उन सबों की सेवा स्वीकार की। इसी प्रकार मालाकार, कुब्जा, दर्जी आदि पर भगवान् की निर्हेतुकी कृपा हुई थी। जनक विदेह के समीप स्वयं नव योगेश्वर आये जिनके उपदेश द्वारा उन्हें मुक्ति मिली थी।

"**सत्वात्सञ्जायते ज्ञानम्**। गी. 14।17।" सतोगुण के अधिष्ठाता देव विष्णु हैं। उन्हीं की प्रेरणा से अन्तःकरण में सतोगुण का उद्रेक होता है जिससे ज्ञान उत्पन्न होता है और चेतन कहता है कि मैं भगवान्‌का हूँ, अतः शरणागति करता है। यह सब मनुष्य ही कर सकता है अन्य प्राणी नहीं। अतः कहा गया है - "**हरि तुम बहुत अनुग्रह कीन्हौं। साधन धाम देव दुर्लभ तनु मोहि कृपा कर**

दीन्हौं। विनय. प. 102।" यही भगवान की कृपा है।

मूल मन्त्र "ॐ नमो नारायणाय।" इसमें नमः पद का अर्थ कर्तृत्वाभिमान छोड़ने में है। "**ममेति द्वयक्षरं मृत्युर्नममेति च शाश्वतम्।**" अर्थात् अहं (अहंकार) मम (ममकार) 'मैं और मेरा' ऐसी बुद्धि रहने से नरक होता है और '**न तो मैं कर्त्ता हूँ और न अपने निमित्त ही कुछ हूँ**' ऐसी भावना से शाश्वत - पद वैकुण्ठ प्राप्त होता है। भाव यह है कि भगवान् ही स्वयं प्रेरक होकर सब कुछ हमसे करवाते हैं। वे ही कुछ निमित्त मानकर या स्वयं निमित्त बनकर अपनाते हैं। "**उर प्रेरक रघुवंश विभूषण** । मानस उ. 112।1 ।" "**ई श्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन् सर्व भूतानि यन्त्रारुढ़ानि मायया** । गी. 18।61।" "**अस विवेक जब देई विधाता। तब तजि** दोष **गुणहिं मन राता** । मानस वाल 6।1।" "**सो जानई जेहि देहु जनाई। जाने तुमहि तुमहि होई जाई** । मानस अयो. 126।2।"

"**तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्।**

हृद्वागपूर्भिर्विदधन्नमस्ते जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक् । भा. 10।14।8।"

व्यक्ति अपनी निर्हेतुकी कृपा की कामना क्षण-क्षण करते हुए पूर्व कर्मविपाकों को भोगते हुए आपकी शरणागति करता है वह मुक्त हो जाता है। "**येषां स एव भगवान्दययेदनन्तः सर्वात्मनाऽऽश्रित पदो यदि निर्व्यलीकम्। ते दुस्तरामतितरन्ति च देवमायां नैषां ममाहमिति धीः श्वश्रृगालभक्ष्ये।** भा. 2।7।42।" जिसपर भगवान्की कृपा होती है वह अपना सर्वस्व और अपने आपको भगवान्के चरण कमलों में समर्पित कर देता है जिससे वह दुस्तर माया को पार कर जाता है। ऐसा व्यक्ति कुत्ता-श्रृगाल के भक्ष्य शरीर में मैं और मेरा भाव नहीं किया करते हैं।

"**वेदाहमङ्ग परमस्य हि योगमायां यूयं भवश्च भगवानथ दैत्यवर्यः।**

पत्नी ।नोः स च मनुश्च तदात्मजाश्च प्राचीनबर्हिऋभु रङ्ग उत ध्रुवश्च । भा. 2।7।43।

इक्ष्वाकुरैलमुचुकुन्दविदेह गाधिरध्वम्बरीषसगरा गयनाहुषाद्याः।

मान्धात्रलर्कशतधन्वनुरन्तिदेवा देवव्रतो बलिरमूर्त्तरयो दिलीपः । भा. 2।7।44।

सोमर्युतङ्कशिबिदेवलपिप्लाद सारस्वतोद्धवपराशरभूरिषेणाः।

येऽन्ये विभीषणहनूमदुपेन्द्रदत्त पार्थार्ष्टिषेणविदुरश्रुतदेववर्याः । भा. 2।7।45।

ते वै विदन्त्यतितरन्ति च देवमायां स्त्रीशूद्रहूण शबरा अपि पापजीवाः । भा. 2।7।46।"

भगवान्की योगमाया को नारद, शंकर, प्रह्लाद, शतरूपा, मनु, मनुपुत्र प्रियव्रत आदि, प्राचीनबर्हि, ऋभु, ध्रुव, इक्ष्वाकु, पुरुरवा, मुचुकुन्द, जनक, गाधि,रघु, अम्बरीष, सगर, गय, ययाति, मान्धाता, अलर्क, शतधन्वा, अनु, रन्तिदेव, भीष्म, बलि, अमूर्तरय, दिलीप, सौभरि, उत्तङ्क, शिवि, देवल, पिप्लाद, सारस्वत, उद्धव, पराशर, विभीषण, हनुमान्, शुकदेव, अर्जुन, आर्ष्टिषेण, विदुर और श्रुतदेव आदि महात्मा जानते हैं। इसके अतिरिक्त शिक्षित स्त्री, शूद्र, हूण, भील, पाप के कारण होने वाले पशु-पक्षी भी माया का रहस्य जानते हैं।

जीव जिस समय माता के गर्भ में रहता है उस समय भगवान्के दिए हुए शुद्धज्ञान की अवस्था में - "तत्र लब्धस्मृतिर्दैवात्कर्म जन्मशतोद्भवम्। भा. 3।31।9।" "......युक्तया कया महदनुग्रहमन्तरेण। भा. 3।31।15।" आपके महान अनुग्रह विना इस बन्धन से छूटने का दूसरा कोई उपाय नहीं है। जीवात्मा को परमात्मा स्वयं ज्ञान देकर इस प्रकार कहवाते हैं। इसी को श्रीस्वामी लोकाचार्य जी ने कहा है कि "स्वयमलंकारयति धारयति। श्रीवचनभूषण सूत्र 59।"

जैसे राजा स्वयं पुष्पवाटिका लगवाते हैं और उसके फूलों की माला बनाकर स्वयं चेतनों को दिव्य ज्ञान देकर उन सवों से मुक्ति का उपाय करवा कर उन सबों को मुक्त कर पश्चात् सेवा लेते हैं।

"**यो ब्रह्माणां विदधाति पूर्व यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।**" परमात्मा स्वेच्छा से ब्रह्मा को उत्पन्न कर संकल्प द्वारा उनको वेद का ज्ञान करा देते हैं। इसमें किसी की प्रेरणा नहीं होती है। इसी प्रकार चेतनों के प्रति भी उनकी कृपा होती है। "**अनुग्रहायात्मवतामनुकम्पयातपोव्यक्त गतिश्चरति।**" अनुकरण करवाने के लिए ही परमात्मा ने नर को वदरिकाश्रम में मन्त्र दिया है और वहीं स्वयं तपस्या भी कर रहे हैं। यह परम्परा आज तक चली आ रही है। इसी को सुदामा जी ने कहा है "**पर्जन्यवत्तत्**

स्वयमीक्षमाणः ।भा. 10।81।34।" मेघ जैसे स्वयं जल दिया करता है वैसे ही परमात्मा की कृपा होती है। ब्रह्मा की याचना प्रार्थना के बिना ही स्वयं परमात्मा ने उनको शरणागत बनाया था। "**स्वचक्रेणांकयित्वा तु ददौ मन्त्रं स्वयं हरिः** ।प. पु.उ. 223।68।।" स्वयं शब्द का यही भाव है स्वेच्छा से उनको जन्म देना, शरणागत बनाना, वेद पढ़ाना आदि हुआ है। इसी से ब्रह्मा ने कहा है कि "**ममाप्यखिललोकानां गुरुर्नारायणो हरिः**।" "**नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैष वृणुते तन लभ्यस्तस्येष विवृणुते तनुँ स्वाम्** ।कठोपनिषद 1।2।23। एवं मुण्डकोपनिषद 3।2।3।" प्रवचन, उत्कृष्ट बुद्धि, वहुश्रुत आदि साधनों से परमात्मा नहीं प्राप्त होते हैं। यह परगत शरणागति है।

"**लौकिकं वैदिकं त्यक्त्वा परमं वैदिकं बुधः। अवलम्ब्यानुसन्दध्याद्विष्णोः शेषत्वमात्मनः।।**
द्वयं हि सर्वसुलभमाचरन्न ह्यपेक्षते। उपायशून्यतां वीक्ष्य ददाति परमं पदम्।।"

श्री स्वामी लोकाचार्य जी ने श्रीवचनभूषण में कहा है कि – "**विमुखानां चेतनानां वैमुख्यं दूरीकृत्य रुचिमुत्पादयति रुच्युत्पत्तौ उपायो भवति। उपायपरिग्रहकृते भोग्यो भवति उपायगृहीते तु स्वयं भोग्यः प्रजायते** ।श्रीवचनभूषण सूत्र 47।"

" **उपायत्वेन चेदेषा दृष्टा स्याज्जनकस्यहि। पुत्रेण लेखनस्वीकारसदृशं वर्तते तदा**। श्रीवचनभूषण सूत्र 61।" यथा पुत्र पैतृक सम्पत्ति को पिता के द्वारा स्वीकृत पत्र लिखने पर अपना माने। स्वगत शरणागति में – उपाय बुद्धि से शरणागति में यही दोष होगा।

"**स्वयत्ननिवृत्तिः पारतन्त्र्यं फलम्। स्वप्रयोजन निवृत्तिः शेषत्वफलम्**। श्रीवचनभूषण सूत्र 76।
उपायस्य शक्तिर्लज्जा यत्नश्च त्याज्याः।उपेयस्य प्रेम स्वोपेक्षाधारणा भावश्चापेक्षिताः। श्रीवचनभूषण सूत्र 91।"

उपेय के लिए प्रेम, अपने शरीर का अनादर और शरीर धारण आसक्ति ये तीनों चाहिए।

"उपायत्वानुसन्धानं निवर्तकं उपेयत्वानुसन्धानं प्रवर्तकम्। श्रीवचनभूषण सूत्र 93।" "**कृपारुचिं जनयति आचारोभयं जनयति**। श्रीवचनभूषण सूत्र 112।" "स्वगत स्वीकारानुपायत्वम्। परगतस्वीकारोपायत्वं च दर्शितम्।।" "**हृदये प्रविश्य स्वविषय आदरं प्रवाहयत्।**" **संसार निवृत्ति पूर्विकायाः स्वप्राप्तेः स्वयमुपायत्वम्** (भट्टर स्वामी)। स्वयत्न छोड़ना परतन्त्रता का फल है।स्वप्रयोजन छोड़ना शेष का फल है। स्वगत स्वीकार मानना अनुपाय हो जाना है अर्थात् निष्फल हो जाता है। परगत शरणागति उपाय होती है अर्थात् सफल होती है। कदर्य ने कहा है – "**नूनं मे भगवांस्तुष्टः सर्वदेवमयो हरिः। येन नीतो दशामेतां निर्वेदश्चात्मनः प्लवः** ।भा. 11।23।28।" हम पर भगवान् की दया है जिससे हमारे धनादि का अपहरण हुआ। यही दीनदशा हमको संसार समुद्र से निकालने वाली नौका हुई। "**यस्याहमनुगृह्णामि शनैः वित्तं हराम्यहम्** ।भा 10।88।8।" भगवान् कहते हैं कि जिसको हम अपनाते हैं उसका धनादि अपहृत कर लेते हैं। यह विषय सुनकर सबलोग प्रसन्न हुए और कथा समाप्त हुई।

-ः समाप्त ः-

श्रीमते रामानुजाय नमः

तरेत स्थानाधीश अनन्त श्री -

स्वामी राजेन्द्र सूरिजी
महाराज की संक्षिप्त जीवनी

(तृतीय खण्ड)

राम रहस्य

लेखक
श्री स्वामी परांकुशाचार्य
सरौती स्थानाधीश

श्री पराङ्कुश ग्रन्थमालायाः एकादशं सरोजम्

द्वितीय संस्करण शरत्पूर्णिमा सम्वत् **2043**

प्रकाशक -
श्रीपरांकुश संस्कृत-संस्कृति-संरक्षा परिषद्
हुलासगंज (गया)

मुद्रक -
श्री स्वामी पराङ्कुशाचार्य प्रेस
हुलासगंज (गया)

प्राप्तिस्थान -
श्रीपरांकुश संस्कृत-संस्कृति-संरक्षा परिषद्
हुलासगंज (गया)

मूल्य **2** रु मात्र

विषय सूची

5-37 । दीन जानि प्रभु निज पद दीन्हा । बा **208** । **3** ।
5-38 । अस्थि शैल सरिता नस जारा । रोमावली अष्टदस भारा । लं. **14** । **4** ।
5-39 । षोडश भक्ति, अष्टविध भक्ति, नवविध भक्ति ।
5-40 । उर कछु प्रथम वासना रही । प्रभु पद प्रीति सरित सो बही । सु **48** । **3** । ”
5-41 । भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ । याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम् । मानस बाल मंगलाचरण **2** ।
5-42 । जब सठ किन्ह राम कर निन्दा । लंका **31** । **1** ।
5-43 । औरो एक गुपुत मत सबहि कहउँ करजोर । संकर भजन बिना नर भक्ति न पावै मोर । उ. **45** ।
5-44 । कहियेन सठहि हँठहि हठ सीलहीं । नहिं मन लाय सुनहिं हरि लीलहीं । ।उ. **127** । **2** ।
5-45 । तेहि अवसर तापस एक आवा । तेज पुंज लघु वयस सुहाबा । अयो **109** । **4** ।
5-46 । मंत्री विकल विलोकि निषादू । कहि न जाय जस भयउ बिषादू । । अयो **141** । **4** ।
5-47 । अंगद कहे जाउँ मैं पारा । जिय संशय कछु फिरती बारा । । कि. **29** । **1** ।
5-48 । नर बानर हि संग कहु कैसे । कही कथा संगति भये जैसे । सु **12** । **6** ।

श्रीमते रामानुजाय नमः

श्री राम - रहस्य

वर्त्तमान काल में जहाँ दिव्य मन्दिर है, वहाँ पहले मण्डप था। उसी में श्री स्वामी जी महाराज विराजमान थे। आप ऋषि प्रणीत ग्रन्थों से विशेष प्रेम रखते थे और व्यवहार करते थे परन्तु गायन विद्या के कारण तुलसीकृत मानस रामायण भी गाया जाता था और उसका अर्थ भी विलक्षण रूप से भावपूर्ण कहते थे। इस कारण पालीवासी पंडितप्रवर श्री रामलखन शर्मा जी ने यह प्रश्न किया कि "**शंकर भजन विना नर भक्ति न पावै मोर** । मानस उत्तर दो **45** ।" इस दोहे तथा " **यह मँह राम रहस्य अनेका** । मानसवाल **110** । **2** ।" इन दोनों का अर्थ और भाव क्या है? श्रीमान् के मुखारविन्द से सुनना और जानना चाहता हूँ। ऐसा सुनकर दोनों प्रश्नों को भलीभाँति व्याख्या रूप में समझाया गया था। उसी को यहाँ संक्षेप से लिखा जा रहा है।

1 । गोस्वामी तुलसीदास जी कृत मानस-रामायण मेंराम-रहस्य ऐसा शब्द आया है। जैसे -

"**रामरहस्य ललित विधि नाना** । उत्तर **113** । **1** । "

"**औरो रामरहस्य अनेका** । वाल **110** । **2** । "

"**यह रहस्य रघुनाथ कर वेगि न जाने कोय** । उत्तर **116** । "

रहस्य शब्द का अर्थ है कि जो परम गोपनीय हो, परम अधिकारी यानी सुपात्र व्यक्ति को किसी समय एकान्त में कहने लायक हो, सर्वथा सबसे कहने योग्य नहीं हो। राम-रहस्य कहने से यह भावार्थ होता है कि वह विषय रामजी के हृदय में गोपनीय है अथवा रामजी सबसे छिपाकर अपने मन में रखे हों जो किसी से नहीं कहते हैं और नहीं कहने लायक है, जैसे- "**यह जनि कतहुँ कहेसि सुनु माई** । मानस बा **201** । **4** । ", "**लछिमनहुं यह मर्म न जाना** । मानसअर **23** । **3** । " ऐसी वस्तु अथवा श्रीरामजी के चरित्र को अनधिकारियों को नहीं कहने योग्य हो- जैसे, "**कहिये कतहुं सठहि हठ सीलहि** । उ **127** । **2** । " किन्तु अधिकारी से कहे। "**पाई उमा यह गोप्यमयि सज्जन करहिं प्रकाश** । उ **69** । " "**गूढ़ो तत्व न साधु दुरावहिं । आरत अधिकारी जहँ पावहीं** । बा **109** । **1** । " परन्तु उस रहस्य के दो भेद हैं - एक गुप्त और दूसरा प्रत्यक्ष जो कि सर्वजन विदित हैं।

2 । राम-रहस्य अनेक हैं जिसमें एक रहस्य माया और भक्ति को खोलकर ज्ञान के साथ विचार करके उत्तरकाण्ड में आया है,

जिसमें स्पष्ट कहा है - "**यह रहस्य रघुनाथ कर वेगि न जाने कोय**।उ 116।" किन्तु अन्य रहस्यों को नहीं कहा है और न जाने कोई ऐसा कहकर गुप्त ही छोड़ा है परन्तु मानस में राम-रहस्य है सो विचारने की बात है। यहाँ पर ज्ञान पुरुष स्वरूप को दैवी माया स्त्री रूपिणी अपनी कला से ठग लेती है। विकल कर देती है और स्त्री रूपिणी भक्ति से डरती है, कारण कि भक्ति के पक्षपाती अनुकूल सहायक भगवान्रहते हैं। भाव इसका यह है कि हरि-भक्ति को माया नहीं ठग सकती है। इशलिए ज्ञान की अपेक्षा भक्ति उत्तम है यानी ज्ञानी से भक्तवर उत्तम होते हैं। यह रहस्य है, इसको तुरत कोई नहीं जान सकता है जैसे हिरण्यकशिपु नरसिंह रूप से ही मर सकता था। इसलिए भगवान् प्रह्लाद को नरसिंह रूप में ही दर्शन दिये थे वैसे ही रावण को मनुष्य रूप से ही मारना है। इसलिए भगवान् मनु और शतरूपा के सामने मनुष्य रूप से राम-जानकी होकर दर्शन दिये। "**राम वाम दिसि सीता सोई**।बाल **147**।**2**।" इसमें यही रहस्य है। देवगण से आकाशवाणी में "तुमहि लागि धरिहों नर वेषा।बाल **186**।**1**।" कहे हैं - "इत्युक्त्वाऽथ स काकुत्स्थः शाङ्र्ग **विष्णुः सनातनम्। श्रीरंगशायिनं सौम्यमिक्ष्वाकुकुलदैवतम्**।प. पु. उ. खण्ड **244**।**61**।"

3।"**निज कुल इष्टदेव भगवाना। पूजा हेतु कीन्ह पकवाना**।बाल **200**।**1**।" कुलदेव के लिए पकवान जो बना और कौसल्या ने बनाया रामजी क्यों खाये ? वह तो दूसरे के लिए बना था।

उत्तर- अपना रूप भगवान् जन्मकाल में ही कौशल्या को दिखलाये थे और फिर वही बालरूप में हो गये थे। इसीसे - "**बार बार वर मांगउँ हरषि देहु श्रीरंग**।उ14।" ऐसा कहा है। तथापि कौसल्या विष्णु को रामजी से भिन्न जानकर पाक बनायी थी। इसी भेद को दूर करने के लिए रामजी पकवान खा गये और फिर अपना रूप दिखला दिया कि अर्चा रंगनाथ और विष्णु भी मैं हीं हूँ यानी मैं विष्णु स्वरूप हूँ।

4।" **निगम नेति शिव पार न पावा। ताहि धरै जननी हठ धावा**। बाल **202**।**4**।" जिनके शिव पार नहीं पाते, वेद नेति कहता है, उनको कौशल्या बलात्कार पकड़ लेती है और राजा की गोद में बैठा देती है। राजा की गोद में बैठाने पर वे गोद से ही हँसते हुए भाग गये। राजा क्यों नहीं गोद में रख सके ?

उत्तर-कौशल्या भक्ति हैं। इसीसे बलात्कार पकड़ा जाते हैं। राजा ज्ञान हैं, ज्ञान से नहीं पकड़ाते हैं, भाग जाते हैं। उनको राजा नहीं रोक सकते ईश्वर में वही रहस्य है।

5। विश्वामित्र के समय "**जननी भवन गये पुनि चले नाय पदशीश**।बाल **208**।" माता तनिक भी प्रेम नहीं दिखाई जो कि पितु सतगुण माता और पिता ने - "**देह प्राण ते प्रियकछु नाहीं। सो मुनि देउँ निमिष एक माहीं**।बाल **207**।**2**।" कहा सो क्यों ?

उत्तर- माता ने जन्मकाल में ऐश्वर्य देखा - "**अद्भुत रूप निहारी**।बाल दोहा **191**।छंद।"- वैसे भोजनकाल में भी देखी। इसलिए निर्भीक रही। राजा ने नहीं देखा था। अतः अनभिज्ञ रहे और डरते भी थे कि राक्षस रामजी को मार देगा। इससे नहीं देना। माता ने रामजी को नारायण जाना था इससे चिंता नहीं की।

6।माता को ऐश्वर्य दिखाकर - "**यह जनि कतहँ कहेसि सुनु माई**।बा **201**।**4**।" किसी से नहीं कहना ऐसा क्यों कहे ?

उत्तर - "रावण मरण मनुज कर जाँचा।बा **48**।**1**।" ब्रह्मा के वचन को सत्य करने के लिए। यदि सब कोई जान जाता कि रामजी विष्णु हैं तो यह भी सब कोई कहता कि रावण को विष्णु ने मारा है, किन्तु मनुष्य ने नहीं। इसीसे रामजी से हनुमान जी ने पूछा था कि आप त्रिदेवों में से हैं या नर-नारायण में से हैं?

तो रामजी कहते हैं - "**कोशलेश दशरथ के जाये**।किष्क **1**।**1**।" मैं दशरथ पुत्र मनुष्य हूँ।

7।मारीच को विना फरके बाण से मारकर समुद्र पार क्यों किये मारे क्यों नहीं? उत्तर- लीला कार्य में सहायक होने के लिये, क्योंकि आगे उसे ही मृग बनना है।

8।उत्तानपाद ने ध्रुव को तपस्या से आने पर बिना किसी से सम्मति लिए ही राज्य-सिंहासन पर स्वयं बिठा दिया और राजा दशरथ गुरु वशिष्टादि से सम्मति लेकर भी "**जो पांचहिं लागै मत नीका। हरषि करहु रघुनाथहि टीका**।अयो **4**।**2**।" ऐसा क्यों कहते हैं ?

उत्तर - कश्मीर के राजा अश्वपति से कैकेयी के पुत्र को राज्य देने का वचन देकर कैकेयी से विवाह किया है। इससे अपना अधिकार न रहने के कारण पंच बन्धुओं से राज्य दिलाना चाहते हैं। राज्य जेठ रानी के ज्येष्ठ पुत्र को ही होना चाहिये - यही नीति एवं धर्मानुकूल भी है। ऐसा ही सूर्यवंशियों का कुल धर्म था। इसके विपरीत दशरथ जी किये सो महान् दोष है। किन्तु इस दोष को रामजी जानते थे। इसलिए इस दोष का नाम न लेकर अब जो राजा पलट रहे हैं - इसी को रामजी कहते हैं "**बिमल वंश यह अनुचित एका। बन्धु बिहाय बड़ेहि अभिषेका**। अयो 9।2।" इस प्रकरण में यही रहस्य है। बन्धु शब्द का अर्थ यहाँ भरत जी को जानना चाहिए। भाव यह कि जिस भरत को पूर्व में राज्य दे दिया गया है उसको आज तक सूचना भी नहीं दी जाती है। यहीअनुचित है यानी भरत को ही राज्य देना उचित है और तभी दशरथ जी की प्रतिज्ञा वचन सत्य होता जो अश्वपति से राज्य देने को कहे थे।

9। सीता जी को अग्नि ही में वास क्यों कराया गया ?

उत्तर- अग्निदेव सीता जी के सम्बन्ध में प्रमातामह (परनाना)होते हैं। जैसे ईश्वर से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और उससे धरणी, फिर धरणी की कन्या सीता हैं। यानी सीता की माता धरणी और धरणी के पिता जल मातामह (नाना) हैं और जल के पिता अग्नि हैं सो प्रमातामह अर्थात् नाना के पिता हुए। ऐसे अपना परिवार जानकर विश्वास पूर्वक सीता को वास कराये हैं - "**तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करौ निशाचर नाशा**। अर **23**।**1**।

10। "**जबहि राम सब कहा बखानी। प्रभु पद धरि हियँ अनल समानी**। अरण्य **23**।**2**।" अग्नि में प्रवेश की ही आज्ञा दी है और अन्य कोई वचन नहीं है। किन्तु इस चौपाई में 'सब कहा' ऐसा शब्द है। इससे प्रतीत होता है कि बहुत कुछ बातचीत की गयी है जो आगे फिर यह वचन है कि "**लछिमनहुं यह मर्म न जाना। जो कछु चरित रचा भगवाना**। अर **23**।**3**।" यह गुप्त रहस्य है जो लक्ष्मण जी भी नहीं जान सके हैं किन्तु रामजी और सीता जी परस्पर सम्मति कर लिए हैं, सो वह कि मारीच के आने पर सीता जी ने राम जी से मारीच को मारने को कहा है। तैसे ही राम जी के पीछे चले जाना, मारीच को रामजी के समान बोलना सुनकर सीता जी राम जी के पास लक्ष्मण को कटु वचन कहकर भेजती है। सीता जी को रावण ले जाता है। इन पाँचों बातों को राम-सीता सोचते हैं और लक्ष्मण नहीं जानते हैं- सच्चाई छिपा हुआ रहस्य है।

11। इन सब प्रसंगों के पूर्व यह विषय है कि "**अस्थि समूह देखि रघुराया। पूछा मुनिन लागि अति दाया**। अर. **8**।**3**।" "**निसिचर सकल मुनिन्ह कहं खाये। सुनि रघुनाथ नयन जल छाये**। अर. **8**।**4**।" "**निसिचर हीन करौं महि भुज उठाय प्रण कीन्ह**। अर. **9**।" यह प्रतिज्ञा सुनकर सीता जी ने रामजी से प्रतिज्ञा छोड़ने को कहा है (वाल्मीकि रामायण के अरण्य काण्ड सर्ग-**9** में स्पष्ट है) और समुझाई है किन्तु बहुत प्रयत्न करने पर भी सत्य-प्रतिज्ञ रामजी नहीं माने तो स्वयं सोचती है कि एक रावण को समझाकर भगवान् की शरणागति करा दें तो किसी भी राक्षस का नाश न हो सकता है किन्तु यह कार्य हमारे लंका गये बिना नहीं हो सकता है। ऐसा सोचकर सीता रावण को शिक्षा देने के लिए लंका में गयी है और समझाई है। किन्तु रावण नहीं माना तो पश्चात्ताप की है कि मुझे लंका आना व्यर्थ हुआ क्योंकि राक्षसों का नाश होकर ही रहेगा और रामजी की प्रतिज्ञा ही सत्य होगी। नहीं तो सीता के फूंक से ही रावण भस्म हो जा सकता था। परन्तु यह सब कैसे हो? इन्हीं के विचार में राम-जानकी जी ने एकान्त वार्ता की है जो लक्ष्मण जी भी नहीं जानते हैं।

12। लोक शिक्षा के लिए भाव होता है कि जब किसी पुरुष के ऊपर विपत्ति आने का समय होता है तो उसका विचार और बुद्धि भी भ्रष्ट हो जाती है। जैसे राम जी सेव्य हैं और सीता जी सेविका हैं। इसलिए सीता जी रामजी को मृगा मारने या लाने के लिए कहती है यानी पति को आज्ञा देती है और रामजी भी सीता जी को नहीं समझा कर दौड़ पड़ते हैं, वैसे ही असत्य में सत्य का भास हुआ कि सोने का मृग नहीं होता किन्तु सोना का ही मृग मानकर उसके पीछे चले हैं। इसी को कहा है - "**असम्भवं हेम मृगस्य जन्म तथापि रामो लुलुभे मृगाय**। महाभारत सभा **76**।**5**।" सीता जी को दुःख भोगना हुआ तो लक्ष्मण जी में भी अविश्वास हुआ और दुर्वचन कही है - यह आने वाली विपत्ति का पूर्व लक्षण है। ळाक्ष्मण जी के प्रति कटु वचन के ही फलस्वरूप सीता जी को लंका जाना पड़ा

है यह भाव भी बताया गया है। इसी को भागवतापचार शब्द से कहा है। यानी बड़े होकर भी छोटे के प्रति अपराध गरुड़ को हुआ था (महाभारत उद्योग पर्व अध्याय 113 शाण्डिली भागवता की कथा), अथवा सुग्गी द्वारा (पद्म पु. पाताल अध्याय 57) सीता जी को। राम जी जानबूझ कर मारीच के पीछे चले हैं जिससे शत्रु को समय मिले और ऐसे ही रावण को समय मिल भी गया, इसी से कहा है कि – "तब रघुपति जानत सब कारण। चले हरषि सुर काज सँवारन। अर. 26।3।" राक्षसों का नाश करना ही देव-कार्य है। इसीलिए रामजी स्थल को छोड़े हैं। इसी प्रकार लक्ष्मण जी को भी कुटिया छोड़ने में कहा है कि "हरि प्रेरित लक्ष्मण मति डोली। अर. 27।3।" इसमें भी भगवान्के ही संकल्प हैं वैसे साक्षात् सीताजी अग्नि में प्रवेश कर गई और प्रतिविम्ब सीता लंका जाने ही के लिए है। ये सभी रचनाएँ राक्षसों का नाश कराने के लिए ही बनाई गयी हैं। यह सब रामजी का गुप्त रहस्य ही प्रत्यक्ष हुआ है।

13। भक्तराज जटायु के छिन्न-भिन्न शरीर को रामजी ने देखा तो उसको गोद में लेकर जटाओं से देह को पोंछने लगे। समाचार में कहा कि "**नाथ दशानन यह गति कीन्हा । सो खल जनक सुता हर लीन्हा।** अर. 30।1।" जटायु के कटे हुए शरीर को देखकर भगवान् अपना नियम भंग करके उसी समय अपना स्वरूप दिए जो नियम विरजा पार का है सो यहाँ ही मिला है –

"**गीध देह तजि धरि हरि रूपा। भूषण बहु पट पीत अनूपा।।**
श्याम गात विशाल भुज चारी। अस्तुति करत नयन भरि बारी। अर. 31।1।"

वैकुण्ठ में रामजी का जो अपना चतुर्भुजी रूप है वही जटायु को दिया और यह पूर्व ही कहा था "**तनु तजि तात जाहु मम धामा।** अर. 30।5।" इसके अनुसार "**मम उर बसहु।** अर. 31।छन्द 5।" कहकर अपने हृदय में बसाये और रखकर "**अविरल भक्ति माँगी वर गीध गयउ हरि धाम।** अर. 32।" इसमें '**हरि रूपा**' से सारूप्य हुआ। '**मम उर बसहु**' से सामीप्य, साथ ही हैं सो हुआ। '**जाहु मम धामा**' से सालोक्य हुआ। धाम में वहाँ पहुँचने पर सायुज्यता होगी। याने चारो प्रकार की मुक्ति मिली है और राम हरि विष्णु हैं सो भी हुआ। जटायु को मुक्ति देकर राम जी "**तिन कर क्रिया यथोचित निजकर कीन्हीं राम।** अर. 32।"

प्रश्न- श्राद्धादि सब मुक्ति के लिए किया जाता है सो मुक्ति देने पर क्रिया की क्या आवश्यकता है तथा अपने सम्बन्धियों का श्राद्ध किया जाता है तो अन्य पशु-पक्षियों के लिए करना कैसा ?

उत्तर- भगवान का अवतार वेद-मार्ग धर्म की रक्षा के लिए होता है। कहा भी है – "**धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।** गी. 4।8।" "**वेद प्रणिहितो धर्मः।**" जटायु की दाह-तर्पण, श्राद्धादिक सम्पूर्ण क्रिया वैदिक धर्म की रक्षा के लिए की गयी है। जटायु को दशरथ जी से मित्रता थी इसीसे पिता के तुल्य राम जी ने माना था और कहा है कि "**सुनहुँ लखन खगपतिहि मिलन ते मैं पितु मरण न जान्यो।** गीतावली अरण्य 13।" ऐ लखन लाल ! जटायुराज के रहने पर हमारे पिता जी के मरने की चिन्ता एवं शोक नहीं जान पड़ता था। कारण कि पिता के प्रतिनिधि जटायुराज वर्तमान थे। परन्तु आज ही हम जटायुराज के मरने से पिता रहित टुअर हुए हैं। ऐसा सम्बन्ध मानकर राम जी ने सब किया है और यह भी है कि जटायु का हरि भक्तों में नाम आया है। इसलिए भक्तों का देह भगवान् अपना मानते हैं तथा "**देहो वै स हरि प्रियः।**" भक्त का देह भगवान्को अत्यन्त प्यारा होता है। इसी से सभी क्रिया राम जी ने की है। यही रहस्य है। कृतज्ञता गुण है। द्विज होने से ब्रह्ममेध संस्कार किया है।

14। "**कि तुम तीन देव मह कोउ। नर नारायण की तुम दोउ।** किष्क. 1। 5।" जब हनुमान ने पूछा कि आप त्रिदेवों में से कोई हैं या नर-नारायण अवतार में से कोई हैं या अखिल कारण व्यूह में से कोई हैं। इन्हीं में से विष्णु-नारायण-वासुदेव हैं। इन तीनों नामों से परिचय नहीं देकर दशरथ पुत्र क्यों बताते हैं ?

उत्तर – ब्रह्मा के वचन को सत्य करने के लिए, रावण को मारने के लिए, "**आत्मानं मानुषं मन्ये ...**। वा. रा. युद्ध 117।11।" अपने राजकुमार रूप धरा है। इस कारण दशरथ के जाये कहते हैं। यह रहस्य है।

15। मित्रता में अन्य देवताओं की साक्षी न देकर अग्नि की साक्षी क्यों दिया है ? "**पावक साक्षी देई करि जोड़ी प्रीति दृढ़ाई।** किष्क 4।"

उत्तर -अपना विश्वासी कुटुम्ब सीता के प्रमातामह जानकर तथा पावक शरीर के व्यापक देव हैं। यदि सुग्रीव प्रतिकूल होगा तो

शरीर में व्यापक होने से प्रकोप करके लंगड़े लूल्हे बना देंगे या मृत्यु ही दे सकते हैं। इसमें यही रहस्य है सो गुह्य है।

16। "**बिप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ। माथ नाई पूछत अस भयउ।।**
की तुम्ह स्यामल गौर शरीरा। छत्रिय रूप फिरहु बन बीरा। किष्क.1।3-4।"

हनुमान ब्राह्मण बनकर राम-लक्ष्मण जी के पास गए और प्रणाम करके पूछा - ऐ वीर! तुम श्याम -गौर दोनों क्षत्रिय रूप में किस लिए वन में फिरते हो। ब्राह्मण बनकर और क्षत्रिय रूप जानते हुए प्रणाम क्यों किया ?

उत्तर - (क) "**अप्रमेयो हि तत्तेजो यस्यैषा जनकात्मजा।** वा. रा. अर. 37।18।" "**जन्म कर्म च मे दिव्यम्।** गी. 4।9।" रामजी के अप्राकृत शरीर तथा अप्रमेय तेज को देखकर हनुमान्प्रभावित होकर नत-सिर हो गये हैं अथवा हनुमान का देह कपट का ब्राह्मण था इसलिए कपटी का हृदय दबा रहता है। इसी कारण प्रणाम किया है।

(ख) ज्ञानाधिक जानकर ब्राह्मण भी क्षत्रिय लोगों को प्रणाम करते थे। जैसे जनक जी के पास शुकदेव जी ब्रह्मविद्या-ब्रह्मज्ञान प्राप्त किये थे तो जनक को प्रणाम करके ही प्राप्त किये थे।

(ग) विरक्त तपस्वी के वेश वानप्रस्थ में रामजी थे और हनुमान्को रामजी देवता तथा ईश्वर प्रतीत होते थे, "**कि तुम तीन देव मह कोउ**" देवता, "**नर नारायण की तुम दोउ**" से अवतार "**कि तुम अखिल भुवनपति**" व्यूह प्रतीत होते थे, अतः प्रणाम किया।

17। "**लछिमन बान सरासन आनू।** सु.57।1।" श्री रामचन्द्र जी ने समुद्र की प्रार्थना स्तुति की किन्तु पीछे धनुष-बाण धारण करके धमकाना भी पड़ा है। इसमें रहस्य यह है कि क्षुद्र देवता के प्रति कुछ भी मनोरथ करके उनकी आराधना करने से कल्याण सिद्ध नहीं होगा निष्फल ही रहेगा। इसलिए एक भगवान् की ही किसी मनोरथ सिद्धि के लिए आराधना करनी चाहिए। जैसे ध्रुव को नारद जी ने बताया और सिद्धि मिली। "**धर्मार्थकाममोक्षार्थ य इच्छेत्श्रियमात्मनः। एक एव हरिस्तत्र कारणं पादसेवनम्।** भा. 4।8।41।"

18। "**राम राम हा राम पुकारी। मम दिसि देखि दीन्ह पट डारी।** कि. 4।3।"

प्रश्न -अन्य स्थलों परअन्य बन्दरों को नहीं देखा। सुग्रीव की ओर देखकर वस्त्र गिराने का क्या भाव है ?

उत्तर - अपनी मण्डली में सुग्रीव प्रधान थे तथा प्रधान उच्चासन पर बैठे रहे और समीप में हनुमान् सम्मुख में बैठे थे। इनके अंग में भगवान्के नित्य पार्षद होने के कारण एवं अहजनि-पुत्र होने के कारण भगवद् भक्त के चिह्न होने से इनको सुग्रीव अपने आगे बैठाए हैं। इससे सीता जी को अनुमान हुआ कि यह बन्दर प्रधान को हरिजन प्यारे हैं। अतः बन्दर प्रधान भी भगवत्-प्रिय होगा ऐसा अनुमान करके और राम जी का नाम इसलिए है कि बन्दर सब भी जान ले कि यह राम जी के प्रेमी हैं, इस विचार से वस्त्र गिराया है। अन्यत्र कहीं बन्दरों को हरिजन नहीं जाना है। सीता यह भी जानती है कि रामजी अयोध्या से दक्षिण की ओर धीरे-धीरे बढ़ रहे हैं तो फिर भी दक्षिण ही को आवेंगे तो अवश्य इस मण्डली के पास पहुँचेंगे तो यह वस्त्र मिलेगा और हमको दक्षिण जाने में तथा हमारी प्राप्ति के लिए प्रयत्न अवश्य करेंगे।

19। हनुमान जी से भरत ने पूछा कि "**अब प्रभु चरित सुनावहु मोहि।** उ. 1।7।" इस प्रश्न के उत्तर में भगवान्के चरित्र नहीं कहकर "**कहे सकल रघुपति गुण गाथा।** उ. 1।8।" यह प्रश्नोत्तर में उलट-फेर क्यों ?

उत्तर - जैसे प्राकृत पुरुष प्राकृत गुण से प्रेरित होकर व्यवहार करता है वैसे भगवान्भी अपने दिव्यगुणों के कारण सब व्यवहार किया करते हैं। जैसे शरण्य- गुण के कारण सुग्रीव, विभीषण को शरण में लेना, उदार गुण से - "**जो संपति शिव रावनहि दीन्ह दिये दस माथ। सो सम्पदा विभीषण ही सकुच दीन्ह रघुनाथ।** सु 49।0।"

ईश्वरत्व मोक्षप्रदत्व गुण से - "**कहहि विभीषण तिन कर नामा। देहि राम तिन कह निज धामा।** लं 44।1।"

तेज गुण से - "**तासु तेज प्रभु वदन समाना। सुर नर सकल असंभव माना।** लं 70।4।" तैसे - "**श्रीरघुवीर प्रताप ते सिन्धु तरहिं पाषान।** लं 3।0।" यह अघटित घटना है। "**गीध देह तजि धरि हरि रूपा।** अर 31।1।" यह ईश्वरत्व मोक्ष प्रदाता है। धर्मपालकता- "**तिनकर क्रिया यथोचित निज कर कीन्ही राम।** अर 32।"

शील-गुण तथा पतित-पावनता से शबरी, कोल, किरात आदि से प्रेम करके उनके पास जाना तथा उनसे बोलना, प्रेम करना हुआ

है। अर्थात् चरित्र में गुण ही कारण है। इसलिए गुण ही का वर्णन किया।

20। "**अवधपुरी प्रभु आवत जानी। भई सकल सोभा की खानी**। उ. **2**।**5**।" **प्रश्न** - पुरी जड़ को ज्ञान कैसे हुआ कि रामजी आते हैं ? **उत्तर** - प्रकृति जड़ है । "**गगन समीर अनल जल धरनि। इनकी नाथ सहज जड़ करनी**। मु. **58**।**2**।" भगवान् और भगवद्भक्त के प्रभाव से जड़ भी जड़ता छोड़ती है। जैसे - शुकदेव द्वारा जंगल "**तरवोऽभिनेदुः**। भा. **1**।**2**।**2**।" अथवा "**सरिता सर गिरि अवघट घाटा। पति पहिचान देहि वर बाटा**। अर. **6**।**2**।" पुनः वैसे - "**भूतल भावन होत भरत को। अचर सचर चर अचर करत को**। अयो. **237**।**3**।" यह तो जड़ो का काम है किन्तु अयोध्यापुरी तो दिव्य है। अजड़ परम चैतन्य त्रिपाद विभूति से आयी है। इक्ष्वाकु की तपस्या के कारण स्वयं भगवान् और भगवद्पुरी आयी है। वहाँ त्रिपाद विभूति का स्थल भी परम चैतन्य है। सोई कहा है कि '**नित्यमजडम्**' नित्य और अजड़ है। 'कावेरी विरजा सेयं वैकुण्ठं रंगमन्दिरम्।' वह रंगमन्दिर अयोध्या में भी रामचन्द्र जी के समय तक वर्तमान है। **श्रीरंगशायिनं सौम्यमिक्ष्वाकुकुलदैवतम्। सप्रीत्या प्रददौ तस्मै रामो राजीवलोचनः**। प. पु. उ. खण्ड **244**।**61-62**।" इसी प्रकार परम दिव्य श्री अयोध्या दिव्य रूप परम चैतन्य है वही इस संसार में प्राकृत भूमि रूप में वर्तमान है और सर्वलोकाधिनायक भगवान् इस लोक में प्राकृत पुरुष के समान "**आत्मानं मानुषं मन्ये**। बा. रा.युद्ध. **117**।**11**।" है। भाव यह है कि जब अयोध्याधिनायक ही प्राकृत के समान हैं तो वह पुरी भी प्राकृत समान रही। किन्तु जब जंगल भगवान् को आते हुए जाना तो उसके आनन्द के मारे जड़ता भूल गयी। दिव्य चैतन्य होकर परम सुहावन रूप बन गयी है। इसमें यही रहस्य है। भगवान्‌की सेवा के लिए इस रहस्य में विशेषता यह है कि दिव्य है। भगवान् परवासुदेव रूप और अर्चा श्रीरंग रूप तथा वैभव श्री राम रूप - यह तीन स्वरूप एक ही हैं। ऐसा जानना चाहिए।

21। "**धाइ धरे गुरू चरन सरोरूह**। उ. **4**।**2**।" मिलन काल में वशिष्ठ जी के साथ मिलकर आगे श्री जानकी तक "**सीता चरन भरत सिर नावा**। उ. **5**।**1**।" पर्यन्त लौकिक शिष्टाचार को आगे पीछे मिलकर रक्षा किए हैं। किन्तु सब अवधवासियों के हृदय में परिपूर्ण परम प्रेम है। वैसे ही सवको भगवान् से मिलने के लिए अत्यन्त व्यग्रता है। इसलिए सर्वान्तर्यामी होने के कारण जैसे अज्ञात जलपात्रों में एक बार सूर्य का विम्ब हो जाता है या अनेक स्थानों में एक समान सम्बन्ध रहने पर विजली जल जाती है, वैसे भगवान् अवधवासी बाल-वृद्ध सबसे एक समान एक बार मिले हैं, इसी से समदर्शिता की रक्षा की है।

22। "**छन मह सबहि मिले भगवाना**। उ. **5**।**4**।" जैसे गौ के सम्मुख भोजन की तथा भोजन के सामने क्षुधातुर को किसी कारणवश विलम्ब होने से अत्यन्त असह्य होता है उसी प्रकार अवधवासियों को राम जी के आने में विलम्ब होने से अत्यन्त व्यग्रता बढ़ रही थी। इसलिए अनन्त रूप होकर भगवान् एक ही बार सबसे मिले हैं, सो ऐश्वर्य दिखाये हैं। इसमें यही रहस्य है।

23। "**प्रेरित ब्रह्म अस्त्र सो धावा**। अर. **1**।**1**।" जयन्त ऐसाअपराधी को रामजी का अमोघ ब्रह्मास्त्र तुल्य वाण क्यों नहीं मार सका ? **उत्तर** - जानकी माता का मातृ-वात्सल्य गुण का तथा राम जी का शरण्य गुण का विकास नहीं होता, ईश्वर तत्व के समान ऐश्वरी भी व्यापिका है। अतः रामबाण के प्रयोग काल से ही सीता जी का मातृरक्षण-पोषण गुण धावा करके जयन्त की रक्षा करते रहा है। "**कुपुत्रो जायेत क्वचदपि कुमाता न भवति**।" पुत्र भले ही कुपुत्र होते हैं किन्तु माता कुमाता नहीं होती है। जयन्त के आने पर सीता जी ने कहा है "**वधार्थमपि काकुत्स्थ कृपया परिपालय**। बा. रा. सु. **38**।**35**।" हे रामजी ! यह तो मारने योग्य है ही किन्तु अपनी कृपा द्वारा इसकी आप रक्षा कीजिये। ऐसा कहने से दया गुण का विशेष प्रकाश हुआ है। इसमें यही रहस्य है।

24। कौशल्या को राम जी ने अपना रूप दो बार दिखाया। जन्म काल में और भोजन काल में, किन्तु दशरथ जी को एक बार भी क्यों नहीं ?

उत्तर - स्त्रियों के लिए सतीत्व धर्म प्रधान है सो कौशल्या में था और पुरुषों के लिए पत्नीव्रत चाहिए सो दशरथ जी में नहीं था याने तीन विवाह किया था। अतः राम जी ने अपना स्वरूप नहीं दिखाया। कौशल्या जब सती होने चली तो भरत जी ने रोका है - "**गहि पद भरत मातु सब राखी**। अयो **169**।**1**।"

25। "**निज उरमाल वसन मनि बालितनय पहिराइ। बिदा कीन्ह भगवान तब बहु प्रकार समझाइ**। उ **18**।" **प्रश्न** - बहुत प्रकार से क्या

समझाया गया है ?

उत्तर - (क) "**पिता बधे परमारत ओही। राखाराम निहोरा मोही। किष्क 25। 3।**" अंगद के हृदय में वाली के मर जाने का और सुग्रीव के मरवाने का संस्कार बना हुआ था। इसलिए भगवान् ने यह विचार किया कि प्राकृत जीव का चित्त सदा ही चंचल रहता है और बुद्धि भी बदलती रहती है तो इसलिए अंगद को किष्कन्धा भेजा जाता है और ऐसा होता है कि किसी भी सम्बन्धी की वस्तु देखकर सम्बन्ध और सम्बन्धी स्मरण हो जाता है। जैसे अंगूठी मिलने पर सीता जी को श्री राम जी का स्मरण हुआ। ऐसा विचार भगवान् करते हैं कि अंगद को किष्किन्धा जाने पर इसका पिता वाली अवश्य स्मरण हेगा साथ ही यह भी स्मरण होगा कि पिता को सुग्रीव ने मरवा दिया था। ऐसा स्मरण होने पर कदाचित् परशुराम के समान पिता का वैर लेकर परस्पर चचा और भतीजे में घोर युद्ध हो चलेगा। परिवार में कलह न होने पावे इसलिए भगवान् समझाते हैं कि बीती हुई घटना को लेकर परस्पर वैर नहीं करके दोनों परिवार मिलकर नेम-प्रेम से रहना।

(ख) यह भी भगवान्ने कह सुनाया कि वाली-सुग्रीव के बीच जो कलह हुआ था उसमें वाली ही का अत्याचार था यानी बलवान होने के कारण वाली ने विशेष अत्याचार किया था। रुमा (सुग्रीव की स्त्री) को ले लिया था, सुग्रीव को घर तथा राज से निकाल दिया था तथा हमेशा मारने की कोशिश करता रहता था। यथा - "**ताके भय रघुवीर कृपाला। सकल भुवन मैं फिरौ बिहाला।।**" "**हर लीन्हा सरवस अरु नारी। कि 5। 6।**" इत्यादि। सुग्रीव से जो भूल हुई थी वह दुंदुभी के भय वश न कि राज के लोभ के कारण। नीति में यह सर्वदा सिद्ध है कि धोखा में पड़कर अनजाने कोई अपराध भी हो जाय तो वह क्षम्य है। मंत्रियों ने बलात्कार सुग्रीव को राज्य दिया न कि वह स्वयं राज्य को चाहता था। इस प्रकार निर्दोष सुग्रीव को वाली ने अभिमान वश '**हर लीन्हा सरवस अरु नारी**' सब प्रकार से दुःख दिया था। ऐसा जानो कि सब प्रकार से वाली का ही दोष था न कि सुग्रीव का।

(ग) ऐ भक्तवर अंगद ! तुम यह भी जानो कि मेरे द्वारा वाली के मारे जाने का प्रधान हेतु तो यह है कि वालीकृत अपराध का प्रायश्चित्त तो प्राणदण्ड ही है। इस दण्ड से पीछे नरक में जाना नहीं पड़ता है। यह ऐसा घोर पाप था कि भरत को भी लगता, कारण की यह भूमि इक्ष्वाकु की है। इस कुल में भरत ही राजा हैं और प्रजाकृत पाप राजा को भी लगता है। प्राणदण्ड होने से राजा प्रजा दोनों निष्पाप रहे। ऐसा कहकर भगवान् ने अपने और सुग्रीव दोनों को कलंक से बचाया है और धर्मशास्त्र को सत्य प्रमाणित किया है। इसकी जानकारी से अंगद के हृदय में छोभ नहीं रहेगा।

(घ) अंगद! तेरी माता परम सती है। सतीत्व धर्म का भली भाँति पालन किया है। इसी प्रभाव से हमारे परमत्व को जानती है। उसने वाली को समझाने का प्रयत्न किया था, जैसे - "**सुनु पति जिन्हहि मिला सुग्रीवा। ते दोउ बन्धु तेज बल सींवा। कि 6। 14।**" तेज तथा बल के सीव शब्द से परमत्व को बताती है, जैसे - "**अप्रमेयो हि तत्तेजो यस्यैषा जनकात्मजा। वा. रा. अर. 37। 18।**" "**यच्चन्द्रमसि यचाग्नौ तत्तेजो विद्धिमामकम्। गी. 15। 12।**" "**बलंबलवतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्। गी. 7। 1011।**" तारा ने इस प्रकार समझाकर उसे बचाने का उपाय किया था किन्तु उसने अभिमानवश एक नहीं माना। उसने हमको भी अपमानित किया था। मैंने उसके समीप पर्वत पर वास किया परन्तु उसने मुझे भरत का प्रतिनिधि नहीं मानकर दोनों को अपमानित किया। तो भी हमने उसे मारकर भी राम-धाम को भेजा है। अतः तुम अपने पिता के ताप से भी संतप्त न होना।

(ङ) अंगद! और सुनो। हम जानते हैं कि पिता के स्थान पर पुत्र को राजा होना चाहिए किन्तु यह भी प्रवल नीति है कि विजित राज्य का अधिकारी विजेता ही होता है। इस नियम से यह राज्य हमारा हुआ और सुग्रीव को तुमसे बड़ा जानकर उसे राजा बनाया और तुमको युवराज पद दिया। राजा '**मुख स्थानीय**' होता है और युवराज '**हस्त स्थानीय**' राजा तो केवल आज्ञा देता है, कार्य कर्त्ता तो केवल युवराज ही होता है। अतः ऐअंगद! तुम्हें ही सारा राज्य-कार्य करना है। ऐसा समझ सब प्रकार से प्रजा यानी भालू बन्दरों की रक्षा करना।

(च) अंगद! वाली बलशाली तो था ही। उसके प्रतिद्वंदी का आधा बल भी उसमें चला आता था। इससे वह सबों को जीत लिया

करता था। यहाँ तक कि रावण को भी कांख के बगल में रख लिया था। ऐसे बहुतों को उसने जीता था। इसी डर से सुग्रीव भी भागे फिरते थे। ऐ अंगद ! सम्भव है कि वाली द्वारा पराजित सभी लोग किष्किन्धा पर आक्रमण कर सकते हैं परन्तु तुम डरना नहीं। यदि ऐसा समय आये तो समाचार देने पर मैं सब प्रकार से तुम्हारी सहायता करूँगा।

(छ) अंगद! मैं जानता हूँ कि तुम यहाँ से जाना नहीं चाहते हो परन्तु यह विचार करो कि जिस समय सभी भालू बन्दर अपने स्वजनों से मिलकर पारिवारिक आनन्द प्राप्त करेंगे उस समय तुम्हारी माता तारा, जिसके तुम एकमात्र आधार हो, की क्या दशा होगी? अतः मेरा वचन मानकर इस बार जाकर उसे धैर्य बंधा कर पुनः लौट आना। ऐसा करने से हमारे लिए भी एक न्याय और रीति होगी।

(ज) अंगद! तुम कहते हो कि '**नीच टहल गृह के सब करिहउँ**।उ. 17।4।' सो यथार्थ है। परन्तु उत्तम तो यह है कि '**उत्तमश्चिन्तितं कुर्यात् प्रोक्तकारी तु मध्यमः**।' उत्तम भक्त या पुत्र का काम है कि वह पिता के कार्य को बिना कहे ही करे और मध्यम भक्त या पुत्र का काम है कि वह कहने पर करे। देखो मेरे भाई भरत ने कहा है "**आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। सो प्रसाद जन पावै देवा**। अयो 300।2।" यानी आज्ञा पालन के समान और कोई दूसरी उत्तम सेवा नहीं है। ऐ अंगद! तुम तो मेरा स्वाभाव जानते ही हो। विभीषण की शरणागति काल में मैंने कह दिया था "**दोषो यच्चपि तस्यस्यान्तत्जेयं कथञ्चन**।वा. रा. यु. 18।3।" शरण में आने पर तो दोषी को भी दोष सहित अपना लेता हूँ। तुम तो परमपवित्र हृदयवाले हो, मैं तुम्हें छोड़ता नहीं हूँ अपितु तुम्हें सिर्फ तारा के आश्वासन के लिए ही भेज रहा हूँ। अन्य भाव मन में नहीं लाना। मेरा ही नाम अच्युत है। मुझे प्राप्त करने पर किसी की भी च्युति नहीं होती है। ऐसा तुम विश्वास रखो। किष्किंधा जाकर माता को धैर्य बँधवाकर फिर आना।

(झ)यह जो कहा कि "**मरती बेर नाथ मोहि बाली। गयेउ तुम्हारेहि कोंछे घाली**।।" "**मोरे तुम प्रभु गुरू पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद जलजाता**।।" "**राखहु सरन जानि जन दीना**।।" "**प्रभु तजि भवन काज मम काहा**।" उ. 17।1,2,3।" तुम्हारे कथनानुसार ही तुम्हारी रक्षा का दायित्व हमारे ऊपर आ गया किन्तु तुम्हारे सम्बन्ध से ही तुम्हारी माता, परिवार तथा राज्य की रक्षा का भी भार हमारे ऊपर आ गया है। जानने वाले जानते हैं कि '**दशपूर्वान्दशापरान**' यथा '**कुलकोटि समुधृत्य विष्णुलोके महीयते**' इत्यादि। सभी कहते हैं कि '**प्रणत कुटुम्ब पाल रघुराई** ।अयो. 207।4।' तथा यह भी तुम जानते हो कि विभीषण के नाते रावण को भी भाई ही माना था '**यथा तव तथा मम**'। रावण जैसा तुम्हारा भाई है वैसा ही तुम्हारे नाते मेरा भी। हमारा जानकर तुम उसका दाहादिक संस्कार करो और विभीषण ने किया भी। उसी प्रकार तुम्हारे नाते तुम्हारा सर्वस्व हमारा है। हमारा जानकर तुम किष्किंधा की रक्षा करो यही हमारी सेवा होगी।

(ञ) भक्तवर! तुम मेरे स्वभाव से परिचित हो '**तस्याहं न प्रणस्यामि स च मे न प्रणश्यति**।गी. 6।30।' भक्त हमारी दृष्टि से विलग नहीं रहता है और हम भक्तों से विलग नहीं रहते '**साधवो हृदयं मह्यम्साधुनां हृदयं त्वहम्**' मैं अपने भक्तों को हृदय में रखता हूँ और भक्तों के हृदय में सदा निवास करता हूँ। ऐसा मत मानो कि मैं विलग कर रहा हूँ। "**वने मयूरा गगने च मेघा लक्षान्तरे भानु जले च पद्म, द्विलक्षसोमो कुमुदो जले वा यो यस्य चित्ते न कदापि दूरः**।" अंगद ! तुम ऐसा जानो कि प्रेमी अपने मित्र से विलग नहीं रहता। हमें तुम अपना सदा अपने साथ ही जानो और माता को धैर्य देकर आओ। ऐसा समझाकर भगवान्ने अपना वस्त्र और हृदय में रहनेवाली मणियों की माला दिया। इसका भाव यह है कि जैसे वस्त्र सतत् शरीर का रक्षक है - शीतोष्ण से बचाता है - वैसे ही मैं तुम्हारा रक्षक बना रहूँगा। माला हृदयस्थ वस्तु है। इसका भाव यह है कि मैं हृदय से तुम्हारे साथ हूँ। हृदय के बिना शरीर की जो दशा है, वही दशा तुम्हारे बिना मेरी है।

इस प्रकरण में सब बन्दरों से भगवान्ने कहा "**अब गृह जाहु सखा सब......** । उ. 16।" ऐसा पद कहा है और अंगद के प्रति "**विदा किये ...** ।उ 16।" पद का व्यवहार किया है। इस शब्द से अंगद की अधिक प्रतिष्ठा हुई है। अंगद के शब्द सुनकर भगवान्ने उन्हें हृदय लगा लिया, दोनों नेत्रों में जल भर आया। यह देखकर अंगद को विश्वास हो गया कि भगवान् मुझे अपनाये हुए हैं। "**मन अस रहन कहहिं मोहि रामा**। उ 18।2।" ऐसा विश्वास अंगद को था। पर जब जाने की आज्ञा होती है तब कवि का कहना है कि "**कुलिसहु चाहि कठोर अति**।उ 19।" इस पर अंगदप्रेम में डूबे नेत्र से प्रार्थना करते हैं तो राम जी भी उन्हें आँसू भरे नेत्रों

से उन्हें हृदय से लगाते हैं। इसीलिए **"कोमल कुसुमहि चाहि।** उ 19।" कहा गया है। भाव यह है कि जो जिस रूप से भगवान्‌को देखता है वे उसी रूप से उसे देखते हैं। **"ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।** गी. 4।11।" भगवान् कठोर नहीं हैं। कठोरता तो दोष है। भगवान् अंगद को भक्तिमती तारा की रक्षा के लिए भेज रहे हैं। तारा ने भगवान्‌से भक्ति की याचना की है और भगवान्‌ने उसे ज्ञान भी दिया है। **"उपजा ज्ञान चरन तब लागी। लिन्हेसि परम भक्ति वर मांगी।** कि 10।3।" परम भक्ति को ऐसे जानना चाहिए कि कहीं पर दीर्घ की जगह ह्रस्व से भी लिया गया है। जैसे, **'मातहि पितहि' 'परो मा यस्मात्वा यस्याः सा परमः'** की जगह पर 'परम' शब्द है यानी अविरल भक्ति, अनन्य भक्ति, प्रेम भक्ति आदि सवों से उत्कृष्ट भक्ति तारा ने माँगा और वही भक्ति तो गीता 18 के 54 वें श्लोक में कहा है। इसके पहले साधनों को कहकर 'मद्भक्तिं लभते पराम्।' वही भगवान् दिये हैं। ज्ञान देने पर ही ज्ञान द्वारा भक्ति माँगी थी। विशेष भाव यह है कि भगवत् प्राप्ति के लिए **'मातापितरौ रुदतः प्रव्रजति पुत्रः।'** कहा है, किन्तु सुनीति, सुमित्रा, तथा कयाधु जैसी माताओं को त्यागने के लिए नहीं कहा है। वैसा ही व्यास, भरद्वाज, हारीतादिक पिताओं को भी त्यागने नहीं कहा है। इसलिए भगवान् अंगद को भेज रहे हैं। **जैसे शुकदेव जी व्यास जी को छोड़कर भागे थे किन्तु जब भागवत के रस सुने तो पुनः आकर स्वयं पढ़े हैं।** इस प्रकार तारा ज्ञानमती होती हुई भी भक्तिमती रही। इसलिए इसकी भक्ति के वश होकर भगवान् अंगद को बुलाये हैं। ऐसा अश्वमेध में पाया जाता है। युवराज होते हुए भी अंगद को भगवान्‌के साथ रहना होता है। अंगद को भेजने में उपरोक्त यही रहस्य है।

26। **"मन्त्रिन सहित यहाँ एक बारा। बैठि रहेऊकछु करत विचारा।** कि 4।2।" किस विषय पर विचार कर रहे थे ? **उत्तर -** एक समय सुग्रीव ने अपने सब मन्त्रियों को बुलाकर पूछा कि हे मन्त्रिगण ! आप लोग यह तो विचारिये कि वाली ने हमारी स्त्री समेत सर्वस्व लेकर ग्राम से निकाल दिया जिससे किसी तरह यहाँ प्राण बचा रहा हूँ तो इस काल में हमारा क्या कर्त्तव्य है ? इस पर एक मंत्री बोला कि दैवी बल से ही काम हो सकता है और सब देवताओं में त्रिदेव, सूर्य और राजा इन्द्र हैं - इन्हीं से सहायता लेनी चाहिए। दूसरा बोला कि इन्द्र पापात्मा को कौन नहीं जानता कि ध्रुव की तपस्या भंग करना चाहा था, अहिल्या का धर्मभ्रष्ट किया, सहस्रभगी बना और वह अपना पुत्र वाली के पक्ष को छोड़कर दूसरे पक्ष में कब काम करेगा ? अतः उसका नहीं करना चाहिए। तीसरे ने कहा कि ब्रह्मा के पास चलो उनसे सहारा मिलेगा। चौथे ने कहा कि वे तो स्वयं अपने की रक्षा न कर सके, मधुकैटभ वेद हर लिया और रुद्र ने शिर काट लिया तो वे दूसरे की रक्षा कैसे कर सकेंगे? पाँचवें ने कहा महादेव जी से सहारा मिलेगा। तब छठे ने कहा कि शिव तो संहार करने वाले हैं। वे अपनी वृत्ति छोड़कर रक्षा कैसे करेंगे? वृकासुर ने उनको खदेर कर भस्म करना चाहा तो विष्णु ने उनकी रक्षा की। जैसे सर्वकल्याण करने वाले एक नारायण को छोड़कर दूसरा कोई नहीं है। भगवान् नारायण सर्व कल्याण गुण के अयन हैं। उनके कल्याण गुणों में एक प्रधान करुणा गुण भी है जिसे दया या कृपा कहते हैं। उसी भगवान् की कृपा से सहेतुकी और निर्हेतुकी कृपा भी होती है। वह सहेतुकी कृपा होना तो जीवों के लिए असाध्य है असम्भव है। किन्तु निर्हे तुकी कृपा का ही ज्ञानी या भक्त लोग सदा आशा करते हैं। इसी की आशा करती रहनी चाहिए क्योंकि ऐसी क्षीणावस्था में दीनबन्धु से ही भलाई हो सकती है। ऐसे ही मंत्री लोग कह रहे थे और इसी प्रकार उधेड़-बुन में हमलोग बैठे थे। उसी काल में आकाश मार्ग से **"राम राम हा राम पुकारी। मम दिसि देख दीन्ह पट डारी।** कि 4।3।"

27। क। **"अतिलालसा सबहि मन माही। नाम ग्राम पूछत सकुचाही।।**

जो तिन मह वय वृद्ध सयाने। तिन करि युक्ति राम पहिचाने।। अयो 109।2।" वह कौन सी बुद्धि थी जिसके द्वारा राम को पहचाने ?

उत्तर- छोटे अवोध वच्चे सबके प्रेम के पात्र होते हैं और अपराध करने पर भी निर्दोष समझे जाते हैं। उनकी बोली बड़ी मीठी होती है। इसलिए जो चतुर वृद्ध था उसने एक अवोध वच्चे को प्रश्न लिखा दिया राम जी से नाम-ग्राम पूछने के लिए। राम जी सवों के भाव जानकर अपना नाम-ग्राम तथा वनवास के सब समाचार कह सुनाये हैं। वानप्रस्थ और संन्यास दो आश्रम विरक्त का है।

इसलिए तीनों आश्रमियों को पूर्व का नाम बदल दिया जाता है तथा ग्राम-त्यागी होते हैं। इसलिए इन दोनों आश्रमियों का नाम-ग्राम नहीं पूछना चाहिए - **'नाम ग्राम पूछत सकुचाही।'** और इन आश्रमों के लिए कहीं-कहीं अवस्था भी बताई गई है। सो अवस्था राम जानकी की नहीं है और वानप्रस्थ का वय है, अतः पूछना था कि आप कहाँ के हैं कि विना अवस्था ही के वानप्रस्थ बने हैं। किन्तु जानकारी के लिए पूछने में यह युक्ति किये कि आप कब से वानप्रस्थी हुए हैं ? ऐसे ही प्रश्न करने पर इनके हृदय का भाव जानकर पूर्व का अपना हाल कह दिये। तब सबों को ज्ञात हुआ है।

28 | **"को साही सेवक ही निवाजी । आप समान साज सब साजी।अयो 298।3।"** ऐसा कौन राजा है कि जो दया करके अपने सेवक को अपने योग्य बनाकर सदा अपनी सेवा लेता हो? अर्थात् कोई नहीं, अगर हैं तो श्री रामचन्द्र जी ही। जैसे जटायु को अपने समान दिव्य देह बनाकर भेजा। वैसे कहा है - **"गीध देह तजि धरि हरि रूपा। भूषण बहु पट पीत अनूपा। ।श्याम गात विशाल भुज चारी।अर. 31।1।"** **'भोगमात्रसाम्यलिंगाच्च।ब्र सू 4।4।21।'** श्रुति कहती है **'मम साधर्म्यमागता।'** ऐसे अपने समान बनाने वाले हैं तो एक भगवान् ही हैं।

29 ।श्रीराम जी के राज्याभिषेक के पूर्व वशिष्ठ जी के आज्ञानुसार राम जी सीता जी के साथ श्रीरंग मन्दिर में संयम-नियम के अनुसार शयन किये। उस समय राज शुभ सूचक सकुन हुआ। **"राम सिये तन सकुन जनाये। फरकही मंगल अंग सुहाये। अयो 6।4।"** अर्थात् राम जी के दाहिना और सीता जी के वाम अंग फरकने लगे।

प्रश्न - यह सकुन का फल प्रतिकूल क्यों ? न तो अभिषेक हुआ न राजा हुए और उलटा यह कि रात्रि-उपवास किये हुए भोर में भूषण वस्त्र उतारा जाना, कठिन प्रतिज्ञा कि ग्राम में न जाना, अन्न न खाना, भूमि पर शयन करना, वानप्रस्थों का नियम पालन करना कि जिसके कारण दशरथ जी का शरीर परित्याग, वनवास के कारण सीता हरण, लखन लाल को शक्ति लगना, नाग बन्धनादि कठिन दुःख हुआ, अयोध्या में घोर विपत्ति - यहाँ तक कि **'अपिवृक्षा परिम्लाना पुष्पांकुर कारका।बा रा अयो 59।4।'** अर्थात् लता गुल्मादिक सूख गये और चैतन्यों की तो दशा ही कहना क्या ? यह सब अपसकुन हुआ तो सकुन कैसा?

उत्तर - (क)श्री राम जी ने सुना कि पिता जी ने पंचों के सम्मुख यह प्रस्ताव रखा है कि राम जी को राजा बनाया जाय। ऐसा कहने पर सबों ने कहा कि अवश्य कीजिये। जब सर्व सम्मति से यह पास हो गया तब श्री राम जी को यह खटका कि **'विप्रोषितश्च भरतो यावदेव पुरादितः। तावदेवाभिषेकस्ते प्राप्तकालो मतो मम ।बा रा अयो 4।25।'** ऐसा क्यों ? **"रघुकुल रीति सदा चलि आई।प्रान जाय वरु वचन न जाई।अयो 27।2।"** अर्थात् प्राण दे देना उचित है किन्तु मिथ्यावादी होना नहीं चाहिए। सो पिता जी भरत को पूर्व में ही राज देने को कहकर अब हमें राजा बनाना चाहते हैं और भरत को धोखा दे रहे हैं। उनको खबर तक न देकर तुरत चुपके से राज देने की तैयारी हो रही है - **"राम हृदय अस विस्मय भयउ। अयो 9।2।"** यह चिन्ता की बात है और **"विमल वंश यह अनुचित एका।अयो 9।4।"** **"प्रभु सप्रेम पछताई अघाई।हरेहुँ भरत मन की कुटिलाई।अयो 9।4।"** यह एक ऐसा घोर अनुचित है जैसे दिव्य देह में एक श्वेत कुष्ठ का चिह्न ही यशस्वी कुल को कलंकित कर देते हैं। श्री राम जी इन सब विषयों से चिन्तित हैं- हमारे प्राण से प्यारे भरत से राजगद्दी छीनी जा रही है। कुलकलंक लगना चाहता है तथा मैं बन्धन में पड़ना चाहता हूँ। कहा भी है - **"नव गयंद रघुवंशमणि राज अलान समान।अयो. 51।"** जिस काल में श्री रामचन्द्र जी की राजगद्दी की तैयारी की गयी थी उस समय राजा दशरथ जी की अवस्था साठ हजार बीताकर पच्चीस वर्ष भी पूरे हो चुके थे। आगे उनकी आयु समाप्त हो चुकी थी और यह भी श्री रामचन्द्र जी सोच रहे थे कि अन्ध मुनि के शाप का कोई निमित्त नहीं तो उनका वचन भी मिथ्या होगा तो यह भी महान् धर्म के प्रतिकूल होगा। अतः उनके वचन को भी सत्य करने कराने का दायित्व मेरे ही ऊपर है। कारण कि हम कह चुके हैं कि **"धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।गी. 4।8।"** और इधर पिता जी राज्याभिषेक की तैयारी भी कर चुके हैं और गुरुदेव के आज्ञानुसार वाध्य होकर संयम-नियम में भी प्रवृत्त होना पड़ा। तथा इसके प्रतिकूल जो जो विषय उपस्थित है उनको लेकर श्री रामचन्द्र जी चिन्तित होकर उपाय ही ढूंढ़ रहे थे कि किस काल में शुभ सूचक अंग फरके हैं। इसलिए कि सब चिन्ता दूर होकर सब आश्रितों के साथ धवल यश की

ध्वजा संसार में फहरायेगी और मेरा ही नाम धर्म है और धर्म अधिष्ठातृदेव भी मैं ही हूँ। '**धर्माधर्म विदुत्तमः**। विष्णु सह. **43**।' सब कोई कहते हैं कि "**रामो विग्रहवान् धर्मः** । वा. रा. अर. **37**।**13**।" राम सीता जी को निन्द्रा न आने का कारण तथा इन सब द्वंद मिटने का तथा अपना और भक्त जनों का गुणगण कार्य सिद्ध होने का शुभ सकुन हुआ है। "**भरत प्रानप्रिय पावही राजू। विधि सब विधि भा सम्मुख आजु** । अयो **41**।**1**।" अर्थात् भरत भाई से मिलन होगा। अंग स्फुरण में शुभ सकुन जान-मान कर राम जी को प्रसन्नता होती है कि यह राज बन्धन से मैं मुक्त होऊँगा और भरत लाल का राज होकर और सब कुल कलंकता मिटने की संभावना हो रही है। राम जी "**धर्म धुरीन विषय रस रुखे** । अयो **41**।**1**।" राज नहीं चाहते हैं। (क) जंगल प्रस्ताव द्वारा भगवान्के सब अंगी-अंगों के गुणों का विकास हुआ है।

(ख) सीता जी के प्रति पत्नी के भाव, संबंध, सतीत्व धर्म तथा स्त्री जातियों को उपदेश "**प्रभा रहे कहँ भानु बिहाई। कहँ चन्द्रिका चन्द्र तजि जाई** । अयो **96**।**3**।" से संबंध, अग्नि-परीक्षा से सतीत्व "**तृण धरि ओट कहति वैदेही** । सुन्दर **8**।**3**।" स्त्रियों को अन्य पुरुषों से नेत्र मिलाकर नहीं बोलना चाहिए। जयन्त की रक्षा से शरण्य गुण और पुरुषकार गुण तथा लंका वनवास से सुग्गी (पक्षी) वचन का पालन। (ग) सुमित्रा-लक्ष्मण के प्रसंग से मातृत्व गुण तथा शेषत्व गुण का परम प्रकाश हुआ है। (घ) जड़ों को प्रेम, अवध का वृक्षादिक सुखना-मुरझाना और जंगल का "**सब तरु फलै रामहित लागी** । लंका **4** । **3** ।" (ङ) पशुओं का प्रेम "**रथ हाँके हय राम तब, हेरि हेरि हिहँनाही** । अयो. **99** ।" "**देखि दक्षिण दिसि हय हिहिनाहीं। जिमि बिनु पंख विहंग अकुलाहीं** । अयो **141**।**4**।" "**नहीं तृण चरहीं न पियहिं जल लोचन मोचत वारि** । अयो. **142** ।" (च) निषाद राज का प्रेम। (छ) भरत जी का प्रेम - "**भरत सरिस को राम सनेही। जग जपु राम राम जपु जेही** । अयो **217**।**4**।" पादुका का प्रभाव सबसे पहले भरत जाने हैं। भरत जी से पहले पादुका पूजने की प्रथा नहीं रही। यह धर्म भरत जी से प्रकाशित हुआ है। यह सबसे बड़ा धर्म है। "**भरत महा महिमा जल राशि। मुनि मति तीर ठार अवला सी** । अयो. **256**।**1**।" भरत जी के महत्व कहने में वशिष्ठ जी भी सामर्थ्यशाली नहीं हैं जैसे समुद्र तैरने में निर्बल जाति स्त्री। (ज) वनवासियों का प्रेम - "**जिन हेरे प्रभु जिन प्रभु हेरे** । अयो. **216**।**1**।" "**ते सब भये परम पद जोगु** । अयो. **216**।**1**।" "**कहु सखि मातु-पिता इन्ह कैसे। जिन पठये वन बालक ऐसे** । अयो. **110**।**4**।" (झ) सुतीक्ष्ण जी का प्रेम। (ञ) जटायु जी का जानकी जी के लिए प्राण देना और श्री राम जी द्वारा जटायु की मुक्ति। (ट) सब-विधि शवरी की भक्ति और पूजन।

30। "**सृंगी ऋषिही वशिष्ठ बुलावा। पुत्र लागि शुभ यज्ञ करावा।** । बाल **188**।**2**।" **प्रश्न** - रघुवंशियों के गुरु-पुरोहित व्रह्मा के पुत्र वशिष्ठ जी होते हुए भी पुत्रेष्ठि यज्ञ के लिए श्रृंगी ऋषि क्यों बुलाये गये ?

उत्तर - वेद को चार टुकड़े कर के ऋषियों को बाँट दिया गया था और वे ही उस वेद के अधिकारी हुए। कहा भी है श्रीरामायण तथा भागवत में - "**शिष्यैः प्रशिष्य तच्छिष्यैः वेदास्ते शाखिनोऽभवत्।** ।" उन्हीं मे से एक आथर्वणिक (अथर्व) वेदाधिकारी श्रृंगी ऋषि थे जिन्होंने कहा है कि "**इष्टि तेहं करिष्यामि पुत्रियां पुत्रकारणात्।** ।" श्रृंगि ऋषि अथर्व वेदाधिकारी थे इसलिए पुत्रेष्ठि यज्ञ में बुलाये गये थे। वशिष्ठ जी अथर्व वेदाधिकारी नहीं थे इसलिए उनके रहते हुए भी श्रृंगी ऋषि बुलाये गये।

31। "**प्रौढ़ भये तेहि सुत पर माता। प्रीति करै नहीं पाछिल बाता** । अर **42**।**4**।" **प्रश्न** - वह पीछे की बात क्या है?

उत्तर - (क) जो जीव माता के अहार के अधीन सुख-दुख भोगता रहा है, जैसे माता के वायुकारक भोजन से पुत्र के उदर में दर्द होता है उसी प्रकार से कठिन भोजन से बच्चे को अजीर्ण होता है, सर्द भोजन से सर्दी, गरम से दाह। यह सब गुण-दोष माता के दूध में हो जाता है और बच्चा स्वयं भोजन पर रहता है, तब माता का दूध छोड़ देता है। तब वह बात नहीं रहती है कि माता के भोजन पर बच्चे को सुख या दःख हो। (ख) अथवा सदा माता बच्चे को गोद में रखती है, दूध पिलाती है, बच्चे के रोग को दूर करने के लिए स्वयं दवा खाती है - ऐसा नहीं होता है। (ग) अथवा बच्चा अज्ञानवश आग, सर्प विच्छू को भी धर लेता है इसलिए माता को चिन्ता रहती है - ऐसी बात नहीं रहती है। (घ) छोटे बच्चों को संग का दोष भी लगता है इससे बचाना पड़ता है और प्रौढ़ों के लिए माता निश्चिन्त रहती है। (ङ) इसी प्रकार बच्चों को सद्गुणी बनाने का दायित्व माता पर रहता है और

प्रौढ़ावस्था में सब गुण प्राप्त कर लेता है जिससे माता के हृदय में संतोष हो जाता है – अतः यही पाछिल बाता है।

32 । "**जे ज्ञान मान विमत्त तव भव हरनि भक्ति न आदरी। ते पाय सुरदुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरि** । उ. 12 । छंद 3।" **प्रश्न –** सुरदुर्लभ पद से पतन होना कौन पद है ? क्योंकि मुक्ति पाकर गिरना संसार में नहीं होता है।

उत्तर – जैसे कहा है कि "**यद गत्वा न निवर्तन्ते** । गी. 15 । 6 ।" "**न तस्य पुनरावर्ति** ", "**गई सो जहँ नहीं फिरै।** ।" शबरी के समान ही कैवल्य आत्मानुभावियों को भी संसार से निवृत्ति होने पर भगवान्‌के परमधाम नहीं जाकर भगवत् प्राप्ति विना भी आत्मानुभवी बनकर कैवल्य स्थान में रहकर नित्य के समान ही रहते हैं। उनका भी पतन नहीं होता है और यह स्थान भी देवताओं को दुर्लभ है। उसी प्रकार देवताओं को मुक्ति भी दुर्लभ है। "**साधन धाम बिबुध दुर्लभ तनु मोहिं कृपा करि दीन्हीं** । वि. पत्रिका 102 ।" यहाँ पर धाम और पद मनुष्य-देह का वाचक है। जब उसे पाकर भी अगर मुक्ति की प्राप्ति नहीं हुई और संसारी ही बने रहे- वही पतन है। तथा यहाँ से नरक भी जाना पतन होता है। जीवन मरन में नरक स्थान दक्षिण अधोभाग में है। वहाँ जाना ही पतन है।

मनुष्य -देह देवता की देह से उत्तम है क्योंकि देव-देह से मोक्ष नहीं मिलता है। मनुष्य देह से ही मोक्ष की प्राप्ति हाती है। अतः मनुष्य-देह देव-देह से उत्तम है।इस देह से मोक्ष का द्वार पाकर मोक्ष का न मिलना ही पतन है। "**सुर दुर्लभ सुख करी जग माहीं। अन्तकाल रघुपति पुर जाहीं** । उ 14 । 2 ।" इस प्रकार देवदुर्लभ मनुष्य देह है। "**गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे** । वि पु 2 । 3 । 24 ।" भारत का ही मनुष्य देह देवदुर्लभ है न कि अन्यत्र कहीं का।

33 । **प्रश्न –** यदि रामजी हित चाहते हैं तो मारे क्यों ? "**काजु हमार तासु हित होई। रिपु सन करब बत कही सोई** । लं 16 । 4 ।" अये ! अंगद सुनो, हमारा काम होते हुए भी शत्रु रावण का भी जिसमें परम हित हो वही तुम रावण से बातचीत करना। भाव यह है कि हमारा काम होकर ही रहेगा। जैसे लखन लाल कहे कि "**जो सत शंकर करै सहाइ। तदपि हतौं रन राम दुहाई** । लं. 74 । 7 ।" वैसे "**राम विरोध न उविरहहु सरन विष्णु अज ईस** । सु. 56 ।" किन्तु रावण का नाश होना चाहिए कारण कि विभीषण का भाई है इसलिये उसकी भी हम रक्षा ही चाहते हैं। इस प्रकार समझना कि जिसमें लड़ाई न होकर दोनों प्रतिवादियों कुशल से रहें। अथवा हित चाहते हैं तो रिपु अर्थात् शत्रु क्यों कहते हैं ?

उत्तर – यह भगवान्‌में परमोत्तम गुण है कि शत्रुता होने पर भी कल्याण चाहते हैं। "**अरिहुक अनभलकीन्ह न रामा** । अयो 182 । 3 ।" गुण का फल जानना चाहिए। रावण का हित के विषय में वचन – "**मम जन कहिं तोहि रही मिताई। तव हित कारण आयेहुँ भाई** । लं. 19 । 1 ।" "**अब शुभ कहा सुनहु तुम मोरा। सब अपराध छमहिं प्रभु तोरा।** ।" '**दशन गहहु तृन कंठ कुठारी। परिजन सहित संग निज नारी।** ।' '**सादर जनकसुता करि आगे। एहि विधि चलहु सकल भय त्यागे** । 'लं. 19 । 3-4 ।" "**प्रणतपाल रघुवंश मनि त्राहि त्राहि अब मोहि। आरत गिरा सुनत प्रभु अभय करैगे तोहि** । लं. 20 ।"

"**सुनु रावन परिहरि चतुराई। भजसि न कृपासिंधु रघुराई।** ।' '**जौं खल भयेसि राम कर द्रोही। ब्रह्म रुद्र सक राखि न तोहि** । 'लं. 26 । 1 ।"

34 । सुन्दर काण्ड में सब ही सुन्दर है। जामवान यह जो कहे कि "**राम काज लगि तव अवतारा** । किष्क. 29 । 3 ।" यह देह रामकाज के लिए है- ऐसा ज्ञान सुन्दर है और उसी प्रकार राम सम्बन्धी सभी कर्म सुन्दर है। (क) "**रामकाज सब करिहहु तुम बल बुद्धि निधान** । सु.2 ।" यह आशीष सुन्दर है। सुरसा की परीक्षा में पास होना, '**हरषि चले हनुमान** । सु.2 ।'- सुन्दर भगवत् कैंकर्य होगा। यह परम प्रसन्नता की बात सुनाना आनन्द है। (ख) "**रामकाज करि फिरि मैं आवौं। सीता की सुधि प्रभुहि सुनावौं** । सु.1 । 2 ।" "**सत्य कहहुँ मोहि जान दे माई** । सु. 1 । 3 ।" यह कैंकर्य करके तुम्हारे मुख में बैठेगें अर्थात् विघ्नकारिणी से चतुरता पूर्वक छुटकारा सुन्दर है। (ग) "**अस मैं अधम सखा सुनु मोहु पर रघुवीर। किन्ह कृपा सुमरि गुण भरे विलोचन नीर** । सु. 7 ।" दोनों भागवतों के परस्पर मिलने में ही सुन्दर सुख है और हनुमान्‌के रूप में प्रेम का चिह्न तथा नेत्र में जल विकृत है। यह सुन्दर है। (घ) "**रामचन्द्र गुण बरनै लागे। सुनतहि सीता के दुख भागे** । सु. 12 । 3 ।" रामजी की सुन्दर कथा से सीता जी का दुःख दूर हो गया। "**श्रवनामृत जेहि कथा सुनाई** । स. 12 । 4 । यह कथा ही सुन्दर अमृत है। (ङ) "**जाना मन क्रम वचन यह कृपा सिन्धु के दास** । सु. 13 ।" सीता जी ने हनुमान्‌को सुन्दर राम-दास जानकर ही

उनपर कृपा की है। (च) "बुड़त विरह जलधि हनुमाना। भयहु तात मो कहु जलजाना। सु 13।1।" भाव यह है कि डूबती हुई सीता के हनुमान् ही सुन्दर आधार हुए हैं। अतः भगवान्‌के भक्त ही संसार से निकालने वाले सुन्दर आधार हैं। (छ) "रघुपति बान कृसानु निसचर निकर पतंग सम। ......जरहि निसाचर जानु। सु. 15।" यह उदाहरण परम सुन्दर है। ऐसा विश्वास ही सुन्दर है। (ज) "आशीष दीन्ह रामप्रिय जाना। होहु तात गुण ज्ञान निधाना। सु 16।1।" "अजर अमर गुणनिधि सुत होहु। सदा करहि रघुनायक छोहु। सु 16।2।" हे पुत्र ! तुम शेषत्व गुणनिधि होवो।

"शुभं वा पापं वा विगुण विपुलं वा गुण युतं। विदीनं दीनं वा चपल मति वा निश्चलमति।।

सदैवं तेहं भो मम तव सदा सन्धिरचला। इतिज्ञात्वाभीकं सकल समयं निर्भर सुखी।।" अर्थात् भक्त भगवान्‌से कहते हैं कि मैं शुभकर्म करने वाला हूँ अथवा पाप कर्म करने वाला हूँ, पुण्यात्मा हूँ या पापात्मा हूँ, चाहे गुणहीन हूँ या बहुत गुण युक्त हूँ, चाहे मैं दीन हूँ या अदीन, चाहे चंचल बुद्धि वाला हूँ या निश्चल बुद्धि वाला हूँ, हे भगवन् ! मैं कुछ भी हूँ - हमारा आपके साथ अचल सम्बन्ध है ऐसा जानकर सदा आपके भरोसे निश्चिन्त होकर सुखी रहता हूँ। (झ) "अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता। सु 16।3।" ऐसी विलक्षण बुद्धिमत्ता के कारण अपने को धन्य-धन्य माने हैं। हनुमान्‌ने अपना आत्मलाभ समझा - यह ज्ञान सुन्दर है। (ञ) "केतिक बात प्रभु जातु धान की। रिपुहि जीति आनियजानकी। सु 31।2।" ऐसी विह्वलता में किसी को साहस धैर्य देना सुन्दर बुद्धिमानी का काम है। यह एक अत्यन्त ही चतुर दूत का काम है। (ट) "सुनु कपि तोहि समान उपकारी। कोउ नहीं सुर नर मुनि तनुधारी।। 'प्रति उपकार करौं का तोरा। सन्मुख होइ न सकै मन मोरा।।' 'पुनि पुनि कपिहि चितव सुर त्राता। लोचन नीर पुलकि अति गाता। सु. 31।3 एवं 4।" सीता माता के तात्कालिक आशीष से यह भगवान्‌की सुन्दर कृपा हुई है। यहाँ भगवान्‌की सुन्दर कृपा हुई - गुण का सुन्दर विकास हुआ है और बानर की देह के समान किसी भी देवता, मुनि, मनुष्य को ऐसी देह नहीं मिली है। अर्थात् इस देह से हनुमान्‌ने कैंकर्य किया है, वैसा हमारी देह से प्रतिउपकार नहीं होगा। इससे हम सदा तुम्हारे ऋणी रहेंगे। ऐसा वचन कहते हुए भगवान् खड़े हो गये और नेत्र से प्रेमाश्रु झर- झर गिरने लगे। भगवान् की ऐसी दशा देखकर हनुमान्‌ने आकुल होकर -

(ठ) "चरण परेउ प्रेमाकुल त्राहि त्राहि भगवंत। सु. 32।" त्राहि नाथ ! त्राहि नाथ ! कहकर भगवान्‌के चरणों पर हनुमान् गिर गये। यह अत्यन्त ही सुन्दर चतुरता है। (ड) "प्रभु पद पंकज कपि कर सीसा। सुमिरि सो दसा मगन गौरीशा। सु. 32।1।" भगवान्‌के चरण कमल पर हनुमान्‌का मस्तक है और हनुमान्‌के मस्तक पर भगवान्‌का हस्तकमल है। यह दशा स्मरण करके महादेव जी मनमग्न हो गये हैं। यह सेव्य-सेवक का भाव सुन्दर है।

(ढ) "कपि उठाय प्रभु हृदय लगावा। कर गहि परम निकट बैठावा। सु. 32।1।" हनुमान्‌को भगवान्‌ने बलात् उठाकर अंक में लगा लिया और फिर हाथ धर कर समीप में बैठा लिया। 'राम काज लगि तव अवतारा। किष्क. 29।3।' कैंकर्य में ही जन्म का फल बतलाया है। यह उपदेश अत्यन्त ही सुन्दर है। (ण)पहले भगवान् कहे थेकिमैं तुम्हारा ऋणी बना रहूँगा। इसलिए हनुमान ने विचार किया कि भगवान्‌को ऋणी बनाना अच्छा नहीं है। अतः इनसे कुछ मांग लेना ही अच्छा है अन्यथा भगवान्‌के मन में सदा संकोच बना रहेगा। ऐसा देखकर हनुमान्‌ने भगवान्‌से ऐसा कहा - "नाथ भक्ति अति सब सुख दायिनी। देहु भक्ति मोहि प्रभुअनपायिनी। सु. 33।1।" भाव यह है कि भगवान्‌के ऊपर कुछ देने का दायित्व न रह गया। यह सब सुन्दर काण्ड में सुन्दरता है।

35। "प्रभु पद पंकज कपि कर सीसा। सुमिरि सो दसा मगन गौरीशा। सु. 32।1।" **प्रश्न** - हनुमान्‌के लाभ से महादेव जी को प्रसन्नता क्यों ?

उत्तर - अच्छे लोग दूसरे के लाभ को अपना लाभ समझकर प्रसन्न होते हैं। जैसे - "पर दुख दुख सुख सुख देखे पर। उ. 37।1।" अथवा कोई हनुमान्‌जी को रुद्रावतार मानते हैं। इससे महादेव जी को अत्यन्त हर्ष हुआ कि एकादश रुद्र में से किसी एक रुद्र पर हस्त कमल पड़ने की कृपा नहीं हुई। केवल हनुमान्‌के अवतार होने पर ही भगवान्‌के हस्तकमल पड़ने की कृपा हुई है। इसलिए गौरीश प्रेम में मग्न हुए हैं।

अथवा श्रीराम जी का कृतज्ञता गुण तथा उदारता गुण यहाँ प्रत्यक्ष रूप से चरितार्थ हुआ है। यह जानकर भी महादेव जी अत्यन्त

प्रसन्न हुए कि हमारे स्वामी ऐसे कृतज्ञ और उदार हैं। इन्हीं गुणों के कारण वे भक्त के ऋणी बन जाते हैं। कारण कि "दातुनालंवशंगतः" भक्तों को देने पर कोई वस्तु न देखकर विवश होकर ऋणी बन जाते हैं।

36। "**वरू अपयश सहतेउ जगमाहीं। नारि हानि विशेष छति नाहीं**। लं. 60।6।" वह कौन अपयश सहने पर तैयार हैं ? विशेष क्षति क्यों नहीं ?

उत्तर - (क) विवाह-काल में पति-पत्नी एक साथ शरीर की छाया के समान रहने की जो प्रतिज्ञा किये थे अगर जानकी को साथ नहीं लाते तो अपयश होता कि रामजी ने विवाह कालिक प्रतिज्ञा का पालन नहीं किया। भाव यह है कि अगर जानकी साथ नहीं आती लंका की लड़ाई का संयोग नहीं होता।

(ख) सीता के हरण होने पर भी अगर लंका की लड़ाई नहीं होती तो जानकी प्राणान्त कर देती और लखन लाल की मृत्यु नहीं होती। विना स्त्री के रहना उतना हानिकारक नहीं है जितना हानिकारक लखनलाल की मृत्यु है। भाव यह है कि लक्ष्मी के विना भगवान् रहे हैं किन्तु शेष के विना नहीं रहे हैं। '**नारी हानि विशेष छति नाहीं**।' मैं अगर जानकी के विना संन्यास-आश्रम ग्रहण कर लेता तो कुछ भी हानि नहीं होती।

37। "**दीन जानि प्रभु निज पद दीन्हा**। बा **208**।**3**।" **प्रश्न -** ताड़का को मारीच और सुबाहु ऐसे बलवान् पुत्र होने पर तथा स्वयं भी बलवती रहने पर उसे दीन क्यों कहा गया ?

उत्तर - स्त्रियों के लिए विधवावस्था सबसे दीनावस्था होती है और राक्षसी योनि पापमय होने पर भी पाप करना जिससे सदा नरक वास हो वही दीनावस्था है। यही देखकर भगवान्ने मुक्ति दी है।

38। "**अस्थि शैल सरिता नस जारा। रोमावली अष्टदस भारा**। लं. **14**।**4**।" यद्यपि भार शब्द तौल परिमाण वाचक है फिर भी प्रसंगवश यहाँ पर संख्या वाचक जानना चाहिए जैसा कि यह पद का टुकड़ा है।

"**द्वादश कोटि वृक्षवन लक्ष तीस सुनलीजै। सोरह सत अरु आठ एक तेहि भार गनीजै**।" अर्थात् **12,30,01,608** बारह करोड़ तीस लाख एक हजार छः सौ आठ को एक भार कहते हैं।

"**चार भार वन पुष्प चार फलफूल विराजै। षड़ बेली भू भार चार सिर कंटक राजै**।"

चार भार पुष्प जाति - **49,20,06,432**। चार भार फल जाति - **49,20,06,432**।

छः भार लता जाति - **73,20,09,648**। चार भार काँटा जाति - **49,20,06,432**।

39। साधनात्मिका भेद-शक्ति (षोडश भक्ति- विधि)

आद्यं तु वैष्णवं प्रोक्तं शंखचक्रांकणं हरेः धारणं चोर्ध्वपुण्ड्राणां तन्मंत्राणां परिग्रहः।
अर्चनं च जपो ध्यानं तन्नाम स्मरणं तथा कीर्तनं श्रवणं चैव वन्दनं पाद सेवनम्।
तत्पादोदकसेवा च तन्निवेदित भोजनं तदीयानां च सेवा च द्वादशी व्रतनिष्ठितम्।
तुलसीरोपणं विष्णोर्देवदेवस्य शार्ङ्गिणः भक्ति षोडशधा प्रोक्ता भववन्ध विमुक्तये।

अर्थ - आयुध धारण, तिलक धारण, मंत्र ग्रहण, पूजन-अर्चन, जाप -ध्यान, स्मरण- कीर्तन, श्रवण-वन्दन, चरण-सेवा, चरणामृत लेना, प्रसाद सेवन, वैष्णव-सेवा, व्रत, तुलसी सेवा।

(अर्थात **1**। गुरू से शंख चक्रांकित होना। **2**। तिलक धारण। **3**। गुरू से मंत्र ग्रहण। **4**। पूजा अर्चना। **5**। मंत्र जाप। **6**। भगवत ध्यान। **7**। भगवत नाम स्मरण। **8**। लीला कीर्तन। **9**। भगवत कथा श्रवण। **10**। भगवत वंदना। **11**। भगवत चरण सेवा। **12**। चरणामृत ग्रहण। **13**। भगवत प्रसाद ग्रहण। **14**। वैष्णव सेवा। **15**। व्रत करना। **16**। तुलसी सेवा।)

अष्टविध भक्ति ः

मद् भक्तजनवात्सल्यं पूजायां चानुमोदनम्। स्वयमभ्यर्चनं चैव मदर्थे दम्भवर्जनम्।
मत्कथाश्रवणं प्रीतिः स्वरनेत्रांगेविक्तया। ममानुसरणं नित्यं यच्च मां नोपजीवति।

अर्थ - भक्तों से प्रेम, पूजन में प्रसन्नता, स्वयं अर्चनम्, भागवताभिमान, कथा श्रवण, अंग विकृत-रोमांच नेत्र में जल बहना,

भगवदनुसंधान हीं जीवन जिसका है।
(अर्थात 1। भक्तों से प्रेम। 2। पूजा में प्रसन्नता। 3। अर्चना। 4। वैष्णवों का सम्मान। 5। कथा श्रवण। 6। रोमांच एवं आंसू बहाना। 7। नाम स्मरण। 8। लीलागुण का मनन करते हुए जीवन बिताना।)

नवविध भक्ति -

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्। भा 7।5।23। यानी **1**। कथा श्रवण। **2**। लीला कीर्तन। **3**। नाम स्मरण। **4**। चरण सेवा। **5**। पूजा। **6**। स्तुति। **7**। कैंकर्य। **8**। मित्रता या कोइ सम्बन्ध रखना। **9**। आत्मसमर्पण।

मानस की नवधा भक्ति - अरण्य दो **34**। **4** से **35**। **3** तक।

प्रथम भगति संतन कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा। 34। 4।
गुरु पदपंकज सेवा तीसरि भगति अमान। चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान। । दो **35**।
मंत्र जाप मम दृढ़ विश्वासा। पंचम भजन सो वेद प्रकासा।।
छठ दम शील विरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा। 35। 1।
सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोते अधिक सन्त पर लेखा।।
आठवँ यथा लाभ संतोषा। सपनेहुँ नहि देखइ पर दोषा। 35। 2।
नवम सरल सब सन छल हीना। मम भरोस हिय हरष न दीना। 35। 3।

40। "**उर कछु प्रथम वासना रही। प्रभु पद प्रीति सरित सो बही।** सु **48**। **3**। " **प्रश्न -** वह वासना कौन रही ?

उत्तर - विभीषण जब अयोध्या से रंगनाथ भगवान्को लेकर चले और कावेरी नदी के किनारे पहुँचने पर भगवान् वहाँ रह गये तब उस स्थान को रंगपुरी ऐसा नाम पड़ा और भक्तवर विभीषण लंका के राज करते हुए भी प्रेमवश समय-समय पर भगवान्की पूजा किया करते थे और इस जन्म के पूर्व भी "**सो मागेउँ भगवन्त पद कमल अमल अनुराग** । मानस बा 177। " और मुमुक्षु होने के कारण जैसे कहा है कि "**कदाहमैकान्तिक नित्य किंकरः प्रहर्षयिष्यामि सनाथ जीवितः** । आलवन्दार स्तो. रत्न 46। " अर्थात् इस संसार से मुक्त होकर नित्य विभूति एवं नित्य मुक्तों की गोष्ठी में पहुँच कर तथा अनेक रूप देह धारण कर वैकुण्ठनाथ पर वासुदेव भगवान् की कब सेवा करेंगे यही वासना उनमें थी। परन्तु जब श्री रामचन्द्र जी मिले तो विभीषण यह जाने कि जिस भगवान्की सेवा करने को मैं चाहता था वह भगवान् हमको यहाँ ही मिल गये। मनोरथ पूर्ण हो गया और वासना नष्ट हो गयी। वे श्री रामपद प्रेमी बने।

41। "**भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ। याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम्।** मानस बाल मंगलाचरण **2**। " श्रद्धा और विश्वास होने परअपना अन्तःकरण व्यापी ईश्वर को कैसे देख सकते हैं ? क्योंकि व्यापक अर्न्तयामी ईश्वर का रूप तो है नहीं और रूप ही को ग्रहण करने वाली दृष्टि आँख देख सकती है तो अरूप को नहीं देखेगी यह प्रश्न है?

उत्तर - गुरु के उपदेश से श्रद्धा और विश्वास होने पर ईश्वर में भक्ति होती है। वह भक्ति होने पर भक्त के हृदय में व्यापक ब्रह्म मूर्तिमान्और सुन्दर रूपवान् बन जाते हैं और वह रूप को भक्त लोग देखते हैं। कहा भी है "**अंगुष्ठमात्रं रवितुल्यतेजः सदा जनानां हृदि संनिविष्टः।।**" "**बसहु लखन सिय सह रघुनायक** । अयो **127**। **4**। " यह रहस्य है।

42। "**जब सठ किन्ह राम कर निन्दा** । लंका **31**। **1**। " प्रश्न - वह निंदा वचन कौन है?

उत्तर - निन्दा कहते हैं मि थ्या दोष लगाने को। जैसे रावण ने कहा कि "**...बल प्रताप बुधि तेज न ताकें** । लं **30**। **4**। " अर्थात् राम जी में बल, प्रताप, बुद्धि, तेज नहीं है यह झूठ दोष लगाना निन्दा है। जिनके विषय में कहा है कि "**जाके बल प्रताप के आगे। ससि मलीन रवि सीतल लागे।** " और कहा है कि - "**यच्चन्द्रमसि यचाग्नौ तत्तेजो विद्धिमामकम्** । गी. **15**। **12**। " अर्थात चन्द्रमा में, सूर्य में, अग्नि में तेज हमारा है।

"**अगुन अमान विचारि तेहि दीन्ह पिता वनवास। सो दुख अरु जुवती विरह पुनि निसि दिन मम त्रास।।**"
"**जिन्ह के बलकर गर्व तेहि ऐसे मनुज अनेक। खाहिं निशाचर दिवस निसि मूढ़ समुझु तजि टेक** । लं **31**। "

अर्थात् दिव्य गुण वाले को गुणहीन कहता है। जिनके चरणकमल के लिए ब्रह्म-इन्द्र-रुद्र तरसते हैं उनको अमान कहता है और

जिनके डर से लोक काँपता है, काल भी डरता है, कहा भी है - "जाके डर अति काल डराइ। सो सुर असुर चराचर खाई। सु 21।5।" उनको रावण अपने डर से डरा हुआ बताता है। यही मिथ्या दोष लगाने को निन्दा कहते हैं।

43। "औरो एक गुपुत मत सबहि कहउँ करजोर। संकर भजन बिना नर भक्ति न पावै मोर। उ. 45।" क्या शिव जी के भजन विना राम भक्ति नहीं मिल सकती है ? यही नियम है ?

उत्तर - (क)ऐसी बात नहीं है। कारण कि ध्रुव प्रह्लादि शिवनाम विना ही भक्त हुए हैं तथा राम जी कहे हैं कि - "तात भगति मम सब सुखमूला। मिलइ जो सन्त होहिं अनुकूला। अर. 15।2।" यह सन्तों की प्रसन्नता बताई गई है।

(ख) "अविरल भक्ति विशुद्ध तव श्रुति पुराण जो गाव। जेहि खोजत योगीश मुनि प्रभु प्रसाद जो पाव। उ. 84 क।" इसमें भगवान् की प्रसन्नता से मिलने की बतायी गयी है। गरुड़ कहे हैं - (ग) "सोइ निज भक्ति मोहिं प्रभु देहु दया करि राम। उ. 84। ख।" "एवमस्तु कहि रमानिवासा (रघुकुलनायक)। उ. 84।1।" इस प्रकार स्वयं भगवान् काकभुसुंडी जी को भक्ति दिये हैं। इसी तरह का लोमश का वचन है - (घ) "राम भगति अविरल उर तोरे। बसहि सदा प्रसाद अब मोरे। ।उ. 112।8।" (ङ) "सो मनि जद्यपि प्रगट जग अहई। राम कृपा बिनु नहीं कोई लहई। उ. 119।6।" इसमें भगवान् की कृपा से भक्तिमणि मिलने को कहा है। जैसे - (च) "भाव सहित जो खोजइ प्रानी। पाव भगति मनि सब सुख खानी। उ. 119।8।" (छ) "सब कर फल हरि भगति सुहाई। सो बिनु सन्त न काहूँ पाई। उ.119।9।" इसमें सन्त द्वारा भक्ति द्वारा मिलने को कहा। (ज) "अस बिचारि जो कर सतसंगा। राम भगति तेहि सुलभ बिहंगा। उ. 119।10।" (झ) "मुनि दुर्लभ हरि भगति नर पावहिं बिनहिं प्रयास। जे यह कथा निरन्तर सुनहिं मानि विश्वास। उ. 126।" (ञ)भरत जी से भरद्वाज - "राम भगति अब अमिय अगाधू। किन्हेसु सुलभ सुधाा सब काहू। अयो. 208।3।" इसमें अवधवासियों की स्वाभाविक भक्ति बतायी गयी है। (ट) "जोग यज्ञ तप ब्रत कीन्हा। प्रभु कह देई भगति वर लीन्हा। अर. 7।4।" इसमें साधनों से भक्ति बदली गयी है। (ठ) "अविरल प्रेम भक्ति मुनि पाई। प्रभु देखहि तरू ओट लुकाई। अर. 9।7।" इसमें स्वाभाविक भक्ति है। सुतीक्ष्ण। (ड) "अविरल भक्ति मांगी वर गीध गयेउ हरि धाम। अर. 32।" भगवान्से भक्ति मांगकर रामधाम को चले गये। (त) "भगति प्रताप तेज बल खानी। आशिष दीन्ह रामप्रिय जानी। सु. 16।1।" सीता जी ने हनुमान जी को भक्ति का आशीष दिया। (थ) "नाथ भगति तव सब सुखदायिनी। देहु कृपा करि सो अनपायनी। सु. 33।1।" हनुमान्ने भगवान्से अनपायिनी भक्ति मांगी। (द) नारद भगवान्से भक्ति मांगे हैं -"राका रजनी भक्ति तब राम नाम सोई सोम। अपर नाम उडगन बिमल बसहु भक्त उर ब्योम। । एवमस्तु मुनि सन कहेउ......। अर. 42।" "एवमस्तु कहि रमानिवासा। अर 11।1।"

उपर्युक्त सभी प्रमाणों से सिद्ध हुआ कि भक्ति का कारण शंकर भजन नहीं है किन्तु शंकर शब्द का अर्थ यों है - शम् कल्याणं करोति इति शकरः। राम नाम तस्य भजनम्तेन बिना भक्तिः न भवति। अर्थात् राम नाम के बिना भक्ति नहीं मिलती है यही अर्थ युक्तिसंगत होगा।

गुप्त नाम श्री रामचन्द्र जी का अवतार का है। जैसे कहा है कि - (ध) "गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु गये जान सब कोई। बाल 48।" सोई श्री रामचन्द्र जी कहते हैं कि शंकर अर्थात् कल्याण करने वाला जो हमारा राम नाम है उसके भजन बिना हमारी भक्ति कोई नहीं पा सकता है। यह भी एक गुप्त ही रहस्य है।

44। "कहियेन सठहि हँठहि हठ सीलहीं। नहिं मन लाय सुनहिं हरि लीलहीं। ।उ. 127।2।"प्रश्न - इन चारों से क्यों नहीं कहना चाहिए ? उत्तर - जवतक वेद ब्रह्मा तथा देवगण और मुनिगण के हृदय में रहा था तबतक उसका अर्थ उत्तम यथातथ्य बता रहा था और जब दैत्य और राक्षसों के हृदय में आया अर्थात् दैत्य और राक्षस सब वेद पढ़े तो उसका अर्थ विपरीत होकर प्रतिकूल पाषण्ड रूप हो गया। जैसे - "भयउ यथा अहि दूध पिलाये। उ. 105।3।" जैसे सर्प को दूध पिलाया हुआ विष हो जाता है वैसे ही रामायण का अर्थ विपरीत हो जायेगा। इसलिए रोका गया है कि अनधिकारियों को नहीं कहना चाहिए। इसलिए कि नास्तिक सब श्री राम जी को प्राकृत पुरुष राजपुत्र मान लेंगे, किन्तु कहा है कि "जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्वतः। गी 4।9।" न तस्य प्राकृतमूर्तिः मांसमेदोस्थिसंभवा। । इस प्रकार दोनों विषयों को सुनकर पण्डितवर श्री रामलखन शर्मा जी तथा और सब वैष्णवगण कृत-कृत्य हो

गये तथा इस प्रसंग से विराम किया गया।

श्रीमते रामानुजाय नमः

गोपालपुर निवासी वैद्य माधवाचार्य जी के अधोलिखित चार प्रश्न हैं -

45। "**तेहि अवसर तापस एक आवा। तेज पुंज लघु वयस सुहाबा।।**

कवि अलखित गति बेष बिरागी। मन क्रम बचन राम अनुरागी। अयो 109।4।" इस चौपाई को कुछ लोग क्षेपक मानते हैं और कुछ लोग मूल पाठ जानते हैं। इस प्रकार '**तापस एक आवा**' इस अंश के तपस्वी को कोई हनुमान्को बताते हैं, कोई अग्निदेव को कोई तीर्थराज को और कोई वेणीमाधव को बताकर कई प्रकार का मतभेद दिखाते हैं। किन्तु इसका वास्तविक रहस्य यह है -

यह प्रसंग उस समय का है जब भगवान् श्री रामचन्द्र जी वनगमन के प्रसंग में गंगा और यमुना नदी को पार कर वाल्मीकि आदि महर्षियों से विदा लेकर यमुना के किनारे किनारे जा रहे थे। उसी समय मानसकार तुलसीदास को यह स्मरण हुआ कि जैसे सुपुत्र प्रह्लाद ने अपने पिता हिरण्यकशिपु के लिए वरदान मांगा था कि मेरे पिता का कल्याण हो और भगवान्कहे कि "**भवान् वै कुलपावनः**।भा. 7 ।10।18।" अर्थात् हे प्रह्लाद ! तुम्हारा "**दश पूर्वान् दशापरान्**।" दस पुरुष नीचे से दस पुरुष आगे तक के लिए सबों का कल्याण होगा। श्रीवैष्णवों के लिए यह कहा गया है "**श्रीवैकुण्ठनाथस्य द्वारदेशावलम्बिनः**।" अर्थात् भगवद् भक्तों के पूर्वज वैकुण्ठ में भगवान् की दिव्यगोष्ठी में पहुँच कर भगवान् की सेवा किया करते हैं। तो भगवान् रामचन्द्र जी जब हमारी जन्मभूमि पर अवतरित हुए हैं तो मैं तो अपने पिता द्वारा इनकी सेवा कराउँ। वस इसी विचार से तुलसीदास ने अपने पिता का स्मरण किया और वे आ गये जिनका वेष तपस्वी का किशोरावस्था वाला था। इसी वेष में वे भगवान्की सेवा किये थे। चौपाई में लघुवयस शब्द से भगवान्की सरूपता का वर्णन किया गया है। "**सदा वयसि कैशोरे**।भा. 3 ।28।17 ।" भगवान् सदा किशोरावस्था में ही रहते हैं। मुक्त पुरुष भी उसी अवस्था में सदा विराजमान रहकर भगवान्की सेवा किया करते हैं। इसीलिए तुलसीदास भी अपने पिता को भी इसी रूप में अनुसन्धान् किए थे और वे उसी रूप में आये भी। कवि ने अपने शब्दों द्वारा उनकी स्तुति प्रार्थना का अनुसन्धान किया है। विरागी शब्द से '**तृणीकृत विरञ्च्यादि**' मुक्तलोग ब्रह्मादि लोकों को भी तुच्छ समझते हैं, इसी विषय को बताया गया है। '**राम अनुरागी**' शब्द से भगवान्के चिन्तन का अनुसन्धान किया गया है। मुक्त पुरुषों को कभी भी भगवान्से विश्लेष नहीं होता है। इसीलिए सेवा के बाद भी संग से पृथक् नहीं किया गया है। इसी प्रसंग में अपने कुल की प्रशंसा नहीं समझी जाये इसलिए नाम नहीं कहा गया है। यह सब मानसिक भावना है न कि बाह्यवृत्ति व्यवहार, यही गुप्त रहस्य है।

46। "**मंत्री विकल विलोकि निषादू। कहि न जाय जस भयउ बिषादू।।** अयो 141।4।

तुम पंडित परमारथ ज्ञाता। धरहु धीर लखि विमुख विधाता।।

विविध कथा कही कही मृदु वानी। रथ वैठारेउ बरबस आनी। अयो 142।1 तथा 2।"

यह प्रसंग उस समय का है जब सुमन्त जी श्री राम जी को जंगल पहुँचाकर अयोध्या लौटे हैं। निषाद ने सुमन्त जी को श्री राम जी के विरह में व्याकुल देखा है तब वह अनेक प्रकार से अनेक प्रकार की कथायें कहकर उनको समझा बुझाकर सान्त्वना देकर रथ पर वैठाया है। प्रश्न होता है कि निषाद ने कौन-कौन सी कथायें कह उनको समझाया था ?

उत्तर - निषाद ने सुमन्त को पण्डित और परमारथ ज्ञाता ये दोनों विशेषण दिया है। परमारथज्ञाता वह स्वयं भी था तभी तो वह ऐसा कहा है- सुमन्त जी ! आप तो यह स्वयं जानते हैं कि इस संसार में जो आता है उसको सुख-दःख, संयोगादि-वियोगादि जो द्वन्द है सहना ही पड़ता है। जैसे अग्नि के समीप उष्णता, जल के समीप शीतलता रहती है किन्तु "**सुख हरषहि जड़ दुख बिलगाही। दोउ सम धीर धरहि मनमाही।।** अयो 149।4।" अज्ञानी लोग सुख से सुखी होकर हर्षित होते हैं और दुःख में दुःखी होकर रोते हैं। किन्तु धैर्यवान् पुरुष सुख दुःख में न रोते हैं न और न हंसते हैं। आप जानते हैं कि श्री रामचन्द्र जी चौदह वर्ष के बाद लौटेंगे तब

आप सुखी होंगे इसमें कोई सन्देह नहीं है। इसी कुल में राजा सगर के साठ हजार पुत्र एक साथ नष्ट हो गये थे तथापि वे धैर्य धारण किये थे। धर्म को लिए हरिश्चन्द्र अपना शरीर तक बेचा था। धर्मार्थ ही मयूरध्वज ने अपने हाथ से अपने लड़के का मस्तक चीरा था। इसी प्रकार धर्मार्थ ही श्री राम जी चौदह वर्ष के लिए जंगल जा रहे हैं पश्चात् लौट कर आवेंगे। आप अवश्य धैर्य धारण करें।

सुमन्त जी ! आप यह भी जानते हैं कि श्री राम जी के हृदय में अटूट पितृ-भक्ति है। उनका वचन मानना राम जी का धर्म है। कहा भी है - "**अनुचित उचित विचार तजि जो पालै पितु बैन। ते भाजन सुख सुयश के बसहिं अमरपति ऐन।।**" इसीलिए राम जी का परम कर्त्तव्य है कि पिता की वनवास आज्ञा को अवश्य मानें। आप यह भी जानते हैं कि श्रवण अपने माता पिता अन्धमुनि को अपनी कन्धा पर ढ़ोया करते थे। परशुराम जी ने पिता की आज्ञा से अपनी माता का मस्तक काट लिया था। किन्तु उन्हें पितृभक्त होने के कारण हत्या नहीं लगी - "**धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपत काल परीक्षा चारी।अर. 4।4।**" इस समय रामजी का धर्म आपका धैर्य दोनों की परीक्षा है। जिसका नाम उच्चारण कर मनुष्य सुख दुःख द्वन्दवाला संसार से पार कर जाता है वही राम जी जंगल में कैसे दुःखी होंगे। अतः आप भगवान्का वनवास का घटना को सोचकर दुःखी न होवे। "**प्रकृति पार प्रभु सब उरवासी।उ. 71।4।**" "**सर्वरूप सब रहित उदासी।सु. 49।2।**" "**न तस्य प्राकृतमूर्तिः मांसमेदोस्थिसंभवा।।**" "**जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्वतः।गी 4।9।**" "**राम ब्रह्म व्यापक जग जाना। परमानन्द परेस पुराना।बा. 115।4। सब कर परम प्रकाशक जोई। राम अनादि अवधपति सोई।बा. 116।3।**"

ऐसे परब्रह्म राम जी को दुःखी जानकर आप दुःखी क्यों होते हैं। यह तो अज्ञ पुरुषों का काम है। इस प्रकार निषादराज ने सुमन्त जी को समझाया था। तभी इनका अज्ञान दूर हुआ और जान सके कि परब्रह्म परमात्मा ही वैभवातार में आते हैं। वे परमानन्द स्वरूप हैं। उनको सुख दुःखादि द्वन्द नहीं सता सकता है। ऐसा ज्ञान होने के पश्चात्वे सावधान्होकर रथ पर बैठे और अयोध्या लौट आये। इन्हीं सब कथा इतिहासों को निषादराज ने उनको सुनाया था - यही गुप्त रहस्य है।

47। "**अंगद कहे जाउँ मैं पारा। जिय संशय कछु फिरती बारा। कि. 29।1।**" जिस समय जामवन्त जी बानरों को समुद्र पार जाने की शक्ति सम्बन्ध में जानकारी कर रहे थे, उसी समय अंगद की यह उक्ति है। "**निज निज बल सब काँहू भाखा। पार जाइकर संशय राखा।कि. 28।3।**" किसी प्रकार अंगद ने कहा कि मैं पार तो जा सकता हूँ किन्तु पुनः वहाँ से लौटने में संशय है। इस चौपाई में कछु शव्द अनेकार्थक हैं इसलिए भावुक लोगों ने अनेक प्रकार के भाव बना रखा है। किसी का कहना यह है कि रावण और वाली में पारस्परिक प्रतिद्वन्दिता रहते हुए भी मित्रता हो गयी थी। अतः अंगद यही सोचते हैं कि रावण के प्रेम में कहीं मेरा हृदय न दब जाय। यही संशय है।

तारा और मन्दोदरी में पारस्परिक मित्रता थी। मन्दोदरी कही भी है कि "**वाली तनय बालकसम मोरा।।**" यह सन्देह का कारण लोग बताते हैं कि अंगद ने सोचा कि तारा के समान मन्दोदरी के प्रेम में कहीं मैं नहीं फंस जाऊँ ? यदि ऐसा हुआ तो भगवान्के कार्य में बाधा होगी।

किसी का कहना यह है कि अक्षय कुमार और अंगद को परस्पर वरदान और शाप यह था कि यदि अक्षय कुमार समुद्र से उत्तर आवे तो अंगद मार डालेगा और अंगद समुद्र से दक्षिण जावे तो उसको अक्षय कुमार मार डालेगा। इसी बात का संशय अंगद के हृदय में है। हनुमान जी जब अक्षयकुमार को मारे हैं तब अंगद सेना के साथ लंका गये हैं।

किसी का कहना है कि जिस पर्वत पर बैठकर बातचीत हो रही थी उससे सुबेल पर्वत जो लंका का पर्वत है कुछ न्यून है। अतः जाने में तो सुगमता होगी किन्तु आने में कठिनाई होगी यही सन्देह का विषय है।

किसी का यह कहना कि अंगद यह सोचकर सन्देहग्रस्त हो गये कि राक्षस दुष्ट प्रकृति के होते हैं। हो सकता है कि वहाँ उनसबों के साथ युद्ध में बहुत अधिक समय लगेगा तो अवधि के अन्दर आना असंभव है।

कोई कहते हैं कि अंगद जा सकते हैं इसमें कोई सन्देह नहीं है किन्तु अंजनी कुमार के विषय में हमें सन्देह है कि श्री

रामचन्द्र जी हनुमान्‌जी को अँगूठी देते समय यह कहे हैं कि - "......जानि काज प्रभु निकट बुलावा।।" "परसा सीस सरोरूह पानी।कर मुद्रिका दीन्ह जन जानी।।" "बहु प्रकार सीतहि समुझायहु।कहि बल विरह वेति तुम आयहु।कि. 22।5 एवं 6।" ये सभी प्रसंग अंगद जानते हैं। इसीलिए सोचते हैंकि जिनके प्रति श्री रामचन्द्र जी कार्यसिद्धि का सर्वस्व भार सौंपे हैं वे तो कुछ बोल ही नहीं रहे हैं। यही हनुमान्‌के विषय में अंगद का संशय है।

48। "नर बानर हि संग कहु कैसे। कही कथा संगति भये जैसे। सु 12।6।" चौपाई सीता सम्वाद की है। सीता जी हनुमान्‌से पूछती हैं कि नर (मनुष्य) राम जी तथा बानर (मनुष्य) तू हो । बताओ कि मनुष्य और पशु में परस्पर प्रेम संगति संयोग कैसे हुआ ? तथा 'आदिहु ते सब कथा सुनाई' हनुमान द्वारा रामजी की पूर्णतः कथा सुनाने पर भी सीता जी ने पुनः 'नर बानर ही संग कहु कैसे' प्रश्न क्यों किया ?
उत्तर - यह चौपाई हनुमान्‌के पूर्ण परिचय तथा परीक्षा में है। यथा प्रश्नोत्तर में हनुमान्‌ने अपना पूर्ण परिचय तथा रामजी की संगति की कथा सीता जी से कही है।अम्बे ! सद्‌ग्रन्थों में लिखा है कि भगवान् की निर्हेतुक कृपा के बिना कोई भी अपूर्व वस्तु प्राप्त नहीं हो सकती है। हमारी मां अंजना प्रसंगवस कहा करती थीं कि बेटा ! भगवान् श्रीनिवास के ही प्रभाव से तू हमारे पुत्र रत्न प्राप्त हो, कारण कि तुम्हारे पिता को वंश की सम्भावना नहीं थी। अतएव वेङ्कटेश्वर भगवान् श्रीनिवास ने दो हजार वर्षों तक मुझसे अपनी आराधना करवाई थी। फलतः प्रसाद रूप में मैं तुझे पाया। भगवान्‌की ही कृपा से तुम्हें बल, बुद्धि तथा विद्या मिली है।सब में व्यापक होते हुए भी सब दोषों में पृथक सर्वधारक पवनदेव ने तुम्हारा जन्म दिया। इसीलिए संसार में तुम्हें लोग पवनसुत भी कहते हैं। 'पुन्नाम्नो नरको यस्मात्तस्मात्तारयते सुतः' पुत्र का अर्थ है भगवद् भक्ति से पितरों को नरक से उद्धार करना। कयाधु, सुमित्रा, सुनीति वीर माताओं के समान श्रद्धा से भगवद्‌सेवा के लिए मैंने तुझे जन्म दिया है। अतएव भगवान्‌की सेवा ही तुम्हारा परम धर्म है। अयि जगज्जननी अम्बे !भगवान्‌की ही कृपा का फल है कि मुझे भगवद् भक्तिमती माता मिली तथा जन्म के बाद राम जी मिले। यथा पुत्रवत्सला माता अपने पुत्र को कूप में गिरते हुए देखकर अपना सब कुछ छोड़ अपनी देह रक्षण का चिन्तन नहीं करते हुए कूप में कूद कर पुत्र को बचाती है तथा संसार कूप में कर्मवश पतित जीवों को संसार से उद्धार करने के लिये भगवान्‌ने दिव्य सूरियों से सेवित परमव्योम त्रिपाद विभूति को छोड़ अवध धाम में अवतार लिया। अवतार लेकर अहिल्या, निषाद्-कोल-भील जंगली पामरों को उनके घर जा जा कर अपने दर्शन से पवित्र किये। भगवान् ने शील सौलभ्यादि गुणों के वश हो हमारे जातीय भालु बन्दरों को भी दर्शन से कृतार्थ किया। अतएव दीनबन्धु, पतित-पावन, अशरण-शरण आदि नामों से पुकारे गये।किष्किन्धा में आपके अन्वेषण के लिए सुग्रीव से मैत्री कर तथा उन्हें राजा बना बानरी सेना के बीच में बुलाकर भगवान् राम जी से अनेक प्रकार समझाया तथा अपनी अँगूठी दी। यथा - "परसा सीस सरोरूह पानी।कर मुद्रिका दीन्ह जन जानी।।" "बहु प्रकार सीतहि समुझायहु।कहि बल विरह वेति तुम आयहु।कि. 22।5 एवं 6।" संसार में पतित जीवों को भगवान्‌का संग भगवद् कृपा ही से होता है। भगवान्‌का लीला रूप तथा अनेक प्रकार का गुण जीवों के कल्याणार्थ होता है।

पर कल्याण तथा साधु संग संयोग भगवद् कृपा ही से होता है इसके अनेक प्रमाण हैं। 'दिव्यंददामि ते चक्षुः।गी. 11।8।' कल्याणार्थ दिव्य ज्ञान जीवों को देता हूँ । "देत ईश बिनु हेतु सनेही।उ. 43।3।" अकारण ईश्वर जीवों के प्रेमी हैं। "न वेदैर्न दानैश्च न यज्ञैर्न व्रतैस्तथा। प्राप्तुं न शक्यते लोके बिना विष्णुप्रसादतः।।" ईश्वर की कृपा बिना वेदज्ञान, दान, यज्ञव्रत, अनेक उपायों से भी लौकिक-पारलौकिक पदार्थ नहीं पाता है।

चौपाई में नर शब्द से राम तथा बानर शब्द से हनुमान्‌का बोध नहीं होता है। सीता जी ने राम जी के परमैश्वर्य गुण को माधुर्य गुण से छिपाया है। तथा 'रावण मरण मनुज कर यांचा।बा. 48।1।' ब्रह्मा के वचन सत्य करने के लिए रामजी नर तथा हनुमान् बानर बने। वास्तव में तो राम जी विष्णु तथा हनुमान् नित्य पार्षद हैं। अंगद के वचन से साफ है 'राम मनुज कस से सठ बंगा।लं. 25।3।' 'कस रे सठ हनुमान् कपि।लं. 26।'

'जिसके बल कर गर्व तोहि ऐसे मनुज अनेक।लं. 31।' लंका में रावण अंगद संवाद में रावण द्वारा राम जी को मनुज कहे जाने

पर अंगद क्रोधित हुए रावण को अनेक प्रकार डाँट-फटकार किये तथा 'हरिहर निन्दा सुने जो काना। होय पाप गोघात समाना।लं. 31।1।' भगवान्‌की निन्दा को पाप समझे। वहीं 'नर बानर ही संग कहु कैसे' चौपाई में सीता जी नर बानर शब्द प्रसन्नता पूर्वक कहती है तथा प्रसन्नचित्त हनुमान् सुनते हैं। ऐसा क्यों ?

यहाँ पर सीता जी तथा हनुमान् का परस्पर वार्तालाप शुद्ध हृदय से है। प्रेम से है। प्रेम का वचन सुखद होता है तथा द्वेष का वचन दुखद होता है। मनुज तथा नर शब्द समानार्थक होते हुए भी भिन्न हैं। मनु से उत्पन्न तथा जायमान मनुज। नर शब्द का अर्थ **न ऋयते इति नर**। अर्थात् नित्य, नाशरहित दिव्य। इससे यहाँ पर नर शब्द नित्य का बोधक है। राम जी स्वरूपतः नित्य निरंजन हैं 'नित्य निरंजन सुख सन्दोहा।उ. 71।3।' पूर्वोक्त चार प्रश्नों का उत्तर श्री स्वामी जी के मुखारविन्द से सुनकर श्रीवैष्णव मण्डली तथा पं. माधवाचार्य जी बड़े प्रसन्न हुए।

-ः इति ः-

स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्तां न्याय्येन मार्गेण महीं महीशाः।
गो ब्राह्मणेभ्यः शिवमस्तु नित्यं लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु।।
रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे। रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः।।

श्रीमते रामानुजाय नमः

श्रीस्वामी जी महाराज (परमहंस स्वामी)

का

महाप्रयाण

(जीवनी का चतुर्थ खण्ड)

लेखक
श्री स्वामी परांकुशाचार्य
सरौती स्थानाधीश
।

प्रकाशक
श्रीराम संस्कृत विद्यालय सरौती
पो . रामपुर चौरम (गया)

श्रीमते रामानुजाय नमः

श्रीस्वामी जी महाराज (परमहंस स्वामी) का
महाप्रयाण

त्वय्यम्बुजाक्षाखिल सत्वधाम्नि समाधिनावेशित चेतशैके । त्वदपादपोतेन महत्कृतेन कुर्वन्ति गोवत्सपदं भवाब्धिम् । ।
स्वयं समुत्तीर्य सुदुस्तरं द्युमन्भवार्णवं भीममदभ्र सौहृदाः । भवत्पदाम्भोरुहनावमत्र ते निधाय याताः सदनुग्रहो भवान् । भा. 10 । 2 । 30-31 ।

संसार - सागर से पार करने के लिए भगवद्भक्तों ने भगवान्के चरणकमलों को ही नौका अर्थात् उपाय भरन्यास का उपदेश माना है। यही भावना से प्रेरित होकर भक्तलोग भगवान्की षड्विध शरणागति कर अनन्यभाव से उनके चरणों की सेवा किया करते हैं और दुस्तर संसार-सागर को गोपद के समान अनायास ही लाँघ जाते हैं। साथ ही संसारियों के लिए उस भरन्यास (आत्मनिक्षेप) की उपदेश रूपी नौका को छोड़ जाते हैं। यह लोक-कल्याण की भावना महापुरुषों में सहज ही होती है। उनका उठना, बैठना, बोलना, चलना सब के सब उपदेशात्मक ही होते हैं। उन महापुरुषों का एक-एक अनुकरण बद्ध जीवों के लिए मुक्ति का साधन बन जाता है। श्रीस्वामी जी महाराज उन्हीं महापुरुषों में से एक थे। आपने तीन बार सम्पूर्ण भारत के तीर्थो का पैदल भ्रमण कर अन्त में तरेत स्थान को ही तीर्थराज तथा वहाँ के राघवेन्द्र भगवान्को ही उभय विभूतिनायक माना। आपका अन्तिम कालक्षेप यहीं होने लगा। ये सभी कार्य लोकहित के लिए ही थे। स्वामी श्रीरामानुजाचार्य श्री-सम्प्रदाय की रक्षा एवं प्रचार के लिए सर्वत्र घूमे थे। इसी से यह प्रसिद्ध है -

श्रीरंगं करिशैलमज्जनगिरौ शेषाद्रि सिंहाचलम् । श्रीकूर्मं पुरुषोत्तमञ्च बदरीनारायणं नैमिषम् । ।
श्रीमद्द्वारवती प्रयाग मथुराऽऽयोध्या पुष्करम् । शालिग्राम निवासिनो विजयते रामानुजोऽयं मुनिः । ।

श्रीरामानुज स्वामी के पश्चात् श्री वरवरमुनि स्वामी ने इसी के रक्षार्थ पृथ्वी को धारण करने वाले अष्टदिग्गजों के समान अष्टगद्दी की स्थापना की थी। इन्हीं अष्टगद्दियों में एक अण्णन्गद्दी है। इसका वर्त्तमान नाम गोवर्धन गद्दी है। इसी के अध्यक्ष श्री स्वामी रंगदेशिकाचार्य जी महाराज वृन्दावन में श्रीरंग मन्दिर बनवाये थे। इन्हीं के कृपापात्र शिष्य श्री स्वामी राजेन्द्रसूरि महाराज सम्प्रदाय रक्षक हुए।

इस सम्प्रदाय का यही नियम है कि भगवान्की सन्निधि में जाकर कहा जाता है कि "**श्रीमन्नारायण स्वामिन्शठकोपं प्रदेहि मे।**" भगवान्का चरणकमल श्री शठकोप स्वामी हैं। भगवान्से प्रार्थना में उनका चरणकमल माँगा जाता है जो भक्तों का उपजीव्य है। श्री शठकोप स्वामी की सन्निधि में जाने पर "**रामानुजं प्रदेहि त्वं शठकोप मुनीश्वर !**" यह कहा जाता है, अर्थात् हे शठकोप स्वामी आप मुझे श्री रामानुज स्वामी को दीजिये। श्री शठकोप स्वामी का चरणकमल श्री रामानुज स्वामी हैं। जब श्री रामानुज स्वामी की सन्निधि में जाते हैं तो कहते हैं कि "**हे रामानुज सौम्यजामातृ वरवरमुनिं देहि।**" अर्थात् हे रामानुज स्वामी मुझे सौम्यजामातृ वरवरमुनि दीजिए जो श्री रामानुज स्वामी के चरणकमल हैं। श्री वरवरमुनि स्वामी के चरणकमल "**मामका देशिकाः स्युः।**" श्री वरवरमुनि के चरणकमल अपने आचार्य माने जाते हैं। इस प्रकार इस सम्प्रदाय के रक्षण हेतु भगवान् से लेकर अपने आचार्य तक के रक्षकों की परम्परा श्रृंखला के ऐसा सम्बद्ध है। रक्षा ही के लिये प्रार्थना भी है। दुस्तर नदी को पारकरने के लिए नाव की आवश्यकता होती है। नहीं तो डूबने का भय बना रहता है। डूब कर मरने से अकाल मृत्यु होती है जिसके चलते नरक भी भोगना पड़ता है। शरीर असंस्कृत रह जाता है। साथ के सामान आदि भी दह-बह जाते हैं। शेष जीवन में समाप्त होने वाले काम अधूरे रह जाते हैं। अतः नाव की आवश्यकता नितान्त प्रतीत होती है। इससे आत्म-रक्षा, धन की रक्षा, शरीर-रक्षा तथा कार्य की सिद्धि हो जाती है। इसी प्रकार आचार्यचरण द्वारा भरण-न्यास आत्मनिक्षेप (शरणागति) होने से आत्मकल्याण, भगवत्प्राप्ति, शरीर की सार्थकता, स्वसम्बन्धियों का कल्याण हो जाता है।

इसलिए कहा हुआ है - "**कुलकोटि समुदधृत्य विष्णुलोके महीयते।**" स्वसमबन्धियों के अतिरिक्त औरों का भी समुद्धार होता है - "**यं यं स्पृशति पाणिभ्यां यं यं पश्यति चक्षुषा। तेन ते तत्प्रयास्यन्ति तद्विष्णोः परमं पदम्।।**" भगवान्‌का शरणागत श्रीवैष्णव जिन व्यक्तियों का स्पर्श किया, देखाा कि वे सब-के-सब भगवत्‌लोक प्राप्त कर लेते हैं। श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के अन्तर्गत जितने भी मनुष्य आ गये सबों की रक्षा का भार अपने आचाार्य से लेकर श्रृंखलाबद्ध भगवान् तक के ऊपर निहित होता है और सबों की रक्षा होती है। इस प्रकार लोक-रक्षण हेतु अवतरित श्री राजेन्द्र सूरि जी महाराज अपने जीवन के कृत्यों को समाप्त कर वैकुण्ठ यात्रा की तैयारी में लग गये थे। उनके नित्य के व्यवहारों से यही प्रतीत होता था कि अव श्री स्वामी जी महाराज को त्रिपाद्विभूति की यात्रा की उत्कण्ठा जग उठी है। उनकी अन्तरात्मा मानो भगवत्प्राप्ति की त्वरा में गा उठती थी -

कदा मायापारे विशदविरजापारसरसिपरे श्रीवैकुण्ठे परमरुचिरे हेमनगरे।
महारम्ये हर्म्ये वरमणिमये मण्डपवरेसमासीनं शेषे तव परिचरेयं पदयुगम्। वैकुण्ठ स्तव **1**।
महासिन्धोः नीरे विगत कलुषो दिव्य गुणको हरे सद्‌गात्रोऽमानव परिसरेऽलंकृत तनुः।
भवेयं संश्लाघ्योऽभरनिकरसम्मानित भवन्। कदाहं संरुढ़ो वर गरुड याने समचरन्। वैकुण्ठ स्तव **2**।
द्रक्ष्यामिनूनं सकोपलनासिकं स्मितावलोकारूणञ्जलोचनम्।
मुखं मुकुन्दस्य गुडालकावृतं प्रदक्षिणं मे प्रचरन्ति वै मृगाः। भा **10**।**38**।**9**।।
तं त्वद्य नूनं महतां गतिं गुरुं त्रैलोक्यकान्तं दृशिमन्महोत्सवम्।
रूपं दधानं श्रिय ईप्सितास्पदं द्रक्षे ममासन्उषसः सुदर्शनाः ।भा **10**।**38**।**14**।
अपि अङ्घ्रिमूले पतितस्य मे विभुः शिरस्य धास्यन्निज हस्त पङ्कजम्।
दत्त अभयं काल भुजाङ्ग रहंसा प्रोद्वेविजितानां शरणैषिणां णृनाम्। भा **10**।**38**।**16**।

इन संस्कृत पद्यों के अतिरिक्तगोस्वामी तुलसीदास जी के पद्य और नहीं तो दिन में दो-चार बार अवश्य सुनने को मिलते थे।

कबहि दिखाइहों हरि चरण ।
समन सकल कलेस कलि-मल, सकल मंगल -करन। सरदभव सुन्दर तरुणतर अरुण-वारिज -बरन।
लच्छि-लालित-ललित करतल छवि अनूपमधरन। गंग-जनक अनंग-अरिप्रिय कपट-वटु बलि-छरन।
विप्र-तिय-नृग बधिक के दुख-दोष दारुन हरन। सिद्ध-सुर-मुनि-वृन्द-वन्दित सुखद सब कह सरन।
सकृत उर आनत जिनहिं जन होत तारन-तरन। कृपासिन्धु सुजान रघुवर प्रणत आरत हरन।
दरस आस पियास तुलसीदास चाहत मरन। विनय पत्रिका **218**।

यही नहीं जब कभी वैष्णव-मण्डली एकत्र हुई कि श्रीमुख से संसार और शरीर की अनित्यता की चर्चा छिड़ जाती थी। मुक्ति ही जीवमात्र का एक साध्य है और इसके लिए भगवान्‌ही एकमात्र उपाय हैं। वैष्णव को चाहिए कि वह षड्‌विध शरणागति को कभी न भूले।

"**अनुकूलस्य संकल्पः प्रतिकूलस्य वर्जनम्। रक्षतीति च विश्वासः गोप्तृत्ववरणं यथा।**
आत्मनिक्षेप कार्पण्यम् षड्‌विधा ः शरणागति ः। पञ्चरात्र - लक्ष्मीतन्त्र 17।60।"

भगवान्‌के चरणकमलों में सभी प्रकार की भक्ति (अष्टविध, नवविध तथा षोडशविध जिसकी चर्चा इस पुस्तक के जीवनी भाग **3** में है) रखे। जिस प्रकार हमारे पूर्वाचार्यो ने भगवान् और भक्तों की सेवा को मुक्ति का साधन बताया है उसे हम सबों को भी नहीं भूलना चाहिए। पापान्तरों (स्मृति-विरूद्ध आचरण) और उपायान्तरों (भगवान्‌को छोड़कर अन्य उपाय) से बचना चाहिए। तीन पारायणियों (देहाभिमानी, धनाभिमानी और जनाभिमानी) का सहवास नहीं करना चाहिए। पञ्चरात्र आदि पूवाचार्यकृत शास्त्रों का पठन-पाठन और श्रवण-मनन करना चाहिए।

वैष्णव मात्र में उद्धारक बुद्धि रखे। उनके प्रति कोई अपराध नहीं होने दे। उच्चज्ञान प्राप्त करके भी महापुरुषों के सम्मुख अज्ञानी के समान अहंकार-शून्य होकर रहे। वैष्णवों में समता बुद्धि (अपने समान समझना) नहीं रखे। यही सब मुक्ति के साधन हैं। यही सव उपदेश श्रीस्वामी जी महाराज द्वारा नित्य हुआ करते थे।

इन व्यवहारों से यह स्पष्ट था कि श्रीस्वामी जी महाराज अब इस नश्वर शरीर को छोड़ना चाहते हैं किन्तु सर्वसाधारण को यह भान नहीं होता था। अब यह लीला निकट भविष्य में समाप्त होने जा रही है। निदान यह बात एक दिन खुल कर ही रही। विक्रम संवत् **1972** का प्रभव संवत् चल रहा था। ऋतुराज वसन्त अपना वैभव, अपना साम्राज्य अपने सेनानी की अध्यक्षता में विस्तार में संलग्न था। सारा संसार मोहनिशा में सो रहा था। आधी रात बीत चुकी थी पर दिव्यदेश के उस महायात्री को नींद कहाँ, वे तो अपनी मुक्ति अपनी ही आँखों देखरहे हों जैसे। चर्मचक्षु बन्द और दिव्यचक्षु खोले हुए कभी उस त्रिपाद्विभूति के मणिमय मण्डप में दिव्य सिंहासनासीन लक्ष्मीनारायण को देख-देख कर आनन्द-विभोर हो रहे थे। कभी उनके दिव्यपार्षदों के साथ उनकी परिचर्या का आनन्द ले रहे थे और फिर इस मायाजाल में बन्धे हम संसारियों की ओर देखकर कुछ कातर से होते हों। दास भी (इस जीवनी का लेखक) वहीं सोया स्वप्नानिल संसार में विचर रहा था। अचानक सम्बोधन का उच्च्व स्वर "परांकुश !" मेरे कानों से आ लगा। मैं उठ पड़ा और गुरुदेव के चरणों से जा लगा। देखा, उनकी विस्फारित आँखें विस्तृत गगन से मानों कुछ समाधान खोज रही हों। वे मुझे देखकर बोल उठे - " देखो जी, आतिवाहिक आ गये ले जाना चाहते हैं, अन्तर्यामी धमनी मार्ग दिखाते हैं। फिर भी दुनियाँ सुख की नींद सो रही है। अपना समय अपने हाथों ला रही है। कैसा मोह है ? वैष्णवों को अनन्य शरण होना चाहिए, देवतान्तर, उपायान्तर और विषयान्तरों से बचना चाहिए। वैष्णव का निवास स्थान ही तीर्थराज है।

"देवाः क्षेत्राणि तीर्थानि दर्शनाः स्पर्शनार्चना। शनैः पुनन्ति कालेन तदप्यर्हत्तमेच्छया।।"

वल्कि देवता, क्षेत्र और तीर्थ पूजन, दर्शन और स्पर्श के पश्चात् समय पर ही पवित्र (पापमुक्त) करते हैं किन्तु वैष्णव तो दृष्टि पड़ते ही सबको पवित्र कर देते हैं। वे स्वयं तो मुक्त होते ही हैं अपने संसर्ग से दूसरों को भी मुक्त कर देते हैं। जीवन की बात तो छोड़ो मरने के पश्चात्भी वैष्णव को गंगादास, यमुनादास नहीं बनना चाहिए। यह तो अवैष्णवों के लिए है कि गंगा आदि तीर्थों में दाह संस्कार किया जाय तो उनका उद्धार होता है। अतः मेरे शरीर का दाह-संस्कार यहीं कलमबाग (तरेत स्थानीयबाग) के बीच होना चाहिए। हम सब वैष्णवों के लिए तरेत ही तीर्थराज है, राघवेन्द्र ही दिव्य विभूतिनायक हैं, निष्ठा होनी चाहिए।"

यह बात दास को लग गई, इसी की चिन्ता में कुछ सोते-जागते रात बीत गई। भला इस ओछे हृदय में ऐसी गम्भीर बात कबकर पच सकती थी। अनेक स्नेही जनों को कह सुनाया। फिर क्या था, बिजली के समान यह बात चारो ओर फैल गयी। दल के दल वैष्णव आने लगे और श्रीचरणों के सामने भावी वियोग व्यथा को व्यक्त करने लगे। श्रीचरणों का वियोग किसी को सह्य नहीं था। उसकी आशंका मात्र से ही वैष्णव मण्डली मानो विह्वल हो उठी थी। सबों का हृदय भर आया था। निदान दूसरे दिन पुनः आधीरात को ही श्रीस्वामी जी ने मुझको जगाकर यह चर्चा छेड़ी। "जड़भरत की बात तुम जानते हो ? एक मृगी के बच्चे को उन्होंने दयावश पाल रखा था। किन्तु उसमें उनकी ऐसी आसक्ति हुई कि देह त्यागने पर उनको भी मृग होना पड़ा। यद्यपि ज्ञान-बल से उन्होंने अपने को सम्हाला और पुनः मुक्ति पाये, किन्तु आसक्ति के चपेट में उन्हें भी आना ही पड़ा था। मेरे सामने तो असंख्य वैष्णव नित्य आते हैं, प्रेमवश रोते हैं, भला उनके आकर्षण से मेरा हृदय क्यों न द्रवित होगा। मैंने तो इस स्थान को छोड़ने का निश्चय किया है। तुम ऐसी व्यवस्था करो जिसमें हम बक्सर चल सकें।" श्रीस्वामी जी महाराज का उक्त आदेश सुनकर मैंने इसके लिए बाबू रामखेलावन शर्मा से संमति ली। उन्होंने मुझे ऐसा करने से रोका किन्तु श्रीस्वामी जी की पुनः आज्ञा हुई और विवश होकर यात्रा की तैयारी करनी पड़ी।

अहिरौली से एक नाव मंगायी गयी। कल श्रीस्वामी जी महाराज तरेत छोड़ रहे हैं, यह बात बात-की-बात में चारो ओर फैल गयी। फिर तो टिड्डी दल के समान वैष्णव जुटने लगे। यात्रा के समय तरेत में एक मेला लग गई थी। कुछ सामान नाव पर रख लिये गये थे। श्रीस्वामी जी ने भगवान् राघवेन्द्र के सामने बैठ कर प्रार्थना की - "भगवन् ! मुझसे आपका मन्दिर नहीं बन सका। आप अपने भक्तों से बनवा लीजियेगा।" फिर वे रामखेलावन शर्मा को सम्बोधित करते हुए बोले - " रामखेलावन ! राघवेन्द्र को तुमको सौंपते हुए जा रहा हूँ " और स्वयं प्रदक्षिणापूर्वक साष्टांग-प्रणाम कर भगवान्से विदा ले यात्रा कर दिये।

पीछे-पीछे सारी वैष्णव-मण्डली एक सूत्र में बँधे हुए के समान मानो अपने आप खिंचती चली जा रही थी। नौबतपुर पहुँच कर जब श्रीस्वामी जी महाराज नाव में बैठे तो उन्होंने सबों की ओर दृष्टि डालते हुए कहा - "इस देश के दीन-हीन वैष्णवों ने मेरी बड़ी सेवा की है। आज तक उस व्रत को निभाया है, भगवान् तुम लोगों का मंगल करेंगे। आप सभी लोग अपने-अपने घर चले जाओ। मैं पुनः सबों को मंगलानुशासन करता हूँ। यह बात सुनते ही सारा समाज शोक-समुद्र में उतराने लगा। किसी के मुख से कोई शब्द नहीं निकलता था। सबों की आँखें बरस रही थीं। सभी हाथ जोड़े खड़े थे। नहर के किनारे लगे वृक्ष, लता, गुल्म मानों सभी रो रहे हों। सभी निष्प्रभ, सभी श्रीविहीन से दिखते थे। शोक सन्तप्त समाज का मौन मानो वाचाल हो उठा हो और आँखों की भाषा में पूछ रहा हो - "गुरुदेव यह अन्तिम उदासी क्यों ? क्या सचमुच यह संसार मृगतृष्णा है ? क्या यहाँ कोई किसी का नहीं है ? सभी क्या अपने-अपने गन्तव्य की ओर अकेला बढ़ रहे हैं। क्या संग का झमेला क्षणिक है ? श्रीस्वामी जी महाराज विस्मय भरी दृष्टि से नर-समाज की ओर देख रहे थे। एक क्षण रुक कर उन्होंने आज्ञा दी - "नाव शीघ्र बढ़ाओ।" आज्ञा की देर थी। नाविक ने तेजी से नाव आगे बढ़ायी, जनवर्ग भी साथ-साथ खिंचता सा दिखा। श्रीस्वामी जी महाराज पुनः कुछ क्षण के लिये रुके और लोगों को सान्त्वना देकर धैर्य बँधाये। लोक-धर्म की शिक्षा दी, फिर सबों को लौटा दिये। साथ में केवल सात व्यक्ति रह गये थे - **1**। अहिरौली ग्राम का एक वैष्णव, **2**। पं. श्री रामसुन्दर जी, **3**। श्री सीताराम जी (आळवार तिरुनगरी निवासी), **4**। श्री कमलनयन जी (पुजारी, जिला कानपुर), **5**। श्री नन्दकिशोर जी, **6**। विद्यार्थी श्री माधव जी (गाजीपुर निवासी), **7**। परांकुशाचार्य (लेखक जीवनी)।

उस दिन नौबतपुर से नाव चलकर दीघा घाट से पश्चिम कुछ दूर तक गंगा में आयी। पड़ाव वहीं रहा। किनारे पर बालू की एक उच्च वेदी बनायी गयी। उसी पर आसन लगा। शीत से बचाव के लिए चारो ओर बाँस गाड़ कर ऊपर से चांदनी लगा दी गई। श्रीस्वामी जी महाराज उसी पर विश्राम किये। रसोई बनी, भगवान् को भोग लगा और सभी वैष्णव प्रसाद पाये। किन्तु श्रीस्वामी जी महाराज अन्न-जल कुछ भी ग्रहण नहीं किये। भोजन के उपरान्त जब सभी वैष्णव निश्चिन्त हुए तो सबों को सामने कर श्रीस्वामी जी महाराज एक कथा प्रारम्भ किये - "प्राचीन महात्माओं में एक भट्टर स्वामी नाम के महात्मा हो गये हैं। जन्म-काल के कुछ ही दिन पश्चात् उनके पिता का देहान्त हो गया था। घर में अकेली माँ थी। उनके लालन-पालन का सारा भार माँ के ऊपर आ पड़ा। वह बच्चे का मुख देखकर सब दुःख भूल गयी। बड़ा होने पर बच्चे को पढ़ने की व्यवस्था कर दी गयी। बालक होनहार था। सोलह वर्ष की अवस्था होते-न-होते वह पूर्ण विद्वान बन बैठा। उसकी प्रतिभा, तर्ककौशल और प्रतिपादन शक्ति को देखकर सभी अवाक् थे। वह बालक सबों का आदर पात्र बन गया था। निदान उसी वर्ष उस बालक की मृत्यु हो गयी। यह दुःखद समाचार जिसने सुना जी भरकर रोया। ईश्वर और भाग्य को कोसा। नगर की सभी नर-नारियाँ रो-पीटकर शान्त हुईं और चलीं भट्टर की माँ को धैर्य बँधाने। पर वहाँ तो कुछ दूसरी ही बात थी। वे सभी देखती हैं कि भट्टर की माँ भगवान्के सामने उत्सव मनाने की तैयारी में लगी है। बारी-बारी से चन्दन, फल, फूल, तुलसी, दीप, नैवेद्य, आरती आदि सँवार रही है। लोगों के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। पर उसके पुत्र-शोक का स्मरण कर कुछ लोगों ने समझा यह पगली हो गयी है। बेचारी अपने एकलौते पुत्र के लुट जाने से अपने को सम्हाल न सकी। शोक में विक्षिप्त होकर यह सब कर रही है। अब इसके लिए संसार में रह ही क्या गया है। किन्तु इस पगली को सम्हालना तो होगा ही। यह विचार कर एक अबला धैर्य बाँधकर भट्टर की माँ के सामने गयी और पूछ बैठी, "भट्टर की माँ, तू यह क्या कर रही है ? आज यह सारा दिव्यदेश तुम्हारे पुत्र-शोक में निमग्न है। आबाल-वृद्ध तुम्हारे दुःख से दुःखी हैं। तुम्हारे शोक का तो कहना ही क्या है। किन्तु संसार का यह अबाध नियम है। इसे टाला नहीं जा सकता। अतः धैर्य धारण करो, अपने को सम्हालो और पुत्र की अन्त्येष्टि क्रिया की व्यवस्था करो।" माँ का हृदय भर आया। वह बोली, "बहनों मैं पगली नहीं हुई हूँ आज मेरे लिए शोक का दिन नहीं है वल्कि आनन्द का दिन है। देखो

लोक-व्यवहार को। जब किसी का पुत्र विवाह के लिए तुच्छ लौकिक रीति से आत्मान्तर से सम्बन्ध के लिए यात्रा करता है तब उसको पालकी पर बैठते ही उसकी माँ मंगलाचार करती है। आरती उतारती है और उसके मंगल की कामना करती है। देवताओं की अर्चा-पूजा करती है, उत्सव मनाती है। हमारा पुत्र भट्टर ने तो आज दिव्यविमान पर चढ़ कर त्रिपाद्विभूति की यात्रा की है। आज बहुत दिनों के बाद उभय-विभूति नायक परब्रह्म परमात्मा से उसकी आत्मा का चिर मिलन होगा। दिव्य पार्षद उसकी आगवानी करेगें। ब्रह्मादि देवता उसकी आरती उतारेंगे, महालक्ष्मी गोद में लेकर प्यार से लालन करेंगी। अंत में महालक्ष्मी-नायक के अंक में जा विराजेगा। आज उसके दुःखों का जन्म-मरण का सदा के लिए अंत हो जायेगा। चिरसुख की प्राप्ति होगी। इससे बढ़कर माता के लिए और कौन सा दिन हो सकता है। आज मुझसे भाग्यशालिनी कौन होगी। इसीलिए मैं उत्सव मना रही हूँ। भगवान की पूजा कर रही हूँ । क्योंकि उनकी कृपा के विना यह सम्भव नहीं है। तुमलोगों को भी मंगलाचार करना चाहिए। उस दिव्यात्मा के लिए शोक करना ही पागलपन है। नारकियों की माता, माता नहीं और नारकी पुत्र, पुत्र नहीं है। पुत्र वही है जो मोक्ष प्राप्त कर मानव -जीवन को सार्थक बनाता है और माता भी उसी की धन्य है।" मदालसा जैसी भट्टर की माँ का उपदेश सुनकर सभी मुग्ध हो गये।

हम सभी वैष्णवों को इस कथा से शिक्षा लेनी चाहिए। यह ध्रुव है, सत्य है कि जन्म और मरण साथ-ही-साथ चलते हैं। मृत्यु इस संसार का अटल नियम है। इस अपरिहार्य नियम के लिए चिन्ता नहीं करनी चाहिए। भय नहीं खाना चाहिए। भला मृत्यु से अमर आत्मा में कमी ही क्या आ सकती है। वह तो पुराने वस्त्र की भाँति पुरानी देह को छोड़कर नवीन वस्त्र धारण करने जैसा नवीन देह धारण करती है। हाँ, पापी लोग अवश्य अपने दुष्कर्मो का स्मरण कर नरक के भय से मृत्यु से डरते हैं। ठीक इसके विरुद्ध पुण्यात्मा भक्त-वैष्णव तो खुशी-खुशी मृत्यु की आगवानी करते हैं। कहा है - **"पाप कारित्वान्मृत्योरुद्विजते जनाः। कृतकृत्याः प्रतीक्षन्ते मृत्युंप्रियातिथिमिव।।"** उसे तो अपनी मुक्ति अपनी आँखों दिखती है और दिखता है भगवान्का सान्निध्य। इसीलिए मृत्यु को वह भगवान्का अनुग्रह मानता है। आत्मविभोर होकर कह उठता है - **"तावदेव चिरं यावन्न विमोक्षते शरीरतः।"** भगवान् से मिलने में उतनी ही देर है जवतक शरीर से छुटकारा नहीं मिल जाता है। इसलिए तुमलोगों को शरीर की नश्वरता को ध्यान में रखकर न तो हमारे लिए और न अपने लिए ही शोक करना चाहिए। साथ ही मूल मन्त्र के अन्त की चतुर्थी विभक्ति पर ध्यान रखना चाहिए। द्वयमन्त्र का उत्तरार्द्ध का सतत चिन्तन करना चाहिए। यही नहीं चरम मन्त्र का अन्तिम पद **"माशुच"** का अर्थ सहित अनुसन्धान कर अनासक्त भाव से निष्काम कर्म करते रहना चाहिए। अपना सवकुछ भगवान् पर छोड़ स्वयं निश्चिन्त रहना चाहिए। तभी जीव मुक्त हो सकता है।

इस प्रकार उपदेश करते-करते रात अधिक व्यतीत हो गयी। हम सबों को सोने की आज्ञा मिली। दूसरे दिन बड़े भोरे ही स्नानादि क्रिया से निवृत्त होकर यात्रा हुई। नाव को उत्तर किनारे से पश्चिम की ओर बढ़ाने की आज्ञा मिली। चलकर जब नाव कामवन (जहाँ महादेव जी ने काम को भस्म किया था) के सामने पहुँची तो वहाँ जितने भी आस-पास में स्थान थे वहाँ सभी सन्त-महात्माओं के लिए भोजन की सामग्री दी गयी। फिर नाव आगे चलकर नृसिंह क्षेत्र (वर्त्तमान हल्दीछपरा) में पहुँची। वहीं नाव रुकी, भगवान् की सेवा हुई। भोग लगा और वैष्णव प्रसाद-सेवन किये। किन्तु श्रीस्वामी जी महाराज स्वयं एक रुपया भर वेल (भगवत्प्रसाद) ग्रहण किए। पुनः वहाँ से चलकर नाव सन्ध्या समय गंगा-सरयू के संगम पर जाकर रुकी। रात वहीं बिताने की बात ठहरी। वैष्णवों के भोजन की व्यवस्था हुई। भगवान का आराधन हुआ, भोग लगा और सभी वैष्णव भोजन किए। पर श्रीस्वामी जी महाराज तीर्थ-मात्र ग्रहण किए। इस रात में भी विविध प्रकार का उपदेश और मन्त्रराज का अनुसन्धान चलता रहा। कुछ शयन के पश्चात् रात बीत गयी और ब्राह्ममुहूर्त्त प्रारम्भ हुआतब श्रीस्वामी जी महाराज जगे। साथ ही जगकर सबों ने सुना कि मधुर और सुरीले स्वर में श्री स्वामी जी महाराज गा रहे हैं।

वज्रध्वजाङ्कुशसुधाकलशातपत्रपङ्केरुहांक परिकर्मपरीतमन्तः ।
आपादपङ्कज विश्रृङ्खल दीप्रमौले ः श्रीरङ्गिणश्चरणयोर्युगं आश्रयामः । अतिमानुष स्तव 4 ।

धीरे-धीरे स्वर मन्द पड़ने लगा। गान बन्द हुआ और द्वयमन्त्र का उच्चारण प्रारम्भ हुआ। पूर्वार्द्ध का उच्चारण ठीक-ठीक हो सका। उत्तरार्द्ध के दीर्घ णकार और यकार के उच्चारण होते न होते कपालभेदन (ब्रह्मरन्ध्र से आत्मा निकलने) का शब्द गूँज उठा। मुख खुला रह गया, आँखों की पलक चढ़ गयी। श्वास की गति रुक गयी। इन क्रियाओं में यह बताना कठिन है कि कौन पहले हुई, संभव है सभी साथ ही हुई हों। अब जान पड़ा श्रीस्वामी जी महाराज इस संसार में नहीं रहे। इस नश्वर शरीर को छोड़कर त्रिपाद्विभूति की महायात्रा कर चुके। सभी लोग रोने लगे, सभी अधीर हो गये। करुणा की नदी उमड़ पड़ी। कोई किसी को धैर्य बंधाने वाला नहीं रह गया। सचमुच वि. सं. **1972** (प्रभव संवत्) के वैशाख कृष्ण षष्ठी सोमवार को ब्राह्ममुहूर्त्त में जब कि चन्द्रमा ज्येष्ठा नक्षत्र पर थे और भगवान् भास्कर मीन राशि पर थे, अपनी ज्ञान-किरणों से मगध को आलोकित करने वाला वह भास्कर सदा के लिए अस्त हो गया था। अब हमलोगों के हृदय को कौन आलोकित करेगा, इसकी चिन्ता व्यग्र कर रही थी। इसी प्रकार कुछ रोते-पीटते पश्चात् भगवान्की कृपा से कुछ धैर्य हुआ। अब सबों के सामने प्रश्न था श्रीस्वामी जी महाराज की अन्त्येष्टि क्रिया की।

केशवार्पितसर्वाङ्ग शशिभं मंगलाद्वयम्। न वृथा दाहयेद्विद्वान्ब्रह्ममेधविधिंविना।।

महर्षि हारीत के इस वचनानुसार ब्रह्ममेध संस्कारपूर्वक दाह संस्कार किया गया। भगवान् रामचन्द्र ने भी जटायु के शरीर का यही संस्कार किया था। यद्यपि श्रीस्वामी जी महाराज मुक्त थे। उनके लिए यह आवश्यक नहीं था फिर भी लोक-संग्रह की भावना से महापुरुष लोग कर्म करते आये हैं, अतः किया गया। सिद्ध महात्माओं के शरीर का दाह-संस्कार हो या न हो उनके लिए श्राद्ध किया जावे, किन्तु मुक्ति तो अवश्य मिलती ही है। कहा भी है -

" रथ्यान्तरे मूत्रपुरीषमध्ये चाण्डालवेश्मन्यथवा श्मसाने। कृतप्रयत्नोऽप्यकृतप्रयत्नो देहावसाने लभते च मुक्ति।

वैष्णव किसी भी स्थान पर, किसी भी अवस्था में देह त्यागे उसे मुक्ति अनायास मिलती है। क्योंकि भक्तों के लिए सायुज्य, सामीप्य, सालोक्य और सारूप्य ये चारो प्रकार की मुक्तियाँ हस्तगत रहती हैं। फिर भी श्रीस्वामी जी महाराज का दाह-संस्कार, नारायणबली श्राद्ध, आचार्य सम्मेलन आदि जो कुछ भी किया कराया गया वे सभी लोक-संग्रह की भावना से। अब श्रीस्वामी जी महाराज इस संसार में नहीं रहे, किन्तु आज भी उनके बताये मार्ग असंख्य जीवों के उद्धार के लिए पर्याप्त हैं।

- इति -

अब्दे श्रीप्रभवाविधे दिनमणी मीने गते माधवे मासेऽशुक्लदले सुधांशुदिवसे षष्ठ्यां तिथाविन्द्रभे।
श्रीरंगार्यपदाश्रितो गुणनिधिः राजेन्द्रसूरिः महान् ध्यायन् स्वार्यपदाम्बुजज्च युगलं प्रायात् पदंवैष्णवम्।।

प्रभव संवत्सर के मीन राशि पर जब सूर्य थे, तब वैशाख मास के कृष्ण पक्ष में, षष्ठी तिथि चन्द्रवार में, ज्येष्ठा नक्षत्र एवं ब्राह्म मुहूर्त्त में श्रीरंगदेशिकाचार्य जी महाराज के चरण-कमलों के अनुसन्धान करते हुए सर्वगुण सम्पन्न श्रीस्वामी राजेन्द्रसूरि जी महाराज ने त्रिपादिवभूति विष्णुधाम की यात्रा की और श्रीलक्ष्मीनारायण के चरणकमलों में जा पहुँचे।

श्रीमते रामानुजाय नमः

मर्यादा पुरुषोत्तम और हिंसा

लेखक
श्री स्वामी परांकुशाचार्य
सरौती स्थानाधीश

|

द्वितीय संस्करण गुरु पूर्णिमा सम्वत् **2043**

श्रीमते रामानुजाय नमः

दो शब्द

भगवान्‌की सृष्टि में दो प्रकार के मनुष्य पाये जाते हैं - एक दैवी प्रकृति और दूसरा आसुरी प्रकृति का। "दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता। गी. 16।5।" इन दोनों का दृष्टिकोण भी पृथक-पृथक रहता है। एक वस्तु में भी दोनों को दो प्रकार के भान होते हैं, जैसे जिह्वा स्वाद की भिन्नता के कारण नीम की पत्तियों में मनुष्य को तीतापन और ऊँट को मधुरापन प्रतीत होता है। इसी प्रकार देव और दैवी प्रकृति वाले श्री राम जी ईश्वर प्रतीत होते हैं - "भगवान्नारायणो देवः।" और आसुरी प्रकृतिवाले को प्राकृत पुरुष प्रतीत होते हैं।

मल्लानामशनिर्नृणान्नरवरस्स्त्रीणां स्मरो मूर्त्तिमान् गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोर्शिशुः।
मृत्युर्भोजपतेर्विराड्विदुषां तत्त्वं परं योगिनाम् वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रङ्गङ्गतस्साग्रजः।भा. 10।43।17।"

कंस के समीपस्थ लोगों ने अपने-अपने संस्कार के अनुकूल एक ही कृष्ण को दस प्रकार से देखा। दैवी प्रकृति वाले को भगवान्‌का दिव्य मंगल विग्रह दिव्य ही प्रतीत होता है - "**न तस्य प्राकृतिर्मूत्तिः मांसभेदोऽस्थिसंभवाः।**"

इसी प्रकार श्री राम जी हरिभक्तों को दयालु और दया वृत्ति का प्रतीत होते हैं और पापियों को हिंसक और हिंसा वृत्ति वाले प्रतीत होते हैं। इसी कारणवश वाल्मीकि रामायण में भी पापियों को श्री राम जी के व्यापार हिंसापूर्ण और पुण्यात्माओं को अहिंसापूर्ण प्रतीत होते हैं। शब्द को कल्पद्रुम माना गया है उससे चाहे अमृत माँग ले या विष, वह दोनों को देनेवाला है, याने कल्याणप्रद अर्थ और नरकप्रद अर्थ। एक ही शब्द को लोग अपने- अपने पूर्व जन्म के संस्कारों से भिन्न -भिन्न अर्थ किया करते हैं।

निवेदक -
परांकुशाचार्य
सरौती।

इस पुस्तिका में आये हुए भ्रमात्मक शब्दार्थ

संस्कृत	हिन्दी	कोष-नाम
अजा	बीज	भाषा कोश
आमिष	राजभोग, उत्कोच (घुस)	मेदिनी
एण	ऊन	शब्दार्थ कौस्तुभ
ऐणेय	वराहीकन्द, गजकन्द, रतालु	निघन्टु
ऐणेय	कृष्णमृग के ऊन का बना कम्बल	निघन्टु
कुक्कुट	चिनगारी, कृतअनुष्ठान, नागरमोथा	निघन्टु
गौ	चावल	अथर्ववेद
गौ	स्वर्ग, किरण, कुलिश	अथर्ववेद
छाग	निर्मल	अथर्ववेद
वलि	नैवेद्य	अथर्ववेद
वाराह	वाराहीकन्द, कसेरू	निघन्टु
भक्त	विभक्त (भागों में बँटा हुआ)	निघन्टु
भक्तम्	प्राणधारक	मेदिनी
भूतौदन	तिल, लाजा, दधि, यव, हरिद्रायुक्त ओदन	वैद्यक शब्द सिन्धु
मधु	पुष्प रस, शहद, गुड़	शब्दार्थ पारिजात
मदिरा	आम्र-वृक्ष	शब्द कौस्तुभ
मद	हर्ष, हाथी का दान-जल	मेदिनी
मत्स्य	सोमलता	शब्द कौस्तुभ
मत्स्य	क्रोध, भू, कुसुम, माला	मेदिनी
मयूरशिखा	एक बूटी (पृष्ठपर्णी)	मेदिनी
मांस	छिलका, गुद्दा (फल का भीतरी भाग)	भावप्रकाश
मांस	काकोली, जटा, भूमि से उत्पन्न वनस्पति	मेदिनी
मांस	चावल का श्याम भाग	अथर्ववेद
मांस	पौष्टिक वस्तु	मरीचि संहिता
मृग	वाराहीकन्द, गजकन्द, मेदा, महामेदा, याचना, अनुसन्धान	शब्दार्थ कौस्तुभ
ृग	हाथी, नक्षत्र, अन्वेषण	मेदिनी
मृगारि	कुंकुम	मेदिनी
मृष्ट	पवित्र, साफ, गुद्दा	मेदिनी
मैरेय	द्राक्षारस	शब्द कौस्तुभ

रजनी	हरिद्रा, रात	शब्द कौस्तुभ
रुधिर	चावल का लाल भाग	अथर्व वेद
रोहिष	घास	मेदिनी
शोणित	रस, कुंकुम	मेदिनी
श्रृंग	जीरा	अमरकोश
सुरभी	सालम मिश्री	अमरकोश
सुरा	पंचामृत	अमरकोश
(सु उपसर्ग पूर्वक रा आस्वादने धातु निष्पन्न)		अमरकोश
	सुन्दर स्वादवाला	
सुरा	सु उपसर्ग पूर्वक राः पुंसि स्वर्ण वित्तयो	मेदिनी

श्रीमते रामानुजाय नमः

प्राग्वक्तव्य

"**दुर्लभो विषयत्यागः दुर्लभं तत्वदर्शनम्। दुर्लभा सहजावस्था सद्गुरोः करुणां विना।।**"
भगवत्कृपा विना वास्तविक रहस्य ज्ञान दुर्लभ है। श्री व्यास जी का कथन है - "**पिवत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः**।भा 1।1।3।" सद्ग्रन्थों के रहस्यावलोकन में सहृदयता, भावुकता एवं तन्मयता की आवश्यकताएँ होती हैं। ऐसा करने से कोई भी पाठक किसी सद्ग्रन्थ के तत्त्वज्ञान करने में समर्थ हो सकता है। जिस वस्तु में अनवरत भावना लगायी जाती है वह वस्तु अप्रत्यक्ष रहने पर भी प्रत्यक्षवत् भासती है। "**वृक्षे वृक्षे च पश्यामि चीरकृष्णाजिनाम्बरम्**।वा.रा. अरण्य 39।15।" यह मारीच का वचन है। इसमें भावना प्रकर्ष ही झलकता है।

इसी प्रकार - "**ततस्तु तं पश्यति निष्कलं ध्यायमानः**।" इस श्रुति में स्पष्ट ही निर्देश दिया गया है। यद्यपि "**ध्यै चिन्तायाम्**" **यह धातु परस्मैपदी है, इसलिए 'ध्यायमानः' इस शब्द में शानच् प्रत्यय नहीं होना चाहिए, तो भी वैदिक प्रयोग होने से शानच् प्रत्यय होगा**। श्री वाल्मीकि रामायण महर्षि श्री वाल्मीकि जी की पुण्यमयी रचना है। इसका मूलाधार गायत्री के चौबीस अक्षर हैं। यही चौबीस अक्षरों का प्रतीक, चौबीस सहस्र श्लोकों वाला गायत्री भाष्य रूप रामायण जो वेदस्वरूप है, बना - "**वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे। वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षात्रामायण आत्मना**।अगस्त संहिता।" अर्थात् वेद वेद्य नारायण राम रूप से आए तो उनका प्रकाशक वेद भी रामायण रूप में अवतीर्ण हुआ। इसमें मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्री रामचन्द्र जी का वास्तविक चरित्र-चित्रण है तथा मनुष्य जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में अनुकरणीय चरित्रों का स्वाभाविक दिग्दर्शन कराया गया है जिसमें आध्यात्मिक और लौकिक जीवन सफल हो सकते हैं।

यह कर्मप्रधान महाकाव्य है। इसके पात्र उदात्तवृत्ति के दिव्य पुरुष हैं। सभी पात्रों का चरित्र -वर्णन निष्पक्ष भाव से किया गया है। भगवान्श्रीरामचन्द्र जी का जैसा चरित्र वर्णन इस रामायण में किया गया है ऐसा अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलता है। यह आध्यात्मिक और दार्शनिक विषयों का पूर्ण भण्डार है।

"**रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम्। अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथा सुखम्**।वा.रा. अयो. 40।8।" अयोध्या से वन

गमन के समय में श्री शेष लक्ष्मण जी के प्रति उनकी माँ सुमित्रा कहती हैं कि हे पुत्र ! प्रसन्न चित्त से वन जाओ, माता पिता श्री जानकी जी और भगवान् श्री रामजी को समझो, जंगल को अयोध्या समझो। यह उपदेश आत्मज्ञान ही तो है।

"**पापानां शुभानां वा वधार्हाणां प्लवंगमः। कार्यकारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति।** बा.रा. युद्ध **116।43**।" कोई पापी हो या धर्मात्मा अथवा वध करने योग्य ही क्यों न हो किन्तु श्रेष्ठ जनों को उस पर दया ही करनी चाहिए। क्योंकि ऐसा कोई है ही नहीं जिसने अपराध न किया हो, कुछ न कुछ अपराध तो सभी से हुआ ही करता है।

"**न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम्। समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चारित्रभूषणाः।** बा.रा. युद्ध **116।44**।" अपकारी को अपकार द्वारा बदला देना उचित नहीं अथवा दूसरे के बुरे काम को देखकर वैसा ही बुरा वर्त्ताव करना उचित नहीं। प्रत्येक जन को अपने आचार की रक्षा करनी चाहिए क्योंकि आचार रक्षा ही साधुजनोचित भूषण है। इसलिए श्री वाल्मीकि जो को यह कहना पड़ा कि - "**सीतायाः चरितं महत्**। बा.रा. बाल. **4।7**।" अर्थात् इस रामायण में सीता चरित्र महान् है। इसी गुण गौरव के कारण शेषावतार श्री स्वामी रामानुजाचार्य ने अपने पूज्य आचार्य चरणों द्वारा इस रामायण को अठारह बार पढ़ा और अठारह प्रकार के भाव समझे। ऐसे सात्विक ग्रन्थ को सात्विक वृत्ति से ही अध्ययन- मनन करना चाहिए। अन्यथा उसका रहस्य- ज्ञान तो दूर रहा, पाप का भागी भी होना पड़ेगा। कुवृत्ति से इस रामायण को अध्ययन करने वाले ही कुछ टीकाकारों ने मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्री रामचन्द्र जी को हिंसक और मांस-भक्षी भी बना छोड़ा है जो उनके नियमादिकों के अत्यन्त विरुद्ध है। ऐसी परिस्थिति में अल्पज्ञ सर्वसाधारण मनुष्यों की क्या दशा होगी ? किस पक्ष को प्रमाणित मानेगें ? इत्यादि शोचनीय उलझनों को दूर करने के लिए इस रामायण में मत्स्य मांसादि शब्दों की मीमांसा की गयी है। पाठक सप्रसंग पात्रों की उदात्तवृत्ति को ध्यान में रखकर पढ़ें और कल्याण का भागी बनें।

किसी ग्रन्थ के पद्य पद्यांश या वाक्यांशों के अर्थ विचार में सामान्यतया तीन बातों पर ध्यान देना चाहिए - प्रथम प्रकरण या प्रसंग, द्वितीय अधिकारी, तृतीय पूर्वापर विषयों का समन्व्य में व्यतिक्रम का अभाव। इन तीनों विषयों को ध्यान में रखते हुए अर्थ करने से वह अर्थ औचित्यपूर्ण रहता है अन्यथा अनर्थ में परिणत हो जाता है। ग्रन्थ की उत्तमता, ग्रन्थ लेखक और ग्रन्थाधिनायक की उत्तमवृत्ति पर आधारित रहती है। अतः भगवान् श्री रामचन्द्र जी के कुलधर्म परिचयार्थ कुछ उद्धरण प्रस्तुत किये जाते हैं।

वर्तमान कल्प के पूर्व पद्म-कल्प में राजा सत्यव्रत की अंजलि में भगवान्का मत्स्यावतार हुआ था। वही राजा सत्यव्रत स्वायंभुव मनु हुए - "**अस्याभूत्प्रथमं जन्म मनोः स्वायंभुवस्य च। रघूणामन्वयं पूर्व राजा दशरथोऽभवत्।** पद्म पु. उ **242।9**।" इसी प्रकार नैमिषारण्य में मनु शतरूपा ने कठिन तपस्या द्वारा भगवान्को प्रसन्न कर यह वर मांगा कि आप तीन जन्मों तक मेरा पुत्र बनें - "**पुत्रत्वं भज देवेश त्रीणी जन्मानि चाच्युत।** पद्म पु. उ **242।3**।" इसीलिए मनु ने दशरथ होकर श्री रामजी को पुत्र रूप में प्राप्त किया -

"**रघोरथ कुले जातो रामनाम जनार्दनः।**
ब्रह्मणा प्रार्थितो विष्णुर्जातो दशरथात्मजः। कौशल्यायाञ्च भगवान्त्रेतायाञ्च मुदान्वितः।।
कैकेय्याः भरतश्चैव रामतुल्यो गुणेन च। लक्ष्मणश्चापि शत्रुघ्नः सुमित्रायां गुणार्णवः। ब्रह्मवैवर्त्त पु. कृष्ण खं. **62। 3-4**।"

<u>अवतार हेतु</u>

"**मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणम्।**" भगवान्का अवतार लोकशिक्षा, धर्म-संस्थापन एवं पाप निवारण आदि कारणों से होता है। "**गो द्विज धेनु विप्र हितकारी। कृपासिन्धु मानुषतनुधारी।** मानस सु. **38।2**।" "**प्रकृति स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया।** गी. **4।6**।" "**धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।** गी. **4।8**।" इसी प्रकार के हेतु सभी अवतारों में पाये जाते हैं। सृष्टि संरक्षणादि कार्यों में श्रीलक्ष्मी जी भगवान् के साथ ही रह सदा सहायता किया करती हैं। "**अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा।** वा. रा. सु. **21।15**।" "**यथा सर्वगतो विष्णुः तथैवेयं द्विजोत्तम।**" "**गिरा अर्थ जलबीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न। बन्दौ सीतारामपद जाके परम प्रिय खिन्न।** मानस बा का **18**।"

भगवान् और लक्ष्मी दोनों अपृथक से सदा रहते हुए लोक कल्याणार्थ सयत्न रहते हैं।

भगवान् श्रीरामजी का कुलधर्म परिचय

"एवमुक्त्वा विधातारं देवदेवो हरिः पिता। स्वचक्रेणाङ्कयित्वा तु तस्मै मन्त्रं ददौ स्वयम्।।

सर्वलोकेश्वरो देवो ब्रह्मा मम पिता प्रभुः। ममापि विधिवन्मन्त्रं प्रददौ मुनि सत्तमाः। पद्म पु. उत्तर 223।67 - 69।"

परम्परया श्रीमन्नारायण से ब्रह्मा, नारद, वशिष्ठ, नैमिषारण्यवासी शौनकादि महर्षि, इक्ष्वाकु कुल के इक्ष्वाकु से दिलीप प्रभृति चक्रांकित श्रीवैष्णव थे। इसी प्रकार दिलीप के प्रति वशिष्ठ का वचन है -

"ममापि नारदस्यापि प्रोक्तवान्मन्त्रमुत्तमम्। शौनकादिमहर्षीणां नैमिषारण्यवासिनाम्।।

नारदः प्रददौ मन्त्रं प्रपत्तिं शरणागतिम्। एतद्गुह्यतमं राजन् न जानन्ति महर्षयः। पद्म पु. उत्तर 223। 74-75।"

परम्परा से महर्षि कश्यप से भगवान् श्रीरामचन्द्र जी इनके पूर्व पुरुष वशिष्ठ, हनुमान्प्रभृति चक्रांकित श्रीवैष्णव सिद्ध हैं। यही बात नारद पांचरात्रान्तर्गत वृहद्ब्रह्म संहिता आदि सद्ग्रन्थों में पायी जाती है -

"कश्यपादङ्कयित्वाङ्कं करिष्ये देवरक्षणम्। वशिष्ठमुनिशार्दूलाद्दिलीपप्रमुखा नृपाः।।

धारयिष्यन्ति भूलोके महाशस्त्रं सुदर्शनम्। रामो राजीवपत्राक्षो भूत्वा दशरथात्मजः।।

धृत्वा तप्तायसीं मुद्रां देवकार्यङ्करिष्यन्ति। परमैकान्तिकं धर्मं वायुपुत्रो महाबलः।।"

परमभागवत नामावली हारीत संहिता

वशिष्ठं वामदेवञ्च व्यासं शौनकमेव च। मार्कण्डेय चाम्बरीषं दत्तात्रेयं पराशरम्।।

भरद्वाजं बलिं भीष्ममुद्धवाक्रूरपूर्वकम्। गुहं सुतञ्च वाल्मीकं स्वाम्भुवमनुं ध्रुवम्।।

नन्दञ्च वसुदेवञ्च दिलीपं दशरन्तथा। कौशल्याञ्चैव जनकं भक्ता इत्यादिकं ध्रुवम्।।

महाभागवत का लक्षण

अर्थपंचक तत्वज्ञाः पंचसंस्कारसंस्कृताः। नवभक्तिसमायुक्ता महाभागवता स्मृताः।।

तापं पुण्ड्रं तथा नाम मन्त्रयागस्तु पञ्चमः। महाभारद्वाज संहिता।

इक्ष्वाकु से लेकर श्री रामचन्द्र प्रभृति में महाभागवत के आभ्यान्तर और वाह्य दोनों लक्षण विद्यमान थे। इसीलिए इस कुल के इष्टदेव रंगनाथ भगवान इक्ष्वाकु को प्राप्त हुए थे और तबसे श्रीरामचन्द्रजी पर्यन्त सबों से पूजित होते हुए श्री रामचन्द्र जी जब रंगनाथ भगवान् को विभीषण को दे दिये तो विभीषण भगवान् को रंगपुरी में रखे जो आज भी वहाँ विद्यमान हैं।

"श्रीरंगशायी देवेशो विधिनार्च्यः सुरोत्तमः। स एवेक्ष्वाकुनाथानां तपसाविरभूद्भुविम्। पद्म पु. उत्तर 253। 10।"

कौशल्या द्वारा रंगनाथ भगवान्की अनवरत आराधना

श्रीरंगनाथशायिनं सौम्यमिक्ष्वाकुल दैवतम्। सप्रीत्याप्रददौ तस्मै रामो राजीव लोचनः। पद्म पु. उत्तर 244। 61।

प्रभाते त्वकरोत्पूजां विष्णोःपुत्रहितैषिणी। वा. रा. अयो.।20।14।

पूजा हेतु कीन्ह पकवाना। मानस बा का 200।2।

"गुरोर्गुण गृहीता च"के अनुसार लोक संग्रह शिष्टाचार के लिए श्री राम जी कुलधर्मानुसार उर्ध्वपुण्ड्र तिलक लगाया करते थे। "भाले दधानं सितमूर्ध्वपुण्ड्रं पीतश्रियं मध्यविराजमानम्। अगस्त्य संहिता।" जनकराजा ने श्री रामचन्द्र जी के मस्तक में उर्ध्वपुण्ड्र तिलक देखा था। "भाल तिलक श्रमविन्दु सुहाए। मानस बा. 232।2।" "तिलक रेख शोभा जनु चाँकी। मानस बा. 218।4।" "तिलक ललाट पटल दुतिकारी। मानस बा. 146।2।" "भाल विशाल तिलक झलकाहीं। मानस बा. 242।3।" "नासा तिलक को वरने पारा। मानस बा. 198।4।"

इसी परम्परा से आज तक अर्चाविग्रह में भी उर्ध्व-पुण्ड्र तिलक लगा रहता है। रामलीला आदि अभिनयों में राम बनने वाले या

इनके पक्षवाले तिलक लगाते हैं। ये सब तो भगवान् श्री रामचन्द्र में बाह्य भागवत लक्षण स्पष्ट ही है। आभ्यान्तर लक्षण भी सद्ग्रन्थों में वर्णित है।

रामोऽपि भ्रातृभिस्सार्धं पालयामास मेदिनीम्। यमादिगुणसम्पन्नः सर्वभोगविवर्जितः।।

अर्चन्तस्सततं विष्णुमनादिनिधनं हरिम्। ब्रह्मचर्य परोनित्यं शसास पृथिवीं नृपः ।पद्म पु. उत्तर **244**। **7-8**।

इश्वाकु कुल के साधारण धर्म का वर्णन रामायण में इस प्रकार पाया जाता है।

राजर्षिणा गुणाश्रेष्ठाः तपसा चर्षिभिस्समः। अहिंसारतिरछुद्रो वृत्तिः सत्यपराक्रमः।।

मुख्यश्चेक्ष्वाकुवंशस्य लक्ष्मीवाँलक्ष्मीवर्धनः।

इस प्रकार के सद्ग्रन्थों के प्रमाणों द्वारा भगवान् श्रीरामचन्द्र जी कुलधर्म, स्वभाव, अन्तरंग एवं बाह्ययाचरणों से ज्ञात होता है कि हृदयहीनता, निष्ठुरता, हिंसादि क्रूरकर्मो से घृणा करते थे, वंचित थे वल्कि "गुणानामाकरो महान्...." कल्याणकर गुणों के आकर थे। एतद्विषयक ही महर्षि वाल्मीकि का प्रश्न नारद से हुआ था-

कोन्वस्मिन्साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्चवीर्यवान्। धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढ़व्रतः।।

चारित्रेण च को यक्तः सर्वभूतेषु को हितः। विद्वान् कः कः समर्थश्च कश्चैक प्रियदर्शनः।।

आत्मवान् को जितक्रोधो द्युतिमान् कोऽनसूयकः। कस्य विभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे ।वा. रा. बाल **1**।**2-4**।

1.गुणवान्, **2**. शक्तिशाली, **3**. धर्मज्ञ, **4**. कृतज्ञ, **5**. सत्यवाक्, **6**. दृढ़व्रत, **7**. चारित्रवान्, **8**. सर्वभूतहित परायण, **9**. विद्वान्, **10**. समर्थ, **11**. प्रियदर्शनीय, **12**. धैर्यवान्, **13**. जितक्रोध, **14**. तेजस्वी, **15**. ईर्ष्याशून्य, **16**. आवश्यकतायां देवानामपि भयदायक इत्यादि गुण सम्पन्न इस ब्रह्माण्ड में कौन है ? उत्तर में नारद ने यही कहा कि -

इश्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः। नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान् धृतिमान्वशी ।वा. रा. बाल ।**1**।**8**।

इश्वाकु वंश में अवतरित भगवान् श्रीरामचन्द्र ही एक सर्वगुण सम्पन्न हैं। उक्त प्रसंग में इन सभी गुणों में से धर्मज्ञ, सत्यवाक्, दृढ़व्रत और सर्वभूतहितपरायण - इन चार गुणों को लेकर दूषणोद्धार करना चाहिए। ताड़का, सुबाहु, रावण आदि आसुरी वृत्तिवाले की हिंसा में धर्म की स्थापना, अधर्म का नाश एवं सन्तों की रक्षा का तात्पर्य निहित है। आततायियों के वध से धर्म की रक्षा होती है। इसलिए मनु की आज्ञा है -

"गुरुं वालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतुम्। आततायिनमायान्तन्तं हन्यादविचारयन्।।"

ये सभी आततायी हैं -

अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः। क्षेत्रदारापहर्ता च षडेते ह्याततायिनः।।

सदापान रता ये च सदा काम रतास्तथा। सदा द्युतक्रियासक्ताः सदा सद्वञ्चनप्रियाः।।

सदा पैशुन्यसक्ताश्च सदा मांसप्रिया अपि। शास्त्रज्ञा अपि लोकेऽस्मिँश्च एते त्वातयायिनः।।

यही भाव "पावन मृग मारहि जिय जानी ।मानस बाल **204**।**1**।" यहाँ पर भी समझना चाहिए। पावन वाच्य श्री रामचन्द्र जी (**पवनः पावनोऽनलः-** विष्णुसहस्रनाम) हिंसक क्रूर जन्तुओं की रक्षा के लिए मारते हैं। मृग सभी जंगली जन्तुओं को कहते हैं। "**ननन्द रामो मृगपक्षि जुष्टाम्जहौ च दुःख पुर विप्रवासात्।**" श्री रामचन्द्र जी से मृग, पक्षियाँ सभी प्रेम करते थे, अतएव वनवास का दुःख नगण्य हो गया था। "**हित अनहित पशु पक्षिउ जाना** ।मानस अयो. **263**।**2**।" "**बाधक बधिक विलोकि पराही** ।मानस अयो. **263**।**2**।" पशु-पक्षियों का प्रेम सिद्ध करते हैं कि भगवान् श्रीराम जी हिंसक नहीं थे। वन-गमन काल में वृक्षादि जड़ वस्तुयें भी मुरझा गयी थीं -

विषये ते महाराज रामव्यसन कर्षिताः। अपि वृक्षाः परिम्लानाः पुष्पांकुर कोरकाः।।

उपतप्तोदका नद्यः पल्वलानि सरांसि च। परिशुष्क पलाशानि वनान्युपवनानि च।।

वृक्षाश्च तान्तिमलभन्त भवद्वियोगे ।वा. रा. अयो. **59**।**4-5**।

चित्रकूट के वृक्षादि - "**सब फल फलै राम हित लागी। ऋतु अनऋतु काल गति त्यागी** ।मानस लंका **4**।**3**।" "**सरिता सर गिरि औघट घाटा। पति पहिचानी देहि वर बाटा** ।मानस अर. **6**।**2**।" एक जड़ वस्तु जब भगवान् को पहचान कर उनसे प्रेम करती है तो चैतन्यों का तो कहना ही क्या है। और, प्रेम करने वाले जीवों की मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् कैसे हिंसा कर सकते हैं ? यह असंभव है। भगवान्

लोकप्रिय हैं। अब रहा मांस भक्षण का प्रश्न। यहाँ यह सोचना चाहिए यदि महर्षि वाल्मीकि मांस की विधि लिखते हैं तो स्वयं व्याधवृत्ति छोड़कर उत्कट तपस्वी क्यों बन गये ? यहाँ तक कि बहुकाल पर्यन्त हवा पीना भी बन्द कर समाधि लगाये जिसके कारण शरीर में दीमक लग गया। इसी वल्मीक से निकलने के कारण वाल्मीकि भी कहाए। इनका हृदय करुणापूर्ण है। यहाँ तक कि हिंसावृत्ति वाला व्याधा को शाप दे छोड़े - "**मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः**। वा. रा. बाल **2**।**15**।"

इनके सम्मान में ब्रह्मादि देव बिना बुलाये अपने-आप आ मिले। यदि ये सभी बातें महर्षि में सत्य हैं तो वाल्मीकि रामायण पढ़ने वाले कुछ लोग इस रामायण से मांस भक्षण को प्रमाणित करने का दुःसाहस करते हैं तो वे किसी सद्गुरु से जाकर इसका अर्थ पढ़ें तो उन्हें पता चलेगा कि हम कितने अथाह अज्ञान के गर्त्त में पड़े थे। भगवान् श्री रामचन्द्र जी मांस-भक्षी थे यह कहने वाले टीकाकार पूर्वापर प्रसंग छोड़कर ही अर्थ को अनर्थ कर डालते हैं। वन-गमन काल में श्री राम जी की प्रतिज्ञा को वाल्मीकि जी लिखते हैं-

"**वनवास वसन्नेव शुचिर्नियत भोजनः। मूलैः पुष्पैः फलैः पुण्यैः पितृन्देवांश्च तर्पयन्**। वा. रा. अयो. **109**।**26**।

फलानि मूलानि च भक्षयन् वने। वा. रा. अयो. **34**।**59**।"

वनवास काल में मैं पवित्राचरण से रहते हुए कन्द-मूल फलादि भगवान् को भोग लगाकर उसी से पितृ देवताओं को तृप्त करूँगा। कैकेयी की आज्ञा भी इसी प्रकार की है - "**चीराजिन जटाधारी रामो भवतु तापसः**। वा. रा. अयो. **11**।**26**।" राम तपस्वी होकर वन में रहें। कैकेयी के वचनानुसार तपस्वी बनना और मांस भी खाना - ये दोनों विरोधात्मक विषय हैं, यह कैसे हो सकता है।

श्री राम जी का वचन - "**विद्धि मां ऋषिभिस्तुल्यम्**। वा रा अयो **19**।**20**।" "**आसेवमानो वन्यानि फलं मूलैश्चवर्तयन्**। वा रा अयो **20**।**31**।" "**मधुमूलफलैर्जीवन् हित्वा मुनिवदामिषम्**। वा रा अयो **20**।**29**।"

भगवान्श्री राम जी ने मुनि तुल्य रहने के लिए कहा है। मुनियों की जीवनचर्या यह है -

वैषानसा वालखिल्याः सम्प्रक्षाला मरीचिपाः। अश्म कुहाश्च बहवः पत्राहाराश्च धार्मिकाः।।

मुनयः सलिलाहाराः वायुभक्षास्तथा परे। आकाश निलयाश्चैवं तथैवाभ्रावकाशकाः।।

वैखानस (ब्रह्मा से उत्पन्न), वालखिल्य (ब्रह्मा द्वारा बाला से उत्पन्न), सम्प्रक्षाल (ब्रह्मा के पादधोवन से उत्पन्न), मरीचिप (चन्द्र-सूर्य किरणों को पीकर रहने वाले), अश्मकूट (पत्थर में कच्चा अन्न कूटकर खानेवाले), पत्राहार करने वाले, सलिलाहार करने वाले, वायु पीकर रहने वाले, खुले आकाश में रहने वाले, स्थण्डिलशायी (भूमि लीपकर सोनेवाले) इत्यादि वृत्तिवान् ऋषि -मुनि होते हैं। मुनि शब्द का अर्थ मननशील है। ऐसे मुनियों के समान रहते हुए भगवान् श्री रामचन्द्र जी माँस भक्षी कैसे हो सकते हैं। पिता श्री दशरथ जी के श्राद्ध के समय उपस्थित होने पर -

"**ऐङ्गुदं बदरीमिश्रं पिण्याकं दर्भसंस्तरे**। वा रा अयो **102**।**29**।" इंगुदी बैर के चूर्ण से पिण्ड दिए हैं। क्योंकि - "**यदन्नः पुरुषो भवति तदान्नास्तस्य देवता**ः। वा रा अयो **102**।**30**।"

जो व्यक्ति जिस वस्तु को खाता है वही वस्तु अपने इष्ट देवों को देता है। यदि श्री राम जी मांस खाते तो अपनी प्रिय वस्तु समझ कर पिता को पिण्ड भी मांस से देते किन्तु ऐसा नहीं किया है। यदि श्री राम जी मांस भक्षी होते तो उनके भक्त भी घन्टाकर्ण के समान आज ठाकुरवाड़ी में ठाकुर जी को मांस अवश्य निवेदन करते किन्तु ऐसा कहीं भी देखने में नहीं आता है। कोई भी वस्तु भगवान् को अर्पण किए बिना खाना मना है। श्री राम जी श्री वैष्णव होने के सम्बन्ध से सभी वस्तु भगवान्को भोग लगाकर ही खाते थे। विना भगवान को भोग लगाये खाना पाप है - "**भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्**। गी **3**।**13**।"

भगवान् को निवेदनीय वस्तु में मांस नहीं है और मांस भी लगाने की कहीं विधि भी नहीं है। प्राकृत मनुष्य वाला गुण-दोष उनमें नहीं लग सकता है। **1**। प्राकृत मनुष्य में स्वभावतः दोष या गुण होता है - "**स्वभावस्तु प्रवर्तते**।" **2**। किसी व्यक्ति में कुलधर्म का भी प्रभाव पड़ता है - "**नोल्लंघनीय कुलदेश धर्मः**।" **3**। किसी मनुष्य में संसर्गवश दोष गुण आता है - "**सत्संगेन हि दैतेयाः**।" **4**। किसी मनुष्य में जन्मान्तर का संस्कार रहता है - "**पूर्वाभ्यासेन तेनैव**।" जैसे जड़भरत को पूर्वजन्म का संस्कार बना

था। **5**। किसी व्यक्ति में स्वाभाविक जाति वैर बना रहता है। ये सभी गुणदोष प्राकृत पुरुष में होते हैं। ईश्वर में नहीं। ईश्वर प्राकृत नहीं है - **"न तस्य प्राकृतिर्मूर्तिमांसमेदोस्थिसंभवम्।" "जन्म कर्मञ्च मे दिव्यम्। गी 4।9।"**

इन हेतुओं से भी भगवान् श्री रामचन्द्र जी में प्राकृत पुरुषों का नित्य नैमित्तिक या सांसारिक दोषारोपण नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार भगवान् के अवतार हेतु कुलधर्म (श्री वैष्णव धर्म) का पालन, कैकेयी की आज्ञानुकूल वनवास, वानप्रस्थाश्रम का कर्त्तव्य, मुनि तुल्य वनवास जीवन बिताने का संकल्प, मर्यादा पुरुषोत्तम होने के कारण लोक संग्रहार्थ सर्व व्यवहार **"रामो द्विर्नाभिभाषते। वा रा अयो 18।30।"** इत्यादि वचनों का पालन आदि विषयों पर ध्यान देने से भगवान्श्रीरामचन्द्र जी का मांस भक्षण कभी भी नहीं सिद्ध होता है।

हाँ, **"यदि तुष्यन्तु दुर्जनन्याय"** से कुछ क्षणों के लिए उक्त आक्षेप को मान भी लिया जाय तो उनको ईश्वर होने के सम्बन्ध से कर्त्तापन का कोई भी दोष उन्हें नहीं लगता - **"न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्म फले स्पृहा। इति मां योऽभिजानाति कर्मभिः न स बध्यते। गी 4।14।"** भगवान् को कर्मबन्धन नहीं बांधता ऐसा जानने वाला मुक्त हो जाता है। अन्यथा नरक भोगना पड़ता है। ईश्वर अघटित घटना सामर्थ्यवान् है, अतः संसार से निर्लिप्त रहते हैं। ईश्वर का किया हुआ करने का आदेश हम सबों को नहीं है बल्कि - **"ईश्वरस्य वचः पश्यम्।"** ईश्वर का कहा हुआ करने से कल्याण होता है। **"न देवचरितं चरेत्।"** यदि कोई दुर्भावना के कारण ईश्वर में दोष लगाता है तो समझना चाहिए कि उसके ऊपर भगवान्की कृपा ही नहीं है, इसलिए उसे ऐसा करना सूझता है। ईश्वरीय कृपा द्वारा ही दिव्य ज्ञान प्राप्त होता है। **"दिव्यं ददामि ते चक्षुः। गी 11।8।" "यः पश्यति स पश्यति। गी 5।5।"** उनकी कृपा बिना **"पश्यन्नपि न पश्यति।" "तुम्हरी कृपा पाव कोई कोई। मानस किष्क. 20।3।" "सो जानई जेहि देहु जनाई। जानत तुमही तुमही होइ जाई। मानस अयो. 126।2।"** अतएव शुद्ध सात्विक ज्ञान के लिए ईश्वर की कृपा ही परमोपाय है।

उक्त विषयों को ध्यान में रखकर यदि पाठकगण श्रीवाल्मीकि रामायण का अध्ययन, मनन करेंगे तो उन्हें स्वतः दिव्यलोक का भास होगा जिससे अज्ञान-तम विनष्ट होगा यथार्थ ज्ञान द्वारा कल्याण-भागी बनेंगे जिससे लोकसंग्रह भी होगा।

1। "मधुमूलफलैर्जीवन्हित्वा मुनिवदामिषम्। भरताय महाराजो यौवराज्यं प्रयच्छति। वा रा अयो 20।29।" वनगमन के पूर्व भगवान् श्रीरामचन्द्र जी का प्रतिज्ञा बोधक यह श्लोक है। श्री रामचन्द्र जी अपनी माँ कौशल्या से प्रतिज्ञा पूर्वक कहते हैं कि मैं राजभोग भोजन सुखादि छोड़कर ऋषि मुनियों के तुल्य कन्दमूल, फलादि द्वारा जीवन निर्वाह करते हुए वन में रहूँगा। महाराज श्री दशरथ जी ने भरत जी को युवराज पद दिया है। यहाँ आमिष शब्द से राजोचित भोग जानना चाहिए -

आकर्षणेऽपि पुंसि स्यात्आमिषं पुं नपुंसकम्। भोग्य वस्तूनि संभोगेऽप्युत्कोचे पललेऽपि च।
तां तदा दर्शयित्वा तु मैथिलीं गिरि निम्नगाम्। निष्ण्णां तां गिरिप्रस्थे सीतां मांसेन छन्दयन्।।
इदं मेध्यमिदं स्वादु निष्टप्तमिदमग्निना। एवमास्ते स धर्मात्मा सीतया सह राघवः। वा रा अयो 96।1-2।

धर्मात्मा राघवः सीतां मांसेन छन्दयन्आस्ते - धर्मात्मा को मांस भक्षण की संभावना कैसे हो सकती है, अतः मांस से फल का सार भाग समझना चाहिए।

2। सुराघट सहस्रेण मांसभूतौदनेन च। यक्ष्ये त्वां प्रयतां देवि पुरीं पुनरुपागता। वा रा अयो 52।89।

वन जाते समय गंगा तट पर पहुँचने पर श्री जानकी जी गंगा से प्रार्थना करती हैं कि हे गंगा देवि ! हम सब सकुशल वन से अयोध्या लौट आवेंगे तो आपको एक सहस्र घट पञ्चामृत या देवदुर्लभ भगवत्प्रसाद और मांसभूतौदन (तिल, लावा, दही, यव और हरिद्रा मिश्रित भात) से करेंगे। यहाँ सुरा शब्द से पंचामृत ग्रहण करना चाहिए क्योंकि पूजक और पूज्य दोनों ही शुद्ध सात्त्विक प्रकृति के हैं। सुरा - सु उपसर्ग रा आस्वादने धातु से सुष्ठु आस्वदते, इस विग्रह द्वारा सुरा शब्द की सिद्धि हुई है। अतः इसका अर्थ पंचामृत हुआ। अथवा, **सुराघटसहस्रेण - सुराणामघटः अप्राप्यः**, अर्थात् देवदुर्लभ जो भगवत्प्रसाद वह 'सुराघट' का अर्थ होगा क्योंकि हारीत वचन - **"विष्णोर्निवेदितान्नेन यष्टव्यं देवतान्तरम्। पितृभ्यश्चैव तद्देयं तदनन्ताय कल्पते।"** विष्णु निवेदित वस्तु से ही देवतान्तरों

की पूजा करे। भगवत् प्रसाद देवताओं को अलभ्य है।

"तिल लाजा दधि यव हरिद्रायुक्त ओदनम्। भूतौदनं सु सम्प्रोक्त गुणाः सर्वे पदार्थवत्। वैद्यक शब्द सिन्धु।"

अथवा मांस भौम - **भूमि समुत्पन्नं कन्दमूलादिकम्।** बह्मसूत्र 2।4।21 **। न मांसं भूमिका जायं न मांसं तृणवृक्षयोः। रजवीर्य समुत्पन्नं तन्मे मांसं विवर्जयेत्।।**

"मांसोक्ते पौष्टिक ग्राह्यम्। मरीचि संहितायाम्।" मांस शब्द से ग्रन्थों में फल का गुद्दा (सार) या छिलका पुष्टिकारक ग्राह्य अंग माना गया है। **"पूतनास्थिमती सूक्ष्मा कथिता मांसलामृता।** भाव प्रकाश।"

3। यहाँ से आगे चलकर जब यमुना के तट पर श्रीरामचन्द्र जी पहुँचते हैं तो वहाँ भी श्रीजानकी जी यमुना से प्रार्थना करती हैं कि **"स्वस्ति देवि तरामि त्वां पारयेत् मे पतिव्रतम्। यक्ष्ये त्वां गो सहस्रेण सुराघटशतेन च।** वा रा अयो 55।20।" हे यमुना देवि ! यदि मेरे पति का व्रत याने वनवास निर्विघ्न पूरा हो जायेगा तो मैं आपको एक सहस्र गोदान और एक शत घड़ा पंचामृत से पूजा करूँगी।

4 **। कोशमात्रं ततो गत्वा भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ। वहून्मेध्यान्मृगान्हत्वा चेरतुर्यमुनावने।** वा रा अयो 55।32। एक कोस चलकर श्री रामचन्द्र जी ने लक्ष्मण के साथ यमुना तीरवर्ती वन में गजकन्द भोजन किया। यहाँ पर मृग शब्द गजकन्द के लिए प्रयुक्त हुआ है। **"मृगः पशौ कुरंगे गजे च"** इति शब्दस्तोमः। इस स्थान में गज शब्द के उत्तर कन्द पद का लोप हो गया है। **विनापि प्रत्ययं पूर्वो तरयोः पदयोर्लोपो वाच्यः** - महाभाष्य। वानप्रस्थियों को कन्दमूल का ही आहार करना बताया गया है। 'हत्वा' इस पद में ह् जोड़ तु जोड़ आ ऐसा पदच्छेद है। ह और तु निश्चयार्थक है। आ उपसर्ग चेरतु क्रिया से सम्बद्ध है जो विधिपूर्वक भोजन का निर्देश करने के लिए सम्बद्ध हुआ है।

5। **ऐणेयं मांसमाहृत्य शालां यक्ष्यामहे वयम्। कर्त्तव्यं वास्तु शमनं सौमित्रे चिरवासिभिः।** वा रा अयो का 56।22। यह श्लोक श्री रामचन्द्र जी ने पर्णशाला के शान्ति प्रसंग में श्री लक्ष्मण जी से कहा है - जिस गृह में अधिक दिन तक रहना हो उसमें रहनेवालों के मंगलार्थ वास्तुशान्ति करना चाहिए। अतः ऐणेयं (सुगन्धित द्रव्य विशेष) ऐणवासुके शब्द सिन्धौ वाराही कन्दः (निघन्टौ)। पलाकी शाक को भी ऐणेय कहते हैं। लाओ मुझे दो वास्तुदेवों को यजन करूँगा। विष्णु के प्रसाद से अथवा **"नहि विष्णुः प्रणमति कस्मैचिद्विबुधादये।"** यहाँ पर गोवर्धन के बहाने अपनी पूजा करवाते हैं। **"ऋते आत्मना क्वचित्"** भगवान अपनी आत्मा को छोड़कर देवताओं को प्रणामादिक नहीं करते। अतः वास्तुशमन प्रसंग में भगवान् अपनी पूजनार्थ ही उचित वस्तुओं को माँग रहे हैं न कि मृग वध की आज्ञा देते हैं।

अथवा गृह-प्रवेश काल में शुभ -शकुन के लिए मृग -बच्चा ऐणेयं (एणी सुतं) को लाने कहते हैं दर्शनार्थ है, वधार्थ नहीं। पुनः अन्य - " **ऐणेयं श्रपयस्व एतत्शाला यक्ष्यामहे वयम्। त्वर सौम्य मुहूर्तोऽयं ध्रुवश्च दिवसो अपि अयम्।** वा रा अयो 56।25।" पूर्वोक्त दश हेतुओं के दृष्टिकोण से जीव हत्या न करके कन्द ही अर्थ उचित है। श्री रामचन्द्र जी लक्ष्मण जी से कहते हैं कि वाराहकन्द का पाक करो, शाला यजन शीघ्र करें, यह शुभ समय है और स्थिर मुहूर्त्त भी है। **"मृगं हत्वानय क्षिप्रं लक्ष्मेणह शुभेक्षण।** वा रा अयो 56।23।" यहाँ पर मृग शब्द गजकन्द वाचक है। ह और तु शब्द निश्चयार्थक है। शुभेक्षण शब्द का प्रयोग लक्ष्मण जी के गजकन्द पहचानने के चातुर्य को लक्ष्य में रखकर किया गया है। **"सलक्ष्मणः कृष्णमृगं हत्वा मेध्यं प्रतापवान्। अथ चिक्षेप सौमित्रिः समिद्धे जातवेदसि।** वा रा अयो 56।26।" लक्ष्मण जी काला गजकन्द उखाड़ कर ले आये और पुनः आज्ञा पाकर उसको प्रज्वलित अग्नि में पकने के लिए दिये। **"तं तु पक्वा समाज्ञाय निष्टप्तं छिन्नशोणितम्। लक्ष्मणः पुरुषव्याघ्रमथ राघवमब्रवीत्।** वा रा अयो 56।27।" अग्नि में दिया हुआ गजकन्द या वाराहीकन्द जब पककर शुष्क रस वाला हो गया तब लक्ष्मण जी ने श्री राम जी से कहा। इस श्लोक में शोणित शब्द रसवाचक है। छिन्न शोणित का यह भी अर्थ है कि - छिन्नं विनष्टं भवति शोणितं रक्तविकारं येन सतं छिन्न शोणितम्। गजकन्द के सम्बन्ध में वैद्यक शास्त्र में लिखा मिलता है - **'त्वग्दोषादिः कुष्टहन्ता' इति मदनपालः।**

"अयं कृष्णः समाप्तांगः श्रृतः कृष्णमृगो मया। देवतां देवसंकाश यजस्व कुशलो ह्यसि। वा रा अयो 56।28।"समाप्तांगः - सम्यक्भवन्ति आप्तानि अंगानि येन सः समाप्तांगः अर्थात् लक्ष्मण जी कहते हैं कि सभी अंग स्वस्थ हो जाते हैं जिससे ऐसा काला छिलका वाला गजकन्द पककर प्रस्तुत है। आप यज्ञ के अधिकारी हैं यजन करें। यह चित्रकूट की पर्णशाला के यजन का प्रसंग है, यदि यहाँ मृगमांसादि की बलि का विधान होता तो पंचवटी में पुष्पबलि का विधान क्यों होता ? - "ततः पुष्पवलिं कृत्वा शान्तिं च स यथाविधि। वा रा अर 15।25।" भगवान् श्री राम दशरथ के निमित्त इंगुदी के गुद्दे में बैर मिलाकर उसका पिण्ड तैयार कर राजा दशरथ को क्यों देते ? पिण्ड देते समय श्री राम ने यह कह कर प्रार्थना की है कि हमलोगों का जो आहार है उसी से पिण्ड दे रहा हूँ चूँकि शास्त्र का विधान है कि मनुष्य स्वयं जो अन्न खाता है वही उसके देवता भी ग्रहण करते हैं। पितरगण देवता ही होते ही हैं - " इदं भुञ्ज महाराज प्रीतो यदशना वयम्। यदन्नः पुरुषो भवति तदान्नास्तस्य देवता ः। वा रा अयो 102।30।" इससे यही स्पष्ट होता है कि भगवान् श्री राम जी कन्दमूलादि का ही आहार करते थे। "वन्यैर्माल्यैः फलमूलैः पक्वैमांसैर्यथाविधि । अदभिर्जपैश्च वेदोक्तैर्दर्भैश्च ससमित्कुशैः। वा रा अयो 56।34।" भगवान श्री रामचन्द्र जी ने फूलमालाओं, फूलों, कन्दमूलों, फलों, पक्वफलों के भीतर का सार जैसे केला इत्यादि, जल, वैदिक मन्त्रों का जप, कुश, समिधा आदि से वास्तुदेवों को तृप्त किये। "फलस्यान्तरैः सारैः।" मांस से फल का भीतर और बाहर का सार भाग ग्रहण किया गया है।

6। " तिष्ठन्तु सर्वे दाशाश्च गंगामन्वाश्रितां नदीम्।बलयुक्ता नदीरक्षा मांसमूलफलाशनाः। वा रा अयो 84।7।" श्री रामचन्द्र जी को वन से लौटाने के लिए ससैन्य भरत जी को जाते देखकर निषादराज अपनी सेनाओं को सचेत करते हुए कहते हैं कि हे सैनिकों ! पुष्टिकारक कन्द मूल फलादि खाते हुए गंगा के किनारे के घाटों की रक्षा करते रहो। "इत्युक्त्वोपायनं गृह्य मत्स्यमांसमधूनि च।अभिचक्राम भरतं निषादाधिपतिर्गुहः। वा रा अयो 84।10।" निषादराज अपने सैनिक को सचेत कर स्वयं भरतजी के उपहारार्थ सोमरस, कन्द, अन्यान्य श्रमहारी पुष्परसों को लेकर भरत जी से मिलने चला। यहाँ पर मत्स्य शब्द सोमलता का वाचक है जिसका रस श्रमहारक होता है। "अस्ति मूलं फलं चैव निषादैः समुपाहृतम्।आर्द्र मांसं च शुष्कं च वन्य चोच्चावचं महत्। वा रा अयो 84।17।" निषादराज भरत जी से कहता है कि निषादों के द्वारा लाया हुआ आर्द्र एवं शुष्क कन्द मूल फल अन्य वन्य-भोजन सामग्री प्रस्तुत है। आप सबों को स्वीकार करें। यहाँ मांस शब्द राजभोग का भी द्योत्तक है। भरत जी राजा हैं और निषादराज प्रजा है। राजा का उपहार राजा के योग्य ही होना चाहिए। 'तस पूजा चाहिए जस देवता।'

7। "अन्याः श्रवन्तु मैरेयं सुरामन्याः सुनिष्ठताम् ।अपराश्चोदकं शीतमिक्षु काण्ड रसोपमम्। वा रा अयो 91।15।" श्री भरत जी के स्वागातार्थ भरद्वाज ऋषि पृथ्वी के सभी नदियों के आवाहन के क्रम में कहते हैं कि कुछ नदियाँ यहाँ आकर द्राक्षा एवं धावा पुष्प रसमिश्रित उत्तम पेय, कुछ नदियाँ उत्तम विहित पंचामृत तथा कुछ नदियाँ इक्षु रस के तुल्य समधुर शीतल-जल बहावें। यहाँ मैरेय शब्द धूप में सन्धानित द्राक्षारस और धावा के पुष्परस का वाचक है न कि मदिरावाचक क्योंकि स्वागतकर्त्ता और स्वागतग्रहीता दोनों में से कोई भी नहीं मदिरा के उपासक हैं। " विचित्राणि च माल्याणि पादपप्रच्युतानि च। सुरादीनि च पेयानि मांसानि विविधानि च। वा रा अयो 91।21।" भरद्वाज जी चन्द्र से कहते हैं कि नवीन पुष्पों की विचित्र माला एवं सुस्वादु पेय पंचामृत तथा उत्तमोत्तम राजभोग शीघ्र प्रस्तुत करें। "प्रमदाविग्रहं कृत्वा भरद्वाजाश्रमेऽवसन्। सुरां सुरापाः पिवत पायसञ्च बुभुक्षिताः। वा रा अयो 91।51-52।" भरद्वाज जी के आश्रम में स्त्री रूप धारण कर आये हुए उस वन के वृक्षादि समागत अतिथियों को भोजन पानादि का स्वागत करते हुए कहते हैं कि हे अतिथिगण पंचामृत पीनेवाले पंचामृत पीवे और भूखे लोग खीर खाते जायें। यहाँ सुरा शब्द पंचामृत वाचक है। "मांसानि च सुमेध्यानि भक्ष्यन्तां यो यदिच्छति। वा रा अयो 91।52।" सुपक्व सुन्दर पवित्र फलों को या राजभोगों को लोग इच्छा भर खाते जावें। " रजसाध्वस्त केशो वा नरः कश्चिददृश्यत। आजैश्चापि च वाराहैर्निष्ठानवरसंचयैः। वा रा अयो 91।66-67।" समागत अतिथियों में धूल धूसरित केश वाला कोई नहीं था। सबों के लिए आजैः - अज संज्ञानि बीजानि (पिस्ता, अखरोट, मूँगफली, चिरौंजी और मेवा आदि)अजएव

आजः तैः संस्कृत भोज्य वस्तुभिः। **वाराहैः - वाराहीकन्द मिश्रितैः** अथवा **वाराह - कसेरू मूल विशेष्य संज्ञा तैः संस्कृत भोज्यवस्तुभिः, अवर निष्ठान्संचयैः - अन्य विविध प्रकारक व्यञ्जनैः परिपूर्ण अन्नागारम् आसीत्। यं दृष्टवा सर्वे चकिताः आसन्। अथवा आजैः - अजस्य विकारे जातम आजं - घृतं, तैः संस्कृत वस्तुभिः। आजं घृतमायुं स्थापकं क्षयादि रोगहरं कटुतिक्त रसायनम्।** बकरी का घी कटुतिक्त रसायन आयु को बढ़ाने वाला है। इसीलिए इसी घी से संस्कृत वस्तु भी बनायी गयी होगी। इस प्रकार की वस्तु बनायी गयी थी यह उचित अर्थ है न कि शूकर बकरी का मांस।

"ताश्च काम दुधा गावो द्रुमाश्चासन् मधुच्युतः। वाप्यो मैरेय पूर्णाश्च मृष्टमांसचयैर्वृताः।।

प्रतप्त पिठरैश्चापि मार्गमायूर कौक्कुटैः। पात्रीणां सहस्राणि स्थालीनां नियुतानि च।। वा रा अयो **91।70-71।"**

भरद्वाज ऋषि के आश्रम की गायें सभी प्रकार की अभिलषित वस्तुओं को देने वाली हो गयी थीं। सभी वृक्ष उत्तम पेय स्रावी हो गये थे। सभी वापियाँ उत्तम सुस्वादु द्राक्षारस से भरी थीं। पक्व सुन्दर सुस्वादों फलों के ढ़ेर लगे थे। कस्तूरी मयूरशिखा नामक औषध विशेष नागर मोथादि के रस चूर्ण मिश्रित सुस्वादु भोजन सामग्री से असंख्यों पात्र भरे थे। यहाँ मार्ग शव्द से मृग विकार कस्तूरी, मायूर शव्द से मयूरशिखा औषधि विशेष, कौक्कुट शव्द से काकोली, क्षीरकोली अत्यन्त पौष्टिक या स्वागत सामान का ग्रहण करना चाहिए। **"तथैव मत्ता मदिरोत्कटा नरास्तथैव दिव्यागरुचन्दनोक्षिताः।** अयो **91।84।" नराः (नलाः) स्योनाक वृक्षः (सोना पाठेति प्रसिद्धः)शीत कषाय मधुर रुचिकरः रक्तपितघ्नः दीपनः बलप्रदश्च। मत्ता - सीतोपल मिश्री इति प्रसिद्धः।** भरद्वाज जी के आश्रम से सभी स्वागत कर्त्ताओं को चले जाने पर भी भरत पक्ष के लोग भरद्वाज के दिए उत्तमोत्तम कन्द मूल फलादि द्राक्षादि पेय रसों का पान कर हृष्ट-पुष्ट सानन्द प्रतीत होते थे।

।8। "तां तथा दर्शयित्वा तु मैथिलीं गिरि निम्नगाम्। निषसाद गिरि प्रस्थे सीतां मांसेन छन्दयन्।।

इदं मेध्यमिदं स्वादु निष्टप्तमिदमग्निना। एवमास्ते स धर्मात्मा सीतया सह राघवः।। वा रा अयो 96।1 तथा 2।"

मांस शव्देन पौष्टिकम् (भूमि समुत्पन्न विदारीकन्द, वराहीकन्द, मिश्रीकन्द, रतालु, सेमलकन्द, श्वेतमुसली, श्याममुसली आदि) ग्राह्यम्। भगवान श्री रामचन्द्र जी श्री जानकी जी को मन्दाकिनी की शोभा दिखाकर पर्वत के एक शिला पर बैठ गये और उनका पकाया कन्दादिकों की प्रशंसा करते हुए यह कहते हैं कि यह सुपक्व है, सुस्वादु है, अति पवित्र रुचिकर है, इत्यादि उनके पाकक्रिया के प्रशंसा द्योतक वाक्यों द्वारा उन्हें प्रसन्न किए। अर्थात्अरण्यवास का दुःख से वे दुःखी न होवें, अतः वे ऐसा किये थे। इस श्लोक में एकतरफ भगवान् श्री रामचन्द्र जी को धर्मात्मा विशेषण दिया गया दूसरी ओर मांस शव्द दिया गया है। यदि यह मांस से जीव का मांस समझा जाये तो कितना घोर विरोध होगा जो निस्सीम है। भगवान्की प्रतिज्ञा है - **"मूलैः पुष्पै फलैः पुण्यैः पितृदेवांश्च तर्पयन्।"** फ्ल-मूल पुष्प आदि से देवताओं के पूजन कर स्वयं ग्रहण करेंगे। इनका इष्टदेव रंगनाथ भगवान हैं। **"हिंसाभिरभिवर्जितः।"** सम्पूर्ण अयोध्या वासियों के लिए हिंसारहित होना लिखा है।

9। "पायसं कृशरं छागं वृथा सोऽश्नातु निर्घृणः। गुरूंश्चाप्यवजानातु यस्यार्योऽनुमते गतः। वा रा अयो **75।30।"** इस श्लोक में छाग से निर्मल वृक्ष किटाणु नाशक तुलसी इत्यादि का ग्रहण है। भरत जी कहते हैं कि श्री रामचन्द्र जी जिसकी अनुमति से वन आये हैं उसे वह पाप लगे जो भगवान् भागवत को अर्पण किये विना खीर, खिचड़ी, तुलसी की मंजरी, पत्ती आदि को खाने वाले को लगता है।

10। "न मांसं राघवो भुंक्ते न चापि मधुसेवते। वन्यं सुविहितं नित्यं भक्तमश्नाति पंचमम्। वा रा सुन्दर **36।41।" राघवः मांसं वने सुग्रीव संसर्गेण प्राप्त राजभोगं मांसाय, इदं मांसं - मांस वृदध्यर्थ पष्टि कर भोजनं वा न भुंक्ते। न चापि मधु - क्षौद्रं, सेवते - पिबतीत्यर्थः। अपि तु वन्यं - कन्दमूलादिकम्सुविहितं - प्रतिज्ञानुरूपं, भक्तं - भूपतये नमः भुवनपतये नमः, भूतानां पतये नमः, पंचवायवे नमः, अनेन प्रकारेण विभक्तः प्राणधारणमात्रं वा नित्यं प्रतिदिनम् पंचमं पंचम् प्रहरे अश्नाति।** यह श्लोक सुन्दरकाण्ड का हनुमान और श्री जानकी जी के कुशल प्रश्नोत्तर प्रसंग का है। श्री जानकी जी श्री हनुमान जी से पूछती हैं - **कच्चिन्न विगत स्नेहः विवासान्मयि राघवः।** वा रा सुन्दर **36।20।"** भगवान् श्री रामचन्द्र जी मुझे लंका में चले आने के कारण अप्रसन्न हो मुझको कहीं भूल तो नहीं गये हैं ? इसके उत्तर में हनुमान जी कहते हैं कि भगवान् श्रीरामचन्द्र जी मर्यादा पुरुषोत्तम सहृदय कृतज्ञ दीनबन्धु हैं इसलिए आपको भूल नहीं सकते क्योंकि अपने सहृदय व्यक्तियों को भूलना मद्य मांसादि खाने वाले अशिष्टों का काम है। भगवान् तो आपके वियोग में

पौष्टिक पदार्थ राजभोग, मधु, पुष्परस आदि भी छोड़कर वन के कन्दमूल को दिन के पंचम पहर में खाते हैं। यही उनका प्रतिदिन का नियम है।

श्रीमते रामानुजाय नमः

उर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण

रचयिता
श्री स्वामी पराङ्कुशाचार्य
सरौती
पो अरवल,जि. गया

प्रथम संस्करण - 1000 सम्वत्- 2018
प्रकाशक ...... मुद्रक ......
श्रीभूनेश्वर प्रसाद सिंह त्रिमूर्ति प्रेस
ग्राम -पो -नगवाँ खजांची रोड
णौवतपुर (पटना) पटना- 4

श्रीमते रामानुजाय नमः

श्रुतेनतपसावा किं वचोभिश्चित्तवृत्तिभि ः।
बुद्धया वा किं निपुणवा बलेनेन्द्रिय राधसा। ।भा.स्क **4।31।11**
किं वा योगेन सांख्येन न्यास स्वाध्याययोरपि।
किं वा श्रेयोभिरन्यैश्च न यत्रात्मप्रदो हरि ः। ।भा.स्क **4।31।12**
श्रेयसामपि सर्वेषामात्मा ह्यवधिरर्थत ः।
सर्वेषामपि भूतानां हरिरात्माऽऽत्मदः प्रियः। ।भा.स्क **4।31।13**
नैष्कर्म्यमप्यच्युत भाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलंनिरञ्जनम्।
कुतः पुनः शश्वद भद्रमीश्वरे न चार्पितं कर्म यदप्यकारणम्। ।भा.स्क **1।5।12।**

शास्त्र ज्ञान से, तप से, वचन की चतुराई से, चित्त की शुद्धवृत्ति से, बुद्धि से, बल से, इन्द्रियों की पटुता से, शरीर आत्मा के विवेक से, संन्यास और वेदाध्ययन से, व्रत वैराग्य आदि अन्य कल्याण साधनों से भी पुरूष को क्या लाभ ?अर्थात् कुछ भी नहीं। वास्तव में समस्त कल्याणों की अवधि भगवान्‌की प्राप्ति है। भगवान्‌की भक्ति विना निर्मल ज्ञान की भी शोभा नहीं है।किन्तुभगवान्‌की कृपा विना भक्ति नहीं मिलती है। यथा-

जन्मान्तर सहस्रेषु बुद्धिया भाविता नृणाम्।
तामेव लभते जन्तुरूपदेशो निरर्थकः।।1।।
प्रकाशयतुमात्मानं भक्तानां हितकाम्यया।
अवतीर्णो जगन्नाथ शास्त्ररूपेणवै प्रभुः।।2।।
तस्माच्छास्त्रे दृढंकार्या भात्ये मोक्ष परायणैः।
अभक्तस्य परे शास्त्रे भगवान्न प्रकाशते।।3।।

अनेक जन्मों के संस्कार से मनुष्यों की बुद्धि जिस ओर जाती है वे वैसे ही भाव को प्राप्त करते हैं। कुसंस्कार के कारण उनके प्रति किये गये सदुपदेश भी व्यर्थ हो जाते हैं। भक्तों की हित कामना के लिये तथा भक्तों के स्वरूपज्ञान के लिये शास्त्ररूप से भगवान्अवतार लिये हैं। अर्थात्भगवान्‌की कृपा ही से सद्‌शास्त्रों में पूर्ण विश्वास होता है। इससे मुमुक्षुओं को भगवान्‌शास्त्र में दृढ़ विश्वास कराते हैं। पर अभक्तों के हृदय में शास्त्र का विश्वास नहीं होता है।

ये ही सर आवत अतिकठिनाई । राम कृपा बिनु आइ न जाई । ।मानस वा का **37।3**

उन सद्‌शास्त्रों में उर्ध्वपुण्ड्र तिलक का विधान है।

धृतोर्ध्वपुण्ड्रः परमशितारम्नारायणं सांख्ययोगाधिगम्यम्।
ज्ञात्वा विमुच्यते नरः समस्तैः संसार पाशैरिह चैव विष्णुः। ।महोपनिषत्

मनुष्य उर्ध्वपुण्ड्र धारण कर सांख्यादि शास्त्र द्वारा जानने योग्य तथा सर्वजीवों को अपने अधिकार में रखनेवाले नारायण को जानकर संसार बन्धन से छूट जाता है।

अर्चनाङ्गं बवीत्यन्या उर्ध्वपुण्ड्रं तथा श्रुतिः ।नारद संहिता

उर्ध्वपुण्ड्र भगवत अर्चना का अंग है। श्रुति कहती है।

अर्चनादौ यज्ञमूर्तेरूर्ध्वपुण्ड्रमित्यारभ्य । ।भल्ल शाखा

उर्ध्वपुण्ड्र धारण कर यज्ञमूर्ति भगवान्‌की अर्चना करे।

हरे ः पादाकृतिमात्मनो हिताय मध्येच्छिद्रमूर्ध्वपुण्ड्रं यो धारयते।
स परस्य प्रियो भवति, स पुण्यवान्भवति, स मुक्तिमान्भवति। महोपनिषत्

जो मनुष्य आत्मकल्याण के लिये भगवान् के चरणाकार मध्य में अवकाशयुक्त श्रीचूर्ण उर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण करते हैं वे परमात्मा के प्रिय भक्तिमान और मुक्तिमान होते हैं।

होम पूजादि समये सायं प्रातः समाहितः।
उर्ध्वपुण्ड्रधरो विप्रो भवेच्छुद्धोन चान्यथा । ।बोधायन

ब्राह्मण प्रथम उर्ध्वपुण्ड्र करके सावधान हो सुवह शाम संध्यावन्दन होम पूजादि करने से शुद्ध होता है। अन्यथा नहीं।

ममार्चने विशेषेण उर्ध्वपुण्ड्रधरो द्विजः।
कुलं तारयते सप्त स गच्छेत्समतां मम। ।ब्रह्मरात्रे

जो ब्राह्मण उर्ध्वपुण्ड्र धारण कर हमारी पूजा करते हैं वे सात कुल को तारकर हमारी समता को प्राप्त करते हैं।

पिशाच भूतवैताला कुष्माण्डाद्या महागणाः।
अस्यान्तिके न तिष्ठन्ति वैष्णवस्य महात्मनः। ।ब्रह्माण्डे

उर्ध्वपुण्ड्रधारी श्रीवैष्णव के समीप भूत पिशाच वैताल और कुष्माण्ड नहीं आते। अर्थात्उन्हें इनका भय नहीं होता है।

उपवीतं शिखाबन्धमूर्ध्वपुण्ड्र विना कृतम्।
अपवित्रकरं कर्म विप्रस्य विफल भवेत । ।विष्णु स्मृति

जनेउ, शिखा, उर्ध्वपुण्ड्र तिलक के विना ब्राह्मण के सब शुभकर्म निष्फल हो जाते हैं।

स्नात्वा ललाट तिलकं मृदा कुर्यादतन्द्रितः।
पाषण्ड पतितादीना दर्शनस्यापनुतये। ।दक्ष स्मृति

स्नान कर सफेद मिट्टी का तिलक लगावे । तिलक धारण करने से पाषण्ड और पतितों के देखने का दोष नहीं लगता है।

स्वाध्याये भोजने चैव होम मंगल कर्मणि।
उर्ध्वपुण्ड्रधरो नित्यं राक्षसाञ्चापनुतये । । भार्गव संहिता

वेदाध्ययन भोजन होम और मांगलिक कर्म उर्ध्वपुण्ड्र धारण कर नित्य करे।

यज्ञो दानं तपो होमो भोजनं पितृतर्पणम्।
सर्वे भवन्ति विफला उर्ध्वपुण्ड्रं विना कृतम्। । भार्गव संहिता

यज्ञ दान तप हवन भोजन और पितृतर्पण सव कर्म तिलक धारण किये विना निष्फल हो जाते हैं।

रक्षार्थमघनाशार्थं मंगलार्थं च भामिनि।
धारयेदूर्ध्वपुण्ड्रन्तु शिरसाहर्निशं सदा। ।वामन पुराण

स्वरक्षार्थ, पापनाशार्थ तथा मंगलार्थ सदा दिनरात सिर पर तिलक धारण करें।

मदाराधन काले च सदा यज्ञादि कर्मणि ।
अवश्यं धारयेदेतदूर्ध्वपुण्ड्रं द्विजोत्तमः। ।ब्रह्माण्ड

भगवान् कहते हैं कि ब्राह्मण हमारी पूजा तथा यज्ञादि कर्म में तिलक अवश्य धारण करें।

यज्ञ दान तपो होम जप स्वाध्यायकर्मसु ।
तत्फलं प्राप्तयेवश्यं धारयेदूर्ध्वपुण्ड्रकम्। ।ब्रह्माण्ड

यज्ञ दान तप होम जप स्वाध्याय कर्मो की फल प्राप्ति के लिये उर्ध्वपुण्ड्र तिलक अवश्य धारण करे।

श्रौत स्मार्त क्रिया सर्वा उर्ध्वपुण्ड्रमकुर्वताम्।
जायन्ते निष्फला ब्रह्मन्बाधिताश्चभवन्ति ताः । ।ब्रह्माण्ड

सभी श्रौत स्मार्त तथा कर्म तिलक धारण किये विना निष्फल हो जाते हैं। और वे सभी कर्म बाधित होते हैं। अतएव तिलक अवश्य धारण करे।

उर्ध्वपुण्ड्रधरो विप्रो मृतो वा यत्र कुत्रचित्।
श्वपचोपि विमानस्थो ममलोके महीयते। ।ब्रह्माण्ड

ब्राह्मण या चाण्डाल ही क्यों न हो, यदि तिलक धारण किये जहाँ कही भी मर जाय तो अन्त में भगवान्के समीप जाता है।

ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथवा यतिः।
अवश्यं धारयेत्पुण्यमूर्ध्वपुण्ड्रं सुशोभनम्।।ब्रह्माण्ड

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यासी, ये सभी सुन्दर उर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण करे।

उर्ध्वपुण्ड्राङ्कितो मर्त्यो यत्कुर्यात्कर्म वैदिकम्।
तत्सर्वं सफलं तस्य भवत्येव संशयः ।।नारद पुराण

जो उर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण कर वैदिक कर्म करता है उसके सम्पूर्ण कर्म सफल हो जाते हैं। इसमें संशय नहीं।

उर्ध्वपुण्ड्र मृदा शुक्लं यो धत्ते नित्यमात्मवान्।
तस्य प्रसादं कुरूते विष्णुर्लोक नमस्कृतः ।।नारद संहिता

जो महात्मा सदा सफेद मिट्टी का उर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण करते हैं उनपर भगवान्विष्णु कृपा करते हैं।

प्रशस्ते पर्वताग्रादौ जातया श्वेतमत्स्नया।
उच्चार्य केशवादीनि नामान्यङ्गे यथा क्रमम्।।पाद्मसंहिता

पर्वत में होने वाली श्वेत मृत्तिका उत्तम होती है। केशवादि द्वादश नामों का उच्चारण करते हुये तिलक धारण करे।

गिरौ नदीतटे वाथ वल्मीके जलधेस्तटे।
श्रीमत्तुलसिकामूले विष्णु क्षेत्रे यदि द्विजः।
सर्वतः सन्ति सरितो वल्मीका सन्ति भूतले।
पर्वताः सन्तिवहवो समुद्रा सर्वतो वृताः।।परमेष्टि संहिता

पर्वत, नदीतट, वामी, समुद्रतट, तुलसी तथा विष्णुक्षेत्र की मिट्टी से तिलक लगाना चाहिये।

सिन्धु तीरेऽथ वल्मीके विल्वमूले जलाशये।
पर्वताग्रे नदीतीरे मम क्षेत्रे विशेषतः ।
अन्यष्वपि च तीर्थेषु नलिनी मूलकेषुच।
स्थानेष्वेतेषु गृह्णीयात्कुर्यान्नान्यत्र मानवः।। ब्रह्माण्ड

समुद्रतट, वामी, बेल की जड़,तालाब, पर्वत, नदीतट तथा दिव्यदेश, अन्यतीर्थ, कमलमूल, इन सब जगहों की मिट्टी तिलक के लिये लेनी चाहिये।

श्वेतप्रधानतो ग्राह्या उर्ध्वपुण्ड्रस्य धारणे।
सा च स्थानविशेषेण विशेष फलदा भवेत्।।नारद संहिता

उर्ध्वपुण्ड्र के लिये श्वेत मिट्टी प्रधान है। वे भी विशेष स्थान से विशेष फल देनेवाली है, यथा रङ्गपुरी, यादवाद्रि ।

उर्ध्वपुण्ड्रं द्विजकुर्याद्दण्डाकारं सुशोभनम्।
मध्येच्छिद्रं विजानीयात्वैष्णवानां विशेषतः ।।

ब्राह्ण उर्ध्वपुण्ड्र तिलक दण्ड के समान ऊपर की ओर खड़ा करे तथा बीच में श्रीचूर्ण लगाने के लिये जगह रखे।

दीपाकारं तश्चापि वेणुपत्रसमाकृतिः।
पद्मस्य मुकुलाकारं कुमुदस्योत्पलस्यवा।।ब्रह्मरात्र संहिता

तिलक के बीच में श्रीचूर्ण दीपशिखा वंशपत्र बिना खिले कमलपुष्प तथा विने खिले भेटपुष्प के समान लगावे।अर्थात्नीचे चौड़ा तथा ऊपर पतला दीपशिखा के समान श्रीचूर्ण धारण करे।

धारयेच्छिद्र मध्येतु हरिद्रा चूर्णमृतमम्।अर्थात् श्रीचूर्ण हरदी का हो न कि लाल रंग आदि।
नासिकामूलमारभ्य आकेशान्तं प्रकल्पयेत्।
नासिका त्रितयं भागं नासिका मूलमिष्यते।।

भौं के बीच से नाक के तिहाई भाग तक बेलीपुष्प के एक दल के समान तिलक का सिंहासन पहले करे। बाद में आसन के ऊपर

भाग में भगवान्के युगल चरण के समान दण्डाकार केश के समीप तक श्वेत तिलक लगावे और बीच में दीपशिखा के समान श्रीचूर्ण धारण करे।

हरदी धारण का महत्व

हरिद्राति पर प्रेम्णा निजार्थोऽत्र विचार्यताम्।
प्रापणाच्चहरेः साक्षाद्धरिद्रैयं प्रकीर्तिता। 84
लक्ष्म्याः प्रेमतरू साक्षाद्धरेरत्यन्त वल्लभः।
संवीक्ष्य चिह्नितं तेन भक्तं प्रीणाति केशवः।। 85
लक्ष्मीप्रेमात्मकं द्रव्यं साक्षात्किंन करोतिच।
धनधान्यं समृद्धिं च रूपसौभाग्य संपदम्।।86।। ब्रह्म संहिता

समुद्र मंथन काल में जब लक्ष्मी भगवान्को प्राप्त करना चाही उस समय उनकी आँखों से प्रेमाश्रु पतन होकर हरिद्रा रूप में हो गयी। वह हरिद्रा भगवान्को अत्यन्त प्यारी हुई। वही हरदी का चूर्ण भक्तों के शिर पर लगे देखकर भगवान्प्रसन्न होते हैं। वह लक्ष्मी की प्रेमरूपा हरदी साक्षात्क्या क्या नहीं कर सकती। अर्थात्धन धान्य सब प्रकार की समृद्धियां सौभाग्य तथा संतति देती है। लक्ष्मी के चिह्न को धारण करने वाला पुरुष भगवान्के प्रेमपात्र बन जाता है। यह ब्रह्मसंहिता में भगवान्का वचन है।

लक्ष्मीरूपमिदं द्रव्यं पुण्ड्रमध्ये विभर्तियः।
दास्यं स लभते विष्णोः सत्यंसत्यंब्रवीम्यहम्।। ब्रह्म संहिता

लक्ष्मीरूप श्रीचूर्ण को जो उर्ध्वपुण्ड्र के बीच धारण करता है वह विष्णु का भक्त हो जाता है। यह ध्रुवसत्य है। तिलक में दोनों श्वेत रेखायें भगवान्विष्णु के प्रतीक हैं तथा बीच की पीत रेखा लक्ष्मी का प्रतीक है। यथा - **पुण्ड्ररूपेण मां विद्धि रेषा रूपेण वै श्रियम्** । ब्रह्म संहिता ।

विवाह व्रतबन्धादि जन्मयात्रा सुयुज्यते।
द्रव्यं मांगलिकं साक्षाद्धरिद्रं प्रेम भाजनम्।।ब्रह्म संहिता।

हरदी विवाह उपनयन जन्मकाल में दर्शनी तथा यात्रा में मांगलिक है।

इससे सर्वत्र मांगलिक कार्यों में हरिद्रावन्दन हरदी मातृका वरकन्या के शरीर पर चढ़ाया अथवा लगाया जाता है। भगवान्के पीताम्बर वस्त्रादि भी इसी का सूचक है। यथा -

पीत झीन झिगुली पहिराये।मानस बाल 198।6
कटि तूणीर पीत पट बान्धे ।मानस बाल 243।1
पीत यज्ञ उपवीत सुभाये।मानस बाल 243।1
पीत उपरना कांखा सोती ।**मानसबाल 326।4**

श्रीनिवास भगवान्के युगल चरणाकृति उर्ध्वपुण्ड्र तिलक सर्व आत्माओं के भगवच्चरणही शरण हैं अर्थात् सर्वविध रक्षक, उपाय, उपेय हैं, इसका सूचक है।

अवतार लेकर लोकसंग्रह के लिये भगवान्राम एवं कृष्ण भी तिलक लगाते थे। यथा -**"भाले दधानं शीत उर्ध्वपुण्ड्रं मध्येश्रियं पीत विराजमानम्।" "भाल विशाल तिलक झलकाही।"**मानस बाल 242।3

भगवान्अर्चामूर्ति में तिलक लगाये रहते हैं। आज भी रामलीला में राम मूर्ति को तिलक लगाया जाता है। परम भागवत प्रह्लाद नारद आदि भी पूर्व में तिलक धारण किये रहते थे। यथा -

प्रह्लाद नारद पराशर पुण्डरीक व्यासाम्बरीष
शुक शौनक भीष्मदाल्भ्यान्रूक्मांगदार्जुन
वशिष्ठ विभीषणादि पुण्यानिमान्परम भागवतंस्मरामि।।

प्रह्लाद नारद पराशर पुण्डरीक व्यास अम्बरीष शुकदेव सनक सनन्दन सनातन सनत्कुमार भीष्मपितामह शौनक दालभ्य रूक्मांगद

अर्जुन वशिष्ट विभीषण ये सब परमभागवत उर्ध्वपुण्ड्रधारी थे।

अहो अमीषां किमकारि शोभनं
प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः ।
यैर्जन्म लब्धंनृषु भारताजिरे
मुकुन्द सेवौपयिकं स्पृहाहि नः ।भागवत **5।19।21**

देवता कहते हैं कि अहो जिन जीवों ने भारतवर्ष में भगवान्‌की सेवा के योग्य मनुष्य जन्म प्राप्त किया है उन्होंने ऐसा क्या पुण्य किया है ? अथवा इनपर क्या स्वयं हरि ही प्रसन्न हो गये हैं ? इस परम सौभाग्य के लिये तो हम निरन्तर तरसते रहते हैं।

किं दुस्करैर्न ः कतुभिस्तपोव्रतै
दानादिभिर्वाद्यु जयेन फल्गुना ।
न यत्र नारायणपाद पंकज
स्मृतिः प्रमुष्टातिशयेन्द्रियोत्सवात् ।भागवत **5।19।22**

देवता कहते हैं कि हमें बड़े कठोर यज्ञ तप व्रत और दानादि करके जो यह तुच्छ स्वर्ग का अधिकार प्राप्त हुआ है इससे क्या लाभ है ? यहाँ तो इन्द्रियों के भोगों की अधिकता के कारण स्मृति शक्ति नष्ट हो जाती है। अतः कभी भी श्रीमन्नारायण के चरण कमलों की स्मृति होती ही नहीं है।

न यत्र वैकुण्ठकथा सुधापगा
न साधवो भागवतस्तदाश्रयाः।
न यत्र यज्ञेशमखा महोत्सवाः
सुरेशलोकोऽपि न वै स सेव्यताम्। ।भागवत **5।19।24**

जहाँ भगवत कथा की अमृतमयी सरिता नहीं बहती, जहाँ भगवद्भक्त साधुजन निवास नहीं करते और जहाँ नृत्य गीतादि के साथ भगवान्‌की पूजा नहीं की जाती, वह चाहे ब्रह्मलोक ही क्यों न हा, उस स्थान का सेवन नहीं करना चाहिये।

चतुस्त्रिद्वयङ्गुलं वापि विस्तारं परिकल्पयेत्।
ललाटे केशवायेति चतुरङ्गुलमायतम्। ।पराशरपरमधर्म शास्त्र

उर्ध्वपुण्ड्र की चौड़ाई चार तीन अथवा दो अंगुल की होनी चाहिये। ललाट के भौं से केश के समीप तक तिलक की लम्बाई होनी चाहिये। नाभि प्रदेश में दश, हृदय प्रदेश में आठ, कण्ठ में चार, दहिनी कोख में दश, वायीं भुजा के बीच आठ, बायें कन्धे पर चार, पीठ पर चार एवं पीठ के उपरी भाग में चार अंगुल लम्बा तिलक केशवादि द्वादश नामों से धारण करे।

उर्ध्व शब्द का अर्थ परमात्मा तथा परमात्मा का परमधाम वैकुण्ठ है। यथा –**"उर्ध्व गच्छन्ति सत्वस्था"**गीता 14।18। अर्थात् महात्मा परमधाम वैकुण्ठ को पाते हैं। पुण्ड्र शब्द का अर्थ तिलक है। इसका आशय है कि उर्ध्वपुण्ड्र तिलकधारी अंत में परमधाम वैकुण्ठ पाते हैं।

श्रीमते रामानुजाय नमः

श्रीसीताराम - परिचय



व

मानस-शंका-समाधान

लेखक -
श्री 108 स्वामी पराङ्कुशाचार्य जी महाराज
स्थान-सरौती, थाना - अरवल, पोस्ट- रामपुर चौरम

मूल्य रु 1½ =

प्रकाशक -
डा. कुञ्जविहारी शर्मा
मो. पो. ओवरा, जि. (गया)

प्रामाण्य ग्रन्थों की सूची

1। सामवेद भाष्य
2। नारदीय पुराण
3। वाराह पुराण
4। आदि पुराण
5। अग्नि पुराण
6। ब्रह्म वैवर्त पुराण (कृष्णखण्ड)
7। विष्णु पुराण (पराशरकृत)
8। पद्म पुराण
9। ब्रह्म पुराण
10। मत्स्य पुराण
11। विष्णुधर्मोत्तर पुराण (व्यासकृत)
12। कूर्म पुराण
13। श्रीमद्भागवत पुराण
14। ईश्वर संहिता
15। वृहद्हारीत संहिता
16। वृहद्ब्रह्म संहिता
17। स्कन्द पुराण
18। महाभारत - शान्तिपर्व
19। हरिवंश (विष्णुपर्व)
20। वैकुण्ठ वर्णन
21। वाल्मीकि रामायण
22। अध्यात्म रामायण
23। तुलसीकृत रामायण
24। हनुमान नाटक

दो शब्द

यों तो संसारी जीव अहंकारवश भले ही अपने को किसी कार्य का कर्ता मान लेता है, किन्तु है यह उसका अज्ञान ही। वास्तविकता तो यह है कि सच्चिदानन्दघन, पुराणपुरुषोत्तम भगवान नारायण के कृपाकटाक्ष के बिना कोई भी कार्य साध्य नहीं हो सकता। आज उन्हीं प्रभु की असीम कृपा से प्रस्तुत पुस्तक आपलोगों के समक्ष प्रकाश में आ सका है।

यों तो श्रीतुलसीदासकृत श्रीमन्मानस रामायण के अर्थ दोहा चौपाईयों के ऊपर कई एक विद्वानों ने उनके मर्म प्रकाशानार्थ - 'मानसमयंक' 'शंकावलि' इत्यादि ग्रन्थ लिखे किन्तु उन ग्रन्थों के अध्ययन से मेरे मानस का वास्तविक

समाधान नहीं हो पाया था। उसी प्रसंग में सरौती स्थानाधीश श्री **1008** श्री स्वामी जी महाराज के द्वारा लिखित इन अवतरणों को देखने का सुयोग प्राप्त हुआ। जिनके देखने से मेरे चित्त को परम शान्ति मिली। अतः जनकल्याणार्थ मैंने इसे पुस्तक रूप में प्रकाशित करना आवश्यक समझ, अनुरोध करके श्रीस्वामी जी महाराज से प्रकाशित करने का आदेश प्राप्त कर लिया जिसको हमारे अग्रज तथा श्री स्वामी जी महाराज के आज्ञानुवर्ती शिष्य पं. विद्याभानु शर्मा जी उन्हीं गुरुदेव की आज्ञा से यत्र तत्र स्थित यत्किंचित् प्रतियों को मिलाकर प्रेसकौपी तैयार किया।

आपलोगों के सामने इसे रखते हुए मुझे अपार आनन्द होता है, तथा साथ ही मैं यह आशा करता हूँ कि भगवत् तथा भागवत् प्रेमीजन अवश्य ही इसे अपने हृदय में स्थान देंगे। इसकी उपयोगिता के विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं, वह तो विज्ञ पाठक अध्ययन के बाद इसमें संगृहीत सामग्री को देखकर स्वयं ही समझ लेंगे। शुभमस्तु।

प्रकाशक - डा. कुञ्जविहारी शर्मा, वरपा।

यह क्यों?

श्री रामचन्द्र जी को जानने के लिए साधन श्री वाल्मीकि रामायण या गोस्वामी तुलसीदास जी कृत रामायणादि हैं। जिसमें श्री रामचन्द्र जी को परब्रह्म परमात्मा ईश्वर आदि पर्यायवाचक अनेक शब्दों से कहा गया है। किन्तु पापदूषित आत्माओं के हृदय को कलुषित होने के कारण भगवान् के ऐश्वर्य की ओर ध्यान नहीं जाता, परञ्च माधुर्य विषयों को देखकर प्राकृत मनुष्य या राजकुमर मानते हैं। यह प्रकरण हमारे सामने आया, इसलिए श्री रामचन्द्र जी के सम्बन्ध में जैसा वाल्मीकीय रामायण तथा अन्य ग्रन्थों में मिला उसे संग्रह किया था। इस लेख को देखकर वाल्यकाल से श्रीवैष्णवधर्म से रंजित, परम भक्तिरस को पान करने वाले रामरसायन के रसिक, जिनको आज राजवैद्य-डाक्टर-शव्दों या श्री कुञ्जविहारी शर्मा से कहते हैं। इनके मन में अटूट श्रद्धा हुई कि इस लेख को मुद्रित करवा के धार्मिक जनता के आत्मकल्याणार्थ प्रकाशित कर दें। अतः मैं इन्हें अपना परम भक्त जानकर इसे इनके हाथों में दे दिया।

लेखक -
श्री **108** स्वामी पराङ्कुशाचार्य जी महाराज
स्थान-सरौती, थाना - अरवल, पोस्ट- रामपुर चौरम ।

भूमिका

सृष्टि की आयु बहुत बड़ी संख्या के वर्षो की होती है। इसकी उत्पत्ति तथा विनाश का क्रम अनादि काल से चल रहा है। आत्मा अजर अमर तथा अनन्त है। ये आत्मायें ईश्वरविमुख सांसारिक विषयों में आसक्त रहने के कारण संसारबद्ध हो, प्रत्येक सृष्टि के आद्योपान्त किसी न किसी प्रकार के देहों में रहा ही करती है। क्योंकि इसका भ्रमण क्षेत्र अतिविस्तृत चौरासी लाख योनि बताया जाता है। और स्वकर्म वश इन आत्माओं को उन सभी योनियों में घूमना ही पड़ता है। इस प्रकार प्रत्यक्ष अनुभवगम्य

सर्वत्र ईश्वर का बोध कराने के लिये।

।। श्रीमते रामानुजाय नमः ।।

श्री सीताराम - परिचय

देवो नारायणः साक्षाद्रामो ब्रह्मादि वन्दितः। प्रद्युम्नो भरतो भद्रे शत्रुघ्नो ह्यनुरुद्धकः ।नारदीय पुराण उत्तरखण्ड, अ. 75।" हे भद्रे, ब्रह्मादि देवों के प्रार्थना करने पर साक्षात् नारायण ही राम हुए। प्रद्युम्न भरत, अनिरुद्ध शत्रुघ्न और संकर्षण कल्याणकारक लक्ष्मण हुए।"**जामदग्नेय रामेण त्वया भूत्वा सकृत्प्रभो।पुनश्च रावणो रक्षः क्षपितं क्षात्रतेजसा**।वाराह पु अ 1।" हे प्रभो! आपने एकबार परशुराम होकर दुष्ट क्षत्रियों का नाश किया तथा पुनः राम होकर स्वक्षात्र तेज से रावणादि राक्षसों का नाश किया।"**तस्यपुत्र स्वयं जज्ञे रामनामा महाबली।चतुर्धा सो अव्ययो विष्णुः परितुष्टो महामुने।**" हे महामुने स्वयं अव्यय विष्णु ही यज्ञ से सन्तुष्ट होकर महाबली राम लक्ष्मणादि चार रूपों से व्यक्त हुए। "**चित्रकूटे गिरौ विष्णुः राघवश्च प्रकीर्त्यते**"।वाराह पु 12।2।चित्रकूट पर्वत के ऊपर जो विष्णु हैं वही राघव भी कहलाते हैं।

"**नमामि रामं नरनाथमच्युतं कविं पुराणं त्रिदशारिनाशनम्।।**" पुरातन विद्वान, अच्युत, नरनाथ, राक्षसों के नाशक श्रीरामजी को नमस्कार है। "**द्विधाथवायौ वियति प्रतिष्ठितः भवान्हरिः शब्दचरः पुमानसि। भवाञ्छशिः सूर्यहुताशनोऽसि त्वयि प्रलीनं जगदेतदुच्यते।**" हे हरि ! आप सम्पूर्ण पुल्लिङ्ग शब्दमात्र वाच्य हैं। आकाश, वायु सर्वत्र अन्तर्वहिः व्याप्त हैं। आप ही चन्द्र सूर्य और अग्नि हैं।आप ही में यह सृष्टि विलीन हो जाती है।

"**वेदेषु नष्टेषु भवाँस्तथा हरेः करोसि मात्स्यं वपुरात्मनस्सदा। कौर्मं तथा स्ववपुरास्थितस्सदा युगे युगे माधव सिन्धुमन्थने।।**" हे हरि ! आप वेदों के नष्ट होने पर मत्स्य रूप से उसकी रक्षा करते हो तथा प्रतियुगों में समुद्रमन्थन काल में कूर्मरूप धारण करते हो।

"**त्व्या ततं विश्वमिदं समस्तं सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे। समस्त विश्वेश्वर विश्वमूर्ते सहस्रवाहो जय देव देव।।**" हे विश्वेश्वर ! हे विश्वमूर्ते ! हे सहस्रवाहो ! तुम सनातन पुरुष हो। इस विश्व का तुम्हीं विस्तार किये हो। आप देवों के देव का जय हो।

"**इत्थं दशरथस्याहं पुत्रो भूत्वा ददौ सुखम्। श्रुत्वा क्रमेण किमसौ विष्णुः जातो ममात्मज**।आदि पु. अ. 16।" विलक्षण भगवान् का अवतार सुनकर दशरथ आश्चर्यचकित हुए कि क्या विष्णु ही हमारे पुत्र हुए हैं ? इस प्रकार दशरथ का पुत्र होकर मैं उन्हें सुख दिया। "**रावणदेर्वधार्थाय चतुर्धाभूत्स्वयं हरिः**।अग्नि पु. अ. 6।" रावणादि राक्षसों को नाश करने के लिये स्वयं हरि ही चार रूपों में विभक्त(राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुध्न) हो अवतीर्ण हुए। "**ब्रह्मणा दशरथेन त्वं विष्णो राक्षसमर्दनः।**" हे विष्णु ! आप दशरथ के प्रार्थ ना करने पर राक्षस मर्दक राम हुए।

"**ब्रह्मणा प्रार्थितो विष्णुजातो दशरथात्मजः। कौशल्यायाञ्च भगवांस्त्रेतायाञ्च मुदान्वितः।।**

कैकेय्यां भरतश्चैव रामो तुल्यगुणेन च। लक्ष्मणश्चापि शत्रुघ्नः सुमित्रायां गुणार्णवः।ब्र. बैव. पु. कृष्ण खं. 62।3, 4।" त्रेता युग में ब्रह्मा के प्रार्थना करने पर भगवान् विष्णु प्रसन्न होकर कौशल्या द्वारा दशरथ के पुत्र राम हुए। भरत कैकेयी द्वारा तथा गुणार्णव भगवान्के गुणों के तुल्य गुणवान् लक्ष्मण और शत्रुघ्न सुमित्रा द्वारा उत्पन्न हुए। "**भगवानब्जनाभः जगतः स्थित्यर्थमात्मांशेन रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्नरूपेण चतुर्द्धा पुत्रत्वमायासीत्**।विष्णु पु.4।4।87।" भगवान् पद्मनाभ विष्णु जगत् के कल्याणार्थ अंशों सहित राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न रूप में अवतीर्ण हुए।

"**स्वायम्भुवो मनुः पूर्वं द्वादशार्णं महामनुम्।जजाप गोमतीतीरे नैमिषे विमले शुभे।।**

तेन वर्ष सहस्रेण पूजितः कमलापतिः। मत्ताप वरं वृणीष्वेति तं मनुं भगवान्हरिः।प. पु. उ. 242।1-2।" पूर्वकाल में स्वायम्भुव मनु पवित्र नैमिष क्षेत्र में गोमती गंगा के किनारे द्वादशाक्षर मंत्र के द्वारा भगवान् विष्णु का आराधन सहस्रों वर्षों तक किया था जिससे प्रसन्न हो भगवान् कमलापति ने वरदान देने का वचन दिया।

असह्य दुःखों से दुःखित बद्धात्माओं को देखकर जब कभी परम कारुणिक परमात्मा इसके ऊपर अपनी निर्हेतुक कृपा करते हैं, यथा- 'एवं संसृति चक्रस्थे भ्राम्यमाणे स्वकर्मभिः। जीवे दुःखाकुले विष्णुः कृपा क्वाप्युपजायते।' तो इसे अलभ्य मानव शरीर मिलता है जो मोक्षद्वार माना जाता है। किन्तु इस तरह शरीर मिलने पर भी आत्मा में पूर्वजन्मों के देहों द्वारा किये शुभाशुभ कर्मो का संस्कार चिपका रहता है। अतः उन भिन्न भिन्न संस्कारों के फलस्वरूप ही मनुष्यों में भिन्न भिन्न बुद्धि विचार भी पाये जाते हैं। इसीलिये इस संसार में किसी विषय के विचार विमर्श, कार्यकलाप, सिद्धान्तों में भी विभिन्नता पायी जाती है। इसी कारण आज संसार में अनेकों प्रकार का वादविवाद फैला हुआ है।

उक्त विभिन्न वादों के फलस्वरूप भगवत्परत्व विवेचन में भी कुछ लोग यह कहा करते हैं कि भगवान्श्री रामचन्द्र जी भी एक प्राकृत, किन्तु गान्धी जी वगैरह के सदृश एक प्रभावशाली व्यक्ति थे। इसी विशेषता के कारण ईश्वर भी कहलाये थे। कुछ लोग यह कहते हैं कि श्री राम जी ईश्वर के अवतार थे, और कुछ इन्हीं को स्वयं अवतारी, अर्थात् इन्हीं से विष्णु इत्यादि अवतार लिया करते हैं ऐसा मानते हैं।

इन वादियों में श्री रामचन्द्र जी को एक प्राकृत पुरुष मानते हैं इनकी भूल तो मूर्खता या पाप के कारणवश है "मुखमस्तीति वक्तव्यं दश हस्ता हरीतकी" के समान इनका कथन शतशः निर्मूल एवं प्रौढ़ीवाद है। हाँ, जो श्री राम जी को विष्णु के अवतार, या जो विष्णु से भी परे इन्हीं को मानते हैं, इन दोनों के कथनों के तथ्यातथ्य निर्णयार्थ वेद शास्त्रादि के प्रवल प्रमाणों तथा सच्छास्त्र किसको प्रतिपादन करता है इस पर ध्यान देने से स्वतः बोध हो जायेगा।

यद्यपि ईश्वर का अनन्त नाम है और उन नामों के अर्थो में भेद भी पाया जाता है, किन्तु वास्तविक उन नामों द्वारा व्यक्तित्व बोध में कोई अन्तर नहीं पड़ता। क्योंकि एक ही ईश्वर सर्वत्र व्याप्त एवं विख्यात है। इसीलिए इस ईश्वर को मत्स्य कूर्मादि रूपों में अवतार लेने पर भी तत्वद्रष्टा ऋषिगण पहचान कर ईश्वर नारायण शब्दों से प्रार्थना किया है। श्रीरामजी को "भवान्नारायणो देवः।" "वयमीश निवृत्ताः" इसमें वाराह को ईश्वर शब्द से तथा "नूनं त्वं भगवान्साक्षात् हरिर्नारायणोऽव्ययः। अनुग्रहाय लोकानां धत्सेरूपं जलौकसाम्। भा 8।23।27।" इसमें मत्स्य को हरि नारायण शब्द से सम्वोधन किये हैं। अर्थात् नाम रूपों में भेद रहते हुए भी ईश्वर-तत्व सबों में एक ही रहता है।

ईश्वर को सर्वव्यापक होने के कारण वेदों की संहिताओं तथा अन्यान्य ग्रन्थों में विष्णु शब्द से ही व्यवहार पाया जाता है। यद्यपि वायु इन्द्रादिक व्यापक देवों को भी विष्णु शब्द से यत्र तत्र व्यवहार किया गया है, किन्तु प्रसंगवश विष्णु नारायण या अन्यान्य देव समझ लिये जाते हैं। श्रुति मुक्तावस्था में जीव को भी विष्णु कहा है। "स विष्णुरेव भवति स विष्णुरेव भवति" इत्यादि। नीचे वेद तथा संहिताओं में व्यवहृत कुछ सूक्तियों का उल्लेख करते हैं।

सामवेद भाष्य इन्द्रपर्व अ. 2, खण्ड 11 पृ. 175, इदं विष्णुर्विचक्रमे, मण्डल 108 विष्णुना सुतं., मण्डल 225, विष्णवे मरुत्वते, मं. 230, विष्णोरथन्तरम्, मं. 5, उत्तरार्चिक सामवेद, इदं विष्णुर्विचक्रमे, विष्णुर्गोपा अदभ्य., विष्णोः कर्माणि पश्यत., तद्विष्णोः परमं पदम्, यतो विष्णुर्विचक्रमे., विष्णु यद्भावषणम्., इन्द्रा विष्णू., अथातो विष्णोः, विष्णवे ददासति., विष्णोः सुमतिं भजामहे., मं. 3, विष्णोः सरिव वां., मं. 4, विष्णोः शुक्र ते., मं. 5, यजुर्वेद अध्याय 1, आदित्यैरास्नासि विष्णोः, मं. 30, आदित्यैव्युदनमसि विष्णोः, मण्डल 2, विष्णोः पाहि पाहि, मण्डल 6, अध्याय 4, सोमस्य नीविरसि विष्णोः, मण्डल 10, विष्णोर्नुकं वीर्याणि, विष्णवे त्वा., अध्याय 5, दिवो वा विष्णो महो वा विष्णो, विष्णवे त्वा., उरु विष्णोः, अध्याय 6, तदुरुगायस्य विष्णोः, यजुर्वेद अध्याय 7, विष्णु स्वामिन्द्रियेण पातु, अध्याय 8, विष्णु उरुगायैष, विष्णु शिपिविष्टः, सहोभिर्विष्णु, अध्याय 9, आदित्यान्विष्णुं, वाचाम् विष्णुम्, अध्याय 13, विष्णोः कर्माणि पश्यत, अध्याय 23, येषु विष्णुस्त्रिषु, अध्याय 25, विष्णोरष्टमी, इस प्रकार अध्याय 33, 34, 36, सामवेद संहिता उत्तरार्चि के अ. पृ. 851, 852, 853, 854, में

"ततः प्रोवाच हर्षेण मनुः स्वायम्भुवो हरिम्।पुत्रत्वं भज देवेश त्रीणि जन्मानि चाच्युत।242।4।" तब मनु वरदान मांगे कि हे भगवन् आप तीन जन्मों तक मेरे पुत्र होवें।

"इत्युक्तस्तेन लक्ष्मीशः प्रोवाच सुमहा गिरा।भविष्यामि नृपश्रेष्ठ यत्ते मनसि कांक्षितम्।242।5।

ममैव च महाप्रीतिस्तव पुत्रत्वहेतवे।एवं दत्वा वरं तस्मै तत्रैवान्तर्दधे हरिः।242।6 एवं 8।" सुनकर भगवान् ने कहा (एवमस्तु) आपकी इच्छानुकूल ही होवे क्योंकि पुत्र के कारण ही आपकी प्रीति मुझ में हुई है। इतना कहकर भगवान् अन्तर्ध्यान हो गये। "अस्याभूत् प्रथमं जन्म मनोः स्वायम्भुवस्य च। रघूणामन्वये पूर्वं राजा दशरथोऽभवत्।242।8 एवं 9।" यही स्वायम्भुव मनु का जन्म रघुवंश में दशरथ के रूप में हुआ।

"भयार्ता शरणं जग्मुरीश्वरं कमलापतिम्।उवाच त्रिदशान्सर्वान्ब्रह्मरुद्रपुरोगमान्।।

राज्ञो दशरथस्याहमुत्पत्स्यामि रघोः कुले। वधिष्यामि दुरात्मानं रावणं सह बान्धवम्।242।27-28।"

राक्षसों के उपद्रव से भयभीत देवगण जब भगवान् कमलापति के शरण गये तो भगवान् ने उन सबों को आश्वासन दिया कि मैं रघुकुल में दशरथ के पुत्र होकर रावणादिकों का संहार करूँगा। "इत्युक्ताः देवताः सर्वे देवदेवेन विष्णुना।वानरत्वमुपागम्य जज्ञिरे पृथिवीतले।242।31।" भगवान् की आज्ञा सुनकर देवगण पृथ्वी तल पर वानर रूप में अवतार धारण किये। "वैवस्वतमनोः पुत्रो राज्ञां श्रेष्ठो महाबलः। इक्ष्वाकुरिति विख्यातः सर्वधर्मविदाम्बरः।। तदन्वये महातेजा राजा दशरथो बली।242।33।" वैवस्वत मनु के पुत्र इक्ष्वाकु हुए जो राजाओं में सर्वश्रेष्ठ तथा धर्मो को जानने वाले थे। इन्हीं के वंश में महावली राजा दशरथ हुए। "कौशल्या जनयामास पुत्रं लोकेश्वरं हरिम्। विष्णोः सन्तुष्टये तत्र तर्पयामास भूसुरान्।242।82।" कौशल्या ने सर्वलोकेश्वर हरि को पुत्ररूप में जन्म दिया। तब भगवान्‌की सन्तुष्टि के लिए दशरथ ने ब्राह्मणों को तृप्त किया। "कैकेय्यां भरतो जज्ञे पाञ्चजन्यांशसम्भवः। अनन्तांशेन सम्भूतो लक्ष्मणः परवीरहा।।सुदर्शनांशशत्रुघ्नः संजज्ञेऽमितविक्रमः।242।94-95।" कैकेयी द्वारा भरत पाञ्चजन्य के अंश से और लक्ष्मण अनन्त (शेष) के अंश से उत्पन्न हुए। सुदर्शन के अंश से अमित विक्रमवाले शत्रुघ्न उत्पन्न हुए। परशुराम की प्रार्थना - "त्वमादिपुरुषः साक्षात्परब्रह्मपरोऽव्ययः। त्वमनन्तो महाविष्णुः वासुदेवपरात्परः।242।170।" आप साक्षात् आदिपुरुष, परब्रह्मपर अव्यय, अनन्त, महाविष्णु, वासुदेव, परात्पर नारायण सर्वस्व हो।

"आपो नारा इति प्रोक्ता मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायण ः स्मृतः।ब्र. पु. अ. 71 तथा वराह पु. 2।26।" अविनाशी (नर) परमात्मा से उत्पन्न होने के कारण जल नार कहलाता है और परमात्मा उसका अयन होने के कारण एवं उससे भी पूर्व में रहने के कारण नारायण कहलाते हैं। "स देवो भगवान्सर्वव्याप्य नारायणं विभु" वह भगवान् नारायण सर्वव्यापक है। "रामो दाशरथिर्भूत्वा स तु देव प्रतापवान्। जघानरावणं संख्ये त्रैलोकस्य भयङ्करम्" यही प्रतापवान् देव नारायण दशरथ के पुत्र राम होकर त्रैलोक्य भयंकर रावण का संहार किया।

"नारायणात्मकः सर्वे रामस्ते अग्रजोऽभवन्। रावणान्तकरस्तद्वद्रघूणां वंशवर्धनः।। वाल्मीक तस्य चरितं चक्रे भार्गवसत्तम।मत्स्य पु. अ. 12। नारायणात्मक दशरथ के पुत्रों में राम सबसे बड़े हुए। जैसे रावण के वध करने वाले हुए इसी प्रकार रघुकुल को उज्जवल करनेवाले भी हुए। जिनका चरित्रवर्णन महर्षि वाल्मीकि ने किया है। "भविष्यति च धर्मात्मा रामो दशरथात्मजः।रघुवंशे समुत्पन्नः विष्णु मानुषरूपधृक्।विष्णुधर्मोत्तर पु.।" विष्णु मनुष्य का रूप धारण कर रघुवंश में दशरथ के पुत्र राम होंगे।

"रामो दाशरथिर्वीरोधर्मज्ञो लोकविश्रुतः। भरतो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नश्च महाबलः।।

सर्वे शक्रसमं युद्धे विष्णुशक्तिसमन्विताः। जज्ञे रावणनाशार्थं विष्णुरंशेन विश्वभुक्।कूर्म पु. पूर्वभाग 21।17-18।"

विश्वभोक्ता विष्णु के सर्वांशयुक्त इन्द्र के सदृश युद्ध में वीर, लोकविख्यात, धर्मज्ञ, महाबली - राम लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न दशरथ के पुत्र रूप में अवतीर्ण हुए।

"पश्यन्त्यदो रूपमदभ्रचक्षुषा सहस्रपादोरुभुजाननाद्भुतम्।

सहस्रमूर्धश्रवणाक्षिनासिकं सहस्रमौल्यम्बरकुण्डलोल्लसत्।भा.1।3।4।" योगी लोग दिव्य दृष्टि से भगवान् के हजारों पाँव, हजारों भुजायें, हजारों मुखों के कारण एवं हजारों मुकुट, कुण्डल और सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित रहने के कारण अत्यन्त विलक्षण रूप का दर्शन किया करते हैं। "एतान्नावताराणां निधानं बीजमव्ययम्।भा. 1।3।5।" भगवान् के इसी विष्णुरूप से नाना अवतार हुआ करते हैं। "अंशांशेन चतुर्धागातपुत्रत्वं प्रार्थितः सुरैः।भा. 9।10।2।" देवताओं की प्रार्थना सुन भगवान् चार रूप से अवतार लिए।

"इति व्यवसितो बुद्धया नारायणगृहीतया। हित्वान्यभावज्ञानं ततः स्वं भावमाश्रितः।भा. 9।9।48।" जब किसी प्राणी की बुद्धि परमात्मा नारायण आकर्षित करते हैं तो वह अपनी व्यवस्थित बुद्धि द्वारा अज्ञानभाव को भूलकर परमात्मा के वास्तविक रूप का ज्ञान करता है। "यत्तद्ब्रह्मपरं सूक्ष्ममशून्यं शून्यकल्पितम्। भगवान्वासुदेवेति यं गृणन्ति हि सात्वताः।भा. 9।9।49।" यह परब्रह्म अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण शून्यवत् प्रतीत होता है किन्तु शून्य नहीं है। भक्तजन उसी को वासुदेव भगवान् के नाम से कहा करते हैं। "नतोऽस्म्यहं त्वाखिलहेतुहेतुं नारायणं पूरुषमाद्यमव्ययम्।भा.10।40।1।" हे प्रभो ! आप सम्पूर्ण कारणों के भी कारण और अविनाशी आदिपुरुष नारायण हैं।

"नमः कारणमत्स्याय प्रलयाब्धिचरायच। हयशीर्षे नमस्तुभ्यं मधुकैटभमृत्यवे।भा. 10।40।17।
अकूपाराय महते नमो मन्दरधारिणे।क्षित्युद्धारविहाराय नमः शूकरमूर्तये।18।
नमस्तेऽद्भुत सिंहाय साधुलोकभयापह।वामनाय नमस्तुभ्यं क्रान्तत्रिभुवनाय च।19।
नमो भृगूणांपतये दृप्तक्षत्रवनच्छिदे। नमस्ते रघुवर्याय रावणान्तकराय च।20।

हे प्रभो ! आप प्रलयकालीन समुद्र में वेदों, ऋषियों तथा औषधियों के रक्षार्थ मत्स्यरूप धारण करने वाले को नमस्कार है। वेदों के चुरानेवाले मधु कैटभ नामक राक्षसों को मारने वाले आपको नमस्कार है। विशाल कच्छपरूप से मन्दराचल को धारण करने वाले आपको नमस्कार है। साधुजनों के भय को विनाश करने वाले अद्भुत नृसिंहरूप एवं वामनरूप धारण कर अपने पगों से तीनों लोकों को नापलेने वाले आपको नमस्कार है। हे प्रभो ! आपने उग्र स्वभाव वाले क्षत्रियों को परशुराम बनकर तथा राक्षस रावण को रघुवर राम बनकर नाश किया ऐसे रूप धारण करने वाले आपको नमस्कार है। "पुरा नारायणः श्रीमान् लोकरक्षणहेतुना। अवतीर्य रघोर्वंशे रामो रक्षकुलान्तकः।ईश्वर सं.अ. 20।226।" पूर्वकाल में श्रीमन्नारायण ने ही लोकसंरक्षणार्थ रघुकुल में रामरूप से अवतार लेकर राक्षसों का नाश किया। "श्रीराम इति नामेदं तस्य विष्णोः प्रकीर्तितम्। रमया नित्ययुक्तत्त्वात्राम इत्यभिधीयते।वृ. हारीत सं अ.6।" वह विष्णु ही रमा (लक्ष्मी) के साथ नित्य रहने के कारण श्रीराम कहाते हैं।

"सिंहस्कन्धानुरुपांसं कम्बुग्रीवं महाहनुम्। पीनवृत्यायतस्निग्ध महाबाहु चतुष्टयम्।।

शंखचक्रधनुर्बाणंपाणिनं सुमहाबलं। लक्ष्मणानुचरं रामं ध्यात्वाराक्षसनाशनम्।।" सिंह के समान कंधावाले, शंख के समान ग्रीवा, महाहनु, चौड़ा वक्षस्थल, स्निग्ध महान्चारों भुजाओं में शंख चक्र धनुष तथा वाण आयुधों को धारण करने वाले महाबली, राक्षसों को नाश करनेवाले लक्ष्मणयुक्त राम का ध्यान करके किसी भी कार्य का प्रारम्भ करे। "त्रेतायुगे रघोर्वंशे रामो दशरथात्मजः। नरनारायणांशौ द्वौ जातौ भुवि महाबलौ।। त्रेता युग में नर और नारायण के अंश से रघुवंश में दशरथ के पुत्र महाबलवान् राम और लक्ष्मण उत्पन्न हुए। "परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय जातोऽहं रामसंज्ञया।वृ ब्रह्म संहिता 7।10।" "शुक्लाम्वरधरः शुद्धो गृहमागत्य वाग्यतः। प्रक्षाल्यपादावाचम्य स्मरन्नारायणं प्रभुम्। रामयणं पुस्तकञ्च अर्चयेद्भक्तिभावतः।स्क. पु. उ. खं. अ. 4।" साधुओं की रक्षा, दुष्टों का विनाश और धर्म की संस्थापना के लिए मैं रामरूप में हुआ हूँ। श्रीरामायण की पूजा के प्रसंग में नारदजी कहे हैं कि स्नानादि क्रिया द्वारा शुद्ध हो, शुक्लवस्त्र धारण कर, वाक्संयत हो आचमनादि कर भगवान् नारायण को स्मरण करते हुए भक्तियुक्त रामायण पुस्तक की पूजा करे।

"आवाहनासनाद्यैश्च गन्धपुष्पादिभिर्व्रती। ॐ नमोनारायणायेति पूजयेद्भक्तितत्परः।।

तस्य विष्णुः प्रसन्नः स्याच्छ्रियासह द्विजोत्तमाः। सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके स गच्छति।।" पूजन आवाहन आसन गन्ध पुष्पादि उपचारों द्वारा भक्ति तत्पर हो "**ॐ नमो नारायणाय**" यह मंत्रोच्चारणपूर्वक पूजन करे। ऐसा करने से लक्ष्मी सहित विष्णु प्रसन्न हो जाते हैं जिससे वह पूजक पापरहित हो विष्णुलोक को प्राप्त करता है।

संध्यांशे समनुप्राप्ते त्रेताया द्वापरस्य च। अहं दाशरथी रामो भविष्यामि जगत्पतिः। महाभा. शान्ति पर्व **339।85**।

हनिष्ये रावणं रौद्रं सगणं लोककण्टकम्। महाभा. शान्ति प. **339।89**।" त्रेता और द्वापर के संध्यांश में मैं जगत्पति दाशरथि राम होकर लोकशत्रु रावण का संहार करूँगा। "**जन्मविष्णोरमेयस्य राक्षसेन्द्रवधप्सया**। हरिवंश वि. प. **93।6**।" "**रामलक्ष्मणशत्रुघ्नो भरतश्चैव भारत। 93।8**।" "**यत्रस्थितमिदं सर्व प्राते लोकस्य नाशने। आदौ यस्मात्समुत्पन्नः सोऽयं विष्णुरितिस्थितः**। हरिवंश भ. प. **82।12**।" हे भारत!अप्रमेय विष्णु का ही जन्म राम लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न रूप में हुआ है। प्रलयकाल में सृष्टि जहाँ विरामस्थान प्राप्त करती है तथा आदि में जहाँ इसकी उत्पत्ति होती है वही विष्णु ये राम लक्ष्मणादि हैं। "**रघोरथ कुले जातो रामनाम जनार्दनः**। हरिवंश भ. प. **82।17**।" झनार्दन् भगवान् ही रामनाम से रघुकुल में उत्पन्न हुए हैं।

"**अमृतार्थे पुरा चापि देवदैत्य समागमे। दधार मन्दरं विष्णुरकूपार इति श्रुतिः। 22।42**।

चतुर्धा तेजसो भागं कृत्वा दशरथे गृहे। स एव रामसंज्ञो वै रावणं व्यनशत्तदा। हरिवंश वि. प.**22।44**।

विष्णुना निहितः भूयः छद्मरूपेण हैहयः। हरिवंश वि.प. **48।21**।

इक्ष्वाकुल सम्भूतो रामो दाशरथिः पुरा। त्रिलोकविजयं वीरं रावणं सन्यपातयत्। हरिवंश वि. प. **48।22**।"

पूर्वकाल में अमृत के लिए दैत्यों के एकत्रित होने पर विष्णु भगवान ने ही कच्छपरूप से समुद्र में मन्दराचल को धारण किया था। वही विष्णु स्वतेज को चार भागों में विभक्त कर रामादि संज्ञा से विख्यात हो रावण का नाश किया तथा हैहय छद्म वेषधारी विष्णु के द्वारा मारा गया। वही विष्णु ने दाशरथि राम होकर त्रिलोकविजयी रावण का संहार किया।

"**निःक्षत्रियमिमं लोकं कृतवानेकविंशतिः। 82।16**।

रघोरथकुले जातो रामो नाम जनार्दनः। सीताया च श्रियायुक्तो लक्ष्मणानुचरः कृति। हरिवंश भ. प. **82।17**।"

जनार्दन भगवान् ने ही परशुराम होकर इक्कीस बार इस पृथ्वी को निःक्षत्रिय बनाया और वही सीता और लक्ष्मण के साथ रघुकुल में राम हुए।

"**तत्र अयोध्यापुरी चैका द्वितीया मथुरा स्मृता। मत्स्यादीनां तथा पुर्यः पुरतः सम्प्रकीर्तिता।।**

तत्रायोध्यापुरी रम्या यत्र नारायणो हरिः। रामरूपेण रमते सीतया परया सह।।

गृहीतशङ्खचक्राभ्यामुद्वाहुभ्यां विराजितः। कोदण्डबाणहस्ताभ्यामितराभ्यां तथैव च।।

आदिभूता महालक्ष्मी सीता तु विभवे मता। आविर्भावे क्षितो जाता जानकी दिव्यरूपिणी। वैकुण्ठ वर्णन पृ **84**।

एक अयोध्यापुरी है, द्वितीय मथुरापुरी है और अन्यान्य मत्स्यादिकों की पुरी पूर्व वर्णित है। उन भगवान् की पुरियों में अयोध्यापुरी परम रमणीय है जहाँ नारायण हरि परासीता (लक्ष्मी) के साथ रामरूप से रहते हैं। चतुर्भुजी श्रीराम जी ऊपर के दोनों हाथों में शङ्ख चक्र तथा अन्य दोनों हाथों में धनुष बाण लिये सुशोभित हैं। आदिभूत महालक्ष्मी ही विभवातार में पृथ्वी पर दिव्यरूप धारिणी सीता या जानकी होती हैं।

अव वाल्मीकि रामायण में आये हुए - विष्णु या नारायण ही श्रीराम रूप में अवतार लिये हैं, इसके प्रमाणित करने वाले श्लोक काण्ड तथा सर्गादि सहित उद्धृत किये जाते हैं।

बालकाण्ड - सर्ग 15 -"**एतस्मिन्नन्तरे विष्णुरुपयातो महाद्युतिः। शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासा जगत्पतिः**। वा. रा. बाल **15।16**।" इसी बीच महाप्रकाशमान् शङ्ख चक्र गदा आदि आयुधों से सुशोभित पीताम्बरधारी जगत्पति विष्णु उपस्थित हुए। "**त्वां नियोक्ष्यामहे विष्णो लोकानां हितकाम्यया**। श्लो **19**।" हे विष्णु ! आपको लोकहित के लिये आपको नियुक्त करना चाहता हूँ। "**विष्णो पुत्रत्वमागच्छ कृत्वाऽऽत्मानं चतुर्विधम्**। श्लो **21**।" हे विष्णु ! आप अपने उपकरणों सहित चार रूपों में हो पुत्रभाव से प्रकट होवें। "**अवध्यं**

दैवतैर्विष्णो समरे जहि रावणम्।श्लो 22।" हे विष्णु ! देवताओं से अवध्य रावण को आप समर में नाश करें। **"एवमुक्तस्तु विष्णुस्त्रिदशपुंगवः।श्लो 26।"** इस प्रकार देवताओं के प्रार्थना करने पर देवताओं में सर्वश्रेष्ठ देवेश विष्णु ने कहा। **"एवं दत्वा वरं देवो देवानां विष्णुरात्मवान्।श्लो 30।"** इस प्रकार देवों के देव आत्मनियामक विष्णु देवताओं को वर देकर अन्तर्ध्यान हो गये।

सर्ग 16- "ततो नारायणो विष्णुः नियुक्तः सुरसत्तमैः।वा. रा. बाल 16।1।" तत्पश्चात् नारायण विष्णु देवताओं द्वारा राक्षस नाशकार्य में नियुक्त हुए। **"एवमुक्ताः सुराः सर्वे प्रत्यूचुर्विष्णुमव्ययम्।श्लो 3।"** इस प्रकार सभी देवगण अव्यय विष्णु से कहा। **"इत्येतद्वचनं श्रुत्वा सुराणां विष्णुरात्मवान्।श्लो 8।"** देवताओं के इन वचनों को सुनकर आत्मनियामक विष्णु ने कहा। **"स कृत्वा निश्चयं विष्णुरामन्त्र्य च पितामहम्।श्लो 10।"** यह निश्चय कर विष्णु ने ब्रह्मा को बुलाकर आदेश दिया।

सर्ग 17 - "पुत्रत्वं तु गते विष्णो राज्ञस्तस्य महात्मनः।वा. रा. बाल 17।1।" विष्णु भगवान को राजा दशरथ के पुत्ररूप में अवतीर्ण हो जाने पर ब्रह्मा ने देवताओं से कहा कि **"विष्णोः सहायन्बलिनः सृजध्वं कामरूपिणः।17।2।"** विष्णु की सहायता के लिए बलवान्और यथेच्छारूपधारी प्राणियों की सृष्टि कीजिए।

सर्ग 18 - "विष्णोरर्ध महाभागं पुत्रमैक्ष्वाकुनन्दनम्।वा. रा. बाल 18।11।" विष्णु भगवान् के आधाभाग दशरथ जी के पुत्र श्री राम जी का......।**"साक्षाद्विष्णोश्चतुर्भागः सर्वैः समुदितो गुणैः।18।13।"** सभी गुणों से समुदित साक्षात्विष्णु के ही चार भाग......। **"वीरौ सर्वास्त्रकुशलौ विष्णोरर्धसमन्वितौ।18।14।"** विष्णु के अर्धभाग से समुत्पन्न दोनों वीर (लक्ष्मण शत्रुघ्न) सभी अस्त्रकलाओं में निपुण हए।

सर्ग 76 - "अक्षय्यं मधुहन्तारं जानामि त्वां सुरेश्वरम्।वा. रा. बाल 76। 17।" परशुराम जी कहते हैं कि अक्षय सुरेश्वर ! मधुराक्षस का नाश करने वाले आपको मैं जानता हूँ।

अयोध्याकाण्ड -सर्ग 1- "स हि देवैरुदीर्णस्य रावणस्य वधार्थिभिः।अर्थितो मानुषे लोके जज्ञे विष्णुः सनातनः।वा. रा.अयो. 1। 7।" वह सनातन विष्णु रावण के वधेच्छुक देवताओं से प्रार्थित हो मनुष्यलोक में अवतीर्ण हुए। **सर्ग 44-"सूर्यास्यापि भवेत्सूर्यो ह्यग्निरग्निः प्रभोः प्रभुः।श्रियाः श्रीश्च भवेदग्र्या कीर्त्याः कीर्तिः क्षमाक्षमा।वा. रा.अयो. 44। 15 ।"** भगवान् श्री रामचन्द्र सूर्य का भी सूर्य,अग्नि का भी अग्नि, प्रभु का प्रभु, श्री का श्री, कीर्ति की कीर्ति और क्षमा की क्षमा हैं। **सर्ग 58 - "सर्वलोकप्रियं त्यक्त्वा सर्वलोकहिते रतम्। सर्व लोकोऽनुरज्येत कथं चानेन कर्मणा।वा. रा.अयो. 58। 32।"** सर्वलोकप्रिय राम को प्रव्राजन दशरथ के सर्वलोक अहितकर कुकृत्य से कौन प्रसन्न होगा ? अर्थात् कोई नहीं।

अरण्यकाण्ड -सर्ग -1 "शरण्यं सर्वभूतानां सुसम्मृष्टाजिरं सदा।वा. रा.अर. 1। 3।" "दिव्यज्ञानोपपन्नास्ते रामं दृष्टवा महर्षयः।1। 10।" सभी प्राणियों का सुन्दर विशद प्रांगण सदृश शरण्य श्री राम जी को देखकर अवतार रहस्य के ज्ञाता महर्षिगण स्वागतार्थ उद्यत हुए। **"रक्षणीयास्त्वया शश्वदगर्भभूतास्तपोधनाः।1। 21।"** प्रजास्वरूप तपस्वियों को सतत आप (श्री राम) रक्षा करें। **सर्ग-5 "अक्षया नरशार्दूल मयालोका जिताश्शुभाः।ब्राह्म्याश्च नाकपृष्ठ्याश्च प्रतिगृह्णीष्व मामकान्।वा. रा.अर. 5। 31।"** हे नरशार्दूल ! मैं ब्रह्मलोक तथा स्वर्गलोक याने उभय भोगभूमि को जीतकर आपको समर्पण करता हूँ, आप स्वीकार करें। **"अहमेवाहरिष्यामि सर्वा ल्लोकान् महामुने।5। 33।"** मैं ही सभी लोकों को स्वीकार करूँगा।

सर्ग -6 "केवलेनात्मकार्येण प्रवेष्टव्यं मया वनम्।वा. रा.अर. 6। 22।" राक्षसों का विनाश कार्य मेरा कार्य है इसलिए मैं वन में रहूँगा। **सर्ग - 39 "बलिं वा नमुचिं वापि हन्याद्धि रघुनन्दनः।वा. रा.अर.39। 19।"** बलि या नमुचि क्यों न हो किन्तु रघुनन्दन उसे हनन करेंगे। इन सभी प्रमाणों से विष्णु ही श्री राम जी और श्री लक्ष्मी ही श्री सीता जी हैं।**सर्ग - 74 "चक्षुषा तव सौम्येन पूतास्मि**

रघुनन्दन। गमिष्याम्यक्षयान्लोकांस्त्वत्प्रसादादरिन्दम। वा. रा.अर.74। 13।" आपके सौम्य दृष्टि प्रसाद से पवित्र हो हम सब अक्षय लोक (वैकुण्ठ) जायेंगे।

किष्किन्धा काण्ड -सर्ग-4 "सर्वलोकस्य धर्मात्मा शरण्यः शरणं पुरा। वा. रा.किष्कि.4।20।" पूर्व में आप अखिल लोकों के शरण्य थे। **सर्ग-15** "निवासवृक्ष साधूनां आपन्नानां परागतिः। वा. रा.किष्कि.15।19।"साधुओं का निवास तथा आपद्ग्रस्तों की परागति (अक्षयलोकदाता) आप हैं। "गुणानामाकरो महान्। वा. रा.किष्कि.15।21।" कल्याणकारक गुणों के आप खजाना हैं। **सर्ग-24** "त्वमप्रमेयश्च दुरासदश्च जितेन्द्रियश्चोत्तमधार्मिकश्च। अक्षय्यकीर्तिश्च विचक्षणश्च क्षितिक्षमावान्क्षतजोपमाक्षः। वा.रा.किष्कि.24।31।" आप अप्रमेय-दुर्ज्ञेय, जितेन्द्रिय, उत्तमधार्मिक, अक्षयकीर्ति, विचक्षण क्षमावान्तथा रक्त कमलवत् नेत्रवाले हैं।

ऐसे सर्वत्र प्रमाण भरे पड़े हैं। इतना यहाँ तो दिग्दर्शन मात्र दिया गया है। "अहं वेदिम महात्मनं रामं सत्यपराक्रमम्। वसिष्ठोऽपि महातेजा येऽन्यं च तपसि स्थिताः। वा.रा.बाल.19।14।" "वृक्षे वृक्षे च पश्यामि चीरकृष्णाजिनाम्बरम्। वा.रा.अर.39।15।" "यथा सर्वगतः विष्णुः तथैवेयं द्विजोत्तम। वि.पु.1।8।17।"

युद्ध काण्ड सर्ग 111। "मानुषं वपुरास्थाय विष्णुः सत्यपराकमः। श्लो. 13। मनुष्य शरीर में अवतीर्ण आप सत्यपराक्रम विष्णु हैं। "शंखचकगदाधरः। श्लो. 12।" शंख चक्र और गदा को धारण करने वाले हैं।

सर्ग-117 "भवन्नारायणो देवः श्रीमांश्चक्रायुधः प्रभुः। श्लो. 13।" आप चक्र आयुध धारण करने वाले साक्षात् श्री नारायणदेव हैं। "अक्षरं ब्रह्म सत्यं च मध्ये चान्ते च राघव। श्लो. 14।" आप राघव अक्षर ब्रह्म, सत्य स्वरूप, मध्य और अन्त में रहने वाले हैं। "विष्वकसेनश्चतुर्भुजः। श्लो. 14।" आप विष्वक्सेन चतुर्भुज हैं। "विष्णुः कृष्णश्चैव। श्लो. 15।" विष्णु एवं कृष्ण भी आप ही हैं। "उपेन्द्रोमधुसूदनः। श्लो. 16।" उपेन्द्र और मधुसूदन भी आप ही हैं। "सहस्रश्रृङ्गो वेदात्मा शतशीर्षो महर्षभः। त्वं त्रयाणां हि लोकानां आदिकर्ता स्वयंप्रभुः। श्लो.18।" आप सहस्रश्रृंगधारी वेद की आत्मा, शतशीर्ष, महान् ऋषभ एवं तीनों लोकों के आदिकर्ता स्वयं प्रभु हो। "ओंकारपरात्परः। श्लो. 19।" आप ॐकार स्वरूप परात्पर नारायण हो। "दृश्यते सर्वभूतेषु गोषु च ब्राह्मणेषु च। श्लो.20।" "सहस्रचरणः श्रीमान्शतशीर्षः सहस्रदृक्। श्लो.21।" गो ब्राह्मण तथा समस्त प्राणियों में सहस्रचरण तथा सहस्रमस्तकवाले दिखायी पड़ते हो। "अन्ते पृथ्व्याः सलिले दृश्यते त्वं महोरगः। श्लो.22।" पृथ्वी के अन्त में प्रलयकालीन जल में शेष रूप में दिखायी पड़ते हो। "सीता लक्ष्मीर्भवान्विष्णुर्देवः कृष्णः प्रजापतिः। श्लो. 27।" श्री सीता जी लक्ष्मी हैं और आप श्रीविष्णु कृष्ण एवं प्रजापति हैं। "ये त्वां देवं ध्रुवं भक्ताः पुराणं पुरुषोत्तमम्। प्राप्नुवन्ति तथा कामानिह लोके परत्र च। श्लो. 31।" पुराणपुरुषोत्तम आपके जो भक्त हैं वे अभिलषित वस्तुओं को प्राप्त करते हैं।

उत्तरकाण्ड सर्ग -27 "विष्णोः समीपमागत्य वाक्यमेतदुवाचह। विष्णोः कथं करिष्यामि रावणं राक्षसं प्रति। श्लो. 6-7।" इन्द्र ने श्रीविष्णु (राम) के प्रति यह कहा कि हे विष्णु ! महाबली रावण का वधोपाय क्या करूँ। "त्वं हि नारायणः श्रीमान्पद्मनाभः सनातनः। श्लो. 11।" आप कमलनाभ सनातन श्रीमन्नारायण हैं। "एवमुक्तस्तु शक्रेण देवो नारायणः प्रभुः। श्लो. 14।" इस प्रकार इन्द्र की उक्ति सुनकर प्रभु श्री नारायण जी ने कहा। " ना हत्वा समरे शत्रुं विष्णुः प्रतिनिवर्तते। श्लो. 18।" श्री विष्णु भगवान् शत्रु को बिना मारे समर से नहीं लौट सकते। "त्वं हि नारायणः श्रीमान्त्वयि सर्व प्रतिष्ठितम्।" आप ही (श्रीराम) स्वयं नारायण हैं, आप ही में सम्पूर्ण लोक प्रतिष्ठित है।

सर्ग -104 "रक्षां विधास्यन्भूतानां विष्णुत्वमुपजग्मिवान्। वा. रा.उत्तर 104।9।" सांसारिक जीवों की रक्षा के लिए स्वयं विष्णु आप अवतीर्ण हुए हैं। "सनाथा विष्णुना देव भवन्तु विगतज्वराः। वा. रा.उत्तर 104।15।" विष्णु भगवान् से सभी देव सनाथ हो त्रासरहित हो जावें। "विष्णुः मानुष विग्रहः।।" विष्णु ही मनुष्य रूप में श्रीराम हैं।

सर्ग -109 "**रामस्य दक्षिणे पार्श्वे पद्मा श्रीः समुपाश्रिताः** । वा.रा.उत्तर 109 । 6 । " श्रीराम के दक्षिण भाग में पद्मा श्री सीतारूप में विराजित हैं ।

सर्ग -110 "**आगच्छ विष्णो भद्रं ते** । श्लो 8 । " श्रीरामजी के स्वर्गारोहण काल में ब्रह्मा कहते हैं हे विष्णु ! आप आवें । "**वैष्णवीं तां महातेजो** । श्लो 10 । " ये महातेजस्वी विष्णु सम्बन्धी गति को जायें । "**विवेश वैष्णवं तेजः** । श्लो 12 । भगवान् श्रीराम जी विष्णु तेज में प्रवेश कर गये । "**ततो विष्णुमयं देवं ...** । श्लो. 13 । इसके पश्चात् विष्णु के तेजमय श्रीराम रूप को सभी देवता पूजने लगे । "अथ **विष्णुर्महातेजाः...** । श्लो. 16 । " महातेजस्वी विष्णु । "**तत्श्रुत्वाविष्णुवचनं** । श्लो. 18 । " यह विष्णु के वचन सुनकर ब्रह्मा बोले । **सर्ग -111** "**ततः प्रतिष्ठतो विष्णुः स्वर्गलोके यथापुरम्** । श्लो 2 । " प्रजाओं को यथानुकूल लोक देकर श्री विष्णु वैकुण्ठ में जैसे पूर्व में थे चले गये ।

अध्यात्म रामायण बाल काण्ड सर्ग -2 स्तुतिमय- "**शंखचक्रगदापद्मवनमाला विराजितम्** । अ. रा. बाल 2 । 11 । " "**श्रिया भूम्या च सहितं गरुडोपरि संस्थितम्** । अ. रा. बाल 2 । 12 । " शङ्ख चक्र गदा पद्म और वनमाला से विभूषित श्रीदेवी और भूमि देवी के साथ गरुड़ के ऊपर विराजमान श्रीविष्णु को नमस्कार है ।

वरदान वचन - "**कश्यपस्य वरो दत्तस्तपसा तोषितेन मे** । श्लो. 25 । **स इदानीं दशरथो भूत्वा तिष्ठति भूतले** । श्लो. 26 । कश्यप की तपस्या से संतुष्ट होकर मैंने उनको वरदान दिया है वही इस समय दशरथ होकर पृथ्वी पर विराजित हैं । "**तस्याहं पुत्रतामेत्य कौशल्यायां शुभे दिने** । श्लो. 27 । "**इत्युक्त्वान्तर्दधे विष्णुः ब्रह्मा देवानथाब्रवीत्** । श्लो. । 28 । "

उन्हीं दशरथ का कौशल्या द्वारा शुभ दिन में पुत्र होकर आऊँगा । इतना कहकर विष्णु भगवान्गुप्त हो गये । इसके पश्चात् ब्रह्मा देवताओं से बोले । **बालकाण्ड सर्ग - 4** "**शेषस्तु लक्ष्मणो राजन् राममेवान्वपद्यत** । श्लो 17 । जगदाधार शेष जी लक्ष्मण रूप में रामजी के अनुगमन किये । "**जातौ भरतशत्रुघ्नौ शंखचक्रे गदाभृतः** । श्लो 18 । " गदाधारी भगवान् के शंख और चक्र भरत शत्रुघ्न रूप में भगवान के साथ हुए ।

अ रा युद्धकाण्ड सर्ग -11 "**सद्यो रामस्य विष्णोः सुरवरविनुतं याति वैकुण्ठमाद्यम्** । श्लो 87 । " जब जीवों को भगवान् के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध हो जाता है तब देवताओं से स्तुत विष्णु श्रीरामजी के आदिस्थान वैकुण्ठ में वे सभी जाते हैं ।

उपरोक्त सभी प्रमाणों से श्रीविष्णु ही श्रीरामरूप में अवतीर्ण हुए ऐसा सभी मान्य ग्रन्थों में ऋषिवचन मिलते हैं । आर्ष ग्रन्थों के अतिरिक्त श्रीतुलसीकृत रामायण में भी ऐसे ही वचन मिलते हैं । तुलसीदास जी अपने रामायण में सामान्यतया सभी ऋषियों को महत्व देते हुए विशेषरूप से दो ही का नामोल्लेख किये हैं । "**बंदौ मुनिपदकंज रामायाण जिन निर्मयऊ** । मानस बा. 14 । " इसी प्रकार व्यास जी के सम्बन्ध में "**व्यास आदि कवि पुंगव नाना** । मानस बा. 13 । 1 । " इन दोनों के ग्रन्थ रामायण या पुराणादिक से श्रीराम जी विष्णु सिद्ध होते हैं और लक्ष्मी ही श्री जानकी ।

अब एतत्सम्बन्धी **तुलसीकृत रामायण** से कुछ उद्धरण दिये जाते हैं । यथा -"**एवमस्तु कहि रमानिवासा** । मानस अर. 11 । 1 । " "**सो राम रमानिवास** । अर. 31 । छंद 4 । " "**प्रणमामि निरन्तर श्रीरमणम्** । मानस उ. 13 । 10 । " "राम रमेश नित्य भजामहे । मानस उ. 12 । छदं 4 । " "**सुजान राम रमापति** । मानस लं. 120 । छंद 1 । " "**छविधाम नमामि रमासहितम** । मानस लं. 110 । 6 । " "**रमानाथ जहँ राजा** । मानस उ. 29 । " इस प्रकार देवस्तुति प्रकरण में श्रीतुलसीदास जी भगवान्के सभी गुणादि विशेषणों का नाम लेते हुए किसी अन्य विशेष्य को न लेकर केवल एक विशेषण में यों कहते हैं "**सिन्धु सुता प्रिय कन्ता** । मानस बाल 185 । छंद 1 । " याने हे विष्णु ! सिन्धुसुता (लक्ष्मी) के प्रिय कान्त (पति) विष्णु आप हम सबों के कल्याणार्थ अवतार लें तथा नारद विष्णु को ही शाप दिये थे, अतः अवतार के पूर्व विष्णु कहते हैं "**नारद वचन सत्य सब करिहौं** । मानस बा. 186 । 3 । " अवतारकालिक दृश्य के वर्णन में "**प्रकट भये श्रीकन्ता** । मानस बा. 191 । छं । " श्रीकान्त विष्णु प्रकट हुए । "**निज आयुध भुजचारी** । मानस बा. 191 । छं । " शंखचक्रगदा और पद्म इन आयुधों को

लिये हुए श्रीविष्णु रामरूप में प्रकट हुए।

"**विप्र चरण देखत मनलोभा** ।मानस बा. 198।3।" विप्र भृगु जी के चरणचिह्नित श्रीविष्णु ही रामरूप में अवतरित हुए, अतः यह चिह्न भी विद्यमान था। "**जेहि पद सुर सरिता युगल पुनीता प्रकट भई शिवशीश धरी।सोई पदपंकज जेहि पूजत अज मम शिर धरेउ कृपालु हरि** ।मानस बा. 210।छं 4।" वही विष्णु जिनके पद से गंगा प्रकट हुई थी, जिसको ब्रह्मा पूजते हैं वही पद आज मेरे मस्तक पर है। परशुराम अपना सन्देह दूरीकरण में प्रगट कहते हैं "**राम रमापति कर धनु लेहु।खैंचहु चाँप मिटै सन्देहु** ।मानस बा. 283।4।"

"**श्रुतिसेतुपालक राम तुम जगदीस माया जानकी...** ।मानस अयो. 125।छं 1।" "**पयपयोधि तजि अवध बिहाई।जहँ रह राम लखन सिय छाई** ।मानस अयो. 138।3।" "**सुनु सुरेश रघुवीर स्वभाऊ। निज अपराध रिसाहिं न काऊ** ।मानस अयो. 217।2। "**जो अपराध भक्त कर करई। राम रोष पावक सो जरई। ......।यह महिमा जानहि दुरवासा।** मानस अयो.217।3।" विष्णु के ही चक्र की महिमा दुर्वासा जानते हैं।"**नमामि इन्दिरापतिं......।। शचीपति प्रियानुजम्** ।मानस अर. 3।2।" इन्दिरापति एवं शचीपति (इन्द्र) के छोटे भाई उपेन्द्र श्रीविष्णु ही हैं। "**राम कृपा वैकुण्ठ सिधारा** ।मानस अर. 8।1।" "**भूप रूप जब राम दुरावा।हृदय चतुर्भुज रूप दिखावा** ।मानस अर. 9।9।" "**श्रीसहित कृपानिकेत अनुज समेत मन पद लाइहौं** ।मानस अर. 25 छं।" "**श्याम गात विशाल भुज चारी** ।मानस अर. 31।1।" "**सो राम रमा निवास** ।मानस अर. 31 छं 4।" यह राम लक्ष्मीनिवास श्रीविष्णु हैं। "**जो बली बांधिसहसभुजमारा।सो अवतरेउ हरण महि भारा** ।मानस लं. 5।4।" **हिरण्याक्ष भ्राता सहित मधु कैटभ बलवान। जो मारेउ सो अवतरेउ कृपासिन्धु भगवान** ।मानस लं. 48।" इन राक्षसों को मारने वाले श्रीविष्णु ही हैं। "मीन कमठ सूकर नरहरि।वामन परशुराम वपुधरि।मानस लं. 109।4।" "**छविधाम नमामि रमासहितम्**।।" "**हर्षि देहु श्रीरङ्ग** ।मानस उ. 14।" "**जय इन्दिरा रमण** ।मानस उ.33।2।" लक्ष्मीरमण श्रीविष्णु हैं। "**फणीन्द्रसेव्यमनिशम्** ।मानस सु. मंगलाचरण।" फणीन्द्र शेष सेवित श्रीविष्णु हैं। "**विप्रपादाब्जचिह्नम्** ।मानस उ. मंगलाचरण ।1।" विप्र (भृगु) के पदचिह्नयुक्त श्रीविष्णु हैं। "**धरे जो विविधदेह सुरत्राता** ।मानस सु. 20।4।" "**मोर साप करि अंगीकारा।सहत राम नाना दुःख भारा** ।मानस अर.40।3।" नारद जी श्रीविष्णु को ही शाप दिये थे। शाप ही से दुःखित श्री राम जी को देख कर नारद स्वयं भी दुःखी हो रहे हैं।

"उर श्रीवत्स रुचिर वनमाला।मानस बा. 146।3।" भृगुपदचिह्न को ही श्रीवत्स कहते हैं। "**श्रीवत्सपदनामानं पादचिह्नो हि जायते**।" यह विष्णु होने का चिह्न है याने रामजी श्रीविष्णु हैं। "**उपजहिं जासु अंश ते नाना।शंभु विरञ्चि विष्णु भगवाना** ।मानस बा. 143।3। श्रीरामजी विष्णु भगवान हैं याने विष्णु के अवतार हैं। जिनके अंश से नाना (अनेक) शंभु (महादेव) विरञ्चि (ब्रह्मा) उत्पन्न होते हैं। जो उपरोक्त प्रमाणों से सिद्ध होता है। किन्तु इस चौपाई के अन्वय में हेरफेर कर कुछ लोग भ्रमवश रामजी से ही शंभु ब्रह्मा तथा विष्णु हुआ करते हैं - ऐसा अर्थ भी करते हैं। जो नितान्त अनुचित है क्योंकि इसके अनुकूल कोई भी प्रमाण नहीं मिलता है। उपरोक्त चौपाई में भगवान् शव्द भी विष्णु का बोधक है। विष्णु पुराण में कहा है "**मैत्रेय भगवच्छब्दः वासुदेवेन अन्यगः** ।वि पु 6।5।76।" वह भगवत् शव्द का अर्थ यह है - "**ज्ञानशक्तिवलंवीर्य तेजश्च यशसश्रियः। भगवच्छब्दवाच्यानि विनाहेयैर्गुणादिभिः** ।वि पु 6।5।79।" अतः यह सिद्ध होता है कि उपरोक्त सभी गुणसम्पन्न विष्णु से ही ब्रह्मा रुद्रादिक होते हैं। "**ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्ययशसश्रियः। ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भगइतीरणः** ।वि पु 6।5।74।" यह श्लोक भी उसी के रूपान्तर में मिलता है।

इसीप्रकार "**बाम भाग शोभित अनुकूला।आदिशक्ति छबि निधि जगमूला** ।मानस बा. 147।1।" "**उपजहिं जासु अंशगुणखानी।अगनित उमा रमा ब्रह्माणी।** ।बा. 147।2।" जगत के मूल (उत्पादक) शोभा की निधि आदि शक्ति लक्ष्मी भगवान्के वामभाग में अनुकूल शोभित (विराजमान) हैं। वह रमा (लक्ष्मी) अगनित गुण की खानि हैं जिनके अंश से ब्रह्माणी तथा उमा हुआ करती हैं। "**रामवामदिशि सीता सोई** ।बा. 147।2।" राम के वामभाग में वही (लक्ष्मी) सीता हैं। "**रामरूपे भवेत्सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि** ।वि पु 1।9।144।" लक्ष्मी ही रामावतार में सीता और कृष्णावतार में रुक्मिणी हुआ करती हैं।हनुमन्नाटक में कहा है "**जानामि रामं मधुसूदनस्य** ।सेतुबन्धनं

सप्तमोऽङ्कः श्लो. 11। " वही विष्णु (मधुसूदन)राम को मैं जानता हूँ।

रामायण में क्या है ।

भगवान् नारायण के अनन्त गुण, अनन्त रूप, अनन्त वैभव, अनन्त अवतार तथा अनन्त विभूतियाँ हैं। अतः इनका अनन्त नाम भी हुआ और अनन्त चरित्र भी है। भगवान् नारायण के अनन्तावतारों में एक रामावतार भी है। श्रीरामचन्द्रजी बहुत बार अवतार लिये, उन अवतारों में जो जो चरित्र किये हैं उनमें भी कुछ अन्तर कल्पभेद से मालूम पड़ता है। जैसे कहीं विवाह पश्चात् परशुराम जी से मिलन, तो कभी पूर्व ही। अहल्या का रहना कहीं जनकपुर में तो कहीं बक्सर इत्यादि। भगवान् के चरित्रों को ब्रह्मा याद रखते हुए प्रसार किया करते हैं। इन्हीं क्रमों में श्रीराम चरित्र को ब्रह्मा ने महादेव से एवं नारद से कहा। नारद महर्षि ने वाल्मीकि जी से कहा, वाल्मीकि जी यह सुन्दर रामचरित्र को (जो मूलरूप में रामायण के प्रथम काण्ड के केवल एक सर्ग में है) चौबीस हजार श्लोकों में बनाये और समयानुकूल लव और कुश को पढ़ाये। और ये दोनों भाई रामचरित्र को गानविद्या के अनुसार वीणा बजाते हुए मुनिमण्डिलियों में घूम- घूम कर प्रचार किये। कहा भी है "**ऋषिणाञ्च द्विजातीनां साधूनाञ्च समागमे। यथोपदेशं तत्त्वज्ञौ जगतुः सुसमाहितौ**। वा. रा.बाल 4। 13।" यह ताल स्वर से युक्त रामायण (श्रीरामचरित्र) को सुनकर श्रोतालोग कहते हैं। "**चिरनिर्वृत्तमप्येतत्प्रत्यक्षमिव दर्शितम्**। वा. रा.बाल 4। 18।" यह रामजन्म, विवाह तथा रावणवधादिक भूतकालिक भी प्रत्यक्ष वर्त मान ऐसा प्रतीत होता है।

रामायण शब्द की व्युत्पत्ति बहुत प्रकार से की जाती है तथा उसका अर्थ भी भिन्न-भिन्न प्रकार से होता है। यथा "**राम ईयते प्राप्यते अनेन**" अर्थात् राम जिसके द्वारा मिल जायें वह साधन प्रेम भी है, इसको रामायण कह सकते हैं। अथवा "**रामं अयनं यस्य**" बहुब्रीहि द्वारा जिन सबों के आधारभूत राम हैं उन सबों का बोध रामायण द्वारा होता है। "**रामस्य अयनं**" तत्पुरुष समास के द्वारा राम जहाँ प्राप्त हों उसको रामायण कहेंगे। याने राम जी कौन हैं ? कैसे हैं, यह देखना या जानना चाहें तो रामायण पढ़े। जैसे किसी को खोजने के लिए सर्वप्रथम उसके घर का ही अन्वेषण किया जाता है। इसी प्रकार रामजी की प्राप्ति के लिए प्रेमपूर्वक रामायण का अध्ययन साधन है। यों तो सामान्य रूप से रामायण द्वारा लोग रामचरित्र को ही समझते हैं किन्तु रामजी श्रीनिवास हैं। अतः बहुब्रीहि समास के द्वारा रामायण शब्द से लक्ष्मी (सीता) चरित्र प्रतिपादक अर्थबोध होता है। क्योंकि "**सीतायाः चरितं महत्** । वा. रा.बाल 4। 7।" अर्थात् रामायण में सीता का ही महत्चरित्र चित्रित है।

इस विषय में यों समझना चाहिए कि एक बार जब लव कुश द्वारा श्रीराम जी उक्त रामायण को गाते हुए सुना तो उस गान को पुनः-पुन सुनने की इच्छा से लव कुश को प्रेरित करते रहे और उत्कण्ठापूर्वक सुनते रहे और यहाँ तक सुनने में आसक्त हुए कि "**स चापि रामः परिषद्गतः शनैर्बुभूषयासक्तमना बभूव** । वा. रा.बाल 4। 36।" अर्थात् धीरे धीरे अपने स्थान से खिसक कर उन दोनों गायकों के पास चले गये और बोले कि "**ममापि तद्भूतिकरं प्रचक्षते महानुभावं चरितं निबोधत** । वा.रा.बाल 4। 35।" (ममापि) मुझ प्रियविरही को भी (भूतिकरं) धौर्यप्रद यह कथा है - इसलिए (महानुभावं चरितं) हे महानुभाव ! कृपा कर सीता चरित्र को पुनः कहिये। यदि रामायण सीताचरित्र प्रतिपादक नहीं होता मर्यादापुरुषोत्तम भगवान्श्री राम अपना चरित्र अपने ही क्यों सुनते जवकि अपनी प्रशंसा सुनना अपने से अपनी निन्दा के समान है। इससे सिद्ध होता है कि रामायण सीताचरित्र का ही प्रतिपादक है। श्रीगुणरत्नकोष में भी यही लिखा है कि "**श्रीमद्रामायणमपि परंप्राणिति त्वच्चरित्र** । श्लोक14।"हे लक्ष्मी सीते ! वाल्मीकि रामायण आपके चरित्र की रक्षा करती है याने गान करती है अर्थात् जबतक यह रामायण रहेगा तब तक आपका चरित्र संसार में रहेगा।

"**प्रातः द्यूतप्रसंगेन मध्याह्ने स्त्रीप्रसंगतः। रात्रौ चोरप्रसंगेन कालो गच्छति धीमताम्**।।" प्रातः काल में द्यूतप्रसंग

(भारत-कृष्ण-प्रसंग) में, मध्याह्न में स्त्रीप्रसंग (रामायण सीताचरित्र कथन) में और रात्रि में चोरप्रसंग (श्रीमद्भागवत्कथन) में बुद्धिमानों का समय व्यतीत होता है। 'सीतायाः चरितं' में अनेकों भाव हैं। ये सब गुण श्रीराम जी की अपेक्षा सीता जी में विशेष रूप से पाये जाते हैं इसलिये महत् शब्द दिया गया है। भगवान् की अपेक्षा लक्ष्मी जी में दया एवं क्षमागुण अत्यधिक मात्रा में है। इसीलिये सीता लंका में गयीं कि रावण को उपदेश द्वारा भगवान् की शरणागति कराकर उसके महान् अपराध को क्षमा करवा दें। लंका की राक्षसियाँ भी सीता जी के साथ महान् अपराध की थीं। जिसके कारण जब हनुमान् उन सबों का चित्रवध करना चाहते थे तो उन राक्षसियों को विना शरणागत हुए ही बचा लिया और कहा कि "**कश्चिन्नापराध्यति**।वा.रा.युद्ध **113**। **45**।" इन सबों का कोई अपराध नहीं है। यह दया और क्षमा गुण का उदाहरण है। जयन्त को भी महान् अपराधी होते हुए बचा लिया।

एक ओर भगवान् को अवतरित होने के लिये कश्यप घनघोर तपस्या किये, पृथिवी तथा देवगणों की स्तुति, दशरथ का अश्वमेध तथा पुत्रेष्टि यज्ञ करना, दोनों समय में देवताओं की शरणागति करना इत्यादि अनेक यत्नों द्वारा भगवान् का अवतार हुआ। दूसरी ओर सीता के अवतार में कोई हेतु नहीं। बिना कारण ही कुयोनी कठोर धरती से निकल कर अनेक जीवों को संसार से उद्धार किया, यह निर्हेतुक करुणा केवल मातृगुण की विशेषता है। भगवान् ने तो राक्षसी शूर्पणखा का प्रेम करने पर भी नाक कान काट लिया। ऐसे अनेकों उदाहरणों द्वारा रामजी की अपेक्षा सीता जी में विशेषता पायी जाती है। ऐसा क्यों न हो "**पितुः शतगुणं माता गौरवेणातिरिच्यते**।" याने माता पिता की अपेक्षा सौगुनी बड़ी होती है। इसीलिए प्रधानतया सीता का ही चरित्र प्रतिपादक रामायण माना गया है।

अथवा "**रामस्य अयनं** (भक्तजनः) **तस्य चरितं रामायणम्** याने रामजी अपने भक्तों के हृदय में रहते हैं और उन्हीं भक्तों का यह चरित्र रामायण है। यथा मानस में,

"निदरहिं सिन्धु सरित सर बारी। रूप बिन्दु जल होहिं सुखारी।।
तिनके हृदय सदन सुखदायक। बसहु लखन सिय सह रघुनायक। अयो. **127**।**4**।
यश तुम्हार मानस विमल हंसिनी जीहा जासु। मुक्ताहल गुणगण चुगहीं वसहुं राम उर तासु। मानस अयो. **128**।
चरण राम तीरथ चलि जाहीं। राम बसहुँ तिनके मनमाँही। अयो. **128**।**3**।
सबकर माँगही एक फल राम चरन रति होउ। तिनके मन मन्दिर बसहु सिय रघुनन्दन्द दोउ। मानस अयो. **129**।
जिनके कपट दंभ नहीं माया। तिनके हृदय बसहु रघुराया। अयो. **129**।**1**।
तुमहीं छाड़ी गति दूसर नाहीं। राम बसहुँ तिनके मन माँही। अयो. **129**।**3**।
जिनहीं राम तुम प्राणपियारे। तिनके मन शुभ सदन तुम्हारे। अयो. **129**।**4**।
स्वामी सखा पितु मातु गुरु जिनके सब तुम तात। तिनके मनमन्दिर बसहु सीय सहित दोउ भ्रात। मानस अयो. **130**।
नीति निपुण जिनके जगलीका। घर तुम्हार तिनके मन नीका। अयो. **130**।**1**।
रामभक्त प्रिय लागहि जेही। तेही उर बसहु सहित बैदेही। अयो. **130**।**2**।
सब तजि तुम्हहीं रहे लव लाई। तिनके हृदय बसहु रघुराई। अयो. **130**।**3**।
मन क्रम वचन जो राउर चेरा। राम करहुँ तिनके मन डेरा। अयो. **130**।**4**।
जाही न चाहिये कबहुँ कछु तुम सन सहज सनेह। बसहुं निरन्तर तासु उर सो राउर निज गेह। मानस अयो. **131**।

भक्तों के यही सब लक्षण बताये गये हैं और ऐसे ही भक्तों के हृदय में भगवान् मूर्तिमान होकर रहते हैं तथा उनकी प्रशंसा भगवान गाते रहते हैं क्योंकि ऐसे भक्त अति प्रिय होते हैं - "**तुम सारिखे सन्त प्रिय मोरे। धरेउ देह नहीं आन निहोरे**। सु. **47**।**4**।" "**भक्तचरित करि नेम तुलसी जे सादर सुनहिं। सीय राम पद प्रेम अवसि होई भवरस विरति**। अयो. **326**।" "**जग जपु राम राम जपु जेहि**। अयो. **217**।**4**।" भक्तवर भरत जी के नाम को भगवान् स्वयं ही जपा करते हैं तो औरों की बात ही क्या रही और इससे बढ़कर भक्तों का महत्व ही क्या हो सकता है। इसी तरह के भक्त लखनलाल भी हैं "**रामस्य दक्षिण बाहुः**।।" लखन जी राम जी के दाहिना हाथ हैं।

"**सुमित्रा गच्छ गच्छेति**।वा. रा. अयो.**40**।**8**।" "**सृष्टस्त्वं वनवासाय**।वा. रा. अयो.**40**।**5**।" "**रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि**

'शरण' शव्दार्थ जानना चाहिए।

"निवासवृक्षः साधूनामापन्नानाम परां गतिः। आर्तानां संश्रयश्चैव यशसचैकभाजनः। वा. रा.किष्कि 15।19।

अन्तरेणाञ्जलिं बध्वा लक्ष्मणस्य प्रसादनात् । वा. रा.किष्कि 32।17। प्रसादयस्व त्वञ्चैनं शरणागतवत्सलम्।।

लंका काण्ड से प्रपद्ये शव्दार्थ सिद्ध होता है - "आजगाम मुहूर्तेन यत्र रामः सलक्ष्मणः। वा. रा.युद्ध 17।1।" उत्तर काण्ड में मुक्तिफल का वर्णन होने से द्वयमन्त्र का उत्तरार्ध का अर्थ सिद्ध होता है। इस प्रकार अर्थबल से रामायण द्वारा द्वय मन्त्रार्थ व्यक्त होता है। "त्वं गतिः परमो देव सर्वेषां नः परंतप।"आप सभी देवताओं की परमगति हो। इससे शरण्य गुण झलकता है। "देवगन्धर्व यक्षाश्च ततस्त्वां शरणं गताः।"सभी देवताओं ने भगवान्की शरणागति की। "स भ्रातुश्चरणौ गाढं निपीड्य रघुनन्दनः सीतामुवाचातियशा राघवञ्च महाव्रतम्। वा. रा.अयो. 31।2।" लक्ष्मण श्रीराम जी का चरण पकड़ कर सीता जी से कहते हैं। इससे पुरुषकारयुक्त शरणागति सिद्ध होती है। "शेष्ये पुरस्ताच्छालाया। वा. रा.अयो. 111।14। "यावन्मे न प्रसीदति।। वा. रा.अयो. 111।13।" भरत जी पर्णशाला में सो रहे कि जब तक श्रीराम जी नहीं होंगे तब तक मैं नहीं उठूँगा। "ते वयं भवता रक्ष्या भवद्विषयवासिनः। नगरस्थो वनस्थो वा त्वन्नो राजा जनेश्वरः। वा. रा.अर 1।20।" दण्डकारण्य वासियों ने कहा कि हम सब आपके रक्ष्य हैं, आप चाहे वन में रहें या ग्राम में, हम सबों के शरण्य हैं, यह भी शरणागति ही है।

सपित्रा च परित्यक्तः सुरैश्च समहर्षिभिः। त्रींल्लोकान्सपरिक्रम्य तमेव शरणं गतः।।

स तं निपतितं भूमौ शरण्यः शरणागतः। वधार्हमपि काकुत्स्थः कृपया परिपालयत्। वा. रा.सु. 38।33-35।"

जयन्त को पितृ, देवता,महर्षि एवं तीनों लोकों के कोई भी जब रक्षा नहीं कर सका तो घूमते घूमते भगवान् के ही शरण में आया, तो श्री जानकी ही अपराध क्षमा करा उसकी रक्षा की। "कृतापराधस्य हि ते नान्यत्पश्याम्यहं क्षमम्। अन्तरेणाञ्जलिं बद्धवा लक्ष्मणस्य प्रसादनात्। वा. रा.किष्कि 32।17।"सुग्रीव ने अञ्जलिबद्ध हो लक्ष्मण को मनाया है। अतः इसी प्रकार अञ्जलिबद्ध हो शरणागति करनी चाहिए ऐसा समझना चाहिए।

सोऽहं परुषितस्तेन दासवच्चावमानितः। त्यक्त्वा पुत्राँश्च दाराँश्च राघवं शरणं गतः। वा. रा.युद्ध 17।16। विभीषण रावण द्वारा तिरस्कृत होने के कारण पुत्रदारादि सबों को छोड़ कर भगवान्के शरण में गये। इसका भाव यह है कि शरीर सम्बन्धि सर्वस्व छोड़कर भगवान् की शरणागति करनी चाहिए।

"अभियाचमानं वैदेहीमेतद्धि मम रोचते। सु. 27।41। राघवाद्धि भयं घोरं राक्षसानामुपस्थितः। वा. रा.सु. 27।44।" त्रिजटा कहती है कि श्रीरामजी से राक्षसों का नाश होने का भय है। अतः हम सीता की शरणागति करें। अर्थात् अन्य द्वारा भी की करायी शरणागति फलवती होती है। अहं सर्वं करिष्यामि जाग्रतः स्वपतश्चते। वा. रा.अयो. 31।27। लक्ष्मण जी कहते हैं कि मैं सब अवस्थाओं में आपका कैंकर्य करूँगा। इस प्रकार सर्वत्र शरणागति सिद्ध होती है। "अहमस्यावरो भ्राता गुणैर्दास्यमुपागतः। कुरुष्व मामनुचरं वैधर्म्यं नेह विद्यते। वा. रा.अयो. 31।24।" यह लक्ष्मण श्री रामजी से कह कर शेषत्व सिद्ध कर दिखाते हैं। "विललाप सभामध्ये जगर्हे च पुरोहितम्। 82।10। राज्यं चाहञ्च रामस्य धर्मत्वं वक्तुमर्हसि। वा.रा.अयो. 82।12।" भरत जी सभा में रोते हुए तथा वशिष्ठ जी को फटकारते हुए कहते हैं मैं तथा यह राज्य सब रामजी का है। इससे परतन्त्रता सिद्ध होता है। "गच्छता मातुलकुले भरतेन ततो अनघ। शत्रुघ्नो नित्यशत्रुघ्नः नीतः प्रीतिपुरस्कृतः। वा. रा. अयो.1।1।" शत्रुघ्न जी सदा भरत जी की सेवा में लगे रहते थे। इसीसे उनके साथ ममहर में भी गये। इससे भगवत्सेवा तथा परतन्त्रता सिद्ध होता है।

रामायण द्वारा अर्थपञ्चक

श्री राम जी के व्यवहार से परस्वरूप। लक्ष्मण के व्यवहार से स्व स्वरूप। शरणागति वर्णन से उपाय स्वरूप। विभीषणादि के कैंकर्य से फलस्वरूप। रावण के विरोधादि से विरोधीस्वरूप। इस प्रकार अर्थपञ्चक का ज्ञान होता है।

जनकात्मजं । वा. रा. अयो. 40।9 । " सुमित्रा जी लक्ष्मण जी से कहती हैं - मैंने तुम्हें वन में राम जी की सेवा करने के लिये उत्पन्न किया है। राम को पिता और जानकी को माता समझो। क्या और भी कहीं ऐसी माता हो सकती हैं ? ऐसे ही भक्तवर श्री राम जी के अयन हैं। शत्रुघ्न की कोटि और उच्च है "**शत्रुघ्नो नित्यशत्रुघ्नः** । वा. रा.अयो. 1।1। " याने शत्रुघ्न नित्य शत्रुओं का नाश करने वाले हैं। याने जन्म मरणादि से मुक्त करा देने वाले हैं। सुमन्त जी भी इसी प्रकार के भक्तों में से हैं। "**भये विकल जनु फणि मनि हीना। नयन न सूझ सुनै नहीं काना** । मानस अयो. 98।2। " सुमन्त जी की वही दशा हुई जो मणि के बिना मनियारे साँप की होती है। इनकी सभी इन्द्रियाँ शून्य हो गयीं। यथा- "**धिक् जीवन रघुवीर विहीना** । अयो.143।2। " "**राम राम सिय लखन पुकारी। परेऊधरणितल ब्याकुल भारी** । अयो.141।4। " रथ के घोड़ों की उस काल यही दशा हो जाती है। "**तृण चरहिं न पियहिं जल मोचत लोचन बारी** । अयो. 142। " "**जो कह राम लखन वैदेही। हंकरि हंकरि हिय हेरहिं तेही** । अयो.142।4। " ऐसे वाल्मीकि, भरद्वाज, अत्रि, अनुसूइया, सरभंग, सुतीक्ष्ण, कुम्भज, जटायु, शबरी, हनुमान, सुग्रीव, विभीषण, अंगद, मनु, शतरूपा इत्यादि भक्तों के हृदय में ही महर्षि वाल्मीकि जी ने श्री राम जी के रहने का उपयुक्त स्थान बताया है। अतः ये सब राम के अयन हैं और श्री राम जी भी यही कहते हैं "**अस सज्जन मम उर वस कैसे। लोभी हृदय बसत धन जैसे** । सु. 47।4। " अर्थात् ऐसे भक्तों को श्री राम जी अपने हृदय में हमेशा रखते हैं। यह हुआ "**रामं अयनं यस्य**" वहुव्रीहि समास का अभिप्राय। इससे यह सिद्ध होता है कि रामजी के हृदय में भक्त और भक्त के हृदय में रामजी सदा बास करते हैं। अतः रामायण का अर्थ भक्त और भगवान दोनों का हृदय हुआ।

भक्त सदा भगवान्का गुणगान करते रहते हैं और भगवान् भक्तों के गुणगान करते रहते हैं। यथा - "**यदा विष्णुः स्वयं वक्ता लक्ष्मीश्च श्रवणे रता। यदा लक्ष्मी भवेद्वक्त्री विष्णुश्च श्रवणे रतः।** " जब भगवान् भक्त का गुणगान करते हैं तो लक्ष्मी जी सुनती हैं और जब लक्ष्मी जी भक्त का गुणगान करती हैं तो भगवान् सुनते हैं। इस प्रकार भक्त और भगवान् का समय व्यतीत होता है। इसी को कालक्षेप कहते हैं। यहाँ यह नहीं हो सकता कि ये दोनों परस्पर अपनी अपनी कथा एक दूसरे को सुनाते हैं और सुनते हैं क्योंकि यह शिष्टता के प्रतिकूल है। वल्कि स्पष्ट यह झलकता है कि वे लोग ध्रुव प्रह्लादिक की कथा कहते और सुनते हैं।

"**तात इक्ष्वाकुनाथस्य भरतस्य कथां कुरु।** । " "**कहहिं पुरातन कथा पुरानी। सुनहिं लखन सिय अति सुख मानी** । मानस अयो. 140।1। " भाव यह है कि रामायण शब्द से केवल रामचरित्र ही नहीं वल्कि आदि में तुलसीदास जी कहे हैं - "**सीतारामगुणग्राम** । मानस बाल मंगलाचरण। " सीता और राम दोनों के गुण समूहों का निवास स्थान यह रामायण है। इसमें प्रधान सीताचरित्र रहने के कारण से ही सीता का पूर्व प्रयोग किया गया है। ृामायण रूपी वृहत् मंजूषा में भक्त चरित्र रत्न भरा हुआ है अर्थात् उक्त मंजूषा को जब खोलेंगे तब भरत सीतादिक का चरित्ररत्न उसमें मिलेगा। मानसकार भी इस मानसरोवर के जलस्थान में राम सीता को रखे हैं। "**राम सीय यश सलिल सुधा सम** । मानस बाल 36।2। " इस रामायण में राम और सीता का यश ही सुधा के समान सलिल (जल) है। अमृतपान करने से जैसे शरीर अमर हो जाता है उसी प्रकार यह राम और सीता के यशस्मरण से जीव अमर अर्थात्जन्म - मरण से रहित हो जाता है। याने नित्यलोक में जाकर नित्य शुद्ध अप्राकृतिक देह धारण करता है। यदि ऐसा नहीं हुआ तो "**अनजीवित सम चौदह प्राणी** । लंका 30।2। " याने मरे हुए के तुल्य हैं। राम और सीता परस्पर भिन्न होते हुए भी अभिन्न हैं तो इन दोनों का यश एवं गुण भी अभिन्न है जो रामायण में सर्वत्र पाया जाता है। इसीलिए वाल्मीकि ने "**सीतायाश्चरितं महत्**" लिखा है।

द्वयमन्त्र ः- (**श्रीमन्नारायण चरणौ शरणं प्रपद्ये। श्रीमते नारायणाय नमः।**)

रामायण से द्वयमन्त्र भी व्यक्त होता है। यथा - बालकाण्ड में लक्ष्मीप्राप्ति। अतः '**श्रीमत्**' का अर्थ जानना चाहिए। अयोध्या काण्ड में भगवान्के गुणवर्णन से '**नारायण**' पद का अर्थ जानना चाहिए। अरण्य काण्ड में "**ते तं सोममिवोद्यन्तम्।** " याने आप चन्द्रमा के समान हैं, इस प्रकार भगवान् के विग्रह वर्णन से '**चरणौ**' शब्द का अर्थ सिद्ध होता है। किष्किन्धा एवं सुन्दर काण्ड से

कि 'लघुतरा रामस्य गोष्ठी कृता' याने राम जी के गुणसमूह को सीता जी के गुणसमूह ने छोटा कर दिया है। और भी देवगण, वानरसमूह, लक्ष्मण तथा ऋषिमण्डलि भरतादि के आचरण व्यवस्था कैंकर्य के द्योत्तक हैं। लंका में निवास करती हुई जानकी के चरित्र से उपायशून्यता बतायी गयी है।

मानसके शंका समाधान प्रसंग

मानस प्रसंग 1। "**गिरा अरथ जलबीचि सम कहियतभिन्न न भिन्न। बन्दौ सीतारामपद जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न।** बा. 18।" इस दोहे में सीता और राम जी को परस्पर भिन्न और अभिन्न बताया गया है तथा और भी अन्यान्य भाव रखा गया है। गिरा स्त्रीलिंग शब्द से सीता को और अर्थ पुल्लिंग शब्द से राम को उपमित किया गया है। '**विशेषणं पुरस्कृत्य विशेष्यस्तदनन्तरम्**' इस नियम के द्वारा प्रथम विशेषण पद रखकर पश्चात् विशेष्य का उपादान किया गया है। सीताराम इस समस्त पद में '**अभ्यहितञ्च**' इस व्याकरण सूत्र के अनुकूल सीता पद को पूजित होने के कारण पूर्व प्रयोग किया गया है। '**मातरं प्रथमं पूज्या पितरस्तदनन्तरम्**' '**पितुः शतगुणं माता गौरवेणातिरिच्यते**' उपासकों के लिये मातृस्थानीय श्री सीता और पितृ स्थानीय श्री राम जी हैं। अतः सीता शब्द को पूर्व कह कर राम को पश्चात् रखा गया है। सीता पत्नी और राम जी पति हैं। सीता सेविका राम जी सेव्य। दोनों के जन्म काल में भी **6** वर्ष का अन्तर। एक की जन्मभूमि अयोध्या दूसरे की जनकपुर। सीता वशवर्तिनी राम जी सर्वतन्त्र स्वतन्त्र। सीता पृथ्वी में घुसी राम जी विमान द्वारा गये। ऐसे अनेकों भाव लेकर सीता और राम में भिन्नता दिखायी गयी है। इसी प्रकार गिरा और अर्थ में भी भेद पाया जाता है। गिरा वाचक है और अर्थ वाच्य। किसी भी वस्तुविशेष का वाचक मुख में अँटता है किन्तु सभी वाचकों का वाच्य मुख में नहीं अँट सकता। जैसे सूर्य या अग्नि आदि शब्द मुख से निकलता है किन्तु न तो मुख में प्रकाश ही होता है और न मुख जलता ही है। वक्ताओं के मन में प्रथम अर्थ और पीछे शब्द उपस्थित होता है किन्तु श्रोताओं के मन में प्रथम शब्द और पीछे अर्थ उपस्थित होता है। यही सब भिन्नतायें हैं।

प्रथम सीता और राम शब्द में गिरा और अर्थ के ऐसा कुछ भिन्नता दिखलाकर दूसरा जलवीचि का उदाहरण देकर भिन्नता को दूर किया गया है। इस उदाहरण में प्रथम जल पुल्लिंग शब्द द्वारा पुल्लिंग उपमेय राम को कहा गया है और वीचि स्त्रीलिंग शब्द द्वारा सीता को। याने जल और वीचि जैसे अभिन्न हैं इसी प्रकार सीता और राम भी अभिन्न हैं। जैसे '**यथा सर्वगतष्णिुस्तथैवेयं द्विजोत्तमः।** वि. पु.1।8।17।' अर्थात् ये दोनों तत्व एक होकर सर्वत्र व्याप्त रहते हैं। श्री राम जी कहे हैं "**अनन्याश्चमपि सीता भास्करेण प्रभा यथा।** बा. रा. युद्ध 118।19।" और सीता जी भी इसी प्रकार कहती हैं "**अनन्याराघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा।** बा. रा.सुन्दर 21।16।" मानसकार भी इसी प्रकार कहते हैं "**प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई। कहँ चन्द्रिका चन्द्र तजि जाई।** मानस अयो 96।3।" "**तुलसी सीता जो कहै राम न छोड़े पास**" भाव यह है कि उपासकों के लिये दोनों समान उपास्य एवं पूज्य हैं। क्योंकि भगवान्जैसे अपना वैकुण्ठ शेष अनन्तादिकों को छोड़कर चेतनों के कल्याणार्थ वराहादि रूपों में अवतीर्ण होते हैं उसी प्रकार लक्ष्मी भी स्ववासस्थान भगवान् के चरण तथा हृदय एवं कमल को छोड़ कठोर भूमि फोड़कर अवतीर्ण होती हैं। इन दोनों का अवतार चेतनों के कल्याणार्थ होता है, यही अभेद नित्य योग का सूचक है। सीता के आधार राम और राम के आधार सीता हैं। क्योंकि भगवान् श्रीनिवास हैं - '**श्रियाः निवासः श्रीनिवासः।**' भगवान् के विग्रह में मीनरेखा सीता जी हैं। और '**श्रियां निवासो यस्य सः श्रीनिवासः।**' भगवान्और सीता परस्पर अन्योन्याश्रयभाव से रहते हैं।

"**रामसुग्रीवयोरैक्यं** ।बा. रा. सु 35।53।" हनुमान कहे हैं कि राम और सुग्रीव एक हैं। भाव यह है कि जैसे राम और सुग्रीव का हृदय तथा मन एक हैं - इसी तरह राम और सीता का भी अन्तस्करण चेतनों के कल्याण करने में एक (अभिन्न) हैं। दोनों अयोनिज हैं एवं अप्राकृत विग्रह वाले हैं - "**जन्म कर्म च मे दिव्यम्।** गी.4।9।" दोनों का जन्म और कर्म दिव्य होने से अभिन्नता है।

अनन्याकिञ्चनता

रावण की देवगण रक्षा नहीं कर सके। दशरथ जी पुत्र की रक्षा नहीं किये। जयन्त को माता पिता भी नहीं बचा सके। विभीषण की भाई पुत्रादि रक्षा नहीं कर सके। इससे केवल एक भगवान ही रक्षक हैं यह सिद्ध होता है। "**एकैकमक्षरं पुसां महापातक नाशनम्**।रामरक्षा स्तोत्र।"रामायण का एक एक अक्षर भी महान् पातकों का नाश करता है। इसके गान तथा स्मरण से सबों का कल्याण होता है। "**श्रृण्वन् रामकथानादं को न याति परां गतिम्**।।" यह रामायण वेद का उपवृहंण (व्याख्या) है। "**वेद वेद्ये परे पुंसी जाते दशरथात्मजे। वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षात्रामायणात्मना**।अगस्त्य संहिता।" परमात्मा की शरणागति के समय पुरुषकार की परमावश्यकता होती है। इसके बिना कल्याण नहीं होता है। जैसे किसी पुरुषाकार के बिना शूर्पनखा भगवान् में प्रेम की तो नाक कान हीन हुई और पुरुषकारपूर्वक जयन्त ऐसे अपराधी को भी कल्याण हुआ है। "**दीने दयापरे पारतंत्र्यानन्यार्हते सति**।।" पुरुषकारी में तीन गुण रहना आवश्यक होता है - **1**।दया। **2**।पारतंत्र्य। **3**।अनन्यार्हता। ये तीनों गुण लक्ष्मी में पाया जाता है, यह रामायण द्वारा झलकता है।

"**पंचवट्यां महालक्ष्म्या आद्यविश्लेष ईरितः।ततोऽसुरपुरीं गत्वा स्वकृपा प्रकटी कृता**।।" लक्ष्मी ने पंचवटी से लंका जाकर दयागुण का प्रकाश किया है। त्रिजटा के स्वप्न सुन डरी हुई राक्षसियों को सीता जी कहती हैं - "**भवेयं शरणं हि वः**।वा. रा. सु. **58**।**92**।" "**कार्यं करुणमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति**।वा. रा.युद्ध **113**।**45**।"

गर्भावस्था में सीता जी को राम जी पूछते हैं "**किमिच्छिसि सकामत्वं ब्रूहि सर्व वरानने**।वा. रा. उ. **42**।**32**।" हे सीते ! तुम इस अवस्था में क्या चाहती हो ? तब सीता ने कहा "**तपोवनानि पुण्यानि द्रष्टुमिच्छसि राघव। गंगातीरनिविष्टानि ऋषीणां पुण्यकर्म णाम्**।**42**।**33**। **फलमूलाशिनां वीर पादमूलेषु वर्तितुम्। एष मे परमः कामो यन्मूलफलभोजिषु**।**42**।**34**। **अप्येकरात्रकाकुत्स्थ वसेयं पुण्यकीर्तिषु**।वा. रा. उ. **42**।**35**।" स्वामिन्! तपस्वियों की तपोभूमि को मैं देखना चाहती हूँ।याने वन के फल मूल खाकर एवं वृक्ष के नीचे गंगा किनारे जिस पवित्र भूमि में ऋषि लोग रहते हैं वहीं इस अवस्था में वास करना चाहती हूँ। यदि अधिक नहीं तो एक रात्रि भी वहाँ रह जाऊँ। इससे परतन्त्रता गुण विकसित होता है। यह दूसरा विश्लेष है। "**नैमिषारण्यमध्ये तु योऽपरो विश्लेष उच्यते। सोऽनन्यार्हत्वरूपस्य स्वगुणस्य प्रकाशकः**।।यह तीसरा विश्लेष है जो नैमिषारण्य के प्रकरण से जाना जाता है। "**यथाहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये।तथापि मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति**।14। **भूतलादुत्थितं दिव्यं सिंहासनमनुत्तमम्**।17।**तस्मिंस्तु धरणीदेवी बाहुभ्यां गृह्य मैथिलीम्। स्वागते नाभिनन्द्यैनामासने चोपवेशयत्**।19।वा. रा. उ. **97**।**14** से **19**।" सीता जी संकोच में आकर कहीं कि - यदि मैं श्रीराम जी के सिवा अन्य किसी को कभी मन से भी चिन्तन नहीं किया हूँ तो हे माधवी, पृथ्वी देवी ! तुम मुझे स्थान दो। यह सुनकर पृथ्वी देवी दिव्य सिंहासन पर बैठकर आयीं और श्री सीता जी को स्वागतपूर्वक उसी पर बैठाकर ले गयीं। इससे अनन्यार्हता सिद्ध होता है। "**देव्याः संश्लेष विश्लेष कालयोरुभयोरपि। पुरुषकारता शुद्धा भाषते कार्यकारिणी**।।" श्री लक्ष्मी संश्लेष और विश्लेष दोनों अवस्थाओं में पुरुषकार ही किया करती हैं एवं सतत जीवों के कल्याणार्थ ही चिन्तित रहती हैं यह मातृगुण है और इसी गुण का प्रतिपादन श्रीरामायण करता है।

"**इतिहासप्रधानेन श्रीमद्रामायणेन च। कारागृह निवासिन्या सीतायाः वैभवः स्मृतः**।।" इतिहास में प्रधान श्रीरामायण द्वारा श्री रामचरित्र के साथ विशेष रूप से सीता का ही चरित्र कहा गया है। इशीलिये '**सीतायाश्चरितं महत्**' लिखा गया है और इसी विषय को मानसकार भी "**सीतारामगुणग्राम पुण्यारण्यविहारिणौ**" में सीता पद को पहले रखा है क्योंकि प्रधान को पूर्व रखा जाता है और गौण को पीछे। श्री सीता में महत्व यही है कि जीवों के कल्याणार्थ सतत उत्सुक रहती हैं। भगवान् तो शरणार्थी आत्मा के सन्मुख होने पर कहते हैं कि '**न क्षम्यामि क्षिपामि**' किन्तु श्रीसीता जी का वचन है '**कृपया परिपालय**' '**कश्चिन्नापराध्यति**' अर्थात् जीवों को परमात्मा पूर्वकृत कर्मों का फल भोगवाना चाहते हैं तो लक्ष्मी कहती हैं कि कृपया इसकी रक्षा कीजिये, इसका कोई अपराध नहीं है। इसीलिये कहा गया है

चेतनों के उपाय एवं फलदशा में दोनों एक हैं। "जल हिम उपल विलग नहीं जैसे। मानस बाल 115।2।" वन्दन पद भगवान्‌की शरणागति को बताता है। "नमश्श्चक्रुजनार्दनम्" पद वन्दन का भाव यह है कि भगवान्‌का चरण चेतनों को कभी भी नहीं छोड़ता। इसी से'दृढ़चरणाः' कहा गया है। यहाँ भी पदवन्दन में सीता पद पूर्व रहकर पुरुषकार पूर्वक ही शरणागति श्रेयस्कर है यह सूचित करता है। इसमें ज्वलन्त उदाहरण जयन्त का है। अथवा पद और अन्तस्करण में एकता है क्योंकि पद के देवता विष्णु हैं और हृदयस्थ भी वही हैं। "ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। गी.18।61।" चरण पकड़ने से हृदय पकड़ा जाता है। कठोर से कठोर व्यक्तिका हृदय भी चरण पकड़ने से द्रवित हो जाता है तो कोमल हृदय वाले सीता रामका चरण पकड़ेंगे तो क्यों नहीं कृपा करेंगे अर्थात् अवश्य ही कृपा करेंगे। अज्ञानी दीन एवं निर्वल को कहते हैं - 'नायमात्मा बलहीने न लभ्यः' बल का अर्थ ज्ञान है याने ज्ञानहीन को परमात्मा नहीं मिलते। बल्कि - "मोरे प्रौढ़तनय सम ज्ञानी। बालक सुत सम दास अमानी। अर. 42।4।" ज्ञानी प्रौढ़ शिशु के समान है और अमानी नवजात के समान है। अतः ऐसे के ऊपर भगवान् का अधिक खयाल रहता है। "प्रौढ़ भये तेहि सुत पर माता। प्रीतिकरे नहीं पाछिल बाता। अर. 42।4।" यहाँ 'स्वगत शरणागति' वाला (शरणागति में स्वयं समर्थ)प्रौढ़ और 'परगत शरणागति' (परमात्मा की दया से शरणागत होने वाला) करने वाला नवजात शिशु है, इसीसे यह परमप्रिय है। "जेहि दीन पियारे वेद पुकारे। बाल185। छंद 4।" "यह दरवार दीन के" "आदर रीति सदा चलि आई" अथवा अपना साधनशक्ति से रहित अकिंचन को खिन्न कहते हैं। 'उपायशून्यत्वं अकिंचनत्वम्' अर्थात् भगवत् प्राप्ति में अपना उपाय न मानकर भगवान् को ही उपाय मानना। यथा - 'निर्भरत्वानुसन्धानम्' 'परम अकिंचन प्रिय हरि केरे। बा. 160।2।' भगवान् के यही प्रिय हैं। जिनहीं शब्द बहुवचन है - अतः इसका अभिप्राय है कि राम सीता दोनों की कृपा अकिंचन के ऊपर एक ही बार पड़ती है।

श्री यामुनाचार्य स्वामी कहते हैं "अकिञ्चनोऽनन्यगतिः शरण्य। स्तोत्र रत्न 22।" **किंचन उपायो नास्ति यस्य सः अकिंचनः।** जैसे नवजात शिशु को अपनी रक्षा में अपना सामर्थ्य नहीं रहता। इसी प्रकार भगवत्प्राप्ति में जिस भक्त को अपना कोई उपाय नहीं है वही अकिंचन है।

भगवान् सृष्टि कार्य करते हुए यह जानते रहते हैं कि कौन चेतन को किस प्रकार से कल्याण होगा। इसी प्रकार लक्ष्मी भी जानती हैं। दोनों परस्पर एक दूसरे के भाव को जानते हैं। भक्तों के कष्ट सहने में दोनों असमर्थ हैं - अतः पारस्परिक अभिन्नता सतत रहती है। 'परस्परस्य सदृशौ प्राणेंगितसुचेष्टितौ। तुल्यशीलवयोवृत्तं तुल्याभिजनलक्षणम्।' 'राघवोऽर्हति वैदेहीं तं चेयमसितेक्षणा' 'सदातवैवोचितया तवश्रिया' 'स्वैरनुरूपविभवैरनुरूपगुणैः' राम योग्य सीता और सीता के योग्य राम हैं। दोनों में सामुद्रिकयोग - रेखा, चिह्न, रोम, केशादि समान ही हैं। अतः सभी प्रकार से दोनों में समानता है किन्तु 'वाच्या सा सर्वशब्दानां शब्दश्च न पृथक ततः' 'अपृथक्त्वेऽपि सम्बन्धस्तयोः' जैसे वाच्य वाचक सम्बन्ध से शब्द तथा अर्थ दोनों एक साथ रहते हैं उसी प्रकार सीता राम जी को भी जानना चाहिये।

मानस प्रसंग 2। "ब्रह्मनिरूपण धर्मविधि वरणहि तत्त्वविभाग। कहहिं भक्ति भगवंत की संयुत ज्ञानविभाग। बा. 44।" यह दोहा मानस के प्रारम्भ में मकरमास के अवसर पर प्रयाग सन्तसमागम सत्संगप्रसंग में होने वाली भगवत्‌चर्चा विषयक है। ब्रह्मनिरूपण- ब्रह्म (ईश्वर) कौन है, या नहीं है, या है तो उसका क्या लक्षण है - इत्यादि विचार करना ही ब्रह्म निरूपण है। इस ब्रह्म विचार में शास्त्र में प्रायः मतभेद पाया जाता है। यथा - सांख्यशास्त्र प्रकृति को ही जगत्‌का कारण ब्रह्म मानता है। प्रकृष्टं (विस्तृतं) करोति इस व्युत्पत्ति से प्रकृति को ही कर्त्ता सिद्ध करता है। मीमांसाशास्त्र कर्म को ही कर्त्ता मानता है। याने कर्माधीन ही सबकुछ हुआ करता है। व्याकरण शास्त्र धात्वर्थ प्रतिपादक संज्ञाशब्द को ही ब्रह्म मानता है। 'शा सत्ता सा महानात्मा' 'अनादिनिधनं ब्रह्म शब्द तत्वं यदक्षरम्' **याने** आद्यन्तरहित नित्य शब्द ही ब्रह्म है। न्यायशास्त्र - 'अत्र चत्वारि भूतानि भूमिवाय्वानिलानि च। चतुर्भ्यः खलु भूतेभ्यश्चैतन्यमुपजायते।।' भूमि, वायु, अग्नि और जल इन चार वस्तुओं के मेल से चैतन्य जीवन बन जाता है। इसका नियामक

भक्त्या प्रयच्छति । गी. 9 । 26 । " ऐसी उपासना करने को कहे हैं। अर्थात् इन साधनों द्वारा अर्चा की सेवा में अत्यन्त सुलभता है। अर्चा में भी दो भेद हैं। एक स्वयंव्यक्त, जैसे- श्रीरंग, वेंकटेश्वर (श्रीनिवास भगवान्), बद्रीनारायण, जगन्नाथ, शालिग्राम आदि हैं। दूसरा जो मन्त्र द्वारा प्रतिष्ठापित अर्चामूर्ति है।

"**भक्ति भगवन्त की**" याने परमात्मा की ही भक्ति करनी चाहिए अन्यान्य देवों की नहीं क्योंकि अनन्य भक्ति ही श्रेयस्कर भक्ति होती है। ज्ञानी लोग ऐसी ही भक्ति परमात्मा से माँगते हैं। "**अविरल भक्ति मांगि वर गिद्ध गयो हरि धाम** । अर .32 । " यही भक्ति नव भागों में बँटी हुई है। यथा - "**श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यं आत्मनिवेदनम्** । भागवत 7 । 5 । 23 । "

1। श्रवण भक्ति- भगवच्चरित्र, नाम, गुण, वैभवादिक विषयों को सुनना एवं आर्त उत्पीड़ितों के पुकार को भी सुनना। **2। कीर्तन भक्ति-** सुने हुए भगवद् विषय को प्रचारार्थ कथन तथा तालस्वरयुक्त गान करने करते हुए इस तरह का कथन करना जिससे अज्ञानियों का अज्ञान दूर हो जावे और वे उन्नति कर सकें।

3। स्मरण भक्ति - भगवान्-भागवत, ज्ञानी मानियों के कथनों को स्मरण करते हुए अनाथ, विवश तथा उद्विग्नों को भी स्मरण कर सहायता पहुँचाना। **4। पादसेवनभक्ति-** भगवान् के चरणों की सेवा के साथ गुरुजनों एवं विश्वमात्र की सेवा का संकल्प लेना।

5। अर्चना भक्ति - भगवान् के षोडशोपचार अर्चन के साथ सर्वश्रेष्ठों का यथोचित सत्कार करना तथा शरणार्थियों को शरण, भूखे प्यासे तथा रोगियों को यथेष्ट वस्तुओं का प्रदान, निर्बोधों को बोध देना। **6। वन्दन भक्ति -** भगवान्के श्रीचरणों को बार बार नमस्कार प्रणाम करना। "**पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते** । गी. 11 । 39 । " तथा विश्वमात्र के सामने अपने को नमित रखना या विनम्रतायुक्त कार्य करना है। **7। दास्य भक्ति-** अपने को परमात्मा का दास समझते हुए देश सेवा तथा जनकल्याण में अपने को तथा अपने धन का उत्सर्ग करना। अंगद कहते हैं "**नीच टहल गृह के सब करिहौं** । मानस उ. 17 । 4 । " "**करोमि नारायण दासदास्यत** । "

8। सख्य भक्ति- परमात्मा से किसी प्रकार का सम्बन्ध मान लेना। यों तो - "**मोहि तोहि नाते अनेक प्रभु अब न तजे बनि आवै** । विनय प. 79 । 4 । " हे प्रभु ! हमारे आपके बीच अनेक सम्बन्ध हैं आप कैसे मुझे छोड़ेंगे, छोड़ते न बनेगा।

"**एकैक सम्बन्धबलेन सर्व बहन्ति भारं जनलोक मध्ये। त्वं मामकं चास्ति नव प्रकारं स्वामी विचार्य करुणाबलेन** ।। " हे नाथ ! सांसारिक पुरुष किसी सम्बन्धी के साथ एक नाता होने पर भी जीवनपर्यन्त उसके भार को ढ़ोता है तो आपके साथ तो मेरा नव प्रकार का नाता है, इसलिए आप विचारें कि कैसे अपने चरणों की सन्निधि से मुझे दूर कर सकेंगे।

9। आत्मनिवेदन- अपनी आत्मा को परमात्मा के प्रति निवेदन कर देना। जैसे - गो कन्या या अन्य किसी वस्तु को जिसके लिए दान करके देते हैं तो लेने वाले पर ही दिये हुए वस्तु का भरण पोषण का भार चला जाता है और वह लेना व्यक्ति उस भार को ढ़ोता है। उसी प्रकार परमात्मा आत्मा के भार को ढ़ोते हैं और दान देने वाला व्यक्ति निश्चिन्त हो जाता है। "**कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति** । गी.9 । 31 । " क्योंकि "**तेषामहं समुद्धर्ता मृत्यु संसार सागरात्** । गी. 12 । 7 । " हे अर्जुन ! मेरे भक्त कभी भी नष्ट नहीं होते क्योंकि आत्मसमर्पण करने वाले को मैं संसार समुद्र से उद्धार करने वाला हूँ। षही शरणागति है।

"**आनुकूलस्य संकल्पः प्रातिकूलस्य वर्जनम्। रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा। आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षडिवधा शरणागतिः** । ळाक्ष्मीतन्त्रम्17 । 60-61 । " भगवत्प्राप्ति के अनुकूल का संकल्प, प्रतिकूल का त्याग, रक्षक भगवान्में पूर्ण विश्वास, रक्षार्थ उन्हीं की नियुक्ति, आत्मसमर्पण - ये छः शरणागति के अंग हैं। यही नवधा भक्ति के नाम से विख्यात है।

दोहा में आगे ज्ञान का विषय इसलिए रखा गया है '**ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः**' ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती है। "**ज्ञानीत्वात्मैव मे मतम्** । गी. 7 । 18 । " ज्ञानी भक्त तो हमारी आत्मा ही है। "**अभ्यसेन्मत्परं ज्ञानं ज्ञानान्मोक्षवाप्नुयात्। अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्वज्ञानार्थ दर्शनम्। एतज्ज्ञामिति प्रोक्तं अज्ञानं यदतोऽन्यथा** ।। " आत्मसम्बन्धि ज्ञान में सदा तत्पर रहना याने मैं अणु हूँ , स्वयं प्रकाशमान हूँ , भगवान्के अंश याने भोग्य हूँ। '**ज्ञायते अनेनेति ज्ञानम्**' अर्थात जिस तत्वज्ञान द्वारा परमात्वतत्व का ज्ञान हो जाता है वही ज्ञान है और अन्यान्य

ब्रह्म नहीं है - उसकी सत्ता नहीं तथा स्वर्ग परलोक मोक्षादि भी कुछ नहीं है। **चार्वाक सिद्धान्त** ने तो सबों के ऊपर हाथ फेर डाला है। और -

"**नस्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः। नैव वर्णाश्रमादीनां क्रियाश्च फलदायिकाः।।**

अग्निहोत्रं त्रयो वेदास्त्रिदण्डं भस्मगुण्ठनम्। बुद्धि पौरुषहीनानां जीविका धातृनिर्मिता।।"

स्वर्ग मोक्षादि की कोई सत्ता नहीं, क्रिया भी फलदायी नहीं। वेद या वैदिक क्रिया को विधाता मूर्ख तथा उद्योगहीनों की जीविकार्थ बनाया है। "**मातृणामपि जन्तुनां श्राद्धञ्चेत्तृप्तिकारणम्। गच्छतामिह जन्तूनां व्यर्थं पाथेयकल्पनम्।**" यदि श्राद्ध में मन्त्र द्वारा दी हुई वस्तु पितरों को मिलती है तो जीवितों को भी मार्ग में मन्त्र द्वारा कलेवा क्यों नहीं मिलता। भोजन बाँधकर चलने के श्रम से भी लोग बच जाते।

पंचदेवोपासक - ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गणेश और सूर्य को ब्रह्म मानते हैं। इसी प्रकार - '**नाम ब्रह्मेत्युपासते**' '**वाचं ब्रह्मेत्युपासते**' '**मनोलोकोमनो हि ब्रह्म मन उपासत्व**' '**संकल्पं ब्रह्मेत्युपासते**' '**ध्यानं ब्रह्मेत्युपासते**' '**विज्ञानं ब्रह्मेत्युपासते**' '**अनन्तं ब्रह्मेत्युपासते**' '**आकाशं ब्रह्मेत्युपासते**' '**स्मरं ब्रह्मेत्युपासते**' '**आशा ब्रह्मेत्युपासते**' '**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**' इत्यादि बहुत से भेद ब्रह्म विषय में शास्त्र बतलाते हैं। इन्हीं निःसार विचारभावों को दूर करने के लिये ब्रह्मनिरूपण पर विचार किया गया है।

"**यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यं प्रयान्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्मेति।**" ब्रह्म निरूपक यह प्रधान श्रुति है जिससे सभी प्राणियों की उत्पत्ति, पालन तथा संहार होता है उसे ब्रह्म समझो। अथवा "**यः सर्वज्ञ सर्ववित्तद्ब्रह्म**" जो सर्वज्ञ है तथा सर्वव्यापक है उसे ही ब्रह्म समझो। "**एकेन विज्ञानेन सर्वं विज्ञानं भवति तद्ब्रह्म।**" जिस एक के ज्ञान से सबों का ज्ञान हो जाता है उसको ब्रह्म समझो। "**ब्रह्मशब्दस्य मुख्यार्थो नृहरिः पुरुषोत्तमः। बृहत्वगुणयोगेन ब्रह्मशब्दः हरौ स्मरतः।।**" "**नारायण परब्रह्म तत्वं नारायणः परः।**" ब्रह्म के परिचय में उपरोक्त श्लोक हैं। अर्थात् नारायण ही परब्रह्म है क्योंकि श्रुतिप्रतिपादक सभी लक्षण उन्हीं में मिलते हैं। किन्तु "**वेद वेद्ये परे पुंसी जाते दशरथात्मजे। वेदः प्राचेतसादासीत साक्षात् रामायणात्मना।** अगस्त्य संहिता।" वही पुरुषोत्तम नारायण परब्रह्म जब राम रूप में अवतीर्ण हुए तो वेद भी रामायण रूप में महर्षि वाल्मीकि द्वारा परिणत हुआ। वेद जैसे नारायण का परिचायक है उसी तरह रामायण श्री रामजी का परिचायक है। श्री राम जी से ब्रह्मा कहते हैं "**भवान्नारायणः साक्षात्।** वा. रा. युद्ध 107।13।" "**ब्रह्मविदाप्नोति परमम्**" ब्रह्म को जानने वाले ब्रह्म को प्राप्त करते हैं। तत्व विभागों में ईश्वरतत्व श्री राम जी, माया तत्व श्री जानकी जी और जीव तत्व लक्ष्मण जी हैं।

'**तत्वविधि**'- ईश्वरतत्व में पाँच विभाग है- **1**। पर, **2**। व्यूह, **3**। वैभव, **4**। अन्तर्यामी और **5**। अर्चा। मायातत्व में दो विभाग है - **1**। जड़ और **2**। अजड़ है। **जीवतत्व** में पाँच विभाग हैं **1**। नित्य, **2**। मुक्त, **3**। बद्ध, **4**। कैवल्य और **5**। मुमुक्षु।

'**धर्मविधान**' में भी अनेक मत हैं। यथा - "**यतोवाऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः**" जिससे इस लोक में सर्वोदय और परलोक में कल्याण हो उसे धर्म कहते हैं। "**चोदनालक्षणो धर्मः**" जो करने के लिए कहा गया है वही धर्म है। "**वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः। एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षमणम्।**" जो वेद स्मृति में लिखा हुआ है तथा जिसको सत्पुरुष व्यवहार में लाते हैं और जो अपनी आत्मा का संतोषकारक हो उसे धर्म कहते हैं। "**श्रुतिस्मृत्युदितोधर्मः**" श्रुति तथा स्मृति प्रतिपादित विधि को धर्म कहते हैं। "**रामो विग्रहवान्धर्मः** ।वा. रा. अर. 37।13।" "**ये च वेदविदो विप्राः ये च आत्मविदो जनाः। ते विदन्ति महात्मनः कृष्णं धर्म सनातनम्।** महा. वन पर्व 88।25।" वेद तथा आत्मा के जानने वाले ब्राह्मण लोग कृष्ण को सनातन धर्म कहते हैं। "**प्रत्याक्षावगमः धर्मः**" शास्त्र भगवदुपासना को ही धर्म बतलाया है।

"**श्रीरङ्गादिकरूपेण त्रैलोक्यं व्याप्य तिष्ठति। अर्चावतारं सर्वेषां वान्धवो भक्तवत्सलः।।**

तामर्चयेत्तां प्रणमेत्पूजयेत्च विचन्तयेत्। विशत्यपास्तदोषस्तु तामेव ब्रह्मनिरूपिणीम्।।

याने भगवदुपासकों के लिए अर्चावतार ही सुलभ बतलाया गया है। भगवान् स्वतः अपने मुख से कहते हैं "**पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे**

सब अज्ञान है।

भगवत्प्राप्ति चाहने वाले व्यक्ति को संसार से विराग होना आवश्यक है क्योंकि जबतक संसार में प्रेम रहता है तब तक संसार बन्धन में ही बँधा रहना पड़ता है जैसे राजा भरत को हुआ था। इसीलिए पूर्वाचार्यों का कहना है। **"न देहं न प्राणान्न च सुममशेषाभिलषितम्' 'तृणीकृतविरंच्यादि निरंकुशविभूतयः'**

"सालोक सार्ष्टि सामीप्य सारूप्यैकत्वमप्युत। दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः। भा. 3।29।13।"

'पत्युः प्रजानामैश्वैर्य पशूनां वा न कामये। विषयत्यागिनस्तेषां विज्ञेयं च तदन्तिकम्।।' याने देह प्राणादिक सम्पूर्ण सुखों को मैं नहीं चाहता हूँ। ब्रह्मलोक के सुख को तृण के समान समझता हूँ। उत्तम कोटि के भगवद् भक्त भगवत्सेवा छोड़ मोक्ष भी नहीं चाहते तो अन्यान्य सुख तो तुच्छातितुच्छ है ही। **'विषयासक्तचेतसां'** से भगवान्बहुत दूर रहते हैं।

"जहाँ काम तहँ राम नहीं जहाँ राम नहीं काम। तुलसी दोउ न होत है रवि रजनी इक ठाम। तुलसी सतसई।1।44।"

" यह जग से छत्तीस '36' हो रामचरण छवतीन '63'। तुलसी सोई चतुरता सोई परम प्रबीन। तुलसी सतसई। 3।7।"

संसार को छत्तीस की तरह पीठ देकर रहो और रामचरण की ओर **63** अंक की तरह सन्मुख रहो। जब संसार विराग उत्पन्न होगा तभी परमात्मा में मन लगेगा। जैसे - सनकादिक - नवयोगेश्वर -नारद -भरत -शुकदेव -वामदेवादिक। ऐसे ही विरागियों को भगवान्में मन लगा है, इसीलिए कहा है 'संयुतज्ञानविराग।' 'भगवत्तत्वविज्ञानं मुक्तसंगस्य जायते' संसार से विरक्त हो जाने पर - **"न पारमेष्ठयं न महेन्द्रधिष्णयं न सार्वभौमम्न रसाधिपत्यम्। न योगसिद्धिरपुनर्भवं वा मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत्। भा. 11।14।14।"** मुझमें आत्मसमर्पण करने वाले भक्तजन ब्रह्मलोक इन्द्रलोक नागलोक भूलोक योगसिद्धि तथा मोक्ष तक भी नहीं चाहते हैं। वही भक्ति का स्वरूप दिखाया गया है तथा उक्त दोहा में पूर्वोक्त ब्रह्मनिरूपण, धर्म की विधि, तत्वों का विभाग, भगवान् के प्रति भक्ति और ज्ञानयुत विराग की चर्चा और सत्संग प्रयाग में समुपस्थित ज्ञानियों द्वारा हुआ करता था जिसमें सर्वसाधारण जनों का कल्याण निहित रहता था। इसी उद्देश्य से सभी पुण्यक्षेत्रों में समय समय पर जनसमूहों का समागम हुआ करता था और आज रूपान्तर में परिणत हो सकल अनर्थ का कारण बन गया है।

मानस प्रसंग 3 । पुलक बाटकि बाग वन सुख सुविहंग विहारु। माली सुमन सनेह जल सींचत लोचन चारु। बा. 37।"

भगवच्चरित्र के अनुसन्धान मात्र से रोमाञ्च हो जाने के प्रसंग को एक रूपक में बाँधकर मानसकार यह दोहा मानस माहात्म्य में दिखाया है। **"सा जिह्वा हरिं स्तौति तन्मनस्तत्पदानुगम्। तानि लोमानि चोच्यन्ते यानि तन्नाम्नि चोत्थितम्।।"** भगवद्भक्त भगवान्के चरित्र को अनुक्षण स्मरण करते और अन्यों को स्मरण कराते आनन्दातिशय से पुलकांगित होते रहते हैं। **"स्मरन्तः स्मारयन्तश्च मिथोऽघौघहरं हरिम्। भक्त्या संजातया भक्त्या बिभ्रत्युत्पुलकां तनुम्। भा. 11।3।31।"** आत्मा तो परमात्मा का है ही शरीर का रोम रोम उनकी सेवा में लग जानी चाहिए। **"श्रृण्वन्जनार्दनकथा गुणकीर्तिनानि देहेन यस्य पुलकोद्गमरोमराजी। नोत्पद्यते नयनोर्विमलाम्बुमाला धिक्तस्य जीवनमहो पुरुषाधमस्य।।"** भगवान्के पवित्र चरित्र कीर्तनादि सुनकर जिसके नेत्र में जल तथा रोमाञ्च नहीं हुआ उसके जीवन को धिक्कार है।

"मम गुण गावत पुलक शरीरा। गदगद गिरा नयन बह नीरा। अर. 15।6।"

"अस सज्जन मम उरबस कैसे। लोभी हृदय बसत धन जैसे। सु.47।4।" भगवान्श्री राम जी कहते हैं कि मेरा चरित्र सुनकर जिनका शरीर पुलकित होता है, नेत्रों से जल बहता और बोली गदगद हो जाती है - वे सज्जन हमारे हृदय में लोभी हृदय वालों के धन के समान बसते हैं याने जैसे लोभी को धन प्यारा होता है वैसे ही वे सब हमारे प्यारे होते हैं। किन्तु वैसा हृदय केवल भगवान् की कृपा से ही होता है अन्य कोई साधन से नहीं।

"यह गुण साधन ते नहीं होई। तुम्हरे कृपा पाव कोई कोई। कि.20।3।"

यही प्रसंग 'पुलक बाटिका....' इस दोहे में दिखाया गया है कि भगवान्‌के रूप गुण तथा चरित्र को देख सुनकर जिस भक्त के शरीर में रोमाञ्च हो जाता है वही बाटिका और लोम समूह ही बाग तथा वन है। भगवच्चरित्र कहने सुनने से जो सुख होता है वही पक्षी और पवित्र मन ही उस वाटिका का माली (पोषक या रक्षक) है। यह वाटिका कोमल प्रकृति की तथा कथा भेदरूप माधुर्यरस युक्त थोड़ी दूर में है। अतः रक्षार्थ माली अपने स्नेह जल से इसे बार बार सींचता रहता है और अनेक कोमल भावनारूप पुष्पादि लगाया करता है। यही माधुर्य तथा करुण रस प्रधान प्रेमा भक्ति है जो अल्पमात्रा में हुआ करती है।

वाटिका स्थानीय प्रेमाभक्तमान् सुतीक्ष्णादि को जानना चाहिए क्योंकि ऐसे भक्तों में भगवत्‌मिलन की आतुरता रहती है। "पुलक शरीर पनस फल जैसा। अर. 9।8।" यदि इष्ट की प्राप्ति में कुछ विलम्ब हुआ कि वाटिका के कोमल पुष्पों की भाँति ऐसे भक्त मुरझाने लगते हैं। इस वाटिका के चतुर्दिक कुछ विस्तृत रूप में सुन्दर एवं सुदृढ़ वृक्ष लगे हुए हैं, यही बाग है। एतत्स्थानीय वाल्मीकि आदि को जानना चाहिए क्योंकि सुतीक्ष्णादि की अपेक्षा इनमें कुछ दृढ़ता है, ज्ञान का पुट है। ऐसी भक्ति को परमा भक्ति कहते हैं।

वाटिका तथा बाग के चारो तरफ अतिविस्तृत क्षेत्र में बाग के वृक्षों की अपेक्षा अत्यन्त दृढ़ वन है जिसमें सुरक्षक माली की आवश्यकता नहीं है। एतत्स्थानीय ब्रह्मा रुद्रादिकों को जानना चाहिए। भाव यह है कि जिस रोमाञ्च में नेत्र से जल नहीं आया वही रोमाञ्च वनस्थानीय है। इस प्रकार पुलकावली तीन भागों में विभक्त है। इस मानसरोवर के चारों तरफ समीपवर्ती वाटिका है, इसके पश्चात् बाग है और इसके बाद वन है। अतः बाग दोनों के बीच में पड़ता है। वाटिका स्वरूप जो रोमावली है इसमें नेत्र में जल आता है। वनस्थानीय पुलकावली में जल नहीं आता और बागस्थानीय पुलकावली मध्यम अवस्था रहती है। यह माधुर्य और ऐश्वर्य उभय प्रधान होता है क्योंकि दोनों के बीच में है। वाटिका में माधुर्य की प्रधानता है और वन में ऐश्वर्य की प्रधानता रहती है। इन दोनों के मध्य में बाग को रहने के कारण इसकी साम्य अवस्था रहती है याने बागस्थानीय भक्तों की पुलकावली सजल और निर्जल दोनों प्रकार की होती है। अवस्थाप्रकार भेद से तीनों प्रकार की रोमावलियाँ एक व्यक्ति में भी हो सकती है। उक्त तीनों प्रकार की रोमावलीयुक्त भक्तों का उदाहरण नीचे दिया जाता है।

सजल रोमावली वाले वाटिकास्थानीय भक्त **भरत** -"सुनि तन पुलक नयन भरि बारि। बोले भरत धीर धरि भारी। अयो. 292।1।" (अहिल्या) "अति प्रेम अधीरा पुलक शरीरा युगल नयन जल धार बही। बा. 210।छं 1।" सीता के **सखियों** की "तासु दशा देखि सखिन पुलकगात जल नैन। बा.228।" **राजा दशरथ की** "वारि विलोचन बाँचत पाती। पुलकगात आई भरी छाती। बा. 289।2।" **महादेव जी की** "पुलकगात लोचन सजल उमा सहित त्रिपुरारि। बा. 315। **कौशल्या** की "बार बार मुख चूमति माता। नयन नेह जल पुलकित गाता। अयो. 51।2।" लखन लाल की "कम्प पुलकतनु नयन सनीरा। गहे चरण अति प्रेम अधीरा। अयो. 69।1।" एक **तपस्वी** की "सजल नयन तन पुलकि निज इष्टदेव पहिचानी। अयो. 110।"

भरत की "तन पुलके अति हर्ष हिये वेनि वचन अनुकूल। अयो. 205।" "पुलक गात हिय राम सिय सजल सरोरुह नयन। अयो. 210।" "पुलक शरीर सभा भय ठाड़े। नीरज नयन नेह जल बाढ़े। अयो. 259।2।" "अस कहि प्रेमविवस भये भारी। पुलक शरीर विलोचन वारी। अयो. 300।3।

जंगलवासियों की "सुनत सुमंगल बैन मन प्रमोद तन पुलक भर। सरद सरोरुह नयन तुलसी भरे सनेह जल। अयो. 226।" "एहि विधि पूछहि प्रेमवश पुलकगात जलनैन। अयो. 112।

भरत को "पुलक गात हिय सिय रघुवीरा। जीह नाम जप लोचन नीरा। अयो. 325।1।" **विभीषण** की "नयननीर पुलकित अतिगाता। मन धरि धीर कहि मृदु बाता। सु.44।3।" **हनुमान** को "देखत हनुमान अति हरषे। पुलकगात लोचन जल बरषे। उ. 1।1।" **भरत हनुमान** "मिलत प्रेम नहीं हृदय समाता। नयन स्रवत जल पुलकित गाता। उ. 1। 5।"

अवधवासियों की "**सबके उर निर्भर हरष पूरित पुलक शरीर। बा. 300।**"
गरुड़ की "**पुलकगात लोचन सजल मन हरषे अति काग। उ. 69।**" **सनकादिकों** की "**तिनकर दसा देखि रघुबीरा। स्रवत नयन जल पुलक शरीरा। उ. 32। 3।**" **जनक** की "**मूँदे नयन सजल पुलके तन। सुयश सराहन लगे मुदित मन। अयो. 287। 1।**" **वनवासियों** की "**चित्रलिखे जनु जहँ तहँ ठाढ़े। पुलक शरीर नयन जल बाढ़े। अयो. 134। 3।**"

इस प्रकार शरीर में और नेत्रों में जल दोनों एक साथ होते हैं इसी नेत्रजल में पुलकवाटिका का सिंचन होता है। विना नेत्रजल के केवल रोमाञ्च होना बाग तथा वन के समान है। जैसे **अवधवासियों** की - "**पुलक शरीर (सप्रेम)परस्पर कहहीं। भरत आगमन सूचत अहहिं। अयो. 6। 3।**" **दशरथ** की "**तनु पुलक पुनि देखि अपने सुकृत सुरतरु फल नये। बा. 324 छंद 1।**" **जनकपुर वासियों** की "**प्रेमपुलकित हृदय उछाहू। चले विलोकन राम विवाहू। बा. 313। 2।**" श्री **राम जी** की "**राम सप्रेम पुलक उर लावा। परमरंक जनु पारस पावा। अयो. 110। 1।**" श्री **राम जी** कौशल्या की "**तनु पुलकित मुख बचन न आवा। नयन मूँदि चरणन शिरनावा। बा. 201। 3।**" भरत दोनों भाई "**सुनि पाँति पुलकेउ दोउ भ्राता। अधिक समेत समात न गाता। बा. 290। 1।**" **सभी रानियों** की "**पेमपुलकि तन राजहिं रानी। मनहुँ शिखिन सुनि बारिद बानी। बा. 294। 2।**"
केवट - "**प्रेमपुलकि केवट कह नामू। कीन्ह दूरि ते दण्ड प्रणामू। अयो. 242। 3।**"
वशिष्ठ - "**मुनि पुलके लखि शील सुभाऊ। अयो. 289। 4।**"
हनुमान -"**सुनि भरत बचन बिनीत अति पुलकि तनु चरणन परयो। उ. 1। छंद।**"

इन प्रसंगों में नेत्र जल बिना ही शरीर को पुलकित होना देखा गया है। ऐसा पुलक वनस्थानीय है। भगवान् की कथा कहने सुनने अथवा स्वयं अनुसन्धान से जो रोमहर्ष होता है वह वन के सदृश सिंचन क्रिया बिना ही अपनी दृढ़ता को सम्हाले हुए है। महादेव व्यासादि में ऐसी दृढ़ता रही है।
शिव - "**चले जात शिव सती समेता। पुनि पुनि पुलकत कृपानिकेता। बा. 49। 2।**"
व्यास - "गद्गदस्वरसंयुक्ता रोमहर्षाङ्कितां गताः।।" **मैत्रेय** - "**प्रहृष्टरोमा भगवत्कथायाम्। भा. 3। 13। 5।**"
गोपियों की - "**या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप प्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ। गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठयो धन्याव्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः। भा. 10। 44। 15।**" गौओं को दूहते हुए, अन्न कूटते, दही मथते, गृह लीपते, बच्चों को झूला झूलाते, रोते हुए बच्चों को पुचकारते तथा झाड़ू लगाते समय भी गद्गद् कण्ठ से श्रीकृष्ण के गुणगान करती हुई गोपियाँ धन्य हैं। भक्तों के हृदय में भगवान् के स्वतः अनुसन्धान से जो रोमाञ्च होता है वह वन के तुल्य इसलिए है कि स्वतः अनुसन्धान द्वारा रोमाञ्च की तरह वन भी स्वयं उग आते हैं और जो किसी दूसरे के उपदेश द्वारा भगवत्स्मरण से रोमाञ्च हुआ वह बाग और वाटिका तुल्य हैं क्योंकि बाग और वाटिका लगाने पर ही लगता है अन्यथा नहीं। "**कथं विना रोमहर्ष द्रवता चेतसा विना। विनाऽऽनन्दाश्रुकलया शुद्ध्येद् भक्त्या विनाशयः।।**" भगवदनुसन्धान से होने वाले रोमाञ्च अश्रुपात द्वारा अन्तःकरण की शुद्धि होती है।

'**सुखसुविहंगविहार**' **विहायसागच्छतीति विहंगः** - विहायस्उपपद-गम्-धातु से विहंग शव्द की रचना होती है और इसके पूर्व सु उपसर्ग लगा देने से सुविहंग याने आकाशगामी सुन्दर पक्षी। इससे हंसादि उत्तम पक्षियों को समझना चाहिए न कि काक इत्यादि नीच पक्षियों को। क्योंकि इस रूपक में अत्युत्तम वस्तु भगवदनुभवजन्य सुख है - इसलिए इसका समकक्ष सारग्राहक हंस ही हो सकता है। भूमि छोड़ आकाशगामी होने से विहंग संज्ञा हुई। इसी प्रकार सांसारिक नश्वर सुखों को त्यागने से ही उत्तम वास्तविक सुख की प्राप्ति हो सकती है। भगवान् के रूप गुण वैभव सौन्दर्य माधुर्यादि को क्रमशः अनुभव कर सुखी होना ही विहंग का विहारस्थान है। याने सुखरूपी सुविहंग क्षण क्षण में भिन्न भिन्न प्रकार के सुखों के अनुभव द्वारा प्रसन्न होते रहना है। भगवद्भक्तों के भिन्न भिन्न भक्ति भावना उत्पन्न सुख भिन्न प्रकार की पक्षियाँ हैं। जिनमें रायमुनी पक्षी सदृश सुख वाटिका में,

कोकिल सदृश सुख बाग में और हंस सदृश सुख वन में होता है। याने रायमुनि पक्षी वाटिका में, कोकिल बाग में और हंस मोर वन में सुखी रहते हैं।

अथवा विहंगशब्द से ज्ञानी संन्यासी को समझना चाहिए - "बहवः विहंगाः भिक्षुचर्या चरन्ति" बहुत संन्यासी और हंस भोजनार्थ भिक्षुचर्या किया करते हैं। अर्थात् भगवद्भक्ति से उत्पन्न सुखरूप वाटिका, बाग एवं वन में हंस पक्षी रूप ज्ञानी विहार किया करते हैं।

अथवा सुविहंग शब्द से आत्मा को समझना चाहिए। "द्वासुपर्णासयुजा सखाया।श्वे उ 4।6।" आत्मा को भगवान् के चरित्र गुणादि अनुसन्धान द्वारा होने वाले सुख को विहारस्थान पर जानना चाहिए। इस रूपक में सुख ही को विहंग और विहंग का विहारस्थान भी दर्शाया गया है।

मानस प्रसंग 4।"जेहि अघ बधेउ व्याध जिमि वाली। सोइ सुकंठ पुनि कीन्ह कुचाली।।
सोई करतूति विभीषण केरी। सपनेहुँ सो न राम हियँ हेरी।बा. 28।3-4।" इण चौपाइयों के अर्थ में रामायणियों का कहना है कि जिस पाप के कारण भगवान् ने वाली को मारा वही पाप करने वाले सुग्रीव के ऊपर भगवान्ने स्वप्न में भी ध्यान नहीं दिया। याने प्रजा का किया पाप राजा को भी लगता है, अतः वाली के पाप से भरत जी को बचाने के लिए भगवान् जब उसको मारे तो वाली सदृश सुग्रीव को भी मारना चाहिए था किन्तु ऐसा क्यों नहीं किया ? वाली का पाप यह था कि दुंदुभि राक्षस को मारने के लिए एक गुफा में प्रवेश करते समय वाली ने सुग्रीव को यह कहा था - "परखेहू मोहि एक पखवारा। नहीं आयऊँ तो जानेहूं मारा।कि.5।3।"

"मास दिवस तहँ रहेउ खरारी।निसरा रूधिर धार तहँ भारी।कि. 5।4।" तुम यहाँ एक पखवारा अर्थात् पन्द्रह दिन तक मेरी प्रतीक्षा करना। यदि इस अवधि तक मैं नहीं लौटा तो जानना कि मैं मारा गया। किन्तु सुग्रीव वहाँ मास दिवस याने (मास बारह होते हैं और दिवस का अर्थ दिन होता है, तो मास दिवस का अर्थ बारह दिन हुआ क्योंकि ज्योतिष आदि ग्रन्थों में मास बारह का ही बोध होता है) पन्द्रह दिनों के स्थान में बारह ही दिन रहे। उसी समय उस गुफा से रक्त की महाधार बहते देख कर सुग्रीव ने यह सोचा कि बाली मारा गया। अब राक्षस गुफा से बाहर आकर मुझे भी मार डालेगा। अतः "शिला द्वार दे चला पराई" एक चट्टान से उस द्वार को बन्द कर भाग आया। जब वाली द्वार बन्द देखा और बाहर सुग्रीव को भी नहीं देखा तो अत्यन्त क्रोधित हो उसकी स्त्री को ले लिया और उसको भी मारना चाहा।

सुग्रीव पन्द्रह दिन न रहकर बारह ही दिन वहाँ रहे यही इनका अपराध हुआ। किन्तु वाली इनकी स्त्री रुमा को अपहरण किया है यह महान अपराध है क्योंकि - "**अनुजबधू भगिनी सुतनारी।सुनु सठ ये कन्या सम चारी।।इन्हहिं कुदृष्टि बिलोकइ जोई । ताहि बधे कछु पाप न होइ।** कि. 8।4।" छोटे भाई की स्त्री, बहन, पतोहू और कन्या ये सभी समान हैं। इनको यदि कोई कुदृष्टि से देखता है, उसको बध कर देना ही उचित है।

"**औरसीं भगिनीं वापि भार्या वाप्यनुजस्य यः। प्रचरेत नरः कामात्तस्य दण्डो वधस्मृतः**।वा. रा. कि. 18।22।" अतः ऐसे अपराधी को मारकर भगवान् ने प्रायश्चित्त किया है। इसी से वाली भी नरक से बचा और भरत को पापभागी नहीं बनना पड़ा। यह प्रसंग वाल्मीकि रामायण में विस्तृत रूप से है। किन्तु सुग्रीव को वाली सदृश अपराधी बनाने वाले यह कहते हैं कि सुग्रीव गुफाद्वार पर पन्द्रह दिन के बदले 'मास दिवस' याने तीस दिन तक सुग्रीव वहाँ ठहरे। अतः निर्दोष सुग्रीव के साथ वाली का अत्याचार हुआ था। किन्तु 'मास दिवस' का यह अर्थ नियमों के प्रतिकूल है।तथा यह भी कहते हैं कि वाली मारा गया तो सुग्रीव ने उसकी स्त्री तारा को अपना स्त्री बना लिया, अतः वाली के तुल्य यह भी अपराधी हुआ। किन्तु ऐसी बात नहीं है, भगवान् उपदेश द्वारा तारा

को ज्ञानी बना दिये हैं, वह व्यभिचारिणी नहीं थी। "**तारा विकल देखि रघुराया।दीन्ह ज्ञान हरि लीन्हि माया।। उपजाज्ञान चरण तब लागी।लीन्हेसि परम भक्ति वर माँगी।।**कि. 10।2 एवं 3।" अब तो भगवान् के उपदेश द्वारा वह लौकिक माया वासना रहित हो गयी थी न कि व्यभिचारिणी। हाँ, रावण अंगद को गाली दिया है। "**तारा तासु भई पटरानी।।**" याने तारा सुग्रीव की बड़ी महिषी बन गयी है। किन्तु इसका प्रमाण और कहीं भी नहीं मिलता और सुग्रीव यदि ऐसा करता तो अंगद से कभी भी सहन नहीं होता। वह सुग्रीव को अवश्य मार देता। यदि 'तुष्यतु दुर्जनः' न्याय से इस कथन को कुछ क्षणों के लिए सत्य भी माना जाय तो भी वाली सदृश सुग्रीव अपराधी नहीं हो सकता। क्योंकि शास्त्र यह बतलाता है कि - "**अश्वालम्भं गवालम्भं संन्यासं पलपैतृकम्। देवरेण सुतोत्पत्तिः कलौ पंच विवर्जयेत।।**" अश्वमेध, गोमेध, संन्यास, पितृकार्य में मांस और देवर द्वारा सन्तानोत्पादन ये पाँच कार्य कलियुग में वर्जित हैं न कि अन्य युगों में। सुग्रीव तो त्रेता में थे। उस समय '**देवरं कुरुते पति**' स्त्रियाँ देवर को पति बनाया करती थी। अतः यदि सुग्रीव तारा को अपनी स्त्री बनाया भी तो धर्मशास्त्र के अनुसार दोषी नहीं हुआ। तारा छोटे भाई की स्त्री तो नहीं थी कि यह भी वाली सदृश ही पापी हुआ। अतः स्त्री अपहरण लेकर दोनों समान अपराधी नहीं हैं। इन दोनों को इस विषय को लेकर समान अपराधी कहना भूल है। शूद्रों में प्रायः ऐसा विवाह होता है तो वानर पशुओं की तो बात ही क्या। अब रह जाता है चौपाई के अर्थ समन्वय की बात।

चौपाई में अघ शब्द से अभिमान अर्थ लिया गया है। वाली अत्यन्त अभिमानी था। "**अस कहि चला महा अभिमानी।तृण समान सुग्रीवहि जानी।**कि. 7।1।" अभिमान पापों में प्रधान है - अभिमानी भगवान्को भी नहीं मानते। 'ईश्वरोऽहं अहं भोगी' अभिमानी अपने को ही ईश्वर मानकर मुझको अपमान करता है। यह दोष वाली में प्रधान था। भगवान् श्री राम के द्वारा सुग्रीव को सुरक्षित जानकर भी मारना चाहता है "**ममभुज बल आश्रित तेही जानी।मारा चहसि अधम अभिमानी।**कि. 8।5।" इसलिए यह महा अभिमानी सिद्ध होता है। "**मूढ़ तोहि अतिशय अभिमाना। नारी सिखावन करेसि न काना।**कि. 8।5। **अस कहि चला महा अभिमानी।**कि. 7।1।" वाली भी स्वयं अपने को अभिमानी स्वीकार किया है। "**मोहि जानी अति अभिमानबस प्रभु कहेउ राखु शरीरहीं।**कि. 9।छंद 1।" और यही अभिमान सुग्रीव में भी हुआ है। "**सुग्रीवहिं सुधि मोरि बिसारी।पावा राजकोष पुरनारी।**कि. 17।2।" श्री रामचन्द्र जी कहते हैं कि सुग्रीव राज्य प्राप्त कर मुझे भूल गया। क्योंकि "**श्रीमद्वक्र न कीन्ह के ही प्रभुता बधिर न काही।**उ. 70।" लक्ष्मण भी यही कहे हैं (वन में भरत की सेना देखकर)- "**विषयी जीव पाई प्रभुताई। मूढ़ मोहवश होही जनाई।**अयो. 227।1।" "**तेऊ आज राजपद पाई। चले धर्म मर्याद मिटाई।**अयो. 227।2।" राजमद से मत्त सुग्रीव के प्रति राम जी यों कहे हैं - "जेहि सायक मारा मैं वाली। तेहि शर हतौं मूढ़ कहँ **काली।**कि. 17।3।" सुग्रीव के अभिमान को देखकर ही भगवान्ने यहाँ तक कह डाला। यही अभिमान आ जाने के कारण वाली और सुग्रीव समान अपराधी हैं न कि परस्पर एक दूसरे की स्त्री-अपहरण दोष से।

तारा ने नारायण के परत्व को भी वाली को बताया है। "**सुनु पति जाही मिला सुग्रीवाँ।ते दोउ बन्धु तेज बल सीवाँ।**कि. 6।14।" तारा यह तेज बल शब्द से नारायण को बतलाती है। "**अप्रमेयो हि तत्तेजो यस्यैषाजनकात्मजा।**वा. रा. अर. 37।18।" "**यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्।**गी. 15।12।" "**सबकर परम प्रकाशक जोई। राम अनादि अवधपति सोई।**बा. 116।3।" किन्तु वाली अभिमानवश ध्यान नहीं दिया। वाली को तीन विषय का अभिमान था। एक इन्द्र के पुत्र का, दूसरा समर में शत्रु के आधा बल मिल जाने का, तीसरा स्वयं अधिक बलशाली होने का। और सुग्रीव में राज्यपद प्राप्त होने पर अभिमान हुआ यही दोनों में समानता है। इसी प्रकार विभीषण में भी कुछ दोष आ गया था।

"**अन्तर्भूमो गृहे बद्धं राक्षसं बहुश्रृंखलैः। अथाह राघवो विप्राः किमनेन कृतं त्विति।।**
तैरुक्तं ब्रह्महत्येति वृद्धब्राह्मण संज्ञितः। द्विजोऽति धार्मिकः कश्चित्एकान्ते प्रवयाकृशः।।
ध्यानायोपवने तस्थौ तत्र गत्वा विभीषणः।पादेनाधर्षयेद्विप्रं स विप्रोऽप्यतिचूर्णितः।।

अस्माभिस्ताड़ितो विप्रो न ममार वधैरपि। पदमेकतमो गन्तुं न शशाक विभीषणः। प. पु. पाता. **104।145-48।**"
पद्मपुराण (पाताल खंड **104।145-148**)की कथा है कि विभीषण अभिमान वश एक तपस्वी को लात से मार कर जान मार दिया था। अतः ऋषिलोग भी इनको जान से मारना चाहा किन्तु जब नहीं मारा तो उसको लोग बाँध रखे। श्री राम जी जब उसे अयोध्या में खोजे और नहीं मिला तो उसी ऋषि आश्रम पर जा विभीषण को बंधा पाकर ऋषियों से पूछा ऐसा क्यों ! तो उनलोगों ने कहा यह विभीषण ध्यानावस्थित एक ऋषि को लात से चूर्ण चूर्ण कर दिया है, अतः हमलोग भी इसे मार डालेंगे। यह सुनकर भगवान ने कहा कि 'वरं **ममैव मरणं मद्भक्ताः हन्यते कथम्**' हे ऋषियों ! मुझको ही मर जान अच्छा है मेरा भक्त क्यों मारा जायेगा, आप लोग विभीषण के बदले मुझको ही मारें। यह सुनकर वे लोग बोले कि हे भगवन् यदि विभीषण के अपराध को आप अपना अपराध मानते हैं तो आप ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त कर शुद्ध हो जायें। यह सुनकर भगवान् श्री राम जी ब्रह्महत्या के प्रायश्चित्त किये तथा विभीषण को छुड़ा लाये। यही विभीषण की करतूति है जिसको भगवान् स्वप्न में भी नहीं देखे हैं क्योंकि उनका यही स्वाभाविक गुण है।

"**जन अवगुण प्रभु मान न काऊ। दीनबन्धु अति मृदुल स्वभाऊ।** उ. **0।3।**"

"**रहत न प्रभु चित चूक किये की। करति सुरति सौ बार हिये की।** बा. **28।3।**" इसी को आश्रित दोष भोग्यत्व कहते हैं। सुग्रीव और विभीषण दोनों ही भगवान्‌के आश्रित थे। इसीलिए इनके दोषों के ऊपर भगवान् ने ध्यान नहीं दिया। सुग्रीव के साथ वाली का अन्याय हो रहा था इसलिए भगवान् को असह्य हुआ क्योंकि उनका यही स्वभाव है। "**जो अपराध भक्तकर करई। रामरोष पावक सो जरई।** अयो. **217।3।**" बल्कि अपने साथ अपराध करने वाले को ऐसा नहीं करते "निज अपराध रिषाहीं न काऊ। अयो. **217।2।**"

ऊपर वाली सुग्रीव तथा विभीषण में एक अभिमान ही प्रधान दोष रहने के कारण तुलसीदास जी यह कहते हैं कि "**सोई सुकंठ पुनि कीन्ह कुचाली। सोई करतूति विभीषण केरी।।**" न कि वाली के ऐसा स्त्री अपहरण दोष लेकर समान बताया है। ईत।

मानस प्रसंग 5 । "**बिधि हरिहर तप देखि अपारा। मनु समीप आये बहु बारा।।**

माँगहु वर बहुभाँति लोभाये। परमधीर नहीं चलहिं चलाये।। बा. 144।1।" मनु शतरूपा की घनघोर तपस्या देखकर ब्रह्मा विष्णु महेश तीनों एक साथ मनु के समीप बहुत बार आये तथा वर मांगने के लिए उन दोनों को बहुत आग्रह किया। फिर भी परम धैर्यवान होने के कारण उन दोनों ने इन देवताओं को न प्रणाम ही किया और न वर ही मांगे। यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि ये दोनों सन्तानार्थ वर प्राप्ति ही के लिये तो तपस्या कर रहे थे तो वर क्यों नहीं मांगे ? तथा एक बार न बोलने पर भी देवता लोग बार बार मांगने के लिये आग्रह क्यों करते रहे और ऐसा करने पर भी मनु को धीर विशेषण द्वारा प्रशंसा क्यों की गयी ?

उत्तर - मनु में अनन्य भक्ति थी - "**गति अनन्य तापस नृप रानी।** बा. **144।3।**" शास्त्रों में अनन्य भक्ति की प्रशंसा सर्वत्र पायी जाती है। प्रभु की प्रसन्नता भी इसी में होती है। "**प्रभु सर्वज्ञ दास निज जानी। गति अनन्य तापस नृप रानी।** बा. **144।3।**" इस चौपाई में निज शब्द अन्य का निषेधक है याने एक भगवान्‌को छोड़कर दूसरे में प्रवृत्ति नहीं हो जैसे पतिव्रता स्त्री को निष्ठा होती है। इस भाव को जानने वाले ईश्वर के लिए सर्वज्ञ शब्द आया है। ईश्वर की यही आज्ञा है - "**अनन्यैनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते।।**" अर्थात् अनन्य भाव से उपासना करने वालों को ही कल्याण होता है। यह आत्मा "**अनन्यशेषरूपा वै जीवास्तस्य महात्मनः।।**" अर्थात् आत्मा परमात्मा का अनन्य शेष है। "**भगवच्छेषमात्मानमन्यथा यः प्रपद्यते। स चैव हि महापापी चाण्डालः स्यान्नसंशयः।।**" अर्थात् भगवान् के शेष इस आत्मा से जो दूसरे देवताओं की उपासना करते हैं वे चाण्डाल तुल्य हैं। इसी विषय में कहा है - "**अन्यालये हरिं दृष्टवा देवतान्तरसंसदि। नार्चयेत्न प्रणमेत्तीर्थसेवा विवर्जयेत्।** वृद्ध हारीत।" भाव यह है कि अन्य देवता के समीपस्थ भगवान् को भी प्रणाम

पूजा तीर्थ पानादि सब छोड़ दे। इसीलिए अन्य देवताओं के साथ आये हुए भगवान्को मनु कैसे प्रणाम करते और इसीलिए वर भी नहीं मांगे। यहाँ अनन्यता की परीक्षा है। यदि अन्यों को छोड़कर मनु केवल भगवान् को प्रणाम करते तो विषमता होती और वे लोग शाप इत्यादि भी दे सकते थे। यदि साथ प्रणामादि व्यवहार करते तो अनन्यता भंग होती और परीक्षा में अनुत्तीर्ण होते। इस प्रसंग में मनु की औचित्य अनन्यता के कारण ब्रह्मा तथा रुद्र अप्रसन्न न होकर बल्कि प्रसन्नतापूर्वक ही वर मांगने को बरावर आग्रही बने रहे।

मनु तपस्याकाल में द्वादशाक्षर मन्त्र का जप करते थे, इस मन्त्र के अधिष्ठाता भगवान् हैं न कि ब्रह्मा रुद्रादिक। ऐसी परिस्थिति में तीनों का आना ही परीक्षा के लिए था। भगवान् ने उपासकों के लिये कहा है कि " **वैष्णवः पुरुषो यस्तु शिवब्रह्मादिदैवतान्। प्रणमेदर्चयेद्वापि विष्ठायां जायते कृमिः।।** " अर्थात् वैष्णव यदि ब्रह्मा शिवादि अन्य देवताओं को प्रणाम या पूजा करे तो उसे विष्ठा का कीड़ा होना पड़ता है। अतः मनु उन सबों को प्रणाम नहीं कर सके अन्यथा कृमि भी होना पड़ता।

"सर्वत्रासौ समस्तञ्च वसत्यत्रेति वै यतः। ततश्च वासुदेवेति विद्वद्भिः परिपठ्यते।।
नमो भगवते नित्यं वासुदेवाय शार्ङ्गिणे। प्रणवेन समायुक्तं द्वादशार्णं मनुं जपेत्।।
ऐश्वर्यञ्च तथा वीर्यं तेजः शक्तिरनुत्तमा। ज्ञानं बलं यदेतेषां पराणां भग इतीरितः।।
गत्वा गत्वा निवर्तन्ते सर्वक्रतुफलैरपि। तद्गत्वा न निवर्तन्ते द्वादशाक्षरचिन्तकाः।।
प्रजापति कश्यपश्च मनुः स्वायम्भुवस्तथा। सप्तर्षयो ध्रुवश्चैते ऋषयस्तस्य कीर्तिताः।।
राज्यं इन्द्रपदं वापि शिवत्वं ब्रह्मतामपि। यं यं कामयते चित्ते तत्र तत्र नृपोत्तम।।
तां तां सिद्धिमवाप्नोति पदं चाप्नोति वैष्णवम्।।

'**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' यही द्वादशाक्षर मन्त्र है। ऐश्वर्य, वीर्य, तेज, शक्ति, ज्ञान, बल - इन छः गुणों को भग कहते हैं और इन्हीं छवों गुणों से युक्त होने के कारण परमात्मा को भगवान् कहते हैं। यज्ञादि द्वारा इन्द्रादि लोकों की प्राप्ति होती है किन्तु वहाँ से सबों का पतन होता है। किन्तु द्वादशाक्षर मन्त्र के जापक का कभी भी पतन नहीं होता है। प्रजापति, कश्यप, स्वायंभुमनु, शतरूपा, ध्रुव, सप्तर्षि आदि इस मन्त्र के जाप किये हैं। यह मन्त्र इच्छित फल को देने वाला है, अतः मनु इस मन्त्र के प्रभाव को जानकर ही - "**द्वादशाक्षर मंत्रवर जपहि सहित अनुराग। वासुदेव पदपंकरुह दम्पति मन अति लाग।** बा. 143। " इस मन्त्र को जपा करते थे। भगवान् के सभी मन्त्र सभी फलों को देने वाले होते हैं। तब रह गया भक्त के आधीन, जिस उद्देश्य से मन्त्र जपेगा सर्वज्ञ भगवान् उसकी पूर्ति करते हैं। जैसे प्रह्लाद के लिये नृसिंहरूप धारण किया था। प्रह्लाद तो नृसिंह नाम तक नहीं जानते थे और न लिया था किन्तु भगवान् प्रह्लाद के कार्यार्थ अनुकूल रूप धारण किया।

मनु शतरूपा के तपस्या के प्रसंग में भगवान् जानते हैं कि वर्तमान सतयुग है, इसके बाद त्रेता में मुझे राम ही होना पड़ता है और ये दोनों वरदान में पुत्र ही मांगेंगे। अतः भगवान् ने रामरूप से ही अकेला पुनः दर्शन दिया, अन्य कोई कारण नहीं है। ऐसा दर्शन प्राप्त कर मनु वरदान में भगवान् को ही पुत्ररूप में मांगे और वही मिला भी। मनु की अनन्यता से हमलोगों को भी शिक्षा लेनी चाहिए कि इसी प्रकार की अनन्यता सबों में हो। यही अनन्यता जटायु और वाली आदि भी मांगे हैं।

'**द्वादशाक्षर मन्त्रवर**' इसका अर्थ कुछ लोग यह लगाते हैं कि षड़क्षर मन्त्र को मनु और शतरूपा दोनों जप करते थे। अतः दोनों को जोड़ देने से बारह अक्षर (द्वादशाक्षर) का मन्त्र बन जाता है। किन्तु ऐसी कल्पना यदि की जाय कि जापकों की संख्या के अनुकूल मन्त्राक्षरों की संख्या भी उतनी गुणित वढ़ती जाय तो कोई भी मन्त्र अनन्ताक्षर ही कहला सकता है। अतः ऐसी कल्पना में अनवस्था दोष हो जायेगा। अतः '**द्वादशाक्षर मंत्रवर**' इसका अर्थ वासुदेव मन्त्र ही ठीक है।

प्रार्थनाकाल में - "**पुर वैकुण्ठ जान सब कोई। कोई पयोनिधि बस प्रभु सोई।। हरिव्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम से प्रकट होहीं मैं जाना।** बा. 184।1, 3। " सभी देवगण परस्पर यह कहने लगे कि भगवान्वैकुण्ठ में रहते हैं, कोई क्षीरसमुद्र में, किसी ने कहा कि

भगवान् सर्वत्र व्यापक हैं, केवल प्रेम से प्रकट होते हैं। परन्तु सोचना यह चाहिए कि भगवान् या ब्रह्म तो एक ही हैं चाहें उन्हें वैकुण्ठवासी कहें, क्षीरसमुद्रवासी या व्यापक ब्रह्म, इससे उनके एकत्व में कोई बाधा नहीं पहुंचती। उन्हीं को देवतालोग 'जय जय सुरनायक' 'सिन्धुसुता प्रियकन्ता' 'व्यापक परमानन्दा' इत्यादि कहकर स्तुति किये हैं। और वही भगवान् बोले कि -

"अंशन सहित मनुज अवतारा। लैहों दिनकर वंश उदारा।बा. 186।1।"

" कश्यप अदिति महातप कीन्हाँ। तिन्ह कँह मैं पूरब वर दीन्हा।।

"ते दशरथ कौसल्या रूपा।कौशलपुरी प्रकट नरभूपा।।"

"तिनके गृह अवतरिहौं जाई। रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई।।

" नारद वचन सत्य सब करिहौं।बा. 186।2, 3।" याने मैं अपने अंशों के साथ सूर्यवंश में अवतार लूँगा। कश्यप और अदिति भी पूर्व में महान् तप किये थे। उनको भी मैने वरदान दिया था। यही वर्तमान में दशरथ और कौसल्या हैं। उन्हीं के पुत्र रूप में चार भाई हो प्रकट होऊँगा। नारद का जो शाप था उसको भी पालन करूँगा। वही भगवान्-

"भए प्रकट कृपाला दीनदयाला कौशल्या हितकारी। हर्षित महतारी मुनिमनहारी अद्भुत रूप निहारी।।
लोचन अभिरामा तनु घन श्यामा निज आयुध भुजचारी। सो मम हित लागी जन अनुरागी प्रगट भये श्रीकन्ता।बा. 191 छंद।"

याने 'सिन्धुसुता प्रियकन्ता' को बुलाये थे वही श्रीकन्ता प्रगट हुए। माता कौशल्या की प्रार्थना 'तजहु तात यह रूपा' ऐसा कहने पर 'सुनि वचन सुजाना रोदन ठाना होई बालक सुरभूपा' भगवान् अपना पूर्व रूप छोड़ प्राकृत बालक हो रोने लगे। नारद के शाप को पालन करने के लिए विष्णु भगवान की प्रतिज्ञा थी और वही अवतार लिए। इसी से नारद जी कहते हैं कि "मोर शाप करि अंगीकारा। सहत राम नाना दुःख भारा।अर. 40। 3।" और श्री राम जी के सन्मुख नारद आकर पूछते हैं - "जब विवाह चाहौं हम कीन्हा। प्रभु केहि कारण करै न दीन्हा।अर. 42। 2।" हे भगवान् ! जब मैं विवाह करना चाहा और आपसे सौन्दर्य मांगा तो आप मुझे कुरुप बनाकर क्यों विवाह करने से रोका था। यह प्रसंग विष्णुरूप का है। नारद के उत्तर में श्री राम जी कहते हैं - "अवगुणमूल शूलप्रद प्रमदा सब दुःखखानी। ताते कीन्ह निवारण मुनि मैं अस जिय जानी।अर. 44।" अर्थात् स्त्रियाँ सब अवगुणों की मूल होती हैं इसी से आपको रोका था। इन सब प्रसंगों में यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि श्री विष्णु ही श्री राम हुए और द्वादशाक्षर मन्त्र वासुदेव मन्त्र ही है न कि अन्य कोई।

मानस प्रसंग 6 ।"जाके सुमिरन ते रिपुनाशा।नाम शत्रुहन वेद प्रकाशा।बा. 196।4 ।" यह चौपाई मानस रामायण में रामावतार के पश्चात् नामकरण प्रसंग का है। इसका अर्थ यह है कि जिसके सुमिरण से शत्रु का नाश होता है वेद उसी को शत्रुघ्न ऐसा नाम बतलाता है। लोक में तो देखा जाता है कि जो आज किसी का शत्रु था वही कल मित्र भी बन जाता है। अथवा दो परस्पर शत्रुओं में जब एक की मृत्यु हो जाती है तब भी शत्रुता मिट जाती है। जैसे रावण के प्रति विभीषण की शत्रुता मिटी। कहा भी है 'मरणान्तानि वैराणि।' श्री राम जी विभीषण से कहे हैं कि हे विभीषण ! शत्रु से जीवन पर्यन्त ही शत्रुता रहती है, अतः अब रावण की अन्त्येष्टि क्रिया करो। इस प्रकार तो सब की शत्रुता मिट ही सकती है तो शत्रु विनाश से शत्रुघ्न नाम का क्या प्रयोजन ? किसी शत्रु के विनाशार्थ इस नाम का जप करना भी कहीं अनुष्ठान विधि में नहीं बतायी गयी है। वेद में भी इस प्रकार शत्रुघ्न जी का नाम कहीं नहीं पाया जाता और यह भी वशिष्ठ जी का रखा हुआ है, अतः निरर्थक भी नहीं हो सकता। इस विषय में वाल्मीकि जी कहते हैं "शत्रुघ्नो नित्य शत्रुघ्नः। वा. रा.अयो. 1।1 एवं उ. 68।11।" याने शत्रुघ्न जी नित्य शत्रुओं के नाश करने वाले हैं। भाव यह है कि संसार में बद्ध आत्मा के साथ जो जीवन मरण लगा हुआ है वही नित्य नाश रहित प्रधान शत्रु है। इसी शत्रु के नाशक शत्रुघ्न जी हैं यथा पद्मपुराण में कहा है "शत्रुघ्नश्च महाभाग देवशत्रु प्रतापनः। सुदर्शनांशाच्छत्रुघ्नः संजज्ञेऽमित तेजशः।प. पु. उत्तर 242।95-96।" अमित तेज वाले राक्षसों के नाशक सुदर्शन चक्र के अंश से शत्रुघ्न जी का अवतार है। इनके द्वारा जीवों के

जीवन-मरण रूप महाव्याधि का नाश हो जाता है। इसी से सुदर्शन जी के नामकरण में लिखा है कि - **'संसारपाश विच्छेत्ता अर्चिरादिगतिप्रदः'** याने संसारबन्धन को नाश करके भगवत्प्राप्ति के अर्चिमार्ग को बताने वाले हैं। इसीलिए भगवत्प्रेमी लोग मुक्ति के लिए प्रेम से चक्र को धारण करते हैं। भगवान्के चक्र से द्वेषियों को भी मृत्यु होने पर मुक्ति मिलती है।

"येये हताः चक्रधरेण राजन्त्रैलोक्यनाथेन जनार्दनेन। ते ते नराः विष्णुपुरं प्रयाताः क्रोधोऽपि देवस्य वरेण तुल्यम्।।

जिसको भगवान् मुक्ति देना चाहते हैं उसे चक्र से मारते हैं - जैसे ग्राह शिशुपालादि को। हिरण्यकशिपु को भगवान्केवल हाथ से मारे क्योंकि उसे आगे भी जन्म लेना है। इसी प्रकार रावण भी मरने पर आगे शिशुपाल रूप में जन्म लिया है और पुनः जब इसे चक्र से मारे तो इसकी मुक्ति हुई है। अतः भगवान्का क्रोध भी वर के तुल्य हो जाता है। भाव यह है कि मुक्ति प्राप्ति में चक्र प्रधान साधन है और यही चक्र शत्रुघ्न जी हैं।

शतपथ ब्राह्मण में **'तप्तं चक्रं द्विभुजे धार्यम्'** **'सायुज्यं सालोकतां जयति'** **'चक्रं बिभर्ति वपुषाभितप्तम्'**- यही चक्र (सुदर्शन) संसृतक्लेश (शत्रु) को नाश करते हैं। इसीलिए शत्रुघ्न कहे जाते हैं। इसी विषय को वशिष्ठ जी **'तापसंस्कारमात्रेण परां सिद्धिमवाप्नुयात्'** चक्र के स्पर्श मात्र से भगवत्प्राप्ति होती है। अन्यथा - **"जे मृग रामवान केमारे। ते तनु तजि सुरलोक सिधारे।बा. 204।2।"** भगवान् जिसे बाण से मारते हैं उसे मोक्ष नहीं होता बल्कि देवलोकादि की प्राप्ति होती है।

उक्त चौपाई में सुमिरण शब्द आया है जिसका अर्थ स्मरण होता है। भगवत्कृपा प्राप्त लोग चक्र को स्मरण करके धारण करते हैं और भगवान् चक्र को स्मरण करके उससे द्वेषियों को काट कर मोक्ष देते हैं। इसी अर्थ को लक्ष्य करके देशकालिक कवि तुलसीदास जी उक्त चौपाई को लिखे हैं। अन्यथा यह मिथ्या हो जायेगा।

संसार ही नित्य शत्रु है। शरीरसम्बन्धी शत्रु को तो श्री राम जी शत्रु मानकर विभीषण से रावण के सम्बन्ध में यों कहे हैं **"क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष तथा तव।।"** हे विभीषण ! यह जैसा तुम्हारा बन्धु है उसी प्रकार मेरा भी। इससे यह सिद्ध होता है कि दो विरोधियों में एक को मर जाने पर शत्रुता मिट जाती है, तो तदर्थ शत्रुघ्न नाम से क्या प्रयोजन ? सुदर्शन कवच में **"स्तनौ शत्रुनिषूदनः।2।7।" "सर्वशत्रुक्षयकरं सर्वमंगलदायकं।2।42।"** ऐसे सर्वत्र शत्रुनाशक चक्र का नाम समझ वशिष्ठ जी ने सुदर्शन के अंश से उत्पन्न होने से शत्रुघ्न ऐसा नामकरण किया। **"शत्रु मित्र सुख दुःख जग माहीं। मायाकृत परमारथ नाहीं।कि. 6।9।"** व्यक्तिगत द्रोह रखने वाले मायिक द्रोही कहे जाते हैं और **"महा अजय संसाररिपु जीती सकै सो बीर।लं. 80।"** संसार सम्बन्धी आवागमनरूप नित्यशत्रु को जीतने वाला ही महावीर है।

"स्वभावविजयं शौर्यम्" अपने स्वभाव पर विजय पाना ही वीरता है। वह स्वभाव **'स्वयं भवतीति** स्वभावः' शरीर के साथ ही उत्पन्न होता है। **"काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।गी. 3।37।"** भगवान श्रीकृष्ण कहे हैं कि हे अर्जुन !यह स्वयं साथ रहने वाला रजोगुण से उत्पन्न काम क्रोधादि को शत्रु समझो, यही आत्मा का नाश करने वाला है इसे जीतो। यही नित्यशत्रु को नाशकरने वाला अस्त्रराज शत्रुसूदन शत्रुघ्न हैं, इनका स्मरण, पूजन, धारण करने से नित्य शत्रु का नाश होता है और तभी मुक्ति होती है। नहीं तो जब तक मुक्ति (संसार से निवृत्ति) नहीं होती तब तक शत्रु बना ही रहता है। इसलिए कहा गया है -

"भयागमे च संग्रामे वादे वा च स्मरेदिदम्। विजयस्तस्य हस्तस्थो नात्र कार्या विचारणा।।
तापत्रयविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते। नश्यन्ति शत्रवः सर्वेऽसुराणां बलसूदनम्।।
अभिचाराः परकृताश्चैनं प्राप्य च भीषिताः। प्रविशन्ति प्रयोक्तारमापगे वा चलाहता।।
ध्यातं सकृद्भवानेक कोट्यघौघं हरत्यरम्। सुदर्शनस्य तद्दिव्यं भर्गो धीमहि।।"

भय, संग्रामवाद के समय जो इसे स्मरण करता है वह सर्वत्र विजयी होता है। सब तापों से मुक्त हो विष्णुलोक को चला जाता है। समस्त शत्रुओं तथा असुरों को नाश करने वाला यह अस्त्र अपने ध्यान करने वालों के समस्त पापों को नाश करता है, अतः मैं सुदर्शन चक्र के उस दिव्य तेज का ध्यान करता हूँ।

मानस प्रसंग 7। लक्ष्मण जी का नामकरण - "लक्षणधाम रामप्रिय सकल जगत आधार। गुरु वशिष्ठ तेहि राखेउ लक्ष्मण नाम उदार। बा. 197।" अनन्यशेषत्व अनन्यभोग्यात्व अनन्यपारतन्त्र्य चेतनों का लक्षण सिद्धान्त ग्रन्थों में बताया गया है। इन सभी गुणों के धाम स्थान लखनलाल जी हैं। "**अहं सर्वं करिष्यामि जाग्रतः स्वपतश्च ते**। बा. रा. अयो.31।27।" लखन जी श्री राम जी के वनगमन काल में कहते हैं कि मैं आपके जागे सोये सभी अवस्थाओं में सब कुछ करता रहूँगा। यही शेषत्व का लक्षण है। इसी विषय को स्वामी श्री यामुनाचार्य कहते हैं "**निवासशय्यासनपादुकांशुकोपधानवर्षातप ...**।स्तोत्र रत्न 40।" अर्थात् निवास, शय्या, आसन, पादुकादि सब कुछ सभी अवस्थाओं में रहूँगा। शेषत्व का भाव युक्तियुक्त सर्वावस्था ही है, इसमें प्रलयकाल भी आ जाता है। लखनलाल प्रलयकाल में भी भगवान की उचित सेवा करते रहते हैं। संसारियों के हृदय में रहते रहते भगवान्अत्यन्त सन्तप्त हो जाते हैं। यथा "**कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्रामचेतसः। मां चैवान्तः शरीरस्थं...**।" अतः "**तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान्**" भगवान्की ऐसी अवस्था में शेषजी क्षीरसमुद्र में अपने पेट में शीतल वायु भर शीतल एवं सुचिक्कन अपनी देह पर भगवान् को सुलाते तथा सहस्र मुखों के शीतल सुगन्धित वायु से शीतोपचार करते हुए हृदय के जलन को दूर करते हैं। इस प्रकार लक्ष्मण जी सदैव भगवान् के साथ रह उचित सेवा किया करते हैं।

"**प्रथमोऽनन्तरूपश्च द्वितीयो लक्ष्मणस्तथा। तृतीयो बलरामश्च कलौ रामानुजौ मुनि**।" पर, व्यूह, वैभव तथा अर्चारूप में भी लक्ष्मण जी भगवान्के साथ ही रहते हैं, इसी से रामजी के प्रिय हैं। शेषत्व धर्म रामप्रिय होता है। "**रामस्य दक्षिणं बाहुः**। बा. रा. अर. 34।14।।" लक्ष्मण जी रामजी के दाहिना हाथ के तुल्य हैं। जगत् के आधार होने में भी यही कारण है कि ब्रह्माण्ड मात्र में भगवान् की व्यापकता है और भगवान्के निवास स्थान होने के कारण इस संसार के सभी बोझ शेष जी अपने मस्तक पर रखते हैं।

जैसे सोनार स्वर्णादि धातुमिश्रित कूड़ा कचरा या मोम को संग्रह रखता है, राजा इत्र तथा सुगन्धित वस्तु मिश्रित कपास को अपने कर्णादि में धारण करता है। यही सब उदारता इनमें है इसलिये ये रामप्रिय हैं। उदारता का विशेष अर्थ यह है कि बिना मांगे भी अपनी वस्तु को जो आवश्यकता समझ कर वितरण करता हो। यह कार्य लखनलाल जब रामानुज हुए तो गोपनीय तथा उद्धारक मूलमन्त्र को जनकल्याण के लिए गोपुर पर चढ़कर उच्चस्वर से लोगों को सुनाया। कांचीपूर्ण स्वामी का वरदान प्राप्त कर संसार के सम्पूर्ण जड़ तथा चैतन्यों को अपना समझते हुए कल्याणभागी एवं शरणागति धर्म के प्रचारार्थ सर्वत्र घूमना तथा भगवत् परत्व ग्रन्थ का निर्माण कर संसारसागर से पार होने के लिए जहाज बना लोगों का परम कल्याण किया।

लक्ष्मण नाम में ही परमोदारता है क्योंकि इसी में रामानुजत्व है। **रामस्य श्री दासरथी रामस्य अनुजः रामानुजः** (लक्ष्मणः) यह भगवत्स्वरूप का बोधक है। लक्ष्मण जी त्रेता में रामजी की अटूट सेवा किये जिसकी प्रसन्नता में द्वापरयुग में भगवान् ही उनके छोटे भाई हुए। "**रामस्य बलरामस्य अनुजः रामानुजः** (श्रीकृष्णः) यह परस्वरूप का बोधक हुआ। '**कलौ रामानुजो मुनिः**' शेष (लक्ष्मण) कलियुग में रामानुज ही भगवद्धर्म का प्रचार कर आचार्यपद प्राप्त किया। इस प्रकार रामानुज कहने से भगवान् भागवत और आचार्य तीनों का योग होता है। अतः लक्ष्मण यह नाम परमोदारता पूर्ण है। "**लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धनः...**। बा. रा. बा. 18।27।" लक्ष्मी (रामजी की सेवा) वर्द्धक लक्ष्मण हैं।

आधार नीचे रहता है, इसी भाव को ध्यान में रख, वशिष्ठ नामकरण में सभी भाइयों से पीछे लक्ष्मण जी का नामकरण किये हैं क्योंकि लक्ष्मण विश्वमात्र के आधार हैं। अथवा लक्ष्मण बिना रामजी कल्याण नहीं करते याने लक्ष्मणमन्त्र बिना केवल राममन्त्र से कल्याण नहीं होता है। "**लक्ष्मणस्य मनुर्जप्यो मुमुक्षुभिरतन्द्रितैः। अजप्त्वा लक्ष्मणमनुं राममन्त्रान्जपन्ति ये। न तेषां जायते सिद्धिर्हा निरेव पदे पदे। यो जपे लक्ष्मणमनुं नित्यमेकान्तमास्थितः। मुच्यते सर्वपापेभ्यः सर्वान्कामानवाप्नुयात्।। जपप्रधानमन्त्रोऽयं राज्यप्राप्त्यैक साधनम्।।** जो लक्ष्मण मन्त्र के बिना केवल राममन्त्र को जपता है उसे सिद्धि प्राप्त होना तो दूर रहा पग पग पर हानि ही होती है।

इसलिये मुमुक्षुओं को मोक्ष के लिए पापात्माओं को पाप से छूटने के लिये लक्ष्मणमन्त्र सहित राममन्त्र का जाप करना चाहिए। अन्यथा लक्ष्मणमन्त्र के बिना राममन्त्र, एकाक्षर, द्वयक्षर, त्र्यक्षर या जितने भी अक्षर का हो सभी व्यर्थ होते हैं। इसीलिए लक्ष्मण को लक्षणधाम कहा गया है। इसी भाव को लेकर "**बन्दौ लक्ष्मण पद जलजाता। शीतल सुभग भक्त सुखदाता। बा 16।3।**" में जलजात याने कमल तो स्वतः शीतल होता ही है फिर उसका विशेषण शीतल क्यों दिया गया ? इसका भाव यही है कि लखनजी शेष होने के कारण अत्यन्त शीतगुणयुक्त हैं, भक्तों के त्रितापों को नाश करते हैं। "**रामस्य दक्षिणं बाहुः**" लखनजी रामजी के दक्षिण बाहु के सदृश अत्यन्त प्रधान हैं। जैसे अंग के बिना अंगी कोई कार्य सिद्ध नहीं करता इसी प्रकार श्री राम जी बिना लक्ष्मण के कल्याण नहीं करते।

मानस प्रसंग 8। "**विनयप्रेम वश भई भवानी। खसी माल मूरति मुसकानी। बा. 235।3।**"यह चौपाई बालकाण्ड सीता जी के गिरिजा पूजन प्रसंग की है। इसके अर्थ में रामायणियों में मतभेद पाया जाता है। (1) कुछ लोग पूजामन्दिर में गौरी और शंकर दोनों की मूर्ति मानते हैं। (2) कोई गौरी के आधे मस्तक से माला गिरी यह मानते हैं। (3) कोई गौरी के हाथ से माला गिरी यह मानते हैं। (4) कुछ लोग जानकी के हाथ से माला गिरी यह मानते हैं। (5) कुछ लोग मूर्तिमुस्कान को अनिष्ट मान, यह कहते हैं कि इसका अनिष्ट फल यह हुआ है कि जनक की लक्ष्मी जनकपुर से अयोध्या चली आयी इत्यादि अनेकानेक विवाद पाया जाता है।

○उपर्युक्त प्रसंग के विवेचन में मानस में केवल गौरीपूजन प्रसंग का ही प्रमाण मिलता है, शंकर का नहीं। यथा - "**गई भवानी भवन बहोरी। 234।2।**" "**सरसमीप गिरिजा गृह सोहा...227।2।**" "**गई मुदित मन गौरी निकेता...227।3।**" इन चौपाइयों में भवानी भवन, गिरिजा गृह, गौरी निकेत - ये ही पद आये हैं। तथा '**गिरिजा पूजन जननी पठाये**'- माता जानकी को गिरिजा की पूजा के लिये ही पठाई है न कि गौरीशंकर की। यहाँ पर रामाणियों का यह कहना है कि उस मन्दिर की मूर्ति में एक ओर गौरी दूसरी ओर शंकर की मूर्ति थी। इसलिए सीता जी माला पहनाते समय यह सोचने लगी कि यदि मैं माला इस मूर्ति के गले में पहराऊँ तो शंकर के गले में भी माला पड़ जायेगी, जो मेरे लिए सर्वथा अनुचित होगा। इसलिए मूर्ति के आधे कपाल पर गौरी की ओर से लगा दी तो वह माला विना आधार के खिसक कर नीचे गिर आई। और यही सीता की हृदयस्थ भावना समझ कर गौरी की मूर्ति मुस्काई है। किसी का कहना है कि परपति को माला पहनाना अनुचित है किन्तु यह तो सीता जी को नहीं सोचना चाहिए क्योंकि यह तो जगत् जननी हैं केवल लीला के लिए ही अवतार धारण किया है तो लीला में किसी को माता पिता या देवी देवता मान यदि पूजा करेगी हीं तो इसमें क्या क्षति होगी ? अर्थात् कुछ भी नहीं। अतः माला पहराने में भी पतिभाव नहीं होता यह उनकी भूल समझकर मूर्ति हँसी है। परन्तु यह कहना निर्मूल है - कारण कि उस मन्दिर में केवल गौरी की ही मूर्ति थी। अथवा सभी स्त्रियों को सभी देवी देवताओं के पूजने का अधिकार है जो कुलपरम्पर या सभी गृहस्थियों के घर में पाया जाता है। यदि कुछ भेद होता तो सीता को उसकी माँ या साथ की कुशल सखियाँ अवश्य पूजनोपचार में बतातीं किन्तु ऐसा नहीं हुआ है।

○कुछ लोग जानकी के हाथ से ही माला गिरना मानते हैं। यह भी उचित नहीं कारण कि "**पूजा कीन्ह अधिक अनुरागा। बा. 227।3।**" यहाँ पर पूजा कीन्ह यह क्रियापद क्रिया का पूर्ण समाप्तिबोधक है और माला पहराना पूजन मध्य की क्रिया है और पूजन समाप्त कर सीता गौरी की प्रार्थना कर रही है तभी "**विनय प्रेम वश...**" इत्यादि पद आये हैं।

○ जो कोई यह कहते हैं कि पार्वती प्रसन्न हो जब जानकी को माला पहराने लगी तो माला हाथ में लेते ही उन्हें यह स्मरण आया कि "**चली राखि उर श्यामल मूरति। बा. 234।1।**" याने जानकी के हृदय में मूर्तिमान श्री राम जी विद्यमान हैं, अतः इस माला को जानकी को पहनाती हूँ तो श्री राम जी के गले में पहनाना होगा, ऐसा जानकर पार्वती माला गिरा दी तो इसी भाव को समझ जानकी के हृदयस्थ श्री राम मूर्ति मुस्काई है। किन्तु इस कल्पना के ऊपर विचार करने से स्पष्ट होता है कि यदि सीता के हृदय में

श्री राम मूर्ति हैं तो सीता बाह्य मन्दिर हुई और इनको माला पहराने से हृदयस्थ मूर्ति को माला पहराना कैसे हो सकता है। जैसे मन्दिर के ऊपर चक्र त्रिशूल ध्वजा आदि जो गाड़े जाते हैं वह मूर्ति के माथे पर गड़ा नहीं कहा जाता है। या मन्दिर के ऊपर काकादि बैठने का दोष नहीं माना जाता। या मन्दिर के ऊपर वर्षादि होने पर भी मूर्ति के ऊपर वर्षा हुई ऐसा नहीं कहा जाता। इसलिए गौरी के हाथ से माला गिरने में उक्त भाव को मानना भी युक्ति के विरुद्ध है।

○ मूर्ति को हँसने के प्रसंग में जो कोई यह कहते हैं कि मूर्ति का हँसना अनिष्ट फलदायक होता है। जैसे "**जनक सुकृति मूरति वैदेही।** बा. **309।1।**" जनक की सुकृति (लक्ष्मी) उनके घर से चली आयी हैं, तो यहाँ यह विचारना चाहिए कि प्रथम तो स्तब्ध मूर्ति के सम्बन्ध में हँसना रोना अनिष्ट माना जाता है किन्तु यह पार्वती की मूर्ति तो बोलने वाली थी। यथा - "**सुनि सिय सत्य असीस हमारी। पूजहिं मनकामना तुम्हारी।। नारद वचन सदा शुचि साँचा। सो वर मिलहि जाही मन राँचा।** बा. **235।4।**" हे सीते ! सुनो तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी। नारद का वचन सदा पवित्र और सत्य है। इस प्रकार बोलने वाली मूर्ति का हँसना अनिष्टकर नहीं हो सकता। अथवा कन्याओं को पति के घर जाना तो सभी शुभ मानते हैं और इस उत्साह में देवी देवताओं की पूजा करते हैं। बल्कि युवती कन्याओं के पति के घर न जाने देना ही अमंगल या पाप समझा जाता है यही शास्त्रीय विचार है। यह कोई भी नहीं चाहता कि मेरी कन्या पतिगृह में न जाये। इस नियम के अनुसार मूर्ति के हँसने से जानकी को अयोध्या आना, जनक के लिए अमंगल हुआ यह नहीं कहा जा सकता। बल्कि जनक के लिए शुभ हुआ कि जानकी का विवाह या धनुष टूटने की चिन्ता उनकी दूर हो गयी और सीता का विवाह हो गया।

○ जो कोई यह कहते हैं कि जानकी या गौरी अपने हाथ से माला गिरा दी हैं यह भी अनुचित ही प्रतीत होता है क्योंकि उक्त पद में खसी क्रिया की कर्त्री माला है न कि गौरी या सीता। यदि इन दोनों में से कोई एक कर्त्री होती तो खसी क्रिया के स्थान पर खसाई ऐसी प्रेरणार्थक क्रिया दी जाती। अतः यह सिद्ध होता है कि माला स्वयं खसी है किसी ने खसाई नहीं है। अब रह गयी बात कि माला अपने आप खसी तो कहाँ से और कैसे खसी (गिरी) है तथा उक्त चौपाई का युक्तिसंगत अर्थ क्या होगा ?

यह मूर्तिपूजन का प्रसंग है। जानकी जी जब गौरी का सम्यक्प्रकार से पूजन कर प्रार्थना कर रही हैं तो इनकी विनम्रतापूर्वक पूजा प्रार्थना से गौरी अतिप्रसन्न तथा प्रेमवश होकर अपने गले की माला स्वयं हाथों में ले सीता जी के गले में पहराना चाहती थीं किन्तु उस समय सीता जी के प्रेम में विवश होने के कारण अपना कर्त्तव्य भूलकर सुधि बुधि भी भूल गयीं। जिसके कारण अपना प्रसादस्वरूप जो सीता जी को देना चाहती थी वह हाथो से छूटकर भूमि पर गिर गयी। किन्तु माला गिरते ही जब गौरी की सुधि जगी सीता को माला पहरानारूप कर्त्तव्य से वंचित रह जाने पर स्वयं हँसी आ गयी कि मैं सीता को माला नहीं पहरा सकी। किन्तु इस अवसर पर सीता जी गौरी के हृदय का भाव समझकर प्रसादरूप गिरी हुई माला को उठाकर गले में धारण कर लिया। यथा - "**सादर सिय प्रसाद उर धरेऊ। बोली गौरी हर्ष हिय भरेऊ।** बा.**235।3।**" माला धारण करते देख गौरी प्रसन्न हृदय से सीता जी को आशीर्वाद देती हैं। "**सुनु सिय सत्य अशीष हमारी। पूजहिं मनकामना तुम्हारी।** बा. **235।4।**" यह आशीर्वाद सुनकर जानकी जी के हर्ष का ठिकाना नहीं रहा तथा मंगल सूचक बायाँ अंग फरकने लगा। "**जानि गौरी अनुकूल सिय हिय हर्ष न जात कही। मंजुल मंगल मूल बाम अम्ग फरकन लगे।** बा. **236।**"

मानस प्रसंग 9।

"**अनुरूप वर दुलहिन परसपर लखि सकुचि हिय हर्षहिं। सब मुदित सुन्दरता सराहहिं सुमन सुरगण वर्षहिं।।**
सुन्दरी सुन्दर वरन वर सह एक मण्डप राजहिं। जनु जीव अरु चारिउ अवस्था विभुवन सहित विराजहिं। बा. **324।**छंद **4।**"

यह श्री राम जी के विवाह काल का प्रसंग है। विवाहमण्डप में दशरथ जी के सामने चारों वर तथा चारों दुलहिन विराजमान हैं।

ऋषि महर्षि देवगण जनकपुरवासी तथा अयोध्या के वशिष्ठादि महर्षियों की तथा अन्यान्य दर्शकों की अपार भीड़ है। सभी लोग चर्मचक्षु तथा दिव्य चक्षुओं से दर्शन का लाभ उठा रहे हैं। याने ऐश्वर्य-माधुर्य दोनों का अवलोकन कर रहे हैं। जनकपुरवासी प्रेम से भगवान्के केवल माधुर्य रसपान कर तृप्त हो रहे हैं। "**जाकी रही भावना जैसी। प्रभुमूरति देखहिं तिन तैसी**। बा. 240।2।" श्री राम जी श्यामल मूर्ति हैं।

"**नीलसरोरुह नील मणि नील नीरधर श्याम। अंग अंग पर वारिये कोटि कोटि शतकाम**। बा. 146।" जिनसे नीलकमल ने कोमलता प्राप्त किया है, नीलमणि कान्ति और नीलमेघ शोभा प्राप्त किया है, जिनके अंग अंग की शोभा के सामने करोड़ों करोड़ कामदेव की शोभा फीकी पड़ जाती है। "**इनसे लहि द्युति मरकत सोने**। अयो 115।4।" इनसे ही मरकत मणि कान्ति प्राप्त किया है।

"**अप्रमेयो हि तत्तेजः**। वा रा अर 37।18।" "**सबकर परम प्रकाशक सोई**। बा. 116।3।" "**यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्**। गी. 15।12।" "**एष हिरण्यपुरुषो दृश्येत**।।" जिसके प्रकाश से सूर्य चन्द्रमा आदि प्रकाशित होते हैं। यह हिरण्यमय पुरुष सूर्य के बीच में रहकर उसको प्रकाशित किया करता है। "**न तस्य प्राकृतिः मूर्तिः मांसमेदोऽसि संभवः**" जिसकी मूर्ति मांस मेदादि प्रकृतिरचित नहीं है। "**आप प्रगट भये विधि न बनाये**।।" "यतो वाचा निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह। तैत्तिरिय उप 2।9।" जिनको वर्णन करते करते अवर्णनीय जानकर मन के साथ वाणी भी लौट आती है अर्थात् मन और वाणी द्वारा भी वह अप्राप्य है। "**तरकि न सकहिं बुद्धि मन वानी**। लं. 73।1।" अर्थात् श्री राम जी परब्रह्म हैं - "**ब्रह्म वर परिछन चली**। बा. 317 छंद।"

इसी प्रकार सीता जी भी "**हिरण्यवर्णा ...। चन्द्रां प्रभासां ज्वलन्तीं ...। आदित्यवर्णे...। चन्द्रां हिरण्यमयीं...। सूर्यां हिरण्यमयीं ...**। श्रीसूक्त। "**हिरण्यस्य हिरण्ये वा कान्तिः (प्रकाशः) यस्याः यया वा**" अर्थात् सोना जिससे कान्ति प्राप्तकर कान्तिमान है। इसी से सोना को भी लक्ष्मी कहते हैं और सबका प्यारा भी है। सूर्य चन्द्रमा जिसके प्रकाश से प्रकाशित होते हैं। "**जगत् जननी अतुलित छबि भारी**। बा. 247।1।" "**इनसे लहि द्युति मरकत सोने**। अयो. 115।4।" श्री राम जी से मरकत मणि और सीता जी से सोना कान्ति प्राप्त किया है। इन दोनों के सम्बन्ध में वाल्मीकि जी कहे हैं - "**अहं वेद्मि महात्मानं रामं सत्यपराक्रमम्। वशिष्ठोऽपि महातेजाः ये चेमे तपसि स्थिताः**। वा.रा.बा.19।14।" मैं श्री राम जी को जानता हूँ और महातेजस्वी तपस्वी वशिष्ठादि भी जानते हैं। क्या जानते हैं - "**...न त्यजेयं कथंचन। दोषो यद्यपि तस्य स्यात्...**। वा.रा.युद्ध.18।3।" श्री राम जी दोषी को भी शरण देते हैं और सीता जी "**कश्चिन्नापराध्यति**। वा.रा. युद्ध. 113।45।" अर्थात् आश्रितों का कोई अपराध नहीं होता यह कह कर शरण दिलवाती हैं।

श्री राम जी सभी दिव्यगुणों से युक्त हैं। आश्रितों की रक्षा और जगत्के कल्याण के लिए दोनों जगन्नमाता जगत्पिता अवतार लिया करते हैं। "**रामरूपे भवेत्सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि**। वि.पु 1।9।44।" "**नित्यमेषानपायिनी**" (कभी भी पृथक न होने वाली) लक्ष्मी रामावतार में सीता और कृष्णावतार में रुक्मिणी होती हैं। जैसे जन-मन-हर्षक आकर्षक श्री राम जी हैं उसी प्रकार श्री सीता जी हैं। इसीलिए उपरोक्त छन्द में अनुरूप शव्द आया है। सर्वत्र तुल्य अर्थ बताने के लिए ही अनु उपसर्ग का प्रयोग होता है। माता पिता जैसे वड़े पुत्र को उत्पन्न करते हैं वैसे ही छोटे को भी। अतः उसको अनुज कहते हैं। "**जिमि पुरुषहिं अनुसर परिछाहीं**। अयो. 140।3।" पुरुष के सदृश उसकी छाया भी चेष्टा किया करती है। इसलिये अनु उपसर्ग लगाया गया है। श्री राम जी और श्री सीता जी की अत्यन्त सदृश्यता बोध कराने के लिए अनुरूप शव्द का प्रयोग किया गया है।

अथवा लक्ष्मी जी श्रीरूप से भगवान्की शोभा बनकर सुशोभित करती रहती हैं। ऐश्वर्य बनकर श्रीमन्त बनाया करती हैं और कान्ति बनकर कान्तिमान बनाया करती हैं। इसीलिए भगवान् इनकी प्राप्ति के लिए स्वयं समुद्र मन्थन या बन्धन किये करवाये हैं। "**हरधनुरसौ**" लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए धनुष भी तोड़ा गया है। लक्ष्मी भगवान्को अत्यन्त प्रिय हैं इसीलिये भगवान्उनको अपने वक्षस्थल में रखा करते हैं। "**तद्वक्षस्थल नित्यवास रसिकाम्**।।" इसी प्रकार लक्ष्मी की शोभा को भगवान्बढ़ाने वाले हैं - "**कः श्रीः श्रियः**।" अर्थात् राम और जानकी एक दूसरे की परस्पर शोभा को बढ़ाने वाले हैं। "**जानकी हृदय**

मम वास है । लं. **98** । छंद । ” लक्ष्मी के हृदय में भगवान् वास करते हैं। यही अन्योन्याश्रय होने के कारण ऊपर परस्पर शब्द आया है। जैसे लक्ष्मी सबों के प्रिय हैं वैसे ही भगवान् भी सबों के प्रिय हैं - “**ये सब प्रिय जहाँ लगि प्राणी** । बा. **215** । **4** । ” प्राणी मात्र के ये दोनों प्रिय हैं। भगवान्के द्वारा लक्ष्मी सबों के प्रिय हैं और लक्ष्मी के द्वारा भगवान्। याने भगवान् की कृपा विना लक्ष्मी नहीं मिलती हैं और लक्ष्मी की कृपा विना भगवान्नहीं मिलते। यह परस्परता के भाव हैं।

अथवा वर कन्या दोनों व्यापक तत्व हैं “**यथा सर्वगतः विष्णुस्तथैवेयं द्विजोत्तम** । वि.पु.**1** । **8** । **17** । ” जैसे विष्णु व्यापक हैं उसी प्रकार लक्ष्मी की भी व्यापकता है। रामजी के प्रति सीता जी कहीं हैं - “**अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा** । वा.रा. सु. **21** । **15** । ” सूर्य की प्रभा जैसे सूर्य के साथ रहती है उसी प्रकार भगवान के साथ मैं रहने वाली हूँ। राम जी भी यही कहते हैं - “**अनन्या हि मया सीता** । वा. रा. लं. **118** । **19** । ” सीता मुझमें अनन्यभाव से रहती है। इस अन्योन्याश्रय को दोनों स्वीकार करते हैं। लीलाकाल में भी लक्ष्मी मूर्ति बनकर हृदय में और रेखा बनकर शरीर में रहती हैं। अर्थात भगवान्के वक्षस्थल की रेखा लक्ष्मी के चिह्न हैं। इस प्रकार सतत साथ रहते हुए भी छः वर्ष के लिये दोनों का वियोग हुआ है। जानकी इस समय जनक के यहाँ हैं, जनक की प्रतिज्ञा में कठोर धनुष का तोड़ना है - “**विवाह चाप आधीना** । बा. **285** । **4** । ” और वह भी कण्टक दूर हुआ। जब राम और सीता दोनों एक मण्डप में मिले हैं यही तो हर्ष का कारण है। और संकोच है कि “**आत्मानं मानुषं मन्ये** । वा. रा. युद्ध **117** । **11** । ” अर्थात् परब्रह्म तथा जगत के माता पिता होते हुए भी सभी लौकिक व्यक्तियों के सामने साधारण प्राकृत वर कन्या रूप में बैठे हुए हैं। सभी दर्शक परम माधुर्यरस पान करने में मग्न हैं। इन दर्शकों में ब्रह्मा वाल्मीकि आदि कुछ विशिष्ट व्यक्ति मेरे परत्व को जाननेवाले हैं तो शायद ये लोग इस परत्व को सर्वसाधारण में न फैला दें जिससे माधुर्य रस भंग हो जायेगा क्योंकि माधुर्य रस की अपेक्षा ऐश्वर्य न्यूनकोटि का है, इसलिए भी संकोच हो रहा है।

अथवा ऐसा संकोच करना मर्यादा पुरुषोत्तम के लिए उचित भी है जो मर्यादा की रक्षा तथा औरों के उपदेश के लिये भी है। इस अवसर पर देवगणों को संकोच हो रहा है। क्योंकि लोक में जैसे बाप के विवाह में बेटा को संकोच होता है तथा बेटा पिता के मंगल बाराती में अतिसंकुचित हो सम्मिलित होता है या सम्मिलित ही नहीं होता। यही संकोच ब्रह्मादि देवगणों को भी हो रहा है याने हम सबों के निर्माता तथा जगत्के माता-पिता आज हमलोगों के सामने वर-दुलहिन बनकर विवाह साज सज कर बैठे हैं। ऐसे अवसर पर हम सबों को भी पूजवाना तथा आशीर्वाद देना पड़ेगा, इसी से संकुचित हैं। और हर्ष इस बात का है कि इस तरह कौतुक उत्साह, आमोद-प्रमोद, सौंदर्य, माधुर्यादि कभी भी देखने को नहीं मिला, यह प्रथम बार का सुअवसर है, इसी से सबों को हर्ष हो रहा है। अतः पुष्पवृष्टि कर रहे हैं।

अथवा ब्रह्म का अवतार तो बहुत बार हुआ किन्तु विवाह तो इसी अवतार में प्रथम बार हो रहा है जो अवसर हम सबों को आज देखने को मिला है। तथा जिनको अवतार लेने के लिए हम सब प्रार्थना किये थे वही आज हम सबों के सामने उपस्थित हैं। ताड़कादि को मार चुके, विवाह होने में धनुष तोड़ना बाधक था सो भी समाप्त हुआ, अब तो विवाह के बाद शीघ्र रावणादि का वध होगा जिससे हमलोग निर्द्वन्द हो जायेंगे।

जनकपुर विवाहमण्डप में दशरथ जी के सामने चारों दुलहिनों के साथ चारों दुलहा विराजित हैं। अतः मालूम पड़ता है कि जैसे जीव को अपने विभुओं (पतियों) के साथ चारों अवस्था- जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय (मुक्ति) प्राप्त हो गयी है। विभु का अर्थ व्यापक और पति दोनों है। इन अवस्थाओं के विभुओं के सम्बन्ध में “**वासुदेवः संकर्षणः प्रद्युम्नः पुरुषः स्वयम्। अनिरुद्ध इति ब्रह्न मूर्तिव्यूहोऽभिधीयते।। स विश्वतैजसः प्राज्ञस्तुरीय इति वृत्तिभिः।।** ” जाग्रत अवस्था के विभु (अभिमानी देव) प्रद्युम्न, स्वप्नावस्था के संकर्षण, सुषुप्ति अवस्था के अनिरुद्ध और तुरीय अवस्था के वासुदेव हैं। जाग्रत अवस्था का व्यापार सम्पूर्ण देह-मन-इन्द्रियों का, स्वप्नावस्था का व्यापार केवल मन का, सुषुप्ति अवस्था का व्यापार वासनामात्र और मुक्ति अवस्था का

व्यापार दिव्य देह, ज्ञान और दिव्य इन्द्रिय का है। इस अवस्था में श्रीमन्नारायण से योग होता है। इस विवाह प्रसंग में तुरीयावस्था श्री जानकी जी का है और विभु (पति) श्री राम जी हैं। जाग्रत् अवस्था माण्डवी हैं और विभु भरत जी हैं। स्वप्नावस्था उर्मिला हैं और विभु लक्ष्मण जी हैं। सुषुप्ति अवस्था श्रुतिकीर्ति हैं और विभु शत्रुघ्न जी हैं। तुरीय अवस्था में संसारी वस्तु और अपना शरीर पर्यन्त भी भूल जाता है। जैसे ध्रुव को हुआ था "**...तस्थौ स्थाणुः इव अचलः** ।भा 4।8।76।" भगवान्में ध्यान लगाये ध्रुव जड़ की तरह दीखते थे। इसी अवस्था को जीवन्मुक्त भी कहते हैं और पंचम पुरुषार्थ भी कहते हैं। अर्थात् इस अवस्था में धर्म अर्थ काम मोक्ष के अलावा भगवान्का विलक्षण अनुभव प्राप्त होता है "**को हम कहाँ बिसरी तनु गये** ।उ. 16।1।" जैसे ब्रह्म प्राप्ति में ब्रह्मानन्द सुख मिलता है वही आनन्द सुख इस अवस्था में भी मिलता है।

"**भद्रमुक्तं भवद्भिस्तु मुक्तिस्तुर्यात्परात्परा। निवहं यत्र चित्सत्ता तुर्या च मुक्तिरुच्यते।।**
पूर्णाहं तामयीं भक्तिस्तुर्यातीता निगद्यते। मुक्तानामपि भक्तिर्हि परमानन्दरुपिणी।।"

इस प्रकार तुरीयावस्था को मुक्ति अवस्था कहते हैं। वही अवस्था प्राप्त करना पूर्ण भक्ति का फल है। क्योंकि यहाँ से मुक्त होकर भी त्रिपादविभूति में वही भक्ति की जाती है। इसलिये भी इसको मुक्ति अवस्था कहते हैं। इस अवस्था को प्राप्तकरने वाला व्यक्ति से बढ़कर दूसरा कोई व्यक्ति नहीं। इसी अवस्था में आत्मसत्ता लाभ होता है। "**देखि भानुकुल भूषणहिं विसरा सखिन अपान** ।बा. 233।" "**प्रेम मगन मन सुधि नहीं तेहीं** ।सु. 14।4।"

"**को मैं चलेऊकहा नहीं बूझा।**" "**कबहुँक फिरि पाछे मुनि जाई।**" "**मुनि मग माँझ अचल होई वैसा। पुलक शरीर पनस फल जैसा।।**" "**मुनिहिं राम बहु भाँति जगावा। जाग न ध्यान जनित सुख पावा** ।अर. 9।69।" यह सब तुरीयावस्था का लक्षण है। मुक्त होने पर यही विलक्षण प्रेम परमात्मा में हुआ करता है।

यहाँ पर मण्डपस्थानीय शरीर है, दशरथस्थानीय जीव है, अवस्था दुलहिन स्थानीय है और चारों दुलहे स्थानीय चारों विभु हैं। किन्तु जीव को चारों अवस्थायें एकवार नहीं प्राप्त होतीं और दशरथ को उन चारों का संयोग एक ही बार यहाँ हुआ है। यह उत्प्रेक्षा आश्चर्य अलंकार है। इसी प्रकार दूसरे दोहे में भी इसी तरह की उपमा दी गयी है।

मानस प्रसंग 10।

"**मुदित अवधपति सकल सुत वधुन समेत निहारी। जनु पायेऊमहिपाल मणि क्रियन सहित फलचारी** ।बा. 325।" दशरथ जी पुत्रवधुओं के साथ पुत्रों को देखकर ऐसे आनन्दित मालूम पड़ रहे हैं मानों चारों क्रियाओं के साथ चारों फल प्राप्त किये हों। यहाँ पर प्रश्न यह होता है कि केवल एक भक्तिरूप क्रिया करने से चारों पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) प्राप्त हो जाते हैं तो पुनः अन्य क्रिया करने से क्या प्रयोजन ?

उत्तर - जैसे चार भाइयों का जन्म चार रूप देह में होने पर भी भिन्न नहीं है, यथा - "**अंशन सहित मनुज अवतारा। लेइहौं दिनकर वंश उदारा** ।बा. 186।1।" इसी प्रकार **भक्ति के साथ श्रद्धा, दया, और क्षमा भी रहती है।** दशरथ जी को जैसे अपने अंशों (भाइयों) के साथ श्री राम जी मिले हैं इसी प्रकार भक्ति (श्रीजानकी) के साथ उर्मिला, माण्डवी और श्रुतिकीर्ति अवतार लीं तथा व्याही गयीं। यही भक्ति के साथ दया, श्रद्धा और क्षमा क्रिया साथ रहती हैं। यह कोई नहीं जानता था कि श्री राम जी के साथ चारों भाइयों का विवाह होगा किन्तु अनायास होकर ही रहा। इसी प्रकार मोक्ष के साथ अर्थ, धर्म और काम भी अनायास मिल ही जाता है और भक्ति के साथ श्रद्धा, दया और क्षमा प्राप्त हो जाती है। इसीलिए ज्ञानी लोग श्री राम जी में केवल भक्ति किया करते हैं तथा दूसरों को भी बताया करते हैं जिससे लोगों का कल्याण हो। "**भक्ति स्वतंत्र सकल गुणखानी। तेही मणिबिनु सुख पाव न प्राणी।** ।उ. 44।3।" "
"**न तपोभिर्न वेदैश्च न ज्ञानेनापि कर्मणा। हरिर्हि साध्यते भक्त्या प्रमाणं तत्र गोपिका।।**" भगवत्प्राप्ति के लिए वेदाध्ययन तप ज्ञान तथा यज्ञादि साधन अपेक्षित नहीं हैं अपितु केवल एक भक्ति मात्र से ही भगवान् मिलते हैं।

"**सकल भुवन मध्ये निर्धनास्तेऽपि धन्याः निवसति हृदि येषां श्री हरेर्भक्तिरेका।**

हरिरपि निजलोकं सर्वथातो विहाय प्रविशति हृदि तेषां भक्ति सूत्रोपनद्धः।।"

जिनके हृदय कमल में भगवान् की एक अनन्य भक्ति रहती है वह दरिद्र भी धन्य है और संसार में सबसे बड़ा है क्योंकि उसके लिए भगवान् अपना लोक छोड़कर भक्ति सूत्र में बंधे हुए सदा भक्त के हृदय में रहते हैं। मुक्ति अवस्था के पति देवता विभु श्री राम जी हैं, धर्म के विभु भरत जी हैं। **"जो होत जग जनम भरत को। सकल धरम धुर धरनि धरत को।** अयो. **232।1।" "सिर भरि जाऊ उचित अस मोरा। सबसे सेवक धर्म कठोरा।** अयो.**202।।" "भरत ही धर्म धुरंधर जानी।** अयो.**258।1।"** इत्यादि बचनों के द्वारा भरत को धर्म का अधिनायक होना सिद्ध होता है।

काम के विभु लक्ष्मण हैं- काम हाथों से ही किया जाता है और लक्ष्मण भी भगवान्के हाथ के तुल्य हैं-'**रामस्य दक्षिणं बाहुः।**' **"अहं सर्वं करिष्यामि जाग्रतः स्वपतश्चते।** वा.रा.अयो.**31।27।"** इसीलिए सूर्पनखा का नाक-'कान लक्ष्मण द्वारा काटे जन पर भी वाल्मीकि राम जी को ही कर्त्ता सिद्ध किये हैं।

अर्थ के विभु शत्रुघ्न हैं। अर्थ पा जाने से संतोष हो जाता है। या अर्थ किसी को नहीं खोजता फिरता तटस्थ रहता है, ऐसे ही शत्रुघ्न जी शान्त हैं कहीं कुछ भी नहीं बोले हैं। भगवान्, दशरथ जी के पुत्र होकर पूर्व तपस्या का फल दिये। किन्तु भगवान्में भक्ति नहीं होने के कारण उन्हें मोक्ष नहीं मिला। इसलिए छन्द में '**जनु**' शब्द आया है अतः मानों मिला हो ऐसा अर्थ होता है।

मानस प्रसंग 11।

"मिलत महा दोउ राज विराजे। उपमा खोज खोज कवि लाजे।।
लही न कतहु हारि हिय मानी। इन सम यह उपमा उर आनी।।
समधि देखि देव अनुरागे। सुमन वरषि यश गावन लागे।।
जग विरंचि उपजावा जबते। देखे सुने व्याह बहु तबते।।
सकल भाँति सब साज समाजू। सम समधी देखा हम आजू। बा. **319।1एवं 2।"**

ये सभी चौपाइयाँ श्री राम जी के विवाह में दशरथ और जनक जी के परस्पर मिलन काल की है। देवता लोग दोनों राजाओं के मिलन को देखकर कहते हैं कि हम सब आज ही सम समधियों का मिलन देखा। याने दोनों समधी एक ही समान हैं। इस देश में विवाहे जाने वाले वर कन्याओं के पिता को समधी या सम्बन्धी कहा जाता है। यह शब्द इस अर्थ में योगरुढ़ है। समान धी (बुद्धि) वाले को भी समधी कहते हैं। यहाँ पर '**सम समधी**' के अर्थ में यह प्रश्न होता है कि दोनों समधियों में किन किन बातों की समानता है जिससे सम समधी कहा गया है।

यद्यपि दोनों राजाओं में कुछ अंशों में विषमता भी पायी जाती है। जैसे - **1**। दशरथ जी चक्रवर्ती राजा हैं और जनक जी मण्डलवर्ती तो राज्य लेकर दोनों में समानता नहीं है। **2**। **"सुरपति वसहिं बाहुवल जाके। नरपति रहहिं सकल रुख ताके।** अयो.**24।1।"** इससे दोनों में बल की समानता नहीं है। **3**।**"सुरपति जेहि आगे करि लेहीं। अर्घ सिंहासन आसन देहीं।** अयो. **97।2।"** इससे मान-'प्रतिष्ठा में भी दोनों में समानता नहीं है। **4**। इक्ष्वाकुकुल भागवत धर्मावलम्बी हैं। इस कुल के इष्टदेव भगवान रंगनाथ जी हैं जो दशरथ पर्यन्त इस कुल में रहे। **"निज कुल इष्टदेव भगवाना। पूजा हेतु कीन्ह पकवाना।** बा.**200।1।"** जनक कुल शैव हैं इसी से इनके पूर्वज देवरात को शिव जी ने धनुष दिया था जिसको श्री राम जी ने तोड़ा। इस तरह उपासना उपास्य देव लेकर दोनों में भेद पाया जाता है। **5**। दशरथ जी साठ हजार वर्ष व्यतीत होने पर यज्ञादि द्वारा पुत्र प्राप्त किये थे। जनक जी इतने दीर्घायु नहीं हैं। **6**। **"कश्यप अदिति महातप कीन्हा। तिन्हकहँ मैं पूरब वर दीन्हा।। ते दशरथ कौशल्या रूपा। कौशलपुरी प्रगट नर भूपा।** बा. **186।2।" "भे कोउ अहहिं न होनेउहारा। भूप भरत जस पिता तुम्हारा।** अयो. **172।3।"** याने त्रिकाल में भी दशरथ जी के तुल्य कोई नहीं हो सकता है तो फिर जनक जी से समानता कैसी ! इत्यादि विषयों में विषमता पायी जाती है।

किन्तु अधिकांश विषयों में समानता पायी जाती है। यथा -1।श्री राम जी के परत्व लेकर दोनों में समानता है। "**गिरा अर्थ जलवीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न। बन्दौ सीताराम पद जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न**। बा. 18।" यहाँ जल वीची के उदाहरण से दोनों एक हैं केवल कथन मात्र से भिन्न हैं। ऐसे एक वस्तु से आधा श्री राम को दशरथ पाये और आधा सीता जी को जनक पाये, अतः दोनों समान समधी हुए। **2**।ब्रह्मा जी श्री राम जी से कहे हैं '**भगवन्नारायण साक्षात्**' और ऐसे नारायण(श्री राम जी) के पिता दशरथ जी हुए। और लक्ष्मी ही '**रामरूपे भवेत्सीता रुक्मिणी कृष्ण जन्मनि**। वि पु **1**।**9**।**144**।' अर्थात् लक्ष्मी (सीता) के पिता जनक जी हुए। अतः ईश्वर और ईश्वरी के पिता होने के कारण दोनों सम समधी हुए। **3**।इन दोनों के समान लक्ष्मी और नारायण का पिता कोई नहीं हुआ। अतः कवि कहता है कि "**उपमा खोज खोज कवि लाजे**" परन्तु आज संयोग वश "**इनसम ये उपमा उर आनी**" जैसे "**गगनं गगनाकारम् पर्वतं पर्वतोपमम्**" अर्थात् आकाश की उपमा आकाश से ही दी जा सकती है और सुमेरु की उपमा सुमेरु से ही। इसी प्रकार दशरथ की उपमा दशरथ ही हैं। इसी दूरदर्शिता को लेकर देवगण कहते हैं कि मनुष्य देवताओं का विवाह तो बहुत देखा लेकिन लक्ष्मी नारायण का विवाह देखने का आज ही सुअवसर प्राप्त हुआ है। दोनों अनुपम हैं किन्तु इस समय दशरथ के समान जनक और जनक के समान दशरथ हैं। यही समानता से सम समधी हैं। **4**।जीवात्मा की सुकृति दुष्कृति अदृश्य होकर आत्मा से सम्पर्क रखती है किन्तु दशरथ और जनक की सुकृति पृथक् मूर्तिमान् होकर प्रत्यक्ष "**दशरथ सुकृत राम धरि देही।जनक सुकृति मूरति वैदेही**।बा. 309।1।" राम जानकी रूप में विद्यमान हैं। अपनी अपनी सुकृति को दोनों देखने वाले हैं, अतः समान हैं। **5**।दोनों के अयोनिज पुत्र पुत्री हैं रामजी 'खीर से हुए' तो सीता जी 'धरती' से हुई। "**निज इच्छा निर्मित तनु**।बा.द192।" "**आप प्रगट भए विधि न बनाये**" ऐसे अयोनिजों को अपना पुत्र पुत्री मानना इस विचार विषय में समानता होने से दोनों सम समधी हैं। **6**।शास्त्रों में '**अर्द्धेन नारी तस्य स्यात्अर्द्धेन पुरुषोऽभवत्**' याने ब्रह्म आधी देह से पुरुष और आधी देह से स्त्री रूप में जनक जी को प्राप्त हुए। इससे भी दोनों में समानता है। **7**। "**मिले जनक दशरथ अति प्रीति**।बा.319।1।" अर्थात् दशरथ और जनक दोनों के हृदय में प्रेम का समुद्र उमड़ रहा था। आज जिस गद्‌गद हृदय से मिले हैं पूर्व में न तो दशरथ को प्राप्त हुआ और न जनक को। "**जासु विरचि बड़ भयेउ विधाता। महिमा अवधि राम पितु माता**।बा. 15।4।" जो दशरथ जी पुत्र के लिए लालायित थे किन्तु आज पुत्र के विवाह महोत्सव में खड़े हैं और उनसे जनक जी का मिलन हो रहा है। दोनों के हृदय में परम प्रेम है, अतः समानता है। **8**।सभी लक्षण सम्पन्न बाराती के योग्य साराती और साराती के योग्य बाराती अतः दोनों पक्ष के नायकों में समानता है। यह बारात महादेव जी के बारात के सदृश नहीं है कि "**विपुल नयन कोई नयन बिहीना**। बा. 92।4।" "**जमकर धार किधौं बरियाता**। बा. 94।4।" "**जो जियत रहहीं बरात देखत पुण्य बड़ तेहि कर सही**। बा. 94।छंद।" "**बालक सब ले जीव पराने**।बा. 94।3।" ऐसी भयावनी बारात यह नहीं है किन्तु अत्यन्त उत्तमता के कारण प्रियदर्शन होने से देवगन कहते हैं कि हम सब एक समान अति प्रेम से देखा। अर्थात् समान धी (बुद्धि) से हम सब ने बारात की सुन्दरता का अवलोकन किया है, इससे समधी शव्द आया है।

10।'**देखा हम आजु**' - कहने का भाव यह है कि इसके पूर्व बहुत से देवतओं के विवाह में बड़े से बड़े समधियों को देखने का अवसर मिला। जैसे महादेव जी के विवाह में वर के पिता चतुरानन ब्रह्मा और कन्या के पिता हिमाचल पर्वत। इन दोनों समधियों में आकाश पाताल का अन्तर था। ऋषि श्रृंग के पिता विभाण्डक और कन्या के पिता रोमपाद, इन दोनों को तो मिलने का संयोग ही नहीं हुआ। विषमता तो थी ही। इसी प्रकार सर्वत्र बारातियों में वे सब विषम समधियों को ही अभी तक देखे हैं और आज "**जग विरंचि उपजावा जब ते**" बहुत दिनों के बाद सम समधी देखने को मिले हैं।

"**कर्म प्रधान विश्व कर राखा**।।" याने विश्वमात्र अपना अपना कर्मफल भोगने के लिए इस संसार में जन्म ग्रहण करता है किन्तु राम जानकी कर्माधीन नहीं, स्वतन्त्र हैं बल्कि कर्म के भी नेता दोनों के प्रापक दोनों सम हैं। दशरथ और जनक इस मिलन के पूर्व कभी भी इस अनुराग से किसी से नहीं मिले और न कोई अन्य समधी से इसके पूर्व मिले हैं। दोनों के अपूर्व मिलन का आज सुअवसर

है। दशरथ जी का जैसा प्रेम पुत्र में है वैसा ही पुत्रवधू में भी है और जनक जी का जैसा प्रेम जानकी में है वैसा जामाता (श्री राम जी) में है। इसी से दोनों समान हैं। **11**। राम जानकी के अर्न्तदेव हैं और जानकी राम की अर्न्तदेवी। दशरथ के यहाँ जानकी अन्तरिक्ष होकर रहती हैं और जनक के यहाँ रामजी अन्तरिक्ष होकर रहते हैं। अर्थात् दोनों के घर राम-जानकी हैं अतः समानता है। इस प्रकार दोनों में कुछ अंशों में विषमता होते हुए भी श्रीराम जानकी के परत्व (यहाँ उत्कृष्ट) विषय को लेकर अधिकांश मात्रा में समानता होने के कारण समसमधी पद आया है। यथा - राम लखन की जोड़ी, "**द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया** । श्वेताश्वतर उपनिषद **4**।**6**।"

मानस प्रसंग 12।

"**सूयोदन सुरभी सरपी सुन्दर स्वादु पुनीत। छनमहँ सबके परसि गे चतुर सुआर विनीत** । बा. **328**।" यह दोहा जनकपुर में बारात के भोजन के समय का है। इससे पहले "**आसन उचित सबहिं नृप दीन्हें। बोलि सूपकारी सब लीन्हें।। सादर लगे परन पनवारे। कनक कील मणि परन सवँरे** । बा.**327**।**4**।" राजा जनक जी ने सबों को उचित आसन देकर सभी पाक बनाने वालों को बुलाया और आदर के साथ पत्तलें दिलवाने लगे। उन पत्तलों में सोने की कीलें लगी थीं और कीलों के ऊपर के भाग मणियों से जड़ा हुआ था। पत्तलों में ही भोजन की विधि शास्त्रों में वर्णित है। पत्तलों में भोजनार्थ पवित्र सुन्दर स्वादिष्ट भात दाल और गाय का घी चतुर रसोइये सबों को क्षणभर में परोस गये। परोसक परोसने की विधि जानते थे इसीलिए चतुर शब्द आया है।

परोसन विधि ः- शाकादीन पुरतः स्थाप्य भक्ष्य भोज्यन्तु वामतः। अन्नं मध्ये प्रतिष्ठाप्य दक्षिणे घृत पायसम्।। याने पत्तल के मध्य में भात और दाल, आगे शाकादि बारा बजका पापर तिलौरी दनौरी आदि वाम भाग में तथा दूध दही रावड़ी आदि दायें भाग में परोसे। भोजन की सामग्री भगवान्‌का भोग लगाया हुआ था। इसीलिये पवित्र शब्द आया है। भगवान् का भोग लगा प्रसाद सेवन करना चाहिए। "**यत्करोषि यत्अश्नासि यत् जुहोषि ददासि यत्। यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्य मदर्पणम्** । गी. **9**।**27**।" भगवान् कहे हैं मेरे निमित्त कर्म करो, मुझे अर्पण कर भोजन करो। "**यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः** । गी.**3**।**13**।" ऐसा करने से सभी पापों से छुटकारा मिल जाता है। '**सुरभि सरपी**' का भाव यह है कि गौ का घी या दूध का किंचित अंश जबतक शरीर में रहता है तब तक पाप स्पर्श नहीं करता। '**पयो दधि च मासेन षड्मासेन घृतं तथा**' दूध दही का अंश एक मास में और घी का अंश छः मास में मिटता है। इसीलिए पवित्रकारक गौ का घी परोसा गया था। '**परसिगे**' यह क्रिया समाप्ति सूचक पद है अर्थात् उपरोक्त वस्तुओं के परोसे जाने पर पुनः "**भाँति अनेक परे पकवाना। सुधा सरिस नहीं जाहिं बखाना।। परसन लगे सुआर सुजाना। व्यंजन विविध भाँति को जाना** । बा.**328**।**2**।"

इसके पश्चात् चतुर विज्ञ अयोध्यावासी "**पंच कवल करि जेवन लागे** । बा.**328**।**1**।" अर्थात् भोजन के पूर्व पंचकवर (आपोसन) कर भोजन करना चाहिए। अन्यथा

"**पात्रमध्ये यथा पात्रं हस्तमध्ये यथा घृतम्। आपोषणं विनाभुंक्ते त्रयः गो मांस भक्षणं।।**" एक पात्र में दूसरा पात्र रखकर, हाथ के मध्य में घी रखकर तथा पंचकवर किये बिना जो भोजन किया जाता है वह सब गोमांस के तुल्य हो जाता है। पंचकवर की विधि यों है।

"**ध्यात्वा हृत्पंकजं विष्णुं सुधांशु सदृश द्युतिम्। पादोकदं हरेः पुण्यं तुलसीदल मिश्रितम्।।**
अमृतोपस्तरणमसि इति मंत्रेण प्राशयेत्। उद्दिश्यैव हरिं प्राणाज्जुहुयात्सघृतं हविः।।
तर्जनीमध्यमाङ्गुष्ठैः प्राणयेति यजेद्धविः। मध्यमानामिकङ्गुष्ठैः अपानायेत्यनन्तरम्।।
कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैः व्यानामेत्याहुतितनः। कनिष्ठतर्जैन्यङ्गुष्ठैः उदानायेति वै यजेत्।।
समानायेति जुहयात्सर्वैरङ्गुलिभिर्द्विजः। ध्यायेन्नारायणं देवं भोजनन्तु यथा क्रमम्।।
वक्त्रादयातयन्ग्रासं चिन्तयन्मधुसूदनम्।।

पहले हृदय कमल में चन्द्र के समान प्रकाशमान्विष्णु भगवान्का ध्यान करके तीर्थ या तुलसीदल लेकर "ॐ अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा" कह कर पी लेवे। पश्चात्मैं भगवान्को भोग लगाता हूँ ऐसा मन में समझते हुए थोड़ा हवि या घी मिश्रित प्रसाद अंगूठा, तर्जनी और मध्यमा इन तीन अंगुलियों से उठाकर मुँह में लेकर निगल जावे, दाँतों से चबाना नहीं चाहिए। इसको निगलने के समय 'ॐ प्राणाय स्वाहा' यह मंत्र बोले। पुनः अनामिका मध्यमा और अंगूठा से पूर्ववत्थोड़ा सा हवि 'ॐ अपानाय स्वाहा' यह कहकर निगल जाये। इस प्रकार कनिष्ठा अनामिका और अंगूठा से 'ॐ व्यानाय स्वाहा' कहकर निगल जाये। अंगुठा तर्जनी और कनिष्ठा से 'ॐ उदानाय स्वाहा' कहकर निगले और पाँचों अंगुलियों से 'ॐ समानाय स्वाहा' कहकर निगल जावे। पश्चात् थोड़ा जल लेकर पुनःआचमन कर तब भोजन करे। इसी को पंचकौर करना कहते हैं। भोजन के साथ घी तथा हविष्य का रहना अनिवार्य नहीं है बल्कि भोजन के लिए जो कुछ भी रुखा-सूखा प्रसाद आगे आया हो उसी से पंचकौर करके भोजन करना चाहिए।

"अश्नीयात्तन्मना भूत्वा पूर्वंतु मधुरं रसम्। लवणाम्लौ तथा मध्ये कटुतिक्तौततः परम्।।"

यदि भोजन में सभी प्रकार की सामग्रियाँ मौजूद हो तो पहले मधुर पदार्थ भोजन करना चाहिए, पश्चात् खट्टा और नमकीन, इसके पश्चात् कटु और तिक्त और अन्त में मधुर रसयुक्त पदार्थ तथा पेय वस्तु को खाये पीये।

"उपलिप्ते शुभे देशे पादौ प्रक्षाल्य वाग्यतः। भूमौपात्रं प्रतिष्ठाप्य यो भुंक्तेऽवाग्यतः शुचिः। त्रिरात्रफलमश्नुते।।"

याने लीपी हुई भूमि पर बैठ भूमि पर ही पत्तल रखकर जो मौन हो भोजन करता है वह एक दो ग्रास में त्रिरात्र (तीन रात्रि से सम्बन्ध रखनेवाला) व्रत का फल प्राप्त करता है। इसी से "आसन उचित सबहिं नृप दीन्हें" सबों को भोजन काल में भूमिपर ही उचित आसन दिया गया है। भोजन के पूर्व अतिपवित्र होना अनिवार्य है। क्योंकि -

"अस्नात्वासमलं भुङ्क्ते त्वजापीपूयशोणितम्। अहुत्वा च क्रिमिंभुक्ते ह्यदत्त्वाऽमेध्यमेव च।। बिना स्नान किये भोजन मलमूत्र के बराबर है, गायत्री या मूलमन्त्र जपे बिना जो खाता है वह लहू-पीव के तुल्य है, हवन किये बिना जो खाता है वह कीड़ा खाने के तुल्य है और बिना अतिथि को कुछ दिये जो खाता है वह अपवित्र होता है। "पादुकस्थोनभुंजीत पर्यके संस्थितोऽपिवा। शुनाचाण्डाल दृष्टीव्यत्भोजनं परिवर्जयेत्।" खड़ाऊँ - खटिया, कुर्सी - टेबुल, चौकी के ऊपर तथा कुत्ता चाण्डालादि का देखा हुआ खाना मना है। 'न धार्य सन्धितंवस्त्रं भोजने यज्ञकर्मणि' भोजन तथा यज्ञके समय सीया हुआ कपड़ा नहीं धारण करना चाहिए। 'नैकवस्त्रो द्विजः कुर्यात्भोजनञ्च सुरार्चनम्' द्विजमात्र (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) को एक वस्त्र धारण करके भोजन तथा देवपूजन नहीं करना चाहिए। जातिदुष्ट (श्वेत बैगन, प्याज लहसुनादि), क्रियादुष्ट (अपवित्रतापूर्वक बिना नहाये बनाया भोजन), संसर्गदुष्ट (चाण्डालादिकों का देखा हुआ), भावदुष्ट (बिना प्रेम तथा अहंकारपूर्वक बनाया हुआ) अन्न को नहीं खाना चाहिए। "नीली रक्तेनवस्त्रेण यदन्नमुपनीयते। अभोज्यं तद्विजानीयात्भुक्त्वा चान्द्रायणंचरेत्।।" नील वस्त्र चौखानी आदि पहनकर बनाया हुआ या लाया हुआ नहीं खाना चाहिये। यदि खाये तो चान्द्रायण व्रत करके शुद्ध होना पड़ेगा। "शुक्लाम्बरधरोनित्यं सुगन्धिप्रियदर्शनः" अर्थात् स्वच्छ पवित्र एवं सुगन्धित वस्त्र धारण करना चाहिए। उपरोक्त सभी आचरणीय व्यवहारों में कुशल जनक जी के सभी सुआर (पाचक) थे। इसी से दोहा में इन सबों के विशेषण में चतुर सुआर तथा विनीत पद आया है।

मानस प्रसंग 13।

"चरण कमल रजकहँ सब कहई। मानुष करनि मूरि कछु अहई।।
छुअत शिला भई नारि सुहाई। पाहन ते न काठ कठिनाई।।
तरनिउ मुनि घरनि होई जाई । बाट परइ मोरि नाव उड़ाई।।
यहि प्रतिपालऊँ सब परिवारू। नहीं जानई कछु और कवारू।।
जो प्रभु अवसि पार गा चहहू। मोहि पद पदुम पखारन कहहु। अयो. 99।1 से 4।"

"पद कमल धोई चढ़ाउँ नाव न नाथ उतराई चहौं। मोहि राम राउरि आन दशरथ सपथ सब साँची कहौं।
वरु तीर मारहु लखनु पै जब तक न पाँव पखारिहौं। तबलगि न तुलसीदास नाथ कृपालु पार उतारिहौं। अयो.99 छंद।"

"सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे। बिहँसे करूणा ऐन चितये जानकी लखन तन। अयो.100।"

कृपासिन्धु बोले मुसकाई।सोई करहु जेहि तव नाव न जाई। अयो.100।1।"

श्री रामचन्द्र जी जंगल जाते समय जब श्रृंगबेर पहुँचे हैं और गंगा पार जाने के लिए निषादराज से नाव माँगते हैं उसी समय के उसके प्रेमोद्गार की उपरोक्त चौपाई दोहे इत्यादि हैं। भगवान्श्री रामचन्द्र जी से निषादराज कहता है - भगवन् ! आपके चरणकमल की धूलि को लोग मनुष्य बनाने की मूरि (जड़ी-बूटी) कहते हैं। प्रत्यक्ष प्रमाण में पत्थर की शिला (शापित ऋषिपत्नी अहल्या) सुन्दरी स्त्री बन गयी तो काठ की मेरी नाव पत्थर से कठिन तो नहीं है। यदि कहीं यह भी मुनिपत्नी बन गयी तो सार्व जनिक आवागमन अवरुद्ध हो जायेगा और मेरी जीविका मारी जायेगी। मैं अन्य कोई दूसरा उद्यम नहीं जानता, अतः मेरे सभी परिवार भूखे मरेंगे।इसलिए हे प्रभो ! यदि आप अवश्य पार जाना चाहते हैं तो पहले मुझे अपने चरणकमल धोने की आज्ञा दें।

प्रभु इसलिये कहता है कि राजा के पुत्र हैं, सामर्थ्यशाली हैं, यदि चाहें तो इस गंगा को हेलकर या सुखाकर भी पार कर सकते हैं किन्तु मर्यादा पुरुषोत्तम के नाते इसको सुखाकर या लांघकर भी नहीं जा सकते। गंगा इनके पूर्वजों के उद्धारक हैं, अतः नाव से ही पार जा सकते हैं। सत्यप्रतिष्ठ हैं इसलिए लौट भी नहीं सकते। ऐसा गरजवन्द समझकर यह भी कहता है कि **"जो प्रभु अवसि पार गा चहहू।मोहि पद पदुम पखारन कहहु।"** इत्यादि।खेवाई भी नहीं लेना चाहता किन्तु पैर धोना अवश्य चाहता है और अपने कथन को सत्य साबित करने के लिये शपथ भी कर रहा है। निषादराज यह भी जान रहा है कि इस समय गंगा पार करने में जो मैं खटपट लगा रहा हूँ वह लखनलाल को असह्य भी हो रहा होगा क्योंकि भगवान्के मन के प्रतिकूल कार्य इन्हें असह्य होता ही है। यही तैजस इनका स्वाभाव है। मैं इनकी प्रजा हूँ , बिना कहे पार कर देना उचित था किन्तु कहने पर भी जो अगर मगर कर रहा हूँ वह अवश्य इन्हें क्रोधित कर रहा होगा। अतः यह भी कहता है - **"वरु तीर मारहि लखनु पै जब तक न पाँव पखारिहौं"**। हे नाथ ! इस अवसर पर मेरी अड़चनों से क्रोधित हो लखन जी यदि मुझे बाण भी मारेंगे तो भी चरन धोये बिना मैं पार नहीं करूँगा।

अपना स्वामी होने से नाथ, और इतना हठ करने पर भी क्षमा कर रहे हैं, अतः कृपाल शब्द निषाद उच्चारण कर रहा है। यही कृपाल शब्द सुनकर भगवान् हँसते हैं **'बिहँसे करुणा ऐन।'** निष्प्रयोजन तथा असंगत बोलने को अटपट कहते हैं। यही अटपट यहाँ निषाद कर रहा है क्योंकि यदि पाँव धोना ही था तो चुपचाप धो लेता। काठ की नाव से भ्रम था तो थाली में ही धो लेता सो नहीं कर झंझट कर रहा है। अहल्या का उदाहरण देता है। यह भी सुना ही होगा कि **"मुनि शाप जो दीन्हा**।बा.210।छं3।" इस प्रकार उसकी नाव शापित तो नहीं थी। पगधूरि को मानुष करनि मूरि कहता है और नाव के काठ को पत्थर से कोमल बताता है किन्तु काठ से भी कोमल मिट्टी तृणादि श्री राम जी के चरणों या चरणों की धूलि का स्पर्श पाकर मुनि पत्नी नहीं बन गये तो काठ की तो बात ही क्या। रास्ता बन्द होने की बात उपस्थित करता है याने दीन-हीन एक ही नाव का नाविक हूँ ऐसा सूचित करता है।

किन्तु यही निषाद भरत जी को गंगा पार के समय **'रात ही रात घाट की तरनी'** और **"चार दण्डमहँ भा सब पारा**।अयो.201।5।" यह तो मल्लाहों का मुखिया था। इसके पास बहुत सी नावें थीं। इसी से सबों को एक ही बार में पार कर दिया। तो यहाँ रास्ता बन्द की बातें करना, नाव खेना छोड़ दूसरा कोई उद्यम नहीं जानना यह बहाना करना, उतराई नहीं लेने की बात कह उनको प्रसन्न करने की चेष्टा करना अटपटा का द्योत्तक था। शपथ स्वयं या स्वकीय परिवारों को लेकर नहीं करता किन्तु दशरथ को ही रखता इत्यादि बातें उलटी पुलटी हैं। इसलिये अटपट की बाते हैं। उपरोक्त निषादराज का कथन यद्यपि अटपट है फिर भी प्रेम लिपटा हुआ है। किसी वस्तु को सर्वत्र से बाँधने को लपेटना कहते हैं। निषाद के अटपट वचनों द्वारा प्रेम ही वेष्ठित है अथवा प्रेम द्वारा अटपट वचन ही वेष्टित है। **'चितै जानकी लखन तन'** का भाव है कि श्री राम जी जानकी तथा लछुमन को यह सूचित करते हैं कि तुम लोग यह देखो।

"नरसहस्र महँ सुनु उरगारी। कोई एक होहिं धरम ब्रतधारी।।
धर्मशील कोटिन्ह महँ कोई। विषय विमुख विराग रत होई।।
कोटि विरक्त मध्य श्रुति कहई। सम्यकज्ञान सुकृति कोई लहई।।
ज्ञानवन्त कोटिन्ह महँ कोई। जीवन्मुक्त सकृत जग सोऊ।।
तिन सहस्र महँ सब सुख खानी। दुर्लभ ब्रह्मलीन मुनि ज्ञानी।।
धर्मशील विरक्त अरु ज्ञानी। जीवन्मुक्त ब्रह्म पर प्राणी।।

सबसे सो दुर्लभ सुर राया। राम भक्ति रत गत मद माया। उ.53।1 से 4।" ज्ञानी, धर्मात्मा, विरक्त एवं भगवत्परायण में से किसी एक को भी भक्ति मिलना कठिन है। वही मुनि दुर्लभ भक्ति का यह अधिकारी बनना चाहता है। कहाँ तो इसकी अटपट बोली और कहाँ वह पराभक्ति। किन्तु आज इस पग को धोने के मिस से इसका अधिकारी बनना चाहता है। आज तक ब्रह्मा, जनक या तुम दोनों ही इसके अधिकारी थे। किन्तु यह सभी परिवारों के साथ उस अधिकार को स्वयं प्राप्त करना चाहता है, जो किसी को पुरुषकार किये बिना नहीं मिलता है। भगवान् निर्हेतुक कृपा प्राणियों के ऊपर किया करते हैं। अतः स्वयं जानकी और लक्ष्मण को केवट की शरणागति में पुरुषकारी बनने के लिए प्रेरित कर रहे हैं। या नियमानुकूल केवट को शरणागत बनाने में पुरुषकारी इन दोनों से अनुमति चाह रहे हैं, कि तुम लोग शेष और लक्ष्मी दिव्य होने के कारण अनादिकालिक हमारे पग के अधिकारी हो। किन्तु यह प्राकृत पुरुष होते हुए भी तुम सबों का यह हिस्सेदार बन दिव्य बनना चाहता है। अतः अपनी अनुमति प्रदान कर इसको अंगीकार करना चाहिए।

प्रथम जानकी पद और पीछे लखन पद का प्रयोग किया गया है। इसका भाव यह है कि उक्त प्रसंग में निषाद लखन जी के सम्बन्ध में यह कहा कि **"बरु तीर मारहि लखन पै...**।अयो. 100।" इससे परम भागवत लखन जी के प्रतिवाचिक अपराध कर चुका है। क्योंकि बिना तमोगुण के हिंसादि कार्य नहीं हो सकता तो लखन लाल में तमोगुण और घातक दोनों दोष लगाया। ऐसी परिस्थिति में भगवान् सोचे कि हमारी कृपा तो इस पर है ही, किन्तु भागवत अपराधी को कैसे स्वीकार करूँ, इसलिये मातृगुण गौरवता जानकी जो को पहले कहकर तब आचार्यगुण गौरवता प्रधान लखन को पीछे कहा है। भाव यह है कि जानकी जी को अपराध क्षमा करवाने के लिए इंगित कर रहे हैं और लखन जी को अपराध क्षमा करने के लिए। तथा दोनों के मुखारविन्द को देखकर राम जी विहँसे इससे यह भी सिद्ध हुआ कि दोनों पुरुषकारी निषाद का अपराध क्षमा कर दिये जिससे अत्यंत प्रसन्नता होने के कारण श्री राम जी हँस रहे हैं।

अथवा प्रेम लपेटे अटपटे बैन सुन, जानकी लखन तन और करुणा अयन केवट के चितये विहँसे। याने जानकी यह सूचित करती हैं कि लखन लाल यह भगवान्के स्वभाव को तो देखो, कि एक तो निर्हेतुक कृपा द्वारा ही निषाद को दर्शन दिये। किन्तु वह अटपटे ही कर रहा है फिर उसका कृपाल आदि शब्द सुनकर अपनाना चाहते हैं। यह भी उसका भाव हो सकता है।

निषाद के हृदय में प्रेम था, वह मानसिक सेवा हुई। कृपालु कहकर कृपागुण वर्णन द्वारा वाचिक सेवा किया, और पाँव धोकर कायिक सेवा करना चाहता है। निषाद को वचनों को सुनकर भगवान् हँसे, यह जानकी जी लखन को सूचित करती हैं कि देखाो, भगवान्के जिस मुखमुस्कान को देखने के लिए ब्रह्मा रुद्रादि लालायित रहते हैं और वह प्राप्त नहीं होता वही आज इसको प्राप्त हो रहा है, अतः यह बड़भागी है। जानकी लखन से यह सूचित करती हैं कि शेषी परमात्मा शेषवस्तु (जीव)को अंगीकार कर रहे हैं।

"करुणा अयन" इसलिए कहा गया है कि योगी, मुनि तथा मनस्वियों को सतत भगवत्प्राप्ति का प्रयास करने पर भी स्वप्न में भी भगवान् नहीं मिलते। किन्तु घर बैठे सभी परिवारों के साथ इस छुद्र हिंसक जाति को दर्शन दे, कृतार्थ किया है। करुण शब्द का प्रयोग करने में भी हेतु है कि निषाद श्री राम जी से यह कहा है कि **"यह घाट ते थोरिक दूर अहै कटिलौं जलथाह बताइहौं जू।** कवितावली

अयोध्या 6 ।" षदि आपको पाँव धुलवाना स्वीकार नहीं हो, तो यहाँ से हटकर थोड़ी ही दूर पर कटिमात्र जल है जिसे बताता हूँ, आप पार हो जायें। मालूम पड़ता है कि भगवान्को यहाँ से हटाना चाहता है, किन्तु इसके ऊपर भगवान् का इतना प्रेम है कि इससे अपमानित होते हुए भी नहीं छोड़ रहे हैं। बल्कि हँसते हुए यह कहते हैं कि "सोई करु जेही तव नाव न जाई । अयो.100 ।1 ।"तुम वही काम करो जिससे तुम्हारी नाव न उड़ जाये।

पहले निषाद पैर धोने के लिए आज्ञा करवाना चाहता था। किन्तु सीधे आज्ञा देना मर्यादा पुरुषोत्तम को उचित नहीं था, अतः निषाद के ऊपर ही उस कार्य का दायित्व रख छोड़े। इसीलिए कृपासिन्धु पद आया है। जानकी और लखन की ओर श्री राम जी को देखने का यह भी भाव है कि ब्रह्मा तो अपनी पवित्रता तथा गंगा की उत्पत्ति के लिए पाँव धोये थे। जनक कन्या दान के प्रसंग में पाँव धोये थे। किन्तु इसे तो इन सबों से कोई प्रयोजन नहीं है, अतः पैर धोने में इसके हृदय में कुछ दूसरा ही भाव है। या ब्रह्मा जो पाँव धोये उससे यह गंगा निकली, किन्तु इस गंगा से इसे तृप्ति नहीं, जिससे इसे यह अवहेलना कर रहा है, इसमें इसे विश्वास नहीं, तबतो पुनः पाँव धोना चाहता है। यदि ऐसा हुआ करे, तो गंगा का माहात्म्य ही नष्ट हो जायेगा, अतः एक ओर तो यह संकोच और दूसरी ओर इसके प्रति प्रेम का संकोच, ऐसी परिस्थिति में क्या करूँ यही अनुमति चाहते हैं। **"अन्यक्षेत्रे कृतं पापं पुण्य क्षेत्रे विनश्यति। पुण्यक्षेत्रे कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति।।"**

यह निषाद गंगा किनारे रहकर कच्छ मच्छ का हनन रूप पाप सदा किया करता है, इससे तो इसका पाप वज्रलेप हो गया है। पाँव धोने से तो छूटेगा नहीं, इसको सीधे पाँव पर गिर, शरणागति करना चाहिए था, यह भूल कर रहा है, अतः तुमलोग इसे सम्भालो जिससे यह शरणागति करे।

श्री राम जी का निषाद के यहाँ जाना चेतनों पर निर्हेतुक कृपा करना है। उसके अटपट वचनों को सुनना भक्तों के हृदय के भावों को समझ वाह्य वृत्ति को मन में नहीं लाना झलकता है। जैसे घण्टाकर्णादि के प्रति। इसीसे भगवान्का नाम अज्ञाता है। पगधोने का आग्रह चेतनों के उपजीव्य भगवत कैंकर्य की प्रार्थाना है। पग धुलवाकर पार करवाना सबविधि चेतनों को याने शेष वस्तु को शेषी अपनाया है तथा उपजीव्य वस्तु प्रदान किया है यह ज्ञात होता है **"सो कृपालु केवट ही निहोरा। जो कीन्हें महि पग ते थोरा** । अयो.100 ।2 ।"

मानस प्रसंग 14 ।

भरत जी के साथ भगवान का अटूट प्रेम क्यों ? भरत जी अपना नीचानुसन्धान तथा भगवान का गुणानुसन्धान है। **"यद्यपि मैं अनभल अपराधी। भई मोहि कारण सकल उपाधि** । अयो. 182 ।2 ।" मैं अशुभ तथा बड़ा अपराधी हूँ क्योंकि मेरे ही कारण श्री राम जी जंगल गये, पिता की मृत्यु हुई, माताओं को संताप हुआ, इन सब उपद्रवों का मूल मैं ही हूँ। ऐसे भरत जी अपने विषय में नीचानुसन्धान करते रहते हैं। और भगवान्के विषय में **"तदपि शरण सन्मुख मोहि देखी। क्षमि सब करिहहिं कृपा विशेखी** । 182 ।2 । अर्थात् अपराध पात्र मुझे रहते हुए भी भगवान् मुझे सन्मुख शरणागत देखकर मेरे सभी अपराधों को क्षमा कर विशेष कृपा करेंगे। क्योंकि - **"शील सकुच सुठि सरल सुभाउ। कृपासनेह सरल रघुराउ** । अयो.182 ।3 ।" सुशीलता, सरलता, पवित्रता, प्रेम, कृपा तथा संकोचादि भगवान्के स्वाभाविक गुण हैं। ये सब कल्याणगुण परमात्मा में स्वतः उत्पन्न होकर सतत रहा करते हैं।

बड़े होते हुए भी छोटों से मिलना जुलना शील कहलाता है। इसी को कुरेश स्वामी यों कहें हैं - **"शीलः क एष तव हन्त ! दयैकसिन्धो क्षुद्रे पृथक्जनपदे जगदण्डमध्ये। क्षोदीयसोऽपि हि जनस्य कृते कृतित्वमत्रावतीर्य ननु लोचन गोचरोऽभूः** । अतिमानुष 10 ।" आप ने अखिल ब्रह्माण्डनायक होकर भी अवतार ले क्षुद्र कोल भील किरातादिकों के घर जाकर दर्शन दिया और उन सबों के क्षुद्र सेवा के वश होकर सदा कृतज्ञ बने रहे।

"बारहिं बार गिद्ध शबरी के बरणत प्रीत सुहाई । वि.पत्रिका 165 ।" **"ए सब सखा सुनिय मुनि मोरे। भये समर सागर कहँ बेरे** । उ. 7 ।4 ।"

"वासुदेवः संकर्षणः प्रद्युम्नः पुरुषः स्वयम्। अनिरुद्ध इति ब्रह्मन्मूर्तिव्यूहोऽभिधीयते।।
स विश्वस्तैजसः प्राज्ञस्तुरीय इति वृत्तिभिः। भा 12।11।22।" लक्ष्मण जी को तैजस प्रकृति के होने के कारण उनके मुख से ऐसा वचन निकला है। क्योंकि "जेही बस नर अनुचित करहीं...।बा. 277।" इस प्रसंग में वाल्मीकि रामायण में दोषों की गणना यों की गयी है, जिन दोषों के चलते लक्ष्मण को क्रोधित होना उचित जँचता है।
1। भरत के नाना अश्वपति का दोष कैकेयी से विवाह के पूर्व ही अयोध्या का राज्य दशरथ जी से भरत को दिलवाना। तथा यह कभी विचलित न होवे इसके लिए कुटनी मंथरा को कैकेयी के साथ अयोध्या भेजना। 2। पति की सेवा या भलाई करना स्त्री का परम धर्म है किन्तु सेवा के बदले में कैकेयी को वरदान माँगना। 3। वरदान में केवल भरत को राज्य ही नहीं बल्कि राम जी को राज्य के बदले जंगल देना। 4। जंगल में भी चौदह वर्ष तक तपस्वियों के कठिन नियम का पालन करना। 5। वनवास अवस्था में अन्नादि नहीं कन्द मूल ही खाना इत्यादि दोषों का प्रधान कारण भरत को ही समझ लखन जी क्रोधित हुए हैं और कहते हैं कि "प्रकट करौं रिस पाछिल आजु।" भगवान के प्रेमवश लक्ष्मण की ऐसी दशा है।क्योंकि श्रृंगवेरपुर में 'निषादपति शंकामकरोत्।' अर्थात् निषादराज के श्रृंगवेरपुर में रात्रि में जब भगवान् कुशासन के ऊपर सोये थे तो उस समय लखन जी के मन में शंका हुई कि राजा से राजा को परस्पर शत्रुता छिपी हुई रहती है तो हो सकता है कि निषादराज रामजी के प्रति कुछ अनिष्ट करे। अतः मुझे सजग होकर रहना चाहिए।

निषादराज भी भक्ति रस में सरोबोर था, वह भी यही सोचता है कि एक भाई के चलते श्री राम जी को प्रवासित होना पड़ा है, वैसे ही एक भाई साथ है तो शायद रामजी के शयनावस्था में ये कुछ घात न कर बैठें। अतः जाग कर हमें इनकी रक्षा करनी चाहिए और ऐसा ही किया भी। इधर निषादराज के प्रजागण भी यही सोचे कि हमारे प्रभु श्री राम जी के दो शत्रु, एक भाई और दूसरा राजा, घात करने के लिए मौका ढूढ़ते हुए जगे हैं, ऐसी परिस्थिति में हम सबों को जागकर श्री राम जी की रक्षा करनी चाहिए। ऐसे श्री राम जी के प्रेमवश जैसे इस प्रसंग में तीनों मिथ्या भ्रम में पड़कर एक दूसरे के प्रति सशंकित हैं, उसी प्रकार श्री राम जी के प्रेमवश लखन जी भरत जी के प्रति शंकित हो व्यर्थ क्रोध और दोषारोपण कर रहे हैं।

इसी प्रकार भरत जी भी श्री राम जी के प्रेमवश होकर ही पूज्य पिता, गुरु वशिष्ठ, मन्त्री सुमन्त तथा श्री राम जी के वचनों को भी न मानकर अपना स्वरूपानुरूप शेषत्व के रक्षार्थ श्री राम जी को मनाने जंगल गये हैं। क्योंकि अपना रक्षक केवल एक श्री राम जी को ही माने हैं - "हमरे शरण राम की पनही।।" श्री राम जी भी यही - "तात वचन अरु मातु मत भाई भरत से राऊ। हम कहँ दरश तुम्हार प्रभु सब निज पुण्य प्रभाऊ।अयो. 125।" कहकर भरत की गौरवता को महत्व देते हैं। देवतागण भी यही कहते हैं "भरत सरिस को राम सनेही। जग जपु राम राम जपु जेही।अयो. 217।4।" संसार में भरत जी के समान रामजी का प्रेमी दूसरा कोई नहीं है। क्योंकि राम जी को संसार भजता है और राम जी भरत जी को भजते हैं।और भी है -
"जड़ चेतन जग जीव घनेरे। जिन हेरे प्रभु जिन प्रभु हेरे।।" "तिन सब भये परमपद जोगू। भरत दरश मेटे भव रोगू।अयो. 216।1।" याने श्री राम जी के दर्शन से मोक्ष की योग्यता हुई किन्तु भरत जी के दर्शन से मोक्ष हुआ। ऐसा क्यों - "यह बड़ बात भरत के नाहीं। सुमिरत जिनहीं राम मनमाहीं।अयो. 216।2।" इसीलिए भरत जी के सम्बन्ध में भरद्वाज जी ने कहा है कि "तात तुम्हार विमल यश गाई। पाइहिं लोकहूँ वेद बड़ाई।अयो. 206।1।" अर्थात् भरत के यश को गान करके लोक और वेद बड़ाई पावेगा। "भरत महा महिमा सुनु रानी।जानहिं राम न कहहि बखानी।अयो. 288।1।" भरत जी की महिमा जानने में भगवान् का सर्वज्ञ गुण काम करता है लेकिन कहने में भगवान्‌का सामर्थ्य काम नहीं करता क्योंकि वह महिमा असीम है।

श्रीकृष्ण के प्रेमवश होकर यशोदा ने पूतना को मारने के पश्चात्‌श्रीकृष्ण के ग्रहादि दोष दूर करने के लिये - अभिषेक, स्वत्ययन वाचनादि करवाया था। दृष्टि दोष दूर करने के लिए अन्यान्य यत्न भी करवाया था किन्तु वास्तविक श्रीकृष्ण तो

संकोच - देय व्यक्तियों को बहुत देकर भी कम देने के ऐसा लज्जा अनुभव करना। "जो सम्पति शिव रावणहि दीन्ह दिये दस माथ। सोई सम्पदा विभीषणहिं सकुचि दीन्ह रघुनाथ। सु.49।"

सुठि - पवित्र याने शुद्ध षड्विकाररहित, सरल स्वभाव, शीघ्र द्रवित होने वाले को कहते हैं।

कृपा - किसी को कष्ट में देखकर सहन नहीं होना तथा उसके कष्ट को दूर करना।

"**अरिहुंक अनभल कीन्ह न रामा। मैं शिशुसेवक यद्यपि बामा।** अयो. 182।3।" भगवान् अपने शत्रुओं को भी मारकर कल्याण ही किया है। भगवान्‌के इन सभी गुणों को अनुसन्धान करते हुए भरत जी सोचते हैं कि मैं यद्यपि अपराधी हूँ किन्तु शिशु सेवक अज्ञानी समझकर भगवान् अपना ही लेंगे। "**क्रूर कुटिल खल अति अकलंकी। नीच निशील निरीश निशंकी।। तेउ सुनि शरण सामुहे आये। सकृत प्रणाम किये अपनाये।** अयो.298।12।" क्रूर स्वभाव वाला कुटिल दुष्ट कलंकी ईश्वर को नहीं मानने वाला तथा निशंक होकर पाप करने वाला भी यदि सम्मुख आकर एक बार भी मैं आपका हूँ ऐसा कहता है उसे परमात्मा अपना लेते हैं। तथा -

"**देखि दोष कबहूं न उर आने। सुनि गुण साधु समाज बखाने।** अयो.298।2।
जन अवगुण प्रभु मान न काऊ। दीनबन्धु अति मृदुल सुभाऊ। उ.0।3।
रहत न प्रभु चित चूक किये की। करत सुरत सौ बार हिये की। बा.28।3।"

जिस शरणागत को परमात्मा अपना लेते हैं उसके दोषों को देखते हुए भी हृदय में नहीं लाते बल्कि उसके सुने गुणों को साधु समाज में प्रचार किया करते हैं।

भरत का परस्पर प्रेम - "राम प्राण के प्राण तुम्हारे। तुम रघुपतिहिं प्राण ते प्यारे। अयो. 168।1।"

"**भरत सरिस को राम सनेही। जग जपु राम राम जपु जेही।** अयो. 217।4।" भरत जी के प्राण के भी प्राण राम जी हैं और राम जी के प्राण से भी प्यारे भरत जी हैं, जिनका नाम राम जी हमेशा स्मरण किया करते हैं। राम जी में भरत का दृढ़ाध्यवसाय यों है - "**यद्यपि जनम कुमातु ते मैं सठ सदा सदोष। आपन जानि न छाड़िहैं मोहि रघुवीर भरोस।** अयो.183।" भरत कहते हैं - एक तो मेरा जनम कैकेयी सदृश कुमाता से है, फिर भी जन्म से मैं दोषी हूँ तब भी मुझे विश्वास है कि भगवान् मुझे अपना समझ कर नहीं छोड़ेंगे, ऐसा गुण परमात्मा में है। "**अघ अवगुण तजि आदरहीं समुझि आपनी ओर।** अयो. 256।1।" भगवान् हमारे दुर्गुणों को भूलकर अपनी ओर यानी स्वामीत्व गुण का स्मरण करते हुए मुझे आदर करेंगे याने दोषुक्त होने पर भी शरण में ही रखेंगे। इन्हीं सभी विचारों को ध्यान में रखते हुए भरत के विषय में कहा है - "**भरत महा महिमा जल रासी** ।अयो. 256।1।" "**राम प्रेम मूरति तनु आही।** अयो.183।2।" "**भरत हृदय सिय राम निवासू। तहँ कि तिमिर जहँ तरणि प्रकासू।** अयो.294।4।" भरत जी महिमा के समुद्र तथा श्री राम जी के प्रेम की मूर्ति हैं। उनके हृदय में श्री राम रूपी सूर्य सतत वास करते हैं। अतः मोहादि अन्धकार का वहाँ लेश भी नहीं रहता। इसी लिये श्री राम जी कहते हैं कि "**भयउ न भुवन भरत सम भाई।** अयो. 258।2।" भरत के समान संसार में भाई नहीं हुए हैं।

ऊपरोक्त विषयों के अध्ययन द्वारा भरत जी की अपूर्व उत्कृष्टता झलकती है फिर इनके प्रति लखन जी क्रोधित हो ऐसा क्यों बोले ? "**कहँ लगि सहौं रहौं मन मारे। नाथ साथ धनु हाथ हमारे।** अयो. 228।4।" "**आजू रामसेवक जश लेऊँ। भरतहि समर सिखावन देऊँ।।** "**आय बने भल सकल समाजू। प्रकट करौं रिस पाछिल आजू।। सानुज निदरि निपातौं खेता।।** अयो. 229।24।" आपके साथ तथा हाथ में धनुष रहते हुए भी मन को मार भरत के अत्याचार को कहाँ तक सहन करूँ ? अर्थात् नहीं सहन करूँगा और भरत को समर में ही दण्ड दूँगा। यह अच्छा समय आया है कि जब कि भरत के साथ शत्रुघ्नादि भी हैं। आज पहला वैर भी लूँगा। दोनों भाईयों को मृत्यु शय्या पर सुला दूँगा। कहँ लगि कब तक सहौं - यहाँ पर कब तक शब्द से बहुत अत्याचार होने की ध्वनि निकलती है। भरत ऐसे बड़े भाई को मारकर कौन यश प्राप्त करते कि सेवक यश लेऊँ कहा ? पहला रिस कौन था कि जिसे प्रकट करते - इत्यादि भरत के उदात्त चरित में संशय उत्पन्न करते हैं।

उत्तर - लखन जी संकर्षण के अवतार हैं। इसलिये तेज प्रकृति का शब्द बोलना इनके लिए स्वाभाविक है।

दोषाविष्ट नहीं थे। इसी प्रकार लखन जी ने भी केवल रामजी के प्रेमवश होने के कारण ही भरत जी पर इस तरह दोषारोपण किया है। अथवा लीलाभाव में मनुष्यों में प्रायः षड्विकार उपस्थित पाया जाता है और समय आने पर यही विकार अनर्थ अकृत्य भी करवाया करता है। लखन जी ने स्वयं कहा है - "**...क्रोध पाप के मूल। जेहिं बस जन अनुचित करहिं चलहिं विश्व प्रतिकूल**। बा. 277।" जैसे भूताविष्ट पुरुष विपरीत काम करता है, वैसे ही क्रोधाविष्ट पुरुष भी कौन अनर्थ नहीं करता। इसी से यह आत्मा का वैरी कहा गया है - "**काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः। महाशनो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम्**। गी.2।37।" रजोगुण से उत्पन्न होने वाले ये काम और क्रोध, महान्पापी हैं और आत्मा के शत्रु हैं। पूर्व में तो लखन जी नीतिरस में पगे थे - "**सहसबाहू सुरनाथ त्रिशंकू। केहि न राजमद कीन्ह कलंकू**। अयो. 228।1।" किन्तु पूर्वोक्त कारणों से वह शीघ्र बदलता है, और - "**इतना कहत नीतिरस भूला। रणरस विटप फूल जनु फूला**। अयो. 228।3।" इस प्रकार क्रोधाविष्ट लक्ष्मण जी प्रतीत होते हैं। किन्तु भरत जी तो विल्कुल विशुद्ध ही थे "**भरतहिं जानु राम परिछाहीं**।" याने भरत जी राम जी के परिछाहीं की तरह हैं, प्रतिविम्बी की चेष्टा प्रतिविम्ब करता है। अथवा प्रतिविम्बी एक है किन्तु प्रतिविम्ब तो अनेक हो सकता है। भाव यह है कि भगवान् श्री राम जी यदि एक गुणा देवताओं की भलाई करेंगे तो भरत जी अनेक गुणा करेंगे। दूसरा भाव यह है कि जैसे क्रोधाविष्ट अवस्था में लखन जी जैसे व्यक्ति भी निर्दोष के ऊपर दोषों का पहाड़ ढ़हाये हैं तो यह संसारियों को शिक्षा है कि क्रोधरूपी भूत से हमेशा हम लोगों को बचना चाहिये।

मानस प्रसंग 15 । जटायु ।

इस प्रकृति मण्डल में ब्रह्मा से लेकर चीटीं पर्यन्त सभी प्राणियों का शरीर प्राकृत है। सबों में जीवात्मा तथा अन्तर्यामी भगवान् समान रूप से वास करते हैं। मृत्तिका पात्रों में परस्पर भिन्नता रहते हुए भी सबों का उपादान कारण में समानता जैसे पायी जाती है उसी प्रकार आत्मा के संस्कार स्वभावादि के कारण मिले शरीरों में भिन्नता रहने पर भी सबों का उत्पादक प्रकृति एक ही है। परमात्मा की ही अध्यक्षता में स्वकर्मानुसार सबों को देह मिलता है। और जबतक परमात्मा की प्राप्ति नहीं होती तब तक प्राणी संसारचक्र में घूमता रहता है। जिस देह से परमात्मा की शरणागति तथा सेवा भजन पूजा की जाती है, वही देह सार्थक है और भगवत्प्रिय भी है - "**सोई पावन सोई सुभग शरीरा। जेहि तनु पाय भजिय रघुवीरा**। उ. 95।1।" और जिस शरीर से शुभ पवित्र भगवत्सेवा नहीं की जाती वह - "**राम विमुख लह विधि सम देही। कवि कोविद न प्रशंसहीं तेही**। उ. 95।2।" ब्रह्मा के समान देह भी निन्दनीय है। "**विप्राद्विषड्गुणयुतादरविन्दनाम पादारविन्दविमुखात्श्वपचं वरिष्ठम्...।।**" - "**शमोदमस्तपश्चैव शान्त्यार्जववविरक्तता। ज्ञानविज्ञानसंतोषः सत्यास्तिक्यो द्विषड्गुणाः।**" अर्थात् ब्राह्मण कुल में जन्मलेकर उपरोक्त बारह गुणों से युक्त रहने पर भी यदि वह भगवान् से विमुख हो, तो उससे भगवत्भक्त चाण्डाल ही श्रेष्ठ है। "**श्वपचोऽपि महीपाल विष्णुभक्तः द्विजादिकः। विष्णुभक्तिविहीनस्तु यतिस्तु श्वपचाधिकः।।**" भगवत्भक्ति विहीन ब्राह्मण यदि चतुर्थाश्रमी भी हो तो उससे भगवद्भक्त चाण्डाल श्रेष्ठ है। काक भुशुन्डी जी से यह प्रश्न किसी ने किया कि आप मनुष्य, ब्राह्मणादि का शरीर क्यों नहीं धारण करते ? तो उसके उत्तर में उन्होंने कहा कि - **ताते यह तन मोहि प्रिय भयेउ रामपद नेह**। उ. 114।" "**यह तन रामभक्ति मोही जामी। ताते मोही परमप्रिय स्वामी**। उ. 95।2।" याने इस शरीर में मुझे राम भक्ति मिली और भगवान् प्रिय लगते हैं इसीसे यह शरीर मुझे अत्यन्त प्रिय है। जटायु ने भी इसी प्रकार श्री राम जी से कहा है "**सीतां च रक्षयिष्ये त्वयि याते सलक्षमणः**। वा. रा. अर. 14।33।" हे तात ! आप दोनों भाई जब जंगल जायेंगे तो मैं जानकी की रक्षा करूँगा। " **जटायुषं तं परिपूज्य राघवो मुदापरिष्वज्य च सन्नतोऽभवत्। पितुर्हि शुश्राव सखित्वमात्म वा जटायुषा संकथितं पुनः पुनः**। वा रा अर 14।33।"

जटायु ने दशरथ जी से मित्रता की बात बार बार कही जिससे श्री राम जी उनको प्रणाम कर हृदय से लगाये। पिता के मित्र समझकर गिद्ध जटायु को प्रणाम करना तथा हृदय से लगाना यह राम जी की भक्ति की महिमा है। जटायु सीता हरण काल में

को मिलती है वही गति जटायु को भी मिली। "मया त्वं समनुज्ञातो गच्छ लोकमनुत्तमम्। ।68।30।" " पश्य लक्ष्मण गृद्धोऽयमुपकारी हतश्च मे।68।22।" "मम हेतोरयं प्राणान्मुमोच पतगेश्वरः।68।23।" लक्ष्मण ! यह उपकारी जटायु मेरे लिए परमप्रिय प्राण को भी छोड़ दिये हैं। ऐसे भक्त जटायु को मोक्ष मिला - "गिद्ध देह तजि धरि हरिरूपा।भूषण बहुपटपीत अनूपा।। श्यामगात विशालभुज चारी।अस्तुति करत नयन भरि वारी।।अर.31।1।" जटायु पूर्व शरीर को छोड़कर, भगवान्के ही सदृश श्यामगात, चतुर्भुज अनेकों प्रकार के भूषण वसन धारण किये हुए मोक्ष स्थान वैकुण्ठ को गये।पश्चात् - ददाह रामो धर्मात्मा बन्धुभिर्वहुदुःखितः।68।31।" श्री राम जी जटायु की मृत्यु से अत्यन्त दुःखी हो लक्ष्मण के साथ उनकी मृत देह का ब्रह्ममेध संस्कार पूर्वक दाह संस्कार तथा अन्यान्य शास्त्र विहित पिण्डादि किये। "स्थूलान्हत्वा महारोही ननुस्तार तं द्विजम्।रोहिमांसानि चोद्धृत्य पेशीकृत्वा महायशाः।68।32 -33।" वनवास अवस्था में श्री राम जी कन्द मूल फलादि भोजन करते थे, अतः दशरथ जी को ईंगुदि विरारादि फलों से पिण्ड दिये हैं। इस प्रकार इनको भी रोहिकन्द का पिण्ड दिये हैं - "यदन्नः पुरुषोभवति तदन्नतस्य देवता" - स्वकीय आहार का ही पितृ या देवताओं को पिण्ड दिया जाता है। भगवान् भक्तों के हृदयस्थ भावना को भलीभाँति जानते हैं तथा भक्त का किया दिया अणु मात्र को भी मेरु तुल्य समझ, तदनुकूल फल देकर बराबर के लिए उसका आभारी वन जाते हैं -

"नीके जानत राम हियो हैं।प्रणतपाल सेवक कृपालुचित पितु पटहरहिं दियो हौं।।
तिर्यक योनि गीध जनम भरि खाई कुजन्तु जियो हैं।महाराज सुकृति समाज सब उपर आज कियो हौं।।
श्रवण वचन मुख नामरूप चख राम उछंग लियो हौं।तुलसी मो समान बड़भागी को कहि सकै वियो हौं।।गीतावली अरण्य 14।" भगवान् श्री राम जी जटायु को अपने पिता के तुल्य समझे हैं। जो जीवन भर निषिद्ध वस्तु खाकर रहा है उसको भी मुनिगणों से आगे वढ़ा दिये। मृत्यु काल में अपनी गोद में रखकर मरने पश्चात्भी भूमि में न रख, दाहार्थ चिता पर रख संस्कार किये हैं।

जटायु के प्रतिकूल साधन - 1।पूर्वकृत पाप द्वारा तिर्यक योनि में जन्म लेना। **2**।आजन्म हिंसा करना।

अनुकूल साधन - 1।दशरथ जी से मित्रता। **2**।राम जी से मिलन। **3**।भगवान् का कार्य (कुटी अगोरना सीता के लिये युद्ध करना)। **4**।राम जी के प्रेम पात्र बनना। **5**।राम जी से पितातुल्य पद प्राप्त करना। **6**।राम जी के गोद में बैठना। **7**।रामचन्द्र जी से तर्पित होना। **8**।मरणकाल में राम जी को सन्मुख रहना। **9**।इसीलोक में राम जी के सामने स्वरूप पाना। **10**।इसीलोक से विमान पर बैठकर वैकुण्ठ जाना। **11**।जटायु की मृत्यु से राम जी का रोना। **12**।सविधि ब्रह्ममेध संस्कार करना। **13**।श्री राम जी को जटायु के साथ पिता का सम्बन्ध जोड़ उनके साथ पुत्र का उचित व्यवहार करना। याने जो पितरों को नरक से बचाता है उसे पुत्र कहते हैं। "पुंनाम नरको यस्मात्तस्मात्तारयते सुतः।"

लखन लाल दशरथ जी को फटकार तथा निन्दा भी किये थे। किन्तु जटायु के लिये तो ये भी दुःखी हुए तथा संस्कार भी प्रेम से किये हैं। एक ओर गीध का अपवित्र देह और दूसरी ओर मुनि दुर्लभ गति - "गीध अधम अति आमिष भोगी" उसको भी - "तेही गति दीन्ह जो जाचत योगी"- यह भक्त परवश्यता गुण के कारण परमात्मा की कृपा का प्रसाद है। और इसमें प्रधान कारण भगवान् के प्रति प्रेम ही है। प्रेम द्वारा यदि भगवान् इस तरह नीच योनि में रहने पर भी उत्तम गति देते हैं, तो पवित्र मनुष्यों के लिए कहना ही क्या है "किं पुनर्ब्राह्मणा पुण्याः भक्ता राजर्षयस्तथा" कोई भी देहधारी क्यों न हो भगवान्की ओर झुका कि भगवान् उसे साट लेते हैं। जैसे राक्षसों में विभीषण, दैत्यों में प्रह्लाद, अन्त्यजों में निषाद तथा शबरी इत्यादि को। "किरातहूणांध्रपुलिन्दपुक्कसाः आभीर कंका यवनाः स्वसादयः। अन्ये च पापाः यदुपाश्रयाश्रयाः शुद्ध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः।भा.2।4।18।" इन नव-संकर जातियों से भी निकृष्ट जातियों में यदि भगवद्भक्ति हो तो वह पवित्र माना गया है।

मानस प्रसंग 16। सुन्दरकाण्ड के कुछ प्रसंग।

सीता को चुराने के लिए रावण से घनघोर युद्ध किये। इस युद्ध में रावण ने इनका दोनों पाँख अपनी तलवार से काट डाला - "**पक्षौ पार्श्वौच पादौ च खड्गमुद्धृत्यसोऽच्छिनत्**। बा. रा. अर. 51।42।"सो जटायु पड़े पड़े सोचते हैं -

"**मेरो एकउ हाथ न लागे गयो बीति वादि कानन ज्यों, कलपलता दवलागी।**

दशरथ सो न प्रेम प्रतिपाल्यो, हुतो सकल जग साखी।

वरवश हरत निशाचरपति सो, हठि न जानकी राखी।

मरत न मैं रघुवीर विलोक्यो, तापसवेष बनाये। चाहत चलन प्राण पांवर बिनु ,सिय सुधि प्रभुहि सुनाये।

भार बार कर मींजत सिर धुनि, गीद्धराज पछितायी। तुलसी प्रभु कृपाल तेही अवसर आइ गये दोउ भाई। ।गीतावली अरण्य 12।" कि मेरी देह निरर्थक कामों में विनष्ट हो गयी मानों कल्पलता को दावाग्नि जला दी हो। यदि मैं भी दशरथ के समान राम जी के वियोग में मर जाता तो इसका साक्षी संसार होता। रावण से जानकी को भी नहीं छीन सका, मरते समय श्री राम जी दर्शन भी नहीं दे सके, सीता की करुणापूर्ण दशा कों भी मैं भगवान को नहीं जना सका, यह पाँवर प्राण शरीर से निकलना चाहता है, यह जटायु का पश्चात्ताप है। विशेषता तो यह है कि प्राण वियोग का पश्चात्ताप नहीं, किन्तु इस देह से कोई भगवत्कार्य नहीं हुआ यह चिन्ता है। लेकिन तबभी अन्तर्यामी सर्वव्यापक भगवान् जटायु के हृदय में दर्शन का संकल्प होते ही शीघ्रातिशीघ्र आते हैं - और जटायु दर्शन कर कृत कृत्य हो, बोला - "**तं दीन दीनया वाचा सफेन रुधिरं वमन्। अभ्यभाषत पक्षीश रामं दशरथात्मजम्**। बा रा अर.67।14।" - "**नाथ दशानन यह गति कीन्हा। सो खल जनकसुता हरि लीन्हा**। अर. 30।1।" - हे भगवान् ! मेरी वर्तमान दशा का कारण यह है कि मैंने सीता को ले जाते रावण को देखा - और उससे छीनना चाहा। पर महाबलवान् उससे पार नहीं पाया। उसीने मेरे अंगो को इस तरह काट दिया है - तथा सीता को लंका ले गया है - "**त्वया विरहिता देवी लक्षमणेन च राघव। ह्रियमाणा मया दृष्टा रावणेन वलीयसा**। बा रा अर.67।16।" गीध की यह दशा देखकर भगवत्वत्सल भगवान् बोले "**अयन्तु पितुर्वयस्कोमे गृधराजो महाबलः। शेते विनिहितो भूमौ मम भाग्यविपर्ययात्**। बा रा अर 67।27।" हे लक्ष्मण! पितातुल्य वयस्क गृद्धराज मेरे दुर्भाग्य से इस दशा में पड़े हैं - "**ममायं नूनमर्थेषु यतमानो विहंगमः। राक्षसेन हतः संख्ये प्राणांस्त्यक्षयति दुस्त्यजान्**। बा रा अर 68।2।" और प्रियप्राण छोड़ना चाहते हैं। यह कहकर भगवान् जटायु को गोद में ले लिये।

"**राघव गीद्ध गोद कर लीन्हौं। नयन सरोज सनेह सलिल शुचि मनहुँ अरघ जल दीन्हौं।।**

सुनहु लखन खगपतिहिं मिले वन मैं पितु मरण न जान्यो।। सहि न सक्यो सोऽपि कठिन विधाता बड़पक्ष आज ही भान्यो।

बहुविध राम कह्यो तन राखन परम धीर नहीं डोल्यो।। तुलसी प्रभु झूठे जीवन लगि समय न धोखो लैहौं।

जाके नाम मरत मुनि दुर्लभ तुम्हहिं कहाँ पुनि पैहों। गीतावली अरण्य 13।" जटायु के खून से लथपथ शरीर को आगे से भगवान और पीछे से लक्ष्मण दोनों अपने अपने गोद में लिये हुए हैं, देह में लगी धूल को भगवान अपनी जटाओं से पोछते हैं, उनकी आँखों से अविरल अश्रुधार बह रहे हैं, जो जटायु के मुख में अर्घ्यजल की तरह गिर रहा है। कंठ रुद्ध है, लक्ष्मण से कहते हैं भाई! पिता जी के मित्र जटायु के मिलने से पिता मरण का सोच नहीं था, किन्तु इनको मर जाने से फिर अब वह सोच सतायेगा। इनके रहने से मेरा पक्ष सवल था अव वह गिर जायेगा इत्यादि। इस तरह रोते हुए जटायु को शरीर रखने के लिए कहते हैं। किन्तु परमवीर तत्वज्ञानी जटायु इस कथन को नहीं स्वीकार करते और कहते हैं, परमात्मा के गोद की मृत्यु जो आज तक किसी को भी नहीं मिली, तो इस अलभ्य लाभ को क्यों मैं झूठे से जीवन से बदल दूँ।

भक्तों की देह भगवान्को अत्यन्त प्रिय है। इसीलिए श्री राम जी जटायु को शरीर रखने के लिए कह रहे हैं - "**देहो वै स हरिप्रियः**" - "सोई पावन सोई सुभग शरीरा। जेही तनु पाय भजिये रघुवीरा। उ. 95।2।" "**या गतिः यज्ञशीलानामाहिताग्नेश्च या गतिः।** "**अपरावर्तिनां या च मा च भूमिप्रदायिनाम्**। बा रा अर 68।29।" याने यज्ञादि करने वाले को जो गति मिलती है, जो गति आहिताग्नियों

"**जामवन्त के वचन सुहाये। सुनि हनुमान हृदय अति भाये। सु. का. चौपाई 1।** " यहाँ यह प्रश्न होता है कि जाम्बवान्के सुन्दर वचन कौन से हैं? **उत्तर** - "**कहे ऋक्षपति सुनु हनुमाना। का चुप साधि रहे बलवाना।। पवनतनय बल पवन समाना। बुधि विवेक विज्ञान निधाना।। कवन सो काज कठिन जगमाहीं। जो नहीं तात होय तोहि पाँही।। रामकाज लगि तव अवतारा। सुनि कपि भयउ पर्वताकारा।। कि. 29।1से 3।** " श्री राम की सहायता में (सीता अन्वेषणार्थ) सुग्रीव की सेनाओं की जत्था तैयार की जा रही है। चतुर्चपल बलवानों का अन्वेषण प्रारम्भ है इसी क्रम में हनुमान की भी बारी आयी, तब जाम्बवान्बोले, ऐ हनुमान्! कुछ लोग ने अपना अपना बल का परिचय दिया, किन्तु आप क्यों चुप साधकर बैठे हैं। आप तो पवन के पुत्र हैं, तुम्हारे पिता जैसे बलवान् तथा व्यापक हैं उसी प्रकार तुम भी हो। याने जैसे पवन स्वभावतः समुद्र को अनायास पार किया करते हैं इसी प्रकार तुम भी अनायास समुद्र पार कर सकते हो। तुम बुद्धि तथा ज्ञान विज्ञान के निधान हो। तात्कालिक कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विचार रखते हो। ज्ञान से आत्मस्वरूप तथा विज्ञान से परस्वरूप को भली भाँति जानते हो। इस संसार में ऐसा कोई भी कठिन काम नहीं है - जिसको तुम नहीं कर सकते। श्री राम जी के कार्य के लिये तो तुम्हारा अवतार ही है। यह सुनते ही हनुमान ने पर्वत के समान अपना रूप धारण किया।

ऊपरोक्त जाम्बवान्के कथनों के अध्ययन से यही पता चलता है कि जो भी जाम्बवान बोले हैं वे सब हनुमान की बड़ाई की बातें हैं। सज्जन पुरुष अपनी प्रशंसा नहीं सुनना चाहते। उन्हें स्वप्रशंसा विष के तुल्य प्रतीत होता है, तो यह प्रशंसा सुन, हनुमान क्यों प्रसन्न हुए जब वे "**ज्ञानीनामाग्रगण्यम्**" हैं। बल्कि उनको सन्मुख की गयी प्रशंसा से लज्जित होना चाहिए था। यह इस प्रसंग पर प्रश्न होता है।

तथा हनुमान की प्रशंसा में मर्यादा का भी उल्लंघन किया गया है - जन्म को कहने के लिए तीन तरह के शब्दों को व्यवहार में लाया जाता है। ईश्वर तथा देवता के लिए अवतार शब्द, मुनियों के लिए जन्म, और पशु पक्षियों के लिए बियाना शब्द। किन्तु राम जी के लिए तो - "**राम जन्म सुखमूल**" और हनुमान के लिए - "**तव अवतारा**"। यह अतिप्रशंसा हुई यह क्यों ? **उत्तर** - जाम्बवान के कथनों में - "**का चुप साधि रहे बलवाना**" - से "**जो नहीं तात होए तोही पाहीं**" तक - हनुमान सुने या नहीं सुने - या इनको कहते हुए भी अनसुनी कर दिये क्योंकि ज्ञानी होकर अपनी प्रशंसा क्यों सुनते ? उत्तर - भगवान्के विष्णु रूप में गरुड़ नित्य पार्षद हैं - और रामरूप में हनुमान, ये भगवान् की सेवा ही के लिए बन्दर रूप में अवतीर्ण हुए हैं, इसीलिए जाम्बवान इनके लिए अवतार शब्द का प्रयोग किये हैं जो उचित हैं।

इसी विषय को हनुमान को भी स्मरण कर सामान्य और विशेष बन्दरों के केन्द्र से अलग - उनलोगों का पयान कर जाने के बाद सबसे पीछे श्री राम जी के पास आये और प्रणाम किये। "**पीछे पवनतनय शिरनावा**" इसी के अनुकूल श्री राम जी भी - "**जानि काज प्रभु निकट बुलावा**" - यह जानते हैं कि मेरे ही कार्यार्थ हनुमान दिव्यदेह से आये हैं। किन्तु उस दिव्यदेह को छिपाकर प्राकृत बन्दर बने हुए हैं। इसीलिए श्री राम जी हनुमान को समीप बुलाकर, मस्तक स्पर्श कर "**परसा शीस सरोरुह पानी। कर मुद्रिका दीन्ह जन जानी। कि. 22।5।** " - अपनी दिव्य मुद्रिका दिये, जो अन्य बन्दरों को देने योग्य नहीं था। क्योंकि वह मुद्रिका सुदर्शन मन्त्र यन्त्र घटित थी।

हनुमान दिव्यदेहधारी होने के कारण मुद्रिका ले जाने योग्य थे। हनुमान भी योग्य सेवा प्राप्त होने से देह की सार्थकता समझे। इसीलिए भगवत् कार्य में लग जाने वाले शरीर की उत्पत्ति को अवतार कहना युक्तियुक्त है। हनुमान को प्रसन्नता यही भगवत् कैंकर्य से मिली है न कि अपनी प्रशंसा सुनकर। "**बुद्धिन्द्रिय मनः प्राणाः लोकानामसृजत्प्रभुः। मात्रार्थश्च भावार्थश्च आत्मने कल्पनाय च।।**" बुद्धि, इन्द्रिय, मन प्राणादि भगवान्को निवेदित करना चाहिए, देह इसी के लिए मिली है, जाम्बवान हनुमान को शेषत्व रूप का स्मरण दिलाये हैं। इससे हनुमान को आत्मस्वरूप ज्ञान का लाभ हुआ और इससे बढ़कर दूसरा अन्य कुछ भी नहीं - "**नात्मलाभात्परं किञ्चित**" अतः हनुमान को अत्यन्त आनन्द हुआ है। "**दौष्कुल्यमाधिविधुनोति सर्व महत्तमानांभिधानयोगः।** " महापुरुष

भगवत्भक्तों की संगति, अकुलीनता तथा मानसिक चिन्ताओं को नष्ट कर देती है। "अहो वयं धन्यतमा येषाः नस्तादृशी स्त्रियः" याने भगवत्प्रेमी से सम्बन्धित होने वाला धन्य है।
जाम्बवान के प्रेरणा का फल सीता जी की प्रसन्नता हुई है - "बूड़त विरह जलधि हनुमाना। भयऊ तात मो कह जलयाना।13।1। अजर अमर गुणनिध सुत होहु।सदा करहीं रघुनायक छोहू।16।2।" जाम्बवान की प्रेरणा से ही अपने कार्य करने की कृतज्ञता में राम जी हनुमान को हृदय से लगाकर कहते हैं। "सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहीं कोउ सुरनर मुनि तनुधारी।। प्रतिउपकार करौं का तोरा।सन्मुख होई न सकत मन मोरा।। सुनु सुत तोहि उऋण मैं नाहीं। देखउ करि विचार मन माहीं।। पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता। लोचन नीर पुलक अति गाता।31।3, 4।" श्री राम जी हनुमान जी से कहते हैं कि तुम्हारे ऐसा उपकारी इस विपत्ति में दूसरा कोई नहीं मिला। इस उपकार का बदला मुझसे नहीं बन सकता। अतः मेरा मन लज्जा और संकोचवश तुम्हारे सन्मुख नहीं होना चाहता। इसलिए "ममांके जीर्णतां यातु यत् त्वयोपकृतं कपे।वा. रा. उ. 40।24।" तुम्हारा उपकार मेरे शरीर में ही जीर्ण हो जाये। भाव यह है कि जैसी विपत्ति में मुझे तुम सहायता किये हो, वैसा संकट तुम्हें नहीं आये कि मुझे भी कुछ करना पड़े। तुम्हारा उपकार मेरे यहाँ ही धरोहर रह जाये, मैं सदा तुम्हारा आभारी बना रहूँगा। इस तरह राम जी हनुमान से कहते हुए गद्गद तथा रोमांचित हो रहे हैं। उनके नेत्रों से अश्रु जलधार बह रहा है। प्रेम का बीज जाम्बवान का वह वचन था जो हनुमान को अच्छा लगा था। जाम्बवान ने हनुमान को ऐसा उपदेश इसलिए दिया कि अध्ययन काल में हनुमान कभी प्रतिपद्य को पढ़े थे अतः भूल जाने का स्वभाव हो गया था, उनके स्मरण दिलाने पर ऐसा हर्ष हुआ कि वे पर्वताकार हो गये और उनसे पूछते हैं कि आप यह तो बताईये कि - 'लिलौंलांघेउ जलधि अपारा' 'सहित समाज रावनहि मारी।आनौ यहाँ त्रिकूट उपारी।कि 29।5।' मैं इस समुद्र को निगल जाऊँ या लांघ जाऊँ या परिवार सहित रावण को मारकर जानकी को ले आऊँ ? या लंका का जड़ त्रिकूट पर्वत को ही उखाड़ ले आऊँ , और राम जी के सामने रख दूँ चाहे श्री राम जी जो करें।इसलिए - 'उचित सिखावन दीजिये मोहि'।कि.29।4 से 5। मुझे आप उचित कर्त्तव्य पथ बताइये।हनुमान के इन वचनों को सुनकर जाम्बवान यह सोचे कि हनुमान तो सबकुछ करने में समर्थ हैं किन्तु यदि समुद्र को लीलेंगे तो रत्न समेत जल जन्तुओं का नाश हो जायेगा, तथा मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम जी के कुल पूर्वजों की कृति समुद्र का विनाश हो जायेगा। त्रिकूट पर्वत को भी उखाड़ कर ले आना अनुचित ही होगा, क्योंकि वह स्वर्ण के रहते हुए भयानक राक्षस की माया से निर्मित है। अतः श्मशानतुल्य अपवित्र है। जहाँ इसको उखाड़ रखेंगे उस पवित्र भूमि को भी यह आच्छादित करेगा। भारत भूमि अति पवित्र है जिसकी पवित्रता के सम्बन्ध में देवतागण कहते हैं कि "गायन्ती देवाः किलगीतकानि धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे।वि.पु.2।3।24।" अतः जिस स्थल को वह आच्छादित करेगा उतनी भूमि सदा के लिए अपवित्र हो जायेगी। यदि ये हनुमान रावणादि राक्षसों को मारकर जानकी को ले आवेंगे तो भी रामजी के बलसामर्थ्य में दोष लगेगा, यश की हानि होगी, संसार में यही प्रचार होगा कि यदि हनुमान जी नहीं रहते तो श्री राम जी जानकी को नहीं प्राप्त कर सकते थे ऐसी उनकी अपकीर्ति होगी। अतः - "एतना करहु तात तुम्ह जाई।सीतहि देखि कहहु सुधि आई।कि. 29।6।" भाई हनुमान ! आप लंका में जाकर केवल जानकी का समाचार ले श्री राम जी को सुनाइये, और कुछ भी नहीं कीजिये।तब श्री राम जी - "कपि सेन संग संहारि निश्चर राम सीतहि आनिहैं।" शैन्य समूहों को लेकर स्वयं रावणादि को मारकर जानकी को ले आयेंगे। जिस यश को संसार गाया करेगा। इन्हीं बचनों को सुनकर हनुमान अत्यन्त प्रसन्न हुए कि शरीर धारण के यही उच्च्य कोटि का परम स्वार्थ तथा भगवत्सेवा है इसलिए जाम्बवान हमको निर्देश कर रहे हैं।

श्री मानस रामायण में दोहा या सोरठा को विराम माना गया है। और सभी काण्डों में विराम दोहा या सोरठा से प्रारम्भ किया गया है किन्तु इस सुन्दर काण्ड में विना विराम का ही प्रारम्भ है। इसमें प्रधान कारण यह है कि हनुमान उत्तम अधिकारी हैं, उच्च्य कोटि के भागवत हैं। लंका जाते समय मैनाक जब अपने ऊपर विराम करने के लिए इनको कहा है तो ये उससे कहे कि

"राम काज कीन्हें विना मोही कहाँ विश्राम" भगवान् श्री राम का कार्य सम्पन्न किये विना मुझे विश्राम का अवकाश कहाँ ? मैं तो उस कार्यसिद्धि के लिए बेचैन हूँ। ज्ञानीजन भगवान्‌की सेवा किये विना विश्राम नहीं लेते, तबतक उन्हें विकलता रहती है, सेवापूर्ति से ही विश्राम मिलता है। यही भाव सूचित करने के लिए इस काण्ड में विराम (दोहा) बिना ही चौपाई प्रारम्भ किया गया है। भक्ताग्रगण्य हनुमान यही सबों को शिक्षा देते हैं।

यदि यह प्रश्न हो कि हनुमान अन्यत्र तो बराबर विश्राम किये हैं तो यहाँ क्यों ऐसा सोचते हैं ? तो इसका उत्तर यह है कि अन्य जगहों में हनुमान सेनापतियों के अनुकूल रहते थे और यहाँ स्वच्छन्द हैं, कार्य का दायित्व अपने ऊपर समझते हैं - इसीलिए विराम अच्छा प्रतीत नहीं होता है। किष्किन्धा और सुन्दर काण्ड में सम्बन्ध जोड़ा हुआ है। कारण कि जामवन्त किष्किन्धा में प्रश्न करते हैं और सुनना या हनुमान जी का जवाव देना सुन्दर काण्ड में है - इसलिये दोनों को जोड़ दिया गया है। इतिशम्।

।। श्रीमते रामानुजाय नमः ।।

"तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुन्दर।।
चकित चितय मुंदरी पहिचानी। हर्ष विषाद हृदय अकुलानी।।
जीति को सकय अजय रघुराई। माया ते असि रचि नहीं जाई।। सु. **12**।**1** एवं**2**।"

उक्त चौपाईयाँ सुन्दर काण्ड के उस प्रसंग की है - जब भगवान् श्री रामचन्द्र जी सीता जी के साथ पिता माता की आज्ञानुकूल अरण्य में निवास कर रहे थे। वहीं से सीता जी रावण के द्वारा चुराई जाकर लंका के अशोक वाटिका में रखी गयी थीं। इन्हीं की खोज में जिस वृक्ष के तले श्री सीता जी थीं उसी वृक्ष पर बैठे हुए हनुमान अवसर पाकर श्री राम जी की दी हुई अंगूठी को परिचयार्थ उनके आगे गिरा दिये। जानकी जी सचकित उसे उठाकर विचारती हैं, यह राम नाम अंकित अंगूठी कहाँ से आयी। परमप्रिय श्री राम जी की प्रिय वस्तु मिलने से हृदय में प्रसन्नता है। किन्तु विषाद भी हो रहा है कि कोई राक्षस श्री राम जी को मारकर या जीत कर तो नहीं ले आया ? पुनः धैर्य धारण कर सोचती हैं कि श्री राम जी तो अकेले चौदह हजार राक्षसों को मेरी आँखों के सामने मार डाले थे। विश्वमात्र के राक्षस उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते, वे तो अजेय हैं। अतः उनको मारकर कोई भी राक्षस इसे यहाँ लाये ऐसा सम्भव नहीं। माया द्वारा भी कोई राक्षस इस अंगूठी को नहीं बना सकता। यह अंगूठी यहाँ कैसे आयी इत्यादि उलझन में पड़ गयी।

यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि उक्त अंगूठी तो किसी कारीगर की बनायी हुई थी तो पुनः ऐसी अंगूठी कोई कारीगर क्यों नहीं बना सकता ? जो माया अनन्त ब्रह्माण्ड को बनाती है, तो क्या उससे ऐसी एक अंगूठी नहीं बन सकती ? अथवा रावण श्री राम जी की मूर्ति बना जानकी के सामने काटा करता था, तो क्या उससे एक अंगूठी नहीं बन सकती ? कि - **"माया ते अस रचि नहीं जाई"** ऐसा जानकी जी कहती हैं?

उत्तर - प्रथम तो यह जानना चाहिए कि श्री राम जी कौन हैं -

"तत्रायोध्यापुरी रम्या यत्र नारायणो हरिः । अयोध्यापुरी चैका द्वितीया मथुरा स्मृताः।।
राम रूपेण रमते सीतया परया सह। रामाविर्भाव समये ह्याविर्भवति सर्वदा।।
कृतावतारो श्रीरामो ह्यनया केलिभूतया।।"

त्रिपाद्विभूति में अयोध्या नाम की एक पुरी है वहाँ भगवान्‌श्रीमन्नारायण राम रूप से जानकी के साथ विराजमान रहते हैं। वही भगवान्‌जब राम रूप में अवतीर्ण होते हैं तो लक्ष्मी श्रीसीता रूप में आती हैं। वही अयोध्या इस लोक में - **"श्रीरंगाख्यंपरंधाम मममानिनि भूतले।"** भगवान्‌के अवतारार्थ आयी जो भगवान्‌के आराधक इक्ष्वाकु को मिली थी। यही पर श्रीरंगनाथ भगवान् इक्ष्वाकु को मिले थे, और इस कुल में दशरथ जी पर्यन्त रहे। यही अयोध्या रंगपुरी भी कहाती है।

"ममकुल इष्टदेव भगवाना" - परम वैष्णव इक्ष्वाकु के पक्षपात के कारण भगवान्‌इस कुल में अवतार लिये हैं। इक्ष्वाकु कुल वैष्णव

कुल है। श्री रामचन्द्र भी श्रीवैष्णव धर्म ग्रहण कर हम सबोंको वैष्णव बनने का निर्देश किये हैं - "**धृत्वा तप्तायसीं मुद्रां देवः रक्षां करिष्यति।**" स्वतः अपने लिए तो - "**न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।गी. ३।२२।**" भगवान्को इस लोक में कुछ करना शेष ही नहीं है। वैष्णव धर्म में तप्त शंख-चक्र का धारण प्रधान विषय है। वैष्णवों के लिए तो यह भी लिखा है कि

"**ज्ञात्वा सर्वपदार्थेषु शुद्धिस्तेषां पदेपदे।शालायां भोजने वस्त्रे गृहोपकरणेषु च।।**

चमशोलूखलेपीठे पक्वान्ने चक्रमुल्लिखेत्।पक्वान्नं चक्रसंयुक्तं सेवितं पुरुषेण हि।।

यच्छन्ति चमनः शुद्धिं महापातकिनामापि।पशु पुत्र कलत्रेषु यान वाहन भूमिषु।।वैष्णवों के वस्तु मात्र में उसकी शुद्धि के लिए चक्र का चिह्न होना चाहिए। पाठशाला, पाकशाला, धर्मशाला, गोशाला, भोजनपात्र, टोकना, कड़ाही, कलछुल, ओखल मूसल, चुल्हा चाकी, भोज्य पदार्थ, ठेकुआँ, पेड़ा, बर्फी आदि सर्वत्र चक्र का चिह्न होना चाहिए। चक्रांकित वस्तु खाने से पातकी का भी मन शुद्ध होता है। घोड़ा, हाथी, रथ वाहनादि रहने के स्थान पर घर द्वार चौकठ किवाड़, पहनने का वस्त्र - कुर्त्ता, पगड़ी, चादर, टोपी, विछावन, मसनद, मुकुट, छत्र, चँवर, ध्वजा, पताका, स्त्रियों के भूषण, पुरुषों के सभी अलंकार भोजनपात्र, जलपात्र, पूजासामग्री समूहों में भी चक्र का चिह्न होना चाहिए। अंगूठी या मन्त्रादि धारण के सम्बन्ध में ज्योतिष ग्रन्थों में यों लिखा है "**सूर्यादीनां मुनिभिरुदिता दक्षिणास्तु ग्रहाणाम्।स्नानैदनैर्हवन वलिभिस्तेऽत्र तुष्यन्ति यस्मात्।।**" याने मुनियों ने सूर्यादि ग्रहों के दोष नाश के लिए अंगूठी पहन स्नान, दान, हवन, वलि तथा स्तोत्र पाठादि द्वारा ग्रहों की शांति वतायी है। "**वदन्ति गर्गादि महामुनीन्द्राः धार्य मनुष्यैः शशियन्त्रमीरितम्।**" गर्गादि मुनियों ने मनुष्यों को शशियन्त्र धारण करने को लिखा है। "**बध्नीयात्कण्ठदेशेतु वालानां सूतिकागृहे**" - सर्वारिष्ट निवारण के लिए सुदर्शन यन्त्र धारण करे। "**सौदर्शनं महायन्त्रं घटितं चाङ्गुलीयकम्।धारयैन मनेनैव मृत्युः नश्यति असंशयम्।।**" इन्हीं सभी विचारों को लेकर जानकी के सभी भूषण आदि तथा राम जी वाली अंगूठी भी चक्रांकित बनी थी। स्त्रियों के पातिव्रत्य सिद्धि के लिए भी धारण किये जानेवाले भूषणों में चक्र का चिह्न होना चाहिए। राम जी की अंगूठी चक्र यन्त्र मन्त्र के साथ राम नामांकित भी थी। इन्हीं सभी महत्वों से युक्त उक्त अंगूठी को देखकर श्री जानकी जी कहती हैं कि "**माया ते अस रचि नहीं जाई।**"

यह अंगूठी परब्रह्म श्री राम जी के कर कमलों में छब्बीस वर्ष तक रही है, अतः सुगंध के स्पर्श से सुगंधित हो जानेवाली अन्य वस्तुओं के समान यह भी ब्रह्म गन्ध से युक्त हो गयी है। यह ब्रह्म गन्ध माया से परे की वस्तु है, इसलिए ऐसी ब्रह्मगन्धी अंगूठी कोई भी नहीं बना सकता। चौपाई में अस शब्द अंगूठी के प्रभाव को जताता है याने सुदर्शन यन्त्र मन्त्र घटित इसका प्रभाव तो ऋषि महर्षि ही जानते हैं। मायिक अनाधिकारियों को तो उसे छूने का अधिकार तथा सामर्थ्य भी नहीं है। हनुमान को दिव्यपार्षद होने से इसको छूने का अधिकारी समझ श्री राम जी - "**कर मुद्रिका दीन्ह जन जानी**" इनको ले जाने के लिए दिये हैं। हनुमान भी इसके स्पर्श का अधिकार समझ कर ही - "**यह मुद्रिका मातु मैं आनी**" मातु शब्द से अपना सम्बन्ध और मैं शब्द से दासत्व भाव सूचित कर अपने को अधिकारी बताते हैं।

इसका भाव यह है कि इससे भी श्री जानकी जी मुझे पक्का रामभक्त समझें और विश्वास करें कि यदि यह इस प्रभावशाली अंगूठी को लाने का अधिकारी (अनन्य रामभक्त) नहीं होता तो कैसे ला सकता था। इस प्रसंग में चकित होने का दो कारण है, एक तो राम जी को जीतना, दूसरा अंगूठी लाने वाले के सामर्थ्य के विषय में। इस प्रभावशाली अंगूठी को धारण करनेवाले श्री राम जी हैं या आप हैं इसीलिए - "**दीन्ह राम तुम कहँ सहिदानी**" भगवान आप के लिए दिये हैं। (**"सहिदानी" सः रामः हि निश्चयेन, दानी, दाता**) आपके लिए धैर्यता दिये हैं, अर्थात्आप धैर्य धारण करो, मेरे हाथों सुरक्षित हो।

इस विषय में कितने भावुक रामायणियों का यह कहना है कि वह अंगूठी दिव्य साकेत की थी इसीलिए जानकी जी कहती हैं कि "**माया ते ...**" किन्तु यहाँ यह भी विचार करना आवश्यक है कि वह साकेत विहारी श्री राम जी इस समय स्वयं जब अपना

रूप छिपाये हैं - "**आत्मानं मानुषं मन्ये**। वा रा 117। 11।" साधारण मनुष्य वेष में हैं। क्योंकि जन्मकाल में साकेत के सभी अलंकारों से युक्त श्री राम को देखकर प्रार्थना की है। "**तजहु तात यह रूपा**" और इसी प्रार्थना पर वे अपना दिव्यअलंकारों सहित दिव्य रूप को छोड़कर साधारण मनुष्य रूप अंगीकार किये हैं तो एक दिव्य अंगूठी कैसे रखे रहे यह अनुचित प्रतीत होता है।

किसी रामायणियों का उक्त प्रसंग में यह भी कहना है कि वह अंगूठी श्री जानकी जी की ही थी। कारण कि राम जी तो अपने सभी आभूषणों को वन जाते समय ही त्याग दिये थे। इसलिए गंगा किनारे मल्लाह को खेवाई देने के लिए जानकी जी "**मणि मुंदरी तेही दीन्ह उतारी**" अपनी अंगुली से अंगूठी निकालकर श्री राम जी को दी थी, और वही अंगूठी अभी तक उनके पास रह गयी थी। किन्तु इसमें कोई प्रमाण नहीं मिलता है अतः यह युक्ति भी उपेक्ष्य है। प्रत्युत कन्यादान के समय उस अंगूठी को जनक जी दिये थे जो वैवाहिक विधि में है। सिन्दूर दान के समय एक भूषण पति पत्नी को देता है उस भूषण को पत्नी तबतक रखती है जबतक उसका पति जीवित रहता है। और इसी तरह एक पत्नी पति को देती है और वह उसे तबतक रखता है जबतक पत्नी जीवित रहती है।

वैवाहिक प्रसंग में जनक प्रदत्त इसी अंगूठी को गृहस्थ धर्म के अनुकूल अनिवार्य समझ कर राम जी तपस्वी वेष में भी इसे रखते थे। इसे अनिवार्य समझ कैकेयी भी चुप रह गयी क्योंकि जब उनकी पत्नी उनके साथ में है तो उस अंगूठी को त्यागने वह कैसे कहे? कारण यह कि गृहस्थ श्री राम जी का यह चौदह वर्ष का वनवास कृत्रिम था - "**चौदह बरष बिशेष उदासी**। अयो 28। 2।" इस चौपाई का रजोगुणी सभी सुखों को वनवास की अवधि पर्यन्त त्याग में तात्पर्य है, स्त्री जीवित के चिह्न त्याग में नहीं, अतः वह अंगूठी कैकेयी नहीं रखवायी है। सुन्दर काण्ड की सुन्दरता में उक्त अंगूठी का भी परम आधार है। क्योंकि इसके निर्माण में जनक जी का परम प्रेम, राम नाम का अंकन, सुदर्शन यन्त्र मन्त्र का गठन इत्यादि सम्मिलित है। इसी अंगूठी के द्वारा सीता को हनुमान में विश्वास तथा शोक दूर हुआ था।

मानस प्रसंग 17।

।।श्रीमतेरामानुजाय नमः।।

शिव द्रोही मम दास कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा। लं. 1। 4।" देव पूजन का दो हेतु होता है। एक लौकिक सुख समृद्धि की प्राप्ति, दूसरा पारलौकिक कल्याण (मोक्ष) या अन्यान्य ब्रह्मा रुद्र वरुणादि लोक की प्राप्ति। इस लोक में लौकिक सुख प्राप्तार्थ पारिवारिक गृहस्थ विवाहादि यज्ञों में देवता, ग्रह, योगिनी, पितृ आदि के पूजन के साथ ढ़ोल ढ़ाक आदि का भी पूजन किया करते हैं। इस प्रसंग में महादेव की भी पूजा होती है और होनी चाहिए। पारलौकिक सुख प्राप्त्यर्थ पूजकगण पूज्य तथा उपास्यदेवों के लोक प्राप्त करने के लिए उन उन देवताओं की पूजा किया करते हैं। किन्तु वह पूजा तभी सार्थक होती है यदि उसमें अनन्यता अनुस्यूत हो। अन्यथा वह देवों के साथ साथ उपासना करने से उपासकों को कोई भी लोक नहीं मिलता। इसलिए मन्त्रोपदेशक कोई एक ही मन्त्र का उपदेश किया करते हैं, चाहे जिसमें प्रेम भक्ति हो, एक ही में होना अच्छा होता है। जैसे ध्रुव प्रह्लाद घण्टाकर्ण आदि किये थे। "**एको देवः शिवः केशवो वा**" रह जाता है सोचने का विषय यह कि किस देव की पूजा भक्ति द्वारा अक्षय सुख (मोक्ष) मिलता है जो कि ब्रह्मा रुद्रादि लोक तथा स्वर्ग के सुख मिलने पर सबों को वहाँ से पतन होता ही है। यथा "**आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन**। गी. 8। 16।" "**क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति**। गी. 9। 21।" इसलिए - "**ब्रह्माणं शितिकण्ठश्च ये चान्ये देवताः स्मृताः। प्रतिबुद्धाः न सेवन्ते यस्मात् परिमितं फलम्**। शान्ति प.341। 36।" उत्तम बुद्धिवाले मनुष्य ब्रह्मा रुद्रादि लोकों के सुख को परिमित समझ कर उन उन लोकों के अधिनायकों को नहीं भेजते हैं। और यदि इन सब विषयों के बारे में नहीं सोच विचार किया गया तो देवदुर्लभ मनुष्य शरीर ही निरर्थक हो जायेगा। अतः उक्त विषय की गवेषणा में शास्त्र तथा सर्वमान्य ऋषि

महर्षियों के सिद्धान्तों को ढूढ़ना चाहिए और उन्हें ढूढ़ने पर एक नारायण ही कल्याण कारक उपास्यदेव मिलते हैं उन्हीं की उपासना से मोक्ष प्राप्त होता है।

वासुदेवं परित्यज्य यो अन्यं देवमुपासते। तृषितो जाह्नवी तीरे कूपं खनति दुर्मतिः । पाण्डव गीता 17।
अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः। तस्याहं सुलभः पार्थ नित्य मुक्तस्य योगिनः । गी. 8 । 14।
नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया । गी.11 । 53।
अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् । गी. 9 । 22।
मय्यनन्येन भावेन भक्तिं कुर्वन्ति ये दृढाम् । भा. 3 । 25 । 22।
विसृज्य सर्वानन्यांश्च मामेवं विश्वतोमुखम्। भजन्त्यनन्यया भक्त्या तान्मृत्योरतिपारये । भा. 3 । 25 । 40।"

इस प्रकार सर्वत्र भगवान् नारायण के उपासना द्वारा ही भगवत्लोक प्राप्त होता है और यही अक्षय सुख है। क्योंकि - "**यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम** । गी 15 । 6।" जिस लोक में जाकर पुनः पतन नहीं होता है वही परमात्मा का अक्षय सुखप्रद स्थान है। इसीलिए मुमुक्षु श्रीवैष्णव लोग सभी देवों को छोड़कर एक नारायण की ही अनन्य उपासना किया करते हैं।

ऐसे अनन्योपासक श्रीवैष्णवों को कुछ लोग "**शिवद्रोही मम दास कहावा**" के अर्थ करते हुए द्रोही बताया करते हैं, माने महादेव से द्रोह के कारण ही श्रीवैष्णव उनको नहीं पूजते हैं। किन्तु वो तो सचमुच द्रोह शब्द का अर्थ नहीं जानते। द्रोह तो वैर शत्रुता को कहते हैं - जैसे जमदग्नि का सहस्रार्जुन ने मस्तक काट लिया, तो उस वैर को साधने के लिए परशुराम जी ने इक्कीस बार इस पृथ्वी को क्षत्रिय विहीन बना डाला। इस कारण परशुराम क्षत्रिय कुलद्रोही कहाये। "**विश्व विदित क्षत्रिय कुल द्रोही** । बा.271 । 3।" इसी प्रकार सीता पर आघात करने के कारण जयन्त द्रोही कहाया "**कीन्ह मोह वस द्रोह यद्यपि तेहि कर वध उचित** । अर. 2 । 0।"

मुनियों के घातक राक्षसों को द्रोही कहा गया है - "**जेहि प्रकार मारौ मुनि द्रोही** । अर. 12 । 2।" इन उदाहरणों द्वारा द्रोह शब्द का अर्थ वैर होता है। किन्तु महादेव और वैष्णवों में इस प्रकार का कोई हेतु नहीं है जिसके द्वारा दोनों में वैर सिद्ध हो सकता है। हाँ, इन सभी सहेतुक वैरों से पृथक एक स्वभाविक वैर भी होता है जिसको ज्योतिष शास्त्र गिनाया है। "**गोव्याघ्रं गजसिंहं श्वमहिषी**" इत्यादि - किन्तु इसमें भी श्रीवैष्णव और महादेव नहीं आये तो इन दोनों में स्वाभाविक वैर भी नहीं सिद्ध होता है। तो कैसे श्रीवैष्णव महादेव के द्रोही हुए ? अतः कहने वालों का कथन शतशः निर्मूल है। **हाँ, श्रीवैष्णव शास्त्रानुकूल विष्णु के अनन्य उपासक होने से महादेव को नहीं पूजते, यही कारण लेकर यदि उनको द्रोही कहनेवाले द्रोही कहते हैं तो वे पाप के भागी बनेंगे।**

महादेव जी के भी इष्टदेव श्रीविष्णु ही हैं। इसलिए भागवत में महादेव को "**वैष्णवानां यथा शम्भुः** । भा. 12 । 13 । 16।" कहा गया है। तो हरिभक्त महादेव हरि के अनन्य उपासक को द्रोही कैसे समझेंगे ? वल्कि अपने इष्टदेव के भक्त के प्रति प्रसन्न ही होंगे। भगवद्भक्ति के प्रभाव से भगवद् भक्तों के प्रति सर्वदेव ही नहीं विश्वमात्र प्रसन्न होता है।

"**कुर्वन्ति शान्तिं विबुधाः प्रहृष्टाः क्षेमं प्रकुर्वन्तिपिता महाद्याः। स्वस्ति प्रयच्छन्ति मुनीन्द्रमुख्याः गोविन्दभक्तिं वहतां नराणाम्।।**
शुभग्रहाः भूतपिशाचयुक्ताः ब्रह्मादयो देवगणाः प्रसन्नाः। लक्ष्मीस्थिरा तिष्ठति मन्दिरे च गोविन्द भक्तिं वहतां नराणाम्।।"

रामही भजहि तात शिवधाता। नर पामर कर केतिक बाता । उ. 105 । 2।
मन वच कर्म राम पद सेवक। सपनेहुँ आन भरोस न देवक । अर.9 । 1।
तुम्हहीं छाड़ि गति दूसरी नाहीं। राम वसहुँ तिनके मन माहि । अयो. 129 । 3।
कर्म वचन मन राउर चेरा। राम करहुँ तिनके उर डेरा । अयो. 130 । 4।
श्रीरघुवीर प्रताप ते सिन्धु तरे पाषाण ते मतिमन्द जे राम तजि भजहि जाई प्रभु आन । लं. 3।
लोचन चातक जिन कर राखे। रहहिं सदा जलधर अभिलाषे । अयो. 127 । 3।
चातक रटनि घटे घटि जाई। बढ़े राम पद प्रीति भलाई । अयो. 204 । 2। इन सभी चौपाइयों द्वारा भगवान्‌की अनन्य भक्ति ही से कल्याण बताया गया है। भक्तों को चातक से उदाहरण भी दिया गया है। याने -

"चातक सुतहि सिखावता आन नीर जनि लेहु। हमरे कुल की रीति यह एक स्वाति से नेहु।।

गंगा यमुना सिन्धु जल सबै सदा भरपूर। तुलसी चातक के मते बिन स्वाति सब धूर।।

रटत रटत रसना लटी तृषा सुखा गे गात। तुलसी चातक भक्त को उपमा देत लजात। दोहावली 280।"

इन सबों से यह सिद्ध होता है कि आत्मकल्याण के लिए केवल अनन्य भाव से की गयी भगवान्की भक्ति ही सर्वोत्तम साधन है।

रुद्रभक्त हिरण्यकशिपु अपने पुत्र प्रह्लाद को भगवान् विष्णु की अनन्योपासना से दूर रखने का सतत प्रयास करता रहा, परञ्च प्रह्लाद मरना स्वीकार किया लेकिन अनन्य भक्ति से विमुख होना नहीं, तो प्रह्लाद शिवद्रोही नहीं कहाये। अथवा अनन्य राम भक्ति उपासना के पथप्रदर्शक महर्षि वाल्मीकि व्यासादि शिवद्रोही नहीं कहाये तो एक श्रीवैष्णव क्यों शिवद्रोही कहें जायें ? कोई भी विष्णुभक्त श्री वैष्णव, जलन्धर के समान शिव जी से नहीं लड़ा, तथा न कहीं शिवमूर्ति को भंग किया, जिसका साक्षी इतिहास है। बल्कि रुद्र या रुद्रगण भगवद्भक्तों के ऊपर आघात किये हैं।-

बाणार्थे भगवान रूद्रः ससुतैः प्रमथैर्वृतः। आरूह्य नन्दिवृषभं युयुधे रामकृष्णयोः। भा. 10।63।6।

शंकरानुचरान्शौरिः भूतैः प्रमथगुह्यकान्। प्रेतमातृपिशाचाँश्च वैतालान् सविनायकान्। 10।63।10।

एक बार शिवभक्त बाणासुर की कन्या ऊषा ने भगवान् श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध को सोये हुए में ही चित्रलेखा द्वारा चुरवाकर मँगवाया था। नारद जी के द्वारा खबर मिलने पर भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें लाने गये। इसी प्रसंग में बाणासुर के साथ युद्ध ठन गयी, तो उसकी सहायता में शिव जी अपने गणों के साथ बलराम और श्रीकृष्ण से घोर संग्राम किये हैं। श्रीकृष्ण को मारने के लिए शिव जी ने अमोघ ब्रह्मास्त्र तथा वायु बाण का प्रयोग किया - "ब्रह्मास्त्रस्य तु ब्रह्मास्त्रं वायव्यस्य च पार्वतम्। भा 10।63।13।" किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण ब्रह्मास्त्र को ब्रह्मास्त्र द्वारा तथा वायु बाण को पार्वत बाण द्वारा निवारण कर देते हैं। यहाँ यह सोचना चाहिए कि किसका अत्याचार हुआ, शिव शैव का, या विष्णु वैष्णव का।

दण्डकारण्य में श्री राम जी हड्डियों की ढेर देख - "अस्थि समूह देख रघुराया। पूछा मुनिन्ह लागी अति दाया। अर. 8।3।" मुनियों से पूछते हैं कि यह हड्डियों की ढ़ेर कैसी ? उत्तर मिला "निश्चर सकल मुनिन्ह कहँ खाये। सुनि रघुनाथ नयन जल छाये। अर. 8।4।" राक्षसों द्वारा खाये गये मुनियों की हड्डियाँ हैं। ये सब राक्षस शिवभक्त थे, यहाँ मुनियों का अत्याचार है या शिवभक्तों का ?

परम भगवद्भक्त प्रह्लाद दैत्य पुत्रों को हिंसादि आसुरी वृत्ति त्यागने का उपदेश दिया करते थे, इस पर शिवभक्त हिरण्यकशिपु उन्हें मारने के लिए कौन सा उपाय नहीं किया? यह कथा प्रसिद्ध है। तो इसमें प्रह्लाद का अपराध है या हिरण्यकशिपु का अत्याचार। ऐसे अनेकों उदाहरण सद्ग्रन्थों में भरे पड़े हैं जिससे ज्ञात होता है कि शिवभक्त राक्षसादि अपने स्वभाववश हमेशा हरिभक्तों को सताते आये हैं। और आज भी श्रीवैष्णवों को शिवद्रोही का झूठा कलंक लगाकर पीड़ा पहुँचाने का प्रयत्न करते हैं। और वे लोग चुपचाप उसे सहन करते हैं फिर भी दोष उन्हीं के गले मढ़े जाता है। यहाँ पर यह लोकोक्ति ठीक चरितार्थ होती है "बैल न कूदे कूदे तंगी।"

श्री वैष्णवों को शिवद्रोही कहने वाले केवल एक ईर्ष्यावश ऐसा कहते हैं। कारण कि भगवद्भक्त सत्संग के प्रसंग में जिज्ञासु व्यक्तियों को शास्त्रानुकूल अनन्य भगवद्भक्ति करने के लिए बताया करते हैं जो सब सदगन्थों को मान्य है। ब्रह्म संहिता में ब्रह्मा शिव या शिव निर्मित शास्त्रों के सम्बन्ध में कहा है -

"सचैकादशधात्मानं व्यतनोद्भीमदर्शनः। रुद्रकल्पान्तकर्तायं तामसस्तामसप्रियः।।

पाषण्डशास्त्रं व्यतनोन्मद्यमांसप्रशंसकम्। शैवं शाक्तं पाशुपतं डमरोड्डीन शावरम्।।

नानादेव प्रधानञ्च मतो वैमुख्यकारणम्।" अर्थात् शिव ही अपने को एकादश रूपों में तामस मद्य मांसादि का प्रशसंक शैव शाक्त पाशुपतादि शास्त्रों को बनाया है जो तामस प्रकृति वालों को मान्य है, न कि सात्विक प्रकृति वालों को। शिव जी ब्रह्म संहिता में तो स्वयं कहते हैं कि "नैवं विधोऽहमाराध्यः संसारन्मोक्षमिच्छता" मुक्ति चाहने वालों के लिए मैं इस प्रकार आराधन करने

योग्य नहीं हूँ। शिव जी भद्रसेन राजा से कहते हैं -

"**नाहं कैवल्यदो राजन्परतन्त्र स्वभावतः। स्वतन्त्र सर्व भूतात्मा परमात्मा रमापतिः।।**
त्वञ्चाहञ्च सुराः सर्वे तनवः परमात्मनः। तमात्मत्वेन सर्वेषां विजिज्ञास विमुक्तये।।
स्व स्वरूपस्य सम्प्राप्तिं मुक्तिमाहुः मनीषिणः। तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन मानद।।"

हे भद्रसेन ! मैं मुक्ति देने वाला नहीं हूँ क्योंकि परमात्मा का परतन्त्र हूँ। स्वतन्त्र सर्वात्मा विष्णु हैं और हम तुम सबों की आत्मा हैं। मुक्ति के लिए उन्हीं की शरणागति करनी चाहिए। यही उपदेश शिव जी घण्टाकर्ण को दिये थे जो हरिवंश भविष्य पर्व में लिखा है। हारीत संहिता में भी यही मिलता है - "**रुद्रार्चनं त्रिपुण्ड्रस्य धारणं यत्र दृश्यते। तत्शूद्राणांविधिः प्रोक्तो न द्विजानां कथंचना।।**" शिव की पूजा तथा त्रिपुण्ड्र का धारण शूद्रों के लिए है न कि द्विजातियों के लिए। "**अनर्च्या ब्रह्मरुद्राद्याः रजस्तमविमिश्रिताः**। प. पु. उत्तर 255।60।" रजोगुणी तथा तमोगुणी होने के कारण ब्रह्मरुद्रादि अपूज्य हैं। "**नान्यं देवं तु वीक्षेत ब्राह्मणो न च पूजयेत। नान्यं प्रसादं भुञ्जीत नान्यस्यायतनं विशेत्।255।65।**" भगवान् को छोड़ अन्य देवों को पूजना प्रसाद खाना तो दूर रहा उनके मन्दिर में प्रवेश तथा दर्शन करना भी ब्राह्मण के लिए मना है। क्योंकि - "**निर्माल्यं शंकरादीनां स चाण्डालो भवेद्ध्रुवम्। कल्पकोटि सहस्राणि पच्यते नरकाग्नि ना**। प. पु. उत्तर 255।99।" अर्थात् भगवान्को छोड़ अन्य देवों के प्रसाद को जो खाता है वह करोड़ो कल्प नरक में वास करता है और अन्त में चाण्डाल होता है। अन्य देवों की सेवा पूजादि को व्यासादि महर्षियों ने ऐसे कठोर शब्दों से निषेध किया है तो हम सबों को बचना अनिवार्य है। उन्हीं सब विषयों को लेकर शिवभक्त लोग श्री वैष्णवों को शिवद्रोही कहा करते हैं, किन्तु उन्हें यह भी ध्यान रखना चाहिये कि "**सेवक बैर बैर अधिकाई**। अयो. 218।1।" याने राम जी अपने सेवक के बैरी को अपना बैरी मानते हैं, और उसका फल यह है कि - "**जो अपराध भक्त कर करई। राम रोष पावक सो जरई**। अयो. 217।3।" जैसे भक्त अम्बरीष के प्रति अपराध करनेवाले दुर्वासा को कहीं भी शरण नहीं मिला। दण्डकारण्य वासी ऋषियों के प्रति अपराध करने वाले राक्षसों का सर्वस्व नाश हुआ। इसी प्रकार हरिभक्तों के प्रति अपराध करनेवालों का नाश होता आया है। अतः श्री वैष्णवों को शिवद्रोही का अपराध लगाने वाले शिवभक्तों को भगवान्की क्रोधाग्नि से बचना चाहिए। अन्यथा - "**राखि को सकै राम कर द्रोही**। अर. 1।3।" याने उन्हें कहीं शरण नहीं मिलेगा। अतः अपने कल्याण के लिए यह विषय अवश्य विचारणीय है।

मानस प्रसंग 18।

"**जौ जनतेउं बन बन्धु बिछोहू। पिता वचन मनतेउ नहीं ओहू**। लं. 60।3।" यह चौपाई लंका काण्ड की है। रावण के साथ युद्ध में लक्ष्मण को मूर्छित देखकर श्री राम जी कहते हैं यदि मैं जानता कि लड़ाई में लखन की मृत्यु होगी तो पिता की उस वनवास आज्ञा को नहीं मानता। किन्तु यहाँ प्रश्न होता है कि श्री राम तो मर्यादा पुरुषोत्तम हैं और यही यदि पिता की आज्ञा को न मानेंगे तो स्वयं इन्हें आज्ञा उल्लंघन का दोष लगेगा। अपयशी बनेंगे, लोकसंग्रह बिगड़ेगा इत्यादि। उत्तम पुत्र को समयानुकूल स्वतः विचार से ही कार्य करना बताया गया है -

"**उत्तमनिश्चिन्तितं कुर्यात्प्रोक्तकारी तु मध्यमः। अधमोऽश्रद्धया कुर्यात्अकर्तोच्चरितं पितुः**। भा.9।18।44।" श्री राम जी तो माता-पिता की आज्ञारत सुने जाते हैं - "**तुम पितु मातु वचन रत रहहु**। अयो.42।2।" और यही चाहिए भी। ऐसा ही सर्वत्र विधान है - "**अनुचित उचित विचार तजि जो पालै पितु बैन। ते भाजन सुख सुयश के बसहि अमरपति अयन**। अयो. 174।" पिता माता की आज्ञा पालन करना ऐसा श्रेयस्कर है कि उसमें उचित अनुचित का विचार भी छोड़ देना बताया गया है। इशीलिये - "**पितहि बचन प्रिय नहिं प्रिय प्राणा। करहु तात पितु वचन प्रमाणा**। अयो 173।3।" श्री राम जी स्वयं भरत जी को पिता की आज्ञा (राज्य करना) पालन करने के लिए प्रेरित करते हैं और एक ओर उन्हीं की आज्ञा का तिरस्कार करने के लिए कहते हैं यह क्यों ? यह प्रश्न है।

उत्तर - 1। श्री राम जी को लखन जी में अत्यन्त प्रेम है, उत्कट भातृ भाव है। अतः इनको मूर्छित देखकर अत्यन्त दुःखी हो पिता की आज्ञापालन से होनेवाले सुख सुयश को अति तुच्छ तथा लखन जी को जीवित रहने से होने वाले सुख को श्रेष्ठ समझकर

पिता की वनवसाज्ञा को ठुकरा देना सोचते हैं, क्योंकि वही इस विषम परिस्थिति का जनक है। यह इनमें उचित भातृव्यवहार है। **"सीय कि पिय संग परिहरहिं लखन ....जियहिं बिनु राम** । अयो. 49 । " याने राम जी के बिना लक्ष्मण और सीता दो में से एक भी नहीं जीवित रह सकते हैं, इसीलिए इन तीनों को जंगल आना पड़ा है और इसमें कारण दशरथ की आज्ञा ही है और भी **"यह अपयश सहतेउ जग माहीं** । लं.60 । 6 । " श्री राम जी कहते हैं कि पिता की आज्ञा उल्लघंन से होने वाले अपयश को सह लेता, किन्तु आज इनकी मृत्यु असह्य हो रही है। श्री राम जी को वनवास देना दशरथ जी को अनुचित ही नहीं कुकृत्य समझ कर लक्ष्मण तो यों कहे कि - **"अहं हनिष्ये पितरं वृद्धं कामवशं गतम्** । वा. रा. अयो. 21 । 19 । " याने वृद्धावस्था में कामवश कैकेयी के वशीभूत पिता दशरथ को मैं मार डालूंगा। इसको श्री राम जी अनुचित कह लक्ष्मण को वर्जन किये हैं।

मुग्धावस्था का वचन अमान्य होता है, अतः दशरथ को मुग्धावस्था में ही कैकेयी को वरदान तथा वनवास देना भी अमान्य समझ कर श्री राम जी भी उस आज्ञा को उल्लंघन करने में दोषी नहीं होंगे। इसी तरह इन अमान्य वचनों को भरत भी माता, मन्त्री, वशिष्ठादि को मानने के लिए वाध्य करने पर भी ठुकरा दिये हैं तथा वशिष्ठ जी की निन्दा भी किये हैं - **"विललाप सभा मध्ये जगर्हे च पुरोहितम्** । वा रा अयो 82 । 10 । **राज्यञ्च अहञ्च रामस्य** । वा. रा. अयो. 82 । 12 । " यह राज्य तथा मैं श्री राम जी का हूँ। पिता मुझे राज्य मोहावस्था में दिये हैं अतः उनका कहना सर्वथा अमान्य है - **"जिन कृत महामोह मदपाना । तिनके बचन करिये नहीं काना** । बा. 114 । 4 । "

2 । अथवा श्री राम जी यह सोचते हैं कि हम सबों को वन में आते समय दशरथ जी सुमन्त को कहे थे कि हे सुमन्त ! इन सबों को वन देखाकर लौटा ले आइयो, यदि ऐसा मैं जानता कि इस यात्रा में लक्ष्मण जी की मृत्यु हो जायेगी तो उनकी उस चार दिन की भी आज्ञा को नहीं मानते।

3 । अथवा मेरा वनवास तो कैकेयी दशरथ जी से वरदान में मांगी, लक्ष्मण तो विना कारण वन आये, तथा इनकी मृत्यु हुई । यदि यह वात मुझको उस समय सूझती कि साथ आने का लखन के आग्रह **"नाथ दास मैं स्वामी तुम तजहु तो कहाँ बसाय** । अयो. 71 । " याने आप मुझे छोड़ देंगे तो कहाँ शरण मिलेगा इस वचन को मैं नहीं मानता लखन को वन नहीं आने देता।

4 । अथवा वन आते समय सीता के वन आने के आग्रह को नहीं स्वीकार करता तो ये सब अनर्थ ही नहीं होता। सभी अनर्थो का कारण तो सीता ही हुई क्यों कि उसी की कथनी मान मैं मृग लाने गया, पीछे अकेली सीता चुराई गयी, युद्ध आ उमड़ा, यदि सीता साथ नहीं आती तो ये सब कुछ नहीं होता।

5 । अथवा जानकी के मृग लाने की बात - **"सुनहु देव रघुवीर कृपाला। येहि मृग कर अति सुन्दर छाला। ।** सत्यसन्ध प्रभु वध कर येही। आनहु चर्म कहति बैदेही। अर.26 । 3 । " - को नहीं मानता तो ये सब अनर्थ नहीं होता। जानकी का मृग लाने की बात कहना लोभाभिभूत अवस्था की है, अतः अमान्य था। किन्तु मैं नहीं समझ, उस कथनी को माना तो अनर्थ हुआ।

किसी रामायणी का यह भी कहना है श्री राम जी की वाल्यावस्था में मेघनाद काक बनकर उनकी बल बुद्धि की परीक्षा लेने गया था तो राम जी पकड़ कर उसे बाँध दिये थे। किन्तु दशरथ छोड़ा दिये थे और वही मेघनाद आज लक्ष्मण को मारने वाला हुआ है। अतः श्री राम जी यह सोचते हैं कि यदि मैं उस समय पिता की उक्त आज्ञा को नहीं मानता याने मेघनाद को नहीं छोड़ता तो आज इनकी यह दशा नहीं होती। किन्तु यह कल्पनामात्र है, सद्ग्रन्थों में इसका आधार कुछ नहीं मिलता। यहाँ केवल इस प्रसंग में भाई भाई का परस्पर प्रेम की वाहुल्यता ही पायी जाती है, इसके सामने दशरथ के वचनों का कोई मूल्य नहीं। क्योंकि लक्ष्मण जी भाई श्री राम जी के लिए **"देह गेह सब तृण सम तोड़े** । अयो. 69 । 3 । " डेहादिक सर्वस्व को तृण समान माना है, अपनी माता पिता बन्धु सभी परिवारों को छोड़ साथ चले और यह भी कहे कि **"अहं सर्व करिष्यामी जाग्रतः स्वपतश्च ते** । वा रा अयो. 31 । 27 । " आपकी सभी अवस्थाओं में मैं सब कुछ किया करूँगा। **"पिता च मम राघवः।** । " लक्ष्मण जी राम जी को पितृस्थानीय मानते हैं। सुमित्रा की

भी यही शिक्षा थी - "**तात तुम्हार मातु वैदेही। पिता राम सब भाँति सनेही।** अयो. 73।1।" इसी स्नेह के वशीभूत होकर श्रीराम जी पिता वचन को छोड़ना चाहते हैं किन्तु लखन का संयोग नहीं छोड़ना चाहते हैं। यदि राम जी इतना भी त्याग नहीं करते तो इनमें संकीर्णता पायी जाती क्योंकि इनकी प्रतिज्ञा है - "**ये यथा मां प्रपद्यन्ते तां तथैव भजाम्यहम्।** गी. 4।11।" याने जो जितना हम में प्रेम करता है उतना ही मैं भी उससे करता हूँ।

"**देखत राम लखन कर जोरे। देह गेह सब तृण सम तोरे।** अयो. 69।3।" लखन जी सभी परिवारों को तृण के समान तुच्छ समझ कर श्री राम जी के साथ हो गये हैं, यही अमूल्य प्रेम सार वस्तु है। ऐसे भाई नहीं मिलते - "**जगत न मिलही सहोदर भ्राता**" इसमें 'उदर' शब्द हृदय का उपलक्षक है। अर्थात् शरीर दोनों का दो होते हुए भी हृदय एक ही (समान) है। इसलिये ऐसे भाई के लिए पिता वचन का छोड़ना उचित ही है।

अथवा एक ओर दशरथ जी हैं और दूसरे ओर लक्ष्मण। इन दोनों में प्रवल पक्ष लक्ष्मण का ही है। क्योंकि दशरथ तो केवल इस प्राकृत लोक के एक बार के ही सम्बन्धी हैं, किन्तु लखन तो इस प्राकृत और दिव्यलोक में भी साथ ही रहने वाले हैं "**प्रथमोऽनन्तरूपश्च द्वितीयो लक्ष्मणस्तथा। तृतीयो बलरामश्च कलौ रामानुजो मुनिः।।**" लक्ष्मण प्रथम तो अनन्त रूप से, द्वितीय लक्ष्मण रूप से, तृतीय बलराम रूप से और चौथे रामानुज रूप से भगवान्के साथ रहते हैं। दिव्यलोक में -

"**निवासशय्यासनपादुकांशुकोपधानवर्षातपवारणादिभिः। शरीरभेदैस्तव शेषतां गतैर्यथोचितं शेष इतीर्यते जनैः।** स्तोत्र रत्न 40।" शेष जी (लक्ष्मण) अनेक रूप होकर भगवान्की सेवा सर्वदा किया करते हैं। इसीलिये इनके सामने दशरथ जी का सम्बन्ध तुच्छ पड़ जाता है, अतः लखन जी के लिए दशरथ जी का वचन न मानना कोई अनुचित नहीं।

दशरथ जी ने प्रथम तो कौशल्या से विवाह किया है। पश्चात् जब कैकेयी के रूप-गुण, कला-कौशल की प्रशंसा सुने, तो उतावला हो, तथा इसीसे उत्पन्न पुत्र राज्याधिकारी होगा, ऐसी प्रतिज्ञाबद्ध हो इससे विवाह किया। किन्तु जब रामचन्द्र युवा हुए तो इनका शील स्वाभावादि के वशीभूत हो दशरथ जी इन्हीं को राज्य देने की सारी रचना रच दी, यह तो इनकी अनुचित अवसरवादिता है। पुनः जब वे कैकेयी के सामने पड़ते हैं तो शीघ्र पलट जाते और उसी के अनुकूल कहते हैं - "**प्रिया प्राण सुत सर्वस तोरा।** अयो. 25।2।" हे प्रिये ! मेरा प्राण तथा पुत्रादि सर्वस्व तुम्हारे ही अधीन है। और - "**भामिनी राम शपथ शत मोही।** अयो. 25।3।" ऐसे शपथ करते हैं। "**प्राण जाहिं वरु वचन न जाई।** अयो. 27।3।" यह प्रतिज्ञा भी करते हैं। यहाँ पर कैकेयीपुत्र को राज्य देना कहकर राम जी को राज्य देना चाहते हैं, तो झूठे भी बनते हैं। ये सब क्यों हुआ, तो "देखहु **काम प्रताप बड़ाई।** अयो. 24।2।" कामातुर दशरथ कैकेयी के वशीभूत हो भरत को राज्य तथा राम जी को जंगल, ये दोनों वरदान दिये हैं। अतः इसको राम जी अमान्य समझ ठुकरा देते हैं।

"**देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवाः। तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः।** वा.रा. युद्ध 101।15।"

मानस प्रसंग 19। "**सुत वित नारी भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारम्बारा।।**

अस विचारी जिय जागहु ताता। जगत न मिलही सहोदर भ्राता। लं. 60।4।" श्री लखन जी के प्रति श्री राम जी का परम प्रेम प्रदर्शक ये चौपाइयाँ हैं। श्री राम जी लखन जी को प्राण से भी प्रिय समझते हैं - '**प्राणैः प्रियतरम्मम।** 101।4।' '**प्रियं प्राणं बहिश्चरम्।** ।101।9।''**इहैव मरणं श्रेयो न तु बन्धुविगर्हणम्।** वा.रा. युद्ध 101।19।" और ये लखन जी को मूर्छित देखकर कहते हैं कि मुझे मर जाना अच्छा है किन्तु भाई लखन जी के बिना जीना अच्छा नहीं है। उक्त चौपाई में सहोदर भ्राता के सम्बन्ध में यह प्रश्न होता है कि श्री राम जी के लखन जी वैमात्र भाई हैं तो वे उनको सहोदर भाई क्यों कहे ? तथा एक माता से उत्पन्न होने वाले सहोदर भाई संसार में मिला ही करते हैं तो फिर जगत न मिलही सहोदर भ्राता ऐसा क्यों कहते हैं ?

उत्तर - महापुरुषों को जहाँ कहीं जाना होता है तो प्रथम उस स्थान (जहाँ जायेंगे) को अपने योग्य बना लेते हैं। यदि पूर्व से ही

वह स्थान योग्य बना हुआ है तो कोई बात ही नहीं। यह स्थान दो तरह का होता है एक सिद्ध दूसरा कृत्रिम। "**शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते**। गी. 6।41।" योगभ्रष्ट योगी लोग उत्तम कुल में जन्म लेते हैं। उत्तम क्षेत्र के सम्बन्ध में कहा गया है कि "**या वै चतुर्दशी रात्रिः गर्भास्तिष्ठति तत्र वै। सा निशा प्राकृतैर्जीवेर्न लभ्येत कदाचन।।**" याने शुद्ध सात्विक संयम नियम से रहने वाली स्त्रियों के चौदहवें दिन के गर्भ से योगी महात्मा का जन्म होता है जो अत्यन्त दुर्लभ माना गया है।

जब श्री रामचन्द्र जी अपने अंशों के सहित अवतार लेना चाहे तो पवित्र सूर्यवंश को "**वंशेरघोरनुजिघृक्षुरिहावतीर्णो दिव्यैववर्षिथ तथाऽत्र भवद्गुणौघैः**। अतिमानुष स्त. 30।" स्वकीय दिव्यगुणों के वर्षा द्वारा और भी पूततम बना दिया जिससे भगवान्के अवतार योग्य हो गया। तथा इसी प्रकार अनादिकालिक उपासक माता पिता को भी प्राप्त किया। भगवान् श्रीरामचन्द्र ने कौसल्या के पवित्र हृदय को अंगीकार किया तो लखन जी सुमित्रा के सुन्दर हृदय को। शेष (लखन जी) अपना स्वरूप कभी भी नहीं भूले हैं, अतः अपना स्वरूपानुरूप सुमित्रा को अपनाया है। सुमित्रा - "**मगधस्य नृपस्थाय तनया च शुचिस्मिता। सुमित्रा नाम नाम्ना च द्वितीया तस्य भामिनी**। प.पु.उ.242।36।" श्रीविष्णुपादांकित पवित्र क्षेत्र गया निवासी राजा की पुत्री थी। "**धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपत्काल परीखिये चारी**। अर. 4।4।" किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व की परीक्षा आपत्तिकाल में ही होती है। श्री राम जी का वनगमन काल उपस्थित है, सुमित्रा परीक्षार्थ आ डटीं, कहती हैं, हे पुत्र लक्ष्मण ! "**सृष्टःत्वं वनवासाय ...... रामे प्रमादं मा कार्षीः पुत्र भ्रातरि गच्छति**। वा रा अयो 40।5।" जैसे कौशल्या लोकरक्षार्थ राम ऐसा पुत्र उत्पन्न की है वैसे ही राम जी की रक्षार्थ मैं भी तुम्हें उत्पन्न की हूँ, अतः तुम उनकी रक्षार्थ जंगल जाओ।। "**सुमित्रा गच्छ गच्छेति पुनर्पुनरुवाच तम्**। वा रा अयो 40।8।" और यह भी सिखाती है कि हम सभी माता पिताओं को भूलकर तन्मयतापूर्वक याने "**रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम्। अयोध्यां अटवीं विद्धि गच्छ तात यथा सुखम्**। वा रा अयो 40।9।" पिता स्थानीय राम को, माता स्थानीय जानकी को और अयोध्या जंगल को ही समझते हुए भगवान्की सेवा कीजियो। इसी को मानसकार भी कहते हैं "**तात तुम्हार मातु वैदेही। पिता राम सब भाँति सनेही**। अयो 73।1।" भाव यह है कि दशरथ तो एक जन्म के प्राकृत पिता हैं किन्तु राम तो अनन्तकाल के अप्राकृत पिता हैं। इन तत्वों को जानने वाली सुमित्रा थीं, तब तो बिना किसी के कहे लखन जी को वन भेज रही हैं। '**जानि कहत बहुभाँति निहोरे**' जाने के लिए प्रेरणा करती हैं और यह भी प्रोत्साहन देती हैं

"**सिय रघुवर सेवा शुचि हृदय हों तो जानिहौं सुत मोरे।**

कीजियो इन्हें विचार निरंतर राम समीप सुकृत नहीं थोरे। गीतावली अयो. 11।" यदि तुम श्री राम जी की सेवा शुद्ध हृदय से करोगे तभी मैं जानूँगी कि तुम मेरा पुत्र हो। भगवान्की सेवा थोड़े पुण्य से नहीं मिलती यहाँ तक कि "**सुनि रन घायल लखन पड़े हैं।**" जब सुमित्रा यह सुनी है कि लखन लंका में मूर्छित पड़े हैं तो कहती हैं कि -

"**स्वामी काज संग्राम सुभट सो लोहे ललकारी लड़े हैं।**

सुत शोक सन्तोष सुमित्रहिं रघुपति भक्ति बरे हैं।

छिन-छिन गात सुखात छिन - छिन हुलसत होत हरे हैं। गीतावली लंका 13।" सुमित्रा को लखन के लिए किञ्चित शोक तो हुआ है किन्तु वीरों के साथ श्री राम जी के लिये लड़ने से संतोष एवं राम जी के लिए प्राण दे देने तक जानकर अत्यन्त खुशी भी हुई है। इसी लिए यह भी कहा गया है कि - "**पुत्रवती युवति जग सोई। रघुवर भक्ति जासु सुत होई**। अयो. 74।1।" "**राम विमुख सुतते बड़ हानि**" इसीलिए अपना स्वरूपानुरूप सुमित्रा के हृदय को लखन जी ने अपनाया है। लखन जी भगवान्के साथ रह सेवा करने के सिवाय और कुछ भी नहीं चाहते हैं।

"**न देवलोकाक्रमणं नामरत्वमहं वृणे। ऐश्वर्यं चापि लोकानां कामये न त्वया विना। 31।5।**

कुरुष्व मामनुचरं वैधर्म्यं नेह विद्यते। कृतार्थोऽहं भविष्यामि तव चार्थः प्रकल्प्यते। वा रा अयो 31।24।" मैं आपके विना कुछ भी नहीं चाहता हूँ। आप मुझे अपना अनुचर बनाइये, किसी प्रकार का विधर्म नहीं होगा। स्वामी होने से सेवा लेना और सेवक होने से

मुझे सेवा करना यह दोनों का स्वारूपानुरूप है।

"समाचार जब लक्ष्मण पाये। व्याकुल विलखि तुरत उठी धाये।।

कंप पुलक तन नयन सनीरा। कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े। मीन दीन जनु जल ते काढ़े। अयो **71।1 एवं 2।"**

इसी प्रकार शक्ति द्वारा मूर्छित होने के पश्चात्- **"हृदय घाउ मेरे पीर रघुवीरे। मोहि का बूझत पुनि पुनि जैसे पाठ अर्थ चरचा कीरे।। शोभा सुख क्षति लाहु भूप कहे केवल कान्ति मोल हीरे।** गीतावली लंका **15।"** लखन जी के संचेष्टित होने पर लोगों ने पूछा कि व्यथा कैसी है तो लखन जी उत्तर देते हैं कि घाव तो मेरे शरीर में है किन्तु पीरा तो श्री राम जी को है उन्हीं से पूछो। जैसे सुग्गा केवल पाठ पढ़ता है किन्तु अर्थ तो पढ़ाने वाला जानता है। हीरा में केवल कान्ति और मूल्यमात्र है उससे शोभा या लाभ हानि तो रखने वाले ही का है। कहने का अभिप्राय यह है कि लखन जी अपने हृदय के ज्ञाता श्री राम जी को ही समझते हैं अथवा शरीर में हुए दुःख का अनुभव आत्मा ही को होता है, श्री राम जी लक्ष्मण जी के प्राण हैं। लक्ष्मण अपने हृदय को राम जी के हृदय में न्यस्त कर दिये हैं और श्री राम जी अपना हृदय लक्ष्मण के हृदय में - **"न लक्ष्मणसमो भ्राता सचिवः साम्परायिकम्।** वा. रा. यु. **49।6।" "यदि पञ्चत्वमापन्नः सुमित्रानन्दवर्द्धनः।7।" "इहैव देहं त्यक्ष्यामि न हि जीवितुमुत्सहे।11।" "यथैव मां वने यान्तमनुयातो महाद्युतिः। अहमप्यनुयास्यामि तथैवैनं यमक्षयम्।17।"** श्री राम जी कहते हैं कि यदि लखन जी नहीं जीवित हुए तो मैं भी इनके साथ ही मर जाऊँगा। लखन जी वन आते समय जैसे मेरे साथ आये इसी प्रकार मैं भी इनके साथ परलोक चलूँगा। इस प्रकार लखन जी और राम जी में सतत एकता का व्यवहार, परस्पर दोनों में शरीर शरीरी का सम्बन्ध रहने के कारण हीसे श्री राम जी इनको सहोदर भाई से कहा है। इसका भाव यही है कि इनके ऐसा समान हृदय वाला भाई संसार में नहीं मिलते। अन्यत्र भी इस प्रकार के शब्द मिलते हैं। **'रामसुग्रीवयोरैक्यम्।** वा रा सु. **35।53।'** अर्थात् राम और सुग्रीव दो होते हुए भी जानकी के अन्वेषण में एक हृदय तथा एक विचार के हैं। **'वाल्यात्प्रभृति सुस्निग्धः।** वा रा बा.**18।28।'**

"बारेहिं ते निज पति हित जानी। लक्ष्मण रामचरण रति मानी। बाल **197।2।"** वाल्यावस्था से ही श्री लखनलाल श्री रामचन्द्र में प्रेम करते आये हैं। जन्म के पूर्व में भी जिस समय दशरथ जी पुत्रार्थ अपने स्त्रियों को खीर बाँट रहे थे उस समय भी लक्ष्मण का उत्पादक खीर (सुमित्रा को मिलने वाला) कौशल्या के ही हाथ में दिया गया है। इनके हाथ में पूर्व से राम जी का उत्पादक खीर था और लक्ष्मण का उत्पादक खीर भी उसी के साथ संयुक्त हुआ है। पश्चात् कौशल्या द्वारा सुमित्रा को मिला - **"अर्धभागसमन्वितः"** यह भी दोनों को समान हृदय होने में कारण हुआ है और इसी से अनुज (पीछे जन्म लेने वाला) भी हुए।

ब्रह्मा की प्रार्थना- **"विष्णोः पुत्रत्वमागच्छ कृत्वाऽऽत्मानं चतुर्विधम्।** वा रा. बा. **15।21।"** हे भगवान्! आप चार शरीर से अवतार लीजिये और इसी के अनुकूल भगवान् ने अवतार भी लिया **"ततः पद्मपलाशाक्षःकृत्वाऽऽत्मानं चतुर्विधम्। पितरं रोचयामास तदा दशरथं नृपं।** वा रा.बा. **15।32।"** इसके पश्चात् भगवान् अवतार लेने के लिए पितृभाव से दशरथ को देखा। इस तरह लखन जी ब्रह्मा की प्रार्थना में भी साथ हैं, अवतार के समय भगवान्के संकल्प में भी साथ और अवतार के पश्चात्भी साथ हैं। यहाँ साथी बोधक सह शब्द ऊपर की चौपाई में आया है। कुछ काल के लिए लखन जी ने सुमित्रा के उदर में निवास किया है, अतः उदर शब्द आया है और पुनः अवतार लेकर मिले हैं, अतः मिलही शब्द आया है। भाई होने से भ्राता शब्द आया है। इस तरह के भाई नहीं मिलते इसीलिए निषेधक न शब्द आया है।

"जगत न मिलहीं सहोदर भ्राता" इसका अन्वय ऐसा समझना चाहिए - "सह उदर भ्राता जगत न मिलहीं " याने एक समान अन्तःकरण वाले भाई अन्य किसी के उदर में जाकर पुनः आ मिले ऐसा भाई संसार में नहीं मिलते। मिले तो श्री राम जी को लखन ही। इसी लिए - **"तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्रातासहोदरः"** वह स्थान कभी भी न देखता जहाँ सहोदर भाई मिलें ऐसा कहते हैं।

मानस प्रसंग 20।

"**सुत वित नारी ईषणा तीनी। केहि के मति इन्ह कृत न मलीनी।** उ. 70।3।" "**सुख और दुःख।**" "**संग्रह और त्याग।**" "**प्रतिग्रहो हि दुःखाय यद्यत्प्रियतमं नृणाम्। अनन्तं सुखमाप्नोति तद्विद्वान्यस्त्वकिञ्चनः।** भा. 11।9।1।" प्रतिग्रह को संग्रह करना याने लोक प्रियतम वस्तु को संग्रह करना दुःख का हेतु है। और गृहीत वस्तुओं को परित्याग करना सुख का हेतु है। जैसे नारद, शुकदेव, भरत आदि थे। सामान्य व्यक्ति धन को सबसे प्रिय समझते हैं किन्तु उसमें भगवान् पन्द्रह दोष बताते हुए यह कहे कि -

"**भिद्यन्ते भ्रातरोदारः पितरः सुहृदस्तथा।** भा. 11।23।20।" धन का प्रेम स्त्री, भाई, पिता और सभी प्रेमी जनों में भेद कराकर बैरी बना देता है। "**तस्मादनर्थमर्थाख्य श्रेयाऽर्थी दूरस्त्यजेत्।** भा. 11।23।19।" अर्थात् कल्याणार्थी धन को दूर से ही छोड़ दे। बलवान् जरासन्ध देश के सभी धनियों का धन छीनकर उन सबों को जेल में दे दिया था। पाण्डव तथा कौरवों में धन के ही कारण महायुद्ध हुआ जिससे देश के सभी शूर वीरों का संहार हुआ। भीष्म ऐसे महापुरुष को भी धनियों के संसर्ग से भ्रष्ट होना पड़ा, ये सभी दोष धन में ही रहते हैं।

"**न देयं न उपभोग्यं च लुब्धैः दुःखसंचितम्। भुङ्कते तदपि तत्च अन्यो मधुहा इव अर्थ वित्मधु।।**
सुखदुःखः उपार्जितैः वित्तैः आशासानां गृह आशीषः। मधुहा इव अग्रतो भुङ्कते यतिः वै गृहमेधिनाम्। भा. 11।8।15, 16।"
कृपण गृहस्थ या संन्यासी कष्टपूर्वक धनसंग्रह किया, किन्तु न तो स्वयं खाया और न किसी को दिया। उसकी दशा मधु अपहृत होने पर मधुमक्खी के सदृश हो जाती है।

धन हृदय का आकर्षक है। इसके अर्जन में चाहे जितना भी कष्ट हो, जो भी कुकर्म करना पड़े मनुष्य करता है और मरणपर्यन्त तो उसमें मन गड़ाये रहता ही है, मरण पश्चात् भी अर्जित संचित धन को सर्प आदि बनकर रक्षा किया करता है। क्योंकि यह अत्यन्त प्रिय है। इससे जब वियोग होता है तो सांसारिक व्यक्ति पुत्रनाश से भी अधिक दुःख अनुभव करते हैं। इसी विषय को भरद्वाज भरत जी से कहे हैं कि -"**तुम कह भरत कलंक यह हम सब कर उपदेश।** अयो. 208।" ऐ भरत ! तुम्हारे लिए तो यह राज्य कलंक है ही किन्तु हम सबों के लिए यह उपदेश है। इसी राज्य सम्पत्ति के लिए दशरथ का मरण, रामचन्द्र को वनवास इत्यादि अनर्थ हुआ है और की तो बात ही क्या। इस तरह लोक तथा परलोक का बाधक समझ कर ज्ञानी जन इसको छोड़ भागते हैं और यह भी लोगों को उपदेश देते हैं -

"**धनञ्च भूमौ पशवश्च गोष्ठे भार्या गृहेऽन्यः स्वजनश्मशाने। देहश्चितायां परलोकमार्गे कर्मानुगो गच्छति जीव एकः।**" परलोक के साथी धन परिवारादि कोई भी नहीं, किन्तु कर्मानुगामी केवल एक जीव ही परलोक जाता है अर्थात् कर्म अपने अनुकूल जीव को घसीट कर ले जाता है। यह कर्म दो प्रकार का होता है, शास्त्रानुकूल जिसको धर्म कहते हैं और शास्त्रप्रतिकूल अधर्म। भगवत्प्राप्ति में दोनों ही बाधक होते हैं। न तो संचित पुण्य के द्वारा ब्रह्मलोकादि मिलता है और पुण्य समाप्त होने पर यहाँ आकर अनेक योनियों में घूमना पड़ता है। पाप का फल तो स्पष्ट निकृष्ट से निकृष्ट योनियों में जाना पड़ता है, यह क्रम सतत चलता रहता है। "**एवं संसृति चक्रस्थे भ्रम्यमाणे स्वकर्मभिः। जीवे दुःखाकुले विष्णुः कृपा काप्युप जायते।।**" जीवों को कर्मफलानुकूल संसार में घूमते पचते देख, भगवान् निर्हेतुक कृपापात्र बनाते तथा मनुष्य देह देते हैं -

"**कबहुँक करि करुणा नरदेही। देत ईश विनु हेतु सनेही।** उ. 43।3।" और मनुष्य शरीर प्राप्त करने पर ज्ञानियों के संसर्ग द्वारा सभी कर्म फलों को - "**ज्ञानाग्निदग्धकर्माणां तमाहुः पण्डितं बुधाः।** गी. 4।19।" ज्ञानरूपी अग्नि से दग्ध कर वासना रहित निरञ्जन बन कर भगवान्को प्राप्त कर लेता है। इस अवस्था में इसे भगवत्सेवा छोड़कर और कुछ भी नहीं भाता - "**न नाकपृष्ठं न महेन्द्रधिष्णयमन सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्। न योगसिद्धिः पुनः अभवं वा मयि अपिर्त आत्म इच्छति मत्विना अन्यत्।।** भा. 11।14।14।" बल्कि - "**मुक्ति निरादरी भक्ति लुभाने।** उ. 118।4।" याने कल्याण चाहने वाले भक्ति के सामने मोक्ष को भी तुच्छ समझते हैं। "**रमाविलास राम अनुरागी। तजहि बमन इव नर बड़ भागी।** अयो 323।4। वड़भागी मनुष्य धनस्थान से मुख मोड़ कर अलग हट जाते हैं। जैसे भरत

राज्य छोड़ पुलहाश्रम जा तपस्या किये किन्तु धनसंग्रही न बने। हाँ, मृग के साथ प्रेम संग्रह किये, तो मृग में ही जन्म लेना पड़ा। किन्तु पूर्व के संस्कार के चलते फिर भी मुक्ति मिली क्योंकि मृग होने पर भी ज्ञान तो पूर्ववत्ही बना था। इसी से "**प्रतिग्रहो हि दुःखाय**" यह वचन सत्य है।

अक्रूर जी हस्तिनापुर धृतराष्ट्र को समझाने गये थे कि आप नीतिपूर्वक पाण्डवों के साथ व्यवहार करें क्योंकि वे सब आपके प्रजा हैं। किन्तु वे कहे कि -

"**यथा वदति कल्याणीं वाचं दानपते भवान्। तथानया न तृप्यामि मर्त्यः प्राप्य यथामृतम्।।**

तथापि सुनृता सौम्य हृदि न स्थीयते चले। पुत्रानुरागविषये विद्युत्सौदामिनी यथा। भा 10।49।27।" हे अक्रूर जी ! आप तो तथ्य कहते हैं किन्तु मेरा मन पुत्रों में लगा हुआ है, अतः आपका कहा मुझे में आकाश में विद्युत्की तरह नहीं ठहरती है। भाव यह है कि धन पुत्रादि में मन लगे रहने के कारण संसार में ही घूमना पड़ता है। इसी विषय में हनुमान्की यह कथा प्रसिद्ध है कि - श्री राम जी को साकेत (वैकुण्ठ) गमन के समय साथ में हुनमान्भी थे, जब वे ब्रह्मलोक पहुँचे तो वहाँ की सुख समृद्धि देख हनुमान्का मन आकर्षित हो गया। इनकी ऐसी अभिलाषा समझ कर भगवान् हनुमान् को कहे कि तुम यहीं रहो और ब्रह्मा की आयु भोग कर साकेत में आना। हनुमान् ऐसे भक्त भी भूला करते हैं तो अन्यों की बात ही क्या। अर्थात् भगवत्प्राप्ति के लिये कितनी सावधानी की आवश्यकता है यह तो सोचने समझने की बात है। इसीलिए संग्रह को दुःखद और त्याग को सुखद बताया गया है।

स्त्रियों में दो विभाग है, एक तो गृहलक्ष्मी हैं, जैसे सुमित्रा, शैव्या, सुनीति, विदुरानी, मथुरा की ब्राह्मणी, कुन्ती आदि जो सब प्रायः स्मरणीय हैं। दूसरी कलही कुटिलायें हैं - जैसे शूर्पनखा, चित्रकेतु की स्त्रियाँ, पूतना, मन्थरा आदि। शूर्पनखा के द्वारा राक्षसकुलों का नाश, चित्रकेतु की स्त्रियाँ बालहत्या कर राजा को प्राणसंकट में पहुँचायी। पूतना व्रज के बालकों को मार कर कृष्ण को भी मारना चाही थी। मन्थरा सारी अयोध्या के अनर्थ का कारण बनी। ऐसी स्त्रियों को अत्यन्त दूषित बताया गया है। यहाँ तक कि इन सबों के संगियों को भी दूर से ही छोड़ देना श्रेयस्कर बताया गया है - "**स्त्रीणां स्त्री संगिनां संग त्यक्त्वा दूरत आत्मवान**" "**प्रत्यक्षा स्त्री राक्षसी**"। कुटिला कर्कशा स्त्रियों को प्रत्यक्ष राक्षसी कहा गया है। जैसे दशरथ कैकेयी के पाले पड़े, श्री रामराज्य के दृश्य से वंचित रहते हुए मृत्यु के भी पाले पड़े। सभी प्रकार से स्त्री, धन, पुत्रादि हृदय को आकर्षक होते हैं। अतः इन सबों से बचने की चेतावनी के लिये कहा गया है कि - "**सुत वित नारी ईषणा तीनी। केहि के मति इन्ह कृत न मलीनी।।**"

मानस प्रसंग 21। श्री दशरथ जी और उनका स्वर्गवास।

"**स्वायम्भुवो मनुः पूर्वं द्वादशार्णं महामनुम्। जजाप गौतमी तीरे नैमिषे विमले शुभे।।**
तेन वर्ष सहस्रेण पूजितः कमलापतिः। मत्तो वरं वृणीष्वेति तं मनुं भगवान्हरिः।।
ततः प्रोवाच हर्षेण मनुः स्वाम्भुवो हरिम्। पुत्रत्वं भज देवेश त्रीणि जन्मानि चाच्युत।।
इत्युक्तस्तेन लक्ष्मीशः प्रावाच सुमहागिरा। भविष्यामि नृपश्रेष्ठ यत्ते मनसि कांक्षितम्।।
अस्याभूत्प्रथमं जन्म मनो स्वायम्भुवस्य च। रघूणामन्वये पूर्वं राजा दशरथोऽभूत्। प.पु.उ.242।1-9। पूर्वकाल में स्वांयभुव मनु पुत्रार्थ नैमिषारण्य में गौतमी नदी के किनारे एक हजार वर्ष तक तपस्या किये थे जिसमें द्वादशाक्षर मन्त्र का जाप करते थे। भगवान् ने प्रसन्न हो इनको वर मांगने का आदेश दिया। मनु कहे कि हे भगवन् ! तीन जन्म तक आप मेरे पुत्र बनें। भगवान् इसको अंगीकार कर गुप्त हो गये। यही मनु रघुकुल में प्रथम बार के जन्म में दशरथ हुए हैं और भगवान् रामरूप में उनके पुत्र हुए। दशरथ को दो बार और जन्म लेकर भगवान् को पुत्र बनाना है इसलिए इस जन्म में उनको मोक्ष नहीं हुआ है। हाँ, भक्ति करना चाहा है। इसी को मानसकार भी कहते हैं -

"**तेहि अवसर दशरथ तहं आये। तनय विलोकी नयन जल छाये।।**
ताते उमा मोक्ष नहीं पायो। दशरथ भेद भक्ति मन लायो।।

बार बार करि प्रभुहि प्रणामा। दशरथ हरषि गये सुरधामा। लं. 111।1 एवं 3।" यद्यपि दशरथ के सम्बन्ध में बहुत सी प्रशंसायें मिलती हैं - "**जासु विरचि बड़ भयेउ विधाता। महिमा अवधि राम पितु माता।** बा. 15।4।**भय कोउ अहहि न होनउ हारा।** भूप भरत जस पिता तुम्हारा। अयो. 172।4।" "**तीन काल त्रिभुवन जगमाहीं।भूरि भाग दशरथ सम नाहीं।** अयो. 1।4।" "**सुरपति जेहि आगे कर लेही। अर्ध सिंहासन आसन देही।** अयो. 97।2।" फिर भी ये सब तो इस लोक के लिए ही महत्वजनक हैं न कि मोक्ष धाम के लिए। दशरथ जी कैकेयी की प्रशंसा सुनकर भविष्य में श्री राम जी को मिलने वाला राज्य कैकेयी या उसके पिता अश्वपति को जिम्मा कर उससे व्याह किया। भरत परम भागवत होंगे, इसलिए यह राज्य भगवत्अनर्पित होने के कारण भरत के योग्य नहीं हुआ। और यदि भरत के राज्य मानें तो भरत के निमित्त हो जाने कारण उच्छिष्ट वस्तु को भगवान् कैसे ग्रहण करेंगे ? कौशल्या भी यही कही है - सो वचन यों है। "**यदि पञ्चदशे वर्ष राघवः पुनरेष्यति। झह्याद्राज्यञ्चकोशञ्च...**।।" भरत का भोगा हुआ राज्य को भगवान् पन्द्रहवें वर्ष आने पर कैसे भोगेंगे। लोकव्यवहार में भी प्रथम पंक्ति में भोजन कर लेने क पश्चात् सुधा के समान भी भोजन सुरा के तुल्य समझा जाता है।

"**भोजयन्ति किल श्राद्धे केचित्स्वानेव बान्धवान्। ततः पश्चात्समीक्षन्ते कृनकार्या द्विजर्थमान।।**

तत्र ते गुणवन्तश्च विद्वांसश्च द्विजातयः। न पश्चात्तेऽनुमन्यन्ते सुधामपित सुरोपमा।।" दशरथ भरत के संकल्पित वस्तु को श्री राम जी के गुणगण देखकर उनको देना चाहते हैं। गुरु वशिष्ठादि सब मिल राज्याभिषेक की तैयारी कर ही दिये किन्तु पुनः जब दशरथ कैकेयी के सामने पड़ते हैं तो फिर भी यही कहते हैं "**प्रिया प्राण सुत सर्वस तोरे**। अयो.25।3।" और श्री राम जी को भूल जाते हैं, यह इनकी ढुलमुल नीति है, अवसरवादिता है।

देवासुर संग्राम में दशरथ जी के वचनों के बदले में कैकेयी जो वरदान मांगी है उसको नहीं मांगना चाहती है क्योंकि संग्राम में कैकेयी यदि दशरथ को बचायी है तो वह अपने सौभाग्य की रक्षा की है, यदि दशरथ मर जाते तो वह विधवा बन जाती। इसके बदले यदि वह वरदान मांगती है तो वह सतीत्व धर्म के प्रतिकूल है क्योंकि पति की सेवा कर कुछ मांगना मजदूरी है। यह कैकेयी की भूल है और भूल की अवस्था में भी दशरथ यह कहते हैं कि - "**दुइ के चार मांग किन लेहू**। अयो. 27।2।" यह क्यों कहते हैं? "देखहु **काम स्वभाव प्रभाऊ**। अयो. 24।2।" दशरथ जी कामवश ही सब कुछ किये हैं।

वन जाते समय कैकेयी श्री राम जी का सभी वस्त्र भी उतरवा लेती है किन्तु दशरथ मूक भाव से रह जाते हैं। इससे यह भी सिद्ध होता है कि इनको यह स्वीकार है। इनके सामने से राम जी जंगल जाते हैं किन्तु दशरथ कुछ भी नहीं बोले। अयोध्या से जाकर राम जी किसी गांव में न रहें, भूमि में ही सोवें, अन्नादि छोड़ कन्द मूल ही भोजन करें इत्यादि नियमों के साथ वनवासी बनाये जा रहे हैं। यदि भरत को राज्य से काम था तो इन व्यर्थ के कठोर नियमों को श्री राम जी पर लादने से क्या लाभ ? किन्तु इस विषय में भी दशरथ जी चुप ही साधे हैं। इसीलिए लक्ष्मण कहे हैं - "**अहं हनिष्ये पितरं वृद्धं कामवशं गतम्**। बा.रा.अयो. 21।19।" सुमन्त जी इसको अनर्थ समझ कर ही कहे हैं कि - "**अपि वृक्षाः परिम्लानाः सपुष्पांकुर कोरकाः**। बा.रा.अयो. 59।4।" राम विरह में वृक्ष लता पुष्पादि भी सूख गये हैं ऐसा आपका कठोर वचन हुआ है। जंगली असभ्य कठोर हृदय वाले भी आपकी आज्ञा को घृणा की दृष्टि से देखते है। "**ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठये वन बालक ऐसे**। अयो. 88।1।" याने माता पिता बुद्धि से काम नहीं लिए हैं। "**बात दृढ़ाई कुमति हंसि बोली।कुमत विहंग कुलह जनु खोली**। अयो.27।4।" "**सुनी मृदु वचन कुमति अति जरइ**। अयो.32।2।" "**कपट सयानी कहत कछु**। अयो.36।" "**कुटिल कठोर कुबुद्धि कुजाति**।" "**चली कहत मतिमन्द अभागी**। अयो.50।1।" इत्यादि कुवचनों को लोग व्यवहार करते हुए धिक्कारे हैं। इसका प्रधान कारण दशरथ जी का वरदान देना ही है। और दशरथ की बुद्धि कैकेयी के ही कारण गिरी है। इस प्रकार दोनों अनर्थ के कारण वने हैं।

कुछ रामायणियों का यह कहना है कि कैकेयी अति राजनीतिज्ञा थी, वह सोची कि राक्षसों का उपद्रव बढ़ रहा है। यदि

राम जी राजा बनेंगे तो शायद राजमद में कहीं भूल न जायें। और यदि अभी वन चले जाते हैं तो राक्षसों का उपद्रव मिट जायेगा तथा भगवान् की लीला में भी वृद्धि होगी। अतः इनको वन में भेजी है। यह तो उत्तम विचार है किन्तु इस विषय में यह सोचना चाहिए कि यदि प्रथम श्री राम जी राजा बना दिये जाते तो स्वतः प्रजापालन, राज्य संरक्षण का भार उनके सिर लदता। प्रजा, ऋषि, देव तथा पृथ्वीमात्र को सुखी बनाते क्योंकि इसी के लिए अवतार ही लिए हैं। "**हरिहैं सकल भूमि गरुआई।** बा. **186।4।**" तथा - "**धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।** गी.**4।8।**" तो क्यों नहीं अनर्थकारियों का विनाश करते ? राजा लोग दिग्विजय कर अश्वमेध करते हैं, इसी यात्रा में राक्षसों का विनाश होता। भरत तथा माता पिता सभी सुखी रहते। कैकेयी तो श्री राम जी को वनवास देकर अत्यन्त कष्ट दी है। स्वतः श्री राम जी इन कष्टों को व्यक्त किये हैं - "**लागहिं अति पहार के पानी।विपिन विपति नहीं जाई बखानी।** अयो.**62।1।**" कहां तो ऐसी विपत्ति और कहां श्री राम जी की सुकुमारता। इस पर भी वल्कल, जटा, भूमिशयनादि कठोर नियम। ऐसी विपत्ति में श्री राम जी को डालने से दूसरा अकृत्य और क्या हो सकता है।

कोई कोई यह कहते हैं कि कैकेयी अपने ऊपर कलंक लेकर श्री राम जी के यश को बढ़ाई है। यदि ऐसी ही बात होती तो क्या उनको गद्दी पर बैठा कर कहती कि आप दिग्विजयार्थ घूमें और सबों को सुख सुविधा बढ़ायें तो यह और भी उत्तम होता।

श्री राम जी वन से आके प्रथम कैकेयी से मिले हैं, इससे इनकी मर्यादा की रक्षा होती है क्योंकि प्रथम कौशल्या से मिलते तो समझा जाता कि द्वेष वश ऐसा किये हैं। सुमित्रा से मिलते तो यह होता कि लक्ष्मण साथ हैं इसीलिये ऐसा पक्षपात सिद्ध होता। किन्तु कैकेयी को दशरथ संभाल नहीं सके, विवश हो उसके पक्ष को ही पूरा किये हैं। जिस रामधाम प्राप्ति के लिए सभी कर्मो धर्मों का फल त्यागा जाता है, किन्तु दशरथ जी उसको अपनाये हैं और प्रत्यक्ष धर्म की मूर्ति श्री राम जी "**रामो विग्रहवान् धर्मः।** वा.रा.अर.**37।13।**" को छोड़कर और सामान्य धर्म सत्यपालन को अपनाया है।

दशरथ जी को राम जी में पुत्रभाव से प्रेम था किन्तु कैकेयी के सामने पड़ने से वह भी चम्पत हो गया। भगवान्तो कल्पवृक्ष के समान मनोवाञ्छित फल को देने वाले हैं - "**संसेवया सुरतरोरिव ते प्रसादः सेवानुरूपमुदयो न परावरस्त्वम्।**" "**देव देवतरु सरिस सुभाउ।** अयो.**266।4।**" "**ये यथा मां प्रपद्यन्ते तां तथैव भजाम्यहम्।** गी.**4।11।**" जो जिस भाव से मुझे जानता है मैं भी उसे वैसा ही समझता हूँ। "**धर्मपाशेन संयतः।**" याने धर्मफल को अपनाया तो उसी के द्वारा बँध गये। मुमुक्षुओं को तो धर्माधर्म दोनों से बचना चाहिए। श्रुति कहती है कि - "**निरंजनः परमसाम्यमुपैति...।**" पाप पुण्य से जो रहित होता है वही परब्रह्म नारायण को प्राप्त करता है। किन्तु दशरथ धर्माभिमानी हुए। अतः कहा जाता है कि दशरथ ऐसा धर्माभिमानी और रावणवत् पापाभिमानी मुमुक्षुओं को नहीं होना चाहिए। दशरथ के द्वारा कुछ दिन के लिये बहुतों को कष्ट झेलना पड़ा है। अतः नियमानुकूल उसी पाप से दशरथ को दूसरे जन्म में भी भगवान्में पुत्रभाव बना रहा है - "**तेहि अवसर दशरथ तहं आये।तनय विलोकी नयन जल छाये।।**" जब राम जी ने इनको विशेष ज्ञान दिया तो पुत्रभाव मिटा और ईश्वर समझ कर प्रणाम किये - "**बार बार करि प्रभुहि प्रणामा। दशरथ हरषि गये सुरधामा।**" और इसके पश्चात् इन्द्रलोक चले गये हैं। मोक्ष पीछे होगा।

"**कछुक काज बिधि बीच बिगारेऊ। भूपति सुरपति पुर पगु धारेऊ।** अयो.**159।1।**"

"**जीवन सफल जनम फल पाये। अन्त अमरपति सदन सिधाये।** अयो.**160।2।**" सबसे मुख्य विषय विचारने का यह है कि भरत ऐसे व्यक्ति "**जग जपु राम राम जपु जेही।** अयो.**217।4।**" सो भी कैकेयी को "**पापिनी सबहीं भांति कुलनाशा।** अयो.**160।3।**" पापिनी शव्द से सम्बोधन किया है। तथा - "**वर मांगत मन भयउ न पीरा। गिरेउ न जीह मुख परेउ न कीरा।** अयो.**161।1।**" "**धिक कैकेयी अमंगल मूला।।**" इत्यादि । तो ऐसी अपराधिनी कैकेयी के कार्य में दशरथ सहायक हुए हैं। कल्याण में भाव ही प्रधान माना गया है। "**तस्मात्भावो हि कारणम्।**" किन्तु दशरथ जी को तो ब्रह्म राम में भी पुत्र ही भाव बना रहा है। मिट्टी बालु पत्थर में ब्रह्मभाव को मानने वाले को मोक्ष हुआ है। किन्तु दशरथ जी तो ब्रह्म राम में भी पुत्र ही भाव रखा है। इसी से देवलोक मिला।

"**भगवत अनुकूल, भागवत अनुकूल। भगवत अनुकूल, भागवत प्रतिकूल। भगवत प्रतिकूल, भागवत प्रतिकूल। भागवत अनुकूल, भगवत प्रतिकूल।**" इन सबों में आदि अन्त वाले को कल्याण होता है किन्तु मध्य वालों को नहीं। भाव यह कि भगवान् के प्रतिकूल रहने पर भी यदि भागवत अनुकूल हों तो कल्याण होता है किन्तु भगवान्‌भक्त के विरोधी को कभी नहीं अंगीकार करते हैं। दशरथ जी भगवान् तथा भागवत भरत दोनों के प्रतिकूल आचरण किये हैं इसी लिए मोक्ष नहीं हुआ। इसी लिये इनके सम्बन्ध में मानसकार कोई भी मुक्तिसूचक एक या दो पद नहीं लिखे हैं, जैसे कि औरों के लिए मिलता है। शवरी के लिये - "**तजि योग पावक देह हरिपद, लीन भये जहँ नहीं फिरे।** अर.35 छन्द।" जटायु के लिए - "**गिद्ध देह तजि धरि हरि रूपा।** अर.31।1।"

कुछ लोग दशरथ को स्वर्ग के लिए आये पदों को ही तोड़ मरोड़कर इनको मुक्त बनाने का प्रयास किये हैं जो अनुचित झलकता है। क्योंकि शब्द तो कामधेनु है और कामधेनु को मारकर बांधकर दूध लेना अच्छा नहीं, जो यह स्वाभाविक दूध दे वही श्रेयस्कर होता है। इसी तरह शब्द से स्वाभाविक अर्थ लेना चाहिए। हाँ, यह ठीक है कि भक्तों ने मुक्ति से बढ़कर भक्ति को ही माना है- "**मुक्ति निरादरी भक्ति लुभाने।** उ.118।4।" और दशरथ भी वही हरिभक्ति करने के लिए मुक्ति नहीं मांगे यह उत्तम विचार है। यह भी मुक्ति में बाधक हुआ है।

मानस प्रसंग 22।

"**औरों एक गुप्त मत सबहिं कहौं कर जोर। शंकर भजन विना नर भक्ति न पावै मोर।** उ. 45।"एक समय श्री रामचन्द्र जी सभी अयोध्यावासियों को बुलाकर कल्याण का मार्ग बताते हुए यह कहते हैं, हे पूज्य गुरुजन! तथा प्रिय प्रजाओं! मैं करबद्ध हो कहता हूँ कि जितने प्रकार का कल्याणमार्ग आप सबों को बता चुका हूँ उन सबों में एक और गुप्त गोपनीय मेरा मत यह है कि शंकर भजन विना यह सुगम मेरी भक्ति नहीं प्राप्त हो सकती है। इस दोहे के अर्थ में लोग यही कहा करते हैं कि शंकर भजन याने शिवजी का भजन विना राम जी की भक्ति नहीं मिलती है। यह स्वयं भगवान् श्री राम जी ही कहे हैं, अतः यही फेर में पड़ बहुत से भक्त लोग जीवन भर "वं वं हर हर" करते रह जाते हैं। ऐसा क्यों न हो, कारण कि श्री राम जी ने स्वयं अपने मुख से अपने इस गुप्त मत को लोक कल्याणार्थ व्यक्त किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि राम जी की भक्ति बाँटने वाले शिव जी हैं।

उपर्युक्त दोहा के अर्थ करने वालों को यह सोचना चाहिए कि शिवजी के बिना भी किसी भक्त को भगवान्‌अपनी भक्ति दिये हैं या नहीं ? यदि हाँ, तो "वदतो व्याघातः" दोष, भगवान्‌के नियमों में व्यतिक्रम, भक्तिरूप कोषाध्यक्ष शिव को कदाचित् अप्रसन्नता इत्यादि दोष होगा।

कृपालु भगवान्‌के करकमलों द्वारा सतत भक्ति का वितरण होता रहता है, उसमें कभी भी शिव की अपेक्षा नहीं की जाती है - "**अविरल भक्ति मांगि वर गिद्ध गयो सुरधाम।** अर 32।" यही नहीं बल्कि नहीं मांगनेवालों को भी वह भक्ति मिलती है - "**सगुन उपासक मोक्ष न लेहीं। तिन्हंकहं राम भक्ति निज देहीं।** उ. 111।3।" यदि उपरोक्त बन्धन भक्ति मिलने में होता, तो ध्रुव, प्रह्लाद को कभी भी भक्ति नहीं मिलती क्योंकि एक दिन भी शिव का नाम ये लोग नहीं लिये हैं, किन्तु - "**भक्त शिरोमणि भे प्रहलादू।** बा. 25।2।" शिव स्मरण विना भी प्रह्लाद भक्त शिरोमणि हुए हैं। भक्ति प्राप्ति के लिए अन्यान्य उपाय भी बताये गये हैं -

1। सत्संग द्वारा- "**भक्ति तात अनुपम सुखमूला। मिले जो सन्त होहिं अनुकूला।** अर. 15।2।"

2। ब्राह्मणों में प्रेम के द्वारा- "**भक्ति के साधन कहौं बखानी।** अर. 15।3।" "**प्रथमहिं विप्र चरण अतिप्रीति।** अर. 15।3।" "**तेहि कर फल पुनि विषय विरागा। तब मम चरण उपज अनुरागा।** अर. 15।4।" "**भरत चरित कर नेम सादर जे गावहीं सुनहीं। सीय राम पद प्रेम अवसि होई भवरस विरति।** अयो. 326।" "**यह संवाद जासु उर आवा। रघुपति चरण भक्ति सोई पावा।** सु.33।2। भगवान् और हनुमान मिलन संवाद का स्मरण।

"**मदर्थे धर्मकामार्थान्‌आचरन् मदपाश्रयः। लभते निश्चलां भक्तिं मय्युद्धव सनातने।** भा. 11।11।24।" भगवान् कहते हैं कि जिनका सारा कार्य मेरे ही लिये होता है वे निश्चल भक्ति प्राप्त करते हैं।

"इष्टापूर्तेन मामेव यो यजेतसमाहितः। लभते मयि सद्भक्तिं मत्स्मृतिः साधुसेवया। भा. 11।11।47।"

"इति मां यः स्वधर्मेण भजन्नित्यमनन्यभाक्। सर्वभूतेषुमद्भावो मद्भक्तिः विन्दते दृढ़ाम्। भा. 11।18।44।" इष्टापूर्ति पूर्वक सावधानी के साथ तथा स्वधर्मानुकूल अनन्यभाव से मुझको जो भजता है उसे अनन्य भक्ति मिलती है।

"भक्तिमुक्तिरुपायैः श्रुति सद्विहित साच धीः प्रीतिरूपा। तन्निष्पतिफलेच्छा ह्युपधि विरहितं कर्मवर्णाश्रमादेः।।" जो फलेच्छा रहित स्ववर्णाश्रम धर्मानुकूल श्रुति-स्मृति विहित भगवन्निमित्त कर्म करता है उसे भक्ति प्राप्त होती है। नारद से भक्ति पूछती है - मैं कहाँ रहूँ ? नारद का उत्तर - "...निरन्तर वैष्णवमानसानि।"वैष्णवों के मानस में भक्ति सतत रहती है। "यस्तूत्तमश्लोकगुणानुवादः संगीयतेऽभीक्ष्णममंगलध्नः। तमेव नित्यं श्रृणुयादभीक्ष्णं कृष्णेऽमलां भक्तिमभीप्समानः।।" जो भगवद्गुण गाता और सुनता है उसे भक्ति मिलती है। इस प्रकार अनेकों भक्ति प्राप्त्यर्थ साधन बताये गये हैं। और बिना शिव जी के दिये इन साधनों द्वारा भक्ति प्राप्त होती है, यह भी उक्त दोहे के अर्थ में व्यतिरेक होगा।

श्री राम जी स्वतः उदारगुण वाले हैं - "ऐसो को उदार जगमाहीं। वि.पत्रि. 162।" "जानत प्रीति रीति रघुराई। वि.पत्रि. 164।" किस प्रेमी के प्रति क्या करना चाहिए यह श्री राम जी जानते हैं। अतः यदि भगवान् जानते कि शंकर भजन बिना मेरी भक्ति नहीं प्राप्त होती है तो डंके की चोट से यह सबों को जना देते कि जिसको मेरी भक्ति प्राप्त करना है वह शंकर के यहाँ जाया करे किन्तु ऐसा न कर उसको गुप्त मत कहते हैं जो उनके लिए अनुचित जान पड़ता है।

शिव जी का अनन्य भक्त घण्टाकर्ण जब शिव जी से मोक्ष मांगा तो उन्होंने साफ शब्दों में कह दिया कि इसके लिये तुम भगवान् के यहाँ जाओ, किन्तु भगवान्ऐसा किसी को भक्ति प्राप्ति के लिए शंकर के यहाँ नहीं भेजकर स्वतः उसको भक्ति देते हैं और उपाय भी बताते हैं। इससे प्रतीत होता है कि "शंकर भजन बिना" नियम को भगवान् ही भंगकर भक्ति बांटते हैं। भक्ति के सम्वन्ध में यह भी है कि - "भक्ति स्वतंत्र सकलगुणखानी। बिनु सत्संग न पावहीं प्राणी। उ. 44।3।" सभी गुणों का आकर भक्ति स्वतन्त्र है, किसी की सहारा नहीं चाहती है, किन्तु बिना सत्संग नहीं प्राप्त होती। 'बिनु' शब्द से अन्य साधन का निषेध किया गया है। उपरोक्त दोहा और चौपाई से बिनु शब्द प्रयोग कर, भक्तिप्राप्ति में अन्य साधनों को निषेध कर, सत्संग और शंकरभजन रखा गया है तो ऐसी परिस्थिति में भक्ति को शिव जी के पराधीन कर देना अनुचित होगा।

भगवान् श्री राम जी सर्वशक्तिमान् तथा सर्वतन्त्र स्वतन्त्र हैं, अतः स्वतन्त्र विशेषाधिकार द्वारा भी लोगों को भक्ति देना उचित ही है। जैसे केवट को - "बिदा किये भगवान प्रभु भक्ति विमल वर देई। अयो. 102।" जटायु - "अविरल भक्ति मांगि वर गिद्ध गयउ हरिधाम। अर. 32।" भक्ति लोगों को मांगने में यह तात्पर्य है कि त्रिपाद्विभूति (वैकुण्ठ) में मुझे कहीं मुकुट कुण्डल न बना लें कि जड़ के तुल्य रहना पड़ेगा। अतः भक्ति ही मांगा करते हैं कि सेवक बनकर सेवा करता रहूँ। इसी में सच्चा सुख है बल्कि एक देह से भगवान्की सेवा करने में तृप्ति नहीं होती है तो - "एकधा दशधा चैव" अर्थात् एक से दशों देह धारण कर मुक्तात्मायें भगवान् की सेवा किया करती हैं।

हनुमान भी वही भक्ति मांगे हैं और मिली- "नाथ भक्ति अति सुखदायिनी। देहु कृपा करि प्रभु अनपायनी। सु 33।1।" भरद्वाज भी वही मांगते हैं "अब करि कृपा देहु वर येहु। निजपद सरसिज सहज सनेहू। 106।4।" "सुनि मुनि वचन राम मुसकाने। भाव भक्ति आनन्द अघाने। अयो. 107।1।" कुम्भज - "अविरल भक्ति विरति सतसंगा। चरण सरोरुह प्रीति प्रसंगा। अर.12।6।" हमें लोक से वैराग्यपूर्वक सत्संग तथा आपके चरणकमलों में प्रेम हो। अत्रि -"अब जाना मैं श्री चतुराई। भजिय तुमहिं सब देव विहाई। अर. 5।4।" अब मैं आपकी चातुर्य को समझ गया, सब देवों को छोड़ केवल आपको ही भजना चाहिए। शरभंग- "जोग जज्ञ जप तप मुनि कीन्हा। प्रभु कह देई भक्ति वर लीन्हा। अर 7।4।" सभी साधनभूत कर्मों को भगवदर्पण कर भक्ति मांग लिये। सुतीक्षण - "मन वच कर्म रामपद सेवक। सपनेहु आन भरोस न देवक। अर. 9।1।" अविरल प्रेम भक्ति मुनि पाई। प्रभु देखहि तरु ओट लुकाई। अर. 9।7।" सुतीक्षण स्वप्न में

जी बता रहे हैं। यह लीला अवस्था में भी भगवान्अपना शुद्ध स्वरूप का ज्ञान करा रहे हैं। जिसको महादेव कहते हैं - "**गुप्तरूप अवतरेउं प्रभु**। बा. 48।" अर्थात् भगवान् अपना गुप्त स्वरूप को प्रकट कर रहे हैं इसीलिए दोहा में "**गुप्त मत**" यह पद आया है।

अथवा जिसके द्वारा कल्याण होता है, भगवान् सत्संग तथा सन्तजन इन सबों की प्राप्ति में भी हमारी कृपा ही कारण है "**बिनु हरिकृपा मिलही नहीं सन्ता**। सु. 6।2।" और वह कृपा कटाक्ष किन साधनों से प्राप्त होता है यह गुप्त है। '**करजोर**' कहने का यह भाव है कि "**आत्मानं मानुषं मन्ये**" भगवान्अपने को राजकुमार मानते हैं - "**कोशलेश दशरथ के जाये। हम पितु वचन मानि बन आये**। कि. 1।1।" श्रेष्ठ पुरुषों में नम्रता प्रधान गुण है, अतः सबों के सामने करबद्ध हो उपदेश सुना रहे हैं। इन सभी पूर्वापर विचारों के आलोड़न द्वारा यही झलकता है कि उक्त दोहा में शंकर शब्द कल्याण वाचक है। भगवान्का नाम भी शंकर है - "**शंकरोषि सदा देव ततः शंकरतां गतः**। हरिवंश प.3।"

मानस प्रसंग 23। "**मोह न नारि नारि के रूपा । पन्नगारि यह नीति अनूपा**। उ. 115।1।" यह उत्तरकाण्ड भक्ति निरूपण प्रकरण की चौपाई है। माया और भक्ति दोनों स्त्री जाति की हैं। माया की शक्ति भगवद्भक्तिवानों का कुछ नहीं बिगाड़ सकती है। सती के सतीत्व के सामने उसका प्रभाव मन्द पड़ जाता है। जैसे भगवद् भक्तिमती सती जानकी के सामने चण्डी, दुष्ट से दुष्ट प्रकृति वाली लंका की राक्षसियों का कुछ भी नहीं चल सका, याने दुष्टों का संग जानकी को नहीं बिगाड़ सका है वह ज्यों की त्यों खरी रह गयीं। स्त्रियों का रूपादि देख छुद्र पुरुषों का मन क्षुब्ध होता है किन्तु स्त्रियों का नहीं। यही चौपाई का भाव है किन्तु कुछ व्यक्ति बालकाण्ड सीता स्वयंवरकालिक चौपाई - "**रंगभूमि जब सिय पगुधारी। देखि रूप मोहै नर नारी**। बा. 247।2।" को उपस्थित कर यह प्रश्न करते हैं कि जब '**मोह न नारी नारी के रूपा**' तब सीता को देखकर स्वयंवर की स्त्रियाँ क्यों मुग्ध हो गयीं ?

उत्तर - प्रथम तो यह विचारना चाहिए कि किसी भी पद्यादि के अर्थ करते समय "**शक्ति ग्रहं व्याकरणोपमानं कोशाप्त वाक्याद्**।" इत्यादि नियमों के अनुकूल अनेकार्थक शब्द के अर्थ निर्णय में "**सामर्थ्यमौचिती देशः कालो व्यक्ति...**।" याने देश काल का ध्यान अनिवार्य होता है। यहाँ तो देश काल भिन्न भिन्न है याने दोनों दो प्रसंग की बातें हैं। और मोह शब्द अनेकार्थक है, बहुत से अर्थो में यह प्रयुक्त हुआ है। जैसे - 1। "**भये मोहवश सब नरनाहा**। बा. 247।4।" यहाँ मोह का अर्थ पश्चात्ताप है। क्योंकि राजालोग पछताते हैं कि जानकी लाभ से हमलोग बंचित रह गये।

2। "**मोहि भयउ अति मोह प्रभुबन्धन रण महँ निरखि**। उ. 68।" यहाँ पर मोह शब्द भ्रमवाचक है।

3। "**जो नहीं होत मोह अति मोही**। उ. 68।2।" 4। "**तुमही न संशय मोह न माया**। उ. 69।2।"

5। "**पठये मोह मिसु खगपति तोही**। उ.69।2।" 6। "**मोह न अन्ध कीन्ह केहि केहि**। उ. 69।3।"

7। "**यहाँ मोह कर कारण नाहीं**। उ.71।4।" 8। "**महामोह उपजा हिय मोरे**।।" इन सभी स्थलों में मोह शब्द का अर्थ केवल एक अज्ञान ही है। 9। "**जो मतिमन्द विषयवश कामी। प्रभु पर मोह धरहि इमि स्वामी**। उ. 72।1।"

10। "**नौकारुढ़ चलत जग देखा। प्रबल मोहबश आपुन लेखा**। उ.72।3।" इन स्थलों में मोह शब्द दोष वाचक है।

11। "**मोह गये बिनु रामपद होय न दृढ़ अनुराग**। उ.61।" 12। "**यहाँ मोह कर कारण नाहीं। रबि सन्मुख तम कबहुं कि जाहीं**। उ. 71।4।"

13। "**देखि परम पावन तव आश्रम। गयउ मोह संशय नाना भ्रम**। उ.63।1।"

14। "**तब कछु काल करिये सत्संगा। तब यह होय मोह भ्रम भंगा**। उ.60।2।" यहाँ मोह शब्द का अर्थ ईश्वर में अविश्वास है।

15। "**करहिं मोहवश नर अघ नाना। स्वारथरत परलोक नशाना**। उ. 40।2।" 16। "**लोभ मोहमद युक्त किरातहिं**। उ.29।3।" यहाँ मोह का अर्थ संसारी वस्तु में प्रेम का है। 17। "**मद मोह महा ममता रजनी**। उ.13।3।" ऐहिक वस्तु में प्रेम।

18। "**शिव विरञ्चि कह मोहै को है वपुरा आन**। उ.62।" 19। "**कौड़ी कारण मोहवश करहि विप्र गुरु घात**। उ.99।" यहाँ मोह शब्द लोभवाचक है। 20। "**मोह मोहे सकल मन्त्रण ते मुख मूंदि**।।" यहाँ मोह द्वारा मूर्छित करना बोध होता है। अहिरावण बन्दरों को मूर्छित कर श्री

भी किसी देवता की आशा नहीं कर मन वचन कर्म द्वारा भगवान्‌की भक्ति किये हैं जिसको भगवान् वृक्ष के आड़ होकर देखे हैं। शबरी से- "**कह रघुपति सुनु भामिनी बाता। मानौ एक भक्ति कर नाता।** अर. 34।2।" "**सकल प्रकार भक्ति दृढ़ तोरे।** 35।4।" शवरी से श्री राम जे कहते हैं कि एक भक्ति की ही नाता मानता हूँ, तुममें तो सबों प्रकार की भक्ति विद्यमान है। इस प्रकार संक्षेप में भक्ति का साधन और उदाहरण बताया गया है और भी सर्वत्र सद्ग्रन्थों में पाये जाते हैं। "**बहवः मत्पदं प्राप्ताः त्वाष्ट्रकायाधवस्तथा**" बहुत से भक्त भगवान्‌की भक्ति द्वारा मोक्ष प्राप्त किये हैं किन्तु वे सब कभी भी कल्याणार्थ शिव का नाम तक नहीं लिये हैं। शिव जी के ही बहुत से गण पड़े हैं जिनको भगवद्‌भक्ति नहीं मिली है। यदि शिव जी ही राम की भक्ति बांटने वाले होते तो बाणासुर मणिभद्र आदि को भक्ति कब ही दे दिये होते। इससे यह सिद्ध हुआ कि राम की भक्ति के लिए शिव जी की अपेक्षा नहीं है। फिर भी इस दोहा का अर्थ क्या होगा यह प्रश्न रह जाता है। अतः इसका समाधान यों होगा - "**शं कल्याणं करोतीति शंकरः सत्संगः**" याने सत्संग द्वारा ही कल्याण होता है। इसी को राम जी भी कहते हैं - "**बिनु सत्संग न पावही प्राणी।** उ.44।3।" अथवा कल्याण करने वाला रामनाम है इसके भजन बिना भक्ति नहीं मिलती। अथवा कल्याण करने वाले सन्तजन हैं। "**भक्ति तात अनुपम सुखमूला। मिले जो सन्त होहिं अनुकूला।** अर.15।2।" इन्हीं तीनो प्रकारों द्वारा दोहा का अर्थ यह होता है कि कल्याण करने वाला (सत्संग, सन्तजन, रामनाम) के भजन के बिना भक्ति नहीं मिलती।

1। "**सत्संगति महिमा नहीं गोई।।**" "**वाल्मीकि नारद घटयोनि। निज निज मुखन कही निज होनी।** बा. 2।1 एवं 2।" याने वाल्मीकि नारदादि भक्ति द्वारा ही विश्वविख्यात हुए हैं और यह भक्ति सत्संग द्वारा ही प्राप्त हुई है। "**सत्संगेन हि दैतेया जातुधानाः खगादयः।** भा.11।12।3।" सत्संग द्वारा दैत्यादिकों को भी भक्ति मिली है। और "**राम भक्ति जहँ सुरसरि धारा।** भा.1।4।" सत्संगरूपी सुरसरि में राम भक्ति की धारा वहती है, याने यहाँ ही भक्ति मिलती है।

2। सन्तजन (भगवद्‌भक्त) के सम्बन्ध में स्वयं मानसकार कहे हैं - "**राम सिन्धु घन सज्जन धीरा। चन्दन तरु हरि सन्त समीरा।** उ.119।9।" भगवान् अपने से बड़ा सन्तों को बताते हैं- "**मोते अधिक सन्त कर लेखे।** अर.35।1।" "**तुम सारिखे सन्त प्रिय मोरे। धरौं देह नहीं आन निहोरे।** सु.47।4।" सन्तों के लिए ही भगवान् अवतार लेते हैं।

3। कल्याणकर्त्ता "**राम नाम को कल्पतरु......** बा. 26।" "**राम न सकहिं नामगुण गाई।** बा. 25।4।" रामनाम कल्पवृक्ष के समान सब कुछ देने वाला है। इस नाम में जो गुण है वह राम जी भी नहीं जानते हैं। **नाम जपत प्रभु किन्ह प्रसादू। भक्तशिरोमणि भे प्रह्लादू।** बा. 25।2।" याने राम नाम जपने ही से प्रह्लाद भक्त शिरोमणि हुए हैं। "**वर्षाऋतु रघुपति भगति तुलसी शालि सुदास। रामनाम वर वरणयुग श्रावण भादो मास।** बा.19।" इस दोहा में नाम और भक्ति एक बताया गया है। राम नाम याने रा और म यही दो अक्षर श्रावण और भादो दो मास हैं। ऋतु मास से पृथक नहीं होता है याने ये दोनों अक्षर ही ऋतु भी हैं अर्थात् भक्ति और राम नाम में कोई भेद नहीं है।

"**शंकर भजन**" यहाँ पर मध्यमपदलोपी समास (शंकर सदृश भजन शंकर भजन) द्वारा भी एक अर्थ यह हो सकता है कि शंकर जी जैसे भगवान्‌का भजन किया करते थे उसी प्रकार निरन्तर भजन करने से भक्ति मिलेगी। यह अर्थ युक्तिसंगत प्रतीत होता है किन्तु शंकर शिव का नहीं। क्योंकि कल्याण प्राप्ति में देवताओं को निषेध किया गया है "**कामैस्तैस्तैः हृतज्ञानाः प्रपद्यन्ते अन्यदेवताः।** गी. 7।20।" याने कामादि दोषों के कारण ज्ञान अपहरण हो जाने से मनुष्य अन्य देवों की प्रपत्ति करता है। रुद्र की पूजा से तो हानि ही होती है। "**भवव्रतधारा ये च ये च तान्समनुव्रताः। पाषण्डिनस्ते भवन्तु सच्छास्त्रपरिपन्थिनः।** भा 4।2।28।" "**रुद्रभक्ताश्च ये लोके भस्मलिंगास्थिधारिणः। ते पाषण्डत्वमापन्ना वेदवाह्या भवन्तु ते।** प पु 255।36।" शिवोपासकों को पाषण्डी और वेदवाह्य बताया गया है। स्वयं शिव भी कहते हैं "**नैवं विधोऽहमाराध्यः संसारन्मोक्षमिच्छता।**" मुमुक्षुओं द्वारा मैं आराध्य नहीं हूँ।

इन सभी विषयों को विचारते हुए उक्त प्रसंग में शंकर शब्द का अर्थ शिव जी न होकर कल्याण कारक अपने ही को राम

राम जी को ले गया है। **21।"नृप अभिमान मोह वश किंबा। हरि आनेसि सीता जगदम्बा**।लं. 19।3।" यहाँ अज्ञानवाचक मोह शब्द है।
22।"बूड़ेउ सकल समाज प्रथम चढ़े जो मोहवश।बा.261।" यहाँ मोह का अर्थ राजाओं को बल का अभिमान है। **23।"अति प्रचण्ड रघुपति के माया। जेहि न मोह अस को जग जाया**।बा.127।4।" यहाँ मोह का अर्थ भुलाना है।
24।"जासु सत्यता ते जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया।बा.116।4।"
25।"माया कृत गुण दोष अनेका। मोह मनोज आदि अविवेका।उ. 56।1।"यहां माया कार्य मोह का अर्थ है।
26।"खेद खिन्न मन तर्क बढ़ाई। भयउ मोहबश तुम्हरे नाई।उ. 58।1।"मोह का अर्थ ईश्वर में अविश्वास है। शिव पार्वती से कहते हैं कि जैसे तुम भूल कर श्री राम जी को ईश्वर नहीं मान परीक्षा लेने गयी थी उसी प्रकार गरुड़ भी उनमें अविश्वास किये थे।
27।"जो ज्ञानिन कर चित अपहरई। बरिआई बिमोह बस करई।उ. 58।3।"जो माया ज्ञानियों के चित्त को चुरानेवाली है तथा ईश्वर में भ्रम उत्पन्न करा देती है। इस प्रकार मोह शव्द सन्देह उत्पादक है।
28।"बिनु सत्संग न हरिकथा तेहि बिनु मोह न भाग। मोह गये बिनु रामपद होय न दृढ़ अनुराग।उ.61।" सत्पुरुषों के सहवास विनाभगवान्‌की कथा नहीं प्राप्त हो सकती। और कथा बिना ईश्वर प्रति सन्देह नहीं दूर हो सकता, सन्देह भागे बिना ईश्वर में दृढ़ विश्वास नहीं हो सकता।
29। "सुख सन्दोह मोह पर माया गुण गोतीत।बा. 199।" यहां मोह शव्द मायावाचक है।
30।"काम क्रोध मद मोह नशावन।बा.42।3।" यहां मोह का अर्थ अज्ञान है। **31।"परिहरि मान मोहबश भजहु कोसलाधीश**।सु.39।" यहां मोह शव्द सांसारिक वस्तुओं में प्रेमवाचक है। **32।"काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह की धार**।अर. 43।" यह भी संसार में प्रेमवाचक है।
33।"प्रभु माया बलवन्त भवानी। जाहि न मोह कवन अस ज्ञानी।उ.61।5।" यहां मोह भुलाना अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।
34।"जाय सुनहु तुम हरि गुण भूरी। होइहिं मोह जनित दुःख दूरी।उ.61।3।" गरुड़ से महादेव जी कहे कि तुम काक भुसुंडी के पास जा भगवान्‌के गुणों को सुनो तो तुम्हारा दुःख दूर होगा और राम जी ईश्वर प्रतीत होंगे। **35।"मोह सकल ब्याधिन कर मूला। तेहि ते पुनि उपजहिं सब शूला**।उ.120।15।"यह मोह सांसारिक विषय में प्रेम है।
36।"गयउ मोह संशय नाना भ्रम। उ.63।1।" यहां मोह अविश्वास अर्थ में है। **37। "जे मतिमन्द विमोहवश हृदय धरहिं कछु आन**।बा.49।" यहां मोह का अर्थ दैवी माया है।
38। "मोह न अन्ध कीन्ह केहि केहि। जो जग काम नचावन जेहि।उ.69।4।"यहां मोह शव्द का अर्थ सांसारिक वस्तु में लोभ है।
39।"मोह बिपिन कर नारी बसन्ता।अर.43।1।" मोह शव्द मुह धातु से वना है। मन को विकल कर देना अर्थ में मुह धातु है। अतः मोह का अर्थ हुआ चित्त विकल करने वाला। मोह मनुष्य के मन को विकल कर वासनाओं को बढ़ा कुजगह में पटक देता है।
40।"तजहु मान मद मोह सब भजहु कोशलाधीश।सु.39।"यहां मोह शव्द हठ अर्थ में आया है। विभीषण रावण को कहता है कि अहंकार हठ को छोड़कर भगवान्‌का भजन करो। **41।"उमा राम विषयक अस मोहा**।बा.116।2।"यहां मोह शव्द राम जी में सन्देह वाचक है।
42। "देखि देखि आचरण तुम्हारा। होत मोह मम हृदय अपारा।उ.47।2।"यहां मोह शव्द अनभिज्ञता का द्योत्तक है।
43।"तुम्हरे सुमिरन ते मिटही मोह मार मद मान।बा.128।" यहां मोह का अर्थ अभिमान है। **44।"श्री विमोह जेहि रूप निहारी**।बा.129।2।" यहां मोह शव्द का अर्थ लालच है। **45। "विगत मोह मन हर्ष विशेषी**।बा.138।1।" **46।"तन कर अस बिमोह मोहि नाहीं**।बा.108।4।"
47।"शोक मोह सन्देह भ्रम मम बिचार कछु नाहीं।बा.112।"**48।"सुरहित दनुज बिमोह नशीला**।बा.112।4।" **49।"जदपि मोह बश कहेउ भवानी**।बा.113।4।" **50।"जिनकृत महामोह मदपाना**।बा.114।4।" इन चौपाइयों में मोह शव्द ईश्वर में अविश्वास अर्थ में है।
51।"जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा। तेहि किमि कहिये विमोह प्रसंगा।बा.115।2।" **52।"नहीं तहं मोह निशा लवलेशा**।बा.115।3।"
53।"प्रभु पर मोह धरहिं जड़ प्राणी।बा.116।1।" इन चौपाईयों में मोह का अर्थ विफलता है।
54।"मुनि मोह सो अचरज भारी।।" **55।"मुनि अति विकल मोह मति नाठी**।बा.134।3।" **56। "मुनिहि मोह मन हाथ पराये**।बा.133।3।" इन सभी चौपाईयों में मोह का अर्थ कामदेव है। **57।"मोह कलित व्याकुल मति मोरी**।उ.81।4।"
58।"पाछिल मोह समुझि पछतावा।उ.92।2।" **59। "तुम निज मोह कहा खग साई**।उ.69।3।" **60। "मोह जलधि बोहित तनु भयउ**।उ.124।2।" **61।"मोह सकल ब्याधिन कर मूला**। उ.120।15।" इन स्थलों में मोह ईश्वर में अविश्वास वाचक है।
62।"रमा समेत रमापति मोहे।बा.316।2।" यहां मोह का अर्थ आनन्द है।
63।"मोह मनोज आदि अविवेका।उ.56।1।" इसमें मोह का अर्थ भुलाना है। **64। "महामोह महीशेष विशाला। रामकथा कलिकाल कराला**।बा.46।3।" **65। "मोह पाश जेहि गर न बंधाया। सो नर तुम समान रघुराया**।कि. 20।3।" यहां मोह शव्द संसारबन्धन वाचक है।

66। **"मोह महा घन पटल प्रभञ्जन** । लं.114 ।1। " यहां मोह शब्द अज्ञानवाचक है। 67। **"हरि माया मोहहि मुनि ज्ञानी** । बा.139 ।4। "
68। **"सुर नर मुनि कोऊनाहि जेहि न मोह माया प्रबल** । बा.140। " यहां मोह भूलना अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। 69। **"सुनु मुनि मोह होय मन ताके। ज्ञान विराग हृदय नहीं जाके** । बा.128 ।1। "
70। **"मोह मगन मति नहिं विदेह की। महिमा सिय रघुबीर सनेह की** । अयो.285 ।4। "यहां मोह शब्द भगवान में अत्यन्त प्रेम वाचक है।
71। **"व्यापक ब्रह्म बिरज बागीशा। माया मोह पार परमीशा** । उ.57 ।4। "यहां मोह अज्ञान वाचक है।
72। **"राम सच्चिदानन्द दिनेशा। नहि तहं मोह निशा लवलेशा** । बा.115 ।3। "यहां मोह अन्धकारवाचक है।

इस प्रकार मोह शब्द बहुत स्थलों में और बहुत अर्थो में व्यवहृत हुआ है। किन्तु उपरोक्त **"रंगभूमि जब सिय पगुधारी। देखि रूप मोहे नर नारी।।"** देश कालानुसार मोह शब्द आश्चर्यवाचक है याने श्री जानकी जी के अपूर्व रूप देखकर रंगस्थल की सभी नर नारियाँ आश्चर्यचकित हो गयीं। क्योंकि - **"जगत जननी अतुलित छबि भारी** । बा.247 ।1। " यह जानकी अप्राकृत अमानुषी जगत्जननी हैं। इनकी शोभा अतुलनीय है, तो ऐसी शोभा देखनेवालों को क्यों नहीं आश्चर्यचकित करे ? मानसकार तो श्री जानकी जी की शोभा को अतिशय द्योतनार्थ - स्पष्टनार्थ लक्ष्मी की शोभा से भी आगे बढ़ाकर कहे है और इसके सम्बन्ध में कहना ही क्या है। मोह शब्द यहां क्षोभक नहीं है, आश्चर्यकारक है।

मानस प्रसंग 24।

"रघुवंशभूषण चरित जे नर कहहिं सुनहि जे गावहीं। कलिमल मनोमल धोइ विनु श्रम रामधाम सिधावहीं।।

सतपंच चौपाई मनोहर जानि जे नर उर धरे। दारुण अविद्या पंच जनित विकार श्रीरघुपति हरे।। उ 129। छंद 2। " इस छन्द में **"रघुवंशभूषण चरित"** वस्तु विशेष्य है और इसी का विशेषण महत्व द्योतक **"सतपंच चौपाई "** पद आया है। **'अंकानां वामतो गतिः'** इस नियम के अनुकूल सतपंच पद **5100** पांच हजार एक सौ का वाचक है अर्थात् इतने चौपाइयों में श्रीरामचरित्र, लीला, गुण वर्णित है। इसको कथारूप में कहने और अनेकों लय ताल स्वर में गानेवालों को तथा श्रवण करनेवालों को पंचभूत विकार (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मान तथा मत्सर) को श्री राम जी दूर कर देते हैं जिससे शुद्ध अन्तःकरण वाला प्राणी रामधाम को प्राप्त करता है। सतपंच चौपाईयों द्वारा रचित चरित्र के अधिनायक श्री रामचन्द्र हैं, अतः इसका इतना प्रभाव है। रघुकुल में रामचन्द्र अवतार लेकर अपना अनन्त कल्याण गुणों द्वारा परम पावन अनेकों चरित्र किये हैं। जैसे जटायुमोक्ष, देवों की रक्षा, शवरीतारण, जंगलियों का उद्धार इत्यादि। इससे इस कुल का महत्व और अधिक हुआ है, इसीलिए ऊपर भूषण शब्द आया है। अर्थात् श्री राम जी कुल का भूषण याने शोभावर्द्धक हैं। मानस का प्रधान वस्तु रामचरित ही है। अतः -

"राम चरित जे सुनत अघाहीं। रस विशेष जाना तिन नाहीं । उ. 52 ।1। "

"देखि चरित अतिनर अनुहारी। भयउ हृदय मम संशय भारी । उ. 68 ।1। "

"रघुपति चरित समास बखाना । लं. 59 ।1। " **"यह सब गुप्त चरित मैं गावा** । उ. 88 ।2। " इन चरित्रों में भगवान्का कल्याणगुण ही प्रधान है। इसीलिए - **"जग मंगल गुण ग्राम राम के। दानि मुक्त धन धर्म धाम के** । बा. 31 ।1। "
भगवच्चरित्र मंगलदायक है।

2- सतपंच चौपाई का यह भी अर्थ होता है कि सत्य वस्तु (श्रीरामचरित्र) को पाँच प्रकार से प्रतिपादन किया गया है। **"व्यास समास स्वमति अनुरूपा** । उ. 122 ।1। " **"सूझहि रामचरित मणिमानिक। गुप्त प्रकट जहं जो जेहि खानिक** । बा.वंदना 4। " अर्थात् सत्य वस्तु श्रीरामचरित्र विस्तृत, संक्षिप्त, प्रकट, गुप्त तथा सत्य (यथार्थ) रूप में वर्णित है। **"सत्य कहौं लिखि कागज कोरे** । बा.8 ।6। " 'चौपाई ' का अर्थ चार पांव वाला होता है। श्लोक, छन्द, दोहा, सोरठा और चौपाई सवों में चार चार चरण हैं। सम्पूर्ण रामायण श्लोक, छन्द, दोहा, सोरठा और चौपाई से ही वर्णित है। इसीलिए ऊपर चौपाई में मनोहर आया है। **"यही मह रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुरान श्रुति सारा** । बा. 9 ।1। "

3- रामायण की सभी चौपाइयों (दोहा, छन्द, सोरठा) में इकार मकार रखा गया है। इससे रामनाम के तुल्य होने से सबके हृदय में धारण के योग्य हैं। कुछ भी त्याज्य नहीं है। इससे अविद्या (माया) का नाश और रामधाम की प्राप्ति होती है। क्योंकि भगवच्चरित्र सम्बन्धी सभी शब्द रामरूप हैं - "**शब्दब्रह्म परब्रह्म ममोभे शाश्यती तनूः। शब्दब्रह्मणि निष्णातः परब्रह्माधिगच्छति।।**" अर्थात् ब्रह्म वाचक और वाच्य दोनों ही मेरी देह है। और शब्द में पूर्व ज्ञान हो जाने पर परब्रह्म की प्राप्ति होती है।

4- अथवा '**मातहिं पितहिं**' जैसे दीर्घ माता पिता के स्थान में ह्रस्व भी प्रयुक्त होता है इसी प्रकार यहां भी सत से सात और पंच से पांच समझना चाहिए। याने सप्तश्लोकी गीता, चतुश्लोकी भागवत, या "**श्लोकं श्लोकपादं वा**" की तरह यहां भी यही समझना चाहिए कि कमसे कम पांच सात चौपाई भी श्री राम का स्वरूप समझ ध्यान में रखें तो कल्याण होता है। उन सात चौपाइयों को उत्तर काण्ड के **75** वें दोहा के "**मरकत मृदुल मनोहर हासा**" से "**रूप राशि नृप अजिर बिहारी**" तक समझना चाहिए। याने इन सातों चौपाइयों का अर्थ हृदयस्थ करने से कल्याण होता है। पांच चौपाइयों में अरण्य काण्ड के सन्तलक्षण समझना चाहिए।

5- अथवा सात और पांच जोड़ने से बारह होता है। अर्थात् सतपंच चौपाई का अर्थ बारह चौपाई जो अयोध्यावासियों को श्री राम जी का उपदेश - "**बड़े भाग मानुष तन पावा।उ.42।4।**" से "**ताकर सुख सो जानई चिदानन्द सन्दोह।उ.46।**"तक उपदेश कल्याणकारक है। इससे अन्तःकरण की शुद्धि और रामधाम दोनों मिलते हैं। क्योंकि विना उपदेश के अज्ञान नष्ट नहीं होता। अतः भगवान् अयोध्यावासियों को बुलाकर उचित अपना उपदेश सुनाये हैं। "**जो परलोक यहां सुख चहहू। तौ मम वचन छाड़ि छल गहहू।उ.44।1।**" याने ज्ञान सूर्य द्वारा सबों का अज्ञानान्धकार दूर किये हैं।

6- अथवा "**यावनार्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके।गी.2।46।**" "**मधुकर सरिस सन्तगुण ग्राही।बा.9।3।**" के सदृश रामनामपरक चौपाइयों को चुन लेते हैं।जो "**सकल शौच करि जाई नहाये।बा.226।1।**" से लेकर भरतप्रेम अयोध्याकाण्ड तक पाँच सौ चौपाइयों को जानना चाहिए।

7- अथवा पाँचों प्रकार के चौपाइयों में से एक - एक चौपदी लोग चुन लेते हैं।

नील सरोरुह नील मणि नील नीर धर श्याम। अंग अंग पर बारिये कोटि कोटि सतकाम। बा. 146।

नील जलज तनु श्याम काम कोटि शोभा अधिक। सुनिये तासु गुण ग्राम जासु नाम अघ खग वधिक। कि. 30।

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवास दुःखितः। मुखाम्बुज श्रीरघुनन्दनस्य में सदास्तु सा मंजुलमंगलप्रदा। अयो. 2।

नीलाम्बुज श्यामलकोमलांग सीतासमारोपित वामभागम्। पाणौ महासायक चारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम्। अयो. 3।

सान्द्रानन्द पयोद सौभग तनुं पीताम्बरं सुन्दरम्। पाणौ वाण सरासनं कटिलसत्तूनीरभारं वहम्।।

राजीवायतलोचनं धृतजटाजूटेन संशोभितं सीतालक्ष्मण संयुतं पथिगतं रामाभिरामं भजे। अर. 2।

केकीकण्ठाभनीलं सुरवरविलसद्विप्रपादाब्जचिह्नम्। शोभाढ्यं पीतवस्त्रं सरसिजनयनं सर्वदा सुप्रसन्नम्।।

पाणौ नाराच चापं कपि निकर युतं बन्धुना सेव्यमानम्। नौमीड्यं जानकीशं रघुवरमनिशं पुष्पकारुढ़रामम्।उ. 1।

कोशलेश पदकंज मंजुलौ कोमलाज महेशवन्दितौ। जानकी करसरोज ललितौ चिन्तकस्यमनभृंगसंज्ञितौ।उ. 2।

इन चौपाइयों को ध्यान में रखने से अविद्या का नाश तथा भगवत्प्राप्ति होती है।

8-अथवा सत पंच सात गुणे पाँच याने पैंतीस चौपाई जो सम्पूर्ण रामायण संक्षिप्त में उत्तरकाण्ड में वर्णित है उसको भी सत पंच से कह सकते हैं।

9-श्री राम जी के अवतारकाल से नारद की स्तुति पर्यन्त (षठमुखी वार्ता छोड़कर) सत पंच चौपाई(पांच सौ) चौपाइयों में रघुवंशभूषण श्री राम जी का चरित्र रहने के कारण सत पंच से यह भी समझा जा सकता है।

10- श्री राम जी का वाल स्वरूप जो काकभुशुन्डि देखे थे तथा उनका विश्वरूप जो कौशल्या देखी थी, यह भी सात सात ही चौपाइयों में वर्णित है। यह भी 'सत' शब्द द्वारा समझना चाहिए।

11- 'सत पंच' सात गुणे पांच याने पैंतीस चौपाइयों में विभीषण की शरणागति भी है - इसलिए यह भी समझा जाता है।

12- अथवा सत पंच पद को सत्य वस्तु का पंच याने श्री रामचरित वर्णित सभी चौपाइयां सत्यवस्तु का निर्णायक है ऐसा समझना भी युक्तियुक्त है। क्योंकि श्री राम जी को छोड़कर केवल सीता में प्रेम करने वाला रावण मारा गया, तथा सीता को छोड़कर केवल श्री राम जी में प्रेम करने वाली शूर्पनखा का नाक कान कटाया जिससे राक्षसों का सर्वस्व विनाश हुआ। सीता राम दोनों में प्रेम करने वाले विभीषण भक्त को सम्मानपूर्वक राज्य मिला। इससे यह निश्चय हुआ कि दोनों तत्वों में भक्ति करने से ही कल्याण होता है। यही सत्य वस्तु का पंच (निर्णायक) चौपाइयां है।

"**सुधि करु अम्बरीष दुर्वासा**। अयो.**264**।**2**।" सुधी शब्द से यह अर्थ निकलता है कि अम्बरीष के लिये भगवान्दशबार अवतार लिये हैं, ऐसे भक्तहितकारी भगवान् हैं और भक्त के प्रति अपराध करने वाले दुर्वासा को कहीं कोई भी शरण नहीं दिया। यह निश्चयात्मक सत पंच चौपाई है।

जयन्त के समान अपराधी को भी शरणागत होने पर क्षमा प्रदान किया गया। इससे यह सिद्ध होता है कि अपराध के सहित भी भगवान्के शरण में जाने से कल्याण होता है। निषाद, शबरी, गिद्ध, अजामिल इत्यादि के उद्धार से यह सिद्ध हुआ कि भगवान्के यहां जाति पाति की महत्ता नहीं, बल्कि कल्याण के लिए उनमें केवल एक प्रेम की आवश्यकता है। "**रामहि केवल प्रेम पियारा**। अयो. **136**।**1**।" इस प्रकार सम्पूर्ण रामायण सत्यवस्तु के प्रतिपादक हैं। किन्तु सत पंच पद का अर्थ सम्पूर्ण रामायण न होकर अन्यान्य जो अर्थ ऊपर निर्णीत हुआ वह सन्तोषप्रद नहीं है क्योंकि सत पंच चौपाई को मानसकार मनोहर बताये हैं - "**पुरइन संघ न चारू चौपाई**। बा. **36**।**2**।" याने रामायण की चौपाइयां सघन पुरइन पत्र है और छन्द दोहा सोरठा इत्यादि इसके फूल (कमल) हैं। कमल युक्त ही पुरइन सुशोभित होता है न कि कमल छोड़कर। अतः छन्द दोहा सोरठा युक्त सभी चौपाइयों को सत - पंच द्वारा समझना चाहिए।

-ः सम्पूर्ण ः-

श्रीमते रामानुजाय नमः

नाम- माहात्म्य



प्रवचनकर्त्ता
स्वामी पराङ्कुशाचार्य सरौती आश्रम, अरवल, गया

श्रीमते रामानुजाय नमः

भगवद् अर्थानुसन्धान

स्थितं व्रजन्तमासीनं शयानं व ागुहाशयम्। प्रेक्षणीयेहितं ध्यायेत् शुद्धभावेन चेतसा।1।भा.3।28।19।
अपीच्यदर्शनं शश्वत्सर्वलोकनमस्कृतम्।सन्तं वयसि कैशोरे भृत्यानुग्रहकातरम्।2।भा.3।28।17।
स्मयमानं अभिध्यायेत् सानुरागावलोकनम्। नियतेनैकभूतेन मनसा वरदर्षभम्।3।भा.4।8।51।
संचिन्तयेत् भगवतश्चरणारविन्दं वज्रध्वजांकुशसरोरुहलाञ्छनाढयम्।
उत्तुङ्गरक्तविलसन्नख चक्रवाले ज्योत्सनाभिराहतमहद् हृदयान्धकारम्।4।भा.3।28।21।
यच्छौचनिःसृतसरित्प्रवरोदकेन तीर्थेन मूर्ध्न्यधिकृतेन शिवः शिवोऽभूत्।
ध्यातुर्मनः शमलशैलनिसृष्टवज्रं ध्यायेच्चिरं भगवतश्चरणारविन्दम्।5। भा.3।28।22
भृत्यानुकम्पितधियेह गृहीतमूर्त्तेः संचिन्तयेत् भगवतो वदनारविन्दम्।
यद्विस्फुरन्मकरकुण्डलवल्गितेन विद्योतितामलकपोलमुदारनासम्।6।भा.3।28।29।
तस्यावलोकमधिकं कृपयातिघोरं तापत्रयोपशमनाय निसृष्टमक्ष्णोः।
स्निग्धस्मितानुगुणितं विपुलप्रसादं ध्यायेच्चिरं विपुलभावनया गुहायाम्।7।भा.3।28।31।
हासं हरेरवनताखिललोकतीव्र शोकाश्रुसागरविशोषणमत्युदारम्।
सम्मोहनायरचितं निजमाययास्य भ्रूमण्डलं मुनिकृते मकरध्वजस्य।8। भा.3।28।32।
ध्यानायनं प्रहसितं बहुलाधरोष्ठभासारुणायिततनुद्विजकुन्दपंक्तिम्।
ध्यायेत्स्वदेहकुहरेऽवसितस्य विष्णोर्भक्तयाऽऽर्द्रयार्पितमना न पृथग्दिदृक्षेत्।9।भा.3।28।33।
तत्सर्वव्यापकं चित्तमाकृष्यैकत्र धारयेत्।नान्यानिचिन्तयेत् भूयः सुस्मितं भावयेन्मुखम्।10।भा.11।14।43।

।इत्थं भगवद्ध्यानम्।

ऊपरिलिखित श्लोकों का भाव यह है कि भगवान्‌का ध्यान कहाँ किस प्रकार करना चाहिए। इसके उत्तर में "शुचौ देशे प्रतिष्ठाय...।गी.6।11।" कहा है।यानें पवित्र स्थान में शुद्ध होकर अचल आसन लगाकर ध्यान करे। इसके अलावे यह भी कहा गया है कि - "स्थितं व्रजन्तमासीनं शयानं वा गुहाशयम्।" एकत्र स्थित, अथवा चलते- फिरते, सोते - बैठते भी भगवान्‌को ध्यान में ला सकते हैं। किन्तु "शुद्ध भावेन चेतसा"शुद्ध चित्त और शुद्ध भावना होनी चाहिए। परन्तु प्रश्न यह होता है कि यह ब्रह्म नारायण सर्वव्यापक है जिनको श्रुति कहती है कि " अन्तर्बहिश्च तत्सर्व व्याप्य नारायणः स्थितः" "अणोरणीयान्महतो महीयान्।श्वेता.उ.3।20।।" "अपाणिपादाब्जवनो गृहीता" "यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।तै.उ.2।9।" वह नारायण सब में बाहर-भीतर, ओत-प्रोत, छोटा से छोटा और बड़ा से बड़ा है, जिसको वचन से नहीं कहा जा सकता है तथा मन से भी नहीं जाना जा सकता है, तो उस नारायण परब्रह्म को कैसे ध्यान में लाया जा सकता है ? जैसे गागर में सागर नहीं भरा जा सकता। जिसको वेद नेति-नेति कहता है। और "न स्त्री पुरुषो न षण्ढः" वह ईश्वर न तो स्त्री है, न पुरुष है और न नपुंसक ही है तो फिर ऐसे विलक्षण विना देहवाले को कैसे ध्यान कर सकते हैं ?

उत्तर - वह सर्वशक्तिशाली ईश्वर जिस शक्ति से सर्वव्यापक है और छोटा से छोटा और बड़ा से बड़ा बनता है तथा जिस शक्ति से स्त्री-पुरुषाकार से पृथक रहता है तथा बिना हाथ-पाँव के होते हुए चलता है, ग्रहण करता है, बिना आकार के रहता है, वही ईश्वर अपनी शक्ति द्वारा पुरुषाकार रहता है जिसको श्रुति कहती है - "सहस्रशीर्षा पुरुषः...पुरुष एवेदं सर्व......वेदाहमेतं पुरुषं महान्तं...पुरुष सूक्त" याने उस अचिन्त्य शक्तिशाली ईश्वर को यह कहना कि उसमें मूर्त्तिमान् बनने की शक्ति नहीं है, निरी अल्पज्ञता है। श्रुति इयत्ता का निषेध करती है और उसे पुरुषाकार बताती है।जिस ईश्वर ने ब्रह्माण्ड को तरल बनाकर जल में रखा था, उस जल को अग्नि में रख छोड़ा था। अग्नि को वायु में रखा था।वायु को आकाश में और उस आकाश को अपने में लीन कर

रखा था। ऐसे ईश्वर में यह सन्देह करना कि उसमें मूर्त्तिमान बनने की शक्ति नहीं है, ईश्वर को बलहीन बनाना है, यह भी अज्ञान के वश में होकर के ही। श्रुति कहती है - 'मूर्त्तिश्चामूर्त्तिश्चेति' याने अघटित घटना में सामर्थ्यवान् ईश्वर व्यापक होते हुए मूर्त्तिमान् रहता है। 'तत्सर्वव्यापकं चित्तमाकृष्यैकत्र धारयेत्।' 'तथापि पुरुषाकारो भक्तानां त्वं प्रकाशसे।' 'भृत्यानुकम्पितधियेह गृहीतमूर्त्तेः।' 'भृत्यानुग्रहकातरम्।' सर्वव्यापक ईश्वर को एकत्र मूर्त्तिमान् ध्यान करे। भगवान् भक्तों को पुरुषाकार प्रतीत होते हैं। भक्तों के कल्याण के लिए भगवान् सदा व्यग्र (कातर) रहते हैं, इसीलिए कृपा अनुकम्पा से मूर्त्तिमान् रहते हैं, जिससे लोग ध्यान तथा दर्शन कर सकें।

पुनः यह प्रश्न होता है कि उनकी मूर्त्ति कैसी है ? उत्तर मिलता है कि - 'शतं वयसि कैशोरे शङ्खचक्रगदाधरम्।' भक्तों के लिए सदा किशोर अवस्था में रहते हुए इष्ट-प्राप्ति तथा अनिष्ट-निवृत्ति के लिए शंख चक्र गदा धारण किये रहते हैं। अथवा 'भक्तानां यदभिमतं तद्रूपवान्' भक्तों की जैसी रुचि होती है वैसा ही रूप धारण करते हैं। परन्तु कैसे ग्रहण किये जा सकते हैं ? 'नियतेनैकभूतेन मनसा' एकान्त शुद्ध मन से प्रेमपूर्वक गृहीत हो सकते हैं। और कहाँ ध्यान किया जाय - 'सर्वदेहकुहरे' 'गुहायाम्' अपनी देह के अन्तःकरण में। इसी को कहर और गुहा कहा है, यथा ब्रह्मसूत्र में - 'गुहप्रविष्टौ आत्मवानौ तद्धि दर्शनात्।1।2।11।' वह परमात्मा और आत्मा दोनों गुहा (हृदय) में रहते हैं। "ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।गी. 18।61।" इसलिए हृदय ही ईश्वर का आवास बताया गया है।

भगवान्के किस अंग का ध्यान प्रथम करे ? उत्तर - सभी अंगों में मुख के प्रधान होने से उसका ही क्योंकि दर्शन काल में सर्वप्रथम दृष्टि मुख पर ही जाती है। इसीलिए कहते हैं - 'संचिन्तयेतभगवतो वदनारविन्दम्' तथा 'मुखं वरदराजस्य मुग्धस्मितमुपास्महे', 'सुस्मितं', 'स्निग्धस्मितं', 'मुग्धस्मितं', 'स्मयमानं', 'हासं', 'प्रहसितम्' ऐसे अनेक शब्द भी हैं। याने दर्शनकाल में हम सब की दृष्टि जब भगवान् के मुखारविन्द पर जाती है, तब भगवान् हँसते हुए दिखायी पड़ते हैं, उनकी मन्द मुस्कान हम सब को देखकर ही है। ऐसी मुस्कान में दन्त की पंक्ति झलकती है। दाँत भी दो बार जमते हैं इसलिए दाँतों को द्विज कहते हैं। भगवान् के सभी दाँत 'भासारुणायिततनु द्विजकुन्दपंक्तिम्' कुन्द पुष्प की कली के समान कुछ श्वेत लालिमा लिये हुए अत्यन्त कान्तिमान् हैं।

'दसन पाँति की कान्ति कहै को' याने उसकी शोभा वर्णनातीत है। इसी प्रकार भगवान्के ओष्ठ भी लाल हैं- 'देखत अधरन की अरुनाई' 'बिम्बाफल बन्धूक लजाई' 'बहुलाधरोष्ठ' भी कहा गया है। मन्द मुस्कान तथा हँसने में यह हेतु है कि 'कृपयातिघोरं' (अत्यन्त वाचक) रहते 'भक्त्यानुकम्पितधियः विपुलप्रसादम्' , यहाँ कृपा, अनुकम्पा, प्रसाद तीनों शब्द पर्यायवाचक हैं। परमात्मा अत्यन्त कृपालु हैं, अतः हम सबको कृपा पात्र बनने के लिए उनका अनुसन्धान करना चाहिए। हम सब अत्यन्त दीन हैं, इसलिए भगवान्अपनी ओर से निर्हेतुक दृष्टिपात कर हँसते हैं। यह उनका हँसना उनकी प्रसन्नता का द्योत्तक है, क्योंकि अलभ्य प्रियवस्तु की प्राप्ति से सबको प्रसन्नता होती है। इसी तरह भगवान्के समीप जब यह चेतन उपस्थित होता है जो अनादि काल से स्वकर्मवश यत्र तत्र घूमा करता था, अनेक कुकृत्य किया करता था, जिससे भगवान् के हृदय में सतत जलन रहती थी, उस चेतन को अनुकूल देखकर भगवान् अतिप्रसन्न होते हैं, मानों उन्हें यह अलभ्य लाभ हुआ है, इसी प्रसन्नता को भगवान् हँसकर व्यक्त करते हैं। अथवा अबोध असमर्थ बालक आँगन में घूमते दौड़ते जब गिर पड़ता है तब वह अपनी माता को कोसता है कि तूने ही मुझे गिराया है। इसी प्रकार चेतन तो स्वकर्मवश दुःख पाता है किन्तु भगवान् को दोष देता है कि ईश्वर ही मुझे दुःखी बनाता या दुःख देता है। इसी से भगवान् इसको सुनकर हँसते हैं। अथवा अज्ञान बालक माता की गोद में रहते हुए भी डरता है तो माता उसे निर्भयता की बात कहते हुए हँसती है, वैसे ही चेतन जब भगवान्की शरण में जाकर भी डरता है - क्योंकि उसे अपने कृत्य का स्मरण होता है और भगवान् 'मत्प्रसादात्तरिष्यसि।गी. 18।58।' 'मोक्षयिष्यामि माशुचः।गी. 18।66।' 'अभयं सर्वभूतेभ्यो ददामि तदव्रतं मम।वा.रा. युद्ध ।18।33।' इत्यादि, याने मेरी दया से तुम्हारा उद्धार होगा, संसार से निकालेगें, तुम चिन्ता नहीं करो, इत्यादि कहते

हुए हँसते हैं, या कोई अनभिज्ञ व्यक्ति जैसे उत्तम नाव या जहाज को छोड़ कुत्ता की पूँछ पकड़कर नदी या समुद्र को पार करना चाहता हो, वैसे ही चेतन भगवान्‌को छोड़कर देवतान्तरों को मोक्षार्थ उपासना करता है - तब भगवान्‌उसकी भूल पर हँसते हैं कि जब देवताओं को ही मुक्ति नहीं मिली है, तब उनके उपासकों का क्या ठिकाना है। ऐसी अनभिज्ञता पर भगवान् हँसते हैं और - '**गह शिशुवच्छ अनल अहि जाई। तहँ राखे जननी अगराई।** अर. **42।3।**' ऐसे भगवान् अपंथ से चेतन को बचाकर उसे अपनी ओर प्रवृत करा लेते हैं।

अथवा अर्थार्थी भक्त भगवान्‌की पूजा आराधना द्वारा सांसारिक वस्तु आदि पुत्र कलत्र माँगता है तो इसकी भूल पर भगवान् हँसते हैं। "**गुंजा गहइ परसमनि खोइ।** उ. **43।2।**" याने सेवा के बदले मेरी प्राप्ति की इच्छा न कर वह जीवन में प्राप्त पुत्र कलत्रादि को ही प्राप्त करना चाहता है और अपनी स्वरूपानुरूप सेवा नहीं करता है। ऐसी भूल पर हँसते हैं। अथवा भगवान् की शरण में आकर भी चेतन उनकी प्राप्ति में सन्देह करता है, तो भगवान् ऐसी भूल पर हँसते हैं कि जब लक्ष्मी पुरुषकार के लिए सतत मेरे हृदय में वास करती है तब मेरी प्राप्ति में सन्देह ही क्या है ?

अथवा शरण में जाने के लिए जब चेतन सोचता है कि कब चलूँ, तब भगवान् हँसते हैं कि यदि किसी समय मेरे साथ लक्ष्मी नहीं रहती तो ऐसा सोचना ठीक था कि पुरुषकारी कौन बनेगी ? किन्तु जब लक्ष्मी सतत पुरुषकार के लिए उद्यत रहती है तब ऐसा सोचना मूर्खता है। '**न देशकाल नावस्था योगो ह्ययमपेक्षते**' '**स एष देशकालस्यात्।**'
भगवान्‌का विकसित मुख देखने के लिए गोपी की प्रार्थना है '**प्रहसितं प्रिय...**।भा.**10।31।10।**' '**तासामविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजम्**।भा.**10।32।2।**' उन सबको हँसते हुए दर्शन दिये हैं। श्रीकृष्ण अर्जुन के प्रति हँसते हुए बोले "**तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत।** गी. **2। 10।**" यहाँ हँसने का कारण यह है कि अर्जुन भूल कर रहा है - '**न योत्स्य इति गोविन्द...**गी. **2।9।**' '**पतन्ति पितरः**।गी.**1।42।**' '**जायते वर्णसङ्करः**।गी. **1।41।**' इत्यादि बातें बोल रहा है। किन्तु इसमें क्षत्रिय तेज है, यह भगवान् जानते हैं। इसीलिए इससे यह भी कह रहे हैं कि '**प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति**।गी. **18।59।**' '**स्वभावस्तु प्रवर्तते**।गी.**5।14।**' याने तू अपने आप लड़े विना नही रह सकता। यह तो केवल कथन मात्र है कि नहीं लडूँगा। पितृगण केवल पिण्ड के ही आधार पर नहीं रहते। जैसे योगेश्वरादि। अर्जुन के ही पितृ भरत ऐसे ज्ञानी थे कि जिनका ज्ञान जन्मान्तर में भी नष्ट नहीं हुआ था तथा रहुगण को उपदेश द्वारा मोक्षाधिकारी बनाया था। उनको पतन की तो आशंका ही नहीं थी। भविष्य में इसी कुल में परीक्षित ऐसे भागवत होनेवाले हैं। उनके विषय में वर्णसंकर होने की संभावना व्यक्त कर रहा है, इत्यादि अर्जुन की अल्पज्ञताओं के ऊपर भगवान् हँसते हैं।

एकवार काकभुशुण्डी के प्रति श्री राम जी हँसे थे - '**प्राकृत शिशु इव लीला देखि भयउ अति मोह**।उ. **77।**' मोह हुआ तो रामजी ने अपना ऐश्वर्य उन्हें दिखा दिया तथा '**मोहि विलोकि राम मुसुकाहीं**।उ. **79।1।**' प्राकृत बालक के सदृश श्री रामचन्द्र की बाललीला देखकर काकभुशुण्डी के मन में यह मोह हुआ कि श्री राम जी प्राकृत मनुष्य हैं। ऐसी उनकी भुलाई दशा देखकर श्री राम जी हँसे तथा अपना ऐश्वर्य दिखलाकर उनका मोह दूर किया। इसी प्रकार कौशल्या के प्रति भी भगवान्‌हँसे हैं - '**देखि राम जननी अकुलानी। प्रभु हँसि दिन्ह मधुर मुसकानी।** बा. **200।4।**' '**देखरावा मातहि निजहिं अद्भुत रूप अखंड**।बा. **201।**' जब कौशल्या ने राम जी को दो रूपों में देखा तब वह आश्चर्य में डूब गयी कि यह दो बालक कैसे ? यहाँ कौशल्या जी को विचारना चाहिए था कि श्री राम जी के जन्मकाल में ही इनका अद्भुत् रूप था। तो दो रूपों में होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। किन्तु ऐसा नहीं विचार कर अकुला गयी। इसी भूल पर भगवान् हँसे और अपना ऐश्वर्य दिखाकर उनका चित्त शान्त किया।

श्रृंगवेरपुर में निषादराज के भुलाने पर भी भगवान्‌हँसे हैं - '**सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे। बिहंसे करुणा अयन चितय जानकी लखन तन**।अयो. **100।**' यहाँ भी इसी तरह की भूल पर भगवान् हँसे हैं। साथ साथ अन्यान्य भाव भी इस हंसी में है जो कहीं अन्यत्र व्यक्त किये गये हैं। नारद जी को अपने विवाह की आतुरता दिखाने पर भगवान् हँसे हैं - '**आपन रूप देहु प्रभु**

मोहि। बा.131।3।' यह सुनकर 'हिय हँसि बोले दीनदयाला। बा. 131।4।' भगवान्ने रूप भी दिया - 'मरकट वदन भयंकर देही। बा.133।4।' यहाँ भी नारद की भूल है, अतः भगवान्हँसे हैं।

सुग्रीव राज्य पाकर अभिमान में भूला तो लक्ष्मण उसको श्री राम जी के सामने ले आये। उस समय सुग्रीव को लज्जित देखकर भगवान्हँसते हुए बोले - **'तब रघुपति बोले मुसुकाई।** कि. 20।4।' याने सुग्रीव की अज्ञानता पर हँसे हैं। विभीषण जैसे सत्पात्र के प्रति जब बन्दरों को सन्देह हुआ - **'जानि न जाये निशाचर माया। काम रूप केहि कारण आया।** सु.42।3।' **'भेद हमार लेन शठ आवा। राखिय बाँधि मोहि अस भावा।** 42।4।' इस भूल पर भगवान् हँसते हुए कहते हैं - **'उभय भाँति तेहि आनहु हँसि कहि कृपानिधान।** सु 44।'**'जग महँ सखा निशाचर जेते। लक्ष्मण हतहिं निमिष महँ तेते।** सु.43।4।'

इसी प्रकार जनक - **'इनही विलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्म सुखहि मन त्यागा।** बा. 215।3।' कौशिक - **'जे प्रिय सबहि जहाँ लगि प्राणी। मन मुसकाही राम सुनि बाणी।** बा. 215।4।' यहाँ जनक ने राम और ब्रह्म को दो समझा, यह उनकी हार हुई। और विश्वामित्र ने दोनों को एक समझा, यह उनकी जीत। यही सुनकर श्री राम जी मुस्कराते हैं - **'बन्धु वचन सुनि प्रभु मुस्काने।** बा. 238।4।'

मर्यादापुरुष के लिए मुख पर की प्रशंसा निन्दा के तुल्य होती है, इसलिए किसी को सम्मुख प्रशंसा नहीं करें। ऐसे ही भूल पर भूल लक्ष्मण को करते देख भगवान्हँसे हैं। **'भृगुपति कहत कुठार उठाये। मन मुसकाही राम सिर नाये।** बा. 280।2।' परशुराम की सर्वथा भूल पर भगवान् मुस्कराते हैं कि परशुराम को इस समय व्यक्तित्व का भी ज्ञान नहीं रहा है, क्रोध के वश में होने से।

'पवन तनय के बचन सुनि बिहँसे राम सुजान। लं. 12।' हनुमान के प्रति अत्यन्त प्रसन्न होकर राम जी हँसे हैं। **'सुनत बिहसि बोले रघुबीरा। ऐसेइ करब धरहु मन धीरा।** सु. 50।3।' लखन जी को अतिशीघ्र अकुलाने पर भगवान् हँसे कि लखन का स्वभाव चञ्चल है। याने इनको या किसी को ऐसा चञ्चल नहीं होना चाहिए। यहाँ भी भूल पर ही भगवान् हँसे हैं। **'हँसत प्रभु सिय लखन सुनि कोल भीलन के गिरा।** ।' मूर्खता और असभ्यतापूर्ण तथा कठोरतायुक्त कोल भीलों के शब्द सुने किन्तु उनलोगों में प्रेम तो अपूर्व ही है। अतः भगवान् हँसे हैं कि इन सब को बोलने भी नहीं आता है।

'गौतम तिय गति सुरति करी नहिं परसत पद पानि। मन बिहँसे रघुबंसमनी प्रीति अलौकिक जानि। बा. 265।' यहाँ भगवान जानकी की अज्ञता पर हँसते हैं। जानकी गौतम की स्त्री की गति को यादकर नगजटित अपनी अंगूठी को भी अहल्या सदृश पत्थर से स्त्री बनजाने की आशंका से भगवान्के पाँवों से स्पर्श नहीं होने देती हैं। और यह सोचती है कि शायद यह नग (पत्थर) कहीं मेरी सौतिन बन भगवान्की सेवा न बाँट ले। किन्तु यह तो इसमें केवल अज्ञानता ही है क्योंकि नग का पत्थर तो शापित नहीं है कि ऐसी संभावना भी की जा सकती थी।

'प्रभु प्रताप मैं जाब सुखाई। सु. 58।4।' **'सुनत विनीत वचन अति कह कृपाल मुसकाय।** सु. 59।' भगवान् की प्रार्थना करने से समुद्र बोला तक नहीं किन्तु जब धनुष-बाण माँगे तब स्वयं विनम्रता पूर्वक बोला कि मैं आपके प्रभाव से स्वयं सूख जाउँगा। इस अज्ञता पर भगवान् हँसे।

'अति आदर समीप बैठारी। **बोले बिहँसि कृपालु खरारी।** लं. 37।2।' अंगद पर भगवान् अत्यन्त कृपा करके विहँसते हैं। **'देखहीं कपि जननी की नाई। बिहँसि कहा रघुवीर गोसाई।** लं. 107।6।' जानकी को लंका से लाते समय कुछ बन्दरों ने सोचा था कि जानकी को कोई देखने नहीं पावे। इस अवसर पर भगवान् ने सोचा कि जानकी तो जगज्जननी हैं। संसार के सभी निवासी इनके पुत्र हैं तो माता और पुत्र में पर्दा नहीं चाहिए। यहाँ बन्दरों की भूल पर भगवान् हँसे हैं। **'मनिमुख मेलि डार कपि देहीं...। हँसत राम श्री अनुज समेता। परम कौतुकी कृपा निकेता।** उ. 116।4।' मणि का हाल बन्दर क्या जान सकता है। अतः प्राप्त मणि मुक्ताओं को सुन्दर फल समझकर मुख में डाल दिया किन्तु जब पत्थर का पता चला तब मुख से उगल दिया। इसी अज्ञता को लखकर भगवान्हँसे

हैं। ऊपर सर्वत्र भगवान जहाँ जहाँ हँसे हैं सभी जगहों में चेतन की अज्ञाता ही कारण है।

भगवान्की हँसी का प्रभाव - **'हासं हरेरवनताखिललोकतीव्र शोकाश्रुसागर विशोषणमत्युदारम्।'** संसार के तीव्र दुःखों से पीड़ित भक्तों के रुदन से उत्पन्न अश्रुसमुद्र बन गया है। इस समुद्र को सुखाकर भक्तों का कल्याण करना ही भगवान' के हँसने का प्रधान उद्देश्य है क्योंकि चेतनों की दयनीय स्थिति से ही तो भगवान् हँसते हैं - **'तस्यावलोकमधिकं कृपयातिघोरं'** यहाँ घोर शब्द विशेषवाचक है।जैसे घोर निद्रा आदि में घोर शब्द का अर्थ विशेष होता है। इसी प्रकार **'भृत्यानुकम्पितधियेह' 'सानुरागवलोकनम्।'** भक्तों के प्रति भगवान्का प्रेम सदा बना रहता है। इसीलिए भगवान् भक्तों का प्रेममयी दृष्टि से अवलोकन किया करते हैं। इसी को कृपा-दृष्टि कहते हैं। दृष्टिगुण यों है - **'तापत्रयोपशमनाय निसृष्टमक्ष्णोः'** भक्तों के त्रिविध तापों के नाशक भगवान्के नेत्र हैं। मीन-सदृश दोनों नेत्रों के ऊपर दोनों भौहों के द्वारा ही माया सृष्टि किया करती है, जिसने जीवों को मोहित कर रखा है। दोनों कपोलों के समीप विचित्र रत्नों से जड़े अत्यन्त तेजोमय स्वर्णकुण्डल हिलते हुए अत्यन्त विलक्षण शोभा देते हैं। ये मकर के आकार के सदृश हैं। कपोलों के ही समीप 'उदारनासम्' सुन्दर नासिका है- **'सुकतुण्डहीनासिका लजाई।।'** भगवान्की नासिका देखकर सुग्गे की चोंच भी लज्जित हो जाती है।नासामणियुक्त नासिका और भी सुशोभित होती है। **'प्राण प्राण के जीवन जी के।** अयो. **55।4।'** भगवान्का चरण कमल आत्मा का उपजीव्य वस्तु है, अतः उसको ध्यान में लाना चाहिए। चेतन के पाप-पर्वत को भेदन-छेदन के लिए भगवान्के चरणों में वज्र का चिह्न है। संसार-शत्रु से बचाकर अपने समीप ले आने के समर्थ्य स्वरूप भगवान्का विजय सूचक ध्वजा-चिह्न है। भक्तों के मदोन्मत्त मानरूपी कुञ्जर को वश में लाकर समीप रखने वाला भगवान्का अंकुश-चिह्न है। इसी प्रकार चेतन के चंचल चित्त को लोभायमान करके सदा चरण में लगाने वाला भगवान्का कमल-चिह्न है।

अब भगवान्के चरण कमल के नखों का ध्यान बताया जाता है- **'उत्तुङ्गरक्त विलसन्नख चक्रवाल ज्योत्सनाभिराहत महद् हृदयान्धकारम्।'** छारणों के दसों नख, परस्पर मिलकर बड़ाई छोटाई में होकर बीच में किञ्चित दबे हुए और अग्रभाग में किञ्चित ऊंचे, लालिमा लिये हुए, कान्तिमान् चन्द्रमा के समान सुन्दर प्रतीत होते हैं। मानों चन्द्रमा भगवान्के चरणों के स्पर्श से पापरहित हो जाने से दसगुणा अधिक समुज्जवल हो गया तथा उसकी चञ्चलता और क्षीण होना बन्द हो गया। वह नखों का प्रकाश पापतम, मोहतम और अविद्यातम को नाश करता है। इसी प्रकार से विशुद्ध तत्व आत्मतत्व देखा जाता है। इन्हीं चरणों को ब्रह्मा ने कृतार्थ होने के लिए धोया था तथा पादधोवन जल को कमण्डलु में रख आजतक वे नित्य तीर्थ लिया करते हैं। इसी पादतीर्थ जल को महादेव ब्रह्महत्या का पाप छुड़ाने के लिए आज तक अपने मस्तक पर धारण किये हुए हैं। इसीसे इनका नाम गंगाधर कहा जाता है। इसीलिए 'अशिवः शिवोऽभूत्' याने अशिव से शिव भी नाम पड़ा। इसी गंगा के प्रभाव से श्मशान का भस्म लपेटे हुए, मुण्डमाल पहिरे हुए भी वे पवित्र समझे गये। अतएव, **'भवभूत अंग समान की सुमिरत सुहावन पावनी।** बा.9 छंद। **'** **'वेष अमंगल मंगल राशि।** बा.**25।1।'** कहे जाते हैं। उसी पदप्रक्षालन जल से निकली संसार को पवित्र करने वाली गंगा आज भी भागीरथी कही जाती है। भगीरथ के पूर्वज सगर-वंश कपिल की क्रोधाग्नि में भस्म होने पर भी इसी पद-प्रक्षालन जल से पवित्र हो मुक्तिपाई। भगीरथ ही गंगा लाये थे, अतः भागीरथी गंगा नाम भी पड़ा। उसी चरण-कमल को भक्तराज निषाद ने पाकर धोया तथा तीर्थपान किया था। और इसी से पुण्य क्षेत्र गंगा में किये हुए निर्जरी पातकों से स्वयं मुक्त होता हुआ अपने पितृगणों का भी उद्धार किया था - **'पितर पार करि प्रभुहि पुनि आप गयउ लै पार।** अयो. **101।'** इसी चरण-कमल की प्रभावित धूलि से घोर पापिनी अहल्या भी तर गयी थी। इस चरण-कमल का ध्याता उपासक नित्य पूजक ब्रह्मा रुद्रादिक हैं। **'जेहि चरण शिव अज पूज्य रज सुभ परसि मुनि पत्नी तरी'** वही चरण-कमल **'दण्डक कानन पावनकारी'**। इस चरण को आराधक दिव्य सूरि तथा लक्ष्मी भी कभी नहीं छोड़ती हैं - **'परिचरित कथं तत्पादपद्मं तु पद्मा'**

सबसे बड़ी बात तो यह है कि इस चरण-कमल का विशेष प्रभाव समझकर ही भरत जी ने भगवान्की पाद स्पृष्ट

पादुका अपनाई - 'सम्पुट भरत सनेह रतन के। पालक जनु जुग जीव जतन के।अयो.315।3।' इश चरण- कमल के प्रभाव को स्वयं भगवान् सर्वज्ञ होते हुए भी नहीं जानते हैं। कभी तो भगवान् भी स्वयं इसी चरण के अंगूठे को अपने मुख में धारण करते हैं और कौन सा विलक्षण स्वाद आस्वादन करते हैं यह तो वही जानें। क्योंकि इस विषय में कभी किसी से कुछ नहीं कहते, मानो अत्यन्त गोपनीय हो। इस विषय को नहीं जानने में कई एक हेतु हो सकते हैं। एक यह भी कि प्राकृत जीवों के अधिकार का यह विषय नहीं हो, इसीसे नहीं बता सके। क्योंकि जितना से प्रयोजन जीवों को था उतना तो ब्रह्मा, नारद, अर्जुनादि से कह ही चुके हैं जो कल्याणप्रद है। चरणांगुष्ठ-पान में शायद जीवों का अधिकार नहीं है, अतः नहीं बताया।

दूसरा हेतु यह है कि चरणांगुष्ठ-पान का स्वाद सब से जना देते तो भक्तगण चरण-सेवा छोड़कर माता के स्तन के समान निरन्तर पान ही करते रहते जिससे वह सतत जूठा ही बना रहता। तीसरा हेतु यह है कि चेतन को ब्रह्मरस, ब्रह्मतेज, ब्रह्मगन्ध, ब्रह्मस्पर्श से सुख प्राप्त होता है। उसमें भी अन्तरंग और बहिरंग दो भेद होते हैं। जैसे चर्म-स्पर्श और मर्म-स्पर्श। ब्रह्म के ब्राह्मरस को प्राप्त करके चेतन को परम आनन्द होता है। श्रुति भी यही कहती है - 'रसं लब्ध्वा ह्येवायमानन्दीभवति।तै.उ. 2।7।' इसी तरह 'अतो रसो वै सः।तै.उ.2।7।' उसी अन्तरंग रस को स्वयं बटपत्रशायी भगवान् आस्वादन करते हैं।

चिरं शब्द का भाव यह है कि जैसे परिश्रम करते करते बहुत थकावट आ गयी हो ऐसे पुरुष को जितनी देर तक बैठने, आराम करने का समय मिलता है उतनी देर तक बहुत सुख मिलता है। इसी प्रकार मन अनादिकाल से सतत प्रतिकूल विषयों में दौड़ता फिरा है। आत्मा भी इसी चक्र में घूमती रही है। जितनी देर भगवान्के चरणों में यह ध्यान लगाता है उतनी देर अपूर्व सुखी रहता है, उसे शान्ति मिलती है। यही जीवन की सार्थकता है।

इस चरण-कमल में यह भी एक अपूर्व गुण है कि यह ध्याता के आत्मा को अपने में लगाकर इस तरह रखता है जिसमें वह कभी बिछुड़कर संसार में न गिरे। अतः कल्याण चाहने वाले को उचित है कि इन भगवच्चरणों का ध्यान नित्य प्रेमपूर्व क किया करें। त्रिपाद्विभूति में नित्य सूरि लोग लक्ष्मी के साथ भगवान्की सतत काल सेवा करते रहते हैं। वैसे मुमुक्षु लोग भी भगवान् की सेवा के लिए लालायित रहते हैं। कहा भी है - 'कदाहमैकान्तिक नित्यकिङ्करः।स्तोत्र रत्न 46।" याने वह भगवान्के नित्यलोक में कब जाकर सेवक बनके सेवा करेंगे। ऐसी इच्छा करते रहते हैं और 'सदा तद्भावभावितः' के अनुसार पूर्वाचार्य लोगों ने संसार से मुक्त होकर त्रिपाद्विभूति में जाकर भगवत्सेवा प्राप्त की है।

ऐसे सन्तपुरुषों के सहवास द्वारा हमलोगों को भी श्रद्धा हुई कि पूर्वाचार्यो के समान मैं भी सेवा करूँ जैसे कि नित्य सूरि लोग किया करते हैं, जैसे अवोध बच्चे अपने घर के श्रेष्ठ पुरुषों का अनुकरण किया करते हैं। बाल्यावस्था में बच्चों के परिवार लोग भी उनके खेल तथा अनुकरण देख हँसते और प्रसन्न हुआ करते हैं। तद्वत् हम जब भगवान्को अपने सम्मुख पधरा के पूजन की तैयारी करते हैं तब हमारे भगवान् हमको देखकर यह सोचते हैं कि यह दिव्य सूरियों तथा अपने पूर्वाचार्यो का अनुकरण (नकल) करने लगा, याने यह पांचभौतिक प्राकृत क्षुद्र देह से भी छूना-पूजना चाहता है। भाव यह है कि नित्यसूरि लोग अप्राकृत लोक में अप्राकृत देह से सेवा करते हैं और वही देह भगवान्की सेवा के योग्य है, न कि यह हाड़ मांस का प्राकृत देह भी भगवान् की सेवा के योग्य है। पूर्वाचार्य लोग अपनी प्राकृत देह का पोषण, दहन, प्लवनादिक करके और पंचोपनिषद् से अंग-न्यास और कर-न्यास करके, अपना दिव्यदेह बनाकर पराज्ञान परमाभक्ति पूर्वक सेवा करते थे। यह सेवा भगवान्के योग्य थी - 'तस पूजा चाहिए जस देवता।'

वह सेवा तो दिव्यसूरियों के तुल्य थी, स्वारूपानुरूप थी और मैं तो श्रद्धा-भक्ति शून्य तथा मन्त्रभ्रष्ट एवं क्रियाभ्रष्ट होते हुए अपावन पांचभौतिक देह में अनेक क्षुद्र दुर्वासना लेकर अपने सन्मुख भगवान्को रखकर पूजन के विषय में आचार्यो एवं दिव्यसूरियों का अनुकरण करने चला हूँ। ऐसी हमारी धृष्टता देखकर मुझपर हहाकर - ठठाकर हँसते हैं।

एक बार गोपियों के मन में यह अभिमान हुआ कि कृष्ण हमारे वश में हो गये हैं। जैसा हम कहती हैं वैसा कृष्ण किया करते हैं। ऐसी अभिमानिनी गोपियों को भगवान्‌ने छोड़ दिया। गोपियाँ विकल होकर खोजती हुई अत्यन्त व्यग्रतावश शरीर तक छोड़ने को तैयार हो गयीं। तब **'तासामाविरभूच्छौरी स्मयमानमुखाम्बुजम्** ।भा.10।32।2।' याने विहँसते हुए भगवान्‌उनसे मिले। यहाँ पर भी भगवान्‌को तब हँसी आई जब गोपियों की भूल याने अभिमान से कृष्ण को वश में जानना, हुई। वैसे विकसित मुख की चाह भी थी- **'प्रहसितं प्रिय...31।10।'** एक बार सब गोपियाँ भगवान्‌के सम्मुख आईं और भगवान्‌ने पतिव्रत धर्म बताकर कहा कि तुमलोग अपने-अपने घर वापस जाकर अपने-अपने पति की सेवा करो। उस समय -
'नेत्रे विमृज्य रुदितोपहते स्म किञ्चत्संरम्भगद्‌गदगिरो अब्रुवतानुरक्ताः ।भा.10।29।30।'
'इति विक्लवितं तासां श्रुत्वा योगेश्वरेश्वरः। प्रहस्य सदयं गोपीरात्मारामोऽप्यरीरमत् ।भा.10।29।42।'

भगवद्-गुण-गौरवता

मम गुण गावत पुलक शरीरा । गदगद गिरा नयन बह नीरा।अर.15।4।
अस सज्जन मम उर बस कैसे लोभी हृदय वसत धन जैसे।सु.47।4।
जन तुमरे गुण गावै श्रीपति श्रुति तुम्हरे गुण गावै।टेक ।
अतिशय कोमल हृदय अधिक सो करुणा को उपजावै।जन के महाघोर अपराधों को सब क्षमा करावै।1।
सुन्दरता भगवान्‌आपकी मोहन नाम धरावै।अति अभिमानी मनमथ हूँ को मन मथ कर दिखलावै।2।
वशिता गुण माखन मिसरी मिस घर घर नाच नचावै।तब माता कर से धरवा के ऊखल में बंधवावै।3।
खोल न सकत कहूँ अपने कर अतिशय भय उपजावै।चोरी करवावै धरवावै औ अजसी बनवावै।4।
पावनता भगवान्‌आपकी पतित पवित्र बनावै।गौतम तिय निषाद गनिका मृग सवरी से पुजवावै।5।
अति उदारता दारिद गण को सर्वस दै सकुचावै। तथा सुशीला के घर बैठे ऋद्धि सिद्धि पहुँचावै।6।
अज्ञाता निज जन के संचित सकल दोष भुलवावै। घण्टाकरण घोर पापी को तब अपना बनवावै।7।
सुन्दर दीनबन्धुता गुण सो दीनन हृदय लगावै। तुमरे विह्वल कर सब जन को सब विध से अपनावै।8।
तव सुशीलता गुण अति पावन सबसे आनि मिलावै। कोल भील के घर पहुँचा कर सबसे प्रेम करावै।9।
मछुवन अंक लगाकर तुमरे पशुवन मित्र बनावै। समय समय पाकर इनके गुण बहुविध गान करावै।10।
अति सुकुमार अंग तुमरे हरि चलत पुहुमि सकुचावै।जेहि लखकर कंटक कोमल हो पत्थर को पिघलावै।11।
गुणता जन गुण को गुन गुन कर सब अनन्त बनवावै।तब कर्त्तृत्व लोक सब रचकर के पल में दिखरावै।12।
अति कृतज्ञता भालु कपिन की सन्तत ऋणी बनावै। लक्ष्मण से दूना कहवावै भरत ते अधिक बतावै।13।
भरी सभा में सवके सन्मुख ऐसे वचन कहावै।शुद्ध देह दे सेवक गण के सेवा करन सिखावै।14।
सब मलीन तनु में रहते तब निर्मलता चमकावै। पूर्णकाम कर सकल पूर्णता इच्छारहित बनावै।15।
पूर्ण ब्रह्म से पूर्ण ब्रह्म हो पूर्ण रहत श्रुति गावै।वाहकता भगवान नित्यकर योग क्षेम निवहावै।16।
वह आश्चर्य महान्‌अहै जो हावु हावु समझावै। साध्य न होत कोई विधि से सो तुलसी इक बिकवावै।17।
महाँ घोर अति प्रवल शत्रु से निर्भिकता लड़वावै। अतुल बली से सहज बीरता पल में विजय करावै।18।
जो अति प्रबल प्रकाश महाप्रभु अग्नि चन्द्र रवि पावै। सो है तब सब विश्वमात्र को सकल वस्तु दिखरावै।19।
जन लग तब वह सुलभ्यता गुण वह खंभ फार दिखरावै।भक्त वचन सब सत्य करन को द्विविध रूप बनवावै।20।
वत्सलता भक्तन के अघ सब तुमरे भोग बनावै।तव वदान्यता गुण अति सुन्दर अभय प्रदान करावै।21।
तैसे 'मा शुच' पद को मुख से बार बार कहवावै।जन यह सुन्दर बचन सुनत सब चिन्ता दूर बहावै।22।
तेज प्रबल ब्रह्मादिक हूँ को अतिशय भय उपजावै। तेहि से सोई जग में उनचास पवन चलवावै।23।
लंकापति लगि तनु तजवावै अमरिष लगि धरवावै। सो सब जानत दास तुमारे तव चरणन लगवावै।24।
द्वादश मास दिवाकर द्वादश नित नित सब उगवावै। सकल लोक में सो सब विधि से संचित नियम निभावै।25।
उडुगण सकल चन्द्र नभ मण्डल चहुँ दिशि चक्र लगावै। कोई कवहूँ विश्राम न पावै काल गाल लै खावै।26।
कृतिता गिद्ध धाम पठवावै कपि को राज दिलावै। लंका राज विभीषण को दै तव कृतकृत्य बनावै।27।

स्थिरता सर्वकाल में बरबस अचल प्रतिज्ञ बनावै। आप न आप सदा रक्षा स्वामित्व सबहिं करवावै।**28**।
चातुरता संकल्प मात्र से रचना विविध करावै। महाधैर्यता तव भगवत कबहूँ न हृदय उमड़ावै।**29**।
रूप मधुर प्रिय वचन मधुरता मधुर मधुर रस लावै।समता घोर शत्रु पापी को निर्हेतुक अपनावै।**30**।
जड़ चेतन तन में बसवा कर एक नीति दिखरावै। यथा भक्त गण तथा शत्रु गण साम्य मुक्ति दिलवावै।**31**।
वह शूरता महा संगर में श्रम को दूर भगावै। गुण शरण्य रक्षक उपाय बन सब निवास बन जावै।**32**।
अमित अजित दोषण में ग्राहकता यह कला दिखावै।समय जान अज्ञात सुकृति को बार बार बतलावै।**33**।
लोक मात्र सब वस्तु मात्र सब काल मात्र जनवावै। तेहि से विज्ञाता कहके श्रुति बुध सर्वज्ञ कहावै।**34**।
अखिल लोक ब्रह्माण्ड धार्य यह तव अधार बतलावै। प्रेरकता कल्याण मार्ग को तोहि सदा श्रुति गावै।**35**।
पहले समाचार पुछवावै मुख प्रसन्न रखवावै। पूर्वाभाषी नाम धरावै प्रियवादी बनवावै।**36**।
धर्मज्ञता सत्य प्रण करवाकर तनु त्याग सिखावै। प्रति भानता प्रश्न के उत्तर मुख निःसरत करावै।**37**।
मंगल नाम रूप मंगल तव मंगल सब करवावै।आप वृहद्हो अन्य वृहत्कर सो ब्रह्मता कहावै।**38**।
गुरुता ब्रह्मा को अंकित कर आपन मंत्र सुनावै।पंचरात्र से शास्त्र पढ़ाकर आचार्यत्व बतावै।**39**।
आरत हरता दीन वचन सुन गरुड़ छाड़ दउड़ावै। निज आयुध से ग्राह मारकर गज के प्राण बचावै।**40**।
प्रियता तव कारण यह जग में सब प्रिय भान करावै। अज्ञानिन चेतन में सबके ओत-प्रोत दरसावै।**41**।
पोषकता यह चारि खानि को पोषण सदा करावै। सर्वलोक में सर्वदेह में कर्म जहाँ लै जावै।**42**।
नाम रूप रस गन्ध आपका विविध विचित्र दिखावै।यथा योग सब पात्र जनों को अनुभव सदा करावै।**43**।
व्यापकता सब वस्तु मात्र में बहिरन्तर बसवावै। लोक मात्र सब तरह अधेय हो सब अधार श्रुति गावै।**44**।
दुपद सुता के वस्त्र बढ़ाकर लज्जा को रखवावै। भरी सभा में सबके सम्मुख अति आश्चर्य करावै।**45**।
तव नेतृत्व ब्रह्म रुद्र हूँ को माया सबहिं नचावै। सूक्ष्म महान रूप द्वय धरकर नित्य योग दिखरावै।**46**।
तथा अजड़ जड़ इत उत रहके चतुराई परखावै। ताते प्रभु के मन अति भावै माया नाम धरावै।**47**।
जब जब भूल भई भक्तन से तब तब नेह हँसावै। कोल किरात निषाद भील गण के प्रसंग दरसावै।**48**।
उद्धव को हिमगिरि चलवावै गोपिन को कुहुँकावै। तव सुन्दर कल्याण गुणन में यह कठोरता आवै। **49**।
सप्तम पयसागर में तव हरि शान्ति शयन करवावै। सदा शेष पर श्री सह भगवत कबहुँ न मन ललचावै।**50**।
जन्म मरण जग जरा व्याधि तिहुँताप देह उपजावै।उद्धर्त्ता यह भवसागर से सहजहिं पार लगावै।**51**।
मो सम पर कोउ दूसर नाहीं ममता तव कहवावै। ताते सब श्रुति बार बार सम अधिक दरिद्र बतावै।**52**।
अर्थ धर्म अरुकाम मोक्ष सब जाके जो मन भावै।नाथ देव तरु सम स्वभाव तव जन मन पूर्ण करावै।**53**।
जगयोनित्व सकल जग को रच चार खानि बिलगावै। तुमरी रक्षकता सब जन को रक्षण सदा करावै।**54**।
प्रेरकता तव सकल पुण्य में बरबस आनि लगावै। ताते अति उपकार जनन के तव पग तर पहुँचावै।**55**।
हरता सब दुःख दूषण को हरि नाम मात्र जेहि गावै। सब जगजाल नाशकर ताके तुमरे योग बनावै।**56**।
तुमरी प्रभो सत्यता जग को सत्य भास करवावै।वचन सत्य निज भक्तन के लग सत्यप्रतिज्ञ बनावै।**57**।
भोक्ता भोग बनत मुक्तन लग नित्य सदा श्रुति गावै।अति आनन्द मयोभ्यासात्सो लिखकर व्यास बतावै।**58**।
नित्य मुक्त को एक ब्रह्म रस जो आनन्द करावै।अतः 'रसो वै रसः' अस कहकर जाको श्रुति अस गावै।**59**।
कारण विविध आप भगवत लग कारज सब बनि जावै। यथा सुवर्ण कटक कुण्डल बन शोभा अधिक बढ़ावै।**60**।
श्रोता भक्तन गुण सुनवावै लक्ष्मी से कहवावै।वाचकता भक्तन गुण तुमसे लक्ष्मी को सुनवावै।**61**।
मोरध्वज सुत को चिरवावै काया ध्रुव जलवावै। धर्मपरीक्षक बन भक्तन को अपने आप बचावै।**62**
भूमि पुष्प लतिका कपूर मृगमद में जो जहँ पावै।सो प्रभु तुमरे दिव्य देह से ले सुगन्ध छिटवावै।**63**।
प्रति खानिन अनेक विध भावै सो भिन्नता कहावै। एक कला तुमरी यह रचकर तीन काल दरसावै।**64**।
पादरेणु तीरथ तुमरे सब लोक विशोक बनावै। जेहिं खोजत अज शिव सनकादिक कृपा पात्र सो पावै।**65**
तव चंचलता गोपिन संग से दूर अकेल लुकाई। खोजत हारी सकल गोपियाँ तौं ना दियो दिखाई।**66**।
तिनको भली भाँति रुलवावै जड़ गण से पुछवावै। औ अतिसय व्याकुल करवावै दगाबाज कहवावै।**67**।
एकहिं तव सर जा पापिन को सकल समूल नसावै। सात समुद्र मेरु उत्तर दिशि सिद्ध हस्त पहुँचावै। **68**।

भूतनाथ को जड़ता देकर तुमरे विजय दिलावै । शुद्धि बुद्धि देवन को देकर मोह दूर भगवावै । **69** ।
कातरता सब भक्त अनुग्रह के चिन्तन करवावै । होत विलम्ब व्यग्र चिन्ता मन में निसिवासर लावै । **70** ।
कर्त्ता कर्म करण सम्बोधन सम्प्रदान कहलावै । अपादान सम्वन्ध अधार पुरान इसे बतलावै । **71** ।
विश्वरूप अपना जो सो कहुँ कोई देख नहीं पावै । प्राकृत दिव्य संग दोनों प्रभु अर्जुन को परखावै । **72** ।
तेहि मे महाकाल सम को लख हृदय कम्प उपजावै । अति व्याकुलतावश पारथ को चरण शरण गिर जावै । **73** ।
कछु आश्रित कार्यापादक कछु सौकर्या कहलावै । कहत वेद कल्याण गुणन को सब भक्तन मन भावै । **74** ।
वह गुण कवन नाथ तुमरे जो मृग पाछै दौड़ावै । जानत हूँ सीता पुछवावै जड़ से बात करावै । **75** ।
हिमकर को माखन कहवावै पुनि तेहि लागि रुसावै । माता की गोदी में बैठे बहुविधि आर करावै । **76** ।
पुतना से विषपान कराकर मिट्टि दवा करावै । प्रतिविम्बों से बात करावै माखन ताहि दिवावै । **77** ।
गोपिन के लग से लुकवावै यवनों से भगवावै । यह गुण के कछु कहत बनै नहिं कवन कोटि में जावै । **78** ।
तव आगमन प्रयाण समय सो अति मानवता फावै । कोउ देखा कोउ सुना वेद अस तव चरित्र दरसावै । **79** ।
सादर शेष गणेश सदा श्रुति नेति नेति कह गावै । '**तद्गुणसारत्वात्** (ब्र. सू. **2** । **3** । **29**)' यह कहकर ब्रह्म सूत्र बतलावै । **80** ।

श्रीमते रामानुजाय नमः

प्रश्न - सृष्टि कैसे हुई ? और उसका प्रयोजन क्या है ?

उत्तर - सृष्टि की रचना तो ईश्वरेच्छा से ही होती है, यह सिद्धान्त प्रायः सर्वमान्य है। प्रलय के बाद सभी स्थूल चित् और अचित्, सूक्ष्म चित् और अचित् रूप ईश्वर के उदर में विलीन हो जाते हैं। प्रकृति-निलीन (बद्ध) आत्मा भी सूक्ष्म अचित्के रूप में वहीं लीन थी। लीलाप्रिय प्रभु ने इच्छा की - 'तदैच्छत्बहुस्याम प्रजायेयम्' और सृष्टि बन चली। फिर तो जगत्से जगत् की अविच्छिन्न धारा बह निकली। अब प्रश्न यह है कि ईश्वर ने इस त्रिगुणात्मक सृष्टि की रचना की इच्छा ही किसलिए की ? ईश्वर को जीव अत्यन्त प्रिय है। उसकी मुक्ति उसे अभीष्ट है। सृष्टि के प्रत्येक प्रवाह में ध्रुव प्रह्लाद जैसे भक्त होते हैं। उनकी रक्षा के लिए स्वयं प्रभु को भी विभिन्न रूपों में आना पड़ता है और उन भक्तों का तो उद्धार होता ही है साथ ही असंख्य जीवों का भी ईश्वर की लीला, नाम और रूप के सहारे कल्याण होता है। जगत्जानता है 'शुको मुक्तः' 'वामदेवो मुक्तः'। इसी तरह भगवान् गीता पञ्चरात्र प्रभृति अमर ग्रन्थों के रूप में अपनी वाणी द्वारा लोक कल्याण का मार्ग प्रशस्त कर जाते हैं, जिस पर चलकर असंख्य जीव मुक्त होते हैं। यह तो भारत-भूमि की विशेषता है कि जहाँ दैवी बुद्धिवाले अनायास मुक्त हुआ करते हैं। यही नहीं, असंख्य क्षुद्र जीव या अधम मानव भी भगवान्का नाम लेकर यहाँ मुक्त होते पाये गये हैं। शास्त्र और पुराण इसके साक्षी हैं -

'किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुक्कसा आभीरकङ्का यवनः खसादयः । येऽन्ये च पापा यद्पाश्रयाश्रयाः शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः । भा. 2 । 4 । 18 ।" आभीर जमन किरात खस श्वपचादि अति अघ रूप जे । कहि नाम बारेक तेपि पावन होत राम नमामि ते । उ. 129 । छं ।' 'बारेक नाम जपहि जगजेऊ । होहिं तरन तारन समतेऊ । अयो.216 । 2 ।' इस तरह स्पष्ट है कि भगवान्की एक-एक क्रिया, एक-एक चेष्टा और एक-एक नाम सभी मुक्ति के साधन हैं। इसीलिए ईश्वर सृष्टि की इच्छा करते हैं और अपने नाम-रूप से प्रकृतिबद्ध आत्माओं का उद्धार करते हैं। यद्यपि भगवान्ने यह भी बतलाया है कि ज्ञान-बल से भी लोग अपने अन्तःकरण को पवित्र करके मेरे अधिकारी बन जाते हैं - **'बहवो ज्ञानतपसा पूताः मद्भावम्आगताः । गी. 4 । 10 ।'** किन्तु संसार में फँसे, मायास्वरूप धन-पुत्र-कलत्र के स्नेह में बँधे जीव के लिए जन्म-मरण के बन्धन को अपने प्रयास से काटना कठिन ही नहीं असम्भव कहना भी अत्युक्ति न होगी। अतः सृष्टि का प्रयोजन एकमात्र जीवों का उद्धार है।

अब प्रश्न यह है कि जब ईश्वर स्वयं जीवों का उद्धार चाहता है और सृष्टि का यही प्रयोजन भी है तब फिर मुक्ति के विभिन्न साधनों की क्या आवश्यकता है ? उत्तर स्पष्ट है कि मानव-जीवन के लिए देवता भी तरसते हैं। कहा है - **'गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्या हि ये भारतभूमिभागे। स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूता भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् । वि.पु.2 । 3 । 24 ।'** सचमुच यही मोक्ष का द्वार है -

'साधन धाम मोक्ष कर द्वारा। पाइ न जे परलोक सँवारा। उ. 42।4।'
'सो परत्र दुःख पावई सिर धुनि धुनि पछताये। कालहिं कर्महिं ईश्वरहिं मिथ्या दोष लगाये। उ. 43।'
यह मानव भी स्वभाववश वासना की ग्रन्थि में बँध जाता है और जन्म-मरण से उसे छुटकारा नहीं मिलता। इस वासना ग्रन्थि को सुलझाने के लिए साधनों की आवश्यकता होती है। शास्त्रों में अनेक साधन बतलाये गये हैं - 'धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।'इन दस गुणों से युक्त भगवदाराधनात्मक पवित्र कर्म, ज्ञान, भक्ति, प्रपत्ति, यज्ञ, दान, तीर्थ, व्रतोपासना तथा अनेक प्रकार की धर्म-भावनायें आदि सभी एक मनुष्य देह से ही हो सकते हैं, इसीलिए परमात्मा इस मानव देह की रचना भी करता है - 'बुद्धीन्द्रियमनःप्राणाल्लोकानाम्सृजत्प्रभुः। आत्मार्थं च भवार्थं च आत्मनः कल्पनाय च।।' अतः मानव की रचना ईश्वर की शरणागति के लिए ही हुई है। जो मनुष्य शरणागति कर लेता है उसका शरीर साक्षात् भगवान्का धाम बन जाता है। 'अंगुष्ठमात्रं रवितेजतुल्यं सदा जनानां हृदि सन्निविष्टः' उसके हृदय में भगवान् सदा मूर्त्तिमान रहते हैं, उसके ललाट में जो तिलक होता है उसमें भी भगवान्का निवास रहता है - 'उर्ध्वपुण्ड्रस्य मध्ये तु विशाले सुमनोहरे। लक्ष्म्यासार्धं हृषीकेशो देवदेवो जनार्दनः। प.पु.उत्तर.225।2।' इसीलिए शरणागति ही सभी उपायों में प्रधान मुक्ति का उपाय है। अनेक वचन इसके समर्थक हैं - 'दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।गी. 7।14।' 'नान्यः पन्था अयनाय विद्यते।पु.सू.।' 'मत्प्रसादात्तरिष्यसि।गी.18।58।' 'तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्युसंसारसागरात्।गी.12।7।' 'मत्तः परतरं नास्ति।गी.7।7।' 'यद्गत्वा न निवर्त्तन्ते।गी.15।6।' 'मम साधर्म्यमागतः।गी.14।2।'' सोऽमृतत्वाय कल्पते।गी.2।15।'' रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दीभवति।तै.उ.2।7।'

किन्तु यह सब तभी सम्भव है जब मानव अपने को ईश्वर की शरण में अर्पित कर देता है तथा इस जीवन के बाद त्रिपाद्विभूति में पहुँच कर उस अलौकिक आनन्द का अनुभव करता है जो सामीप्यमुक्ति से मिलता है। यज्ञ, दान, तपस्या, योग कोई भी इसकी बराबरी नहीं कर सकते हैं। श्रीमद्भागवत में कहा है कि - 'तपस्विनो दानपरा यशस्विनो मनस्विनो मन्त्रविदो सुमङ्गलाः। क्षेमं न विन्दन्ति यदर्पणं विना तस्मै सुभद्र श्रवसे नमो नमः। भा. 2।4।17।' शरणागति के विना ब्रह्मा का भी शरीर भगवत्प्रिय नहीं हो सकता। गोस्वामी तुलसीदास जी ने तो यहाँ तक कह दिया है कि - 'राम विमुख लखि विधिसम देही। कवि कोविद न प्रशंसहि तेही। उ. 95।2।'

इसीलिए धर्मशास्त्रकारों ने कहा है कि जो देवदुर्लभ मानव जीवन पाकर ईश्वर की शरणागति नहीं करता, वह ईश्वरद्रोही, आत्मद्रोही और आत्महन्ता है। 'अनात्मन्यात्मबुद्धिर्या चास्वे स्वमिति या मतिः। वि पु 6।7।11। किन्तेन न कृतं पापं चौरेणात्मापहारिणा। उद्योग प 42।37।' भला जिसने आत्मा के साथ धोखेबाजी की उसने कौन सा पाप नहीं किया। ऐसे ही पापी बार-बार नरक का दुःख भोगते हैं और इस लोक में भी दुःखी रहते हैं। फिर भी, अपना दोष काल, कर्म और ईश्वर के सिर मढ़ते हैं। यद्यपि काल शरणागति का बाधक नहीं है, जैसा कहा भी है - 'न देशकालौ नावस्थां योगो ह्ययमपेक्षते।'

युग-विशेष भी शरणागति का साधक-बाधक नहीं होता। सत्युग में जहाँ एक ओर ध्रुव-प्रह्लाद जैसे भक्तरत्न हो गये हैं, वहाँ दूसरी ओर हिरण्यकशिपु प्रभृति अत्याचारी राजा भी कम नहीं हुए हैं। त्रेता-युग में भी शबरी, सुतीक्ष्ण जैसे अनन्य भक्त हो गये थे तो त्रिलोककंटक अनन्य भगवद् द्रोही रावण भी उसी समय वर्त्तमान था। इसी तरह द्वापर की गोपियों की भक्ति से कंस और शिशुपाल का अत्याचार कहीं आगे बढ़ा हुआ था। आज का कलि यदि पाप-ताप के लिए प्रसिद्ध है तो सूर और तुलसी की इसी बीच प्रवाहित भक्ति की गंगा-यमुना की युगल धारा भी लोकोत्तर ही है। बल्कि सद्गति के लिए कलियुग की ही कामना बड़े लोग करते आये हैं। 'कृतादिषु प्रजा राजन्कलाविच्छन्ति सम्भवम्। भा. 11।5।38।' यदि कलि में लोग निर्धन अल्पायु और प्रपंची होते हैं तो उनके उद्धार का उपाय भी उतना ही सरल है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने तो यहाँ तक कह दिया है कि -
"कलियुग सम युग आन नहीं जो नर कर विश्वास। गाइ राम गुन गान विमल भव तर बिनहिं प्रयास। उ. 103।"
कलि कर एक पुनीत प्रतापा। मानस पुण्य होय नहीं पापा। उ.102।4।" कलि और युगों से पुनीत है, प्रतापी है और केवल नाम का गान कर मनुष्य मुक्त हो सकता है। अतः स्पष्ट है काल शुभकर्म या शरणागति का बाधक नहीं है। रह गयी कर्म की बात। वह तो

स्वयं जड़ है, कर्त्ता के अधीन है, वह शुभाशुभ कर्म करके पाप-पुण्य का भागी हो सकता है। किन्तु ईश्वर तो अशुभ कर्म से जीव को उद्धार करते देखा गया है। वह तो केवल निमित्त चाहता है, उद्धार का बहाना-मात्र उसे चाहिए।
पूतना ने तो ईश्वर को जहर ही पिलाई थी किन्तु भगवान्ने उसे माता की गति दी। शिशुपाल ने भरी सभा में केवल गाली ही दी थी, व्याध ने चरण में बाण मारा था किन्तु उनलोगों को भी ईश्वर ने मुक्ति दे दी है। कहा भी है - "**क्रोधोऽपि देवस्य वरेण तुल्यम्।।**" फिर जो ईश्वर के निमित्त शुभ कर्म करेगा उसके लिए तो कहना ही क्या। यों तो शरणागति मात्र से ही कर्म-बन्धन छूट जाता है। कहा भी है - "**न कर्म बन्धनं जन्म वैष्णवानां हि विद्यते। विष्णोरनुचरत्वं हि मोक्षमाहुर्मनीषिणः।।**" जिस पर भगवान्की कृपा-दृष्टि पड़ी कि उस पर से काल-कर्म का नियन्त्रण उठ जाता है। "**काल कर्म नहीं व्यापहीं तेही। चितवहीं राम कृपा करि जेही।** उ. **103।4**।" इतना ही नहीं ईश्वर अपने प्रिय जीव का उद्धार तो चाहता ही है और इसीलिए उसकी यह लीला-विभूति है क्योंकि विना देह के तो कोई कर्म हो नहीं सकता है। फिर भी वह भक्त के छोटे से छोटे कर्म को भी निमित्त मानकर उसका उद्धार कर देता है।

"**तुलसीदलमात्रेण विक्रीणीते स्वयं हरिः।।**" यद्यपि स्वार्थ के लिए तृण-छेदन भी पातक माना गया है किन्तु भगवान्के निमित्त तुलसी की मंजरी काटकर जो भक्त उन्हें अर्पण कर देता है भगवान्तो उसके हाथ बिक जाते हैं। किन्तु मनुष्य अज्ञानतावश ईश्वर को पक्षपाती, दुःख का भागी बनानेवाला कहा करते हैं। वास्तव में भगवान्के लिए अपने को ईश्वर का और ईश्वर को अपना सर्वस्व माननेवाले जीव इतने प्रिय हैं कि उतना अपना आत्मा भी प्रिय नहीं है। उद्धव को स्वयं भगवान्ने कहा है कि - "**न मे प्रियतरः कश्चिद्वात्मयोनिर्न शङ्करः। न सङ्कर्षणो न श्रीर्नैवात्मा यथा भवान्।** भा. **11।14।15**।" इसके अलावा जिन लोगों ने शत्रुभाव से भी भगवान्का स्मरण किया है वे भी भगवान्के कम कृपापात्र नहीं रहे हैं -

"**वैरेणयं नृपतयः शिशुपालपौण्ड्राः शाल्वादयो गति विलासविलोकनाद्यैः।**
ध्यायन्त आकृतधियः शयनासनादौ तत्साम्यमापुरनुरक्तधियां पुनः किम्। भा. **11।5।48**।" हाँ, यह ठीक है कि शत्रुभाव से ही सही किन्तु इन्होंने स्मरण तो किया। अहर्निश जिसतरह अज्ञानता से छूने पर भी अग्नि स्वभाववश जलाती ही है, उसी तरह रामनाम भी ज्ञान या अज्ञान से लेने पर पापियों के पाप का नाश करता ही है। इसीलिए तुलसी के शब्दों में लंका के सभी राक्षस भी - "**रघुवीर सर तीरथ सरित तनुत्यागी गति पै है सही।** सु. छन्द **3**।" मुक्ति के अधिकारी हैं ही।
"**ये ये हता चक्रधरेण राजन् त्रैलोक्यनाथेन जनार्दनेन । ते ते नरा विष्णुपुरं प्रयाता क्रोधोऽपि देवस्य वरेण तुल्यम्।।**"

अन्तर इतना ही है कि द्वेषवश अनुस्मरण से मुक्ति मिलती है और प्रेमपूर्वक शरणागति करने से ईश्वर वश में हो जाते हैं। भक्त भक्ति का अधिकारी बन जाता है, मुक्ति उसकी अनुचरी बन जाती है। जिन्हें अपने स्वरूप का ज्ञान हो चुका है ऐसे भक्त लोग तो पाप को अपनी की हुई गलती का परिणाम मानकर ईश्वर से क्षमायाचना करते हैं, जैसा भक्तों ने कहा है -
"**अपराधसहस्रभाजनं पतितं भीमभवार्णवोदरे। अगतिं शरणागतं हरेः कृपया केवलामात्मसात्कुरु।** स्तोत्र रत्न **48**।"

अथवा '**यज्जन्मनः प्रकृतिमोहवशं गतेन नानापराधशतमाचरितुं मया ते।**
अन्तर्बहिश्च सकलं तव पश्यतोऽपि क्षन्तुं त्वमर्हसि हरेः करुणावशेन।।' किन्तु पापी लोग निखिल गुण सम्पन्न प्रभु को ही दोषी बताते हैं। फल यह होता है कि वे पापवश जन्ममरण के चक्र में पड़कर चौरासी लाख योनियों में भ्रमण किया करते हैं। भला जयन्त जैसे पापी को क्षमा दिलानेवाली महालक्ष्मी जिस प्रभु की अर्धाङ्गिनी, नित्यसहचरी बनी है, उसकी शरण को छोड़कर देवतान्तर या लोकान्तर से सुख पाने की आशा रखना मृगतृष्णा ही है। दयालु प्रभु के जगत् (सृष्टि) एकमात्र प्रयोजन यही है कि चाहे जिस तरह हो आत्मा को मुक्त किया जाय। इसलिए मानवमात्र का कर्त्तव्य है कि वह प्रभु के इस प्रयास से अपने को वंचित न करे, वरन् उनकी शरणागत बनकर अपने आत्मा का उद्धार करे। काल, कर्म और ईश्वर का दोषारोपण करना सर्वथा व्यर्थ है।

।।शुभमस्तु।।

श्रीमते रामानुजाय नमः



सम्पत् में विपत्
और
दीनता में राम

विपदो नैव विपदः सम्पदो नैव सम्पदः।
विपद्विस्मरणं विष्णुं सम्पन्नारायणस्मृतिः।।

संकलयिता
श्री स्वामी पराङ्कुशाचार्य
सरौती मठाधीश्वर, रामपुर चौरम, गया।
श्रीसम्वत् **2014**

प्रकाशक - सर्वाधिकार सुरक्षित
पं.श्री अम्बिकादत्त शर्मा
सबजपुरा, जयपुर, गया।

मुद्रक : नवाब सिंह साधना प्रेस, पटना - **4**

।।श्रीमतेरामानुजाय नमः।।

"यद्यदाचरतिश्रेष्ठस्तत्तदेवेतरोजनः।"

महत्पुरुषों का आचरण अनुकरणीय होता है। भगवान् अपनी सृष्टि व्यवस्था को सुव्यवस्थित रखने के लिए इस धराधाम पर स्वयं आते हैं या अपने दिव्य पार्षदों में से किसी-न-किसी को बरावर भेजा करते हैं। इस क्रिया-कलाप से धर्म की जड़ सुदृढ़ रहती है। धर्म ही लोकधारक है।"धारणाद्धर्म उच्यते।" "यतोऽभ्युदयनिश्रेयः सिद्धिः सधर्मः।।" जो व्यक्ति और समष्टि, देह और आत्मा, लोक और परमार्थ सभी का अविरोध अभ्युदय और निश्रेयस की सिद्धि करे वही धर्म है। सत्वगुणात्मक धर्मसाधना प्रणाली ही वैष्णव धर्म है। इस धर्म के अधिष्ठाता सत्वगुण प्रधान देव विष्णु हैं। वैष्णव धर्म के प्रधान प्रचारकाचार्य भगवान्के दिव्य पार्षद ही स्वामी श्री यामुनाचार्य जी, स्वामी श्री रामानुजाचार्य जी, स्वामी श्री वरवरमुनि जी, स्वामी श्री रंगदेशिकाचार्य जी, स्वामी श्री परमहंस जी प्रभृति के रूप में अवतार ले जनहित इस धराधाम पर आये थे। स्वामी श्री परमहंस जी के ही कृपापात्र शिष्य स्वामी श्री परांकुशाचार्य जी (सरौती मठाधीश) 'गुरोः प्रकाशत्वं शिष्यत्वं' के अनुकूल सतत भगवच्चिन्तन परायण रहते हुए जनकल्याणार्थ भगवद्धर्म प्रचार में तल्लीन हो सर्वदा सर्वत्र घूमघूम कर वेदान्त की धारा से जन समूह को आप्लावित करते रहते हैं। सद्ग्रन्थों के ज्ञेय विषयों को संग्रह कर पुस्तिका छपवा कर निःशुल्क वितरण किया करते हैं क्योंकि "प्रकाशयितुमात्मानं भक्तानां हित काम्यया। अवतीर्णो जगन्नाथः शास्त्ररूपेण वै प्रभुः।।" भक्तप्रिय भगवान् भक्तों की भलाई के लिए ही शास्त्ररूप में अवतीर्ण हुए हैं। अतः शास्त्रों के उद्देश्य का प्रचार-प्रसार भगवान्का प्रकाशन (जानना) है। श्री स्वामी जी के शिष्य होने के सम्बन्ध से मैंने भी अपना कर्त्तव्य समझा कि उक्त प्रकाशन में कुछ हाथ बटाऊँ तथा विश्वरूप में विराट्भगवान् के पूज्यतम चरणों में अपने जीवन के अर्जित कुछ पुष्पों को समर्पित करूँ। अतः श्री स्वामी जी के संकलन 'सम्पत्में विपत्और दीनता में राम' नाम की लिखित पुस्तिका (जो सर्वथा आत्मोज्जीवक है) कासम्पूर्ण प्रकाशन-व्यय अपनाकर, प्रकाशित कराकर पाठकों के सम्मुख उपस्थित किया। आशा है पाठक वृन्द इसके अध्ययन द्वारा अपना मुक्ति मार्ग प्रशस्त करेंगे।

विनीत
पं.श्री अम्बिकादत्त शर्मा
शवजपुरा, जयपुर, गया।

श्रीमतेरामानुजाय नमः

आमुखम्

जनयत्यर्जने दुःखं तापयन्ति विपत्तिषु। मोहयन्तिच सम्पत्तौ कथमर्थाः सुखावहाः।।
सन्तोषामृत तृप्तानां यत्सुखं शान्तचेतषाम्। कुतस्तद्धन लुब्धानांमितश्चेतश्च धावताम्।।

प्रायः देखा जाता है कि धनलोभाभिभूत व्यक्ति अपना लोभ पूरा करने के लिए अपना जाति-धर्म, कुल-धर्म, मानव-धर्म तथा सभी प्रकार के उचित व्यवहारों को छोड़कर अनेकों दुष्कर्म, चोरी, डकैती, घुसखोरी, बहुबेटियों का विक्रयादि अमानवोचित दुष्कर्म द्वारा धनार्जन किया करते हैं। यदि ऐसे व्यक्तियों का धन किसी प्रकार अपहृत हो गया तो वे सब पुत्रमृत्यु से भी बढ़कर शोक सन्तप्त होते हैं और यहां तक कि सतत इसी व्यग्रता में लीन हो अपना जीवन भी गवाँ देते हैं। किन्तु ये सब अज्ञानवश ही होते

हैं। असन्तोषियों की ऐसी दशा होती। **सन्तोषं परमंसुखम्।** सन्तोषी परम सुखी है -'**बिनु सन्तोष न काम नसाहीं**।उ.89।4।' यदि हृदय में सन्तोष नहीं है और यदि किसी प्रकार कुछ धन उपलब्ध होता जाता है तो "**लाभात्लोभः प्रजायते।**" "**जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई**।बा.179।1।" लोभ बढ़ता जाता है। इसकी वृद्धि की सीमा नहीं होती है। किन्तु जीवन तो सीमित ही होता है। अतः धनेच्छापूर्त्ति बिना ही तृष्णार्तियों को दौड़ते-दौड़ते ही जीवन लीला समाप्त करनी पड़ती है। मरणासन्न काल में जैसी तृष्णा रह जाती है तदनुकूल ही पुनः देह मिलती है। पश्चात् पूर्व संस्कारानुकूल ही तृष्णा बढ़ेगी और फिर भी टमटम के घोड़ा की तरह दौड़ते-दौड़ते जीवन समाप्त होता है। न तो धनेच्छा की पूर्त्ति होती है और न उचित ईष्ट की पूर्त्ति होती है। इस प्रकार बार-बार जन्म और मरण का चक्र चलता रहता है। संसार में मनुष्य बनकर आने का जो प्रधान ध्येय होता है उधर तो भूलकर भी दृष्टि नहीं जाती। अध्यात्म ज्ञान तो असंख्यों योजन दूर ही रह जाता है। इसीलिए धनमद का धनरूपी विष सभी प्रकार के विषों से बढ़कर आत्मा का नाशक है। अन्य विष तो केवल देह को ही नाश करता है। कलियुगियों को नरक में गिरानेवाला सबसे प्रबल साधन यही है। भरद्वाज जी भरत जी से यही कहे हैं -"**तुम कह भरत कलंक यह हम सब कर उपदेश**।अयो.208।"

यदि दशरथ जी धनराज नहीं होते तो कैकेयी क्योंकर वरदान में भरत के लिए राज्य माँगती ? दशरथ जी की मृत्यु दुर्दशापूर्वक क्यों होती ? श्री राम जी का निष्कासन अयोध्या से क्यों होता ? हे भरत! तुम्हें कलंक क्यों लगता ? इत्यादि अनर्थ मूलक अर्थ ही तो कारण है। बल्कि हमसब वनवासियों के लिए उत्तम शिक्षा है कि धन से बहुत दूर रहना कहीं श्रेयस्कर होता है। "**को गृध्येत् पण्डितो लक्ष्मीं त्रिविष्टपपतेरपि। ययाहमासुरं भावं नीतोऽद्य विबुधेश्वरः**।भा.6।7।12।" इन्द्र इसी धनमद में मत्त होकर अपने गुरु वृहस्पति को भी तिरस्कार किया था। पश्चात् जब बुद्धि ठिकाने पर आयी तो पश्चात्ताप करते हुए धन से दूर रहने के लिए उपदेश करने लगा। संचित धन या संचेय धन के झमेला से अलग रहने पर ही आत्म-परमात्म ज्ञान का सुअवसर प्राप्त होता है। यदि ऐसी अवस्था संयोगवश प्राप्त हुई तो संसार के '**जन्मत मरत दुसह दुःख होई**।उ.108।4।' से छुटकारा मिल जाता है जिससे भगवान् मिलते हैं और तभी सच्चा आनन्द प्राप्त होता है। उस आनन्दनिलय से कभी भी च्युति नहीं होती है। "**यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम**।गी. 15।6।" "**रसो वै रसः**।तै.उ. 2।7।" श्रुति बतलाती है कि परमात्मा सभी प्रकार के सुस्वाद रसों से भी बढ़करआनन्ददाता उत्तम रस है। "**रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दीभवति**।तै.उ. 2।7।" आत्मा परमात्मा की प्राप्ति से आनन्दित होती है। बस केवल यही एक आत्म-कल्याण का उद्देश्य रखकर प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद श्री स्वामी जी महाराज जिन्हें सचमुच स्वामी और गुरु बनने का अधिकार निसर्गतः प्राप्त है लोकोपकारार्थ इसी पुस्तिका में धन के आश्रित दोषों का उद्घाटन मान्य सद्ग्रन्थों के आधार पर किये हैं। श्री स्वामी जी का सत्प्रयास तो तभी सफल होगा यदि पाठक वृन्द उक्त विषय को मनोयोगपूर्वक हृदयंगम करते हुए अपने जीवन की सार्थकता सिद्ध कर भावी सन्तानों के लिए अनुकरणीय सदाचारों के निर्झर बन सांसारिक तापों के शासक बने। आशा है, भगवान् ऐसी ही सद्बुद्धि सबों को प्रदान करें।

निवेदक
प्रधानाध्यापक
श्रीराम संस्कृत विद्यालय सरौती
रामपुर चौरम, गया।

श्रीमतेरामानुजाय नमः

"**पुसां किलैकान्तधियां स्वकानाम्याः सम्पदो दिविभूमौ रसायाम्।**
न राति यद् द्वेष उद्वेगआधिः मदः कलिर्व्यसनं संप्रयासः।भा.6।11।22।" भगवान् अपने प्रिय भक्तों को स्वर्ग या पृथ्वी की सम्पत्ति जो उद्वेष, उद्वेग, अभिमान, मानसिक पीड़ा, कलह, दुःखादि का कारण है, नहीं देते हैं। "**नित्यार्दितेन वित्तेन दुलर्भे**

नात्ममृत्युना। गृहापत्याप्त पशुभिः का प्रीतिः साधितश्चलैः। भा. 11।3।19।" सतत् पीड़ा देने वाला अत्यन्त दुर्लभ आत्मा का घातक बन तथा गृह परिवारादि विनाशशील वस्तुओं से क्या लाभ ? कुछ भी नहीं। "**श्रियाविभूत्याभिजनेन विद्यया त्यागेन रूपेण बलेन कर्मणा। जातस्मेयनान्ध धियः सहेश्वरान्सतोऽवमन्यन्ति हरिप्रियान्खलाः।** भा. 11।5।9।" धन, वैभव, कुलीनता, विद्या, दान, सौन्दर्य, बल आदि के घमण्डवश अन्धा होकर दुष्ट मनुष्य भगवत्प्रेमी सन्तों को तथा ईश्वर का अपमान करता है।

"**नह्यन्यो जुषतो जोष्यान्बुद्धिभ्रंशो रजोगुणः। श्रीमदादाभिजात्यादिर्यत्र स्त्रीः द्यूतमासवः।** भा. 10।10।8।" अपने-अपने प्रिय विषयों को सेवन करने वालों की बुद्धि को भ्रष्ट करने वाला ऐश्वर्यमद है। हिंसा आदि रजोगुणी कर्म, कुलीनता आदि का घमण्ड, धन के घमण्ड से बढ़कर नहीं है। क्योंकि धनमद के साथ स्त्री, जुआ, मदिरा भी है।

"**धनं हि पुरुषो लोके पुरुषं धनमेव वा। अवश्यमेकं त्यजति तस्मात्किं धनतृष्णया।।**" श्रीभाष्य हेत्वाधिकरण में कहा गया है कि सृष्टि निर्माण में परमात्मा का अपना कोई भी विशेष लाभ नहीं है परन्तु सब प्रकार से जीवों के कल्याण के निमित्त ही इसकी रचना की गयी है। इसमें भगवान्की अहेतुकी कृपा है। भगवान् ने अनन्त लोकों की रचनायें की। अपनी कृति सबों को प्रिय होती है। इसमें भी अपना परिवार मनुष्य तथा पशु पक्षियों सबों को विशेष प्रिय होता है। पशुओं में सबसे बढ़कर निर्दय बाघ और सिंह होते हैं। वे सभी मनुष्यों या पशुओं को मार खा जाते हैं, परन्तु अपने बच्चों को भली-भाँति पालते हैं, प्यार करते हैं। बाघनी को अपने बच्चे पर वैसी ही ममता देखने में आती है जैसी ममता गौ को अपने बच्चों में रहती है। परमात्मा परम दयालु हैं। वे हमारे माता-पिता हैं। हमलोग उनके बच्चे हैं। माता-पिता सबसे बढ़कर अपने पुत्र को चाहते हैं। वे भी बच्चों का अनिष्ट नहीं चाहते। कभी-कभी बच्चे की रुग्नावस्था में उनको पकड़कर वे दगवाते, चिरवाते, उपवास करवाते या मारते-पीटते भी हैं। परन्तु इन सभी क्रियाओं की तह में बच्चों की हित-कामना ही होती है। कहा भी है - "**क्रोधोऽपि तेऽनुग्रह एष सम्मतः**" परमात्मा का क्रोध भी चेतनों के ऊपर अनुग्रह के लिये ही होता है। यमपुरी में भी इसी भावना की प्रेरणा से भेजा जाता है। कहा गया है - "**यत्र दण्डेन शुद्धयति।**" घोर-से-घोर पापी को भी दण्ड देकर शुद्ध किया जाता है। "**व्याधिनाश हित जननी गणई न सो शिशु पीर।** उ. 74।" परन्तु दण्ड द्वारा हित किस प्रकार होता है इसका ज्ञान (इसकी भावना) माता-पिता के हृदय में ही होता है। पुत्र इस दण्ड की प्रक्रियाओं को अपना अज्ञान के कारण बुरा मानता है। और अपने हित की बात को भी अहित मान बैठता है। प्रारब्धवश हम सबों को भी जब दुःख का सामना करना पड़ता है तो परमात्मा को कोसते हैं और उनको दोषी बतलाते हैं परन्तु वह दुःख तो हमारे परमहित के निमित्त साधन स्वरूप होता है ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार उपर्युक्त बच्चे की दशा का वर्णन आया है।

शारीरिक, आर्थिक, पारिवारिक आदि नाम से भिन्न-भिन्न प्रकार के कष्ट हमें आ घेरते हैं। परन्तु ये कष्ट तो कर्माधीन होते हैं। हमारे कल्याण निमित्त परमात्मा के प्रसाद रूप में आते हैं और इस उज्जवल दृष्टिकोण का ज्ञान ज्ञानी महात्माओं को ही होता है। "**सुख दुःख समेकृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।** गी. 2।38।" परन्तु साधारण कोटि के जीव इसे नहीं समझते।

सम्पत्ति और विपत्ति के यथार्थ लक्षण पर ध्यान दीजिये - "**विपदो नैव विपदः सम्पदो नैव सम्पदः। विपद्विस्मरणं विष्णुं सम्पन्नारायणस्मृतः।।**" भगवान्विष्णु का स्मरण सम्पत्ति और विस्मरण ही विपत्ति है। सृष्टि के दो विभाग हैं - जड़ और चैतन्य। चैतन्य विभाग में सर्प, विच्छू, छरविन्धा आदि भी हैं। बहुत से जीव ऐसे होते हैं जिनके शरीर के विकार से रोग होते हैं। गोह के थूकने से शरीर फूल जाता है। कितने के काटने से मृत्यु हो जाती है - सर्प, विच्छू आदि। इसी प्रकार जड़ विभाग में बहुत से विष और उपविष हैं। ये जब पेट में प्रविष्ट होते, रक्त में मिलते हैं तब मृत्यु होती है। कितनों के स्पर्श से ही दुःख तथा मरण होता है। हलाहल विष जब समुद्र से निकला तो पार्श्ववर्तियों को जलाने लगा। दूरवर्तियों पर इसका प्रभाव नहीं पड़ा। ये सभी विष चाहे जड़ हो या चैतन्य, शरीर का नाश करते हैं किन्तु आत्मा का नहीं। एक विष ऐसा भी है जो लाखों कोस दूर रहने पर भी अपना प्रभाव डालता है। इसके स्मरण मात्र से ही यह व्याप्त हो जाता है। मतवाला बना देता है और साथ ही साथ आत्मा को भी नाश

कर डालता है। इसी से परमात्मा कहते हैं कि जिसके ऊपर मेरा अनुग्रह होता है उसके विष का नाश मैं सर्वप्रथम कर देता हूँ। "**यस्याहमनुग्रहणामि तदद्विषं विधुनोम्यहम्**।भा. 8।22।24।" गीता में कहा है - "**धनमान मदान्विता**।16।17।" धनवान् पुरुष मदमत्त होते हैं। धनमद मनुष्यों को टेढ़ा बना देता है - "**श्रीमद वक्र न किन्ह केहि**।उ. 70।" यह धनमद बुद्धि को ठिकाने नहीं रहने देता। इशीलिये "**श्रेयार्थी दूरतस्त्यजेत्**।भा.11।23।19।" कल्याण चाहने वाला मनुष्य दूर से ही उसको छोड़ दे क्योंकि वह सर्पादिक विष से भी भयंकर है। इसके दोष को ज्ञानी लोग ही जानते हैं। साधारण जीव अज्ञानवश उससे प्रेम रखते हैं और उसके लोभ में - "**कौड़ी कारण मोहवश करहिं विप्र गुरु घात**।उ. 99।" भयानक अत्याचार करते हैं, अकृत्य करते हैं। इन्हीं सभी दोषों से बचाने के लिए भगवान् धन का अपहरण कर लेते हैं। ऐसा उन्हीं के लिए होता है जिनका भगवान् कल्याण चाहते हैं। "**अनुग्रहो यद्भवतो राज्ञां राज्यच्युतिर्विभो**।भा. 10।73।9।" राजाओं का राज से च्युत हो जाना भगवान्‌का अनुग्रह है। जरासन्ध के कारागार से निकले हुए राजाओं ने श्रीकृष्ण से कहा - "**राज्यैश्वर्यमदोन्नद्धो न श्रेयो विन्दते नृपः।त्वन्मायामोहितोऽनित्या मन्यते सम्पदोऽचलाः**।भा.10।73।10।" जो राजा ऐश्वर्य मद से उन्मत्त है वह कल्याण नहीं प्राप्त करता है। आपकी माया से मोहित होकर अनित्य सम्पत्ति को नित्य मान लेता है। "**वयं पुरा श्रीमदनष्टदृष्टयः जिगीषयास्या इतरेतर स्पृधः। घ्नन्तः प्रजाः स्वा अतिनिर्घृणाः प्रभो मृत्युं पुरस्त्वाविगणय्य दुर्मदाः**।भा. 10।73।12।" हे भगवन्! हम सब राजागण ऐश्वर्य-मद से अन्धे होकर पृथ्वी को जीतने की इच्छा से एक दूसरे से विरोध भावना से प्रजाओं की हत्या किया करते थे। हम सबों की मृत्यु स्वरूप ही सन्मुख स्थित आपको उपेक्षा बुद्धि से आपको देखते थे।

"**त एव कृष्णाद्य गभीर रहंसा दुरन्त वीर्येण विचालिताः श्रियः।कालेन तन्वा भवतोऽनुकम्पया विनष्ट दर्पाश्चरणौ स्मरामते**।भा. 10।73।13।" हे भगवन्! काल की गति प्रवल है वह टाले नहीं टलता। जब उसने हम सबों को श्रीविहीन बना दिया तो आपके चरणकमलों का स्मरण करते हैं।यह आपकी निर्हेतुक कृपा है। "**हैहयो नहुषो वेनो रावणो नरकोऽपरे श्रीमदाद्भ्रंशिताः स्थानाद्देवदैत्यनरेश्वराः**। भा.10।73।20।" कीर्तवीर्य, नहुष, वेन, रावण, नरकासुरादि अनेकों देवता, दैत्य और नरपति पदच्युत हो गये।

"**अधनोऽयं धनं प्राप्य माद्यन्नुच्चैर्न मां स्मरेत्।इतिकारुणिको नूनं धनं मेऽभूरि नाददात्**।भा. 10।81।20।" सुदामा जी भगवान्‌के प्रति कहते हैं कि दरिद्र धन पाकर उन्मत्त होकर भगवान्‌को भूल जाता है। अतः भगवान् ने ुझको कुछ भी धन नहीं दिया यह उनकी दया है। "**अर्थस्य साधने सिद्धे उत्कर्षे रक्षणे व्यये। नाशोपभोग आयासस्त्रासश्चिन्ता भ्रमो नृणाम्**।भा.11।23।17।" अर्थोपार्जन में, उपार्जित धन की रक्षा में, बढ़ाने में, व्यय और उसका नाश उपभोग में, त्रास, चिन्ता, भ्रमादि श्रम ही श्रम है।"**स्तेयं हिंसानृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः। भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च**।भा.11।23।18।" "**तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरस्त्यजेत्**।भा.11।23।19।" चोरी, हिंसा, झूठ बोलना, दम्भ, काम, क्रोध, गर्व, अहंकार, भेदबुद्धि, वैर, अविश्वास, स्पर्धा, लम्पटता, जूआ, मदिरापान आदि अनर्थ धन के कारण ही माने जाते हैं। अतः कल्याणार्थियों को दूर से ही धन को छोड़ देना चाहिए।

"**भिद्यन्ते भ्रातरो दाराः पितरः सुहृदस्तथा। एकास्निग्धाः काकिणना सद्यः सर्वेऽरयः कृताः**।भा.11।23।20।" भाई-बन्धु, स्त्री-पुत्र, माता-पिता, सगे-सम्बन्धी सभी धन के कारण परस्पर शत्रु बन जाते हैं। "**अर्थेनाल्पीयसा ह्येते संरब्धा दीप्तमन्यवः। त्यजन्त्याशु स्पृधो घ्नन्ति सहसोत्सृज्य सौहृदम्**।भा.11।23।21।" सगे-सम्बन्धी परिवार थोड़ा सा धन के लिए एक दूसरे को क्रोधवश प्राणघात के लिए सन्नद्ध हो जाते हैं।

"**असतः श्रीमदान्धस्य दारिद्र्यं परमञ्जनम्। आत्मौपम्येन भूतानि दरिद्रः परमीक्षते**।भा.10।10।13।" दुष्ट ऐश्वर्य-मद से अन्धों के लिए दरिद्रता उत्तम अञ्जन है। दरिद्र यह देख सकता है कि और भी प्राणी मेरे ही तुल्य दुःखी है। धनिकों में यह भाव नहीं रहता है।"**नित्यं क्षुत्क्षामदेहस्य दरिद्रस्यान्नकाङ्क्षिणः। इन्द्रियाण्यनुशुष्यन्ति हिंसापि विनिवर्तते**।भा.10।10।16।" सतत बुभुक्षित रहने के

कारण दरिद्र की देह तथा इन्द्रियाँ भी सूख जाती हैं जिससे विषय-भोग की इच्छा दूर हो जाती है तथा हिंसादि दुराचार भी दूर हो जाते हैं।

"**इन्द्रस्त्रिभुवनैश्वर्यमदोल्लङ्घितसत्पथः**।भा.6।7।2।" इन्द्र को त्रिलोकी-ऐश्वर्य पाकर घमण्ड हो गया था। जिससे मर्यादा वे उल्लघंन कर गये। "**को गृध्येत्पण्डितो लक्ष्मीं त्रिविष्टपपतेरपि। ययाहमासुरं भावं नीतोऽद्य विबुधेश्वरः**।भा.6।7।12।" देवराज इन्द्र धनमद से चूर हो गुरु का अपमान किया। जब सचेत हुए तो पश्चाताप करते हैं कौन विवेकी पुरुष स्वर्गीय लक्ष्मी (धन) को चाहेगा जिसके कारण मैं असुर-भाव को प्राप्त किया।"**यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः। ततोऽधनं त्यजन्त्यस्य स्वजनाः दुःख दुःखितम्**।भा.10।88।8।" जिस पर मैं कृपा करता हूँ उसका सब धन धीरे-धीरे छीन लेता हूँ। जब वह निर्धन हो जाता है तब उसके परिवार उस दुःखित को उपक्षा कर छोड़ देते हैं। "**ज्ञात्वा ज्ञातिवधं गर्ह्यमधर्मं राज्यहेतुकम्**।भा.11।16।7।" अर्जुन के मन में चिन्ता हुई थी कि राज्य के लिए परिवारों को मारना अतीव निन्दनीय कर्म है। "**त्वन्माया मोहितोऽनित्या मन्यते सम्पदोऽचलाः**।भा.10।73।10।" आपकी माया-मुग्ध होकर ही लोग अपनी सम्पत्ति तथा अपनी देह को भी अचल तथा नित्य मान लेते हैं। इसीलिए अनेकों पाप भी करते हैं। फलतः नरक भी जाते हैं। हमलोग भी पहले ऐसा ही पाप किया करते थे किन्तु अब राज्यमद दूर हो जाने से भगवान् के चरणों को स्मरण करता हूँ। आज जो भी व्यक्ति निर्धन है उनको समझना चाहिए कि मेरे ऊपर भगवान् की कृपा है। दया के कारण मुझे धनहीन रखा गया है। क्योंकि धन में हजारों दुर्गुण भरे हैं। इसीलिए कल्याणार्थी धन को दूर से दोषी समझ कर छोड़ देते हैं।

"**पश्यामि धनिनां क्लेशं लुब्धानामजितात्मनाम्। भयादलब्ध निन्द्राणां सर्वतोऽभिविशंकिनाम्।।**

राजश्चौरतः शत्रोंः स्वाजनात्पशुपक्षितः। अर्थिभ्यः कालतः स्वस्मान् नित्यं प्राणावद्भयम्।।

शोकमोहभयक्रोधरागक्लैव्यश्रमादयः।" लोभियों को धन की चिन्ता में नींद नहीं आती है। राजा से, चोर से, शत्रु से, परिवार से, पशुपक्षी से, मांगनेवाले से, काल से,अपने द्वारा भी खर्च हो जाने से महान्कष्ट होता है। शोक, मोह, भय, क्रोधादिक अलग सताते रहते हैं। अतः भगवान् उद्धव से कहे हैं कि -"**अकिञ्चनस्य दान्तस्य शान्तस्य समचेतसः।मया सन्तुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः**।भा.11।14।13।" संग्रह परिग्रह से रहित नहीं कुछ चाहनेवाला केवल मेरी प्राप्ति से ही सन्तुष्ट रहनेवाला पुरुष धन्य है। उसकी सारी दिशाएँ आनन्द से भरी हैं। "**परिग्रहो हि दुःखाय यदयत्प्रियतमं नृणाम्। अनन्तं सुखमाप्नोति तद्विद्वान्यस्त्वकिञ्चनः**।भा. 11।9।1।" प्रिय वस्तु का संग्रह दुःख के लिए होता है। जो अकिञ्चन है वही सुखी है और वास्तविक विवेकी है। "**अकिञ्चनानां साधुनां यमाहुः परमांगतिम्**।भा.10।89।17।" अकिञ्चनों के लिए केवल एक भगवान्ही परमगति हैं। "**निषकिञ्चना मय्यनुरक्तचेतसः शान्ता महान्तोऽखिलजीववत्सलाः। कामैरनालब्धधियो जुषन्ति यत् तन्नैरपेक्षयं न विदुः सुखं मम**।भा.11।14।17।" शंग्रह परिग्रह से रहित मुझ में अनुरक्त रहनेवाला शान्त, महान्, हृदयवाला - समस्त जीवों के प्रति दया रखनेवाला, कामवासनादि से रहित निरपेक्ष भाव से रहनेवाला व्यक्ति के समान दूसरा कोई सुखी नहीं है। "**अकिञ्चनानां हि धनं शिलोञ्छनं**।भा.6।7।36।" अकिञ्चनों के लिए कटे खेत से चुन-बीन कर खाना ही परम सन्तोषप्रद जीविका निर्वाहार्थ साधन है। इसी में वे सन्तुष्ट रहते है। "**रजसा घोर सङ्कल्पाः कामुका अहिमन्यवः।दाम्भिका मानिनः पापा विहसन्त्यच्युतप्रियान्**।भा.11।5।7।" रजोगुणियों का संकल्प भी घोर ही होता है। काम की तो सीमा ही नहीं होती। उनका क्रोध साँप की तरह भयंकर होता है। अल्प कारणवश भी सगेपरिवारों ने महान् वैर हो जाता है।जैसे कंस ने उग्रसेन का, रावण ने विभीषण का, दुर्योधन ने पाण्डवों का और हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद का अनिष्ट चाहा। धनमद क्रोध के रूप में जीवों में प्रविष्ट होकर परिवारों तक को भी दुःख देता है। दुर्योधन द्रौपदी को नंगा करना चाहा, पाण्डवों को जलाना चाहा याने सारे महाभारत की जड़ में धन-मद का ही ताण्डव नृत्य हुआ है। इसी कारण भगवान् इससे दूर रहने का ज्ञान प्रदान करते हैं तथा धन का नाश भी करते हैं। अतः,"**असतः श्रीमदान्धस्य द्रारिद्रयं परमञ्जनम्**।भा.10।10।13।" धन-मद से

अन्धों के लिए दरिद्रता परम अञ्जन है और तभी ही - "**आत्मौपम्येन भूतानि दरिद्रः परमीक्षते।**" दरिद्र अपना दुःख निवारण में सतत लगा रहता है इसीलिए दूसरों को भी दुःख देना नहीं चाहता है। दरिद्र जीविका निर्वाहार्थ अन्न संग्रह में ही रहता है, हिंसा भी करने का उसे अवकाश ही नहीं मिलता है। यह भगवान्की कृपा है कि हिंसादि से बचा देते हैं। कहा है कि -"**हिंसा पर अति प्रीत तिनकी पाप की कौन मिति।।**" हिंसा सबसे बड़ा पाप है, उससे बचा रहना ही पुण्य है। "**राज्यस्य भूमेर्वित्तस्य स्त्रियोमानस्यतेजसः।।मानिनोऽन्यस्य वा हेतोः श्रीमदान्धाः क्षिपन्तीहि**।भा.10।54।41।" राज्य, भूमि, सम्पत्ति, स्त्री, मानादि के लिए धन-मद से मदान्ध व्यक्ति हिंसादि किया करता है। इसीलिए भगवान् ने कहा है कि -'**यस्याहमनु गृह्णामि... इत्यादि**।' शरीर सम्पत्ति से भी मनुष्य मान पाता है, यह सम्पत्ति जब नष्ट हो जाती है तब परिवार तक भी छोड़ देता है। इसतरह धन-बल, शरीर-बल, परिवार-बल आदि के नाश हो जाने पर दीनावस्था में ईश्वर की याद आती है, ईश्वर प्रिय लगते हैं। जब जीव को परमात्मा प्रिय लगने लगते हैं तब जीव भी परमात्मा का प्रिय हो जाता है। इसी अवस्था में दीनबन्धु भगवान् "**दीनबन्धु दीन ही के नाते भली-भाँति अपनाते हैं।**' अपना लेते हैं, यही कल्याण हुआ। इसीलिए दरिद्रता उत्तम वस्तु है।

एक दूसरा पक्ष यह भी है कि -"**पापाद्दरिद्रं पुनरेव पापी।**" मनुष्य पाप द्वारा भी दरिद्र या धनी होता है तथा पुण्य द्वारा भी दरिद्र या धनी होता है। रामराज्य में श्वान के कहने पर यति को मठाधीश बनाया गया था। "**श्वान कहे ते कियो पुर बाहर यति गयन्द चढ़ाई। सियनिन्दक मतिमन्द प्रजा को निजनय नगर बसाई**।वि.पत्रिका 165।" जय विजय को हिरण्यकशिपु ऐसा राजा बनाना पाप से धनी का उदाहरण है। पाप से दरिद्र होने का उदाहरण प्रायः सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। जो कि दरिद्र होने पर भी दरिद्रता दूरीकरण के लिए पाप ही किया करता है। पुण्य तथा भगवत्कृपा से धनी होने का उदाहरण इक्ष्वाकु, मनु, अम्बरीष, युधिष्ठिर, प्रह्लाद, ध्रुव, दशरथ, जनकादि हैं। पुण्य से दरिद्र होने का उदाहरण विदुर, सुदामा, शुक, नारदादि हैं। इन सबों का परिचय निम्नलिखित लक्षणों से जाना जाता है। धन पाकर राजा वेनु के समान धन-मद में पागल होकर अत्याचार करता है तो धन होना पाप से समझना चाहिए। यदि धन पाकर अम्बरीष के समान भगवान्की सेवा करने वाला हो, भरत के समान तपस्वी तथा भगवदाराधक हो, हरिश्चन्द्र के समान सत्यवादी तथा दाता हो, इक्ष्वाकु के समान परम भागवत हो, मनु के समान भगवत्प्रेमी हो तो पुण्य या भगवत्कृपा से धन होना समझना चाहिए।

पुण्य तथा भगवत्कृपा से दरिद्र विदुर जी थे। ये भगवद्भक्त थे। भगवान्ने स्वयं इनसे मांगकर भोजन किया था। सुदामा दरिद्रतावश कृष्ण के यहाँ स्त्री द्वारा भेजे गये। इनकी दरिद्रता का वहाँ स्वागत हुआ। ये भगवान् से कुछ माँग नहीं सके। ऐसे धनी या दरिद्र भगवान्की दया से होते हैं। जिसका धन अपहृत हो गया है, जो परम दरिद्र है अपनी दरिद्रता के दुःख से भगवान् को सर्वदा याद करता रहता है वह पुण्य से दरिद्र हुआ है। यही अवस्था अच्छी है जिसमें भगवान् याद होते रहते हैं। जिस समय अश्वत्थामा उत्तरा के गर्भ को काट कर गिरा देना चाहता था उस समय उत्तरा ने भगवान् को पुकारा और गर्भ को भगवान्को अर्पण कर दिया। भगवान् कृष्ण उस समय आये। कुन्ती ने उसी समय प्रार्थना की है -"**विपदः सन्तु नः शश्वत् तत्र तत्र जगद्गुरो।भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्**।भा.1।8।25।" हे भगवान्! हम पर सदैव विपत्तियाँ आती रहे क्योंकि जब-जब विपत्ति आती है तब-तब आपका दर्शन होता है। दीनावस्था भी वही अच्छी है जो पुण्य से प्राप्त होती है जिसमें सतत् भगवान्ही का स्मरण होता रहता है। सुख की अवस्था में भी भगवान् का स्मरण होता है किन्तु ज्ञानियों को होता है। ज्ञान तो और दुर्लभ तथा अप्राप्य है। दीनावस्था में भगवान्का स्मरण सुलभ है। ज्ञानीलोग भगवान्के विस्मरण को ही विपत्ति बतलाते हैं - "**कह हनुमान विपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई**।सु.31।2।"

दुःख की अवस्था में प्रायः भगवान्का स्मरण होता है जिससे कल्याण होता है। अतः दरिद्रतावस्था उत्तम है।धन में अनेकों दूषण है। अतः धनीवस्था में परमात्मा को भूल जाना प्रायः निश्चित-सा है। अतः वह निन्दनीय और उपेक्षणीय है जो

दरिद्रावस्था पाकर भी पापात्मा परमात्मा को याद नहीं करता, अहंकार नहीं छोड़ता, बल्कि -"**तालछदकृत कुब्जकुटीरः प्रतिगृह सन्ध्याकवलाहारः। विविध पटच्चर भारक्रूरस्सोपि विधातृवशाहंकारः।**" घर-घर में मांगकर केवल खाकर कुत्ते के समान जीनेवाला तालपत्रों से आच्छादित झोपड़ी में रहते हुए भी करोड़ो ब्रह्मा के समान अहंकार करने वाला है तो समझना चाहिए कि यह पापात्मा पूर्वजन्म कृत क्रूर दुष्कर्म का फल भोग रहा है। भगवान् की दया से जो दरिद्र होता है वही भगवान्में प्रेम करता है और भगवान्उसमें प्रेम करते हैं जिससे उसका कल्याण हो जाता है। भागवत में कदर्य नामक व्यक्ति की कथा है। कदर्य के पास जब तक धन था तब तक वह सब सगेपरिवारों का शत्रु बनकर रहा और जब उसके धन छनि-लूट लिये गये तब वह पक्का साधु बना फिर उसकी कन्था, आसा, तुम्बा आदिक छीनकर देहपर लड़के सब थूकें और धूरी फेकें तथा ईट पत्थर से उसे मारते थे तथा बकध्यानी कहकर अपमान करते थे फिर भी उसने यों कहा कि -"**नायं जनो मे सुखदुःखहेतुर्नदेवतात्मा ग्रहकर्मकालाः। मनः परं कारणमामनन्ति संसार चक्रं परिवर्तयेद्यत्।भा.11।23।43।**" खोई पुरुष हमको सुख या दुःख देने वाले नहीं है तथा देह-आत्मा या ग्रह-कर्म या कालादि कोई भी नहीं है, इस संसार-चक्र में घूमने वाला अपना मन ही परम कारण है, अन्य कुछ भी नहीं है। ऐसा ज्ञान धन अपहरण होने पर हुआ था। ऐसे अनेक इतिहास हैं। कौन नहीं जानता है कि दुर्योधन ने धन के लिए पाण्डवों के साथ कौन-कौन अत्याचार नहीं किया, जिसके कारण अपने आप तथा कुल-परिवार, सगे-सम्वन्धी सबों के साथ देशमात्र का नाश किया था। यदि वह धन विष नहीं होता तो किसी का नाश नहीं होता।

।।श्रीमते रामानुजाय नमः।।

निगमन पड़ि ग्रन्थारम्भः

श्रीमत्कृष्ण समाह्वाय नमो यामुनसूनवे।
यत्कटाक्षेक लक्ष्याणां सुलभश्श्रीधरस्सदा।।

मूलमन्त्रः

श्रीमदष्टाक्षरस्य त्रीणि पदानि सन्ति।कानि कानि इत्यत आह ? ॐ इत्येकम्, नमः इत्येकम्, नारायणाय इत्येकम्। एतेषां **प्रथमं पदं** एकाक्षरं प्रणवं, तस्य त्रीणि पदानि सन्ति, **अकार, उकार, मकार** इति। एवं त्रिपदात्कं त्र्यक्षरात्मकं प्रथमं प्रणवं पदम्। **द्वितीयं नमः** - न इति म इति। द्विविधं नमः इति पदं द्वयक्षरात्मकं द्विपदात्कम्। **तृतीयं नारायणाय** पदं तस्य पञ्चाक्षराणि। नारपदमयन पदाभ्यां युक्तमेतदनन्तरं चतुर्थी विभक्तिर्भवति। ततश्चायमर्थः। नारायणः सर्वकारणं सर्वरक्षकः समस्त कल्याण गुणात्मकः सर्व शेषी श्रियःपति एव अकारार्थः। समस्त कल्याण गुणात्मकः सर्वशेषी श्रियःपति एव अकारार्थः। आत्मनः ज्ञानानन्दत्वं ज्ञानगुणकत्वं नित्यत्वं, अणुत्वं, एकरूपत्वं, स्वस्मै स्वयं प्रकाशत्वं प्रकृतेः परत्वमिति एवं मकारार्थः। स्वाहंकार ममकार निवृत्तिः निवर्त्यमान स्वरूप अत्यन्त पारतन्त्र्यं पराकाष्ठा तदीय शेषत्वं परतन्त्रत्वानुरूपमुपायत्वमेवं नमः शब्दार्थः। चेतनाचेतनानां नित्यत्वमेतेषां समूहत्वं समूहासंख्या तत्वमेवं नार शब्दार्थः। ईश्वरस्य धारकत्वं व्यापकत्वं नियन्तृत्वं सर्वविध बन्धुत्वं प्राप्यत्वं सकल जगत् कारण त्वमेव अयन शब्दार्थः।नित्य कैङ्कर्य प्रार्थना आप शब्दार्थः। ईश्वरं त्यक्त वा रक्षकान्तरं ज्ञानविचारवतः हृदि अकारार्थो न लग्नः। श्वस्वातन्त्र्यमस्ति चेच्चतुर्थ्यर्थो ह्यद्गतो न भवति। अन्यशेषत्वं कुर्वतः उकारार्थो हृदि न लग्नः। देहात्म बुद्धेर्मकारार्थो हृदि न लग्नः। स्वातन्त्र्यं स्वरक्षणे स्वान्वयम् श्रीवैष्णवे समबुद्धिमुपायान्तरज्ञानविचारवतो नमः शब्दार्थो हृदि न लग्नः। ईश्वरशरीरभूत चेतनाचेतनेषु रागद्वेषविचारवतो नार शब्दार्थो हृदि न लग्नः। अवन्धुषु बन्धुत्वं प्रतिपत्तिमतो हृदि अयन शब्दार्थो न लग्नः। अभोग्ये शब्दादि विषये भोग्यता बुद्धिमतो हृदि आय शब्दार्थो न लग्नः। अकारः स्वरूपतो पिता पुत्रं सम्बन्धं वदति। अवरक्षणे इत्यनेन धातोः रक्ष्य-रक्षक सम्बन्धम् वदति। लुप्त चतुर्थी शेष शेषी सम्बन्धं बदति। उकारो भतृर्भार्या

सम्बन्धं वदति। मकारोज्ञातृज्ञेय सम्बन्धं वदति। नमः स्व स्वामिभाव सम्बन्धं वदति। नार पदं शरीर शरीरी सम्बन्धं वदति। अयन पदं आधाराधेय सम्बन्धं वदति।आय पदं भोक्तृभोग्य सम्बन्धं वदति।एवं श्रीमदष्टाक्षरे नवविधसम्बन्ध उक्तः। एवं मस्तके अञ्जलिः कर्त्तव्या। श्रीमदष्टाक्षरस्य तात्पर्यार्थः कः? प्रधानार्थः कः? अनुसन्धानार्थ कः? सकलवेदशास्त्ररुचि परिगृहीतोऽयं तात्पर्यार्थं इति। प्राप्यस्वरूप निरूपणम्वाक्यार्थः। आत्मस्वरूप निरूपणं प्रधानार्थः।सम्बन्धानुसन्धानमनुसन्धानार्थो वदति।

द्वय मन्त्रः

द्वयस्य **वाक्यद्वयम्, षटपदानि, दशार्थयुक्तानि।पञ्चविंशाक्षराणि**। तत्र पूर्व वाक्यस्य पञ्चदशाक्षराणि। उत्तर वाक्यस्य दशाक्षराणि। श्रीमन्नारायणचरणौ**1** शरणं**2** प्रपद्ये**3** श्रीमते**4** नारायणाय**5** नमः**6** **इति षट्पदम्**। **श्रीमन्नारायणचरणौ शरणं प्रपद्ये-** इति पञ्चदशाक्षराणि (**15**)। **श्रीमतेनारायणाय नमः -** दशाक्षराणि (**10**) एवम्श्री**1** मत्**2** नारायण**3** चरणौ**4** शरणं**5** प्रपद्ये**6** श्रीमते**7** नारायण**8** आय**9** नमः एतानि पदानि दशार्थ युक्तानि। श्री इत्यनेन भगवतोऽपि प्रत्याख्यानाशक्यां देव्याः पुरुष्कारतां प्रतिपाद्य। **मत्** इति पुरुषकारस्य नित्य योगम्वदति। **नारायण -** इति पदं श्री महालक्ष्मीं समीरितं जीवदोषं श्रुत्वा भगवानेवं वदति मम दासा एवं न कुर्युः कुयुश्चेत् कुर्वन्तु नामेति वदति। **चरणौ** इत्यनेन पूर्वोक्त गुणानां लक्ष्म्याश्च आश्रयणीयं विलक्षण विग्रह योगं प्रतिपाद्य। **शरणामित्यनेन** उक्तविग्रहस्यैव उपायतां प्रतिपाद्य। **श्रीमते** इत्यनेन मिथुनेव प्राप्यम्इत्युक्त्वा। नारायण इत्यनेन भगवदेव सर्वस्वामित्वमुक्त्वा। **आय** इत्यनेन तस्य चरणयोः कर्त्तव्यं वृत्ति विशेषमुक्त्वा। नम इति पदं वृत्ति विरोध्यहंकार ममकारनिवृत्तौ वृत्ति वदति। अथ द्वयस्य तात्पर्यार्थं कः? वाक्यार्थः कः? प्रधानार्थः कः? अनुसन्धानार्थः कः? आचार्यरुचि परिगृहीतं तात्पर्यार्थः। प्रापकस्वरूप निरूपणं वाक्यार्थः। मिथुनकैङ्कर्यप्राधान्यं प्रधानार्थः। स्वदोषानुसन्धानमनुसन्धानार्थः। इति द्वयेनाञ्जलिः कर्त्तव्या। इति द्वयमेतदर्थं प्रतिपाद्य समाप्तं भवति।

चरम मन्त्रः

चरमश्लोकस्यार्द्ध **द्वयमेकादश पदानि, द्वात्रिंशदक्षराणि** सन्ति। सर्वधर्मानित्यादि पदान्याह **-** सर्वधर्मान्**1** परित्यज्य**2** मां**3** एक**4** शरणं**5** व्रज**6** अहं**7** त्वा**8** सर्वपापेभ्यः**9** मोक्षयिष्यामि**10** माशुचः**11** इति एकादश पदानि। **प्रथम पदं** इतरोपापं वदति। **द्वितीयम्** उपायान्तर निवृत्ति वदति। मामितिपदेन समीचीनमुक्त्वा। एकमिति पदेन उपाय नैरपेक्ष्यमुक्त्वा। शरणमिति पदेन उपायनां प्रतिपाद्य। व्रज इति पदेन उपाय स्वीकारं प्रतिपाद्य। अहमिति पदेन सर्वशक्ति त्वमुक्त्वा। त्वा इत्यनेन उपाय स्वीकर्तुरधिकारणः स्वरूपं प्रतिपाद्य। सर्वपापेभ्यः इत्यनेन प्राप्य प्रतिबन्धकानुक्त्वा। मोक्षयिष्यामि इत्यनेन प्राप्य प्रतिबन्धक निवृत्तिमुक्त्वा। मा शुचः **-** इत्यनेन निर्भरत्वानुसन्धानमुक्त्वा अञ्जलिः कर्त्तव्या। अस्य तात्पर्यार्थः कः? वाक्यार्थः कः? प्रधानार्थः कः? अनुसन्धानार्थः कः? इत्याह **-** शरण्य रुचि परिगृहीतं तात्पर्यार्थः। प्रापकस्वरूप निरूपणं वाक्यार्थः। ईश्वर स्वरूप निरूपणं प्रधानार्थः। निर्भरत्वानुसन्धानमनुसन्धानार्थः। चरमश्लोकाय मस्तके अञ्जलिः कर्त्तव्या ।।**इति** ।।

।।श्रीमते रामानुजाय नमः ।।
।।ॐ नमो वेङ्कटेशाय।।



एक नारायण ही उपास्य क्यों ?

नारायणः परं ब्रह्म तत्वं नारायणः परः।
नारायणः परोज्योतिरात्मा नारायणः परः।।

संकलयिता
आचार्य पीठाधीश्वर श्रोत्रियप्रवर
अनन्तश्री स्वामी पराङ्कुशाचार्य जी महाराज

द्वितीय संस्करण शरत्पूर्णिमा रामानुजाब्द **971** संवत् **2044** **7** अक्टूबर **1987**

श्रीलक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः

प्रश्न – एक नारायण ही उपास्य क्यों?

समाधान- (1) वेद और धर्मशास्त्र ये दोनों भगवान्‌की आज्ञा हैं। इनके वचन का पालन करना भगवान्‌के वचन का पालन करना है। अतएव भगवान्‌ने कहा है कि सत्‌शास्त्रों के वचन का पालन नहीं करता है वह मेरा भक्त नहीं है और न उसे वैष्णव ही समझता हूँ बल्कि उसे मैं अपना द्रोही समझता हूँ।

"श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे यस्तामुल्लङ्घ्य वर्तते। आज्ञाच्छेदी ममद्रोही न भक्ताः न च वैष्णवाः।।" मानव कल्याण के लिए प्रभु की आज्ञा है कि

(क)**"मन्मनाभव मद्भक्तो मद्याजी माम्नमस्कुरू। मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः। गी. 9। 34।"**

(ख) **"अनन्याश्चिन्तयन्तो माम् ये जनाः पर्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्। गी. 9। 22।"**

(ग)**"अनन्येनैवयोगेन मां ध्यायन्त उपासते। तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्। गी. 12। 6 एवं 7।"**

(क)जो व्यक्तिआत्मकल्याण चाहता है वह मुझमें मन लगावे, मेरा भजन, यजन, नमस्कार करे, ऐसा करने से वह मुझे अवश्य प्राप्त करेगा। (ख) जो व्यक्ति अनन्यभाव से (देवतान्तरों को त्याग कर)एकमात्र मेरी ही उपासना करते हैं उन्हें आवश्यकता समझकर अप्राप्त वस्तु को प्राप्त करा देता हूँ और जो वस्तु उनके पास संग्रहीत रहती है उसकी रक्षा करता हूँ। (ग) जो मानव समस्त कर्मो को मुझ पर छोड़कर अनन्यभाव से मेरी उपासना करते हैं उन्हें शीघ्र संसार सागर से पार कर देता हूँ।

ऊपर के दो श्लोकों में उपासकों के लिए अनन्य शब्द का व्यवहार किया गया है जिसका अभिप्राय है कि नारायण की उपासना छोड़कर अन्यदेवों की उपासना नहीं करनी चाहिए। इसलिए नारदीय भक्तिसूत्र में स्पष्ट कहा है कि – **"अन्याश्रयाणां त्यागेऽनन्यता। सूत्र.10।" "तस्मिन्ननन्यता तद्विरोधिषूदासीनता च। सूत्र.11।"** अर्थात् भगवान्‌को छोड़कर अन्य आश्रयों का त्याग कर देना ही अनन्यता है। प्रभु में अनन्यता तथा संसार में बन्धनप्रद देवतान्तर की उपासना से उदासीनता होनी चाहिए।

(2) त्रिगुणात्मक सृष्टि में रहकर भगवान्‌की माया को पार करना विशेष कठिन है। एक ही उपाय है जिससे मानव माया से ऊपर उठ स्कता है। वह है भगवान् श्रीनारायण की शरणागति। अतएव भगवति गीता कहती है कि – **"दैवी हि एषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते। गी. 7। 14।"** ऐसे नारायण की शरणागति करने वाले भक्तों का पतन किसी भी परिस्थिति में नहीं होता है। **"न मे भक्तः प्रणश्यति। गी. 9। 31।"** भगवान्‌कहते हैं कि मेरे भक्तों का विनाश नहीं होता है। माया बन्धन से मुक्ति के लिए एक नारायण ही उपास्य हैं।

(3)जगत्‌के अन्दर जीव कर्मानुसार चौरासी लाख प्रकार के शरीरों में भ्रमण करते हुए कष्ट भोगता है। मानवेतर शरीर कर्मफल भोगने के लिए कर्मानुसार मिलता है। परन्तु मानव शरीर नारायण की निर्हेतुकी कृपा से मिला है जो उत्तम कर्म करने के लिए तथा शरणागति द्वारा भगवान् की प्राप्ति के लिए है। इसी को शास्त्रकारों ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि – **"विचित्रा देह सम्पत्तिरीश्वराय निवेदितुम्। पूर्वमेव कृता ब्रह्मन्हस्तपादादि संयुतम्।।"** मानव शरीर ब्रह्मा ने इसलिए दिया है कि इसे मन, बुद्धि आदि इन्द्रियों सहित नारायण के चरणों में लगा दे।

(4) जड़ चेतन रूप सम्पूर्ण जगत् नारायण का शरीर है और नारायण जगत्‌के शरीरी (आत्मा) हैं। यह सम्पूर्ण जगत् परमात्मा के शरीर होने के कारण उन्हीं के लिए है। "जगदेतत्तवार्पितम्" "तदर्थमेव सकलं जगदेतच्चराचरम्।"

(5) शरण्य तथा वात्सल्यगुण केवल नारायण में ही है। शरण्य का अर्थ होता है शरण में आये का सब प्रकार से रक्षा करना। वात्सल्य का अर्थ है प्रेमातिशय के कारण सब प्रकार के दोष को भूलकर दया दिखाना। जैसे – गाय बच्चे के शरीर पर लगे मलों को प्रेम विभोर होकर चाट जाती है उसे बच्चे के प्रति प्रेमाधिक्य के कारण गन्दी गन्दी चीजों का रस जिह्वा से नहीं मिलता है वैसे

ही भगवान्शरणागत भक्तों के दोष को भूलकर अपनी कृपादृष्टि से उसे मंगलमय बना देते हैं। यह सब वात्सल्यगुण के कारण ही प्रभु करते हैं। यही कारण है कि भक्तों ने नारायण की ही शरणागति को सुलभ एवं श्रेष्ठ बतलाया है - "**व्रजामि शरणं विष्णुं शरणागतवत्सलम्।**" "**सोऽहम्व्रजामि शरणम्**" "**वयं व्रजामः।**"

(6) आत्मा देह, इन्द्रिय, मन, प्राण और बुद्धि इन पाँचों से विलक्षण है। यह परमात्मा का शेष तथा भोग्य वस्तु है। अतः शरीर में आत्मबुद्धि रखने वाला तथा नारायण की उपासना से पृथक कर अन्य भोगों में या अन्य देवों की उपासना में आत्मा को लगा देना उसकी चोरी करनी है। जैसे - दूसरे की वस्तु को बिना उसकी आज्ञा के उपभोग में लाने वाला व्यक्ति अपराधी माना जाता है वैसे ही परमात्मा के भोग्य पदार्थ जीवात्मा को अन्य ओर लगा देने वाला महान् अपराधी माना गया है। उसे आत्मापहारी की संज्ञा दी गयी है। उसे शास्त्रकारों ने कहा है कि वह महान्पापी है। कोई भी पाप उससे अछूता नहीं माना जा सकता। "**अनात्मन्यात्मबुद्धिर्मा स्त्वेवमिति मा मतिः। वि.पु.6।7।11। किन्तेन न कृतेन पापं चौरेणात्मापहारिणा। म.उद्योग प.37।42।**" श्री लोकाचार्य स्वामी ने लिखा है कि मनुष्य को भगवतापचार से बचना चाहिए। अन्य देवताओं के समान ईश्वर का चिन्तन करना, श्री राम, कृष्णादि अवतारों को मनुष्य के रूप में देखना, अपने वर्णाश्रम धर्म के विरुद्ध आचरण करना, अर्चा मूर्ति में पत्थर, पीतल, ताँबा, काष्ठादि वस्तु की दृष्टि रखना, आत्मापहार तथा भगवद्द्रव्य का अपहरण करना ये भगवतापचार माने गये हैं। इनमें आत्मापहार को भगवताचार कहा है। आत्मापहार का अर्थ ही है नारायण की उपासना के अतिरिक्त अन्यदेवों की उपासना करना, अन्य का शेष मानना या अन्य के भोग में लगा देना। इससे भी एक नारायण की उपासना सिद्ध होती है।

(7) समस्त जगत्का उपादान, निमित्त तथा सहकारी कारण नारायण ही हैं। सृष्टि, पालन तथा संहारकर्त्ता भी वे ही माने गये हैं। अतः शास्त्रकारों ने नारायण का ही ध्यान, पूजन करने का आदेश दिया है - "**कारणन्तु ध्येयम्। ब्र.सू. 1।4।14।**"
"**तज्जलानीति शान्त उपासीत।।**"

(8)वेद नारायण को ही परतत्व के रूप में वर्णन करता है। यही कारण है कि महाप्रलय काल में एक नारायण ही शेष रहते हैं। जगत् के अन्दर सर्वान्तर्यामिता एवं व्यापकता नारायण की है बतलायी गयी है - "**नारायणः परब्रह्म् तत्वं नारायणः परः। नारायणः परोज्यातिरात्मा नारायणः परः। ना.सूक्त।**" इससे भी एक नारायण ही उपास्य सिद्ध होते हैं। नारायण के समान एवं उससे अधिक दूसरे कोई देवता नहीं हैं। महाप्रलय काल में सम्पूर्ण जगत् नाम रूप से रहित होकर परमात्मा के पेट में रहता है। इसी भाव को प्रदर्शित करने के लिए वेदव्यास जी ने - "**अत्ताचराचर ग्रहणात्। ब्र. सू.1।2।9।**" इस ब्रह्म सूत्र का निर्माण किया है। "**परास्यशक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च।**" परमात्मा ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, बल आदि गुणों से सम्पन्न हैं। भाव यह है कि जीवों के कल्याण के लिए समस्त दिव्यगुण नारायण में ही है। अतः वे ही मानवों के उपास्य सिद्ध होते हैं।

(9)नारायण की उपासना सभी देवों की उपासना से सुलभ है। कम श्रम में ही केवल स्मरण मात्र से भगवान्नारायण प्रसन्न होकर अपना दिव्य लोक प्रदान कर देते हैं। "**स्मरतः पादकमलमात्मानपि यच्छति।**" जो प्रेम से एक दल तुलसी भगवान्के लिए समर्पित कर देता है भगवान्उसके हाथों बिक जाते हैं। भाव है कि इतने मात्र से प्रभु पूर्ण प्रसन्न हो जाते हैं - "**तुलसीदलमात्रेण विक्रीणीते स्वयं हरिः।** गौतमिय तन्त्र - हरि भक्ति विलास - **तुलसीदलमात्रेण जलस्य चुलुकेन वा विक्रीणीते स्वयमात्मनं भक्तेभ्यो भक्तवत्सल ः।**" भगवान् कृष्ण ने सुदामा से कहा है कि "**जानत सुदामा भाई हमरो सुभाउ तुम एक दल तुलसी में जाउँ मैं बिकाउ हो।** मित्र सुदामा कृष्ण।" इसी भाव को स्पष्ट करते हुए श्री यामुनाचार्य ने लिखा है कि "**त्वदङ्घ्रिमुद्दिश्य कदापि केनचित्यथा तथा वाऽपि सकृत कृतोञ्जलिः। तदेव मुष्णात्यशुभान्यशेषतः शुभानि पुष्णाति न जातु हीयते। स्तो. रत्न 28।**" जो मानव जिस किसी प्रकार से जब कभी भगवान्के चरणों को उद्देश्य कर कुछ समर्पित कर देता है तो भगवान् उसके समस्त अमंगलों को दूर कर मंगलमय बना देते हैं। प्रह्लाद ने दैत्यपुत्रों को निर्देश कर भगवान्की प्रसन्नता में परिश्रम नहीं पड़ता ऐसा कहा है - "**न हि अच्युतं प्रीणयतो बह्वायासोऽसुरात्मजाः। भा. 7।6।19।**"

(10)"**अधिकं मेनिरे विष्णुम्**।बा. रा. बाल. 75।20।" देवताओं के मन में यह प्रश्न हुआ कि रुद्र तथा विष्णु में अधिक सामर्थ्यवान् कौन है। लोगों ने दोनों का लड़ा दिया। विष्णु के बाण से रुद्र जड़वत् हो गये। देवताओं ने विष्णु को बढ़कर माना।

(11) "**वेदे रामायणे चैव भारते भरतर्षभ। आदौ चान्ते च मध्ये च हरिःसर्वत्र गीयते**।महाभा.माहात्म्य।" आजतक धरातल के कुशाग्र बुद्धि परम मेधावी सन्तों एवं विद्वानों ने समस्त वेदों, रामायण, महाभारतादि समस्त शास्त्रों के आदि, मध्य तथा अन्त में नारायण का ही आलोड़न किया है। उन्होंने ने एक नारायण का ही वर्णन सर्वत्र किया। इन ग्रन्थों में अन्य देवों का कहीं वर्णन भी किया गया है तो गौण रूप में तथा यत्किञ्चित्। अगर अन्य देव उपास्य होते तो वेदादि शास्त्रों में उनका प्रधानरूप से वर्णन किया गया होता। परन्तु ऐसा न होने से यह सिद्ध होता है कि एक नारायण ही उपास्य हैं।

(12) ईश्वरों के ईश्वर, देवताओं के देवता नारायण ही हैं। अतएव, "**तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमञ्च दैवतम्**।" "**देवदेवो हरिः पिता**।वि.पु.1।9।126।" "**देवदेवो जनार्दनः**।वि.पु.1।9।142 तथा भा. 3।7।20।" ऐसे सहस्रों प्रमाण से सिद्ध होता है कि भगवान्नारायण ही सबों में महान् हैं। अतः उनकी उपासना ही मानव के लिए कल्याण कारक है।

(13) एक नारायण ही ऐसे देव हैं जिनके चरणकमल से निकली हुई गंगा असंख्यों का कल्याण करती आ रही है। शंकर जैसे देव को भी शिव बनाने का श्रेय गंगा जी का ही रहा है। दूसरे कोई देवता नहीं है जिनके चरणकमल से कोई नदी निकल कर विश्व का कल्याण कर रही हो। आज भी शालग्राम या भगवान् की मूर्ति को स्नान कराकर चरणोदक प्रायः सभी मानव अपने कल्याण की भावना से ग्रहण करते हैं। जो चरणोदक अकालमृत्यु का हरण करने वाला, सभी व्याधियों को दूर करने वाला तथा मोक्ष प्रदान करने वाला है। "**यत्शौच निःसृतसरित्प्रवरोदकेन तीर्थेन मूर्धन्यधिकृतेन शिवः शिवोऽभूत्**।भा. 3।28।22।" "**अकालमृत्युहरणं सर्व व्याधिविनाशनम्। विष्णोः पादोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते**।।"

(14)बाण-शय्या पर पड़े भीष्म पितामह ने भगवान् के नाम का महत्व बताते हुए कहा कि - "**पवित्राणां पवित्रं यो मंगलानाञ्च मंगलम्**।श्रीविष्णुसहस्रनाम।" अर्थात् नारायण का नाम पवित्रों को भी पवित्र तथा मंगलों का भी मंगल करने वाला है। जिस भगवान्के नाम का इतना बड़ा महत्व है, उन्हें सर्वोपास्य होना अस्वाभाविक नहीं। इसीलिए जैसे प्रजायें राजा को बलि देती हैं वैसे ही सभी देवगण नारायण को बलि देते हैं।

(15) मन्त्रोच्चारण में त्रुटि होने से, वस्तु संयोजन में कमी होने से, देश-काल में न्यूनता होने में केवल भगवान् का नाम सबका पूरक होता है। यानी सबों की कमी होने पर भी फल में कमी नहीं होती है, केवल अन्त में भगवन्नामोच्चारण कर देना चाहिए। "**मंत्रतः तंत्रतछिद्रं देशकालार्हवस्तुतः। सर्वं करोति निश्छिद्रं नाम संकीर्तनं तव**।। अजामिल जैसे पापी एक बार नारायण नामोच्चारण मात्र से मुक्त हो गया था।

(16) भगवान्ने इस धरातल पर अपने आयुध चक्रादि के द्वारा जिनका वध किया वे सब मोक्ष के भाजन हुए। नारायण ही एक ऐसे देव हैं जिनके आयुध के संयोग से जीव का सांसारिक दुःख सदा के लिए छूट जाता है। उस भगवान्का आयुध प्रेमपूर्वक शास्त्रविधि से धारण करे या क्रोधावेष में प्रभु के द्वारा आयुध से आहत हो जाये, ये दोनों परिस्थितियों में जीव मुक्ति प्राप्त करता है। शिशुपालादि के प्रति हुआ क्रोध भी उसके लिए कल्याणकारक हुआ। अतएव शास्त्रवचन है कि - "**क्रोधोऽपि ते अनुग्रह एष सम्मतः**।।" नारायण के अतिरिक्त कोई दूसरे देव ऐसे नहीं हैं जिनके आयुध के संयोग से जीव सदा के लिए सांसारिक बन्धन से छुटकारा पा ले। अतः नारायण की उपासना ही सर्वतोभावेन जीव के लिए हितकारिणी है। इसी प्रकार निम्नोक्त वचन भी पूर्व कथित विषय को ही स्पष्ट करता है। "**ये ये हताश्चक्रधरेण राजन् त्रैलोक्यनाथेन जनार्दनेन। ते ते नराः विष्णुपुरं प्रयाताः क्रोधोऽपि देवस्य वरेण तुल्यम्**।।"

(17) प्रायः सभी धर्मावलम्बी मृतात्मा के उद्धार निमित्त श्राद्धादि क्रिया अवश्य किया करते हैं। श्राद्ध में पितरों के निमित्त

पिण्डदान, हवन, ब्राम्हण भोजन का शास्त्रोक्त विधान है। पिण्डदान के पश्चात्- "अनादिनिधनो देवः शंखचक्रगदाधरः। अक्षय्यः पुण्डरीकाक्षः प्रेतमोक्षप्रदोभव।।" इस मन्त्र से पयोधारा की क्रिया पूरी की जाती है। प्रेतत्व से मुक्त्यर्थ भगवान्पुण्डरीकाक्ष का स्मरण करना आवश्यक है - यह उक्त का अभिप्राय है। इसी प्रकार "अन्नहीनं क्रियाहीनं वस्तुहीनं च यद्भवेत्। तत्सर्वमच्छिद्रमस्तु हरेर्नामानुवर्तनात्।।" इस विधि से भी यही सिद्ध होता है कि प्रेतों के उद्धारार्थ नारायण का नाम लेवे। किसी देव के उपासक क्यों न हों प्रेत की मुक्ति के लिए उपर्युक्त मन्त्र से ही तर्पण तथा प्रार्थना करते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि जीव के कल्याण के लिए एकमात्र नारायण ही उपाय हैं।

(**18**) एक नारायण ही ऐसे देव हैं जिनके निमित्त कुछ भी स्वीकृत कर दिया जाता है। भगवान् करने वाले के किसी प्रकार के अपराध को स्मरण नहीं करते हैं। दूसरा कोई ऐसा देव नहीं जो इस तरह से अपराधों को भूलकर अपने शरण में लगाता है। <u>अतएव भगवान्का एक नाम अविज्ञाता भी आता है, जिसका भाव है शरण में आये हुए के अपराध को याद न रखना</u>।

(**19**) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों प्रकार के फलों को देने की सामर्थ्य एक श्री नारायण में ही है। इसीलिए श्रीमद्भागवत्स्कन्ध **2** अध्याय **3** में अन्य देवों में सांसारिक एक-एक फल देने की शक्ति बतलाकर कहा गया है कि चारों प्रकार की फल की चाह हो, केवल मुक्ति की चाह हो या निष्काम हो सबों का कर्त्तव्य है कि भगवान्श्रीमन्नारायण की पूजा करें- "**अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः। तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्।भा. 2।3।10।**" निम्नलिखित वचन भी इसी भाव को व्यक्त करता है - "**धर्मार्थकाममोक्षाख्यं य इच्छेच्छ्रियमात्मनः। एक एव हरेस्तत्र कारणं पादसेवनम्।।**"

(**20**) किसी भी कर्म के सम्पादन से पूर्व संकल्प अनिवार्य होता है। उस संकल्प के आरम्भ में "**ॐ विष्णुः विष्णुः नमः परमात्मने**" ऐसा अवश्य लगाया जाता है। ऐसा लगाये बिना संकल्प अधूरा माना जाता है तथा कार्यसिद्धि भी नहीं होती है।

(**21**)समस्त शास्त्रों के आलोड़न से यह निश्चय होता है कि भगवत्प्राप्ति के लिए नारायण की शरणागति छोड़कर दूसरा कोई उपाय नहीं है। "**तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था अयनाय विद्यते।**" गीता के अन्दर भगवान्श्रीकृष्ण ने इसका पूर्ण समर्थन किया है। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि संसार-सागर से पार करने के लिए एक मेरी शरणागति ही उपाय है। "**मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।गी. 7।14।**"

(**22**) श्रीविष्णु पुराण में यमराज तथा उनके दूतों का संवाद मिलता है। यमदूतों ने यमराज से पूछा है कि संसार से किन पापियों को यमलोक में लाना चाहिए, आप उनका चिह्न (लक्षण) बता दें। उसपर यमराज ने अपने दूतों को धीरे से कहा है कि जो वैष्णव है अर्थात्श्री विष्णु की उपासना करते हैं उनके पास तुमलोग मत जाना। क्योंकि उनके स्वामी भगवान्विष्णु हैं। मैं उन्हीं का स्वामी हूँ जो वैष्णव नहीं है और भगवान्की उपासना नहीं करते हैं।**यथा-** "**स्वपुरूषमभिवीक्ष्य पाशहस्तं वदतियमः किल तस्य कर्ण मूले।परिहर भगवतकथासु मत्तान्(मधुसूदनप्रपन्नान्) प्रभुरहमन्यनृणामवैष्णवानाम्।विष्णु पु.3।7।14।**"

(**23**) भगवान्की उपासना करने वाला भक्त प्रभु पर दृढ़ विश्वस्त होने के कारण किसी से भयभीत नहीं होता है। कारण है कि भगवद्भक्तों की हानि करने की सामर्थ्य किसी दूसरे देवता में नहीं है। अतएव श्रीमद्भागवत के प्रसंग में किसी भक्त ने कहा है कि - "**नाहं विशंके सुरराजवज्रान्न त्रयक्षशूलान् न यमस्य दण्डात्। न अग्नि अर्क सोम अनिल वित्तप अस्त्रात्शंके भृशं ब्रह्मविदोऽवमानात्।भा. 5।10।17।**"अर्थात् देवराज इन्द्र के वज्र, शिव के त्रिशूल, यम का दण्ड, अग्नि, सूर्य, चन्द्र, वायु, कुवेरादिकों का भय मुझे नहीं है परन्तु ज्ञानी हरिभक्त से शंकित रहता हूँ कि कहीं हरिभक्तों का अपराध न हो जाये। इस तरह अपने भक्तों को निर्मल बनाने के कारण श्रीहरि ही उपास्य हैं।

(**24**)" ॐविष्णुः ...।" संकल्प बिना कर्म की सिद्धि नहीं होती और भगवान् के नामोच्चारण किये संकल्प नहीं होता। अतः संकल्पार्थ होने से।

(25)"**नान्यः पन्था अयनाय विद्यते। पु. सू.।**" मोक्ष अर्थात्भगवत्प्राप्ति के लिए भगवान्को छोड़कर दूसरा मार्ग नहीं है।

(26)"**प्रभुरहमन्यनराणां न वैष्णवानाम्। वि. पु. 3।7।14।**" यमराज ने अपने दूतों से कहा कि मैं वैष्णवों का नियन्ता नहीं हूँ। इस तरह यम भय से निवर्तक होने से।

(27)"**आनन्द ब्रह्मणो विद्वान्न विभेति कुतश्चन्।।**" भगवद्भक्त किसी से नहीं डरते हैं।

(28) ज्ञानी लोग शीघ्र ही सभी वस्तुओं को भगवान्में समर्पण करके भगवत्पद को प्राप्त कर लेते हैं। जैसे राजा खटवांग ने भगवान्में मन लगाकर दो घड़ी में ही मुक्तिप्राप्त कर लिया था। इससे सिद्ध है कि भगवान्शीघ्र प्रसन्न होकर मुक्ति प्रदान करते हैं। इस दृष्टि से भी भगवान्ही उपास्य सिद्ध होते हैं। इसी भाव का समर्थन निम्नलिखित पंक्ति से होता है। "**क्षणेन मर्त्येन कृतं मनस्विनः। संन्यस्य संयान्त्यभयं हरेः पदम्। भा. 5।19।23।**"

(29) समस्त जीवों को गर्भ में रक्षा भगवान्ही करते हैं। उस समय किसी दूसरे देवता से हमारी रक्षा नहीं होती है। अतएव भागवत का वचन है कि "**स रक्षिता रक्षति यो हि गर्भे। भा. 7।2।38।**" अब विचार करें कि ऐसे भगवान्को छोड़कर कौन उपास्य हो सकता है।

(30) "**अखिलकारक शक्तिधरः। भा.10।87।28।**" सभी प्रकार की शक्तियों के धारक होने से। कर्त्ता, कर्मादि सभी कारक वही हैं।

(31) "**सर्ववाच्यवाचकतया भगवान् ब्रह्मरूपधृक्।**" सर्व शब्द मात्र के वाच्य तथा वाचक नारायण के होने से।

(32) "**एकेन विज्ञानेन सर्व विज्ञातं भवति।**" केवल एक नारायण का ज्ञान होने से वस्तु मात्र का ज्ञान हो जाने के कारण से।

(33) "**यस्य प्रसन्नो भगवान्गुणैः मैत्र्यादिभिः हरिः। तस्मै नमन्ति भूतानि निम्नम्आपः इव स्वयम्। भा. 4।9। 47।**" जिस पर भगवान्की प्रसन्नता होती है सभी देवता लोग उसके सामने झुकते हैं।

(34)" **न मय्यावेसितधिया काम कामाय कल्पते। भर्जिता क्वथिता धाना प्रायो बीजाय नेष्यते।।**" भगवान्में मन लगाने वाले संसार में लौटकर पुनः नहीं आते। जैसे भूने या उवाल हुए धान से अंकुर नहीं निकलते हैं।

(35) ब्राह्मण के एकमात्र देवता नारायण हैं - "**ब्राह्मणस्य परं दैवं ब्राह्मणः किल ते प्रभो। विप्राणां देवदेवानाम्भगवानात्मदैवतम्।**" "**ब्रह्मण्यो देवकी पुत्रः।**" मुनिलोग कहते हैं कि ब्राह्मण के देव नारायण हैं और नारायण के ही ब्राह्मण हैं। ब्राह्मणों एवं देवताओं के देव तथा आत्मा नारायण हैं।

(36) "**ममाप्यखिललोकानां गुरुर्नारायणो गुरुः।**" ब्रह्मा कहते हैं कि मेरे और अखिल लोकों केगुरुओं के गुरु नारायण हैं। इस तरह सब का गुरु होने से।

(37) "**अन्तर्बहिश्च तत्सर्व व्याप्य नारायणः स्थितः। ना. सू.।**" "**यः सर्वज्ञः सर्ववित्।**" सवों के भीतर तथा बाहर नारायण की व्यापकता है।

(38) "**ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्य तेजांस्यशेषतः। भगवत्शब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः। वि.पु.6।5।79।**" प्रकृतगुण रहित भगवत्शव्द वाच्य होने से। ऐश्वर्य, वीर्य, तेज, ज्ञान, शक्ति, वल ये सभी भगवान्में ही रहते हैं। '**मैत्रेये भगवत्शब्दः वासुदेवे न अन्यगः। वि.पु.6।5।76।**" भगवत्शब्द वाच्य एक नारायण ही हैं।

(39) "**शतं वयसि कैशोरे भृत्यानुग्रह कातरम्। भा.3।28।17।**" भक्तके ऊपर अनुग्रह के लिए कातर होने से।

(40) "**यस्याः कटाक्षणमनुक्षणमीश्वराणामैश्वर्यहेतुरिति सार्वजनीनमेतत्।**
तां श्रीरिति त्वदुपसंश्रयणान्निराहुस्त्वाञ्च श्रियः श्रियमुदाहुरुदारवाचः।।" जिस लक्ष्मी के कटाक्ष की कोर से देखने मात्र सेब्रह्मा, रुद्र, इन्द्रादिक ऐश्वर्यवान् होते हैं वह लक्ष्मी भी भगवान्के समीप रहने अथवा चरण कमलों के आश्रित होने से 'श्री' कहलाती हैं।

(41) आश्रित-दोष-भोग्यत्व गुण होने से नारायण की उपासना श्रेष्ठ है। यथा अम्बरीष के लिए दस अवतार ग्रहण करना, विभीषणकृत ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त स्वयं करना।

(42)"**सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रतिगच्छति।**" जैसे सर्वत्र का जल समुद्र में ही जाता है और वहीं उसकी गति भी है, किन्तु समुद्र में

गिरा हुआ एक बूँद जल शीघ्र ही समुद्र बन जाता है, और अन्यत्र गिरा हुआ व्यर्थ ही सूख जाता है। इसी प्रकार अन्य देवों के प्रति किया हुआ उपचार व्यर्थ हो जाता है। थोड़ा होने से भगवान्तक नहीं पहुँचता और पहुँचता भी है तो बहुत काल के पश्चात्। अतः भगवान् के प्रति किया हुआ थोड़ा सा उपचार भी कल्याण कारक होता है।

(**43**) विश्व के पालन के लिए विष्णु का अवतार होता है और मानव इस लोक में पालन चाहने वाला है।

(**44**) "**आपो नारायणोद्भूता स्नाने वास्यायनं पुनः। तस्मान्नारायणं देवं स्नानकाले स्मरेद्बुधः।।**" स्नान काल में भी नारायण स्मरणीय होने से।

(**45**) "**समाहितमनो भूत्वा ब्राह्मणः सर्वदापि हि। स्मरेन्नारायणो शुद्धो धारयेदम्बरं शुचिः।।**" वस्त्र धारण काल में भी नारायण ही को स्मरण करना चाहिए।

(**46**) "**अपवित्रो पवित्रः वा सर्वावस्थांगतोऽपि वा। यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यान्तरः शुचिः।** पद्म पु. पा. **80।11**।" पवित्रता के लिए स्मरणीय होने से।

(**47**)"**ध्यात्वा नारायणं देवं रविमण्डलमध्यगम्। गायत्र्यार्घ्यं प्रदद्याञ्च जपं कुर्वीत भक्तिवान्।।**" सूर्यार्घ्य देने में भी नारायण का ही ध्यान करना बताया गया हैं।

(**48**) "**ओंकारात्प्रभवावेदा ओंकारप्रभवास्वराः। ओंकारत्प्रभवेत्सर्वं तस्मात्प्रणवमभ्यसेत्।।**" सभी शब्दों का कारण ओंकार भी नारायण का ही नाम है। '**ओमेवाक्षरो मन्त्रस्त्र्याक्षरश्चैव सर्वशः**'

(**49**)"**देवोऽसुर मनुष्यो वा यक्ष गन्धर्व एव च। भजन्मुकुन्दचरणं स्वस्तिवान्स्याद्यथा वयम्।।**
दैतेया यक्ष रक्षांसि स्त्रियः शूद्राः वनौकसः। खगाः मृगाः पापजीवाः सन्ति ह्यच्युततां गताः।।" जीवमात्र का कल्याणकर्ता एक नारायण ही हैं। देव, मनुष्य, दैत्य, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, स्त्री, शूद्र, वनवासी, पशु, पक्षी आदि सभी पापात्मा होने पर भी भगवान्को प्राप्त करते हैं। अतः सबों के लिए अत्यन्त सुलभ होने से।

(**50**)"न तस्य पुनरावृत्तिः।" "यद्गत्वा न निवर्तन्ते।" मुक्ति-पश्चात्जीव संसार में कभी भी नहीं आता है। इस प्रकार सबों की निवृत्ति कारण होने से।

(**51**) "**साकेतं परिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा। वैकुण्ठनाम ग्रहणमशेषाद्य हरं विदुः।।**
गुरुणाञ्च लघूनाञ्च गुरूणि च लघूनि च। प्रायश्चित्तानि पापानां ज्ञात्वोक्तानि महर्षिभिः।।" सभी पापों का प्रायश्चित्त भगवान् का नामोच्चारण से हो जाता है।

(**52**) "**पुंसः स्वार्थपरः स्मृतः।**" "**स्वारथ सर्व जीव कर येहा। उ. 95।1।**" सबों का परम स्वार्थ होने से।

(**53**)"**एकान्त भक्ति गोविन्दे सर्वत्र तदीक्षणम्।**" गोविन्दविषयक एकान्त भक्ति का उपदेश होने से।।

(**54**)"**प्रपन्न पारिजाताय...।**" "**प्रपन्नायाभयं हरिः...।**" "**भक्त कल्पपादप...**" "देव देवतरु सरिस सुभाउ। अयो. **266।4**।"भक्तों को अभिलषित वस्तु देने में कल्पवृक्ष के समान होने से।

(**55**) "अतो रसो वै सः। तै.उ.**2।7**।" भगवान्को रस रूप होने से। "**रसं लब्ध्वा आनन्दी भवति**। तै.उ. **2।7**।" "**अतः आनन्दमयोऽभ्यासात्**। ब्र. सू. **1।1।12**।" जीव जबतक भगवान्को प्राप्त नहीं करता है तब तक उसे तृप्ति नहीं होती है, क्योंकि भगवान्स्वयं रसस्वरूप हैं। जब जीव भगवान्को प्राप्त कर लेता है तब ब्रह्मरस पान कर पूर्ण आनन्द में मग्न हो कुछ भी नहीं चाहता है और - "**ईश्वरनियोगात्सृष्टिस्थितिसंहारकर्त्तुं सक्ताः।**" जीव भगवदाज्ञा से इस सृष्टि को उत्पन्न, पालन तथा संहार करनेवाला शक्तिशाली बन जाता है।

(**56**) "**अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः। तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्।** भा. **2।3।10**।" सकाम तथा निष्काम दोनों अवस्थाओं में नारायण की ही उपासना सर्वश्रेष्ठ है।

(**57**)"**महात्मनः तु मां पार्थ दैवी प्रकृतिमाश्रिताः। भजन्ति अनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्।** गी. **9।13**।" भगवान्के अनन्योपासक दैविक

प्रकृति वाले होने से महात्मा समझे जाते हैं। अतः महात्मादि के लिए नारायण की उपासना अनिवार्य है।

(58)"**गोविन्देति यदा क्रन्दत्कृष्णा मां दूरवासिनम्। ऋणं प्रवृद्धमिव मे हृदयन्नापि सर्पति।** उद्योग.प.59।22।" द्रौपदी ने पूछा आप संकुचित क्यों हैं ? तब कृष्ण ने कहा कि वस्त्रापहरण काल में तुम गोविन्द कह कर रोती थी और उसी आर्त्तावस्था में तूने मुझे पुकारा था। उस समय मैंने दुःशासन का सिर नहीं काटा, हाथ भी नहीं काट सका, इस कारण मेरे मन में तुम्हारा ऋण है, उस ऋण की वृद्धि के भार से मुझे लज्जा का अनुभव होता है। इस तरह भगवान्‌को जीवों का ऋणी मान लेने के कारण।

(59) देवगणों के प्राण होने से - "**विष्णुः प्राणाः दिवौकसाम्।**"

(60)"**पश्यामि देवांस्तवदेव देहेसर्वान्स्तथाभूत विशेषसंघान्। ।**
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थं मृषींश्च सर्वान्सर्वानुरगांश्च दिव्यान्। गी. 11।15।" अर्जुन ने भगवान्‌से कहा कि हे देव! आपके इस दिव्य देह में ब्रह्मा, रुद्रादिक देवगण, ऋषिगण तथा सृष्टिसमूह के दृष्ट नाना जीवगणों का दर्शन हो रहा है। अतः सबों का मूल होने से।

(61) "**रिपोः सुतानामपि तुल्यदृष्टेः।**" शत्रुओं के ऊपर भी पुत्र के समान कृपा करने के कारण से।

(62) "**यत्र दण्डेन शुद्धयति।**" उनका दण्ड-दान भी कल्याण के लिए ही होता है। जीवों को यमलोकादि में देना शुद्धि निमित्त ही है।

(63) "**यथा तर्रोमूलनिषेचनेन तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः। प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या।** भा. 4।31।14।" जैसे वृक्ष के मूल में दिया हुआ जल उसकी शाखा तथा पत्तियों में पहुँच कर वृक्ष की वृद्धि करता है, जैसे मुख में दिया हुआ ग्रास सभी इन्द्रियों का बल संचारक होता है, उसी प्रकार एक नारायण के प्रति किया गया उपचार सबों को अनायास प्राप्त हो जाता है। अतः सबों की आराधना का सुलभ उपाय होने से।

"**तर्पयन्ति अंग मां विश्वम्एते पृथकतण्डुलाः।** भा. 10।81।9।" जब सुदामा जी का चूड़ा भगवान्‌खाये तो कहते हैं कि आपका यह चूड़ा मेरे अंगों में स्थित अनन्त ब्रह्माण्डों के साथ-साथ मुझको कृत्य कर रहा है। अर्थात् सभी लोकों के भोजन के लिए पर्याप्त है।"**यस्य कुक्षाविदं सर्वमात्म भाति यथा तथा।**" भगवान्‌के उदर में सभी छोट-बड़े जीव (देव, पशु आदि) अपने-अपने संस्कार के साथ पृथक-पृथक रहते हैं। "**ब्रह्माण्ड निकाया निर्मितमाया रोम रोम प्रतिवेद कहै।** बा. 191।छंद 3।" भगवान्‌के बाहर भी अनन्त ब्रह्माण्ड हैं।

"**शाकान्नशिष्टमुपभुज्य यतः त्रिलोकान्। तृप्तिममंस्त सलिले विनिमग्नसंघः। ।** जिस समय दुर्योधन ने पाण्डवों को शाप देने के लिए दुर्वासा को भेजा था उस समय द्रौपदी भोजन कर चुकी थी। सूर्य की दी हुई बटुली खाली थी। द्रौपदी अधिक संख्या में ऋषि-मंडली को देखकर विचलित हो गयी, क्या करूँ ? यदि ऋषियों का सत्कार न हुआ तो इससे बढ़कर और क्या अनुचित होगा। व्याकुल होकर उसने शरण्य श्रीकृष्ण का स्मरण किया, शीघ्र ही भगवान्‌आ गये। किन्तु वे भी भूखे हैं। कहते हैं - मुझे कुछ खिलाओ। द्रौपदी और भी लज्जित हुई, दुविधा में पड़ गयी, धैर्य धारण कर कहती है भगवन्! बटुली धुल गयी है आपको क्या दूँ ? कृष्ण कहते हैं कि मुझे वह बटुली दिखाओ। द्रौपदी बटुली लाती है। उसमें कृष्ण को एक साग की पत्ती मिली और वे अपने मुख में उसे डाल लेते हैं। अब क्या विलम्ब, सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों की तृप्ति उससे हो गयी। ऋषि दुर्वासा अपने साथियों के साथ स्नानार्थ किसी तालाब में गये हुए थे। कृष्ण की तृप्ति से उनकी भी तृप्ति हो गयी थी। पुनः भोजन करने की इच्छा नहीं थी, किन्तु कृष्ण के द्वारा भेजे हुए भीम भोजनार्थ बुलाने आ रहे हैं, अब क्या किया जाय ? बस, उपाय सूझा, झट जल में डर से डुबकी लगा ली। जान किसी प्रकार से बचाकर भागे। शाप देना तो बहुत दूर की बात हो गयी थी।

पद्म पुराण में लिखा हुआ है कि मुनियों ने सरस्वती नदी के किनारे बैठे विचार किया कि - "**त्रिषु देवेषु को महान्।**" त्रिदेवों में बड़ा कौन है ? यह निर्णयार्थ सनकादिकों के साथ भृगु कैलाश गये। नन्दीश्वर ने उन्हें रोका और कहा कि "**देव्या क्रीड़ति**

शंकरः। प.पु. उत्तर 255।30।" महादेव पार्वती के साथ क्रीड़ा कर रहे हैं। किन्तु साहस कर भृगु आगे बढ़े तो देखा कि शिव त्रिशूल लिए हुए मारने के लिए बढ़े आ रहे हैं। शिव को क्रोधातुर देख भृगु ने शाप दे दिया। तुम ब्राह्मणों से अपूज्य रहो। अनुनय विनय के पश्चात् लिंग रूप में पूजित होने का वचन मिला। अब भृगु ने ब्रह्मा के यहाँ जाने के लिए प्रस्थान किया। ब्रह्मलोक पहुँचे। ब्रह्मा ने इनको आदर पूर्वक बैठने के लिए आग्रह भी नहीं किया, क्योंकि वे तो रजोगुणी हैं। अतः अपूज्यता का शाप इन्हें भी मिला। वहाँ से वे विष्णु लोक में गये। क्रोधावेश में तो थे ही, इसी मुद्रा में विष्णु को दायाँ पाँव से छाती के ऊपर मारा, किन्तु भगवान्बोले- "पुनन्तु मां ब्राह्मणपादपांसवः।255।51।" ब्राह्मण की चरण-धूलि मुझको पवित्र करे। तथा - "पुनीहि सह मां लोकान्लोकपालांश्च मद्गतान्।" हमारे साथ मुझमें स्थित अनेक लोक और सभी लोकपाल पवित्र होवें। इन दृष्टान्तों से यही सिद्ध होता है कि भगवान्के प्रति जो कुछ भी किया जाय सबों के लिए हो जाता है। अतः यही उपासना सुलभ है।

(64)"न मां दुष्कृतिनो मूढा प्रपद्यन्ते नराधमाः। गी. 7।15।" पापात्मा नराधम भगवान्के नहीं होते हैं। अतः इस दोष से बचने के लिए उनकी उपासना श्रेष्ठ है।

(65)"कामैः तैः तैः हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवता। गी. 7।20।" ज्ञान-अपहरण हो जाने के कारण ही जीव अन्य देवों का उपासक बन जाता है।

(66) "ब्रह्माणं शितकण्ठञ्च याश्चान्य देवताः स्मृताः। प्रतिबुद्धा न सेवन्ते यस्मात्परिमितं फलम्। शान्ति पर्व 341।36।" देवोपासकों को नाशवान फल मिलता है। अतः ज्ञानी लोग ब्रह्मादि देवों की उपासना नहीं करते।

(67) "क्षीणेपुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति। गी. 9।21।" पुण्य का विनाश हो जाने पर देवताओं को भी इसी लोक में आना पड़ता है।

(68) "येऽर्चयन्ति सुरानन्यांस्त्वां विना पुरुषोत्तम। ते पाषण्डत्वमापन्नाः सर्वलोकविगर्हिताः। प.पु. उ.255।58।" भृगु ने भगवान्से कहा है कि जो आपको छोड़कर अन्य की अर्चना वन्दना करता है, वह नीच गर्हित है, वही पाषण्डी है। अतः देवतान्तर की आराधना से पाषण्डी की उपाधि मिलती है। इसीलिए कहा गया है कि- "विप्राणां वेदविदुषां त्वमेवेज्योजनार्दनः।255।59।" हे जनार्दन ! वेदज्ञ ब्राह्णों से आप ही पूज्य हो। किसी समय में भी अन्य देव पूज्य नहीं है।

(69) "मुमुक्षवो घोररूपान्हित्वा भूतपतिनथ। नारायणकलाः शान्ताः भजन्ति ह्यऽनुसूयवः।।" मुमुक्षु देवतान्तर नहीं होते हैं। सभी देवों को छोड़कर केवल एक भगवान्की ही उपासना करते हैं।

(70)"नान्यं देवन्तु वीक्षते ब्राह्मणो न च पूजयेत्। नान्यं प्रसादं भुञ्जीत्न अन्यस्य आयतनं विशेत्। प.पु. उ.255।65।" अन्य देवताओं को देखना तथा पूजना, उनके मन्दिरों में जाना तथा उन सब का प्रसाद पाना मना है।

(71) "येषां तु अन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्। ते द्वन्दमोह निर्मुक्ता भजन्ते मां दृढ़व्रताः। गी. 7।28।" पुण्य कर्म करने वाले जिनका पाप नष्ट हो गया है वे ही अनन्य होकर मेरा भजन तथा मेरी सेवा किया करते हैं। कृष्ण ने अर्जुन से यही कहा है - "जन्मान्तर सहस्रेषु तपोध्यान समाधिभिः। नराणां क्षीण पापानां कृष्णे भक्ति प्रजायतेः।" अनेकों जन्मों का पाप नाश होने पर ही भगवान्में प्रेम होता है।

(72)"तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्। ददामि बुद्धियोगं तं येन माम्उपयान्ति ते। गी. 10।10।" प्रेमपूर्वक अनन्यभाव से जो भगवान्का भजन करता है उसको भगवान्अपनी प्राप्ति का उपाय बताते हैं।

(73)"अनन्याश्चिन्तयन्तो माम्ये जनाः पर्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्। गी. 9।22। भगवान् अनन्य भक्तिवाले भक्तों का योग क्षेम का भार अपने ऊपर रखे रहते हैं।

(74)"अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः। तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः। गी. 8।14।" अनन्यता से भगवान्सुलभ हो जाते हैं।

(**75**)"अनन्याधीनः त्वं तव किल जगुर्वैदिकगिरः। पराधीनं त्वान्तु प्रणत परतंत्रं मनुमहे। ।" आप प्रणत-परतन्त्र हैं। वेद आपको यद्यपि स्वतन्त्र कहता है, किन्तु आप में भक्तवत्सलता गुण है। आप अपने भक्तों के परतन्त्र हैं।

(**76**) ब्रह्मतेज, इन्द्रिय-बल, पुत्र, स्त्री, प्रभाव, पशु, वीर्य (शरीर बल), अन्नादिक स्वर्ग, इसलोक का राज्य, दीर्घायु, शरीर-पुष्टि, लोक-प्रतिष्ठा, सुन्दर रूप, स्वर्गाधिपत्य, लोक-यश, कोष, विद्या, दामपत्य- प्रेम इत्यादि सभी वस्तयें मनुष्य को अपेक्षित हैं और केवल एक भगवान्की आराधना से ही ये सभी प्राप्त हो जाते हैं। "अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः। तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्। भा. 2।3।10।" एक देवता की आराधना से एक वस्तु की प्राप्ति होती है, किन्तु एक भगवान्की आराधना द्वारा एक साथ अनेकों वस्तुओं की प्राप्ति होती है। यही परमात्मा में महानता है।

(**77**)"अजित दोष गृहीत गुणः।" अपने भक्तों के अजित दोषों को छोड़कर केवल गुणों को ही अपनाकर भक्तों को अपनाते हैं।

(**78**)"पिता च रक्षकः शेषी भर्त्ता गेयो रमापतिः स्वाम्याधारो ममात्मा च भोक्ता चाद्यमनूदितः।" परमात्मा से जीव को नवविध सम्बन्ध होने से। "मोहि तोहि नातो अनेक प्रभु अब न तजे बनि आवै। वि.पत्रिका 113।3।" "मोहि तोहि नातो अनेक मानिये जो भावे। वि.पत्रिका 79।3।।" जीवों के लिए ईश्वर पिता,रक्षक, शेषी, भर्त्ता, स्वामी, आधार, भोक्ता और ज्ञाता है। इस प्रकार अनेक सम्बन्धों में उक्त नव सम्बन्ध प्रधान है।

(**79**)"मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणाइव। गी. 7।7।" परमात्मा में सबके ग्रंथित रहने से।

(**80**)"कुर्वन्ति शान्तिः विवुधाः प्रहृष्टाः क्षेमं प्रकुर्वन्ति पितामहाद्याः।
स्वस्तिं प्रयच्छन्ति मुनीन्द्रमुख्याः गोविन्दभक्तिं वहतां नराणाम्।।
शुभग्रहाः भूतपिशाचयुक्ताः ब्रह्मादयोः देवगणाः प्रसन्नाः।
लक्ष्मी स्थिरा तिष्ठति मन्दिरे च गोविन्दभक्तिं वहतां नराणाम्।।" भगवद्भक्ति करनेवाले को शान्ति सभी देवगण मनाते हैं। सभी पितृगण तथा पितामहादि क्षेम मनाते हैं। अनन्यभगवद्भक्तों को भूत पिशाच समेत सभी ग्रह प्रसन्न होकर शुभ फल देते हैं। ब्रह्मादि देव सदैव प्रसन्न रहते हैं। लक्ष्मी इनके घर स्थिर होकर रहती हैं। प्रसन्नार्थ नारायण की उपासना श्रेयस्कर है।

(**81**)"वेदेषु पौरुषं सूक्तम्।" "पुरुष एवेदं सर्व यद्भूतं यच्चभाव्यम्।" सभी वेदों में पुरुष सूक्त प्रधान है। इसके द्वारा नारायण ही प्रतिपाद्य हैं। भूत-भविष्य-वर्त्तमान कालिक सभी वस्तुयें नारायण में अपृथक भाव से रहती हैं।

(**82**)"सर्वे लीलावतारस्ते भूतानां भूति हेतवः।" भगवान् की सभी लीलायें प्राणियों के कल्याणार्थ ही होती हैं।

(**83**)"त्वं शब्दयोनिः जगदादिरात्मा प्राणेन्द्रियद्रव्यगुणःस्वभावः। कालः ऋतुः सत्यभूतञ्च धर्मः त्वय्यक्षरं यत् त्रिविधामनन्ति।।" शब्द की योनि, जगत्की आत्मा, प्राण, इन्द्रिय, द्रव्य, गुण, स्वभाव, काल, यज्ञ, सत्य, ऋतु, धर्म, अक्षर तथा प्रणवादि सबका प्राण नारायण ही हैं - ऐसा वेदज्ञों का सिद्धान्त है।

(**84**)"अनर्च्या ब्रह्मरूपाद्याः रजस्तमविमिश्रिताः। त्वं शुद्धसत्वगुणवान्पूजनीयोऽग्रजन्मनाम्। प.पु. उ.255।60।" भृगु कहते हैं - हे पुरुषोत्तम !आप शुद्ध सत्व गुणवान्होने से ब्राह्मणों द्वारा पूज्य हैं और रजोगुण तमोगुण होने से ब्रह्मादि अपूज्य हैं।

(**85**) "महात्मनः तु मां पार्थ दैवी प्रकृतिमाश्रिताः। भजन्ति अनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्। गी. 9।13।" दैवी प्रकृति वाले मनुष्य नारायण को अनादि एवं अविनाशी समझकर अनन्यभाव से भजा करते हैं।

(**86**) "देवर्षिभूताप्तनृणां पितृणां न किंकरो नायमृणी च राजन्। सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्त्तुम्।।
स्वपादमूलं भजतः प्रियस्य त्यक्तान्यभावस्य हरिः परेशः। विकर्म यच्चोत्पतितं कथञ्चित्धुनोति सर्वं हृदिसन्निविष्टः। भा. 11।5।41,42।" नारायण के शरणागत भक्तदेव, ऋषि, पितृ आदि के ऋण से मुक्त हो जाते हैं। भगवान्अपने अनन्य भक्तों द्वारा कथञ्चित्कुछ अनुपचार हो जाने पर भी उसके दुष्कृत को विनाश कर देते हैं।

(**87**) "ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः। ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा। वि.पु.6।5।74।" भगवान्में सभी वस्तु की पूर्त्ति रहने से।

(88) “अन्यालये हरिं दृष्ट्वा देवतान्तरसंसदि न अर्चयेतन्न प्रणमेत्च तीर्थसेवा विर्वजयेत्।।” देवताओं की पूजा अत्यन्त निषिद्ध होने से उन देवों के साथ में स्थित भगवान्भी अपूज्य हो जाते हैं।

(89)“याः क्रियाः सम्प्रयुक्ताः स्युरेकान्तगत मानसः।ताः सर्वाः शिरसा देवः प्रतिगृह्णाति वै स्वयम्।।” भगवान् स्वविषयक अनन्य भक्तों का उपचार स्वयं ग्रहण करते हैं।

(90)“विसृज्य सर्वान्अन्यान्च मामेव विश्वतोमुखम्।भजन्ति अनन्या भक्त्या तान्मृत्योः अतिपारये।भा. **3**।**25**।**40**।” सब को छोड़कर अनन्य भाव से भजने वाला भक्त को उद्धार करने से।

(91)“क्षेत्रज्ञः प्रविशत्यदा...।विराट तदैव पुरुषः सलिलात्उदतिष्ठत्।भा. **3**।**26**।**70**।” विराट् भगवान्के प्रवेश करने से ही महदादि प्रकृति सृष्टि रूप में विद्यमान है।

(92) “न स्मरति अपकाराणां सतम अपि आत्मवत्तया।।” भगवान् अपने भक्तों के दोषों को उनके साथ आत्मवत्ता भाव होने से नहीं स्मरण करते हैं।

(93) मनुष्य का शरीर मुक्ति के लिए मिला है। देवताओं को स्वयं मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती। मनुष्य होकर ही भगवान्को प्राप्त कर सकते हैं।

(94) भगवान्भक्तों के लिए कल्पवृक्ष हैं ऐसा दूसरा कोई नहीं है।

(95) “देखि दोष कबहुँ न उर आने।सुनि गुन साधु समाज बखाने।अयो. **298**।**2**।”भगवान्स्वयं भक्तों के दोषों को देखकर उसे हृदय में स्थान नहीं देते। किन्तु सुना हुआ भी भक्तों के गुणों को साधु समाज बखान किया करते हैं।

(96) “यस्यात्मा शरीरम्।” “यस्य प्रकृतिः शरीरम्।” परमात्मा सबों के शरीरी हैं।

(97) “सर्वाधारमच्युतम्।” नारायण सबके आधार हैं।

(98) “तेषामहं समुद्धर्ता।”सबको उद्धार करने वाले हैं।

(99) “सर्वं यदेव नियमेन मदन्वयानाम्।स्तोत्ररत्न **5**।” “त्वमेव सर्वं मम देवदेव।”

(100) “सुहृत्प्रियवत्चरति।” नारायण माता-पिता के तुल्य हित परायण हैं।

(101) “ददामिबुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।गी. **10**।**10**।” बुद्धि योग दाता होने से।

(102) “नयामि परमां गतिम्।” परमगति दाता होने से।

(103) “आदावन्ते च मध्ये च।” सभी वस्तुओं के आदि, मध्य और अन्त में रहने से।

(104) “सृज्यात्सृज्यं यदन्वियात्।” एक कार्य में से दूसरे कार्य में भी व्याप्त होकर रहने से।

(105) “यच्छिष्येतत्तदेव सत्।” सबों के नाश होने पर एक नारायण ही रहते हैं।

(106) “यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्।गी. 15।12।” “सब कर परम प्रकाशक जोई।बा. 116।3।” सबों के प्रकाशक होने से।

(107) “कथञ्चिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति।” किसी प्रकार के एकाध ही उपचार द्वारा सन्तुष्ट हो जाने से।

(108) “विपदोनैव विपदः सम्पदोनैव सम्पदः।विपद्विस्मरणं विष्णोः सम्पत्नारायणस्मृतिः।।” नारायण का स्मरण सम्पत्ति होने से। वास्तविक सम्पत्ति नारायण ही हैं।

“रामेन्दु शून्याशिवमिते च वर्षे माघे सिते पन्नगभौमवारे।
प्रीत्यै परेशस्य जनस्य भूत्यै एतस्य शास्त्रस्य हि आविरासीत्।।”

“आर्त्ता विषण्णाः शिथलाश्च भीताः घोरेषु च व्याधिषु वर्तमानाः ।
संकीर्त्त्य नारायणशब्दमात्रं विमुक्त दुःखा सुखिनो भवन्तु।।”

।।श्रीमते रामानुजाय नमः ।।

।।ॐ नमो वेङ्कटेशाय।।



देवतान्तरों की आराधना क्यों नहीं ?

देवतान्तर - पूजन - निषेध

यावनर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः।गी.**2**।**46**।

ब्रह्माणं शितिकण्ठञ्च याश्चान्या देवताः स्मृताः।
प्रतिबुद्धा न सेवन्ते यस्मात्परिमितं फलम्।शान्ति प. **341**।**36**।

संकलयिता

श्रीस्वामी पराङ्कुशाचार्य
सरौती मठाधीश, रामपुर चौरम, गया

विषय - सूची

श्रीमते रामानुजाय नमः

पुस्तक-समीक्षण के पूर्व ग्रन्थकार का वक्तव्य मनोनिवेश पूर्वक सावहित हो, आद्योपान्त मनन कर लेना अतीव आवश्यक होता है। लेखक के प्राक्कथन द्वारा पाठकों को दो लाभ होते हैं। प्रथम तो लेखक के ग्रन्थ लिखने का मूल कारण ज्ञात होता है, और दूसरा वर्णित विषय का कुछ अंश में पूर्वाभास मिल जाता है। जिस विषय की पुस्तक है उसकी उपयोगिता भी पाठकगणों को स्पष्ट दृष्टिगोचर हो जाती है, फलतः पुस्तकाध्ययन में वक्तव्य से बड़ी ही सहायता मिलती है। अतः इसका आरंभिक कथन को अवश्य देखें।

निवेदक
श्रीस्वामी पराङ्कुशाचार्य
सरौती रामपुर-चौरम, गया

श्रीमते रामानुजाय नमः

गयास्थ लारीग्राम वास्तव्य विप्रवंशावतंसः श्रीस्वामी सुदर्शनाचार्य जी।

आप श्रीवृन्दावन गोवर्धन-पीठ परम्परा के प्रपन्न श्रीवैष्णव हैं। कर्मठ पुरुष होने के कारण आप अङ्गीकृत श्री वैष्णव धर्म का प्रचार-प्रसारार्थ प्रायः सर्वत्र सदा भ्रमण किया करते हैं। इसी भ्रमण क्रम में आपने प्रातःस्मरणीय श्री **1008** श्री स्वामी जी (सरौती) के आश्रय में श्रीस्वामी जी द्वारा लिखित आत्मोज्जीवक लेख की कुछ कापियां देखी। देखते ही उत्सुकता बढ़ी कि श्रीस्वामी जी जैसे जनकल्याणार्थ पुस्तिका मुद्रित कर निःशुल्क वितरण किया करते हैं, मैं भी इस सेवा में हाथ बटाऊँ। श्रीस्वामी जी से अनुमति प्राप्त की गयी। पश्चात्‌अविलम्ब "देवतान्तर - पूजन - निषेध" पुस्तिका मुद्रित कराकर पाठकों के संमुख उपस्थित हो गयी। इस पुस्तिका का सम्पूर्ण मुद्रण-व्यय प्रकाशक का ही है। अतः धन्यवादाह आपके पाठकगण सदा आभारी रहेंगे।

निवेदक
प्र. अध्यापक
श्री राम सं. विद्यालय सरौती
रामपुर चौरम, गया

श्रीमतेरामानुजाय नमः
श्रीवेङ्कटेशाय नमः

प्राक्कथन

जैसे सभी प्रकार की औषधियाँ सभी रोगों के लिए उपयुक्त नहीं हैं, सभी प्रकार के यन्त्र, अस्त्र, शस्त्रादि सबों के लिए और सभी कामों के लिए उपयुक्त नहीं है, उसी प्रकार सभी शास्त्रीय वचन भी सामान्यतया सबों के लिए उपयोगी नहीं हैं, इसमें अधिकारी के अनुकूल विभाग किया गया है। सधवा, विधवा, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, संन्यासी-धर्म जैसे अधिकारी के ऊपर निर्भर करता है। हिन्दू मात्र ही नहीं, विश्व-जातियाँ वेद को सभी विषयों का भण्डार मानती हैं, क्योंकि वेद अनादि है और इसी के आधार पर विश्व का धर्म-ग्रन्थ-निर्माण किए जाते हैं। हाँ, आज उन सबों में बहुत ही नाम या सिद्धान्तों को लेकर विभिन्नता पायी जाती है जो प्रकृति का सहज धर्म है। जैसे जाति-पाति, धर्म-कर्म में बाहुल्यता कर्मानुसार आ गयी है। वेदों में अनेकानेक विधान तथा भेदाभेद पाये जाते हैं। स्मृति, पुराण, इतिहासादि अनेकानेक विधानों के निर्देशक हैं। उन शास्त्र समूहों का आद्योपान्त पारायणपाठ इस लघु जीवन में असाध्य है और उन सबों का अध्ययन, पश्चात् मनन, प्रवचन तो और गूलर का फूल या समुद्र को उलीचना है। क्योंकि - **"पुंसो वर्षशतं ह्यायुस्तदर्धञ्चाजितात्मनः। निष्फलं यदसौ रात्र्यां शेतेऽन्धं प्रापितस्तमः।।**
मुग्धस्य वाल्ये कौमारे क्रीड़तोयाति विंशतिः। जरयाग्रस्तदेहस्य यात्यकल्पस्य विंशतिः।।"

मनुष्यों की आयु सौ वर्ष की है,जो इन्द्रियों के वशीभूत हैं उनकी आधी आयु जैसे-तैसे बीत जाती है। क्योंकि वे रात में घोर अज्ञान, तमोगुण ग्रस्त हो केवल सोते हैं।वाल्य और कुमारावस्था जो अज्ञानावस्था है उसमें बीस वर्ष चले जाते हैं। अन्त की बूढ़ापावस्था में बीस वर्ष और कुछ बची-खुची आयु मोह, आसक्ति में निकल जाती है। इस तरह बहुत सावधान हो समय को सदुपयोग में लाना चाहे तो कुछ कार्य हो सकता है। समय की ऐसी संकीर्णता में - **"अल्पञ्च कालो वहु विघ्नता च यत्सारभूतं तदुपासनीयम्।"** कुछ सार वस्तु को ही ग्रहण किया जा सकता है। सार वस्तु जिसका पूर्व पुरुष (ऋषि, महर्षि, पूर्वाचार्यादि) निर्णय कर छोड़े हैं वही ग्राह्य हो सकती है, अन्यथा संसार जाल में उलझकर मर मिटना ही केवल होगा। इशलिए **"यावनर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके।तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः।गी.2।46।"** जैसे - सम्पूर्ण जल-समूह को छोड़कर मनुष्य आवश्यकता भर ही

जल ग्रहण करता है उसी तरह शास्त्रीय सम्पूर्ण जञ्जालों को छोड़कर सच्छास्त्रीय सारवस्तु ग्रहण करना चाहिए। बाजार में बिकने वाली सभी प्रकार के वस्तुओं के अनुकूल ग्राहक भी पाये जाते हैं। जिसे जिस वस्तु की आवश्यकता होती है, वह उसे खरीदता है। यह संसार भी बाजार है, सभी शास्त्र समूह इसकी दूकानें हैं, हम सब ग्राहक हैं जो कुछ चाहेंगे मिलेगा। वाल्मीकि, महाभारत, स्मृति, पुराणादि ग्रन्थों में सभी वस्तुओं के ग्रहण के प्रमाण भी भरे पड़े हैं - मांस खाना, उससे पितृयों को पिण्ड देना, दारु पीना, विधवा विवाह, एक पति रहते अनेक पति करना, सिन्दुर लगाना, भस्म लगाना, मुण्डमाल पहरना, तुलसी माल, रुद्राक्ष पहरना, काला वस्त्र, लाल वस्त्र, नील वस्त्र, पीत गेरुआ वस्त्र पहरना, नंगे रहना, काठ, कम्बल, मूञ्ज, बल्कल-छिलका आदि धारण करने चाहिए। एक गुरु, अनेक गुरु, निगुरा आदि का प्रमाण है। किन्तु यहाँ सोचना यह है कि इस बाजार में मेरे लिए कितना समय है, इसी समय में अपेक्षित वस्तु भी खरीदना है, कहीं सूर्यास्त न हो जाये कि खाली ही हाथ घर लौटना पड़े! या अपेक्षित स्थान पर ही नहीं पहुँचे। या अनपेक्षित वस्तु (अमृत की जगह विष) ही न ले लें।

इसके लिए अपनी सात्विक बुद्धि से "**सात्विका मोक्षदा प्रोक्ता...**प.पु. उत्तर 236।22।" सात्विक वस्तु जो मेरे लिए कल्याणार्थ है - "**ईश्वरस्य वचः पथ्यम्**" ईश्वर का कथन "**यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोसि...**।गी.9।27।" जो कुछ भी करो मेरे लिए समर्पण करो। क्योंकि "**मत्तः परतरं नान्यत् ...**।गी.7।7।" मुझसे परे कोई नहीं है। "**अहमेव समुद्धर्ता मृत्यु संसार सागरात्**।गी.12।7।" मैं ही संसार सागर से सबों का उद्धारक हूँ। अथवा "**महाजनो येन गतः स पन्थाः**।महाभा.वन 313।117।" "**यद्यदाचरति श्रेष्ठः तत्तदेवतरो जनः**।" शात्विक बुद्धि से निर्णीत महाजन स्वायम्भुवमनु, शुक, वामदेव, नारद, व्यास, कश्यप, ध्रुव, प्रह्लाद आदि तथा पूर्वाचार्य, आलवारादि जिनके सम्बन्ध में -

"**ताम्रपर्णी नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी। कावेरी च महापुण्या प्रतीची च महानदी।।**
ये पिबन्ति जलं तासां मनुजामनुजेश्वर। प्रायो भक्ता भगवति वासुदेवेऽमलाशयाः।भा.11।5।38-40।" दक्षिण भारतके इन नदियों के समीप अवतरित होने के कारण परम भागवत रूप में ख्याति है, इनका उपदेश और आचरण ही हम सबों के लिए गन्तव्य स्थल का सरल मार्ग है। व्यास ने गर्जन करके कहा है कि - "**वासुदेवं परित्यज्य योऽन्यदेवमुपासते। तृषितोजाह्नवी तीरे कूपं खनति दुर्मतिः।।**" पूर्वाचार्यो का भी यही सिद्धान्त था - "**ममनाथ यदस्तिं योऽस्म्यहं सकलं तद्धितवैव माधव। तव दास सुखैक संगिनां भवनेष्वस्त्वपि कीटजन्म मे। इतरावसथेषु च मास्मभूदपि मे जन्म चतुर्मुखात्मना।।**"

हे नाथ ! मैं और मेरा सर्वस्व आप ही का है। हे भगवान्! मेरा जन्म आपके दासों के घर में कीट योनि में हो, किन्तु आपके दासों से अन्यत्र कहीं ब्रह्मा भी क्यों न बनूँ ? मेरा जन्म वहाँ नहीं होवे। इस तरह यह निश्चय हुआ कि कल्याण केवल एक नारायण द्वारा ही सबों का हो सकता है और किसी के द्वारा नहीं। क्योंकि - "**आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन**।गी.8।16।" स्वयं अन्य देवगण अपने अपने लोकों के साथ एक दिन अधःपतित होंगे तो अपने भक्तों का क्या ठिकाना। किन्तु नारायण के यहाँ जाकर इस संसार जाल में कभी नहीं आना है। "**यद्गत्वा न निवर्तन्ते**।गी.15।6।" इसी विषय को लक्ष्य में रखकर "देवतान्तरी **क्यों नहीं बनना चाहिए**" का दिग्दर्शन कराया गया है।

विनीत
प्रकाशक
श्रीस्वामी सुदर्शनाचार्य जी
पो. मु. लारी (गया)

श्रीमते रामानुजाय नमः

1। त्रिगुणात्मिका सृष्टि

यह मायामयी सृष्टि त्रिगुण (सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण) विशिष्ट है। इसकी रचना का आधार वेद है - "**यथा पूर्वमकल्पयत्**।।" (पूर्व कालीन सृष्टिके अनुकूल ही वर्तमान सृष्टि रची गयी है)। वेद भी त्रिगुणविशिष्ट ही है - "**त्रैगुण्य विषया वेदा...**। गी.**2**।**45**।" सम्पूर्ण वेद दो भागों में विभक्त है। पूर्व भाग स्मृति और उत्तर भाग इतिहास पुराण में। इसीलिए ये सब भी त्रिगुणात्मक ही हैं।

> "**वाशिष्ठञ्चैव हारीतं व्यासं पारासरं तथा। भारद्वाजं काश्यपञ्च सात्विका मोक्षदा शुभाः।।**
> **याज्ञवल्क्यं तथात्रेयं तैतिरं दाक्षमेव च। कात्यायनं वैष्णवञ्च राजसा स्वर्गदा शुभाः।।**
> **गौतमं वार्हस्पत्यञ्च सांवर्तञ्च यमं स्मृतम्। शाखं चौसनसं देवि तामसा निरय प्रदाः**। प.पु. उत्तर **236**।**23-26**।"

इसी प्रकार पुराणों के सम्बन्ध में भी है -

> "**मात्स्यं कौर्मं तथा लैंगं शैवं स्कन्दं तथैव च। आग्नेयञ्च षडेतानि तामसानि निबोध मे।**
> **वैष्णवं नारदीयञ्च तथा भागवतं शुभम्। गारुडञ्च तथा पाद्मंवाराहं शुभ दर्शने।।**
> **सात्विकानि पुराणानि विज्ञेयानि शुभानि वै। ब्रह्माण्डं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं तथैव च।।**
> **भविष्यं वामनं ब्राह्मं राजसानि निबोध मे**। प.पु. उत्तर **236**।**18-21**।"

रुद्रोवाच -

> **प्रथमं हि मया चोक्तं शैवं पाशुपतादिकम्। मच्छक्त्या वेशितैर्विप्रैः प्रोक्तानि च ततः श्रृणु।।**
> **कणादेन तु सम्प्रोक्तं शास्त्रं वैशेषिकं महत्। गौतमेन तथा न्यायं सांख्यन्तु कपिलेन वै।।**
> **धिषणेन तथा प्रोक्तं चार्वाकमतिगर्हितम्। दैत्यानां नाशनार्थाय विष्णुना बुद्धिरुपिणा।।**
> **बौद्धशास्त्रमसत्प्रोक्तं नग्ननीलपटादिकम्। मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमुच्यते।।**
> **मयैव कथितं देवि कलौ ब्राह्मणरुपिणा। अपार्थश्रुतिवाक्यानां दर्शयन्लोकगर्हितम्।।**
> **कर्मस्वरूपत्याज्यत्वमत्र वै प्रतिपाद्यते। सर्वकर्मपरिभ्रष्टं वैधर्म्य तदुच्यते।।**
> **परेशजीवयोरैक्यं मया तु प्रतिपाद्यते**। प.पु.उत्तर **236**।**3-9**।"

उपरोक्त पद्यों के द्वारा महादेव ने स्वयं रजोगुणी और तमोगुणी विषयों को नास्तिकवाद सिद्ध किया है। इसी प्रकार सभी देव, मनुष्यादिकों की बुद्धि, प्रकृति, यज्ञ, तप, दान, भोजनादिक भी उपरोक्त तीनों गुणों से युक्त हैं।

"बन्धं मोक्षञ्च या वेत्ति बुद्धि सा पार्थ सात्विकी। गी. **18**।**30**।"

> "**यया धर्ममधर्मञ्च कार्यञ्चाकार्यमेव च। अयथावत्प्रजानाति बुद्धि सा पार्थ राजसी।31।**
> **अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तामसावृता। सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी।32।**"

सांसारिक बन्धन और उससे छुटकारा समझनेवाली सात्विक बुद्धि है। इस बुद्धि से राजसी वस्तुओं का ग्रहण होता है। धर्म को अधर्म और अधर्म को धर्म समझने वाली बुद्धि तामसी बुद्धि है। इससे तामसी वस्तुओं का ग्रहण होता है। इस प्रकार सृष्टि के सभी वस्तुओं के ऊपर इन तीनों गुणों का आधिपत्य रहता है, यानि सृष्टि व्यापार में त्रिगुण का घनिष्ट मिश्रण है, अतः उसका पृथक्करण नहीं हो सकता, फिर भी प्रधानता-गौणता, व्यक्तता-अव्यक्तता के अनुसार उसके व्यापारों की गणना किसी गुण-प्रधान नाम से होती है। इन गुणों की विषमता ही सृष्टि का कारण है। जबतक उनकी साम्यावस्था रहती है तबतक सृष्टि नहीं हो सकती। इन गुणों में विषमता से द्वन्द उत्पन्न होता है और उनसे क्रियायें होने लगती हैं जिससे जगत् रूप कार्य की रचना होती है। इसलिए जगत्का व्यापार भी द्वन्दमय बना रहता है, कभी भी उसमें साम्यावस्था नहीं आ सकती है। हाँ, जब उसमें साम्यावस्था आ जायेगी तो सृष्टि ही कूच कर जायेगी। किन्तु विषमता एवं द्वन्द की भी सीमा होती है, यदि वह भी सीमा पार कर जाये तो प्रलय अनिवार्य हो जायेगा। यही कारण है कि भगवान्प्रलय की इच्छा बिना इन गुणों में साम्यावस्था आने ही नहीं देते ताकि जगत्व्यापार बना रहे। जबतक भगवान्की प्रलयेच्छा नहीं होती तबतक किसी न किसी महापुरुष को आविर्भूत कर उनको

प्रेरित करते और उनके द्वारा कोई विशेष महत्वपूर्ण धारा प्रवाहित करा दी जाती है। **"केवल एक भगवान्ही कल्याण कर्ता है, अन्यदेवगण नहीं।"** इसका भी प्रचार-प्रसार एवं परम्परया ज्ञान में भी यही बातें झलकती हैं जो विचार करने से आगे स्वतः व्यक्त होगा।

"**सात्विकामोक्षदा प्रोक्ता राजसा स्वर्गदा शुभा। तथैव तामसा देवि निरय प्राप्तिहेतवे**।प.पु. उत्तर **236**।**22**।" उपरोक्त गुणों के सम्बन्ध में यह निश्चय किया गया है कि सात्विक वस्तुओं के द्वारा मोक्ष, राजसी वस्तुओं के द्वारा स्वर्ग और तामसी वस्तुओं के द्वारा नरक होता है। सतरह पुराण रचना के पश्चात् भी वेद-व्यास उदासीन मुद्रा में बैठे थे, उसी समय नारद का आगमन हुआ और उन्हीं के उपदेश द्वारा अठारहवाँ श्रीमद्भागवत पुराण की रचना की जो अनेकों को मोक्ष दायक हुआ और इनको भी शान्ति मिली। इससे यही सिद्ध होता है कि इस पुराण में विशेष सत्वगुण है याने देवतान्तरों का पूजन का निषेध और भगवत्पूजन का विधान है। स्वतः व्यासदेव ने भी कभी भगवान् को छोड़ अन्यों को नहीं पूजा। इस प्रकार गुण विभाग विवेचन द्वारा व्यासकृतसभी पुराण अधिकारी के अनुकूल मान्य होते हैं नहीं तो उनको वदतोव्याघात दोष होता। सभी शास्त्रीय विषयों को इसी कसौटी पर विशुद्ध वस्तु ही सबों को प्राप्त होनी चाहिए अन्यथा पथप्रदर्शक शास्त्ररूपी प्रदीप में पतंग की भाँति झुलस जाना होगा। इस सात्विक पथप्रदर्शक अनेकानेक महात्माओं का यहाँ आविर्भाव हो चुका है। **"महाजनो येन गतः स पन्थाः।"** महत्पुरुषों का बतलाया मार्ग ही कल्याणकारक होता है। इन्हीं महानों में हमारे पूर्वाचार्य आलवारादि भी हैं जिनका सिद्धान्त आगे के प्रकरण में व्यक्त किया जायेगा।

2।देवताओं की क्षुद्रता

हिन्दुओं के ग्रन्थों में देवताओं की संख्या तैंतीस करोड़ बतलायी गयी है। यदि मनुष्य प्रेम, भय, अज्ञान या संसर्गवश उन सबों का पूजन करना चाहे तो असम्भव ही नहीं असाध्य है। क्योंकि सबों का प्रथम तो नाम ही नहीं जानते, केवल दस बीस का नाम जानकर पूजेंगे और सभी यों ही छूटे रहे जायेंगे।यदि तन्त्र रीति से "**सर्वे देवाः**" "**सर्वाः देव्यः**" कह कर काम चलावें और सन्तोष करें तो यह भी उचित नहीं प्रतीत होता, कारण कि अज्ञात नाम वाले देवगण कहेंगे कि पूजक कुछ का नामोच्चारणपूर्वक पूजन किया और हम सबों का तो नाम भी नहीं लिया। ऐसी स्थिति में कुछ देवों की प्रसन्नता द्वारा पुण्यप्राप्ति के स्थान पर अधिक का शाप ही लेना होगा क्योंकि उनकी क्षुद्रता गणना से परे है। देवराज इन्द्र, ययाति के राज्यकाल में मृत्युलोक को विष्णुलोक तुल्य "**भूतलस्यापि विष्णोश्च ह्यन्तरं नैव दृश्यते**" देखकर ईर्ष्यावश ययाति के सहित उसके लोक को भी भ्रष्ट कर छोड़ा। यही इन्द्र ब्रजवासियों द्वारा पूजा नहीं प्राप्त करने पर सम्पूर्ण ब्रज को मूसलाधार वृष्टि द्वारा दहा बहा देना चाहा था। एक बार कृष्ण एक फूल के लिए इन्द्र के यहाँ गये थे तो इन्द्र से वह फूल देते नहीं बना, कारण कि ब्रजवासियों द्वारा की जाने वाली इन्द्र की पूजा इन्होंने बन्द कर दी थी। यही वैर भाव उनके हृदय में बैठा था। कृष्ण से इसी अवसर पर लड़ाई हुई तो इन्द्र को हारना पड़ा। इन्द्रलोक से इन्द्र को सन्तोष नहीं हुआ तो अहल्या को भ्रष्ट किया। नारद को ध्यानावस्थित देख इन्द्र घवड़ाया कि कहीं मेरा इन्द्रलोक ही न ले लेवें, कुत्ता जैसे सबों को चोर ही समझ कर भूकता है। इशीलिए "**सरिसश्वान्मघवान्युवान्**" "**सूख हाड़ ले भाग सठ...। तिमि सुरपतिहि न लाज**।बा.**125**।" जब प्रह्लाद गर्भ में थे उसी समय गर्भवती कयाधु को मारने के लिए इन्द्र गये थे। ध्रुव जब तपस्यारत हुए तो उनको विचलित करने के लिए इन्द्र ने बहुत प्रयास किया किन्तु सफलता नहीं ही मिली।

इन सबों की क्षुद्रता को ही ध्यान में रख शुकदेव ने अपनी कथा गोष्ठी में इन सभी देवों को कथा का अनधिकारी समझ कर बैठने भी नहीं दिया था। आवश्यकता पड़ने पर मनुष्य उन सबों की सहायता किया करता है। जैसे देवासुर संग्राम में दशरथ, मुचुकुन्द आदि ने, किन्तु वे सब नहीं। ध्रुव को जब यक्षों ने मारना चाहा तो देवगण केवल दूर से दृश्य देखते रहे, वचाये नहीं।

रुद्र ने अपना भक्त बाणासुर को बचाने के लिए अपने गणों को भेजा, स्वयं भी गये किन्तु राम कृष्ण को कभी भी सहायता नहीं किया है। असुरों के संहार से वचने के लिए देवगण भगवान् की सहायता चाहे और जब भगवान्ने राक्षसों को नाश करने की प्रतिज्ञा की तो देव सब खुशामदवश बन्दर भालु बने। इस समय भी रुद्र नहीं आये क्योंकि इनको तो अपना भक्त रावण का पक्षपात करना था। **"भरत सरिस को राम सनेही। जग जपु राम राम जपु जेहि।** अयो.**217**।**4**।" इन्द्र, परमभागवत भरत और श्रीरामचन्द्र की भेंट न हो, यही चाहा था। **"भये अलेख शोच वश लेखा।** अयो.**293**।**4**।" **"मघवा महा मलीन मुए मार मंगल चहत।** अयो.**301**।" भरत को देखकर जयन्त शोकातुर हुआ था। यद्यपि देवों का निवास उच्च है किन्तु कर्त्तव्य नीच ही है। मनुष्य कोटि से उनकी कोटि पिछड़ी हुई है। प्रतिविम्बी के समान ही प्रतिविम्ब सभी चेष्टाएँ किया करता है, उसी प्रकार मनुष्य के कर्म के पीछे देवों का कर्म होता है, न कि स्वतंत्र या परोपकार बुद्धि से। यही **"परस्परं भावयन्तः"** से सूचित होता है। ऐसे क्षुद्रों का ज्ञानी पुरुष क्यों भजन या आराधन करेगा। बड़ा शरीर या अधिक बल होने से कोई श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता। बड़ा हाथी और बलशाली सिंह को छोड़कर दुबली पतली बूढ़ी भी गाय पूज्य होती है।

इसी तरह देवगणों को छोड़कर ज्ञानी मान्य होते हैं। **"आराधनानां सर्वेषां विष्णोराराधनं परम्। तस्मात्परतरं देवि तदीयानां समर्चनम्।।"** सभी देवों की आराधना की अपेक्षा भगवान्की आराधना श्रेष्ठ है। और भगवान् की आराधना की अपेक्षा भगवद्भक्तों की आराधना श्रेष्ठतर है। यह महादेव की उक्ति है। देवगण तो मनुष्य होने के लिए सदा लालायित रहते हैं कि हम सब भी मनुष्य होते तो भगवदाराधन द्वारा मोक्ष के भागी बनते। यथा - **"गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तुते भारत भूमि भागे। स्वर्गापवर्गस्य फलार्जनाय भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्।** वि.पु.**2**।**3**।**24**।" इस प्रकार भगवद्भक्तों की मान्यता के सामने देवों की मान्यता अति तुच्छ पड़ जाती है। **"ब्रह्माणं शितिकण्ठञ्च याश्चान्या देवताः स्मृताः। प्रतिबुद्धा न सेवन्ते यस्मात्परिमितं फलम्।** शान्ति पर्व **341**।**36**।" उत्तम प्रकृति वाले ज्ञानी पुरुष क्षुद्र देवों की उपासना नहीं करते क्योंकि इन सबों की आराधना का फल क्षयिष्णु होता है। **"आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।** गी.**8**।**16**।" ब्रह्मा पर्यन्त सभी देवों का पतन निश्चित है। इसीलिए श्रेष्ठ सात्विक प्रकृति वाले महापुरुषों द्वारा केवल एक भगवान् की ही आराधना कल्याण कारिणी सिद्ध की गयी है। इसी से सभी देवों को भी प्रसन्नता होती है - **"कुर्वन्ति शान्ति विबुधाः प्रहृष्टाः क्षेमं प्रकुर्वन्ति पितामहाद्याः। स्वस्ति प्रयच्छन्ति मुनीन्द्र मुख्याः गोविन्द भक्तिं वहतां नराणाम्।।"** भगवद्भक्तों के प्रति सबों की स्वाभाविक प्रीति हो जाती है। **"स वै नृणां परो धर्मः यत्र भक्तिरधोक्षजे।"** मनुष्यों के लिए केवल एक भगवान्की ही भक्ति परम धर्म है। **"रामो विग्रहवान्धर्मः।** वा.रा.अर.**37**।**13**।" **"ये च वेदविदो विप्राः ये च शास्त्रविदो जनाः। ते वदन्ति महात्मानां कृष्णं धर्म सनातनम्।** वन पर्व.**88**।**25**।" अतः भगवान्की सेवा ही धर्म की सेवा या अपनाना है। इसी धर्म को अपनाने से अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि होती है। **"यतोऽभ्युदय निःश्रेयस साधना स धर्मः।"** इसी को लक्ष्य करके सबसे सुलभ उपाय जिससे कल्याण होता है (केवल भगवद्भक्ति का ग्रहण और देवतान्तरों की भक्ति का परित्याग)सबों को मान्य होना चाहिए।

3। भगवद्भक्ति निष्कण्टक-मार्ग

पूर्व के प्रकरण में यह बताया गया है कि सृष्टि की सुव्यवस्था के लिए भगवान् सर्वदा कोई न कोई महापुरुष का आविर्भाव कराते रहते हैं। इसी सिलसिले में आविर्भूत सत्वप्रधान कुछ व्यक्तियों के भगवद्विषयक सिद्धान्तों का उल्लेख किया जाता है। **"एष निष्कण्टः पन्थाः यत्र संपूज्यते हरिः। कुपथं तं विजानीयात्गोविन्दरहितागमम्।।"** भगवान्के प्रति की गयी भगवद्भक्ति मुक्ति का निष्कण्टक मार्ग बन जाती है। **"सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मि इति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम।** वा.रा.युद्ध.**18**।**33**।" मैं आपका हूँ ऐसा एकवार भी कहने पर भगवान् उसके पूर्वापर वहुत सम्बन्धियों को सांसारिक भय रहित बना देते हैं। और भक्त यह अभय दान द्वारा - **"आनन्द ब्रह्मणो विद्वान्न विभेति कुतश्चन।।"** **"नाहं विशंके सुरराजवज्रान्न त्र्यक्ष शूलान्नयमस्यपाशात्। नाग्नयर्क**

सोमानिलवित्तपाशात्शंके भृशं ब्रह्मविदोऽवमानात्।।" भगवद्भक्त किसी से नहीं डरते और ही लोग भले इसके प्रति किये गये अपमानादि से डरा करते हैं। "**कृत कृत्य प्रतीक्षन्ते मृत्युं हि प्रियोऽतिथिम्।**" ये सब काल को भी अतिथि जैसे प्रिय समझते हैं।

देवगण भगवद्भक्तों को अर्चिरादि मार्ग से जाते समय आगवानी पूर्वक अपने अपने लोक में ले जाते और सेवा सत्कार कर आगे चलते समय दूर तक साथ जा विदा करते हैं। ऐसे देवगण भगवद्भक्तों के पूजक हैं तो उनसे पूज्य भगवद्भक्त उनसे क्यों डरने जाये ? "**दासोऽहं कौशलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्ट कर्मणः।वा.रा.सु.43।09।**" हनुमान् '**मैं राम का दास हूँ**' इसतरह अपनी निर्भीकता सूचित करते हैं। "**तोहि पटकि मैं सेनहति चौपट कर तव गांव। मंदोदरी समेत सठ जनक सुतहि ले जावं।लं.30।**" अंगद ने रावण से कहा है कि मुझ में ऐसी शक्ति है।" **मैं तव दशन तोखे लायक**" परन्तु मैं क्या करूँ? लाचार हूँ - "**आयसु पै न दीन्ह रघुनायक।लं.33।1।**" भगवान्की ऐसी आज्ञा ही नहीं है। "**सीम की चाप सकै कोऊ तासु। बड़ रखवार रमापति जासु।बा.125।4।**" जिसका रक्षक भगवान् है उसको कोई भी नहीं दवा सकता।

"**मृत्युमूर्ध्निपदं दत्वा...।**" भगवद्भक्त मृत्यु के मस्तक पर लात रखने वाला है।उत्तमाधिकारियों को अर्थपंचक ज्ञान आवश्यक है जो सर्वत्र गीतादि सच्छास्त्रों में पाया जाता है। इसमें भी अन्यों की भक्ति का निषेध बताया गया है। **अर्थपंचक यह है -1।स्वस्वरूप, 2।परस्वरूप, 3।उपायस्वरूप, 4।विरोधीस्वरूप, 5।फलस्वरूप।**

"**अर्थपंचकतत्त्वज्ञाः पञ्चसंस्कारसंस्कृताः। भक्तिनवविधायुक्ताः स वै भागवतास्मृताः।।**" अर्थपंचक, तत्त्वज्ञान,पंचसंस्कार और नवधा भक्ति युक्त परम भागवत होते हैं। "**बहिर्भूतं नाथ क्षणमपि सहे यातु शतधा...।**" श्री यामुनाचार्य स्वामी कहते हैं - हे नाथ! मेरी बुद्धि क्षण भर भी आपको छोड़कर अन्यत्र कहीं जाये तो मैं सौ टुकड़े हो जाऊँ। यह हम सबों के लिए उपदेश है।सिद्ध महात्माजनों का उपदेश, उनका आचरण, व्यवहार और अनुष्ठान ये सभी हम सबों को मान्य होना चाहिए। श्रीभाष्यकार स्वामी का नित्य प्रतिदिन की दिनचर्या, उनका ग्रन्थ, बहत्तर वाक्य, इन सबों के अभाव में उनका विशेष आज्ञानुकूल कार्य ये सब प्रमाणभूत हैं। "**श्रीभाष्यं द्रविड़ागमप्रवचनं।**"

भगवान् श्रीमन्नारायण जिस योनि और जिस कुल में जन्म लिए हैं उसी कुल का धर्म पालन किए हैं - "**श्रीमत्यायतने विष्णोः शिश्ये नरवरात्मजः।वा.रा. अयो. 6।4।**" भगवान् श्री रामचन्द्र अपने कुलदेव विष्णु के मन्दिर में शयन किये। याने उनका इस आचरण द्वारा यह व्यक्त होता है कि सबों को अपना-अपना धर्म पालनीय होता है। इसलिए हमसब यदि ब्राह्मण एवं वैष्णव हैं तो अपना धर्म पालन करें। "**परधर्मो भयावहः।गी.3।35।**" दूसरों का धर्म भयदायक है याने देवतान्तरों की भक्ति भयावह और "**स्वधर्मे निधन श्रेयः।गी.3।35।**" याने भगवद्भक्ति कल्याणकारक है।

"**तत्रोपायसहस्राणामभयं भगवतोदितम्। यदीश्वरे भगवति यथायैरंजसा रतिः।।**

गुरुः शुश्रूषया भक्त्या सर्व लब्धार्पणेन च। संगेनसाधुभक्तानामईश्वराराधनेन च।।" कल्याण के लिए सहस्रों उपायों में भगवान्का कहा हुआ पञ्चरात्र या "**भक्त्या मामभिजानाति।गी.18।55।**" उसके अन्तरङ्ग आचार्य चरण-सेवा, सत्पुरुषों के संग द्वारा स्वरूप ज्ञान, भगवदाराधनादि उपाय साधन बताया गया है, किन्तु देवतान्तरों की भक्ति सेवा नहीं। "**जरिरन्यद्विडम्बनम्...।**" श्री हरि को छोड़कर किसी अन्य का भजन-पूजन तत्त्वहीन केवल विडम्वना है।

श्रीलोकाचार्य स्वामी -

"**स्वातन्त्र्यं अन्यशेषत्वं च आगुन्तके** (अविद्यया)।" "**तच्छेषत्वविरोधी तदितरशेषत्वम्।**" "**अहं ममार्ह इत्येवं हरेरन्यस्य शेषता।**" स्वतन्त्रता और अन्यशेषत्व जीवों का सहज धर्म नहीं है। भगवान्का शेषत्वविरोधी अन्यों का शेष होना है "**मैं अपने लिए**" यह अन्य-शेष है।

प्रपन्न परित्राणे -

"ब्रह्मामधुकैटभाभ्यां कलेशं, तथा रुद्रहस्तेन छिन्न शिराः, रुद्रश्च प्राणिसंहारेकवृत्तिकः, पिपासया परिश्रान्तानाम्मुखेषु हुताशन इवेत्यादयः।" ब्रह्मा अपनी रक्षा आप नहीं कर सके। मधुकैटभ इनसे वेद छीन लिया, रुद्र इनका मस्तक काट लिया तो वे सब अन्यों की रक्षा कैसे कर सकते हैं ? रुद्र संहारवृत्ति वाले हैं, इनसे कल्याण कैसे हो सकता है। जैसे अग्नि पिपासे को पिपासा नहीं मिटाती बल्कि जलाती है।

नारद ध्रुव से कहते हैं - "धर्मार्थकाममोक्षाख्यं य इच्छेत्श्रेयमात्मनः। एकमेवं हरेस्तत्र कारणं पादसेवनम्।भा. 4।8।41।" कल्याण के लिए केवल एक नारायण ही उपाय हैं। "अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः। तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्।भा. 2।3।10।" निष्कामी, सकामी या मोक्षार्थी सबों को एक नारायण ही उपाय हैं।

"अकारार्थयैव स्वमहमथ मह्य न निवहा। नराणां नित्यानामयनमिति नारायणपदम्।।

यमाहस्मै कालं सकलमपि सर्वत्र सकला। स्ववस्थास्वाविस्यर्मम सहज कैङ्कर्यविधयः।। अकार का अर्थ नारायण है। नार और अयन इन दो पदों के संयोग से नारायण पद की सिद्धि होती है। अयन शब्द का मूल धातु अय्गतौवा 'इणगतौ' है। 'ईयते इत्ययनम्' इस व्युत्पत्ति द्वारा प्राप्य-वाचो अयन हुआ, 'ईयते अनेन' इस व्युत्पत्ति द्वारा प्रापक वाची, और 'यन्त्यस्मिन्' इस व्युत्पत्ति द्वारा आधार-वाची हुआ। याने हमसबों के लिए नारायण प्राप्य, प्रापक और आधार भी हैं। 'सकलकारकशक्तिधरः' सभी कर्ता-कर्मादि कारक वही हैं। इसीलिए सभी देश, सभी काल और सर्वावस्था में श्रीमन्नारायण का कैङ्कर्य प्राप्त हो, यही इच्छा रहनी चाहिए। यही वास्तविक शेषत्व है। इसी से भगवान्ने कहा कि "मत्कर्मपरमो भव।गी.12।10।" अर्थात् अन्य देवों के कर्म को 'परमोभव'नहीं कहा।

श्री शठकोप स्वामी -

श्री कुरुकाधिनाथस्य सूक्तिप्रकारो मदिराविन्दुमिश्रितशात कुंभमयेत्यादि।

"मदिराविन्दुपातेन तत्राशुद्धिर्भवेद्यथा।"

"शेषस्य वस्तुजातस्य स्वामित्वं परमात्मनः। अतो दरिद्रताहेतोः स्वेनदेयं न विद्यते।।"

"इति क्रमेण दानञ्चेत्अनुपायस्तदा भवेत्। अतोभिन्नक्रमे दाने चौर्यं प्रकटितं भवेत्।।"

अन्यत्र प्रवृत्ति में जो पाप है उसकी शुद्धि नहीं है। परमात्मा के शेष वस्तु को दूसरे को देने का अधिकार नहीं है। दान देते समय 'त्वदीयं गृह्यताम्' यह आपका है लीजिए, पश्चात् अन्यत्र प्रवृत्ति में चोर होना है। जैसे जानकी को चुराने वाला रावण का सर्वस्व नाश हुआ। यही दशा जीवों की होती है। कुछ लोग तुलसीकृत रामायण की दुहाई देकर देवतान्तरों की आराधना विषय को पुष्ट करना चाहते हैं। किन्तु रामायण का अर्थ एक अपूर्व गहन विषय है जो सर्वसाधारण की बुद्धि से परे की बात है। सतसई, दोहावली में तो किसी की वन्दना भी नहीं की गई है। केवल भगवतपरत्व का ही वर्णन पाया जाता है। रामायण में भी तो - "जो शत शंकर करै सहाई। तदपि हतौं रण राम दुहाई।लं.74।7।" "श्री रघुवीर प्रताप ते सिन्धु तरे पाषाण। ते मतिमन्द जे राम तजि भजहि जाय प्रभु आन।लं.3।" "मन वच क्रम राम पद सेवक। सपनेहु आन भरोस न देवक।अर.9।1।" "तुमही छाड़ि गति दूसरी नाहीं। राम बसहु तिनके मन माँही।अयो.129।3।" "स्वामी सखा गुरु मातु पितु जिनके सब तुम तात। तिनके मन मन्दिर बसहु सिय सहित दोउ भ्रात।अयो.130।" इश प्रकार अन्वेषण करने पर तुलसीकृत द्वारा भी एक नारायण ही उपास्य निकलेंगे, अन्य कोई नहीं।

कुछ व्यक्तियों को तो पूर्वजन्म के कुसंस्कारवश भी सदुपदेश लाभ नहीं करता, शास्त्रों में विश्वास नहीं होता। जैसे विदुर और कृष्ण दुर्योधन को, विभीषण और श्रीजानकी का उपदेश रावण को लाभ नहीं कर सका।

"जन्मान्तरसहस्रेषु बुद्धिर्या भाविता नृणाम्। तामेव लभते जन्तुरुपदेशो निरर्थकः।।"

"प्रकाशयितुमात्मानं भक्तानां हितकाम्यया। अवतीर्णो जगन्नाथः शास्त्ररूपेण वै प्रभुः।।" भगवान्भक्तों के हितार्थ ही शास्त्र रूप से अवतीर्ण होते हैं। "तस्माच्छास्त्रे दृढं कार्या भक्तिमोक्षपरायणैः। अभक्तस्य परे शास्त्रे भगवान्न प्रकाशते।।" सत्शास्त्रों को भगवान्का

ही स्वरूप समझकर उसमें दृढ़ विश्वास करना चाहिए। ज्ञान-प्रधान जनककुल के मूल पुरुष निमि के प्रश्न में योगेश्वर प्रधान कवि ने कहा है कि - **"ये वै भगवता प्रोक्ता उपायाह्यात्मलब्धये। अञ्जः पुंषामविदुषां विद्धि भागवतान्हितान्।** भा.11।2।34।" कल्याण के लिए जो भगवान्‌का कहा हुआ है वही सबों के लिए सुलभ उपाय है। भगवान्‌का कहा हुआ सर्वप्रथम गीता लीजिए जो उपनिषद् और वेदान्त माना जाता है। वह आस्तिकों और नास्तिकों को भी मान्य है। ब्रह्मसूत्र से भी वह प्रमाणित है। ब्रह्मसूत्र में देवतान्तर का प्रतिपादन तो दूर रहा पाशुपतशास्त्र के सम्वन्ध में यहाँ तक कहा गया है - **"पत्युरसामंजस्यात्।** ब्र.सू.2।2।37।" **वेदविरुद्धप्रतिपादनपरत्वाच्च असामंजस्यात्अनादरणीयम्। पशुपतेः मतम्अनादरणीयम्, कुतः वेदविरुद्धत्वात्।** वेदविरुद्ध-आचरण-प्रतिपादन करने वाला पाशुपतशास्त्र अनादरणीय है। इस शास्त्र में कपाल, भस्म, रुद्राक्षादि का धारण भूतदेवादि का पूजन-विधान है, किन्तु त्याज्य है। दूसरा पञ्चरात्र शास्त्र है - **"पञ्चरात्रस्य शास्त्रस्य वक्ता नारायणः स्वयम्।"** पञ्चरात्र शास्त्र के प्रवक्ता स्वयं नारायण हैं। तीसरा श्रीमद्‌भागवत पुराण है - **"नारदाय पुराप्रोक्तं ब्रह्मकल्प उपावृते।।"** यह भागवत पुराण में (भगवान् नारायण) सर्वप्रथम नारद से कहा था। इन तीनों में पञ्चरात्रशास्त्र वृहद् है। उसकी सभी संहितायें उपलब्ध नहीं हैं, जो प्राप्त हैं - **ईश्वर संहिता, हारीत संहिता, वृहद्‌ब्रह्म संहिता, भारद्वाज संहिता, अहिर्बुध्न्य संहिता, आनन्द संहिता** तथ वैखानश आदि इन सबों में भगवदुपासना ही लिखा है, देवतान्तरों की पूजा नहीं।

दक्षिण या उत्तर भारत के श्री वैष्णवों को उभयवेदान्त प्रवर्तकाचार्य की उपाधि दी जाती है। वे दोनों वेदान्त, द्रविड़ और संस्कृत भाषीय हैं। उनमें भी कहीं देवतान्तरपूजन का विधान नहीं है।

श्रीवचन भूषण - "मद्देहम्..." यामुनमुनि तथा लोकाचार्य और वरवरमुनि ने भी यही कहा कि यह देहादि सभी भगवान्‌की है। **"प्रतिकूला भवन्त्येते वपुरात्माभिमानिनः। स्वतन्त्रा अन्यशेषाश्च साधनान्तरा तत्परा।।"** शरीर को ही आत्मा समझना स्वतन्त्र और भगवान्‌को छोड़ अन्य को उपाय मानना प्रतिकूल है। **"अन्यशेषत्वं ब्रह्मरुद्रादीनां शेषत्वम्।"** ब्रह्मा रुद्रादिकों का भक्त बनना अन्य-शेष हुआ।

कलिवैरीदास स्वामी वार्ता - वैष्णवः एकान्ति परमैकान्ति चेति विधा। देवतान्तरनिवृत्ति पूर्वक भगवच्छेषत्वज्ञानवान्वैष्णवः। अज्ञानदशाकुंभकर्ण वत्। देवतान्तरभजनदशारावणवत्।

वेदान्ताचार्य वार्ता - आत्मा स च न स्वतन्त्रः। परतन्त्रञ्च न देवतान्तराणां किन्तु भगवत एव। आत्मा भगवान्‌के परतन्त्र है।

कलिवैरी स्वामी वार्ता - "उपायविरोधीति त्रिधाः" देहात्माभिमान, अन्यशेषत्व, स्वातन्त्र्यञ्च। अर्थपंचक का उपायविरोधी तीन प्रकार का है - देह को आत्मा समझना, अन्य का शेष बनना और स्वतन्त्र होना।

श्री शठकोप स्वामी - "स्वरूपविरोधी, स्वरक्षणं, स्वातन्त्र्यं, अन्य शेषत्वम्" अपना रक्षाभार अपने ऊपर, स्वतन्त्र और अन्य का शेष बनना स्वरूप विरोधी है।

कृष्णपाद स्वामी - "अनन्याहशेषत्वम्, अनन्यशरणत्वम्, अनन्य भोग्यत्म्" अपना शेषत्व भगवान्‌के सिवाय अन्यों के योग्य नहीं है। केवल भगवान्‌को अपना शरण मानना, केवल भगवान्‌का ही भोग्य हूँ औरों का नहीं, यही आकारत्रय है। ये तीनों वातें भगवद्‌भक्तों में होनी चाहिए।

भट्टारक स्वामी - "अन्यशेषत्वनिवृत्तिपूर्वक अनन्यशेषत्वम्"

श्रीभाष्यकार स्वामी - "अन्यशेषत्वनिवृत्तिः स्वातन्त्र्यनिवृतिश्चाधिकारीकृत्यम्" मैं भगवान्‌से अन्यों का शेष नहीं हूँ, स्वतन्त्र नहीं हूँ, ऐसा अधिकारी का कृत्य है।

पुनः **कलिवैरी स्वामी - "देवतान्तरपरस्य कालान्तरेण भागवतत्त्वं योग्यता नास्ति।** डेवतान्तर सेवियों से भागवतत्त्व योग्यता हट जाती है।

कृष्णपाद स्वामी -मुमुक्षोः प्रपन्नस्य पञ्चकोट्यः त्याज्याः तिस्रकोट्यः उपादेयाः। पतिब्रताः स्त्रियाः तिस्रः कोट्यः उपादेयाः, तथा पञ्चकोट्यः त्याज्याः। देवतान्तराणि, देवतान्तर परतन्त्रा इत्यादयः। मुमुक्ष प्रपन्नों को देवतान्तरों में प्रवृत्ति त्याज्य है।

नवरत्न माला - श्री लोकाचार्य स्वामी देवताओं के विषय में यों कहे हैं - **अज्ञाः, आसक्ताः, सर्वेश्वरादुत्पन्नाः, तद्दत्तपदा अपि तेन सह विरुद्धय, दुर्मा निनः, सर्वाधिक मान्याः, लौकिकान्भ्रामयित्वा अनर्थकराश्च देवतान्तराणिनचिन्तयेत्।** सभी देवगण अज्ञ हैं, आसक्त हैं, सभी ईश्वर से उत्पन्न हैं,

उनसे ही पद पाकर भी उनका विरोधी हैं, दुर्मानी, अभिमानी, लौकिक व्यक्तियों को भ्रम में डालने वाले तथा अनर्थकारी हैं।

वृहद्ब्रह्म संहिता -

"अनन्यशरणो नित्यं तथैवानन्यसाधनः। भवेदनन्यसम्बन्धस्तथानन्य प्रयोजनः।।

नान्यं च पूजयेद्देवं न नमेन्न स्मरेन्न च। न पश्येन्नच गायेच्च न च निन्देत्कदाचन।।

नान्योच्छिष्टं तु भुञ्जीयान्नान्यशेषञ्च धारयेत्।" भगवद्भक्तोंको अनन्यशरण, अनन्यसाधन, अनन्यसम्बन्ध तथा अनन्यप्रयोजन वाला होना चाहिए। देवतान्तरों का पूजन, नमस्कार, स्मरण, अवलोकन, गायन और निन्दन मना है। देवतान्तरों का उच्छिष्ट न तो खाये और न धारण करे।

यावन्न दुष्टसंघातो नानादेवनिषेवकः। आगच्छेत्तावदेवाऽयं स्नायाद्वासद्वयेन वा।।

लिङ्गिनोऽशुचयः क्षुद्राः भूतभैरवचिन्तकाः। नानादेवैकनिरताः प्रयोगादिविधायिनः।।

देवान्नभोजिनो मन्त्रपीठविक्रयिणश्च ये। प्रेतान्नभोजिनो विप्रा न पूज्याः श्राद्धकर्मणि।।" लिंग भस्मादि धारण करने वाले, भूत भैरवादि का चिन्तक, अनेक देवों में भक्ति करने वाले, तन्त्रादि प्रयोग करने वाले, देवान्नभोजी, मन्त्र तथा देवपीठविक्रेता, प्रेतान्नभोजी विप्र अपवित्र हैं, श्राद्धादि में निमन्त्रित करने योग्य नहीं हैं।

"नैसर्गिकं तु जीवानां दास्यं विष्णोः सनातनम्। तद्विना वर्तते मोहादतिचारः सनातनात्।।

तस्मात्तु भगवद्दास्यमात्मानं श्रुति चोदितम्। दास्यं विना कृतं यत्तु तदेवं कलुषं भवेत्।। भगवान्का दास होना जीवों का नैसर्गिक धर्म है। दास्यभाव विना जो कुछ भी किया जाये सभी निष्फल होता है।

"दैत्यानां मोहनार्थाय पाषण्डधर्ममुक्तवान्। न तद्विश्वसनीयस्यात्मुमुक्षुणामनागपि।।

तामसानि पुराणानि शास्त्राणि च महामते। स्मृत्योऽपि भवन्तीह कानिचिज्जगति तले।।

विष्णुनापि प्रयुक्तानि मोहनार्थं सुरद्विषाम्। वाक्यानि च वहुन्यङ्ग तामसानि न संशयः।।

तत्र प्रमुखाः देवाः स्वात्मसाम्यतया मता। क्वचित्ततोऽधिकाः प्रोक्ता मोहनार्थं महामते।।" राक्षसों का नाश करेने के लिए शिव ने पाषण्ड धर्म का प्रचार किया। इसीलिए पाषण्ड प्रतिपादन करने वाले शास्त्रों में मुमुक्षुओं को विश्वास नहीं करना चाहिए।

विष्णु वचन (पद्म पुराण) -

"त्वं हि रुद्र महाबाहो मोहनार्थं सुरद्विषाम्। पाषण्डाचरणं धर्मं कुरुष्व च महामते। प.पु. उत्तर **235।23।**

तामसानि पुराणानि कथयस्व च तान्प्रति। मोहनानि च शास्त्राणि कुरुष्व च महामते।24।

कपाल चर्म भस्मास्थि चिन्हान्यपि च सर्वशः। त्वमेवं धृतवान्ल्लोकान्मोहयस्व जगत्त्रये।30।"

शिव वचन (पद्म पुराण) -

"तामसानि पुराणानि यथोक्तं विष्णुना मम। पाषण्ड शैव शास्त्राणि यथोक्तं कृतवानहम्। 235।53।

वेद वाह्यानि शास्त्राणि सम्यगुक्तं मयानघे।54। राक्षसों, दुष्टों को नाश के लिए भगवान्का अवतार होता है। अतः उन्हीं की आज्ञा से शिव ने दुष्टों की बुद्धि भ्रष्ट करने के लिए 'तामसशास्त्र-पुराण' का निर्माण किया।

नारद पञ्चरात्र (भारद्वाज संहिता) -

न देवतान्तरपरा न च कस्यापि साधनम्। परं प्रसाद एवैषा वृत्तिर्विश्वात्मनो हरेः।1।88।

पाषण्ड-शैव-शाक्तादि-तन्त्रार्चालोकनादिकम्। स्वतो ब्रह्माशिवादीनां बद्धानामर्चनादिकम्।1।93।

शाधनत्वाभिमत्या च निजधर्मस्य वर्जनम्। असच्छास्त्रेष्वभिरतिदिव्यशास्त्रावधीरणम्।1।96।

नाद्रियेत्पुराणादीन्राजसाँस्तामसाँस्तथा। अनीशानां परेशत्वं वृथा यत्रोपवर्ण्यते।4।22।

तथा रुद्रेण कथितं मोहनं क्षुद्रकामदम्। तन्त्रं बहुविरुद्धञ्च तामसं परिवर्जयेत्।4।23।

निबन्धनं गुणादीनां निबन्धाँश्चान्यचेतसाम्।4।24।

बाह्यं दुष्टं तमोनिष्ठंविपरीतमनर्थकम्। मतं न सौगतादीनां मनसाऽपि विचन्तयेत्।4।25।

वर्ज्याः पाखण्डशैवाद्यैः स्थापिताश्च तथार्चिताः। अन्यत्र च स्वतो बद्धा नियमात्सर्वदेवताः।4।30।

वर्जयेत्अन्यदेवानामालयाद्युपसर्पणम्। तथा गोपुरन्हर्म्यार्चायानास्त्राद्यवलोकनम्।**4**।**32**।
अशुद्धा ब्रह्मारुद्राद्या जीवा विष्णोर्विभूतयः। तान्वै कुदृष्टयः साम्यात्परत्वादप्युपासते।परिशिष्ट **1**।**18**।
नारायणैकनिष्ठा ये सात्विकास्तान्निबोधत। पुरुषा राजसा ज्ञेया नानादैवतयाजिनः।परि.**1**।**27**।
रजस्तमोऽभिभूतानां न तु मोक्षः कथञ्चन।परि.**1**।**28**।" "प्रणमेदन्यदेवाय न स भागवतःस्मृतः।परि.**1**।**46**।"
देवादीनामशुद्धानां व्यामिश्रं तत्प्रचक्षते।परि.**1**।**79**।"
नानाकामहतज्ञाना नानादैवतयाजिनः। नरा भगवदैकान्त्ये न स्थास्यन्ति कलौ युगे।परि.**1**।**89**।
देवतान्तरशेषन्तु भुक्त्वा स्पृष्ट्वापि वा पुनः।वैष्वकसेनीं क्रियां कृत्वा तच्छेषं प्राश्य शुद्ध्यति।परि.**2**।**76**।
आदिष्टा एव चान्यार्चामन्त्रपुण्ड्राङ्कनामकाः।राक्षसासुरवेताल-व्याल-प्रेता नराधमाः।परि.**3**।**97**।

बृद्ध हारीत -

वेदमध्यापयेच्छक्त्या धर्मशास्त्रञ्च संहिताः।सात्विकानि पुराणानि सेतिहासानि वैष्णवः।।
हरेरनर्षितं यत्तु देवानामर्षितञ्च यत्। मद्य मांस समं प्रोक्तं न भुञ्जीयात्कदाचनः।।
विधिर्ह्येष द्विजातीनां नेतरेषां कदाचन। शिवार्चनं त्रिपुण्ड्रञ्च शूद्राणाञ्च विधीयते।।
देवतान्तरशेषस्य भोजने स्पर्शने तथा। प्रायश्चितं प्रकुर्वीत वैय्युहीमिष्टिमुत्तमाम्।।
पैशाचिकानां यक्षाणां शाक्तानां लिंगधारिणाम्। द्वादशी विमुखानाम्च संलापोऽपि विवर्जयेत्।।
शैवबौद्धस्कान्दशाक्तस्थानानि न विशेत्क्वचित्। वर्जयेत्तत्समीपस्थं जलपुष्पफलादिकम्।।
न निरीक्षेत्देवानामुत्सवादि कदाचन। स्तुतिं याप्यन्यदेवानां न कुर्याच्छृणुयान्न च।।
अन्यं चिन्हाङ्कितं वस्त्रं भूषणासनभाजनम्। वृक्षं पशुं कूपगृहान्भाण्डञ्चैव विवर्जयेत्।।
अन्यालये हरिं दृष्टवा देवतान्तर संसदि।नार्चयेन्न प्रणमेच्च तीर्थं सेवा विवर्जयेत्।।
न तिर्यग्धारयेत्पुण्ड्रं नान्यं देवं प्रपूजयेत्। वैष्णवः पुरुषो यस्तु शिवब्रह्मादि देवतान्।।
प्रणमेदर्चयेद्वापि विष्टायां जायते क्रिमाः।
रजस्तमोऽभिभूतानां देवानां निरीक्षणात्। पूजनाद्वन्दनाद्वापि वैष्णवो यात्यधो गतिम्।।
रुद्रः कालीगणेशश्च कुष्माण्डा भैरवादयः।मद्यमांसाशिनश्चैव तामसा परिकीर्तिताः।।
णारायणं परित्यज्य योऽन्यदेवमुपासते। स्वपतिं नृपतिं हित्वा यथा स्त्रीपुरुषाधमम्।।

श्रीवैष्णवों को यथा शक्ति वेद, धर्मशास्त्र, संहिता, सात्विक पुराण तथा इतिहासादिक पढ़ना और पढ़ाना चाहिए। कोई वस्तु ईश्वर को न अर्पण कर अन्यों को अर्पण किया हुआ मद्य और मांस के तुल्य है। यह विशेष द्विजों के लिए विधि है, शुद्रादिकों के लिए नहीं। त्रिपुण्ड्र का धारण शूद्रों के लिए है। वैष्णवों ब्राह्मणों को देवतान्तरों के अर्पित वस्तु खाने या उससे छुआने पर भी व्यूह सम्बन्धी यज्ञ करके शुद्ध होना शास्त्रों में बताया गया है। पिशाच, यक्ष, शक्ति-पूजक तथा लिंग धारण करने वालों से बातें करना भी मना है। शैव, शाक्त, बौद्ध, स्कान्द के स्थानों में नहीं तो जाये और न वहाँ का जलादि ही ग्रहण करे। देवतान्तरों के उत्सवादि न तो देखे और न उन सवों की स्तुति ही सुने। नित्य व्यवहार के वस्तु भूषण, वस्त्र, पात्रादिकों में भगवान् के आयुधों का चिन्ह छोड़कर अन्य देवों का चिन्ह न लगावे। यदि कहीं अन्य देवताओं के समीप में भगवान्भी हों तो वैसे भगवान्की पूजा न करे और न उनका तीर्थ प्रसाद ही ले।

"विधि हरिहर तप देख अपारा। मनु समीप आये बहुबारा।बा.**144**।**1**।" मनु और शतरूपा कड़ी तपस्या देखकर भगवान् और शिव के साथ ब्रह्मा उनके समीप अनेकों बार गये, किन्तु वे दोनों तो उपरोक्त नियमों से पूर्णपरिचित थे। अतः "परमधीर नहीं चलहीं चलाये।बा.**144**।**2**।" किञ्चित् भी वे दोनों प्रणामादिक की चेष्टा तक नहीं किए क्योंकि "गतिरनन्य तापस नृप रानी।बा.**144**।**3**।" इन दोनों में केवल भगवान की अनन्यता थी। वैष्णवों को शिवादि देवतान्तरों की उपासना नहीं करनी चाहिए। ऐसा नहीं करने से विष्ठा का कीड़ा बनना पड़ता है। रजोगुण तमोगुण प्रधान देवों की पूजा करने से नरक भोगना पड़ता है। रुद्र, काली, गणेश,

भैरवादिक का पूजक, मद्यमांस सेवन करने वाला तामसी समझा जाता है। नारायण को छोड़कर अन्य देवों का उपासक वैसा ही है जैसे राजा की स्त्री राजा को छोड़कर नीच, दरिद्र पर पुरुष को अपना पति बनावे। ब्रहमाविष्णुमहेश इन देवों में कौन श्रेष्ठ है इसके परीक्षा काल में भृगु का वचन है -

"ब्रह्मण्यश्च शरण्यश्च त्वमेव पुरुषोत्तम। ब्राह्मणानां त्वमेवेशो नान्यः पूज्यः सुरः क्वचित्। प.पु.उ.**255**।**57**।
येऽर्चयन्ति सुरानन्यान् त्वां विना पुरुषोत्तम। ते पाषण्डत्वमापन्ना सर्वलोकविगर्हिताः।**58**।
विप्राणां वेदविदुषां त्वमेवेज्यो जनार्दनः। नान्यः क्वचित्सुराणां च पूजनीयः कदाचन। **59**।
अनर्च्या ब्रह्मरुद्राद्या रजस्तमो विमिश्रिताः। त्वं शुद्धसत्वगुणवान्पूजनीयोऽग्रजन्मनाम्।**60**।
नान्यं देव तु विक्षेत ब्राह्मणो न च पूजयेत्। नान्यं प्रसादं भुञ्जीत नान्यस्यायतनं विशेत्।**65**।"
तस्मात्त्वमेव विप्राणां पूज्योनान्याऽस्ति कश्चन। मोहाद्यः पूजयेदन्यान् स पाषण्डी भविष्यति।**69**।
रजोस्तमो गुणोद्रिक्तौ विधीशनौ सुरोत्तमो। शप्तौ मया न पूज्यौ तौ विप्राणां ऋषिस्तमाः।**90**।

भृगु ने कहा है - हे पुरुषोत्तम ! आपही ब्राह्मणों के देव तथा शरणागति करने के योग्य हैं। आपको छोड़कर जो अन्य देवों को भजता या करता है वह निन्दनीय एवं पाषण्डी है। हे जनार्दन ! वेदज्ञ ब्राह्मणों द्वारा आपही केवल पूजनीय हैं। किसी भी अवस्था में अन्य देव पूज्य नहीं हैं। जो कोई मोह या अज्ञान वश किसी अन्य देव को भजता या पूजता है वह पाषण्डी है। परीक्षा के पश्चात् भृगु ने ऋषियों से कहा कि ब्रह्मा और शिव दोनों ही को मैंने शाप दिया है, अतः वे ब्राह्मणों से अपूज्य हैं।

श्रीमद्भागवत-पुराण -

भव ब्रतधरा ये च ये च तान्समनुब्रता। पाषण्डिनस्ते भवन्तु सच्छास्त्र परिपन्थिनः। भा.**4**।**2**।**28**।
नष्ट शौचा मूढ़धियो जटाभस्मास्थिधारिणः। विशन्तु शिव दीक्षायाम्यत्र दैवं सुरासवम्। भा.**4**।**2**।**29**।
मुमुक्षवो घोर रूपान्हित्वा भूतपतीनथ। नारायण कलाः शान्ता भजन्ति ह्यनसूयवः। भा.**1**।**2**।**26**।
रजस्तम प्रकृतयः समशीला भजन्ति वै। पितृभूतप्रजेशादीन्श्रियैरैश्वर्य प्रजेप्सवः। भा.**1**।**2**।**27**।

बृद्धहारीत स्मृति -

रुद्रार्चनंत्रिपुण्ड्रस्य धारणं यत्र दृश्यते। तच्छूद्राणां विधि प्रोक्तो न द्विजानाम्कदाचन।।
प्रतिलोमानुलोमानां दुर्गागणसभैरवाः। यक्ष राक्षस भूतानि विद्याधर गणस्तदा।।
चाण्डालानामर्चनीया मद्यमांस निसेविणाम्। रुद्रार्चनादब्राह्मणस्तु शूद्रेण समतां ब्रजेत्।।
बुद्धरुद्रौ तथा वायु दुर्गागण सुभैरवाः। यमस्कन्दौ नैऋतश्च तामसा देवताः स्मृताः।।

हारीत स्मृति -

भगवन्तमनुद्दिश्य यः कर्म कुरुते नरः। स पाषण्डीति विज्ञेयः सर्वलोकेषु गर्हितः।
यो हि विष्णुं परित्यज्य सर्वलोकेश्वरेश्वरम्। इतरानर्चते मोहात्सलोकः यतिकः स्मृतः।।

भगवान्को छोड़करजो अन्यों के निमित्त कोई कर्म करता है वह पाषण्डी है। रुद्र की पूजा या त्रिपुण्ड्र का धारणविधि ग्रन्थों में शूद्रों के लिए है, द्विजातियों के लिए नहीं। दुर्गा, भैरव, यक्ष, राक्षस, भूत, विद्याधरगणादिक मद्य-मांस खाने वाले चाण्डालादि के देवता हैं। ब्राह्मण यदि रुद्र की पूजा करे तो शूद्र, और यक्ष राक्षसों की पूजा करे तो वह चाण्डाल के तुल्य हो जाता है।
बुद्ध, रुद्र, वायु, दुर्गा, भैरव, यम, स्कन्द और नैऋत तमोगुणियों के देवता हैं। जो मनुष्य भगवान्को छोड़कर अन्यों के निमित्त कोई कार्य करता है वह पाषण्डी है। इनको छोड़ जो मोहवश अन्यों को पूजता है वह नास्तिक है तथा अन्यों का भोग लगाया हुआ खाने वाला मांस-मदिरा भक्षी के तुलय है।

"**ब्रह्माणं शितिकण्ठञ्च याश्चान्या देवताः स्मृताः। प्रतिबुद्धा न सेवन्ते यस्मात्परिमितं फलम्।** महाभा. शान्ति **341**।**36**।" प्रशस्त बुदि वाले व्यक्ति ब्रह्मा रुद्रादि देवों का भजन-पूजन नहीं करते क्योंकि इन सबों की आराधना द्वारा विनाशी एवं सीमित फल मिलता

है। वे सब तो स्वयं पतनशील हैं। वैष्णवों के लिए मोक्ष के सम्बन्ध में तो यही कहा गया है 'तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्यसे' तभी तक विलम्ब है जबतक देहपात नहीं होता। देहपतन होते ही भगवद्भक्त गोष्ठी में जा मिलता है।

"प्राप्य पुण्यकृताल्लोंकानुषित्वा शाश्वतीः समाः। शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते। गी. 6।41।" श्रीवैष्णव रूप में विद्यमान मनुष्य स्वर्ग-लोक से ही आया है क्योंकि 'मनुजः सुरत्वात्' देवता होने के पश्चात् मनुष्य योनि में आकर ही भगवत पद का अधिकारी कोई होता है। तो ऐसी स्थिति में मनुष्यों से पिछड़े हुए देवों की शुश्रुषा से कोई लाभ नहीं है। यह तो भगवान्का अभयदान प्राप्त कर लिया है। "मोक्षयिष्यामि मा शुचः" "अभयं सर्वभूतेभ्यः ददामि...।" फिर उसे अन्य चिन्ता ही नहीं है। भगवान् अपनी प्रतिज्ञा से कभी विचलित भी नहीं होते, जिससे सन्देह का भी अवसर नहीं। हाँ, यदि यह प्राणी भगवान्का नहीं हुआ तथा भगवद्वचन या सत्शास्त्रों में विश्वास नहीं करता तो इससे बढ़कर और दुर्भाग्य क्या हो सकता है ? जो ब्रह्मा रुद्रादि को प्रभावशाली समझकर सेवन-पूजन करते हैं उनका जन्म तो और भी अधिक देर अवेर से इस परम पवित्र वैष्णवकुल में होगा। तभी ही कल्याण होगा। वर्तमान श्रीवैष्णवों की यह अन्तिम देह है। और विशेष तो यह कि जब श्रीवैष्णव के संसर्ग से जड़ वृक्षादि वस्तुओं का कल्याण होता है तो वैष्णवों का तो कहना ही क्या है। 'स्थावराण्यपि मुच्यन्ते...।' उत्तम कर्त्तव्यपरायण होने से मनुष्य देवताओं से भी उच्च हो जाता है। यथा- 'अन्यभिन्द्रं करिष्यामि' विश्वामित्र ने अन्य लोकादि बनाना प्रारम्भ कर दिया था तो इन्द्रादि थर्रा कर विश्वामित्र से क्षमायाचना कर स्थिर हुए। देवगण सदैव मनुष्यों की आशा किया करते हैं। मनुष्य ही उन सबों को खिलानेवाला है।

लौकिक-धर्म, अर्थादि-हेतु नन्द इत्यादि ब्रजवासी, इन्द्रादि देवों की पूजा किया करते थे। इस पूजा को व्यर्थ समझकर श्रीकृष्ण ने सबों को समझा-बुझा कर छोड़वा दिया और इसके स्थान पर मोक्षदायक अपनी पूजा का प्रचार किया। यह जानकर इन्द्र ने तो अधिक रोष दिखाया और ब्रज को दहा देना चाहा, किन्तु कुछ करते नहीं बना। नन्द आदि अज्ञान या मोहवश इन्द्रादि की पूजा परम्परा समझकर किया करते थे, किन्तु उसके विना कोई हानि नहीं समझकर छोड़ दिया तो कोई क्षति भी नहीं हुई। यदि इन्द्र-पूजा उचित होता तो कृष्ण कभी भी नहीं छोड़वाते बल्कि उसमें और प्रोत्साहन देते, क्योंकि 'धर्मसंस्थापनार्थाय' धर्म संस्थापना के लिए ही तो भगवान्का अवतार होता है। देवताओं की प्रचलित पूजा के सम्बन्ध में जानना चाहिए कि गृहस्थ दो प्रकार के होते हैं। एक वह जिनके सम्बन्ध में लिखा पाया जाता है - "देवैश्चैव मनुष्यैश्च तिर्यग्भिश्चोपजीव्ययोः" जिनके द्वारा मनुष्य, देवता, तिर्यग, कीटाणु पर्यन्त जीवित रहते हैं उन गृहस्थों के यहाँ विवाह यज्ञादि में देवता, पितृ, मनुष्य, ढ़ोल, ढ़ाक, बाँस की कनइली, खड़ाऊँ, ऊखल, नाऊ का स्तुरा, कुम्हार का चाक, तेली का कोल्हू, भूमि, कान्दु का घोनसार, कुम्हईन, नाऊन, वारी, सीढ़ी इत्यादि सभी वस्तुएँ पूजे जाते हैं और पूजना चाहिए भी। इन गृहस्थों के घर सभी देव, भूत भैरवादि पूजे जाते हैं किन्तु इसका फल विनाशवान है। यह भी पूजा-प्रसंग यज्ञादि के लिए है, न कि सदा के लिए।

दूसरे प्रकार के गृहस्थ इक्ष्वाकु, अम्बरीष, ययाति आदि थे। वे लोग एक भगवान्की पूजा द्वारा ही मोक्षाधिकारी हुए। इन लोगों से विश्वमात्र प्रसन्न रहता था। ये लोग देवगणों को भगवद्विरोधी समझ कर उनसे घृणा करते थे। किन्तु विष्णु के विषय में तो "विष्णुः प्राणाः दिवौकसः" "मूलहि विष्णु देवानम्" "शाकान्नशिष्टमुपभुज्य यतस्त्रिलोकान्। तृप्तिममंस्त सलिले विनिमग्नसंघः।।" "तर्पयन्त्यङ्ग माम्विश्वमेते पृथक तण्डुलाः।।" "प्राणापहाराय यथेन्द्रियाणाम्तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या।" देवगणों के प्राण एवं मूल विष्णु हैं। इन्हीं के आधार से सभी जीवित रहते हैं। अतः विष्णु की पूजा सबों की पूजा हो जाती है। कृष्ण के मुख में एक शाक की पत्ती पड़ने से उनकी तृप्ति से तीनों लोक तृप्त हो गया था। सुदामा का चूड़ा खाते हुए भगवान् ने कहा कि इस चूड़ा से हमारे अंगों में स्थित अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों की तृप्ति हो रही है। निर्विवाद सिद्ध हुआ कि एक भगवान्की आराधना से विश्वमात्र की आराधना हो जाती है। इसलिए अल्प-श्रम तथा अल्प-साधन से होने वाले भगवान्की पूजा छोड़ अन्यों की पूजा जो अतिश्रम अतिसाधन

से भी साध्य नहीं बल्कि असाध्य ही है, उसके पंजे में कौन पड़ने जाये !

"उलंघित त्रिविध सीम समातिशायी... | स्तोत्र रत्न 16 | " श्री यामुनाचार्य स्वामी कहते हैं कि जो त्रिविध सीमा याने 1- देवतान्तर, 2- विषयान्तर, 3-उपायान्तर को उलंघन कर आपके साथ अनन्यभाव दिखाया वह कल्याण भाजन बन गया। मन्त्रार्थ से लेकर वैष्णवों के जितने भी छोटे बड़े दर्शन हैं सबों में देवतान्तर का निषेध ही किया गया है। "नाना दैवतं भक्त्या युक्तः न भवति मुक्तः न भवति मुक्तः।" डेवतान्तरों में भक्ति करने से कभी भी मुक्ति नहीं मिलती। कल्याणार्थ अर्जुन के प्रश्नोत्तर में भगवान् कहते हैं कि - "मत्प्रसादादवाप्नोति... | गी.18 | 56 | " मेरी प्रसन्नता से ही मुझे प्राप्त करोगे। "...मयिसंन्यस्य मत्परः | गी.18 | 57 | " सभी कर्मो को मुझी में अर्पण करो। "...मच्चित्तः सततं भव | गी.18 | 57 | " मुझमें ही परायण होकर सदा रहो। "...मत्तप्रसादात्तरिष्यसि | गी.18 | 58 | " "इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्यादगुह्यतरं मया | गी.18 | 63 | " गोपनीय से भी गोपनीय ज्ञान तुमको जनाया है। "...न श्रोष्यसि विनंक्ष्यसि | गी.18 | 58 | " यदि नहीं मानोगे तो विनष्ट हो जाओगे याने नरक जाओगे। "... सत्यं ते... | गी.18 | 65 | " मैं सत्य कहता हूँ। "...प्रियोऽसि मे | गी.18 | 65 | " क्योंकि तुम मेरे प्रिय प्रेमपात्र हो। ऊपर के वचनों में सर्वत्र **मत्** शब्द का प्रयोग किया गया है जिससे यह सूचित होता है कि सबों को छोड़कर अपने ही को परम कल्याण कारक सूचित करते हैं। **मत्** शब्द का यही अर्थ होता है। जैसे - 'मत्पुत्रः' मेरा पुत्र। इससे अन्य का निषेध स्पष्ट हुआ। बार-बार मत् शब्द का प्रयोग करने का यही अभिप्राय है। इससे बढ़कर देवतान्तर- निषेध का और क्या प्रवल प्रमाण हो सकता है ? और इसी आज्ञा को यदि मनुष्य नहीं माने तो दूसरी अभाग्यता और क्या हो सकती है ? "पूर्वाभ्यासेन कौन्तेय ह्रियते ह्यवशोऽपि सः | गी.6 | 44 | " यदि पूर्वजन्म के प्रवल कुसंस्कारों के कारण यदि भगवान् का उपदेश नहीं रुचिकर प्रतीत होता हो तो यह भी अभाग्यता ही है। बुद्धियोग के प्रकरण में भी यही भगवान् कहते हैं - "मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् । कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च | गी. 10 | 9 | " एक हमारे ही में चित्त रखने वाले तथा मुझ में जिनका प्राण लगा रहता है वे सब परस्पर एक नित्य हमारा ही रूप-गुण का कीर्तन किया करते, उसी से वे सन्तुष्ट रहते और उसी के रूप-गुणों में रमण किया करते हैं। उन्हीं सब एकांगी भक्तों को - "तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्व कम्। ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते | गी. 10 | 10 | " उत्तम बुद्धियोग देता हूँ जिससे वे मुझको प्राप्त कर लेते हैं। यह बुद्धियोग अनन्य भक्तों को ही प्राप्त होता है। "सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मि...।" एकबार की प्रपत्ति से ही भगवान् लौकिक और पारलौकिक सर्व स्व देने वाले हैं और देते हैं तथापि किसी को देवतान्तर में मन लगे तो भगवान् में अविश्वास का बड़ा भारी दोष लगेगा।

"मोर दास कहाय नर आशा। करै तो कहहु कहाँ विश्वासा | उ.45 | 2 | " भगवान् जब यह जानते हैं कि यह मुझमें विश्वास नहीं करता तो वे भी इसको छोड़ देते हैं। जैसे अन्य बन्धन से ब्रह्मास्त्र तथा अन्य उपाय से शरणागति छोड़ती है। "निमिषं निमिषार्द्ध वा वासुदेवं न चिन्तयेत्। सा हानि तन्महच्छिद्रं ... | वि.पु. | " "कह हनुमान विपति प्रभु सोई । जब तव सुमरिन भजन न होई | सु.31 | 2 | " हनुमान श्री राम जी से कहते हैं कि जिस क्षण मन भगवान्को छोड़ कहीं अन्यत्र देवादिक विषय में या संसार में चला जाता है वही विपत्ति है। "विपदो नैव विपदः सम्पदो नैव सम्पदः। विपद्विस्मरणं विष्णोः सम्पन्नारायणस्मृतः।" वास्तविक विपत्ति भगवद्-विस्मरण और सम्पत्ति उनका स्मरण है। परमात्मा के साथ जीवों के अनेक सम्बन्धों में भतृ-भार्या सम्बन्ध भी है। तो यह सोचना चाहिए कि ऐसा गहन गम्भीर सम्बन्ध होते हुए भी मैं अन्य के समीप क्यों जाऊँ ! क्योंकि भार्या अन्य के समीप गयी कि भ्रष्टा हो जाती है और पति भी शीघ्र ही उसे छोड़ देता है। जीवों की भी यही दशा है। देवतान्तरी होते ही भगवान् उसे छोड़ देते हैं और अन्तकाल तक वह परमात्मा से विलग ही रह जाता है, नित्यबद्ध हो संसार चक्र में घूमते रहता है।

यों तो त्रिदेवों में भी ब्रह्मा तथा शिव को वैष्णव बताया गया है - "स्वचक्रेणाङ्कयित्वा तु ददौ मन्त्रं स्वयं हरिः | प.पु. उ.223 | 38 | " स्वयं विष्णु भगवान्ने ब्रह्मा को चक्रांकित वैष्णव बनाया है। शिव के सम्बन्ध में भी - "वैष्णवानां यथा शंभुः | भा. 12 | 13 | 16 | " वैष्णवों में शंभु की श्रेष्ठता है। किन्तु प्रश्न यह होता है कि महादेव को ब्रह्मा से दो नाता या भाव होना चाहिए, और

है भी। एक, ब्रह्मा शिव के पिता हैं। दूसरा वैष्णव का भाव भी हुआ तो भी शिवने ब्रह्मा का मस्तक काट लिया, विष्णु के साथ लड़ाई लड़ा, तो क्या यही वैष्णवता है ? यही उचित कार्य है ?

दण्डकारण्य में महादेव के सभी भक्तगण रावणादि तथा उसकी जाति- मण्डली ने ऋषियों को विनष्टप्राय कर दिया था। इसकी सारी जानकारी महादेव को थी फिर भी रावणादि को निरीह ऋषियों के भक्षण से रोका नहीं। श्रीवैष्णव के नाते अपने शिष्यों को सदुपदेश द्वारा राक्षसी वृत्ति से रोकना चाहिए था क्योंकि वैष्णवोंके हृदय में दया भाव चाहिए। घण्टाकर्ण महादेव का अनन्य भक्त था किन्तु सदा हिंसा ही में लीन रहता था। भगवान्के यहाँ चलते समय तक वही हिंसा वृत्ति जागृत रही और शीघ्र एक ऋषि को मारकर साथ ले विष्णु भगवान्के समीप पहुँच कर कहा कि - "**ब्राह्मणं (ब्रह्मण्यं)शवमुत्तमम्**। हरिवंश भ.प. 83।6।" यह ब्राह्मण शव अति पवित्र है, लीजिए और खाइये। यदि शिव श्रीवैष्णव हैं तो उनको उसे सुधारना चाहिए था। हाँ, सुधारने पर भी वह नहीं सुधरा था यदि ऐसा प्रश्न हो तो इसका उत्तर यह है कि उसकी राक्षसी वृत्ति पर भी शिव प्रसन्न हो वरदान देने पर उतावला थे, यह सुधारक के लक्षण में धव्बा है।

सचमुच वैष्णव प्रह्लाद को लीजिए, कभी हिंसा नहीं किये और लोगों को समझा बुझाकर सद्मार्ग से जोड़ते थे। किन्तु इनको भी हिरण्यकशिपु ने बाल्य-काल से कौन सा कष्ट नहीं दिया। क्या महादेव को श्रीवैष्णव के नाते आतातायियों से बचाना उचित नहीं था ? नारद को देखिए, कयाधु को इन्द्र के उपद्रव से बचाया। भक्त प्रह्लाद ने असुर शिशुओं को बताया - "**आसुरंभावमुन्मुच्य यया तुष्येत्यधोक्षजः**। भा. 7।6।24।" टुम सब राक्षसपना छोड़ दो इससे भगवान् प्रसन्न होंगे। यही श्रीवैष्णव का वास्तविक कार्य है जिससे सभी असुर- बालक भगवान्के कृपा पात्र बने। इसी प्रकार का कार्य यदि महादेव करते तो वैष्णवता मानी जाती। हाँ, अव रह जाता है कि '**वैष्णवानां यथा शंभुः**' का क्या भाव है ? जैसे गंगा अनादि कालिक है, देवों में सवसे प्राचीन विष्णु हैं। पुराणों में सबसे प्राचीन श्रीमद्भागवत पुराण है - "**नारदाय पुरा प्रोक्ता ब्रह्मकल्प उपावृते**।।" अथवा जैसे गंगा में कर्मनाशा का जल, शहरों की मोरियाँ, मुर्दा तथा पापियों का पाप जाकर भी गंगा को नहीं बिगाड़ती, गंगा सबों को सहन करती है। विष्णु नास्तिकों के वचन, निरीश्वरवादियों का अपमान, पापियों का पाप ग्रहण करते हुए भी सर्वश्रेष्ठ हैं। इसी प्रकार शिव भी कपाल, श्मसान-भस्म, अशुभवेष तथा अपने दुराचारी भक्तों का पक्षपात करते, विष्णु से बार-बार लड़ाई लड़ते हुए भी मान्य हैं। पुराणों में श्रीमद्भागवत के अन्तर्गत सभी प्रकार के विषय रहते हुए भी मन्त्रार्थ ही कहा जाता है। भाव यह है कि शुभाशुभ को वहन करते हुए भी प्राचीन संज्ञा अंत तक बनी रहती है। विष्णु, भक्तों के हितार्थ वराहादि होने पर भी भक्तों से मान्य हैं ही। इसी तरह शिव, भृगु से शापित (ब्राह्मणों से अपूज्य, तुम्हारा भक्त पाषण्डी इत्यादि) होने पर भी मान्य हैं। विष्णु दीक्षाविहीनों को श्रीमद्भागवत सुनने का अधिकार नहीं है फिर भी अनभिज्ञ लोग सुने या पढ़े विना नहीं ही रहते। याने भागवत अवैष्णवों के लिए नहीं है। महादेव भूतनाथ हैं, इसलिए भूतों के लिए हैं, ब्राह्मणों के लिए नहीं। या दैविक बुद्धिवालों के लिए नहीं हैं। इस प्रकार देवतान्तर पूजन का निषेध-वचन अपने को मिलते हैं। दिग्दर्शन्मात्र दिखाया गया है।

4।अनन्यता और उसका स्वरूप

भगवान्ने अपनी प्राप्ति में अनन्यता को अत्युच्च स्थान दिया है। "**न अन्यः अनन्यः, अनन्यस्यभावः अनन्यता**" याने एक विषयक भाव। यह अनेकों प्रकार का हो सकता है किन्तु कल्याणार्थ भगवद्विषय अनन्यता ही भगवान् द्वारा निर्दिष्ट है। शब्द सामर्थ्य द्वारा अन्यों को निरोध पूर्वक केवल एक विषयक भाव अनन्यता शब्द द्वारा सूचित होता है। '**भगवद्विषयक अनन्यता द्वारा कल्याण होता है**' इस मन्तव्य में भगवान्, भागवत और आचार्य सबों की अभिरुचि है। भगवान्का उपदेश है - "**अभ्यासयोगायुक्तेन चेतसा नान्यगामिना**।गी. 8।8।" "**अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः**।गी. 8।14।" "**भजन्ति अनन्य मनसो ज्ञात्वा**

भूतादिमव्ययम् ।9।13।" "**अनन्याः चिन्तयन्तो माम्... 9।22।**" "**भक्त्या तु अनन्या शक्य ...।11।54।**" "**......अनन्येनैव योगेन ... 12।6।**" "**मयि च अनन्ययोगेन...।13।11।**""**... भक्त्या लभ्यः तु अनन्यया।8।22।**"

इसी प्रकार भगवान्ने अनन्यता का बहुत बार व्यवहार किया है। इसकी महत्ता इस तरह दिखायी गयी है - "**नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।गी.11।53।**" मैं वेदाध्यायियों से, तपस्वियों से, दानियों से नहीं प्राप्त होता हूँ किन्तु "**भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया**" अनन्य भक्ति द्वारा सुलभ हो जाता हूँ। यही अनन्यभक्ति अव्यभिचारिणी भक्ति है, सती स्त्री के तुल्य है। अन्यों के प्रति की गयी भक्ति व्यभिचारिणी भक्ति है और वह त्याज्य है। इसका भाव यह हुआ कि जैसे सती स्त्री से पति प्रसन्न रहता है, उसके अधीन रहता है उसी प्रकार अव्यभिचारिणी भक्ति से परमात्मा प्रसन्न रहते या उसी के अधीन रहते हैं। और व्यभिचारिणी स्त्री से पति असन्तुष्ट होकर उसे छोड़ देता है। उसी प्रकार देवतान्तरों के प्रति भक्ति करने वाले को भगवान्छोड़ देते हैं। "**अपि चेत्सुदुराचारो भजते माम्अनन्यभाक्।साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितोहि सः।गी.9।30।**" दुराचारी ही क्यों न हो किन्तु यदि वह भगवान्का अनन्य भक्त है तो वह साधु ही है और वह आदर्श पुरुष है। "**क्षिप्रम्भवति धर्मात्मा।गी.9।31।**" शीघ्र ही वह धर्मात्मा हो जाता है। और आगे "**न मे भक्तः प्रणश्यति।9।31।**" मेरा भक्त है। कुमार्गी नहीं होता, क्योंकि भगवान् शरणागत पुरुषों का योग-क्षेम सर्वदा वहन किया करते हैं।जैसे - घण्टाकर्ण में जैसे ही अनन्यता आई कि उसकी कुवृत्तियों को भुलाकर परमात्मा ने उसको अपनाया, मुक्ति दी। भगवान् कपिल ने साफ-साफ शब्दों में कहा है कि -

"**मयि अनन्येन भावेन भक्तिं कुर्वन्ति ये दृढ़ाम्। मत्कृते त्यक्तकर्माणः त्यक्तस्वजन बान्धवाः।भा.3।25।22।**"

"**विसृज्य सर्वान्अन्यश्च मामेवंविश्वतो मुखम्। भजत्यनन्या भक्त्या तान्मृत्योरति पारये।भा.3।25।40।**" इन श्लोकों में '**ये त्यक्त कर्माणः**' '**अनन्य भावेन**''**दृढ़ां भक्तिं कुर्वन्ति**' '**अन्यान्य सर्वान्विसृज्य**' '**अनन्य भक्त्या**' ये पाँचो वचन अत्यन्त मर्म के हैं। '**त्यक्तकर्माणः**' से अन्य-विषयक कर्मों का त्याग, '**दृढ़ां भक्ति**' से अचल भाव से भक्ति करना सिद्ध होता है, '**अन्यान्य सर्वांच विसृज्य**' से देवतान्तरों का त्याग निश्चित हुआ।

संसार में आस्तिक और नास्तिक दोनों प्रकार के व्यक्ति पाये जाते हैं। आस्तिक वही है जिसे शास्त्रों में विश्वास, ईश्वर में विश्वास और ईश्वर भक्तों में विश्वास हो। यही आस्तिक, समाज के अग्रगामी बनते हैं, और जन-सुधार का उत्तरदायित्व इन्हीं के ऊपर रहता है। भावी पीढ़ी इन्हीं सबों का अनुकरण करती है। इनका कार्यकलाप लोकोपकार के लिए होता है। इन उपकारियों में स्वायम्भूमनु, शुक, वामदेव, नारद, व्यास, कश्यप, ध्रुव, प्रह्लाद, पराशरादि हैं। मनु की कथा, तपस्या प्रसिद्ध है। शुक की भक्ति, मुक्ति प्रख्यात है, वामदेव की मुक्ति, नारद का भक्तिसूत्र, व्यास का ब्रह्मसूत्र, ध्रुव - प्रह्लाद की तपस्या और पराशर का पुराण प्रख्यात है। इसी प्रकार "**ताम्रपर्णीनदी यत्र कृतमाला पयस्विनी।कावेरी च महापुण्या प्रतीची च महानदी।। ये पिबन्ति जलं तासां मनुजा मनुजेश्वर।प्रायो भक्ता भगवति वासुदेवेऽमलाशयः।भा.11।5।39-40।**" इन पाँचो नदियों के किनारे प्रायः भगवद्भक्तों का ही अवतार होता है। इसी भू-भाग में अवतरित हमारे पूर्वाचार्य आलवरादि हैं। इन सबों के भी सिद्धान्त में भगवद्विषयक अनन्यता ही है। "**त्रिभुवन विभवहेतवेऽप्यकुण्ठ स्मृतिः अजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात्, न चलति भगवत्पदारविन्दात् लव निमिषार्द्धमपि सवैष्णवाग्रयः**" जिस सुख के लिए देवगण चिन्तन किया करते हैं उस सुख को भी याने तीनों लोकों के वैभव प्राप्ति के लिए भी जिनका मन क्षण भर के लिए भी भगवान्के चरण-कमलों को नहीं छोड़ना चाहता है वे ही अग्रगण्य श्रीवैष्णव हैं।

"**कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्ध्याऽऽत्मना वानुसृतस्वभावात्।करोति यद्यत् सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयेत्तत्।भा.11।2।36।**" कर्म, वचन, मन, इन्द्रिय, शरीर, बुद्धि, संकल्प और स्वभाव में जो कुछ भी हो, वह नारायण के लिए समर्पित करता हूँ। "**ईश्वरस्य वचः पथ्यम्**" ईश्वर का कहा हुआ पथ्य है। वह यह है - "**यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोसि ददासियत्। यत्ततपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।गी.9।27।**"जो कुछ करो, जो कुछ खाओ पियो, हवन करो, दान दो, तप करो सब कुछ मुझी को समर्पण करो। इसी सिद्धान्त

के उपासक वे लोग थे। "**येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्। ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ताः भजन्ते मां दृढ़ब्रताः।गी.7।28।**" पाप का नाश हो जाने पर ही भगवान्में प्रीति-भक्ति होती है। इससे यह सिद्ध होता है कि पापात्माओं को भगवान् में अनन्यता नहीं होती। भगवत्प्राप्ति का एक दूसरा प्रकार भी कहा गया है।"**त्रिभिर्प्रजापतेर्भक्तः सप्तभिः शंकरस्य तु। विंशत्यग्नीन्द्र सूर्यादेः जन्मभिर्वैष्णवो भवेत्।।**" तीन जन्म तक लगातार ब्रह्मा का, सात जन्म शंकर का, और बीस जन्म अग्नि-सूर्य का आराधन करने से मनुष्य विष्णु भक्त बनता है।

"**कीटेषु जन्म शतकोटिषु मानुषत्वम्। तत्रापि जन्म शतकोटिषु ब्राह्मणत्वम्।।**

तत्रापि जन्म शतकोटिषु वैष्णवत्वम्। तत्रापि जन्म शतकोटिषु मत्परत्वम्।।" कीटपतंगों में करोड़ो जन्म तक रहना पड़ता है, पश्चात् मनुष्य, मनुष्ययोनि में करोड़ों जन्म तक रहने पर ब्राह्मण, करोड़ो जन्म ब्राह्मण रहकर श्रीवैष्णव कुल में और बहुकाल पश्चात् मत्परक होता है। किन्तु इस क्रम में अनन्तकाल की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। इसीलिए यह क्रम गौण है। प्रधान भगवान्का निर्हेतुक कृपा ही है। "**एवं संसृति चक्रस्थे भ्राम्यमाणे स्वकर्मभिः। जीवे दुःखाकुले विष्णोः कृपा क्वाप्युपजायते।।**" उप्रोक्त दोनों प्रकार से भगवान्में अनन्यता होती है। यदि मनुष्य होने पर भी भगवान् में प्रीति नहीं हुई, तो समझना चाहिए कि न तो पूर्वजन्म का उत्तम संस्कार ही है और न भगवान्का वह कृपा पात्र ही है। इसीलिए तो नास्तिक बन बुद्धिहीन पागल की तरह अनर्गल बात किया करता है। परमात्मा जीवों के कल्याणार्थ उपाय और उपेय सब कुछ बन कर अनन्यता का उपदेश करते रहते हैं।

भगवान्का उपदेश यदि हम सबों को प्रयास करने पर भी हृदयङ्गम न होवे तो समझना चाहिए कि पूर्वजन्म का उत्तम संस्कार और उनकी कृपा का अभाव है। फिर भी लक्ष्य-बेधक यदि लक्ष्य नहीं बेध कर सके तो जैसे वह लक्ष्यबेध का प्रयास याने वाण व्यापार नहीं छोड़ता, इसी प्रकार जीव की चित्तवृत्ति भगवान्के प्रति यदि नहीं टिकती तो भी प्रयास नहीं ही छोड़ना चाहिए। लक्ष्य-सिद्धि से विचलित होना अकर्मण्यता है। तीरन्दाज जैसे लक्ष्य वेध नहीं करने पर ग्लानि अनुभव करता है उसी प्रकार मनुष्य को देवान्तर विषय में प्रवृत्ति हो जाने पर ग्लानि अनुभव करना चाहिए।

5।देव शब्द मीमांसा

इस पुस्तिका में सर्वत्र देवतान्तर-निषेध प्रमाणों का प्रतिपादन किया गया है। किन्तु गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं यह कहा है कि - "**देवान्भावयत्अनेन ते देवाः भावयन्तु वः। परस्परं भावयतः श्रेयः परमवाप्स्यथः।गी. 3।11।**" तुम सब देवताओं को प्रसन्न करो और तुमसबों को देवता सब प्रसन्न करें। इस प्रकार परस्पर करने से परमश्रेय याने मोक्ष प्राप्त होगा। "**कामैः तैः तैः हृतज्ञानाः प्रपद्यन्ते अन्यदेवता।गी. 7।20।**" जिन सबों का ज्ञान अनेकों कामनाओं द्वारा अपहृत हो गया है वे सब ज्ञान-शून्य हो हमको छोड़कर अन्यों को प्रपदन करते हैं। "**सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः। अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्।गी. 3।10।**"इसके प्रतिकूल यह भी कहते हैं कि - "**नायमात्मा प्रवचनेनलभ्यः न मेधया न बहुनाश्रुतेन।कठो.1।2।23।**" "**न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानैर्न ......।गी.11।48।**" कल्याण विषय याने भगवान्की प्राप्ति में यज्ञानुष्ठान का निषेध करते हैं। और यह भी कहते हैं कि - "**ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।गी. 9।21।**" जब देवगणों का पुण्य क्षीण हो जाता है तब वे सब मृत्युलोक में ही आ गिरते हैं। तो इन सबों की आराधना द्वारा कैसे परमश्रेय प्राप्त हो सकेगा जब कि अपना ही ठिकाना नहीं है। इन विरुद्धार्थक वचनों का जबतक समन्वय नहीं किया जायेगा तब तक गीता के अर्थो में, भगवान्के वचनों में पूर्वापर विरोध होगा और पाठकगण भी भ्रम में ही पड़े रहेंगे। गीता के अर्थज्ञान सम्बन्ध में यों कहा गया है - "**सम्यक्जानाति वै कृष्णः क्वचित्कौन्तेय एव च। व्यासो व्यासपुत्रो वा याज्ञवल्क्योऽथ मैथिलः।।**" गीता का वास्तविक अर्थ तो श्रीकृष्ण ही जानते हैं। उनका कृपापात्र अर्जुन जिसकी रथवाही भी भगवान्ने स्वयं की, वे तो क्वचित् में ही रह गये तो औरों की तो बात ही क्या कही जाए ? यानि गीता की महानता दुर्गम है।

देव शब्द का कई अर्थ होता है। "देव देवो हरिः पिता।वि पु 1।9।126।" "दैवतदैवतानाञ्च" "आदि देवो जनार्दनः।वि पु 1।9।142।" इन स्थलों में देवता शब्द विष्णु का वाचक है। त्रिदेवों में विष्णु देवता ही कहाते हैं। भगवान्के दिव्य पार्षद नित्यलोक में रहनेवाले अनन्त गरुड़ादि 'तत्रनित्याः', ईश्वर नियोगात् सृष्टि स्थिति संहारान्कर्तु शक्ताः पर व्यूहादि सर्वावस्थास्वप्यनुसृत्य कैंकर्य करणशीलाः विष्वक्सेन प्रभृतयोऽमराः" देव शब्द वाच्य हैं।

श्रीभाष्यकार स्वामी -

"दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता।गी.16।5।"

दैवी - मदाज्ञानुवृत्ति रूपा सम्पत्विमोक्षाय मुक्तये भवति क्रमेण मत्प्राप्तये भवति इत्यर्थः।

आसुरी - मदाज्ञावृत्ति रूपा सम्पत्निबन्धाय भवति अधोगति प्राप्तये भवतीत्यर्थः।तथा -

"द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च।गी.16।6।" "सर्गौ द्विविधौ दैवाश्चासुरश्चेति।" "देवानां मदाज्ञानुवृत्तिशीलनामुत्पत्तिः।।" इन उक्तियों के द्वारा देव शब्द, सतोगुण वृत्तिवाले तथा सदाचारियों का वाचक हुआ।

"धरणी देवोऽथवाकन्याका सोदरः" यहाँ देव शब्द ब्राह्मण मात्र का बोधक हुआ।इस प्रकार देव शब्द वाच्य विष्णु, भगवान्के नित्यलोक वासी दिव्यपार्षद, सदाचारी, सतोगुणी, ब्राह्मण और इन्द्रादि देव समझे जाते हैं। किन्तु प्रसंगतः यथावसर निषेध वाक्य से इन्द्रादि देवों को समझना चाहिए और विधि वाक्य द्वारा अन्य भगवान्, भागवत, सदाचारी भगवान् के पार्षद और ब्राह्मण आदि समझे जायेंगे। और इसी ढंग से समझने पर भगवद्वचनों या सच्छास्त्रों के पूर्वापर विरोध का कोई अवसर ही नहीं आयेगा। अतः "देवान्भावयतानेन ...गी.3।11।" इश स्थल में देव शब्द द्वारा परमभागवत समझे जायेंगे। उन्हीं के यजन-पूजन द्वारा कल्याण प्राप्त हो सकता है। "अराधानानां सर्वेषां विष्णोराराधनं परम्।तस्मात्परतरं देवि तदीयानां समर्चनम्।" ऐसा वचन पाया जाता है।"जग जपु राम राम जपु जेही।अयो.217।4।" "जो अपराध भक्त कर करई। राम रोष पावक सो जरई।अयो.217।3।" यह भी पाया जाता है। इन्द्रादि देवों की पूजा से केवल लौकिक त्रिवर्ग-अर्थ-धर्म और काम की सिद्धि मिलती है न कि कल्याण का। अतः श्रीकृष्ण ने ब्रजवासियों द्वारा कीजानेवाली इन्द्र-पूजा बन्द करवा कर मोक्षदायक अपनी पूजा उन सबों से करवायी जो आज भी प्रचलित है। "नायमात्मा प्रवचनेनलभ्यः न मेधया न बहुनाश्रुतेन।कठो.1।2।23।" इसके द्वारा यज्ञ-निषेधसे क्षुद्र-फलदायक यज्ञों का निषेध किया गया है। वास्तविक यज्ञ द्वारा अधोलिखित यज्ञों को समझना चाहिए।

बृद्धहारीत स्मृति अध्याय 7

श्रृणु राजन्प्रवक्ष्यामि सर्व निरवशेषतः।इष्टीनाञ्च विधाञ्च हरेरुत्सव कर्मणाम्।।
नारायणी वासुदेवी गारुड़ी वैष्णवी तथा। वैय्यूही वैभवी पादमी (त्री) पवित्री पावमानिका।।
सौदर्शिनी च सेनेशो आनन्ती च शुभाह्वया। महाभागवतीत्येताः सर्वपापहरा शुभाः।।
यज्ञार्थमेव संसृष्टमात्मवर्ग चतुष्टयम्। यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्तु तदेषां कर्म बन्धनम्।।
वह्निर्जिह्वा भगवतो वेदा अंगाः सदाध्वरे। अस्थीनि समिधः प्रोक्ता रोमादर्भाः प्रकीर्तिताः।।
स्वाहाकारः शिरः प्रोक्तं प्राणा एव हवीषि च। सर्व वेद क्रिया भोगा मन्त्रा पत्न्य प्रकीर्तिताः।।
एवं यज्ञ वपुर्विष्णुर्विदित्वैनहुताशने।
यज्ञो यज्ञपतिर्यज्वा यज्ञाङ्गो यज्ञवाहनः। यज्ञ भृद्यज्ञकृद्यज्ञी यज्ञभुग्यज्ञ साधनः।।
यज्ञान्त कृद्यज्ञ गुह्यमन्नमन्नाद एव च। तस्मादेनं विदित्वैनं यज्ञं यज्ञेन पूज्यते।।
कोऽयं लोकोऽस्त्यज्ञस्य कथं स्यात्परतः शुचिः।द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञाः योगयज्ञास्तथापरे।।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च सदा कुर्वन्ति योगिनः। हरेर्भोगतया कुर्यान्न साधनतया क्वचित्।।
साधनं भगवान्विष्णुः साध्याः स्युर्वैदिकाः क्रियाः। शेषभूतश्च जीवस्य तद्दास्यैकफलाः क्रियाः।।
श्रुतिस्मृत्युदितं कर्म तद्दास्यं परिकीर्तितम्।नैसर्गिकं तथा कुर्यात्तद्दास्यकं निकीर्तितम्।।

वंदिकेनैव मार्गेण पूजयेत्परमेश्वरम्। अन्यथा नरक याति कल्पकोटि शतत्रयम्।।
तस्मात्श्रुतिउक्तमार्गेण यजेद्विष्णुं हि वैष्णवः। अर्चायामर्चयेत्पुष्पैरग्नौ च जुहुयाद्धविः।।
ध्यायेत्तु मनसा वाचा जपेन्मन्वान्सुवैदिकान्।एवं विदित्वा सत्कर्म भोगार्थं परमात्मनः।।
कुर्वीत परमैकान्ती पत्युः पत्नी यथा प्रिया। इमां च वासुदेवेष्टीं यः कुर्याद्विष्णवोत्तमः।।
कुलकोटिं समुद्धृत्य स गच्छेत्परमंपदम्। इष्ट्याऽनया पूजितेशे रोगसर्पाग्निभिः शमेत्।।
वैनतेयसमो भूत्वा भवेदनुचरो हरेः। वैष्वकसेनीमिमां हुत्वा विष्वकसेन समोभवेत्।।
प्रभूत धनधान्याठ्यमैश्वर्यञ्चव विन्दति।

इन सभी त्रयोदश प्रकार के यज्ञों में मनुष्य मात्र का अधिकार है।इन यज्ञों के द्वारा सभी प्रकार के लौकिक तथा परलोक-सिद्धि भगवत्प्राप्ति मोक्ष होता है। यह गीता के अनुकूल भगवद्वचनों का पोषक है। गीता के सोलहवां अध्याय के प्रथम श्लोक के यज्ञ शब्द का अर्थ श्रीभाष्य स्वामी लिखते हैं - "यज्ञः फलाभिसन्धिरहितभगवदाराधनरूपमहायज्ञाद्यनुष्ठानम्" "स्वाध्याय" "तदाराधनप्रकारस्य च प्रतिपादकः कृत्स्नो वेद इत्यनुसन्धाय वेदाभ्यासनिष्ठा।"इन दोनों शब्दों का तात्पर्य वेदान्ताचार्य स्वामी लिखते हैं कि - "यजन्ते नाम यज्ञैस्ते दंभेनाविधिपूर्वकम्" याने अविधि पूर्वक दंभयुक्त, असुर, राक्षसों का यज्ञ से भिन्न "अत्र मोक्षप्रकरणेऽभिमतं सात्विकयज्ञविशेषमाह" "समस्तनित्यनैमित्तिकोपलक्षणतया यज्ञोपादनमित्यादि शब्दः" "अपकृष्टदेवताविषयस्य अल्पफलकाम्यकर्मविधायकस्य वेदभागस्य 'यावनार्थ उदपान' न्यायेन मुमुक्षुणानभ्यसनीयत्वम्।"

इस प्रकार सभी जगहों पर देव या यज्ञ शब्द के द्वारा ग्राह्य और अग्राह्य का विचार कर गीतादि सच्छास्त्रों का अर्थ किया जायेगा तो भगवद्वचनों के अनुकूल होगा। अन्यथा गीता में प्रवलविरोध होगा यदि 'देवान्भावयतानेन...।' यहाँ पर देव से इन्द्रादि देव समझा जाये। क्योंकि गीता तो ईश्वर की अनन्य भक्ति की प्रतिपादिका है। सर्वत्र अनन्यता ही भरी पड़ी है। नीचे कुछ गीता के स्थलों का निर्देश किया जाता है जहाँ-जहाँ अनन्यता विषयक शब्द आये हैं -

3।10,3।30,6।14, 6।17, 7।1, 8।14,
9।13-22-27-30-34, 10।3-9-10, 11।54-55,
12।1-2-6-7-8-10-14-18,
13।10, 14।26, 15।19,
18।55-56-57-58-62-65-66-68।

गीता के प्रायः सभी अध्यायों में अनन्यता विषय आ गया है। अतः उपरोक्त कथनानुसार ही देव तथा यज्ञ शब्द का अर्थ करने से पूर्वापर विषयों का समन्वय हो सकेगा, अन्यथा नहीं।

"योऽन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते। किं तेन न कृतं पापं चौरेणात्मापहारिणा। महाभा. उद्यो.प. 42।37।"

।। सम्पूर्णम् ।।

।।श्रीमते रामानुजाय नमः ।।

भक्तवर -
ध्रुव - प्रह्लाद चरित्र

रचयिता
श्रीस्वामी पराङ्कुशाचार्य
सरौती मठाधीश
रामपुर चौरम
गया

परांकुश प्रेस, हुलासगंज (जहानाबाद)

चतुर्थ संस्करण, संवत् 2067 **2 फरवरी 2011**

श्रीमते रामानुजाय नमः

ध्रुव - चरित्र

1। माता सुयोग्य पाकर सुत क्या न कर सके। यह कारण वह कारज सुत क्या न कर सके।।
सु अंजनी आराधन कर श्रीनिवास के। हनुमान पुत्र जाकर लंका जला दिये।।
माताके कुल दोष से नृप वेणु अस भए। एक मैं हूँ जगदीश्वर ईश्वर न मान के।।
जननी भई कयाधु नारद के ज्ञान से। प्रह्लाद पुत्र जिसके पावक न जल सके।।
माता बड़ी पृथा के सुत पार्थ से हुए। जो पात्र बने सुन्दर गीता के ज्ञान से।।
सुन्दर सुनीति माता से पुत्र ध्रुव हुए। वह बाल पञ्चवर्षा हरिचरण धर सके।।
अस पुत्र अदिति ने जने व्रत नियम धर्म से। उन्चास खण्ड हो गये पर फिर न मर सके।।

2। अन्योक्ति - ध्रुव परिचय वन गमन हेतु।
मनु के सुत उत्तानपाद नृप बुरा किये दो ब्याह किये।
प्रथम पत्नी तज सुनीति को अधिक सुरुची में प्रेम किये।।
सिहासन पर बैठ नृपति ने सुरुचि पुत्र को गोद लिया।।
बार बार चुचकार चूम मुख उत्तम को अति प्यार किया।।
ध्रुव ने पितृगोद उत्तम लख स्वतः गोद की चाह किया।।
ठुमुक ठुमुक चलकर अपने को निकट चरण नरनाह किया।।
जाकर वह सिंहासन के ढिग नृपति चरण युग को पकड़ा।।
बाबूजी लो गोद हमें भी भोली सूरत में अकड़ा।।
राजा किंकर्त्तव्य मूढ रानी भय नेक न बोल सके।।
अत्याचार किये अतिशय वे जो न हृदय पट खोल सके।।

3। अन्योक्ति - रजोगुण का फल।
राजा ऐसे होते ही हैं घरनी जिनको ठगती ही है।।
दूषण से बचते न कभी वे अपने अयसी बनते ही हैं।।
अश्वप नृप ने कीनी जैसी दशरथ ने भर दीनी वैसी।।
बड़े बड़े बुड़ते जब ऐसे लघु जन ही बच सकते कैसे।।
बच्चे तो अनुकरणशील वह देखा देखी ही करते हैं।।
कुछ अवला ऐसी होती है सौत नाम से जो जलती है।
सौत -पुत्र ध्रुव को लेकर वह वक्र भृकुटी बक- बक करती।
सुरुचि झटक ध्रुव को कहती है हीन और कटु वचन महा।।

4। संकीर्ण हृदय वाली स्त्रियों के व्यवहार
रे बालक अनजान कहाँ तुम जात पिता के कोरे में।।
चल -चल हट- हट दूर- दूर हो उधर न जाना भोरे में।।
दुर्भागा की भाग्यवान से क्या तुलना है हो सकती।।
उत्तम के समान ही तेरी कहाँ प्रतिष्ठा हो सकती।।
रे ध्रुव मेरा पुत्र नहीं तुम कर हिसका मत उत्तम का।।
चाहो मेरा सुत बनना तो ध्यान धरो पुरुषोत्तम का।।

5। अन्योक्ति -क्षत्रियों का तेज

ध्रुव में क्षत्रि का तेज रहा अपमान भला सहता कैसे।।
ज्यों नाग शीश पर चाँप पड़ी लम्बी श्वासा लेता तैसे।।
वह फरफरात अधरों दोनों आया माता ढिग रो करके।।
व्याकुल सुनीति ने बच्चे को ले गोद कहा सुध खो करके।।
कह कह लाला क्यों रोता है लम्बी श्वास क्यों लेता है।।
तुम गिरा कहीं क्या चोट लगी क्योंकर न मुझे कह देता।।
ध्रुव कसक -कसक कर सिसक-सिसक क्यों हिचक-हिचक आँखें मलता
रुक-रुक जाता है कंठ विकल पर दिया पूर्णतः हाल बता।।
सुनते सुत की दुख भरी बात मर्माहत सो वह हो आई।।
आँसू की धार चली बहकर अँधियाली आँखों में छाई।।
सुत को छाती से लिपटा कर ममता की पुतली सी रानी।।
धीरज धर सुत मुख चूम -चूम बोली कल्याण मयी वाणी।।

6।सुनीति की करुण भरी वाणी

बाबु हो करमगति मेटे से मिटत नाहीं, कैसे के बुझाऊँ बाबू कैसे समझाऊँ हो।।
बहत सुधाकर के पियत हलाहल के लाला ये करम फल कहलो न जाय हो।।
पुत रतनाकर के घर- घर भीख माँगे बबुआ करम देखो लख न लखाये हो।।
हमरा अभागिनी के कोख से जनम लेके राजा जी के गोद बैठे मत कहुँ जाउ हो।।
राजा जी के टहलनी के नजरो न देखैं मोरा ऐसी दुर्भागिनी के गोद तुम आउ हो।
हमहु कहति बाबू मन में विचार देखु हरि चरणन सेई सकल बनाऊ हो।।
जेहि चरणन सेई ब्रह्म इन्द्र रुद्र पद पाइ पाइ धन्य होहिं तिनही मनाउ हो।।
छोड़ू बाबू सब सुख मान अपमान सब अब भगवत पद तुम अपनाउ हो।।

7। ध्रुव के विषय में अन्योक्ति

सुनकर माता के वचनामृत ध्रुव उतर गोद से ठाढ़ भया।
वह गिरा चरण पर माता के वन चलने को तैयार भया।।
गृह के सुख से मन मोड़ा है पितृ से नाता ऋण-तोड़ा है।
भगवत पद में मन जोड़ा हैनहिं प्रेम हृदय में थोड़ा है।।

माता से ध्रुव -

दे माता शुभ आशीष हमें, आज्ञा धर शीश चलुँ वन में।
रह के भगवत पद सेवन में, है श्रद्धा उमड़ पड़ी मन में।
तुमने मुझको शुभ ज्ञान दिया, ओ बड़ी मातु का काम किया।
है शुद्ध जननि की यह करनी, है ज्ञानिजन को यह बरनी।

अन्य -

ईश्वर जिसको अपनाता है।सो तुरत दीन बन जाता है।।
सब सम्बन्धी हट जाते हैं। या सबसे वह टल जाता है।।
जिसके सम्मुख वह जाता है। तिसके भारी हो जाता है।।
जिसको यह जगत भगाता है। तिसको भगवत अपनाता है।।
हरि भक्तों को मन भाता है। सुन्दर इतिहास बनाता है।।

इसको सद्ग्रन्थ बताते हैं। इसको ज्ञानी जन गाते हैं।।

8। अबोध ध्रुव की याद करके माता का हृदय बतलाता है।

बाबू दुर्बल तोर गात, गरम शीत बात, सहब वन जात, मनहीं अकुलात, यही से डरात हो लाल।।
लाला वन में रहत बड़ शेर, धरत सब केर, लागत नहीं देर, भक्षत सब केर, फिरत चहु ओर हो लाल।।
बाबू हमरो कहत पतियाहु, कहहिं सब काहु, सुनहु सब ताहु, वनहि मत जाहु, घरहिं रह जाहु हो लाल।।
लाला सह के सकल दुःख पीर, धरहु मन धीर, भजहु रघुवीर, हरत सब पीर, घरहिं रह बीर हो लाल।।
लाला तब लख विपति बिताएब, मन समुझाएब, अरु बहलाएब, दिनवां गंवाएब, तोहरो पढ़ाएब हो लाल।।

9। ध्रुव कर्त्तव्य

है जननी जनक सो जो भगवत में लगा दे। वह परम मित्र सो जो भगवत में लगा दे।।
है पूज्य गुरु सो जो भगवत में लगा दे। जल्लाद है वही जो इस जग में फँसा दे।।
अब जाने दे री माइ अब जाने हमें दे। चरणन परुं तुम्हारे अब जाने हमें दे।।
तेरी दया से माता मंगल पदे-पदे। तुम मोह बस न होकर जनि रोक हमें दे।।

मोह मग्ना माता -

बाबू जनवन वनचरवा, तु पाँच वरस का।
पिता तोरे ऐसे त्यागे, घर में न मन लागे, लाला तु रह ममहरवा। तु पाँच वरस का।।
मामु तोर प्यार करे, नानी ले दुलार करे, सब सुख तोरे ननिहरवा। तु पाँच वरस का।।
गोदी में ही खेले लाला, घर से दुआर तक, कबहुँ न देखल बहरवा। तु पाँच वरस का।।
हुँड़रा के नाम सुन, सियरा के बोल सुनी, दौड़ी गिरत अँकवरवा। तु पाँच वरस का।।

भावीवश पुनः धैर्य धारण कर सुनीति आशीर्वाद देती है -

भगवान सदा कल्याण करैं। सब देवन हूँ सनमान करैं।।
नहीं कोई कहूँ अपमान करैं। ग्रह तोहि सदा शुभ दान करैं।।
हरिहूँ तप को फल दान करैं। वन जन्तु मिले वह मान करैं।।
नर देव भले अगवान करैं। सब लोग बड़े पर मान करैं।।

आशीर्वाद के पश्चात् माता उपदेश करती हैं -

कबहूँ घर का सुध ना करना, चित दे प्रभु की सेवा करना।
प्रभु -पद्म -चरण में मन धरना, अति प्रेम निरन्तर ही करना।
भगवत पद जो अपनाता है, वह जग में पूज्य कहाता है।
वह चार पदारथ पाता है, हरि के प्रियतम बन जाता है।
वह तारण-तरण कहाता है, नर जीवन धन्य बनाता है।
उसको सब शीश नवाते हैं, भगवान जिसे अपनाते हैं।

10। देवर्षि नारद से ध्रुव की प्रार्थना -

गुरुदेव प्रणाम करौं तुमहीं, वह राह बतावहु जी हमहीं।
जिसमें भगवान मिले हमहीं, वह यत्न समस्त करौं हमहीं।
उनके पद प्रेम बढ़ै हमहीं, भगवान कहूँ न तजैं हमहीं।
अति दीनदयाल अहो तुमहीं, अति शीघ्र मिलावहु जी हमहीं।
मत भाव भुलैं कबहूँ हमहीं, प्रभु दैन्य हरैं हमरे सबहीं।

आतुरतावश पुनः -

शुभ आशीष करौं बाबा जी, मैं तो बालक अनजान सुनौं बाबा जी।
आप हैं गुरु सुजान मेरे बाबा जी। हौ तुम दया के निधान मेरे बाबाजी।
कृपा करके कह दो तुम बाबाजी।।

11। ध्रुव को नारद का उपदेश और प्रेम की परीक्षा -

बालक पाँच वरस का है ध्रुव लौट-लौट जा घर को।
दुराराध्य भगवत पद है ध्रुव तुम लौट-लौट जा घर को।
समय तुम्हारा खेल कूद का क्यों पड़ता ईर्षा में।
वन बसते हिंसक जन्तु मनुज को खाते। ध्रुव तुम लौट-लौट जा घर को।।
योगी जन निशि बासर खोजत सो कबहूँ नहीं पावै।
ज्ञानी से जो दूर रहता है तुम कैसे के पावै। ध्रुव तुम लौट-लौट जा घर को।।
कोमल गात सुखात न देरी भूख प्यास नहीं रुकती।
कहाँ अकेले जायेगा वन में वचन हमार मान ले। ध्रुव तुम लौट-लौट जा घर को।।

अन्योक्ति -

तीर गोली का घाव तन से जाता है। घोर दुःख विषाद भी मन से जाता है।1।
कठिन वचन का न घाव मन से जाता है। सो यह ध्रुव का इतिहास ही बताता है।2।

12। ध्रुव सन्त का महत्व कहते हैं -

बाबा राह बता दो हमको।
गंगा पाप हरत हिमकर तप, सुरतरु हर दारिद को।
संतन पाप ताप दारिद हर, तनु धर सकल सुखद को। बाबा राह बता दो हमको।।
देवन सेवन सरिस देत फल, शुभ अरु अशुभ न माने।
संत दरश कल्याण देत फल, तृप्त करत नयनन को। बाबा राह बता दो हमको।।
तुम्हरे दरश सब विधि से, उदय होत सब नर के।
कर उपदेश सबहिं मेटत हो जग दुख जनम मरण को। बाबा राह बता दो हमको।।
नरन हृदय अज्ञान वासना विविध दोष उपजावे।
ताहि नाश नारद कहलायो दे दे ज्ञान रतन को। बाबा राह बता दो हमको।।

13। नारद ध्रुव से कहते हैं कि तुम बच्चे हो, लौट जाओ, किन्तु ध्रुव दृढ़ता पूर्वक कहता है -

जर जाउँ कहीं मर जाउँ कहीं। विष खाउँ कहीं घर जाउँ नहीं।1।
डूब जाउँ कहीं दह जाउँ कहीं। मर जाउँ कहीं घर जाउँ नहीं।2।
कट जाउँ कहीं बँट जाउँ कहीं । मिट जाउँ कहीं घर जाउँ नहीं।3।
चल जाउँ कहीं टल जाउँ कहीं। मरजाउँ कहीं घर जाउँ नहीं।4।

14। सो ऐसा क्यों - अन्योक्ति

एक क्षत्रि के घोर तेज पुनि, रह सुनीति के कुक्षी जैसे। माता के उपदेश भला वह, महावीर मुड़ता कैसे।।
है संकल्प सत्य जिसके शुभ, नियम किया विचले कैसे। अन्तर्यामी कृपा करके भेजे सो घर फिरता कैसे।।
उदयाचल पर उगने वाले, सूर्य नहीं रुकते जैसे। होनहार बालक इस जगमें, हो करके रहता तैसे।।

15। नारद ध्रुव से कहते हैं -

जो तुम भगवान का दर्शन किया चहो, परम प्रेम से हरि को ध्यान यों धरो।1।

नील नीरद नील मणिन नील कमल से, शंख चक्र गदा पद्म हाथ में धर्‌यो। **2** ।
मनहूँ चन्द्र दश गुण परस कर भयो, बज्र ध्वजा अंकुश घट कुलिस छत्र सो। **3** ।
चरण कमल दो दो शुभ रेख से भर्‌यो, विहसित मुख पंकज को ध्यान तुम धरो। **4** ।
मंत्र द्वादशाक्षर की जाप नित करो, मधुवन में जाकर तुम काम यह करो। **5** ।
ज्ञान शक्ति तेज वीर्य बल यश मा हो, जिन में यह गुणगण भगवान सो अहो। **6** ।

16 । शकुन - ध्रुव वन चले, इस प्रसंग में अन्योक्ति -

सो हरि सुमिरत मन माहीं, चले मग जाहीं, सुशकुन जनाहीं, सुपाठ पढ़ाहीं, कहत हरि जै जै जै। **1** ।
वह हरि मिलने की चाह, मनहीं उत्साह,सुनकुल निगाढ़, कुसुम मग माँह, सुनत हरि जै जै जै। **2** ।
आगे में गैया पिलाती, दही लिये जाती, सुहागिन गाती, बाल खेलाती, कहत हरि जै जै जै। **3** ।
बाँमे हीं चासो की पाँती, सुसामा लखाती, मृगिन गण आती, दाहिन चली जाती, नहरुअन लै लै लै। **4** ।
सरवर में मीन छलकते, हूँ चमचम चमकते, कोई मंडल बनाते, हैं कीर्तन को गाते, कहत मिल जै जै जै। **5** ।

17 । मधुवन (मथुरा) में पहुँचकर ध्रुव का अनुसन्धान -

बहुत बार भगवान अहै मधुवन में आये, यही मधुवन में हरि अपनी ले गाय चराये।
यही मधुवन के रेणु चहत विधि शीश चढ़ाये, यही मधुवन में मुनिगण सब तृण बन रह छाये।
यही मधुवन रज दुर्लभ कोउ बड़भागी पाये, यही मधुवन ही द्विजवधु हरि के भात खवाये।
यह मधुवन के रज सिर धर नहिं यमपुर जाँय। पाप मथन के कारण से मथुरा कहलाये।
ज्ञानी गोलोक कहैं इसको,न कहूँ भगवान तजै इसको।
ध्यानी जन ध्यान धरैं इसको, हमहूँ परनाम करौं इसको।

18 । नारद के उपदेश के पश्चात्-अन्योक्ति

नारद के उपदेश सुना ध्रुव मधुवन को वह जाता है। कालिन्दी के तट पर सो वह अर्चा को अपनाता है। **1** ।
प्रथम मास में तीन दिवस पर कैथ वैर को खाता है। मास दूसर में घास पात छव दिन में भोग लगाता है। **2** ।
नव नव दिन पर मास तीसरे में जल पीकर रहता है। हवा पान कर चौथे ही में गाढ़ा ध्यान लगाता है। **3** ।
मास पाँचवें के लगते सो घोर समाधि लगाता है। छठे मास में श्वास रोककर तन की सुधी भुलाता है। **4** ।
निश्चल प्रेम भया भगवत में जड़ से खड़ा लखाता है। यह निरोध प्रेमा भक्ति को लक्षण मुनि जन गाते हैं। **5** ।
वैदिक लौकिक क्रिया कर्म सब आप-आप छुट जाते हैं।

19 । ध्रुव में ऐसे महत्व का हेतु यह है -

मनु स्वायंभुव वंश का प्रभाव आ रहा। माता हृदय पवित्र संस्कार छा रहा। ।
नारद के दर्शन के बड़ पुण्य भी रहा। तैसे ही सदुपदेश से पवित्र मन रहा। ।
यह चारो ही मिलकर वह चार दे रहा। सो अन्त एक आपही वह चार कर रहा। ।

20 । घोर तपस्यारत ध्रुव को देख अन्य देवता के उपद्रव -

घोर तपस्या से हलचल हो देवलोक अकुलाता है। सचिपति आदिक सह न सके सो अस्त्र-शस्त्र धर धाता है। **1** ।
काटु-काटु सब खाउँ-खाउँ कह भीम रूप दिखलाते हैं। प्रेत भूत सब विविध भाँति से सब मारु-मारु गोहराते हैं। **2** ।
कड़-कड़ दाँत जीभ लप-लप कर मुख से आग बहाते हैं। हारे सब उपाय बहुविध कर ध्रुव नहीं तनिक चिताते हैं। **3** ।

21 । पशुओं का प्रेम -

उस ध्रुव को लख बाघ सिंह आते हैं। पर वैर छाड़ प्रेम को बढ़ाते हैं। ।

पास में ही बैठ चाट-चाट जाते हैं। सूँघ -सूँघ बार-बार फेर आते हैं।।
घूम-घूम बार-बार ही चिताते हैं।कोई जन्तु नहीं डरते डरवाते हैं।।
सब मिल-मिल अति नेह लगाते हैं। जनु सबके ही सबसे सब बनाते हैं।।
सोई दीन पर दयालु कृपा करते हैं।रूप धर कर प्रकाश हृदय करते हैं।।
ध्रुव ध्यान में निमग्न अचल रहते हैं।छवि श्याम को निहार भाव करते हैं।।
अधिक प्रेम से प्रसन्न विहरते हैं।नहिं मन को चलाते नहीं चलते हैं।।

22। मूर्ति द्वारा ध्रुव हृदय में भगवान का दर्शन करते हैं -
कहीं दिनकर कहीं निशिकर कहीं विद्युच्चमकते हैं।कहीं हैमी कहीं रजनी कही उड़गन दमकते हैं।।
इन्दीवर कुमदुनी साथ कहुँ चम्पक विकसते हैं।कहीं जल पिच्छ वर्ती चमकते देख पड़ते हैं।।
कहीं वासव धुनष जुग उग विनशते ना जमकते हैं। कहीं काली कहीं पीली कहीं मधुकर निवसते हैं।।
कहीं मुक्ता कहीं मरकत कहीं कल्हार खिलते हैं। सबन कर जोत मिलकर एक संग जगमगाते हैं।।
सो दोउ यह आँख मिलने का यही फल आज मिलते हैं। ध्रुव के कण्ठ गद्‌गद् हो नयन से नीर झरते हैं।।
यही है ब्रह्म पर आनन्द में सब ज्ञान तरते हैं।

23। दर्शनोपरान्त मानसिक उपचार द्वारा पूजन -
ध्रुव मन के संभार भक्ति से सेवन अर्पन करते।अर्घ्यादि उपचार सकल मन ही मन करते।**1**।
पराधीन भगवान भक्त से भोजन करते।दे आचमन प्रेम कर्पूर निराजन करते।**2**।
तुलसी दल ले सहस्रनाम से अर्चन करते।पुनि दो कर से धर भगवत के चरणन पड़ते।**3**।
दीनबन्धु भगवान दीन मन मन्दिर रहते।सो अदम्य करुणासागर बाहर लख पड़ते।**4**।

24।अन्तर्यामी का व्यक्त होना - अन्योक्ति
दयानिधि दीन पर अतिशय दया करके दरश देते।पड़े ध्रुव निज चरण तल से उठाकर अंक में भरते।।
सुअद्भुत रूप लख प्रभु के बड़े आनन्द में भरते।स्वयं प्रभु वाम कर के शंख से मुख को परस करते।।
निरखते रूप हैं प्रभु के न एक पल गिरते।विवस हो प्रेम मूरत बन न वातें एक भी करते।।

25। ध्रुव द्वारा भगवान की एक दीनबन्धुता -
तुम्हारे हरि दीनन चाहते हैं।अति दीनन को तुम चाहत हो।।
दीनन तुम्हरे अपनाते हैं।तुम दीनन को अपनाते हो।।
दीनन तुम्हरे हरि खोज करैं। दीनन को खोज लगाते हो।।
दीनन मन में तुम ही बसते। दीनन को हृदय बसाते हो।।
दीनन तुम्हरे मन भाते हैं। तुम दीनन के मन भाते हो।।
प्रभु दीनन तुम्हें बुलाते हैं। तुम दीनन के घर जाते हो।
तुम दीनन के भरते नित हो। तुम दीनन के घर पाहुन हो।।
दीनन तुम्हरे गुण गावत हैं। तुम दीनन के गुण गावत हो।।
दीन अहैं परिवार तुम्हें। तुम दीनन के परिवार अहो।।
तुम्हरे कर दीन बिकाते हैं। तुम दीनन हाथ बिकाते हो।।
दीनन हरि सदा चिताते हैं। दीनन को सदा चिताते हो।।
दीनन तुम्हरे पग धरते हैं। तुम दीनन के कर धरते हो।।
प्रण दीनन के लग राखत हो। प्रण दीनन हीं लग छाड़त हो।।

तुम दीनन को नहीं भूलत हो। दीनन से नहीं भुलाते हो।।
दीनन तुम्हरे पग धरते हैं। तुम कर धर हृदय लगाते हो।।
भिलनी को मैया कहके तुम। जूठे कुल बैर चवाये हो।।
यों बिदुरानी कर केले के तुम छिलके भोग लगाये हो।।
यह गुण गण से भगवान सदा तुम दीनबन्धु कहलाये हो।

26। भगवान का आशीर्वाद - स्थान बताते हैं -

कौशिक भरद्वाज गौतम जमदग्नि ना सकते। कश्यप मुनि वशिष्ठ जहँ बसते कबहुँ न आगे जा सकते।।
सूर्य चन्द्र औ भौम बुधो गुरु शुक्र नहीं जो पा सकते। निशि दिन हैं जो चक्र लगाते कहीं विराम नहीं करते।।
ता ऊपर स्थान मनोहर है तहवाँ तुम्हरे रखते। विरजा दिव्य पार होकर तुम हमरि सेवा कर सकते।।
छत्तीस सहस्र वर्ष भूमिपति होकर। पिता अपमानी से सम्मानित होकर।।
मातु कलही से भी पूजित होकर। यक्षगण से लड़के भी विजयी होकर।।
जग नरेन्द्रों से सब विधि भूषित होकर। शिशुमार चक्र के भी मेधी होकर।।
इस रचना तक तह के वासी होकर। फिर आना भी बच्चा तुम्ह हमरे घर।।

27। इस दिन सुनीति स्वप्न देखती है -

सुत चिन्तन कर सुतली सुनीति देखली ध्रुव के भिनुसहरे सपनवाँ।
श्वेत कुसुम कर गजरा पहिरले तुरंग चढ़ि के दिशि पुरब गवनवाँ।।
परवत चढ़ रिपु जीते समर में गहले अपने भगवत के चरणवाँ।।
सुन्दर सन्तन के संग ले ले अइले अपने पितु के भवनवाँ।।
देखत सपन उठी जब रानी सपन फले हे यह सुख के अवनवाँ।।
मोरे शुभ दिन भगवान बनावे नयना भरके हम देखैं ललनवाँ।।

28। भगवान के अनुकूल होने से सबहीं अनुकूल रहते हैं -

जिसको भगवत अपनाता है उसको जग शीश चढ़ाता है। जिसके कछु बात न पूछा है अगवानी कर ले आता है।।
जो दूरे से दुतकारी है सो गोदी ले चुचुकारी है। जो रो-रो करके जाता है सो बाजा से घर आता है।।

"यस्य प्रसन्नो भगवान्गुणैः मैत्र्यादिभिः हरिः। तस्मै नमन्ति भूतानि निम्नम् आपः इव स्वयम्। भा. 4।9।47।"

चौक चौक चारु चौके पुरवाते हैं। द्वार द्वार हेम कलसे धरवाते हैं।।
विविध मणिगण के दीप धरवाते हैं। भाँति भाँति रंगवल्ली बनवाते हैं।।
सो है शुभ दिन से शुभ दिन वह जेहि दिन ध्रुव घर आते हैं।।
ग्रह लग्न बार औ तब मुहुर्त शुभ फलदाता बन जाते हैं।।
सोइ उत्तानपाद ध्रुव के हित विप्र गणन बुलवाते हैं।।
सब विधि उपचार कराके शुभ सिंहासन बैठाते हैं।।

29। ध्रुव के राज में -

ध्रुव राज सिंहासन राजे सकल दुरित दुर भाजे। टेक।
प्रजा सबन के घर-घर मन्दिर वासुदेव तहँ राजे। परा प्रेम से भगवत पूजन के सब साजन साजे।।
जैसे बाबा बने पुजारी सोई अनन्यता छाजे। प्रेमांकुर नित नव-नव बढ़ते देख मुनिन मन लाजे।।
रोज-रोज भगवत के उत्सव विबुध बाजने बाजे। सुख सम्पति ऐसी जग केशव देख लोकपति लाजे।।
वैदिक धर्म कर्म सब जिनके प्रेम परस्पर भ्राजे। देव पितृ ध्रुव की जय बोलें सुन्दर मधुर अबाजे।।

।। सम्पूर्ण ।।

श्रीमते रामानुजाय नमः

भक्तवर - प्रह्लाद

(गद्य तथा पद्य में)

रचयिता

श्रीस्वामी पराङ्कुशाचार्य
सरौती मठाधीश
रामपुर चौरम
गया

परांकुश प्रेस, हुलासगंज (जहानाबाद)

श्रीमते रामानुजाय नमः

भक्तवर - प्रह्लाद

इन्द्र के हाथ से मुक्त होने पर नारद जी के आश्रम में कयाधु स्वप्न देखती है -

सुतली कयाधु रानी देखली सपनवाँ ए भिनुसहरे बेरिया। गोद हीं में बालक खेलात ए भिनुसहरे बेरिया।1।
गोद में बैठल पूत जपे हरि नमवाँ ए भिनुसहरे बेरिया। तेहि देखि हरि मुसकात ए भिनुसहरे बेरिया।2।
गोदहिं बैठल सुत बनले पुजारी ए भिनुसहरे बेरिया। तेहि कर हरि जी पुजात ए भिनुसहरे बेरिया।3।
श्रीनिवास आइ नित देहि दर्शनवाँ ए भिनुसहरे बेरिया। नितहिं पुजा के चले जात ए भिनुसहरे बेरिया।4।
जगली कयाधुरानी देखके सपनवाँ ए भिनुसहरे बेरिया। मने मने समुझि चेहात ए भिनुसहरे बेरिया।5।
गुनत सपन फल होत हरिजनवाँ ए भिनुसहरे बेरिया। मने मने अति अगरात ए भिनुसहरे बेरिया।6।

अगराने का कारण यह है कि इस गर्भ से हरिभक्त होने की संभावना है। स्वप्न फल द्वारा यह सूचना है।

प्रह्लाद का जन्मकाल (पद्य सोहर)

"प्रभव मार्ग सुदि दशमी, गुरु दिवस पुष्य ऋक्ष ये। जनि सुबन कयाधु रानी, हरिजन मीन लग्न वर ये।1।
पुत न कबहुँ नेक रोबत, न कहुँ चितावत ये। एक मनहिं मनहिं भगवत पद़ ध्यान लगावत ये।2।
चन्द्र कला सम बाढ़त, दिव्य सुभग तन ये। लखि माँतु कयाधु, देव ऋषि के गुण गावत ये।3।
जानत सन्त प्रभाव, सुवन मुख देखत ये। अरु मन मँह अति उत्साह, कहत सब काहुन ये।4।

सो क्या कहती है ? यह नारद बाबाके प्रसाद से ऐसा बच्चा है - हैं 'नर सम्बन्धि नारं ज्ञानं ददातिति नारदः।' 'नर सम्बन्धि नारं ज्ञानं खण्डयति इति नारदः।'

मधुरी तोतरी बोली, बोलले बलकवा कहि श्रीसीताराम, यह दोउ नाम उदार कहि श्रीसीताराम।1।
बालकन संग लेके, रामजी के खेल खेले, अनतन करत विचार, कहि श्रीसीताराम।2।
प्रेम में मगन मन, मुँदी दोउ नयनन, करतन तन के सम्भार, कहि श्रीसीताराम।3।
लखिदीनबन्धु तेहि, बाहर भीतर रही, अपने करत रखवार कहि श्रीसीताराम।4।
(कुछ दिन बीतने पर एक समय हिरण्यकशिपु प्रेम से प्रह्लाद को गोद में बैठाकर पूछता है) -
दोहा - राजा ने निज पुत्र को, पूछत है यह बात। कहो लाल यह बात तुम, कवन वस्तु मन भात।।
प्रह्लाद ने कहा - दोहा - अन्धकूप गृह छाड़ के, हरि सेवक वन जात। यह जग से उद्विग्न हो, यह हमरे मन भात।।
हँसत नृपति सुनि बैन यह, असि मति बालपने की।
हित अनहित कछु जानत नाहीं, अहि कर पकरन जात, असि मतिबालपने की।1।
गोद में न बैठे आई, धुर में लोटन जाई, अरु लेइ मुखहुँ में खात, असि मतिबालपने की।2।
जेहि कुल के संहारे, हिरण्याक्षहुँ के मारे, तेहि नाम लेत अगरात,असि मतिबालपने की।3।
मोरदेव भूतनाथ, कुल जातहुँ के साथ, देवनाथ पुत मन भात, असि मतिबालपने की।4।
भोला मोर बड़ दानी, तेहि मन में न आनी, हरिहिं जपत दिनरात,असि मतिबालपने की।5।

हिरण्यकशिपु ने प्रेम से कहा - बेटा ! तुम ऐसा नहीं कहो। विष्णु तुम्हारे जात और कुल के शत्रु हैं, उनका नाम नहीं लेना ही अच्छा है। अव तुम माता के पास जा। तुम्हें भूख लगी होगी। पुनः कुछ समय वीतने पर हिरण्यकशिपु ने सोचा कि बच्चे को बाल्यावस्था में ही सुधारना चाहिए।

दोहा - **विष्णु पक्ष को छोड़ के, हर पग तर गिर जाय। ऐसी शिक्षा देन हित, सण्डामर्क बुलाय।।**

राजा बोला - गुरुदेव ! प्रह्लाद विष्णु का नाम लिया करता है। इसके मन को शिव की ओर आना चाहिए।

सण्डामर्क - राजन्! ऐसा ही होगा। चिन्ता नहीं।

सुनो शिष्यगण पढ़ने वाले, दैत्यवंश में होने वाले, तुम्हरे कुल के देव निराले, भोला नाथ कहाने वाले।
मृगछाला पर बैठनेवाले, डिमडिम डमरू बजाने वाले, भूषण ओर मनहिं नहीं भावै, सर्पण से अंग सजावे।
दूज चन्द्र जेहि भाल विराजै, मस्तक पर भल गंग विराजै, जोगिन चहु दिशि नाचै गावै, भूतन सब मिलि ताल बजावै।
भक्तभंग के गोला खावै, जगत ताहि यह गुणगण गावै, तुम सब विधि तेहि ध्यान लगावै, मनमाना सबहीं फल पावै।
कबहुँ विष्णु को मन मत लावो, दैत्यवंश का नाम बढ़ावो।

सबों ने सण्डामर्क के उपदेश को नहीं माना। उपदेश व्यर्थ हुआ।

दोहा - **दुर्जन की दुर्जन्यता, संत हृदय न समाय। यथा मेघ वर्षे भले, नभमह नहीं लिपटाये।।**

पद (नवटंकी) -

परमानन्द लाभ होने पर छुद्रानन्द न भाता है। जो मन भगवत पद पाया सो फिर नहीं अनत चिताता है।1।
परमामृत रस पान किये का लवण खार में भुल सकता। श्रीहरि रंग में रंगित होकर नहीं प्राकृत रंग भा सकता।2।
जो प्रह्लाद भक्त बतलाया बालक गण मन जमक गया। सण्डामर्क गुरु का कहना शिष्यन मन से ढरक गया।3।

एक बार विद्यार्थियों के साथ प्रह्लाद आ रहे थे। हिरण्यकशिपु ने देखकर पूछा - प्रह्लाद ! तुमने क्या पढ़ा है ? यह सुनकर प्रह्लाद बोला - "श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्। भा. 7।5।23।" अर्थात्- भगवद्‌गुणयश को सुनना, गायन करना, स्मरण करना, पाद कमलों की सेवा करना, अर्चना करना, वन्दना करना, परिचर्या करना, सम्बन्ध जोड़ना, आत्म निवेदन करना। पिता जी यही मैं पढ़ रहा हूँ।

राजा ने कहा -

बालक के अस वचनसुनत ही, राजा अतिसय धधक उठा। भृकुटि बक्र दोउ नयन रक्त अरु बोलत है अस हाथ उठा।।
सण्डामर्क कहो क्यों ऐसा, लड़के को बतलाये हो। अभी तुम्हें मैं देश निकासौं तुमने जहर पिलाये हो।।

सण्डामर्क बोले -

सुनु राजा मैं पाठ पढ़ाता, सो मन में नहीं लाता है। स्वाभाविक रति विष्णु चरण में, कोउ ना इसे बताता है।।
यथा सुगुन्ध कुसुम में अपने, आप आप बन जाता है। बट में बीज, बीज में बट रह, बाहर नहीं लखाता है।।
इक्षुन में शर्करा रहत पर, परखत न परखाता है। हरि रत बाल बाल में हरि रत, अस हमरे मन भाता है।।

प्रह्लाद हँसते हुए पिता से -

गौवन जो खाते तिसको ले, फिर से उसे चबाते हैं। पूर्व जन्म के क्रिया कर्म को,जीव उसे अपनाते हैं।।
राम कृपा या सन्त कृपा से, भक्ति रत्न नर पाते हैं। जीवन के कल्याण मार्ग यह सब सद्ग्रन्थ बताते हैं।।
अस जिय जान विज्ञ जन हरि में, लग अभ्यास बनाते हैं। मुख में नाम ध्यान मन में जेहि, तेहि हिर ले अपनाते हैं।।
प्रति शाखा में बसत भुजंग तो, केतकि विष नहीं व्यापत है। हरिजन को का करै कुसंगति, जेहि लखि अघतम भाजत है।।

सण्डामर्क राजा से -

नैसर्गिक एहि वासुदेव पद, पंकज भक्ति पियारी है। सत्य सन्ध ब्रह्मण्य जितेन्द्रिय, अतिशय पर उपकारी है।।
सर्वभूत प्रिय सुहृद आत्म सम, हरि सेवा यही प्यारी है। शील उदार शान्त अति धीरज, मन नहीं व्यसन विकारी है।।
यम आदि से युक्त एकांतिक, दिव्य गुणन अधिकारी है। खेलत खात पियत चलते हरि को देखत छवि प्यारी है।।
हरिगुण गान करत कबहुँ नाचत दै दै करतारी है। कबहुँकआसन पर आसीन सुध्यान करत सुख भारी है।।
कबहुँक मुग्ध पुलक तन कह दोऊ लोचन मोचन बारी है। कबहुँक बिहँसत हँसत कबहुँक कर बात मन ही मन न्यारी है।।

इसे सुनकर राजा ने कहा कि यदि ऐसा है तो इसे सुधारिए। गुरु ने प्रह्लाद को पाठशाला में रक्खा।
(गुरु की अनुपस्थिति में प्रह्लाद विद्यार्थियों से)

सुनो मित्र यह सत्य वचन, दुर्लभ तन छनहिं बिलाता है। यह लख बुध भगवत धर्मो को, बचपन से अपनाता है। **1**।
इन्द्रिय सुख बिन यत्न किये सब, आप आप मिल जाता है। जैसे दुख सब बिनहिं बुलाये, अपने से चल आता है। **2**।
अहो मित्र कल्याण कबहु नहीं, भगवद्पद बिनु पाता है। श्रुति पुराण सद्ग्रन्थ सकल मिलि, सदा एक स्वर गाता है। **3**।
मूढ़ सदा तामस से सोकर, आधा समय गंवाता है। ताहि अर्ध बालक कुमारपन, में वह खेल गँवाता है। **4**।
तैसे ही बाकी चौथे को, व्यर्थ ही सदा बिताता है। पूर्वकर्म के कारण निश दिन, बिवसहि जन्म बिताता है। **5**।
गृह अरु पुत्र कलत्र प्रेम में, अपने आप बन्धाता है। निजेर बन्धन परा जीव को, कबहुँ न छूटन पाता है। **6**।
ताते दुर्जन संग छाड़ के, दूरे रहना हीं चाहिए। आदि देव नारायण चरणों, को अपनाना ही चाहिए। **7**।
श्री भगवत्पद पद्म गहन में, नहीं प्रयास कछु भाई हो। व्यापक है सब भूत मा में, बहिरन्तर सुनो भाई हो। **8**।
तुम सब असुर भाव को तजकर, मित्र बनो सब जीवन को। निर्हेतुक भगवान आपसे, अपनावहिं सब दीनन को। **9**।
होहु तरण तारण मित्रण गण, भगवद्पद अपना कर के। हरिपद विमुख रहो जन भाई, कुलबोरन कहबा करके। **10**।
बनो एकान्तिक भक्त राम के, मोह जाल सब को तज के। नारद बाबा दियो ज्ञान यह, बनहिं सकल भगवत भज के। **11**।
यह सब सुनि उपदेश बाल गण, धन्य धन्य कह अपनाया। आज कृतारथ कियो तात तुम, सब मिल चरणन सिर नाया। **12**।

(एक बार पुनः गुरु की अनुपस्थिति में) -

बालक सब मिलि विद्यालय में, गान करत हरि नामों को। सण्डामर्क सुनत रिसवश हो, छोड़ दिया सब कामों को। **1**।
धर कर के ले चला भक्त को, सब बालक के संगों में। हिरण्यकश्पिु के न्यायालय में जहाँ बैठा जनसंगों में। **2**।
भरी सभा में कहन लगे, सुनिये राजन्अस हाल हुआ। बच्चों को प्रह्लाद बिगाड़ा, सब के सब बेचाल हुआ। **3**।
सबको यह हरि भक्त बनाया, मम उपदेश न मानत है। राम नाम को छोड़ अन्य कछु, लोक कर्म नहिं जानत है। **4**।

(सण्डामर्क से इतना सुनने पर राजा क्रोध से बोला) -

विष से दूषित अंग छेदन कर, जन सब विधि सुख पाता है। तैसे यह बालक को वध कर, नाह मोरे मन भाता है। **1**।
जेहि विधि से मर सकै दुष्ट यह, तेहि विधि से सब मारहु रे। मर्म-स्थल में सांग वेध कर हिम गिरि पर लै डारहु रे। **2**।
या जल में लै बोर मार दो, या अग्नि में जारहु रे। महा विषम विष घोर पिलावहुँ, ले जा दूर भगावहुँ रे। **3**।

ऐसा सुनकर सण्डामर्क ने कहा कि राजन्! जब तक पिता जी आते हैं तवतक इसको शिक्षालय में रहने दें। इतना कहकर प्रह्लाद को पाठशाला में ले गये।

(पाठशाला में पहुँच कर प्रह्लाद मित्रों से)- (पद्य पूर्वी में) -

जग में वियोग योग मिलत करम फल, जहँ जहँ देह धरो जाय मोर भाई हो। **1**।
ईश की न दोष एक लहत कएल सब, जहँ जहँ तनु पाय जाय सुनु भाई हो। **2**।
नभ में बसत रवि चन्द्र तुम देखते हो, तिनहुँ के राहु धाए खाए जाए भाई हो। **3**।
तोर- मोर मात-पित रामजी सहाय एक, तिनहि के चरण मनाऊँ मोर भाई हो। **4**।

(पद्य) -

मीतगण मन में न डरना, मोहि पिता चहे मरवाना। टेक।
जनमकर मरना मरकर जनमना यह नियम है परमपुराना।
देह चेतन का हो या अचेतन का हो, तन नर के बने पशु पक्षी बने, देही रहता है सब में समाना। **2**। मीतगण ......।।
स्वर्णकुण्डल बने या दिजाइट बने, सोनछाता बने या सिंहासन बन, स्वर्ण रहता है एक समाना। **3**। मीतगण...... ।
जीव जरता नहीं जीव मरता नहीं, जीव घटता नहीं जीव बढ़ता नहीं, नित्य रहता है एक समाना। **4**। मीतगण... ।

(ऐसा सुनकर मित्रगण रो रो कर) -

हम सब दीनन के तजो जानि जाहु भाई, हमहु चलब तोरे संग मोरे मितवा। टेक।
तोरे चरणन लागी, माता पिता गुरु त्यागी, तुम अब कैसे त्यागी जाए मोर मितवा। **1**।
तोहर बिछोह अति कठिन असह अति, सबनी मरब तोर संग ही में मितवा। **2**।
तोहर मरन सुनी हृदय न दरके हो, बार-बार इह धिरकार मोरे मितवा। **3**।
जल डुबी आग जरी, जहर पियाब घोरी, तोरा बिनु जीवन बेकार मोरे मितवा। **4**।

प्रह्लाद ने मित्रों को सम्बोधित करते हुए कहा, मित्रों ! आप लोग चिन्ता न करें, सुनें -

मोहि पिता चहैं मरवाना, मैं तो मन में नहीं भय माना । टेक ।

राम अमृत बने, राम विष में बसे, प्रभु हितहुँ बने, प्रभु मितहुँ बने । कबहुँ न होत विराना,मैं तो मन में नहीं भय माना । 1 ।

राम घर में बसे, राम बनहुँ बसे, सोई अस्त्रों में बसे, सोई शस्त्रों में बसे । प्रभु बसते हैं सबमें समाना । मैं तो मन में नहीं भय माना । 2 ।

राम घट में बसे, राम पट में बसे, राम अधो में बसे, राम उर्ध्वो में बसे, प्रभु रक्षक है अपने अपना । मैं तो मन में नहीं भय माना । 3 ।

राम ओतो बने, राम प्रोतो बने, राम आगे रहे, राम पीछे रहे । ऐसा कहता है वेद पुराणा । मैं तो मन में नहीं भय माना । 4 ।

प्रह्लाद की ये सारी बातें जब गुरु के कान तक पहुँची तो उनके लिए असह्य हो गया । वे राजा के पास गये और सारी वाता राजा से दुहराया । राजा ने प्रह्लाद को मार डालने का आदेश दिया । इसे सुनकर माता विलाप करने लगी ।

कयाधू का विलाप (पद्य पूर्वी) -

लिखन चहत विधु लिखले विधुन तुद, विधि गति उलटे लखात ये दुलरुवा । 1 ।

दुर्जन चहुँ दिशि सब मिलि घेरी घेरी, लेके हथियार तोरा मारे हो दुलरुवा । 2 ।

गिरि से गिरावे लेके पानी में डुबावे तोरा, विषधर साँप से कटावे हो दुलरुवा । 3 ।

धर कर बरजोरी विषलै पियावै घोरी, तनक न मन सकुचावे हो दुलरुवा । 4 ।

ढुँढ़ी दयितिनियाँ से राजा के बहिनियाँ से, तोरा लेके आग में जराबे हो दुलरुवा । 5 ।

ऐसे घोर पापी तेहि आँख में न लाज लागे, बाप होके पूत को संहारे हो दुलरुवा । 6 ।

पिता तोर रामजी मतारी तोर सीता जी हो, आशा एक तिनही लगाऊ हो दुलरुवा । 7 ।

राम दीनबन्धु सोई सकल निवासी प्रभु, तिनकर चरण मनाऊँ हो दुलरुवा । 8 ।

राजा के कहने पर दैत्य समूह सब -

ताहि समय मिलि सकल दैत्य सब ललकारत झट धावत है । गड़गड़ात दाँतों को पीसत अस्त्र शस्त्र वर्षावत है । 1 ।

ताहि मध्य प्रह्लाद बैठकर हरि का ध्यान लगाता है । मूल मंत्र के जाप करन सुख से नहीं कतहुँ चिताता है । 2 ।

ताके भय हरि मंत्र कवच रिपु यत्न विफल हो जाता है । दैंतन सब आश्चर्य भए लख मन मह तर्क बढ़ाता है । 3 ।

पुनि तेहि के विष पान कराकर हाँथिन को ललकारत है । चलत ही दन्तिन दाँत गिर्यो पुनि बिच्छून से विन्धवाता है । 4 ।

मंत्र तंत्र अरु यंत्र कियो बहु सकल विफल हो जाता है । रोम बाँक नहीं होत भक्त को नृपतिहिं जाय सुनाता है । 5 ।

(सब आकर) - राजन् प्रह्लाद नहीं मरता है -

सुनि राजा आश्चर्य भया मनहीं मन अकुलाता है । बैठे सिंहासन परहीं से ढुँढ़ी को बुलवाता है । 6 ।

भाई क्यों चिन्ता करते मैं अभी दुष्ट को मारूँगी । गोद ही में लेकर बच्चे को प्रवल अग्नि में जारूँगी । 7 ।

देवदारु अग्नि बबूर की बड़ी चिता बनवाती है । सकल भांति सजके तेहि ऊपर गो घृत से सिंचवाती है । 8 ।

गोदी में लेकर बच्चे को काठ पुंज पर बैठ गयी । आठो दिशि अग्नि लगवायी अतिशय ज्वाला लपटगयी । 9 ।

इसी समय हिरण्यकशिपु देखने आया कि प्रह्लाद कैसे जलता है । प्रह्लाद आग में ही बैठे ही बोले राम नाम ।

"**जपता कुतो भयं सर्वपापशमनैक भेषजं पश्य । तात मम गात्रसन्निधौ पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना । ।**" अये पिता जी ! भगवान्के नाम लेने वाले को कहाँ भय है ? यह नाम तो पाप और रोग को नाश करने वाली औषधी है । आप दूर से क्यों देखते हैं, नजदीक आकर देखिए । इस समय अग्नि हमें जल-तुल्य प्रतीत होता है । मेरा वस्त्र भी तो नहीं जलता है । परन्तु पिता जी ! दीदी तो भस्मसात हो चुकी । ऐसा कहते हुए प्रह्लाद आग से वाहर होकर प्रणाम किए । हिरण्यकशिपु आश्चर्य और ग्लानी में डूब पड़ा । पुनः क्रोध के वश में होकर -

बामे हाथ से बच्चे को धर दाहिने में तलवार लिया। दुष्ट प्रकृति के वश में होकर मारन को तैयार भया।**1**।
अरे मूढ़ तुम हमें बताओ रक्षक कहाँ तुम्हारा है। अभी तत्क्षण हमरे कर से आया काल तुम्हारा है।**2**।
सुनि पित बैन विहसी बोला सुन पिता वेद अस कहता है। ओत प्रोत पट तन्तु रहत सम रक्षक सब महँ बसता है।**3**।
अरे दुष्ट अस क्यों कहता तुम जो वह सब में बसता है। तो हमरे सन्मुख यह खम्भे से क्यों नहीं निकलता है।**4**।
विधि- सनकादि जन प्रह्लाद वचन को सत्य बनाने को। निज-गुण जन रक्षा को सब विधि से सब को दर्शाने को।**5**।
सन सन सन सन तड़ तड़ाक तड़ कोटि बज्रसम ठनकाया। नर तनु नाहर मुख कराल कर के खम्भे को दरकाया।**6**।
चमक धमक लख के सुनकर सब अति आकुल हो भागन का। नेत्र मूँद दोउ कर्ण छिद्र में अंगुल है कितने जन का।**7**।
दिवस-निशा संधी में हरि झट हिरण्यकश्पिु को धर पाया। द्वारे बैठ चार नखन से बीच उदर को चरकाया।**8**।
हरि के विकट रूप लख के सब देवन गण अति घवराया। विनय प्रार्थना कर पुनि के सबने लक्ष्मी को बुलवाया।**9**।
सो अपूर्व वह द्विविध भाव अस द्विविध रूप लखि चकित भई। दया प्रेम अस कोध द्वय यह देखतहीं नहीं निकट गई।**10**।
बुलवाई प्रह्लाद भक्त को कही अमृतमयी वाणी सो। तुमरे हित यह रूप धार्‍यो हरि और न कछु उर आनी सो।**11**।

।।प्रह्लाद की स्तुति ।।
ब्रह्मादिक सुर सिद्ध मुनिन जेहि हृदय सतोगुण बसता है।**1**। सदा करत गुण-गान उदधि को त्रुटि को कह नहीं सकते हैं।**2**।
अहो नाथ मैं दैत्य वंश हो कर कैसे कह सकते हैं। प्रभु निजगुण अधीन सदा ही जन मन में नित बसते हैं।**3**।
धन जन रूप तेज बल पौरुष बुध प्रभाव तव श्रुत जो है। द्वादश गुण युत भक्तिहीन द्विज से उत्तम स्वमयो जो है।**4**।
माता पिता स्वजन राजा सब दैव जहाँ लगि नाते हैं। जन्म मरण निश दिन अनेक दुख से कबहीं नहीं बचते हैं।**5**।
पुनि प्रभु लै प्रह्लाद गोद में शिर पर कर धर पूछत हैं । मन माना वर माँग पुत्र तुम जो जो मन मँह बसते हैं।**6**।
चाहत नहीं वरदान भक्तवर पूर्णकाम कछु नहीं चहते। सो प्रभु परम प्रेम वश होकर माँग माँग वर हीं कहते।**7**।
प्रभु माँगौं इच्छा कछु ही नहीं काम बीज नहीं मन उपजै। पिता नर्कगामी प्रभु हो नहीं तव चरणन नवरति उपजै।**8**।
जो प्रभु हस्त कमल कबहुँ नहीं शिव चतुरानन शिरन पर्‍यो।
अस पवित्रतम भयो तात अपना एकइस लै तार दियो। सो प्रभु दयावश होकर मोरे शिर पर आनि धरयो।**9**।

पिता के लिये प्रह्लाद की प्रार्थना को सुनकर भगवान -

अन्य जन्म तीन कुलों को तुम भवसागर पार कियो।
हमरे तुम्हरे गुणगण को जो नित्य नेम से गावेगा।**1**।
सो नर विन प्रयास यह दुस्तर तर मम धाम सिधावेगा।**2**।
पितृ कर क्रिया करहु सब विधि तुम अरु सिंहासन ग्रहण करो।**3**।
प्रजा सबन के पालन करते पुनि मम पद को ध्यान धरो।**4**।

माशुच पद जेहि जान लिया तेहि सोचब का। भगवत भयेउ उपाय भला तब सोंचब का।।
मन्त्र युगल माला जप जा के, युगल भावना मन बस ताके,युगल चरण के ध्यान किया तब सोंचव का।।
जाके ऊर्ध्वपुण्ड्र शिर शोभे, ताके लखि भगवत मन मोहे, जाये चतुर्भुज हृदय वशे तेहि सोंचब का।।
मन्त्र रत्न जेहि जपत निरन्तर, तेहि भगवत से नहिं कछु अन्तर, यह श्रुति सन्त पुराण कहै तब सोंचब का।।
लक्ष्मी माता की दृष्टितल, हो करके न भुलल कबहुँ पल, भये भगवत के प्रेम विषय तब सोंचब का।।

।।सम्पूर्ण।।

।।श्रीमते रामानुजाय नमः ।।

मित्र सुदामा - कृष्ण

दोहा
सुन्दर दामन जाहि के या सुन्दर सो दाम।
बन्धा बान्धता अन्य को ताहि सुदामा नाम।।
दीनप्रिय भगवान हैं धर्मप्रिय द्विजदेव।
तथा सुशीला ब्राह्मणी सदा करे पतिसेव।।

रचयिता
श्रीस्वामी पराङ्कुशाचार्य
सरौती मठाधीश
रामपुर चौरम
गया

परांकुश प्रेस, हुलासगंज (जहानाबाद)

श्रीमते रामानुजाय नमः

दो शब्द

समय- समय पर अपने प्रिय शिष्यों के आग्रह से सुदामा चरित्र सम्बन्धी पदों की रचना कर उन्हें देना पड़ता था। पदों की संख्या बढ़ती गयी। शिष्यों ने आग्रह किया कि इन पदों को क्रम से रखकर एक पुस्तिका का रूप दे दिया जाय। उनका आग्रह स्वीकार करना पड़ा। मैंने भी समझा कि शायद मेरे इस प्रयास से भक्त भगवान्के समीप पहुँच सकेंगे। आशा है इस पुस्तिका से मेरे शिष्यगण एवं अन्य सज्जनवृन्द अधिकाधिक लाभ प्राप्त कर सकेंगे।

पराङ्कुशाचार्य
सरौती

श्रीमते रामानुजाय नमः

कृष्णस्यासीत् सखा कश्चिद् ब्राह्मणः ब्रह्मवित्तमः। विरक्त इन्द्रियार्थेषु प्रशान्तात्मा जितेन्द्रियः। भा. **10**।**80**।**6**।
यदृच्छयोपपन्नेन वर्तमानो गृहाश्रमी। तस्य भार्या कुचैलस्य क्षुत्क्षात्मा च तथाविधा। **7**
पतिव्रता पतिं प्राह म्लायता वदनेन सा। दरिद्रा सीदमाना स वेपमानाभिगम्य च। **8**
ननु ब्रह्मन् भगवतः सखा साक्षात्श्रियः पतिः। ब्रह्मण्यश्च शरण्यश्च भगवान् सात्वतर्षभः। **9**
तमुपैहि महाभाग साधूनां च परायणम्। दास्यति द्रविणं भूरि सीदते ते कुटुम्बिने। **10**
आस्तेऽधुना द्वारवत्यां भोजवृष्ण्यन्धकेश्वरः। स्मरतः पादकमलमात्मनमपि यच्छति।। **11**

एक विप्र अति शान्त जितेन्द्रिय विषय विरागी। यथा लाभ सन्तोष गृही भगवद् अनुरागी।।
नाम कुचैल सखा हरि के प्यारे बड़भागी। ना तनु पोषक कृषित देह दम्पति सम आगी।।
सती सुशीला के मन में चिंता यह आई। धनहीन नहीं बनत कछुक पति की सेवकाई।।
काँपति डोलति सो एक समय सुहावन पाई। आई पतिधिग् कहति बाल मिस बात सुहाई।।

सुशीला- (मन ही मन) पतिदेव तो सतत भगवद् चिन्तन में विभोर रहते हैं। इन्हें सांसारिक सुख-साधनों की लालसा नहीं है। जो कुछ भी मिल जाता है उसी में सन्तुष्ट रहते हैं, फिर भी पतिसुख की चिन्ता मुझे सतत खलती रहती, परन्तु बिना धन के यह सम्भव नहीं। अतः मैं अपने धर्म से वंचित रह जाती हूँ। पत्नी के लिए पति-सेवा से बढ़कर दूसरा धर्म नहीं है। यही नहीं, भूख से बिललाते बच्चों की आर्त्त पुकार मुझे कम व्यथित नहीं करती। उनका मचलना एवं ठुनकना माता के लिए कम दुःख की बात नहीं है। चलूँ, इन्हीं बच्चों के बहाने पतिदेव को कुछ करने को उद्यत करूँ।

(प्रकट-पति को सुनाकर)-

प्रभु मोर छोटे छोटे बचवन भूखे रोवे। तिन्ह काह देऊँ हम कैसे समझाऊँ जी।।
तोर मित श्रीनिवास ब्राह्मण के प्यार करें। बसे भगवान् तहँ द्वारिका में जाऊँ जी।।
हरि हैं शरण्य मोरे दीनन के सन्तन के। बिना माँगे देत मोर कहे पतिआऊँ जी।।
सुमिरे से चरण-कमल देहो देही तेही। जाहु मेरो स्वामी जनि तनिको लजाऊ जी।।
प्रभु दीनबन्धु तोर दीनता निहारते ही। अवश्य द्रवही ऐसे उनके सुभाऊ जी।।

लाज औ संकोच छोड़ हमरो कहल करु। स्वामी मोरे जाहू मोरे मत अलसाऊँ जी।।

सुदामा- (सुनकर मन ही मन) क्या सचमुच पत्नी के हृदय में धन की लालसा जगी है ? क्या यह कंचन के मोह में पड़कर मेरे जीवन को आकुल करना चाहती है ? नहीं, यह उचित नहीं है। अन्य की तो बात ही क्या, हम भक्तों को भी भगवान्के आगे भी धन के लिए हाथ फैलाना उचित नहीं।

(प्रकट) **प्रिय भली बात सत्य कहती, परन्तु मन में नहीं जँचती। स्वामी से याचन उचित नहीं, भले ही अति दुःख सहौं सबहीं।।**

सुशीला- (मन ही मन) पति का कहना उचित है किन्तु आर्त्त भक्त भी तो भक्त ही है। क्या वे भगवान्के प्रिय नहीं हैं ?

(प्रकट) **प्राणपति द्रौपदी अकुलाई, हरि को वह रोकर बुलाई। बढ़ा दीन्ह पट को युदराई, दिखा दीन्ह अपनी प्रभुताई।।**

सुदामा- प्रिय ! सत्य है अबला अबला ही है। द्रौपदी भी तो अबला ही थी, सच्चे भक्त ईश्वर पर इस नश्वर शरीर के सुख के लिए भार नहीं देते। उसे वे प्रारब्ध मानकर खुशी-खुशी भोगते हैं। देखो, ऐसे भक्त प्राण संकट में भी भगवान्को नहीं पुकारते-

कयोधव अग्नि में पड़ के, सो न पुकारा तौ हरि के। रन्तिदेवने तन छोड़ा, प्रभु पर भार न तो छोड़ा।।

सुशीला- प्राणनाथ! मैं जानती हूँ कि प्रह्लाद और रन्तिदेव ने प्राणसंकट में भी भगवान्को नहीं पुकारा। पर क्या उन्होंने उचित किया ? भला भक्त का भगवान्से दुराव कैसा ? हृदय खोलकर उनके सामने रख देना ही तो सच्ची भक्ति है -

स्वामी किये सभी चोरी, कर दी रक्षक रखवारी। हमारी इच्छा थी सारी, सो मैं कर दी अगवारी।।

सुदामा - प्रिये, इस अंश में तुम्हारा कहना बिल्कुल उचित है, किन्तु खाली हाथ बड़ों के पास जाना शास्त्र विरुद्ध है। भला भगवान्के योग्य भेंट मैं कहाँ पाऊँ, जिसे लेकर उनके पास जाऊँ।

प्रिय मोहि असमंजस मन में, हमरे है नहीं कछु भी संग में। अब छूछे कैसे मैं जाऊँ, मनहिं मन इससे सकुचाऊँ।।

सुशीला- प्राणनाथ, भगवान्अन्तर्यामी हैं, पूर्णकाम हैं, विश्वम्भर हैं। उनसे छिपा क्या है, उन्हें कोई क्या दे सकता है ?

प्राणपति भुवन को भरते, सो प्रभु हैं पूर्ण न कछु चहते। तथापि हूँ यत्न अभी करती, लोकपति दया से जो लहती।।

परोसिन पास करी पैसार, मुट्ठी ही मिली चपुटक चार। लै बाँधी आँचल पट फार, सुशीला बड़ी प्रेम उद्गार।।

सुदामा- प्रिये, जो कुछ होता है भगवान्की इच्छा से ही। जब अनायास भगवान् के लिए भेंट की सामग्री मिल गयी तो जान पड़ता है अब उनका दर्शन अवश्य होगा।

प्रिय मैं माना बड़ उपकार, दर्शन देंगे कृष्णमुरार। जाऊँ होते प्रात ही बेर, है नहीं अब हमरे कछु देर।।

प्रातःकाल का समय है। भगवान्को सुमिरन करते हुए सुदामा नित्य-क्रिया से निवृत्त हो जाते हैं। पत्नी उन्हें द्वारका भेजने की तैयारी करती हैं -

नारी कुचैल को भेज रही। मधुरी बतिया कहते कहते।।
वह मुट्ठिक चार चबेन दयी। कर विप्र लिये हँसते हँसते।।
पुनि बाभन नित्य-क्रिया करके। मग लिन्ह रवि उगते उगते।।
वह दीन दशा को न मानतु हैं। हरि के रंग में रंगते रंगते।।
पचकैं टुकचें भौंहे लटकै। अरु साँस उठै कसते कसते।।
द्वौ आँख धँसी चमड़ी सिकुड़ी। धमनी बिखरी गलते गलते।।
पटरी सटकी ढढरी निकली। पगदार खुले चलते चलते।।
पुतली पगरी चिथरी चिथरी। दे ग्रन्थि बहु फटते फटते।।
काँपत खात कपाल जिन्हें। मृदु बोलत हैं दलके दलके।।
वह काँख धारो हरि की गठरी। लगुडी धर के ठकते ठकते।।
अति धीर न पाँव धरे धरती। हरि पास चले डगते डगते।।
हरि नाम पुकारे प्रेम पगे। मन मग्न भये डुबते डुबते।।
हरि दीन दयालु कृपालु प्रभु। नन्दलाल कहैं हिलते हिलते।।
जहवाँ भगवान तेहिपुर में। पहुँचे दिन के ढलते ढलते।।

द्वारिका पहुँच कर सुदामा ने जब विश्वकर्मा-विरचित कंचन नगरी को देखा तो उनकी आँखें मीच जाती हैं। प्रासाद के जिस भाग पर दृष्टि जाती है वहीं रुक जाती है। चित्र सजीव हैं या निर्जीव, सर्वत्र दर्शकों को भ्रम पैदा कर देते हैं। सुदामा मन ही मन गुनगुनाते हए उनकी शोभा देखने लगते हैं।

धाम मनोहर सकल बने जी।
कंचन किला बनी अति दुर्गम, हीरन से हरिनाम बने जी।।
चित्र मदनमोहन के देखत, बंशी कर औ सखा सुने जी।।
ले हरि गोप बाल के संग में, सुन्दर मोर चकोर बने जी।।
दीन दयाल कृपाल नाम लख, आरत हर भगवान बने जी।।
राधा औ हरि चित्र सुहावन, कहीं रुक्मिणी रमण बने जी।।
तीन द्वार के ऊपर शोभत, शंख चक्र औ तिलक बने जी।।
कृष्ण नाम के ध्वजा पताका, सब दिशि बन्दनवार तने जी।।
कृष्ण-कृष्ण सब पक्षिन बोलैं, सुनते बनै नहीं कहत बनै जी।।

सुदामा पुनः मन को रोककर उधर से दृष्टि हटाते हैं और यह सोचते हए कि चलो भगवान का दर्शन करें, देर करना उचित नहीं। जब प्रधान द्वार पर पहुँचते हैं कि -

द्वौ दिशि रखवारे खड़े, करहीं परस्पर बात। देख सुदामा ने कहा मैं जैहों दरवार।।

द्वारपाल - देखि दशा द्विज की हँसा, कहत सुनो सरकार। नाम गाँव कहने बिना ना जैहों दरवार।।

विप्रवर, आप अपना परिचय दीजिये। मैं प्रभु से जाकर कहूँगा और जब उनकी आज्ञा होगी तब आप उनसे मिल सकेंगे। यही राजसभा की रीति है।

सुदामा - (आप ही आप) संभव है इस दयनीय दशा पर इन्हें सन्देह हो अतः पूर्ण परिचय देना उचित नहीं।

(प्रकट)- **कृष्ण हमारे मित्र हैं, बाल काल के यार। जब काशी पढ़ते रहे जानत कृष्ण मुरार।।**

द्वारपाल - (आप ही आप) रूप रंग से तो यह ब्राह्मण जान पड़ता है किन्तु कृष्ण-सखा होने में सन्देह है। कहाँ दीन हीन दरिद्र ब्राह्मण और कहाँ त्रिलोकीनाथ ! जो हो, बिना पूरा परिचय दिये इन्हें भीतर जाने देना उचित नहीं, पर नम्रता से अवश्य काम लेना चाहिए।

(प्रकट) - **झूठहि बूढ़न बात बनावत, कृष्ण मिताई के योग कहाँ। है हरि कंचन के पुरनायक, तू हौ दीन-दरिद्र महा।।**
सब के सम वैर विवाह सखा, तुम देखहु नीति न ग्रन्थ जहाँ। मित्र न होहिं तुम्हार प्रभु, आये जहाँ फिर जाहु तहाँ।।

सुदामा - (आप ही आप)- बिना पूरा परिचय दिये ये जाने न देंगे। (प्रकट) - आप लोग क्या भगवान् के स्वभाव से परिचित नहीं हैं ? या नवागत सेवक हैं ? भगवान्‌का तो अवतार ही मुझ जैसे दीनों के लिए हुआ है।

प्रभु दीनन के बहु मान करै, तेहि कारण दीन दयाल कहाये। एक आरत हौं हम ही जग में, हरि आरत के मित नाम धराये।।
तिनके अतिशय प्रिय बाभन हैं, प्रभु आपहीं से ब्राह्मण्य कहाये। अब पुछहु तहँ हरि से, वह दीनन के हित ही जग आये।।

द्वारपाल - ठीक है विप्रवर, किन्तु आप दीन हैं और आपकी पुकार भगवान् सुनना चाहते हैं इसका मुझे क्या पता। यों तो प्राणीमात्र के साथ उनका सम्बन्ध है पर आपने तो यह नहीं बताया कि उनके साथ आपका क्या सम्बन्ध है।

सुदामा - सुनते दुखियों के पुकार वही, तहँ दीनन के दरवार सही। किये हैं जनों से करार वही, औ करैं पतितों के उधार वही।।
सुपवित्र गुणों के अगार वही, हैं बड़े ही अपार उदार सही। कर भक्तन के बहु प्यार वही, तुमरे भी सही सरकार वही।।
हर जीवन के नतेदार वही, बिगड़ै को करें सु सुधार वही। दीन के हित लैं अवतार वही, बालकाल के यार हमार वही।।

द्वारपाल - विप्रवर ! आप बार-बार बाल्यकाल की मैत्री की दुहाई दे रहे हैं। आप अपना नाम और गाँव क्यों नहीं बताते ? साथ ही मित्र तो अंतरंग बातों की जानकारी रखता है। क्या आप भगवान् के गुणों की सचमुच जानकारी रखते हैं ?

सुदामा - (आप ही आप) द्वारपाल नया प्रतीत हो रहा है। यह केवल अपना कर्त्तव्य निभाना समझता है। मेरे हृदय की विशुद्धता को

यह क्या समझे, इसे तो केवल नाम न बताने में ही कपट मालूम पड़ रहा है।

(प्रकट) **- तिनके सब समान नहि भेद उन्हें कछु भाई। सबके कर उपकार जनन के औ अधिकाई।।**
सदा दीन पर दया करत लै हृदय लगाई। दैत-यक्ष-राक्षस तिय शूद्र व्रजौ कस भाई।।
खग मृग पापी जीव सबन से प्रेम बढ़ाई। मछुआ कोल किरात भील बनचर समुदाई।।
कंजर पाँवर घोर सबन से करत मिताई। यह बड़ बात न उनकी रीति सदा चली आई।।
मन मह यह पतियाहु कहौं ना बात बनाई। तुम नौकर अनजान मोह बस गयो भुलाई।।
जानत ना सुभाव हरि के जा देहु सुनाई। नाम सुदामा विप्र मिलन आये गुरु भाई।।

(द्वारपाल भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के पास जाकर प्रणाम कर हाथ जोड़ कर कहता है।)
विप्र एक द्वारे खड़े दर्शन को सुखधाम। आपन परिचय देत है कह्यो सुदामा नाम।।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र -(आश्चर्य चकित हो विस्फारित नेत्रों से द्वारपाल की ओर देखकर) अहोभाग्य! क्या सचमुच हमारे बालसखा सुदामा आये हैं ! (दौड़ पड़ते हैं। द्वारपाल पीछे-पीछे जाता है। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र गिरने का नाट्य करते हुए द्वार की ओर बढ़ते हैं।)

दर्शकगण (एक साथ मिलकर गाते हैं) **-**
भाग सुदामा के कौन कहे, जेहि कृष्ण मिले गिरते परते। तन की सुधि भूल गयी, हरि को मिलते अँखिया भरते भरते।।
धाये मिले धर के कहते, अहो मित्र सुदामा कहो कितते। कर से धर लेइ चले गृह में,अति प्रेम सुधा पगते पगते।।
अरु आसन दे हरि पूजत हैं, मग के श्रम को हरते हरते।।

(भगवान् श्रीकृणचन्द्र सुदामा को राजमहल में सिंहासन पर बैठाकर स्वर्णपात्र में जल रखकर स्वयं पाँव धोना चाहते हैं और रानियाँ पंखा झलने लगती हैं।)

सुदामा - मित्र, यह क्या करते हैं ! मुझ जैसे दरिद्र का पाँव धोना त्रिलोकीनाथ को शोभा नहीं देता।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र - ये पद पंकज के परसे हम देवन में प्रथमे पुजवाये। ये पदपंकज को हियधारी सखे हमहुँ श्री वत्स कहाये।।
ये पद पंकज को उर धारन से बड़ देवन में कहलाये। औ हम राक्षस दैतन के हत के जग में विजयी बन पाये।।
ये पद पंकज के ऋणि हैं हमहुँ तेहि कारण धोवन आये। ये पद पंकज के पूजन हित ही जग में यह देह बनाये।।

जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जल लेकर पाँव धोने लगते हैं तो फटे हुए व्यार को देखकर आँसू की झरी लग जाती है।

दर्शकगण - सोई देखत व्यार किया हरि कै, उर अंतर दीर्घ दरार महाँ। कपसैं सिसकैं नहीं बोल सकैं, वह ब्रण बड़ा जहँ मर्म तहाँ।
अरु भये प्रभु के उर घोर व्यथा, सो बहावत नयनन धार महाँ। बही तप्त गिरै पद दार ही पै, सो ततारत बारंबार वहाँ।
परे श्रीकृष्ण के हाथ तहाँ सहरै, सुखदात सुहात सुखात वहाँ।

(पद पखार कर भगवान् श्रीकृष्ण उनके भोजन की तैयारी करते हैं। उनकी आज्ञा से सभी रानियाँ थाल भर- भर कर सामान लाती हैं।)
भोजन के सामान सबनि रानिन मिलि लाई। रुक्मिणी कालिन्दी सत्या लक्ष्मणा सुहाई।।
सतभामा भद्रा जामिनी बिन्दा चलीं आई। सबनि परस्पर मिलि-मिलि अतिसय नेम बढ़ाई।।
बहुत भाँति पकवान विविध विधि और मिठाई। कृष्ण भोगादिक पापर रावड़ी और मलाई।।
अमित भाँति अचार चटनि ना जाई गनाई। सब सोनन के थारन सज-सज भरि-भरि लाई।।
तैसी चहुँ दिशि धरी कटोरन सकल सजाई। छपन चार छौ और फलन सब बरनि न जाई।।
नारायण अर्पित ले खातु सुदामा भाई। प्रेमाधिक कर धर झारी लै खड़े कन्हाई।।

(सुदामा पंचकौर विधिपूर्वक प्रेम से भोजन करते हैं। पुनः आचमन कर हाथ-पाँव धोने पर भगवान् उन्हें पलंग पर पौढ़ा कर स्वयं पाँव दबाते हुए कुशल पूछते है।)
हाल कहो भाई हाल कहो कैसे परिवार वरतते हैं। कोई नहीं कछु अवलम्ब जिन्हें वे किस उपाय से पलते हैं।।
वह जिस धरणी में धान बूँट नहीं गेहूम कभी उपजते हैं। सबके सब दरिद्र जहँ रहते जीवन यत्न न लहते हैं।।
हैं रेति के ढेर जहँ तहँ औ कुछ कुछ तार जनमते हैं। जन सब देश विदेशन में जाकर भिक्षा माँगते फिरते हैं।।
उन अपने छोटन बच्चों को क्या क्या उपदेश बताते हैं। वह रहते गुरुकुल वा घर में क्या क्या विद्या उन्हें पढ़ाते हैं।।

सुदामा -

सुनो मित्र सब कुशल कहौं जैसे परिवार वरतते हैं। ना जीवन धन है जिनको वे राम भरोसे रहते हैं।
सो सबके यत्न करै जो विश्वमात्र को भरते हैं। क्या चिन्ता करना उनको जो राम चरण चित धरते हैं।।
भोजन छाजन की चिन्ता सब वैष्णव जन नहिं करते हैं। यथा लाभ संतोष सदा करके निर्द्वन्द विचरते हैं।।
आठ वर्ष का बड़ा तनय उपनीत वेद वह पढ़ता है। दोनों शाम रोज-रोज हिं सो सन्ध्या वंदन करता है।।

भगवान् श्रीकृष्ण - (मन ही मन) सुशीला विदुषी है। उसने अवश्य कुछ न कुछ मेरे लिए भेजा होगा। संकोच से ये दे नहीं रहे हैं, किन्तु कोई गठरी नहीं दीख पड़ती। (प्रकट) काँख पर गौर से दृष्टि डालते हुए -

अपन हृदय की बात कहो भाई।
बहुत दिनन पर मिले आज तुम क्यों नहीं आवत जात।
आते समय प्रिया दे भेजी है हमरे क्या सौगात कहो भाई।
सुनि हरि बचन प्रेम रस साने मन ही मन मुसुकात कहो भाई।
बार बार जब पूछन लागे कहते नहीं सकुचात कहो भाई।
कहो मित्र क्यों बोलत नाहीं कँखिया क्यों अलगात कहो भाई।
अपने से हरि गठरी लानी सब लखि हँसत ठठात कहो भाई।

(कहते-कहते श्रीकृष्ण सुदामा के काँख से गठरी छीन लेते हैं। सुदामा लज्जित हो जाते हैं तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उनका संकोच दूर करते हुए कहने लगते हैं।)

जानत सुदामा भाई हमरो सुभाव तुम, एक दल तुलसी में जाउँ मैं बिकाये जी।
रोवत बुलाई वही द्रुपदी बेचारी तब, चीर के बढ़ाई हम भारत कराये जी।
दूत-सूत नाम से कहाये हम जगत में, बड़े बड़े तीर सही रथ को हँकाये जी।
तोर अस मित एक तुँही मोर लोकहुँ में, मोर घर आये तुम काहे को लजाये जी।
तोरे सम प्रेमी हूँ के चहत चरण रज, हम तेहि लग तिन पीछे-पीछे धाय जी।
मोर जन जब-जब जैसे-जैसे चाह तब, तैसे-तैसे रूप धरि तहँ-तहँ धाय जी।
अंबरीष ऋषि लागी दशो देह धरे हम, भगत के दुःख मोरा देख न सहाये जी।

सुदामा - (सिर नीचा कर) मित्र, यह आपके योग्य नहीं है इसलिए मुझे संकोच हो रहा है।

भगवान श्रीकृष्ण- सुनो सुदामा यार यह हम कहत विचार।

यह चूरा को थोर न मानो, जानो धनद भंडार यह हम कहत विचार।।
सूख अन्न को तुच्छ न कहिये, है यह अमिय आगार यह हम कहत विचार।
प्रेम नेम से दिये दान को,करता हूँ परम पियार यह हम कहत विचार।
भेजी प्रिया परम मित्राणी,जानत हृदय हमार यह हम कहत विचार।
हम दीनन को दीन हमारे, तेहि लग यह अवतार यह हम कहत विचार।
पत्र पुष्प फल जल आदर से, अर्पित करउँ अहार यह हम कहत विचार।

सुदामा - मित्र, चाहे आप इसकी जितनी प्रशंसा करें परन्तु मेरी दृष्टि में तो इस निरस चिउड़े का तो कोई मूल्य नहीं है। कहाँ अमिय आहार और कहाँ यह शुष्क चिउड़ा !

भगवान् श्रीकृष्ण - भाई सुदामा, यह क्या कहते हो ! मैं प्रेम का भूखा हूँ। प्रेम से भेजे हुए भाभी के इस प्रसाद का स्वाद क्या बतलाऊँ। (कहकर खाने लगते हैं।)

यशोदा न दई, देवकी न दई, अरु ब्राह्मण की घरनी न खबाई।
कोशिला न दई, द्रौपदी न दई, सबरी न दई, लक्ष्मी कहँ पाई।

यह ऐसन स्वाद के वस्तु कहुँ , हम जाय नहीं हम विदुरो घर खाई।
पहिले पहिले यही आजहिं जो, अरु चूरा हमें भवजाई खिलाई।

भक्त-

बारहि बार बखानि बखानि के, सुप्रेम से पावत हैं यदुराई।
खाने से पहले प्रभु आप दिये दो लोक।
दूसरी मुट्ठी जो लिये दयी रुक्मिणी रोक।

रुक्मिणी - नाथ ! क्या आप जैसे सर्वान्तर्यामी से भी कुछ कहना ही होगा। (हाथ रोक कर)यद्यपि -
वनिता गण को पति से अपने कुछ भी कहना ना चाहिए। तौभी समय सुहावन को यों जाने देना ना चाहिये।।
थोरी विनती यह मेरी है सो मन दै सुनना चाहिये। स्वामी के प्रसाद जूठन सब पत्नी को मिलना चाहिये।।
हम सब भागिन हैं सो कम से कम तो मिलना ही चाहिये। यह चूरा पवित्र सब जन को दे देकर पाना चाहिए।।
नारी सुभाव चपल वश जो कहीं नहीं कहना चाहिये। नाथ हुई अविनय जो हमसे क्षमा उसे करना चाहिये।।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र - (सुनकर)सत्य है प्रिये। यह अविनय नहीं, अधिकार है।
पति सब से जब जब भूल हुई पत्नी सब राह बताई है। सचमुच यह चूरा लालच वश तुमरी यह सुधि भुलवाई है।।
हम तो अति स्वादु चबेन से अभी तृप्त नहीं हो पाये हैं। पहले पहल आज तुम ऐसी यह नीति भली बताई है।।
प्रिय ले लो प्रसाद चबेन को जो अमृत मयी यह आयी है। यह चूरा प्यारी का कहना तुमरे जो मन तरसाई है।।

सुदामा- भगवान्श्रीकृष्णचन्द्र के व्यवहार को देखकर (मन ही मन)-
भगवान विना अस कौन करै जन जीवन की जरनी न हरै।
यह शील उदार अपार कहाँ इनके बिन कौन सुधार करै।
यह देव दयालु कृपालु महाँ इनके बिन को भव पार करै।
हरि के पद पंकज से ही सदा सब दासन के सब काज सरै।
जिनके मन में यह रूप बसै तिनको यह का जग जाल करै।
जन के अघ को मन में न धरै तनिको गुण हो सो खोज करै।

रात्रि का समय है। भोजनोपरान्त सुदामा पलंग पर पौड़े हैं। पास ही भगवान् बैठे हैं। परस्पर बातें हो रही हैं।

भगवान् **श्रीकृष्णचन्द्र** (गुरुकुल की चर्चा करते हुए)-
याद करो भाई याद करो, वह काशी में जब पढ़ते थे। आज्ञा गुरुआइन की पाकर लकड़ी लाने जो चलते थे।।
जिस दिन आई आँधी पानी, औ बादल घोर गरजते थे। बार-बार चपला चमकत, बट तर आकर के सटके थे।।
भई अँधेरी रात तहँ नहीं, हाथ पसारे दिखते थे। अंगुली धर कर चलने से भी, नहीं पहुँच तहँ अटके थे।।
भोरे गुरु दयाल ले ले कर, नाम पुकारत फिरते थे। कहाँ सुदामा कृष्ण हमारा, सभी लोगों से पूछते थे।।
जिन गुरुदेव कृपा से नर वर यह, भव सागर से तरते थे। हुई कृपा उनकी हम सब पर, जो प्रियजन पर वे रखते थे।।
चौसठों कला दै शिष्यों से, वे कुछ भी कभी न चहते थे। एके दिवस में दी शिक्षा सब जो संदीपन कहलाते थे।।

सुदामा- (मन ही मन कुछ संकुचित होकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र से प्रार्थना करते हैं)-
प्रभु हौ आरत-हर गोपाल शरण सब केरा। प्रभु दीनन के नाथ तु हित सागर के बेरा।।
तुम ही हो सागर कल्याण गुणन सब केरा। तैसे विप्रन संत अकिंचन जन के चेरा।।
अब भगवान कृपा कर करहु हृदय मम डेरा। नाथ हुआ संतोष चहौं अब चलन सबेरा।।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र - भाई सुदामा, रात अधिक बीत चुकी। आप मार्ग के थके हैं इसलिए आराम करें। सुदामा सो जाते हैं किन्तु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मित्र-विरह की बात सोचते हुए करवटें बदलते हुए रात विताते हैं। सवेरे सुदामा के पास आकर कहते हैं -
सुनहु बचन एक मोर ये सुदामा भाई।
कुछ दिन रहु भइया मोरे पुर द्वारिका में। हमहु करब तोर सेवन ये सुदामा भाई।।
तन बड़ दुवर-पातर लखहुँ में रुखर भूखर। पगहुँ बेअईया बरजोर ये सुदामा भाई।।

पगरी पुरानी भली पुतली भी वैसी फाटी। तैसही चादर फाटी तोर ये सुदामा भाई।।
लेलहु रेशम धोती पाग औ चादर जोरी। सुन्दर पुनीत लगल कोर ये सुदामा भाई।।
चोवा औ चन्दन तैसे इतरो अरगजा से। लेपन करा ल हाथ मोर ये सुदामा भाई।।
कबहु न आये भाई जब से बिछुड़ले जी। चलन चहत काहे भोरे ये सुदामा भाई।।

बहुत आग्रह करने पर भी जब सुदामा रहने को नहीं तैयार होते हैं तो आगे-आगे सुदामा, पीछे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और उनके पीछे पुरवासी लोग चले जा रहे हैं। सुदामा फेरने की चेष्टा बार-बार करते हैं किन्तु प्रेम के मारे भगवान श्रीकृष्ण फिरते नहीं। पुरवासी आश्चर्य से देख कर कह उठते हैं -

भोरे ही सुदामा चले जब बरबस रहन कहते युदराई।
विप्र नगर से बाहर निकले, ता पाछे मग कृष्ण चले तब।
फेरत हुँ नहीं फिरत कन्हाई, तिन पाछे अरु लोग चले सब।।

सुदामा बरवस रुक जाते हैं और श्रीकृष्ण को लौटाते हैं किन्तु भगवान् आँखों में आँसू भरकर करुण स्वर में कहते हैं।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र -

मोरे संग लेहु न लगाय ये सुदामा भाई।
कठिन कठोर तोर भेलव करेजवा जी। केहि अपराधिये तू चले जाये ये सुदामा भाई।
हमहु चलब भइया आजु तोर संग ही जी। लेलहु चरण में लगाये ये सुदामा भाई।
झोरी पोथी ढोव तोर आसन बासन सब। तीन बेर देव नहाय ये सुदामा भाई।
झारु लै बहारु करिहौं जहँततु रहब जी। और देव चौका लगाये ये सुदामा भाई।

दर्शकगण- (विदा होते समय कृष्ण-सुदामा को गले मिलते देखकर)-

अतिशय विह्वल प्रेम मग्न, जब कृष्ण सुदामा मिलते हैं। गले गले मिलते मिलते, वे हाथ परस्पर धरते हैं।।
दोनों जन का कंठ रुद्ध है, ना मुख वचन निकलते हैं। अरु दो मित्रों के नेत्रों से, झर-झर आँसू झरते हैं।।
प्रेम समुद्र उमड़ने से, मित्रों के गोते लगते हैं। जो कहते आनन्द महा, वह मित्र परस्पर डूवते हैं।।
इससे आगे और नहीं, बस ब्रह्म जीव दो मिलते हैं। ज्ञानी जन जिसको चहते, सो सतत भक्तवर लहते हैं।।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र - (सुदामा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र से विदा होकर चले जाते हैं और श्रीकृष्णचन्द्र लौटकर राजधानी में उदास बैठे एकान्त में गुनगुना रहे हैं)-

मन लिए सुदामा जाय बरबस काह करुँ।
चल गए मित्र हमार आज वह लेकर हृदय चुराय, अब हम काह करुँ।
उन बिनु सून सिंहासन आसन भवन न देखल जाय, धीरज काह धरुँ।
है नर यही पुर के वासी जो लावै मित्र घुमाय, तेहि मैं प्यार करुँ।
नयन नीर भरी गल बल बोलत हमरे कछु न सुहाय, कउन उपाय करुँ।

भगवान श्रीकृष्णचन्द्र से विदा होकर सुदामा चले जा रहे हैं और मन ही मन विचार करते जाते हैं

बेटा बैरी बाप का स्त्री का पुरुष बलाय। दोष पंचदश जानि के धन न दिये यदुराय।।

भगवान्ने अच्छा किया जो धन न दिया, मैं धनमद में अवश्य भगवान्को भूल जाता। सुशीला को मैं समझा लूँगा। अहा, देखो भी हम अकिंचन के साथ उनका व्यवहार कैसा रहा है! धन्य हैं प्रभु, भला मैं इतना दरिद्र और वे द्वारकाधीश! मेरी उनकी मैत्रै कैसी ! नहीं, सचमुच वे दीनबन्धु हैं, हमारे जैसे दीनों के लिए ही उनका अवतार होता है।

करत गुनगान चले मग में जी।
मो सम क्षुद्र पुरुष कहें प्रभु जी प्रेम से गले लगे जी। थोरेहीं तुच्छ चबेनी सुखी अति आदर से लिये जी।।
स्वयं द्वारका नायक होकर महल से दौड़ मिले जी। बारहीं बार पुछत कुसलाई अतिशय प्रेम पगे जी।।
अतिशय दीन जान करके भी कैसी सुकृपा किये जी। दीनबन्धु भगवान हमारे सब दुःख दूर किये जी।।

(इस तरह विचार करते हुए सुदामा जी अपने नगर के समीप पहुँचते हैं परन्तु बाहर अपनी झोपड़ी की जगह महल देखकर आश्चर्य में पड़कर सोचने लगते हैं।) (मन ही मन)-

सुदामा जी ऐसो करत विचार।
गाँव से बाहर हमरी मड़इया, तहाँ राजदरवार जी। ऐसो करत विचार।
उ क्या कुबेर के भवन सुहावन , ऊँचा कनक पहाड़ जी। ऐसो करत विचार।
काह भई वह छोटी झोपड़िया, कहाँ गये परिवार जी। ऐसो करत विचार।
मोरी झोपड़िया की सुधि नाहीं, किसने किया उजाड़ जी। ऐसो करत विचार।
करची विछावल फूस से छावल, तेकर तार अधार जी। ऐसो करत विचार।

(सुदामा जी इसी उधेड़बून में हैं। पत्नी अटारी पर बैठी है, वहीं से उन्हें देखकर पहचान जाती है और सेविका को बुलाने के लिए भेजती है।)

सेविका -

बैठी अटारी रावरी नारी, हम कह भेज हँकार जी। ऐसो करत विचार।
पास बुलाई मंच बैठाई, पग ले प्रेम पखार जी। ऐसो...।

सुशीला-पूछती कुशल मदन मोहन को, काह किये सत्कार जी। ऐसो...।

सुदामा -सब सुख दिये द्वारीका नायक, ऐसे कौन उदार जी। ऐसो...।
थोर चबेन बहुत हरि मान्यो, ऐसे कृपा अगार जी। ऐसो...।
सो दयालु के कृपा मात्र से, जन के होत उधार जी। ऐसो ...।
अपने जन के लालन पालन, करन लिये अवतार जी। ऐसो...।

सुशीला-पतिदेव, यह सम्पत्ति आपके सखा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की ही देन है। पर्णकुटी की चिन्ता छोड़ इस वैभव को देखें। सुख भोगें।

सुदामा- प्रिये, सम्पत्ति तो दोनों के लिए नरक का द्वार है, इसे पाकर ही इतना प्रसन्न हो।

सुनो प्रिय एक बात सत्य निर्धन को जो धन आता है। ताहि क्षुद्रता के कारण दोष पंचदश लाता है।।
श्रम चिंता भ्रम हिंसा औ बिनु कारण बैर कराता है। चोरी झूठ दंभ मद सब में काम कोह उपजाता है।।
ईर्ष्या भेद गर्ब लाकर यह अतिशय मोह बढ़ाता है। सबसे ही विश्वास हटाकर अंत नरक ले जाता है।।
निर्धनता ही कहीं भली जब हृदय दीन बन जाता है। दीनबन्धु का भक्त दीनता से ही प्रिय बन जाता है।।
अर्थ अनर्थ सकल कारण ते ज्ञानी को न लुभाता है। फिर भी पात्र वही लक्ष्मी का जग में प्रिय बन जाता है।।

सुशीला- सत्य है स्वामिन्! किन्तु जिस पर प्रभु का अनुग्रह रहता है लक्ष्मी भी उसके प्रतिकूल नहीं जाती। जब भगवान् ने दे दिया है तो उसका उपभोग करना भी हमलोगों का कर्त्तव्य है। प्रभु सुख या दुःख जो कुछ दें सहर्ष स्वीकार करना ही भक्त का कर्त्तव्य है।

सुदामा- प्रिये, भला यह तो कहो कि इतनी जल्दी यह महल कैसे बन गया ? कैसे यह विभव बढ़ा ? कुछ इसके बारे में बता सकती हो ?

सुशीला - पतिदेव ! रात्रि में बच्चे कुछ खा-पीकर चटाई पर सोये हुए थे। मैं भी उसी चटाई पर लेटी हुई आपकी ही चिन्ता में मग्न थी। कुछ क्षण के लिए आँखें झप गयीं। अचानक किसी ने दो बार पुकारा। मैं चौंक पड़ी, उठ बैठी, देखती हूँ कि मैं पलंग पर बैठी हूँ और सभी बच्चे सुन्दर पलंग पर सोये हैं। आस-पास में अनेकों दास-दासियाँ खड़ीहैं। मैंने पूछा तुमलोग कौन हो ? उनलोगों ने उत्तर दिया - हमलोग भगवान् के भेजे हुए आपके सेवक हैं। ये ऋद्धि-सिद्धियाँ आपके लिए भेजी गयी हैं। आप इन्हें अंगीकार करें। बस, इसके बारे में मैं इतना ही जानती हूँ।

सुदामा - (क्षणभर भगवान्की महिमा का स्मरण कर) - प्रिये, भक्तवत्सल भगवान्को भक्त के लिए कुछ भी अदेय नहीं है "**स्मरतः पादकमलमात्मानमपि यच्छति।**" द्यो जो कुछ भी करना चाहते हैं उसके लिए साधन सामान की जरुरत नहीं होती। उनकी इच्छा मात्र से ही सभी काम हो जाते हैं। कहा भी है -

" चिकीर्षते कर्मणि चक्रपाणेनपि क्षेत्र तत्र सहाय सम्यत्। पांचाल-जाया पट सन्निधाने मध्ये सभ्यं यन्त्र तुरी न वेमा।।"
प्रिये, उन चरणों को कभी न भूलना चाहिए।

पुरवासी - (सुदामा की समृद्धि देखकर) -

अजब तेरी माया यदुराया। जोदामन नहीं चहत सुदामा बले पहुँचाया।।
वह कुचैल के धन देखत हीं, धनद हुँ लजाया। यदुराया ...।।
रिद्धि-सिद्धि सब भाँति पठा के, विचित्र देखाया। यदुराया ...।।
जिन दरिद्र के कोऊन पूछे, तिनहीं अपनाया। यदुराया ...।।
दुःखियों को दुःख दूर किये से, सुयश तहँ छाया। यदुराया ...।।
सो यह एक काम नहीं तुमरें, सदा चली आया। यदुराया ...।।

सुदामा - प्रिये, सम्पत्ति का सदुपयोग सत्पात्रों को देने में है, दीन में है, दीन दुःखियों को हृदय खोलकर देना चाहिए, फिर उससे जो बचे उसे ही खाना ही चाहिए। कहा भी है - "धनं दान्तय भुक्त ये" और दे भी तो दरिद्रों को। भगवान्ने कहा है - "दरिद्रान्भर कौन्तेय।" धन को बचा कर रखना और भूमि में गाड़ना अपने लिए कब्र खोदना है, नरक का द्वार खोलना है।

सुशीला - हाँ स्वामिन, नित्य इसके दान का प्रवन्ध कर दिया जाय।

पुरवासी -

खजाना लुटावै हो सुदामा।
चारो सिंह पौर पर हलचल, देश देश सुनि आवै। खजाना......
दीन-हीन के भीर न छूटे, मनमाना निध पावै। खजाना...
पंडित ब्राह्मण भिक्षुक याचक, झुंड-झुंड मिलि आवै। खजाना...।
बड़-बड़ देश के सब जन, नित नव मंगल गावै। खजाना...।
भोजन वस्त्र भूल मत जाना, जो जहँवा तँह पावै। खजाना......।
धन्य-धन्य तुम धन्य सुदामा, जै जै शब्द सुनावै। खजाना...।

।। इति श्री ।।

श्री ः

श्रीमते रामानुजाय नमः । श्रीवेंकटेशाय नमः ।

ब्रह्ममेध संस्कार एवं नारायणवलि पद्धति

प्रणम्य परमात्मानं वेंकटेशं पराङ्कुशः ।
नारायणवलि कुर्वे ब्रह्ममेधसमन्वितम्।।
अज्ञाननाशने दक्षां सर्वधर्मप्रबोधिनीम् ।
सर्वसम्मतसिद्धान्तां हारीतस्मृतिमाश्रये।।

ब्रह्ममेधसंस्कार और नारायणवलि श्राद्धपद्धति
श्रीवैष्णव सम्प्रदायान्तर्गत गोवर्द्धन पीठ
परम्परा प्रविष्ट परमहंस अनन्तश्री
स्वामी राजेन्द्र सूरि चरणाश्रित
गया मण्डलान्तर्गत
सरौती मठाधीश

श्रीस्वामी पराङ्कुशाचार्य

द्वारा संकलित
एवम्

श्रीराम संस्कृत विद्यालय सरौती (गया)
द्वारा प्रकाशित

संवत् **2010**

श्रीमते रामानुजाय नमः

विषय सूची

सूक्त संग्रह

नारायणवलि का सविस्तार कृत्य

श्रीमते रामानुजाय नमः

भूमिका

श्रीसच्चिदानन्दघनस्वरूपिणे कृष्णाय चानन्तसुखाभिवर्षिणे
विश्वोद्भवस्थाननिरोधहेतवे नुमो वयं भक्तिरसाप्तयेऽनिशम्।
कीटेषु कोटिशतजन्मसु मानुषत्वम् तत्रापि कोटिशतजन्मसु बाह्मणत्वम् ।
तत्रापि कोटिशतजन्मसु वैष्णवत्वम् तत्रापि कोटिशतजन्मसु मत्परत्वम्।।

यद्यपि इस संसार को लोग सर्वथा असार ही कहा करते हैं किन्तु कुछ सार तो अवश्य ही है । और वह है सार **"धर्म"**। **"धारणाद्धर्ममित्याहुः।"** यदि सृष्टि की सत्ता है तो धर्म से ही। और यही एक स्थिर पदार्थ भी है। वह धर्म मानव शरीर द्वारा होता है अतएव धर्म का साधन होने से मनुष्य का शरीर भी इस संसार में सार है। मानव शरीर में वैष्णव शरीर की सारता विशेष सिद्ध होती है क्योंकि **"वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।गी 7।19।"** और ऐसे व्यक्तियों के ऊपर परमात्मा की विशेष कृपा होती है। इतना विशेष कि **"यदि वातादिदोषेण मद्भक्तः न च मां स्मरेत्।अहं स्मरामि मद्भक्तः नयामि परमां गतिम्।"** अर्थात् अन्त अवस्था में कफ पित्तादि के प्रभाव से आकान्त हो जाने के कारण मेरा भक्त मुझे याद नहीं करता तो वैसी अवस्था में मैं ही उसे याद करता और उत्तम गति देता हूँ।

"अहं भक्तपराधीनः" यह कहकर सर्वतन्त्र स्वतन्त्र परमात्मा भक्तों को और भी बड़भागी बना देते हैं तथा बछड़े के पीछे-पीछे गौ की तरह भक्तों के पीछे पीछे परमात्मा चला करते हैं। अतः ऐसे भगवान् के कृपापात्र श्रीवैष्णव और्ध्वदैहिक क्रिया या श्राद्ध में भी विशेषता ऋषि महर्षियों ने देखी है और करना भी शिष्टाचार है। वृहदहारीत का कहना है।

केशवार्पितसर्वाङ्ग शशिभं मङ्गलाद्वयम्। न वृथा दाहयेत् विद्वान् ब्रह्ममेधविधिं विना।।

अर्थात् श्रीवैष्णवों का दाह संस्कार ब्रह्ममेध संस्कार पूर्वक हो और श्राद्ध प्रकरण में नारायणबलि श्राद्ध। किन्तु संहिताओं से पृथक ऊपरोक्त क्रियाओं की कोई पद्धति उत्तर भारत में प्रचलित नहीं मिलती जिसे पूर्ण ज्ञानाभाव ही कहा जा सकता है। इसलिए इस अभाव को दूर करने के निमित्त यह पद्धति प्रकाशित की जा रही है।

मरणकालिक सावधानी

अर्थात् मरणासन्नावस्था में कफ पित्तादि दोषों के प्रभाव से प्राणी प्रायः व्याकुल ही रहता है। ईश्वर स्मरण तो दूर रहा स्वशरीर व्यापार भी भूल जाता है। ऐसी परिस्थिति में कोई-कोई ही काम क्रोधादि से रहित ज्ञानी ईश्वर शरणागत व्यक्ति अपना पूर्णबोध रखते हैं और वैसे ही जन भगवान के विशेष कृपापात्र हैं। वे ही उच्च्व कोटि के व्यक्ति समझे जाते हैं। उन्हीं को परमात्मा स्वयं याद करते हैं। दूसरे जो भगवान से सर्वदा विमुख रहने वाले हैं उन्हें तो अन्तिमावस्था में स्मरण दिलवाने पर भी भगवान याद नहीं होते क्योंकि आदि अभ्यास से वे प्रभावित रहते हैं।

यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्। तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः।गी 8।6।

यदि परमात्मा स्वयं स्वकृपा वश या घुणाक्षर न्यायतः याद दिलाने से याद हो गये तो उन्हें भी मुनि दुर्लभ गति प्राप्त हो जाती है। किन्तु यह तो कभी ही और किसी को ही उपलब्ध हुआ ।

यद्यपि परमात्मा को निर्हेतुक कृपा द्वारा ही सबों की मुक्ति सिद्ध है। परगत शरणागति ही सब को मान्य है। फिर भी "**कर्मण्येवाधिकारस्ते.....**गी 2।47." के अनुसार जो भगवान् के विशेष कृपापात्र हैं उन्हें तो लोकसंग्रहार्थ और जो भगवद्‌विमुख हैं उन्हें स्वउद्धारार्थ भगवन्नामों का सदा अनुसन्धान सिद्धोपाय है जो कल्याणार्थ अनिवार्य है। अन्तकालिक क्षणिक भूल भी महान से महान अधःपतन का कारण बन जाता है और सावधानी इष्टपूर्ति का। अतः इन विषयों को ध्यान में रखते हुए मरणासन्न को तत्काल पञ्चगव्य गंगाजल और कुश मूल से नहला कर चन्दन घी लगा नवीन वस्त्र मालादि पहनाकर घर से बाहर लीपा पोता शुद्ध स्थान में कुशासनों के ऊपर जहाँ तुलसी वृक्ष और शालिग्राम भगवान् हो, रखे। तथा अन्यान्य लौकिक चर्चाओं को छोड़ भगवत्संबन्धी चर्चा गीता, रामायण, विष्णुसहसनाम आदि का और यदि मरणासन्न वैष्णव महाभागवत हो तो भागवत, श्रीभाष्य, प्रबन्ध या अन्यान्य वैष्णव सांप्रदायिक ग्रन्थों का पाठ करे। भगवान् का तीर्थ भी उसे मिलते रहना चाहिए और मरणासन्न में ब्रह्ममेध संस्कार पूर्वक उसकी दाह क्रिया होनी चाहिए।

केशवार्पित सर्वाङ्गं शशिभं मङ्गलाद्वयम्। न वृथा दाहयेत् विद्वान् ब्रह्ममेधविधिं विना।।

नारायणवलि श्राद्ध क्यों

वृद्ध हारीत ने नारायणवलि श्राद्ध की जो महत्ता दी है उसे देखकर अवाक् ही रह जाना पड़ता है। इस श्राद्ध के द्वारा जब पापी से पापी का उद्धार होता है, उद्धार ही नहीं बल्कि परमपद की प्राप्ति होती है तो उससे दूसरा सुगम उपाय और क्या हो सकता है? यह जानने की बात है कि श्राद्ध मात्र का उद्देश्य मृतात्मा की शान्ति है चाहे वह प्रेत निमित्त हो या पितृ निमित्त ।

श्राद्ध की परिभाषा - "**प्रेतं पितृंश्च निर्देश्य भोज्यं यत्प्रियमात्मनः। श्रद्धया दीयते यत्र तच्छ्राद्धं परिकीर्तितम्।।**"

व्यक्ति का अतिप्रिय भोजन श्रद्धापूर्वक दिया जाय उस क्रिया को श्राद्ध कहते हैं। यहाँ प्रेत शब्द से अमुक्तात्मा समझना चाहिये। जिसमें प्रेत और पितृ दोनों ही आ जाते हैं जिनका माध्यम अग्निष्वाता विश्वेदेव किया करते हैं। इन्हीं के द्वारा श्राद्ध में दिया गया पदार्थ अक्षय होकर प्रेत या पितरों को मिला करता है क्योंकि उनका सीधा सम्वन्ध विश्वम्भर से रहता है। अतः विश्वात्मा नारायण के उद्देश्य से दिया गया पिण्ड क्यों कर मुक्तिदायक नहीं होगा जबकि वे विश्वप्राणी की आत्मा हैं। प्रह्लाद ने कहा है:

"**नह्यच्युतं प्रीणयतः बह्वायासोऽसुरात्मजाः । आत्मत्वात् सर्वभूतानां सिद्धत्वादिह सर्वतः** ।भागवत 7।6।19।"

अर्थात् हे असुरात्मजों अचयुत भगवान की प्रसन्नता में बहुत आयास परिश्रम नहीं है क्योंकि वे सभी प्राणियों की आत्मा है और सभी प्रकार से सिद्ध उपाय हैं। यही कारण है कि शास्त्रों में नारायणवलि श्राद्ध की इतनी महत्ता दी गयी है बल्कि कुछ लोगों का तो कहना है कि प्रेतात्मा की मुक्ति के लिए तीन षोडशी होनी चाहिए। मृत्यु के पश्चात् प्रथम अवयव (दशगात्र) श्राद्ध तक निकृष्ट, षोडशी एकादशाह से सपिण्डन तक मध्यम षोडशी और नारायणवलि तीसरी उत्तम षोडशी है। अतः इसके विना श्राद्ध अधूरा रह जाता है। जो हो, पर यह सर्वमान्य है कि नारायणवलि शेष श्राद्धों में उत्तम श्राद्ध है। वृहद् हारीत में स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि यह विशिष्ट धर्म है।

निर्वर्त्य विधिना धर्मं समान्येनावशेषतः। विशिष्टं परमं धर्मं नारायणबलिं ततः ।। वृ हा अ 6 श्लो 1।

शेष श्राद्ध सामान्य धर्म है और नारायणवलि विशिष्ट एवं परम् धर्म है। अतः शेष श्राद्धों को समाप्त कर मुक्ति आदि की कामना से नारायणबलि श्राद्ध अवश्य करें "**प्रकुर्याद वैष्णवैः सार्द्धं यथाशास्त्रमतन्द्रितः**। अ 6 श्लो 2 ।"

किन्तु कालक्रम से इस विशिष्ट श्राद्ध को लोग भूल गये। यदि कहीं सुना भी जाता है तो केवल दुर्मरण के प्रायश्चित् स्वरूप। यही जनता में दृढ़ धारणा बन्धी है जो नितान्त भ्रमपूर्ण है। शास्त्रों में तो मोक्ष या भगवत्प्राप्ति की कामना से भी इस श्राद्ध को करने का

विधान है। विशेषतः संन्यासियों या विरक्त महात्माओं के लिए तो अनिवार्य रूप से यही श्राद्ध करने का विधान पाया जाता है। पार्वण के अतिरिक्त शेष श्राद्ध की तो उन्हें आवश्यकता ही नहीं होती। क्योंकि वे तो जीवन में ही इस माया जाल को छोड़ देते हैं। निर्णयसिन्धुकार कहते हैं कि

शौनकोऽहं प्रवक्ष्यामि नारायणवलिं परम् । चाण्डालादुदकात्सर्पात् ब्राह्मणाद्वैद्युतादपि ।।
दंष्ट्रिभ्यश्च पशुभ्यश्च रज्जुशस्त्रविषाश्मभिः। देशान्तर मृतानाञ्च कनिष्ठानां तथैव च ।।
यतीनां योगिनां पुंसामन्येषां मोक्षकांक्षिणाम्। पुण्याघक्षयार्थाय द्वादशेऽहनि तु कारयेत्।।

यही नहीं छागल ऋषि ने तो जीवन काल में भी यह श्राद्ध करने का विधान किया है।

नारायणवलिः कार्यो लोकगर्हाभयान्नरः ।तथा तेषां भवेच्छौचं नान्यथेत्यव्रवीद्यमः।।

बल्कि धर्म सिन्धुकार ने तो बताया है कि यदि सन्तान नहीं होती हो या जन्म लेकर मर जाती हो अथवा गर्भपात हो जाता हो तो प्रेतोपद्रव की निवृत्ति के लिए नारायणबलि श्राद्ध करना चाहिए।

गर्भपाते गर्भोत्पत्यभावे मृतापत्यवा तदा। प्रतिबन्धकं प्रेतोपद्रवशान्त्यर्थं नारायणवलिकार्यः।।

अतः यह प्रश्न ही नहीं रह जाता कि हैजा, सर्प, जल, विष फांसी इत्यादि के द्वारा मरने वालों के लिए ही यह श्राद्ध किया जाना चाहिए, जैसी भ्रान्त धारणा लोगों में बैठी है। बल्कि प्राणिमात्र के कल्याणार्थ इसे करना अनिवार्य है।

नारायणवलि श्राद्ध कव किया जाय इसमें भी लोगों में भ्रान्त धारणा बैठी है। प्रायः हठ पूर्वक लोग कहते हुए पाये जाते हैं कि एकादशाह को ही और महैकोदिष्ट श्राद्ध से पूर्व ही इसे करना चाहिए। किन्तु यहाँ पर निर्णय सिन्धुकार ने स्पष्ट कहा है '**द्वादशेऽह्णि कारयेत्**' तो संदेह का स्थान ही नहीं रह जाता है। हाँ, विचारणीय विषय यह है कि वास्तव में इसे कब करना चाहिए ? यदि प्रायश्चित्त मात्र के उद्देश्य से करना हो तो एकादशाह को भी कर सकते हैं। किन्तु एकादशाह के लिए कोई सबल प्रमाण नहीं मिलता जैसा कि द्वादशाह के लिए '**निर्णय सिन्धुकार**' '**वोधायन स्मृति**' शालावती तथा शौनक के वचन प्रमाण स्वरूप मिलते हैं।

अव मुक्ति की कामना की बात रह जाती है। अतः द्वादशाह को ही करना चाहिए। शेष श्राद्धों को समाप्त करे जिससे प्रेतात्मा को मुक्ति हो। यदि जीवितावस्था में ही करना हो तो द्वादशी तिथि को करे। किसी तीर्थादि में करना हो तो सदैव किया जा सकता है। इसके लिए सद् असद् का विद्वान लोग आग्रह छोड़कर प्राणिमात्र के कल्याण के लिए यह श्राद्ध करने का प्रचार करें एवं मानव जीवन को सार्थक बनावें।

मंगलाचरण

अखिल भुवन जन्म स्थेम भङ्गादि लीले विनत विविध भूत व्रात रक्षैक दीक्षे।
श्रुति शिरसि विदीप्ते ब्रह्मणि श्रीनिवासे भवतु मम परस्मिन् शेमुषी भक्तिरूपा ।।

ब्रह्ममेध का मूल श्लोक (वृद्ध हारीत संहिता अध्याय 6)

पिता वा यदि वा माता भ्राता वाऽन्ये सुहृज्जनाः। यदि पञ्चत्वमापन्नाः कथं कुर्याद्विजोत्तम ।।1
कनिष्ठवर्जमेवात्र वपनं मुनिभिः स्मृतम्। स्नात्वाचम्य विधानेन कारयेत्पूजनं हरेः।।2
रंगवल्लयादिभिस्तत्र कुर्यात्सर्वत्र मंगलम्। रोदनं वर्जयित्वैव गोमयेन शुचिस्थलम्।।3
विलिप्य मंडले तत्र धान्य स्योपर्युलूखलम्। कलशांस्तु चतुर्दिक्षु तण्डुलोपरि निक्षिपेत् ।।4
हिरण्य पञ्च गव्यानि पंच त्वक् पल्लवान् न्यसेत्। वाससा तन्तुना वापि वेष्टयेत् त्रिप्रदक्षिणम्।।5

उलूखले वासुदेवं कलशेषु क्रमेण च। प्रद्युम्नमनिरुद्धञ्च संकर्षणमधोक्षजम्।।**6**
संपूज्य गन्धपुष्पाद्यैर्भक्त्या भक्ष्यं निवेदयेत्। अभ्यर्च्य मुसलं पुष्पैर्गायत्र्या प्रणवेण च।।**7**
हरिद्रान् वैहन्यात्तु परोमात्रेति वै जपन्। भगवन्मन्दिरे विष्णुं हरिद्राद्यैः प्रपूजयेत्।।**8**
पितुः शरीरं विधिवत् स्नापयेत् कलशोदकैः। तिलैश्च पञ्चगव्यैश्च गायत्र्या वैष्णवेन च।।**9**
उद्वर्त्य सर्वं क्रमेणेति स्नापयेत् पितरं सुतः। नारायणानुवाकेन चैवं स्नाप्य ततः पितुः।।**10**
धौतवस्त्रं च सम्वेष्टय भूषणैर्भूषयेत्ततः। गंधमाल्यैरलंकृत्य शुचौ देशे कुशोत्तरे।।**11**
तिलोपरि निधायैनं वस्त्रं हित्वाऽन्यतः सुतः। धारयेत् उत्तरीयेद्वे यावत्कर्म समाप्यते।।**12**
हुत्वैवोपासनं तस्य आद्रयज्ञीय काष्ठकैः। शिविकां कारयित्वा च वस्त्रमाल्यादिभिः शुभाम्।।**13**
तस्मिन्निवेश्य तं प्रेतं वाहकान् वरयेत्ततः। स्ववर्णं वैष्णवानेव पूजयेत् स्वर्णदक्षिणैः।।**14**
वहेयुस्तेऽपि भक्त्या तं पठन् विष्णुस्तवान् मुदा। हरिद्रालाजपुष्पाणि विकरन् वैष्णवाः मुदाः।।**15**
वादित्रनृत्यगीताद्यैः ब्रजेयुः कीर्तयन्हरिम्। हुताग्निमग्रतः कृत्वा गच्छेयुस्तस्य वान्धवाः।।**16**
वाहकानामलाभे तु शकटे गो वृषान्विते। निवेश्य शिविकां रम्यां ब्रजेयुर्नगराद् वहिः।।**17**
दक्षिणेन मृतं शूद्रं पुरद्वारेण निर्हरेत्। पश्चिमोत्तरपूर्वेषु यथासंख्यं द्विजातयः।।**18**
प्राग्द्वारं सर्ववर्णानां न निषिद्धं कदाचन। गत्वा शुभतरं देशं रम्यं शुभजलान्वितम्।।**19**
यज्ञ वृक्ष समाकीर्णममेध्यादि विवर्जितम्। खातयेत्तत्र कुण्डन्तु निम्न हस्तत्रयं तदा।।**20**
द्वाभ्यां त्रिभिर्वा विस्तारं चतुरायतमेव च ।ततः संमार्जनं कृत्वा गोमयान्वित वारिणा।।**21**
सम्प्रोक्ष्य यज्ञियैः काष्ठैश्चितिं कुर्यात् यथा विधिः। आस्तीर्य दक्षिणाग्रमेवैणाजिनं अनुत्तमम्।।**22**
तस्मिन्नास्तीर्य दर्भान् वै विकीर्य च तिलांस्तथा। तस्मिन्निवेश्य तं देवं घृताक्तं नववस्त्रकम्।।**23**
ईषद्धौतं नवं श्वेतं पूर्व यन्न च धारितम्। अहतं तद्विजानीयाद् दैवे पित्र्ये च कर्मणि ।।**24**
परिषिच्य चितिं पश्चादापोऽस्मानितीत्यृचा। परिस्तीर्य शुभैर्दर्भैरपसव्येन सव्यतः।।**25**
उरस्यग्निं निधायाथ पात्रासादनमाचरेत्। प्रोक्षणं चमसाज्येन चरुमिध्म स्रुवौ तथा।।**26**
आसाद्योक्त विधानेन इध्माधानान्तमाचरेत्। स्वगृह्योक्तविधानेन हुत्वा सर्वमशेषतः।।**27**
पश्चादाज्ययुतं द्रव्यं जुहूयात् उपवीतवान्। सोमानमित्योदनेन प्रत्यृचं ततः आज्यतः।।**28**
तं महेन्द्रेति सूक्तेन हुत्वा प्रत्यृचमेव च। एष इत्यनुवाकाभ्यां पृषदाज्यं यजेत्ततः।।**29**
सर्वैश्च वैष्णवैः मन्त्रैः पृथगष्टोत्तरं शतम्। तिलैश्च जुहयात्पश्चात् अष्टाविंशतिमेव वा।।**30**
एकैकामाहुतिं पश्चाद्वैकुण्ठपार्षदं यजेत्। ब्रह्ममेधः इति प्रोक्तः मुनिभिः ब्रह्मतत्परैः।।**31**
महाभागवतानाञ्च कर्तव्यमिदमुत्तमम्। केशवार्पित सर्वाङ्गं शशिभं मंगलाद्वयम्।।**32**
न वृथा दाहयेद्विद्वान् ब्रह्ममेधविधिं विना। परंभागवतेनापि कर्तव्यं हि द्विजन्मनः।।**33**
द्रव्यलाभेऽपि होतव्यं यज्ञियैश्च प्रसूनकैः। शूद्रस्यापि विशिष्टस्य परमैकान्तिनस्तथा।।**34**
स्वाहाकारञ्च वेदं च हित्वा पुष्पैर्यजेच्छुभैः। तूष्णीमद्भिः परिषिच्य परिस्तीर्य कुशैस्तिलैः।।**35**
नामभिः केशवाद्यैश्च तथा संकर्षाादिभिः। मत्स्यकूर्मादिभिश्चैव वेदार्थोक्तप्रबन्धकैः।।**36**

इति ब्रह्ममेध संस्कारस्य मूल श्लोकाः (वृद्ध हारीत संहिता अध्याय 6)

ब्रह्ममेध संस्कार की सामग्री

1। नवीन वस्त्र और उपवीत। **2**। चौका वन्दनवार का सामान।
3। चन्दन पुष्प दीप नैवेद्य पान सुपारी। **4**। सूत हल्दी।

5 । आंवला, पञ्चगव्य, पञ्चामृत और तिल । **6** । ऊखल, मूसल और हल्दी ।
7 । चार कलश, पूर्णपात्र, पञ्चपल्लव और पञ्चत्वक् । **8** । कुश, यज्ञीय काष्ठ, तुलसी, घी, हविष या भात ।

ब्रह्ममेध का क्रम

1 । दाहकर्ता का क्षौर करण और अहत वस्त्र, उपवीत धारन । **2** । भगवान के समीप चौका, रंगवल्ली, वन्दवार करना ।
3 । ऊखल के सहित कलश स्थापन । **4** । कलशों के ऊपर देवताओं का पूजन ।
5 । हल्दी कूटना और भगवत पूजन । **6** । मृतक का स्नान अलंकार और हवन ।
7 । मृतक को श्मशान ले जाना । **8** । चिता भूमि शोधन और चिता निर्माण ।
9 । चिता के ऊपर मृतक को रखना और अग्नि देकर हवन करना ।

नारायणवलि की सामग्री

1 । मलयगिरि चन्दन एक छटांक । **2** । यथा प्राप्त जड़ सहित कुश ।
3 । श्वेत एवं सुगन्धित यथा साध्य पुष्प । **4** । देवदारु पांच सेर ।
5 । दीप पचास । **6** । कपास एक छटांक ।
7 । हल्दी चूर्ण एक छटांक । **8** । चावल चूर्ण एक पाव ।
9 । पूगीफल एक पाव । **10** । पान पचास पत्ता ।
11 । कर्पूर एक भर । **12** । तुलसीदल यथासाध्य ।
13 । अगरवत्ती एक वेष्टन । **14** । कलश बड़ा छः मिट्टी का या ताम्र का ।
15 । ढक्कन पांच । **16** । नारियल पांच ।
17 । सूत । **18** । पंचमेवा सवा सेर ।
19 । तिल सवा सेर । **20** । मधु एक छटांक ।
21 । गुड़ एक सेर । **22** । गोघृत पांच सेर ।
23 । हवनार्थ चर्तुभागं यवाप्रोक्ताः द्विभागाज्यमेव च । त्रिभागं कृष्णतिलं भागमेकञ्च तण्डुलम् तदर्थ शर्कराप्रोक्ता तदर्थं गुग्गुलादयः ।
24 । एक नयी छोटी चौकी भगवान को रखने के लिए । **25** । पञ्चपात्र चांदी या ताम्र का ।
26 । आसनी कम से कम पांच । **27** । गीता या विष्णु सहस्रनाम की पुस्तक ।
28 । तुलसी की माला । **29** । आचार्य या अन्यान्य कार्यकर्ताओं को वरण ।
30 । कलश आच्छादन तथा अन्यान्य कार्यों के लिए पांच गज कपड़ा ।
31 । देवदार की बनी हुई हवनार्थ प्रोक्षणी, प्रणीता श्रुवा ।
32 । हविष के लिए गौ का दश सेर दूध । **33** । अरवा चावल पांच सेर ।
34 । स्नानार्थ आंवला । **35** । धान ।

नारायणवलि का क्रम

1 । ब्राह्मणों को निमन्त्रण । **2** । विष्णु सूक्त का पाठ । **3** । कर्म पात्र का निर्माण । **4** । मुख्य संकल्प ।
5 । आचार्य वरण । **6** । वैकुण्ठ तर्पण । **7** । शालिग्राम पूजन । **8** । कलश स्थापन और इन्हीं सबों के ऊपर चतुर्व्यूहों के सहित नारायण पूजन । **9** । कुश कण्डिका । **10** । अग्नि स्थापन और पूजन । **11** । ब्रह्मा वरण अग्नि संस्कार और हवन ।

12 । द्वादश नारायण का आवाहन और पूजन, अवनेजनपिण्ड, प्रत्यवनेजनपिण्ड पूजन, अक्षय्योदक । **13** । उपरोक्त रीति से ही नित्य मुक्त और सर्ववैष्णवों का पिण्डादि दान ।

सूक्त संग्रह प्रकरण

अथ नारायणानुवाकः
ॐ सहस्रशीर्षं देवं विश्वाक्षं विश्वशम्भुवम् । विश्वं नारायणं देवमक्षरं परमं प्रभुम् । ।**1**
विश्वतः परमं नित्य विश्वं नारायण ँ् हरिम् । विश्वमेवेदं पुरुषस्तद्विश्वमुपजीवति । ।**2**
पतिं विश्वस्यात्मेश्वर ँ् शाश्वत ँ् शिवमच्युतम् । नारायणं महाज्ञेयं विश्वात्मानं परायणम् । ।**3**
नारायणः परं ब्रह्म तत्वं नारायणः परः । नारायणः परो ज्यातिरात्मा नारायणः परः । ।**4**
यच्च किञ्चिज्जगत्यस्मिन् दृश्यते श्रूयतेऽपि वा । अन्तर्वहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः । ।**5**
अनन्तमव्ययं कवि ँ् समुद्रेऽन्तं विश्वशम्भुवम् । पद्मकोशप्रतीकाश ँ् हृदयं चाप्यधोमुखम् । ।**6**
अधो निष्ट्या वितस्त्यान्ते नाभ्यामुपरि तिष्ठति । हृदयं तद्विजानीयाद्विश्वस्यायतनं महत् । ।**7**
सन्तत ँ् सिराभिस्तु लम्बत्याकोशसन्निभम् । तस्यान्ते सुषिर ँ् सूक्ष्मं तस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठतम् । ।**8**
तस्य मध्ये महानग्निर्विश्वार्चिर्विश्वतो मुखः । सोऽग्रभुग्विभजन्तिष्ठिन्नाहारमजरः कविः । ।**9**
सन्तापयति स्वं देहमापादतलमस्तकम् । तस्ये मध्ये वह्निशिखा अणीयोर्ध्वा व्यवस्थिता । ।**10**
नीलतोयदमध्यस्था विद्युल्लेखेव भास्वरा । नीवारशूकवत्तन्वी पीता भास्वत्यणूपमा । ।**11**
तस्याः शिखाया मध्ये परमात्मा व्यवस्थितः । स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट् । ।
ऋत ँ् सत्यं परं ब्रह्म पुरुषं कृष्णपिङ्गलम् । उर्ध्वरेतं विरूपाक्षं विश्वरूपाय वै नमः । ।**13**
ॐ नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि । तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् । ।**14**

अथ विष्णु सूक्त
ॐविष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजा ँ् सि ।
यो अस्कभायदुत्तर ँ् सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायो विष्णवे त्वा । । **1**
ॐविष्णोरराटमसि विष्णोः श्नप्त्रेस्थो विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोऽसि । वैष्णवमसि विष्णवे त्वा । ।**2**
तदस्य प्रियमभिपाथो अस्याम् । नरो यत्र देवयवो मदन्ति । उरूक्रमस्य स हि वन्धुरित्था । विष्णोः पदे परमे मध्वउत्थसः । ।**3**
प्रतद्विष्णुस्तवते वीर्याय । मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः । यस्योरुषु त्रिषु विचक्रमणेषु । अधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा । ।**4**
परो मात्रया तनुवा वृधान । न ते महित्वमन्वश्नुवन्ति । उभे ते विद्म रजसि पृथिव्या विष्णो देवत्वम् । परमस्य विथ्से । ।**5**
विचक्रमे पृथिवीमेष एताम् । क्षेत्राय विष्णुर्मनुषे दशस्यन् । ध्रुवासो अस्य कीरयो जनासः । उरुक्षिति ँ् सुजनिमाचकार । ।**6**
त्रिर्देवः पृथिवीमेष एताम् । विचक्रमे शतर्चसं महित्वा । प्रविष्णुरस्तु तवसस्तवीयान् । त्वेष ँ्ह्यस्य स्थविरस्य नाम । ।**7**
अतो देवा अवन्तुनो यतो विष्णुर्विचक्रमे । पृथिव्यास्सप्तधामभिः । ।**8**
इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढ़मस्य पा ँ् सुरे । ।**9**
त्रिणि पदाविचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः । ततो धर्माणि धारयन् । ।**10**
विष्णोः कर्माणि पश्यत् यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यस्सका । ।**11**
तद्विष्णोः परमं पद ँ् सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् । ।**12**
तद्विविप्रासो विपन्यवो जागृवाँ्सस्समन्धिते । विष्णोर्यत्परमं पदम् । ।**13**

पुरुष सूक्त

ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। स भूमि ँ्सर्वत स्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्। ।**1**
पुरुष एवेद ँ्सर्वं यदभूतं यच्च भव्यम्।उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति। ।**2**
एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः।पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि। ।**3**
त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः।ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि। ।**4**
ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः।स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः। ।**5**
तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्।पशून् ताँश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये। ।**6**
तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।छन्दा ँ्सि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत। ।**7**
तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः।गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः। ।**8**
तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।तेन देवा अयजन्त साध्या ऋष्यश्च ये। ।**9**
यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्। मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमूरू पादाउच्यते। ।**10**
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहू राजन्यः कृतः। ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत। ।**11**
चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत। ।**12**
नाभ्या आसीदन्तरिक्ष ँ्शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत।पदाभ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँऽकल्पयन्। ।**13**
यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः। ।**14**
सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः।देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम्। ।**15**
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः। ।**16**

सोम सूक्त

ॐ त्वं सोम प्रचिकितो मनीषा त्वं रजिष्ठमनुनेषि पन्थाम्।तव प्रणीती पितरो न इन्द्रो देवेषु रत्नमभजन्त धीराः। ।**1**
त्वं सोम क्रतुभिः सुक्रतुर्भूस्त्वं दक्षैः सुदक्षो विश्ववेदाः। त्वं वृषा वृषत्वेभिर्महित्वा द्युमनेभिर्द्युम्न्यभवो नृचक्षाः। ।**2**
राज्ञोनुते वरुणस्य व्रतानि वृहद् गभीरन्तव सोमधाम।शुचिष्ट्वमसि प्रियो न मित्रो दाक्षाय्यो अर्यमेवासि सोम। ।**3**
याते धामानि दिविया पृथिव्यां या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु। तेभिर्नो विश्वैः सुमना अहेडन्नाजन्त्सोम प्रतिहव्या गृभाय। ।**4**
त्वं सोमासि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा। त्वं भद्रो असि क्रतुः। ।**5**
त्वं च सोम नो वसो जीवातुं नमरामहे।प्रिय स्तोत्रो वनस्पतिः। ।**6**
त्वं सोममहे भगं त्वं यून ऋतायते। दक्षं दधाषि जीवसे। ।**7**
त्वन्नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नधायतः।नरिष्ये त्वावतः सखा। ।**8**
सोम यास्ते मयो भुव ऊतयः सन्ति दाशुषे। ताभिर्नोविताभव । ।**9**
इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपागहि। सोम त्वं नो वृधे भव। ।**10**

अथ इन्द्र सूक्तम्

यो जात एव प्रथमो मनास्वान्देवो देवान्क्रतुना पर्यभूषत्।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना सजना स इन्द्रः। ।**1**
यः पृथिवीं व्यधमानामदृं हृद्यः।पर्वतान् प्रकुपितां अरम्णात्।
यो अंतरिक्षं विम मे वरीयो योद्यामस्तभ्नात सजना स इन्द्रः। ।**2**

यो हत्वा हिमरिणाप्सप्त सिन्धुन्योगा उदाज दशधा बलस्य।
यो अस्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक् समत्सु सजना स इन्द्रः।।3
येने मा विश्वाच्यवना कृतानि योदा संवर्णमधरं गुहाकः।
श्वघ्नी वयो जिगीवाँल्लक्षमाद्दुर्यः पुष्टानि सजना स इन्द्रः।।4
यंस्मा पृच्छन्ति कुइसेति घोर युते माहुर्नेषो अस्तीत्येनम्।
सो अर्यः पुष्टिविज हवामि नास्ति श्रद्धस्मै धत्त सजना स इन्द्रः।।5

विशेष द्रष्टव्य ः सामग्रियों के अभाव में केवल घी तिल या पुष्प से भी काम चल सकता है। वैष्णवी क्रियाओं में सभी मन्त्रों के अभाव में मूल मन्त्र तथा सभी औषधियों के अभाव में हल्दी और कलश में दी जानेवाली सभी वस्तुओं के अभाव में तुलसी से भी काम चलाया जा सकता है। अनुपवीत व्यक्तियों को वैदिक मन्त्रों का उच्चारण मना है। इस सूक्त संग्रह प्रकरण में ब्रह्ममेध तथा नारायणवलि में आने वाले सभी सूक्त तथा अनुवाक् एवं मन्त्रांशों का संग्रह कर दिया गया है। आगे आवश्यकतानुकूल केवल "सू सं प्र" इतना ही लिखा रहेगा।

विष्णु गायत्री **"ॐ नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्"**।
सभी मन्त्रों के अभाव में मूल मन्त्र **"ॐ नमो नारायणाय"**।
आपोऽस्मान् मातरः शुन्धयन्तु घृतेननो घृतष्वः पुनन्तु (सेचनार्थ)।

प्रोक्षण मन्त्रः

1। ॐ आपो हि ष्ठा मयोभुवः। **2**। ॐ ता न ऊर्जे दधातन्। **3**। ॐ महेरणाय चक्षसे। **4**। ॐ यो वः शिवतमो रसः। **5**। ॐ तस्य भाजयतेऽहनः। **6**। ॐ उशतीरिव मातरः। **7**। ॐ तस्मा अरं गमाम वो। **8**। ॐ यस्य क्षयाय जिन्वथ। **9**। ॐ आपो जनयथा च नः।

विष्णु मन्त्र **"ॐ नमो विष्णवे।"**

वैकुण्ठ पारिषदों के नाम

1। अनन्त। **2**। गरुड। **3**। विष्वक्सेन। **4**। चण्ड। **5**। प्रचण्ड। **6**। कुमुद। **7**। कुमुदाक्ष। **8**। जय। **9**। विजय। **10**। सुमुख। **11**। जयन्त। **12**। धातृ। **13**। विधातृ। **14**। सर्वजित्। **15**। प्रियंकर। **16**। ज्ञाननिकेत। **17**। सुप्रतिष्ठित। **18**। भद्र। **19**। सुभद्र। **20**। नन्द। **21**। सुनन्द।

अथ ब्रह्ममेध संस्कारः

श्रीवैष्णवों के किसी सम्बन्धी (माता पिता या अन्य गुरुजनादि) की मृत्यु हो जाने पर मृतक का दाह संस्कार कर्त्ता (पुत्र या शिष्यादि) सर्व प्रथम रोदन शोकादि रहित स्वयं कनिष्ठ स्थान को छोड (नख कक्ष) क्षौर कर्म कराकर स्नान अहत वस्त्र (नवीन युग्म) उपवीत धारण कर तिलक आचमनादि द्वारा पवित्र हो भगवान के समीप (मन्दिर या अलग ही जहाँ शालिग्राम भगवान हो) चौका वन्दनवारादि साधनों के द्वारा अलंकृत कर भगवान की पूजा करे। यह पूजाविधि इसी पुस्तक के नारायण वलि श्राद्ध प्रकरण में सविस्तर दी गयी है। इस पूजा के प्रसंग में कलशस्थापन भी होता है, यह विधि भी वहीं है। जहाँ भगवान की पूजा होगी उस स्थान को गोबर से लीपकर मण्डल के मध्य में धान के ऊपर ऊखल रखे और उसके चारों ओर चार कलश क्रमशः उत्तर पूर्वादि दिशाओं में कलशस्थापन विधि से स्थापित कर उन सबों में सोना, पञ्चगव्य, पञ्चपल्लव और इन्हीं पञ्चपल्लव वाले वृक्षों

की त्वचा भी डाले। कलश सूत या वस्त्र से वेष्टित होना चाहिये।

कलश स्थापन के उपरान्त ऊखल के ऊपर वासुदेव तथा अन्यान्य कलशाओं के ऊपर पूर्वोक्त क्रम से ही प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, संकर्षण तथा अधोक्षज भगवान का आवाहन एवं गन्ध पुष्प नैवेद्यादि से नाम मन्त्रों के द्वारा पूजन करे। विष्णु गायत्री से मूसल की पूजा कर उपरोक्त ऊखल में "**परोमात्रया ......**" विष्णुसूक्त के पांचवें मन्त्र से थोड़ी हल्दी पूजित मूसल से कूटे और शालिग्राम भगवान या मन्दिरस्थ प्रतिमा की पूजा इसी हल्दी से करे।

विशेष द्रष्टव्यः सूतक में नाल छेदन के पश्चात् और मृत्यु होनेपर दाह संस्कार के पश्चात् अशौच लगता है। अतः मंरणोपरान्त ऊपरोक्त के प्रसंग में किसी तरह का सन्देह नहीं करना चाहिये। साथ ही ऐसे अवसर पर रोदन भी किसी को नहीं करना चाहिये।

पूजन के पश्चात् मृतक को क्षौर करवाकर इन्हीं कलशों के जल से पिसा हुआ तिल और आंवला एवं पञ्चगव्य का उबटन लगाकर नहलावे। भगवान के स्नान कराये हुए पञ्चामृत से भी मृतक को स्नान करावे। स्नान काल में विष्णु गायत्री एवं नारायणानुवाक का पाठ करना चाहिए। स्नानोत्तर मृतक को नवीन वस्त्र उपवीत, तिलक, तुलसी की माला एवं पुष्पादि से अलंकृत कर पवित्र कुशासन के ऊपर वस्त्र विछाकर एवं तिल छींटकर उसको रखे और उसके समीप ही कम से कम **28** बार मूल मंत्र के द्वारा अग्नि में गोघृत का हवन करे। यही अग्नि दाहार्थ श्मशान में जाती है। मृतक को श्मशान में ले जाने के लिए शिविका (अरथी) यज्ञीय काष्ठों का बना उसे पुष्पमाला से सुसज्जित कर शव वहनार्थ सवर्णीय या स्वबान्धवों को सोना या अभाव में कुछ द्रव्य देकर वरण करने की विधि से वरण करे। और उन वाहकों के साथ श्माशान मार्ग में यव एवं लाजा एवं हरिद्रादिकों को छिड़कते हुए प्रसन्न चित्त से बाजे गाजे के साथ विष्णु स्तोत्रादि का पाठ करते हुए आगे (जिसमें पूर्व हवन हुआ था वह) अग्नि और पीछे से मृतक को श्मशान ले जावे। यदि ग्राम रक्षार्थ ग्राम के चतुर्दिक् प्रकोष्ठ (घेरा) हो तो उसके पूर्व द्वार से ब्राह्मण उत्तर के द्वार से क्षत्रिय पश्चिम के द्वार से वैश्य और दक्षिण के द्वार से शूद्र मृतक को श्मशान ले जाये। पूर्व का द्वार सबों के लिए ग्राह्य है। मृतक दाहार्थ चिता निर्माण से पूर्व उस स्थान का संशोधन कर लेना चाहिए। प्रथम उस स्थान को आयताकार उत्तर से दक्षिण तीन या चार हाथ लम्बा और दो हाथ चौड़ा तथा जितनी गहराई तक (प्रायः बारह अंगुल भूमि) कर्षणादि व्यवहार में आती है उतनी गहराई तक खोदकर बाहर फेंक दे और गर्त को गोबर से मार्जन मन्त्र से मार्जन कर यज्ञीय काष्ठों सूखी तुलसी की लकड़ी, गूलर, पीपल, पलाश, चन्दन, देवदारु द्वारा चिता बनावे। तुलसी की लकड़ी अवश्य हो। उसकी महत्ता यों पायी जाती है -

शरीरं दह्यते येषां तुलसीकाष्ठवह्निना। न तेषां पुनरावृत्तिः विष्णुलोकात्कथञ्चन।।
यद्येकं तुलसीकाष्ठं मध्ये काष्ठस्य तस्य हि। दाहकाले भवेन्मुक्तिः कोटिपापयुतस्य च।।

पद्मपुराण उत्तर खंड अ **23** । श्लो **3** एवं **7** ।

चिता की रचना कर लेने पर "**आपो हि ष्ठा**" सू सं प्र के प्रोक्षण मंत्रों के द्वारा प्रोक्षण कर ऊपर से कुछ कुश और तिल डालकर घी लगाया हुआ मृत शरीर को चिता के ऊपर उत्तर शिर और उतान ही रख "**आपोऽस्मान**" के ऋचा द्वारा जल छिड़क कर ऊपर कुश एवं काष्ठादि से आच्छादित कर घर से लायी हुई अग्नि को मृतक के हृदय स्थान पर रखे और यथाविधि तत्कालीन हवन सामग्रियों को यथाक्रम रख सबों को प्रोक्षण करे और समिधाधान **3** या **5** या **7** सूखी यज्ञीय काष्ठ टुकड़ियों को घी में डुबा चुपचाप अग्नि में देकर अग्नि को प्रदीप्त करे। पश्चात् स्वगृह्य सूत्र के अनुसार यथा साध्य हवन क्रियाओं को उसी चिता की अग्नि में समाप्त कर पश्चात् सोम सूक्त के प्रत्येक ऋचाओं द्वारा घी मिश्रित हविष एवं इन्द्र सूक्त द्वारा केवल तथा विष्णु मंत्र के द्वारा केवल तिल से और अन्त में सभी वैकुण्ठ पारिषदों को नाम मंत्र द्वारा केवल घी से हवन कर इस क्रिया को समाप्त करे।

विशेष द्रष्टव्यः **1**। श्मशान भूमि यज्ञिय वृक्षों से युक्त एवं पवित्र जलाशयादि के समीप होनी चाहिए। चिता स्थान की गहराई के सम्वन्ध में शास्त्रों में तीन हाथ तक प्रमाण मिलता है किन्तु यह अव्यवहारिक है अतः उपेक्ष्य है। चिता के ऊपर मृगचर्म भी विछाने का प्रसंग मिलता है किन्तु अव्यवहारिक है।

2। यदि उपरोक्त संस्कार में सामग्री का अभाव हो तो केवल यज्ञिय पुष्पों से सभी काम करे। शूद्र को ब्रह्ममेध संस्कार या श्राद्ध में प्रणव स्वाहा स्वधा और वैदिक मन्त्रों का उच्चारण नहीं करे ।

श्रीमते रामानुजाय नमः

नारायणवलि का मूल श्लोक

निर्वर्त्य विधिनाधर्मं सामान्येनावशेषतः। विशिष्टं परमं धर्मं नारायणवलिं ततः। ।1
प्रकुर्यात् वैष्णवैः सार्धं यथा शास्त्रमतन्द्रितः। निमंत्रयेत्तु पूर्वेदयुः ब्राह्मणान्वैष्णवान् शुभान्। ।2
चतुर्विंशति संख्याकान् महाभागवत्तोत्तमान्। केशवादीन् समुद्दिश्य चतुर्विंशति वैष्णवान्। ।3
रात्रौ निमन्त्र्य सम्पूज्य तैः सार्धं विजितेन्द्रियः। प्रातरुत्थाय तैर्गत्वा नदीं पुण्यजलन्विताम् । ।4
धातृफलानुलिप्ताङ्गो निमज्य विमले जले। जपन्वै वैष्णवान्सूक्तान् स्नानं कुर्बीत वै द्विजः। ।5
वैकुण्ठतर्पणं कुर्यात् कुसुमैः सतिलाक्षतैः। गृहं गत्वार्चयेद्देवं सर्वावरणसंयुतम्। ।6
सुगंधं पुष्पैर्विविधैर्गन्धधूपैश्च दीपकैः। नैवेद्यैर्भक्ष्यभोज्यैश्च फलैर्नीराजनैरपि। ।7
अर्चयित्वा विधानेन मूलमंत्रेण वैष्णवः। पुरतोऽग्निं प्रतिष्ठाप्य इध्माधानं समाचरेत्। ।8
चरुं सशर्कराज्यं तु जुहुयाद् वह्निमण्डले। प्रत्यृचं वैष्णवैः सूक्तैः केशवाद्यैश्च नामभिः। ।9
हुत्वाथ वैष्णवैर्मन्त्रैः पृथगष्टोत्तरं शतम्। गवाज्येनैव जुहुयात् चतुर्भिर्विष्णवोत्तमः। ।10
वैकुण्ठपार्षदं हुत्वा होमशेष समापयेत्। अग्नेरुत्तर भागेन गोमयेनानुलिप्य च। ।11
आस्तीर्य दर्भान् प्रागग्रान् चतुर्विंशति संख्यया। उदक् पार्वाणकेनैव केशवादि क्रमेण तु । ।12
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पादर्यस्तत्तन्मन्त्रैः पृथक् पृथक्। मध्वाज्यतिलमिस्रेण चरुणा पायसेन वा। ।13
कुशेषु तेषु दद्यात्तु पिण्डन्तीर्थं विधानतः स्वाहाकारेण मनसा केशवादीन क्रमेण वै। ।14
दत्वा पिण्डान्समभ्यर्च्य गन्धपुष्पाक्षतोदकैः। नित्येभ्यश्चैव मुक्तेभ्यो वैष्णवेभ्यस्तथैव च। ।15
दधात् पिण्डत्रयं चैव तेषां दक्षिणतः क्रमात्। विष्णोर्नुकेन सूक्तेन उपस्थानं जपं तथा। ।16
प्रदक्षिणं नमस्कारं कृत्वा भक्त्या च वैष्णवः। पिण्डान्स्तु सलिले दत्वा स्नात्वा सम्पूज्य केशवम् ।17
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात्पाद् प्रक्षालनादिभिः। अर्घ्याद्यैर्गन्धपुष्पाद्यैर्बाससोऽलंकारभूषणैः। ।18
केशवादिन्समुद्दिश्य नित्यान्मुक्तांश्च वैष्णवान्। सम्पूज्य विधिवत् भक्त्या महाभागवतोत्तमान्। ।19
पायसं सगुडं साज्यं शुद्धान्नं पानकैः फलैः। सम्भोज्य विप्रानाचान्तान् प्रणिपत्य विसर्जयेत्। ।20
हविष्यञ्च सकृद् भुक्त्वा भूमौदद्यात् कुशोत्तरे। अयं नारायणवलिर्मुनिभिः सम्प्रकीर्तितः। ।21

।। इति वृद्ध हारीत संहितायां षष्ठाध्याये नारायणवलि विधिः समाप्तः। ।

नारायणवलि का सविस्तर कृत्य

श्राद्धकर्त्ता श्राद्ध से एकदिन पूर्व ही संध्या समय चौबीस ब्राह्मणों को निमन्त्रण करने के लिए स्वयं उनके घर जाये और हाथ में सुपारी और अक्षत लेकर स्वयं पूर्व मुख बैठे और वैष्णव ब्राह्मणों को पश्चिमाभिमुख बैठाकर इस तरह संकल्प करे "ॐ श्वोऽमुकगोत्रस्य अमुकप्रेतस्य नारायणवलि श्राद्धे भवन्तं देवं ब्राह्मणाम् ऐभिः द्रव्यादिभिः अहम् आमंत्रये" ऐसा बोलकर ब्राह्मण के हाथ में सुपारी आदि दे दे। ब्राह्मण उसे लेकर कहे "ॐ तथास्तु।" और उसके पश्चात् ब्राह्मण को यजमान यह नियम सुनावे "अक्रोधनैः शौचपरैः सततं ब्रह्मचारिभिः । भवितव्यं भवद्भिश्च मया च श्राद्धकारिणा।" अर्थात् आप और मुझे दोनों को क्रोधादिरहित पवित्रता से और ब्रह्मचर्य नियम पूर्वक रहना चाहिए। पुनः दूसरे दिन ब्राह्मणों के घर आ जाने पर उन्हें साष्टांग प्रणाम पूर्वक "ॐ ब्राह्मणाय नमः।" इस मन्त्र से पूजन करे और क्षौर करवा कर आंवला लगा कर उनके साथ स्वयं भी स्नान करे और नित्य क्रियाओं से निवृत्त

होकर विष्णु सूक्त का पाठ करे। इसके पश्चात् कर्मपात्र का सम्पादन करे।

कर्मपात्र निर्माण

पूर्वाग्र कुशों के ऊपर पवित्र लोटा या कोई दूसरा ही पवित्र पात्र रखकर उसमें "ॐ शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभि स्रवस्तु नः" से जल, "ॐ पवित्रेस्थो वैष्णव्यो" से कुश, "ॐ यवोऽसि यवया अस्मद् द्वेषो यवया रातिः" से जौ, "श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्या वहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्। इष्णन्निषाणामुं म इषाण सर्वलोकं म इषाण" से तुलसी दल, "ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्। ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्" से चन्दन और "ॐ तिलोऽसि सोमदैवत्यो गो सवो देव निर्मितः। प्रत्नमद्भिः पृक्तः प्रेतमिमं लोकं प्रिणा हि नः" से तिल डालकर, "ॐ गंगे च यमुनेचैव गोदावरि सरस्वती। विरजे सिन्धुकावेरी जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु" पढ़कर सभी तीर्थों का आवाहन करके, "ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थांगतोऽपि वा। यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स वाह्याभ्यन्तरः शुचिः" पढ़कर स्वयं तथा अन्य सामग्रियों को भी पवित्र कर ले।

कर्मापवर्ग दीप (घृत का)

यह दीप कर्म के प्रारम्भ से अन्त तक जलते रहता है। "ॐ **अग्निर्ज्योति ज्योतिरग्निः स्वाहा, सूर्य्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा, अग्निर्वर्च्चो ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा, सूर्योवर्च्चो ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा, ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा।**" इस मन्त्र से घी का दीप जलाकर कर्मस्थल में रख दे और उस पर ध्यान रहे कि बुझने न पावे।

मुख्य संकल्प

हाथ में अक्षत तिल जल कुश सुपारी आदि लेकर संकल्प करे "ॐ अद्य इह अमुकगोत्रस्य अमुकप्रेतस्य भगवत्लोकप्राप्त्यर्थं नारायणवलि श्राद्धम् अहं करिष्ये।"

वि द्रष्टव्य ः

1। श्राद्धकाल में जापक गण मूल मन्त्र का जप करें और पाठक गीता विष्णुसहस्रनाम भागवत या प्रवन्ध का पाठ करते रहेंगे। यह काम श्राद्ध समाप्ति पर्यन्त चलता रहेगा।
2। नारायणवलि की सभी क्रियायें सव्य (पूर्वाभिमुख) हो कर ही की जाती है। अतः अपसव्य के भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए। कर्म करते समय कुश की पवित्र पैंती अंगुलियों में लगा ले।

वैकुण्ठ तर्पण

पुनः सव्य होकर तिल अक्षत तुलसी चन्दन पुष्प और तीन कुश लेकर पूर्वाभिमुख हो कोई ताम्रपात्र या पीतल पात्र या नवीन मृत्तिका पात्र में वैकुण्ठ तर्पण करे। तर्पण के समय उपरोक्त सभी वस्तुयें अञ्जली में सदैव रहेंगी। इस तर्पण में सभी नामों के आदि में "ॐ" और अन्त में "तृप्यताम्" लगा रहेगा। प्रत्येक नाम के साथ एक एक अञ्जलि दी जायेगी।

1। ॐ केशवस्तृप्यताम्। 2। ॐ नारायणस्तृप्यताम्। 3। ॐ माधवस्तृप्यताम्। 4। ॐ गोविन्दस्तृप्यताम्। 5। ॐ विष्णुस्तृप्यताम्। 6। ॐ मधुसूदनस्तृप्यताम्। 7। ॐ त्रिविक्रमस्तृप्यताम्। 8। ॐ वामनस्तृप्यताम्। 9। ॐ श्रीधरस्तृप्यताम्। 10। ॐ हृषीकेशस्तृप्यताम्। 11। ॐ पद्मनाभस्तृप्यताम्। 12। ॐ दामोदरस्तृप्यताम्। 13। ॐ नारायणस्तृप्यताम्। 14। ॐ संकर्षणस्तृप्यताम्। 15। ॐ प्रद्युम्नस्तृप्यताम्। 16। ॐ अनिरुद्धस्तृप्यताम्। 17। ॐ वासुदेवस्तृप्यताम्। 18। ॐ अनन्तस्तृप्यताम्। 19। ॐ गरुडस्तृप्यताम्। 20। ॐ विष्वक्सेनस्तृप्यताम्। 21। ॐ चण्डस्तृप्यताम्। 22। ॐ प्रचण्डस्तृप्यताम्। 23। ॐ कुमुदस्तृप्यताम्। 24। ॐ कुमुदाक्षस्तृप्यताम्। 25। ॐ जयस्तृप्यताम्। 26। ॐ विजयस्तृप्यताम्। 27। ॐ सुमुखस्तृप्यताम्। 28। ॐ जयन्तस्तृप्यताम्। 29। ॐ धातास्तृप्यताम्। 30। ॐ विधातातृप्यताम्। 31। ॐ शर्वजित्तृप्यताम्। 32। ॐ प्रियंकरस्तृप्यताम्। 33। ॐ ज्ञाननिकेतनस्तृप्यताम्। 34। ॐ सुप्रतिष्ठितस्तृप्यताम्। 35। ॐ भद्रस्तृप्यताम्। 36। ॐ सुभद्रस्तृप्यताम्। 37। ॐ नन्दस्तृप्यताम्।

38 । ॐ सुनन्दस्तृप्यताम् ।

शालिग्राम पूजन

वैकुण्ठ तर्पण के पश्चात् विष्णु की प्रतिमा या शालिग्राम की पूजा पुरुष सूक्त के सभी मन्त्रों से प्रत्येक मन्त्र के अन्त में "**सर्व मंगलविग्रहाय समस्तपरिवाराय श्रीमते नारायणाय नमः**" जोड़कर सभी उपचारों को अर्पण करता जाये। यहाँ प्रत्येक मन्त्र का प्रथमांश केवल लिखा है। यदि नारायणवलि श्राद्ध मन्दिर में होगा तो वहाँ की प्रतिमा की ही पूजा की जायेगी। भगवान् की पूजा में सुगन्धित श्वेत पुष्प ही व्यवहार में लावे।

1 । आवाहन - यद्यपि शालिग्राम की मूर्त्ति में आवाहन की आवश्यकता नहीं होती तथापि उन्हें यह मन्त्र पढ़कर आवाहन के बदले तुलसी अर्पण करे "ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् स भूमि ँ सर्वतस्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् । ॐ सर्वमंगलविग्रहं समस्तपरिवारं श्रीमन्नारायणमावाहयामि।"

2 । आसन - "ॐ पुरुष एवेद ँ सर्व ....यदेन्नातिरोहति। ॐ सर्वमंगलविग्रहाय समस्तपरिवाराय श्रीमते नारायणाय इदमासनम्।" इस मन्त्र को पढ़कर शालिग्राम की मूर्त्ति के नीचे तुलसी रख दे।

3 । पाद्य - "ॐ एतावानस्य.........। ॐ सर्वमंगल .... इदं पाद्यम्।" इस मन्त्र से तुलसी चन्दन मिश्रित जल तीन वार भगवान को समर्पण करे।

4 । अर्घ्य - "ॐ त्रिपादूर्ध्व उदैत ....। ॐ सर्वमंगल .... एष अर्घ्यः।" इस मन्त्र से तुलसी चन्दन मिश्रित जल तीन वार भगवान को समर्पण करे।

5 । आचमन - "ॐ ततो विराडजायत विराजो.........। ॐ सर्वमंगल .... इदमाचमनीयम्।" इस मन्त्र से तीन वार आचमन करावे।

6 । स्नान - "ॐ तस्माद्यज्ञात्.........। ॐ सर्वमंगल .... इदं स्नानीयम्।" इस मन्त्र से स्नान करावे। स्नानार्थ पञ्चामृत हो तो और अच्छा। भगवान के व्यवहार में आनेवाली वस्तु तुलसी से युक्त रहे। जल विशेष सुगंधित वस्तु से सुगंधित रहे।

7 । वस्त्र - "ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः ऋचः सामानि ....। ॐ सर्वमंगल .... इदं वस्त्रम्।" पढ़कर अहत वस्त्र या रेशमी वस्त्र दे।

8 । उपवीत - "ॐ तस्मादश्वा अजायन्त ....। ॐ सर्वमंगल .... इदं यज्ञोपवीतम्।"

9 । गन्ध - "ॐ तं यज्ञं वहिर्षि प्रौक्षन्.........। ॐ सर्वमंगल .... अयं गन्धः।" से चन्दन लगावे।

10 । पुष्प - "ॐ यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा ....। ॐ सर्वमंगल .... इदं पुष्पम्।" से पुष्प चढ़ावे।

11 । धूप - "ॐ ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्.........। ॐ सर्वमंगल .... अयं धूपः।"

12 । दीप - "ॐ चन्द्रमा मनसोजात ....। ॐ सर्वमंगल .... अयं दीपः।"

13 । नैवेद्य - "ॐ नाभ्यां आसीदन्तरिक्ष ....। ॐ सर्वमंगल .... इदं नैवेद्यम्।"

14 । आचमन - "ॐ खर्पूरवासितं तोयं मन्दाकिन्याः समाहृतम् । आचम्यन्तां जगन्नाथ मया दत्तं हि भक्तितः । ॐ सर्वमंगल .... आचमनम्। तीन वार आचमन करावे।"

15 । पान - "ॐ यत्पुरुषेण हविषा ....।"

16 । सुपारी - "ॐ सप्तास्यासन परिधयस्त्रिसप्त ....। ॐ सर्वमंगल .... इति पूगीफलम्।"

17 । नीराजन - "ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा ....। ॐ सर्वमंगल .... इति नीराजनम्।"

18 । पुष्पाञ्जलि – भगवान के द्वादश नामों के द्वारा तुलसी और पुष्प अर्पण करता जाये ।

भगवान का द्वादश नाम- **1** । ॐ केशवाय नमः । **2** । ॐ नारायणाय नमः । **3** । ॐ माधवाय नमः । **4** । ॐ गोविन्दाय नमः । **5** । ॐ विष्णवे नमः । **6** । ॐ मधुसूदनाय नमः । **7** । ॐ त्रिविक्रमाय नमः । **8** । ॐ वामनाय नमः । **9** । ॐ श्रीधराय नमः । **10** । ॐ हृषीकेशाय नमः । **11** । ॐ पद्मनाभाय नमः । **12** । ॐ दामोदराय नमः ।

कलशस्थापन

भगवत्पूजन के पश्चात् उन्हीं के आगे बालू या पीली मिट्टी का एक स्थण्डिल बनाकर उसके बीच और चारों कोणों पर चावल या हल्दी के चूर्ण से स्वस्तिक चिह्न बनावे और उन सबों पर क्रमशः मध्य, ईशान, अग्नि, नैर्ऋत्य और वायु कोणों पर निम्नलिखित विधि से पांच कलश स्थापित करे ।

1 । भूमि स्पर्श - "ॐ भूरसि भूमिरस्यदिति रसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री । पृथिवीं यच्छ पृथिवीं द्द ँ्ह पृथिवी माहिँ्सीः ।" मन्त्र से स्वस्तिक चिह्न वाली भूमि को छूवे ।

2 । सप्तधान्य स्थापन - "ॐ धान्यमसि धिमुहि देवान्प्राणयत्वो दानायत्वा व्यानायत्वा दीर्घामनुप्रसितिमायुषेधां देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषेत्वा महीनां पयोसि ।" सप्तधान्य फैलावे ।

3 । कलश स्थापन - "ॐ आजिघ्रकलशं मह्यात्वा विशन्त्विन्दवः पुनरुर्जा निवर्तस्वसानः सहस्रं धुक्ष्वोरुधार । पयस्वतीपुनर्मा विश्ताद्रयिः ।" इस मंत्र से सप्तधान्य पर तिलकादि से अलंकृत कलश रखे ।

4 । जल - "ॐ वरुणस्योत्तम्मनमसि वरुणस्यस्कम्भ सर्जनीस्थो वरुणऽस्य ऋतसदन्यसि वरुणऽस्य ऋतसदनमसि वरुणस्य ऽऋतसदनमासीद ।" से कलश में जल डाले ।

5 । चंदन - "ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् । ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ।"

6 । कुश - "ॐ पवित्रेस्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ।

7 । दुर्वा - "ॐ काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि । एवानो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च ।

8 । सर्वौषधि या हल्दी - "ॐ या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रि युगम्पुरा मनैनु बभ्रूणामह ँ्शतन्धामानि सप्त च ।

9 । सप्तमृत्तिका या तुलसी की मिट्टी - "ॐ स्योना पृथिवी नो भवानृक्षरा निवेशनी । यच्छानः शर्म्म स प्रथाः ।

10 । सुपारी - "ॐ या फलिनीर्य्याऽफला अपुष्पाया श्चपुष्पिणीः वृहस्पति प्रसूतास्तानो मुञ्चत्व ँ्हसः ।

11 । स्वर्ण - "ॐ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ।

12 । पञ्चपल्लव - "ॐ अश्वत्थेवो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता । गोभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ।

13 । वस्त्र - "ॐ वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम् । देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः ।

14 । पूर्णपात्र - "ॐ पूर्णादर्वि परापत सुपूर्णा पुनरापत वस्नेव विक्रीणा वहा इषमूर्ज ँ्शतक्रतो ।

इसके पश्चात् पाँचों कलशों को श्वेत वस्त्र से ढक दे और पुनः मध्य से आरम्भ कर स्थापित क्रम से ही नारायण संकर्षण प्रद्युम्न अनिरुद्ध तथा वासुदेव का आवाहन उन्हीं कलशों के ऊपर विष्णु ग्रन्थि दिया हुआ कुश रख कर करे ।

वि द्र – ऊपरोक्त कलश स्थापन केवल तीन व्याहृतिओं "ॐ भूर्भुवः स्वः" से भी समयाभाव में किया जा सकता है ।

विष्णु ग्रन्थि – गांठ देते समय दाहिनी ओर घुमाकर अपने पीछे की ओर से ऊपर की तरफ से किनारे को डालकर खींच लेने और कस देने से होती है ।

आवाहन- हाथ में सुपारी अक्षत पुष्प और तिल लेकर मंत्र पढ़ते हुए क्रमशः उनसबों पर रखता जाये ।

1 । मध्य कलश पर – ॐ नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् । ॐ भूर्भुवः स्वः नारायणाय नमः नारायण इहागच्छ इह तिष्ठ ।

2 । ईशान के कलश पर – ॐ भूर्भुवः स्वः संकर्षणाय नमः संकर्षण इहागच्छ इह तिष्ठ ।

3 । अग्निकोण के कलश पर – ॐ भूर्भुवः स्वः प्रद्युम्नाय नमः प्रद्युम्न इहागच्छ इह तिष्ठ ।
4 । नैर्ऋत कोण के कलश पर – ॐ भूर्भुवः स्वः अनिरुद्धाय नमः अनिरुद्ध इहागच्छ इह तिष्ठ ।
5 । वायु कोण के कलश पर – ॐ भूर्भुवः स्वः वासुदेवाय नमः वासुदेव इहागच्छ इह तिष्ठ ।
प्रतिष्ठा – ॐ मनोजूतिर्जुषता माज्यस्य वृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनो त्वरिष्टं यज्ञ ँ् समिमं दधातु । विश्वेदेवा स इह मादयन्तामोम्प्रतिष्ठ- ॐ भूर्भुवः स्वः नारायणसंकर्षणप्रद्युम्नअनिरुद्धवासुदेवाः इह सुप्रतिष्ठिताः वरदाः भवन्तु। इस तरह मंत्र पढ़कर अक्षत सभी कलशों पर रख दे ।
पूजन –ॐ भूर्भुवः स्वः आवाहितेभ्यो नारायणादिदेवेभ्यो चन्दनादिकं समर्पयामि । इसी प्रकार सबों को पञ्चोपचार या षोडसोपचार से पूजन कर प्रार्थना निम्नांकित मंत्रों से करे ।
प्रार्थना –
ॐ जितन्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन । नमस्तुभ्यं हृषीकेश महापुरुष पूर्वज । ।**1**
अनादिनिधनो देवः शंखचक्रगदाधरः । अक्षय्यः पुण्डरीकाक्षः प्रेत मोक्ष प्रदो भव । ।**2**
यस्य स्मरणमात्रेण जन्मसंसारबन्धनात् । विमुच्यते नमस्तस्मै विष्णवे प्रभविष्णवे । ।**3**
प्रदक्षिणा –
ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृका हस्ता निषङ्गिणः । तेषा ँ् सहस्रयोजनेऽवधन्वानि तन्मसि ।
इसके बाद साष्टांग प्रणाम करके क्षमा प्रार्थना करे ।
प्रार्थना –
मंत्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं जनार्दन । यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ।**1**
यदक्षरपदभ्रष्टं मात्राहीनं च यद्भवेत । तत्सर्वं क्षम्यतां देव प्रसीद परमेश्वर । ।**2**
इसके पश्चात् हवनार्थ बालू का एक हाथ लम्बा चौड़ा और चार अंगुल ऊँचा स्थण्डिल बनाकर पञ्च भू संस्कार से लेकर प्रायश्चित्होम तक की क्रियायें निम्न क्रम से कर अग्निस्थापन करे ।

वि. द्रष्ट. -ईश्वर संहिता के अनुकूल अग्नि संस्कार यहां सविस्तार दिया गया है फिर भी आवश्यकतानुसार समयाभाव में केवल पञ्चोपचार द्वारा नाम मंत्र से अग्नि पूजा कर काम चलाया जा सकता है । हवन के लिए कुण्ड या वेदी दोनों ही व्यवहार में लाते हैं ।

1 । **परिसमूहन –** दाहिने हाथ में तीन कुशों को लेकर स्थण्डिल को पश्चिम से आरम्भ कर पूर्व पर्यन्त तीन बार झाड़े और कुशों को ईशान कोण में फेंक दे ।
2 । **उपलेपन –** गौ के गोवर से पश्चिम से पूरब तक तीन बार लीपे ।
3 । **उल्लेखन –** (यजुर्वेदी) कुण्ड या स्थण्डिल के पश्चिम के आधे भाग में दक्षिण ओर दो अंगुल छोड़कर स्रुवा या कुश की जड़ से पश्चिम से पूर्व तक बारह अंगुल की रेखा खींचे । पुनः उससे उत्तर दस अंगुल छोड़कर पश्चिम से ही पूर्व तक बारह अंगुल लम्बी दूसरी रेखा खींचे । पुनः दस अंगुल छोड़ कर उससे उत्तर बारह अंगुल की रेखा पूर्ववत ही खींचे ।
उल्लेखन – (सामवेदी) सामवेदी पाँच रेखा खींचे । पहली रेखा दक्षिण ओर एक अंगुल छोड़कर पश्चिम से पूर्व तक पश्चिम ओर आधा स्थण्डिल छोड़कर बारह अंगुल लम्बी खींचे । दूसरी रेखा के पश्चिम छोर से लेकर **21** अंगुल लम्बी दक्षिण से उत्तर तक खींचे जिसमें उत्तर किनारे स्थण्डिल का दो अंगुल शेष रह जाय । तीसरी रेखा पहली रेखा से उत्तर सात अंगुल छोड़कर पश्चिम से पूर्व तक दस अम्गुल लम्बी होनी चाहिए । चौथी रेखा तीसरी रेखा से भी सात अंगुल उत्तर पश्चिम से ही पूर्व तक दस अंगुल की खींचे । पाँचवी रेखा चौथी रेखा से सात अंगुल उत्तर पश्चिम से हीं पूर्व तक बारह अंगुल लम्बी खींचे ।
4 । **उद्धरण –** दोनों वेद वाले जिस क्रम से रेखा खीचें हैं उसी क्रम से दाहिने हाथ की अनामिका और अंगुष्ठा से रेखाओं

की मिट्टी को उठाकर ईशान कोण में 21 या 22½ अंगुल की दूरी पर फेंक दे।
5। अभ्युक्षण - कर्मपात्र से जल लेकर रेखाओं और स्थण्डिल पर गिराते समय हाथ को उलट देना चाहिए।
पूजन - रेखाओं की पूजा नाम मंत्र से पञ्चोपचार द्वार करे। पड़ी रेखा की पूजा "ॐ आधाराय नमः, अयं गन्धः।" खड़ी रेखा की पूजा "**ॐ इडायै नमः, ॐ पिङ्गलायै नमः, ॐ सुषुम्नायै नमः**।" इस तरह से नाम मंत्र से सबों की पूजा करे।

अग्नि स्थापन

इस प्रकार पंच भू संस्कार करने के पश्चात् अग्नि ताम्रपात्र या मिट्टी के वर्तन में वैसे ही पात्र से ढक कर ले आवे और अग्नि कोण में रखकर "**ॐ हूँ फट्स्वाहा**।" इस मंत्र को पढ़े। फिर अग्नि का थोड़ा भाग नैर्ऋत कोण में फेंक दे।
पुनः एक बार गायत्री मंत्र पढ़कर "**अग्नये नमः**" से पञ्चोपचार द्वारा अग्नि की पूजा करे। इसके बाद अग्नि को ईशान कोण में रखकर षोडश संस्कार करे।
1। अग्नि कोण से उठाकर ईशान कोण में अग्नि को स्थापित करे।
2। "**ॐ नमो नारायणाय**" इस मंत्र से कुश से अग्नि पर जल छींटे।
3। गूलर पीपर या पलाश के दश दश अंगुल के **25** टुकड़ों से "**ॐ नमो नारायणाय स्वाहा**" इस मन्त्र से घी लगाकर हवन करे।
4। घी और तिल मिलाकर "**ॐ नमो नारायणाय स्वाहा। इदं नारायणाय नमम**।" इस मन्त्र से आठ बार हवन करे।
5। "**ॐ श्रीमन्नारायण अग्निं शोधय शोधय स्वाहा**" इस मन्त्र से कुश से अग्नि पर पुनः जल छींटे।
6। "**ॐ नमो नारायणाय स्वाहा। इदं नारायणाय नमम**।" इस मन्त्र से फल घी और तिल मिलाकर **25** बार हवन करे।
7। "**ॐ नमो नारायणाय स्वाहा। इदं नारायणाय नमम**।" इस मन्त्र से सफेद फूल और घी से **25** बार हवन करे।
8। नारायण द्वारा लक्ष्मी की कुक्षि में स्थापित अग्नि का ध्यान इस प्रकार करें - **ॐ एषोऽहं देव प्रांदशोऽनुसर्वा पूर्वोह जात स उ गर्भे अन्तः। स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ्जनास्तिष्ठति सर्वतो मुखः**।
9। "**ॐ नमो नारायणाय स्वाहा। इदं नारायणाय नमम**।" इस मन्त्र से केवल गोघृत से **25** बार हवन करे।
10। **ॐ महालक्ष्म्यास्सुतो वह्निः नारायणांशसम्भव। तव वैष्णवनामाऽस्ति स्वं तेजः परिवर्धय**।।
इस मंत्र से अग्नि पर अक्षत डालकर उसका वैष्णव जैसा नाम करण करे।
11। **ॐ भूर्भुवः स्वः अग्नये नमः स्वाहा**। इस मन्त्र से भात, घी और तिल मिला कर **25** बार हवन करे।
12। व्यापक ब्रह्ममय अग्नि का ध्यान - **ॐ यदेतन्मण्डलं तपति तन्महदुक्थन्ता ऋचः सऋचां लोकोथ यदेतदर्चिर्दीप्यते तन्महाव्रतं तानि सामानि स साम्नां लोकोथ य एष एतस्मिन्मण्डले पुरुषः सोऽग्निस्तानि यजूँषि स यजुषां लोकः**।
13। "**ॐ नमो नारायणाय स्वाहा। इदं नारायणाय नमम**।" इससे **25** बार केवल घी का हवन करे।
14। "**ॐ नमो नारायणाय स्वाहा**" इस मन्त्र से मधु और घी मिलाकर **25** बार हवन करे।
15। "**ॐ भूर्भुवः स्वः अग्नये स्वाहा। इदं अग्नये नमम**।" इस मंत्र से भात घी और शक्करमिला कर **5** बार हवन करे।
16। "**ॐ नमो नारायणाय स्वाहा। इदं नारायणाय नमम**।" इस मंत्र से केवल घी का **25** बार हवन करे। इसके बाद कुण्ड या स्थण्डिल की योनि की तरफ से लाकर रेखाओं पर अग्नि को रखते हुए मंत्र पढ़े।
स्थापना - **ॐ अग्निदूतं पुरोदधे हव्यवाहमुपब्रुवे। देवान् आसादयादिह। ॐ अयन्ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः तज्जानन्नग्न आरोहथा नो वर्द्धयारयिम्**। इसके पश्चात् अग्नि लाने वाले पात्र में अक्षत डालकर अग्नि की प्रार्थना करे।
प्रार्थना -
ॐ चत्वारि शृङ्गास्त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य। त्रिधा वद्धो वृषभो रो रवीति महादेवो मर्त्या आविवेश।।1
एषोहं देव प्रदिशोऽनु सर्वा पूर्वोह जात स उ गर्भे अन्तः। स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ्जना तिष्ठति सर्वतो मुखः।2

द्विशीर्ष सप्तहस्तं त्रिपादं सप्तजिह्वकम्। वरदं शक्ति पाणिं च विभ्राणं स्रुकस्रुवौ तथा।।3
स्वाहां च दक्षिणे पार्श्वे वामे देवीं स्वधां तथा। रक्तमाल्याम्वरधर मेवमग्निं विचन्तयेत्।।4
आवाहयाम्यहं देवं श्रुवं समिधमुत्तमम्। स्वाहाकारं स्वधाकारं वषट्कारसमन्वितम्।।5
त्वं मुखं सर्वदेवानां सप्तर्चिरमित द्युते। आगच्छ भगवन्देव यज्ञेऽस्मिन्सन्निधो भव।।6

पूजन - "ॐ भूर्भुवः स्वः अग्नये नमः अयं गंधः।" इत्यादि पञ्चोपचार या षोडशोपचार से ही पूजन करे। इसके बाद अग्नि को प्रज्वलित कर प्रार्थना करे।

प्रार्थना - ॐ अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदंहुताशनम्। हिरण्यवर्णमनलं समृद्धं विश्वतोमुखम्। इसके बाद अग्नि की सात जिह्वाओं का क्रमशः पूजन करे। 1। ईशान कोण में "ॐ रक्तवर्णायै दीप्तायै नमः"। 2। पूर्व में "ॐ श्वेतवर्णायै प्रकाशायै नमः"। 3। अग्नि कोण में "ॐ सौदामिनी वर्णायै व्याप्यै नमः"। 4। नैर्ऋत कोण में "ॐ नीलवर्णायै मरीच्यै नमः"। 5। पश्चिम में "ॐ कृष्णवर्णायै तापिन्यै नमः"। 6। वायु कोण में "ॐ पीतवर्णायै करालायै नमः"। 7। उत्तर से दक्षिण तक "ॐ अरुणवर्णायै लेलिहायै नमः"। इन मन्त्रों से पञ्चोपचार द्वारा पूजन करे।

ब्रह्मा का वरण - इसके पश्चात् ब्रह्मा के वरण का संकल्प करे। "ॐ अद्य अमुक शर्माहम् अमुकगोत्रस्य अमुकप्रेतस्य प्रेतत्व विमुक्तिद्वारा मोक्षप्राप्तयर्थ नारायणवलिश्राद्धे ब्रह्मणो वरणं करिष्ये।"

पुनः अग्नि कुण्ड से उत्तर एक आसन रखकर ब्रह्मा से कहे "ॐ अस्मिन्नासने आस्याताम्" और ब्रह्मा बैठकर कहे 'आस्ये'। इसके बाद किसी पात्र में ब्रह्मा का पांव धोता हुआ मन्त्र पढ़े "ॐ नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये सहस्रपादाक्षि शिरोरुवावहे। सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्रकोटियुगधारिणे नमः।" फिर किसी पात्र में चन्दन पुष्प तुलसी युक्त जल ब्रह्मा के हाथ में दे। ॐ भूमिदेवाग्रजन्मासि त्वं विप्र पुरुषोत्तम। प्रत्यक्षो यज्ञपुरुषो ह्यर्घोऽयं प्रतिगृह्यताम्।

ब्रह्मा इसे लेकर कुछ जल अपने शिरपर डाले तथा शेष अपनी वायीं ओर गिरा दे। इसके बाद "ब्रह्मणे नमः" इस मन्त्र से आचमन करा कर हाथ धुला दे और पञ्चोपचार से पूजन करे। पुनः वरण का संकल्प करे "ॐ अद्ये इह अमुकगोत्रस्य अमुकप्रेतस्य प्रेतत्वविमुक्तिद्वारा मोक्षप्राप्तयर्थ नारायणवलि श्राद्धे एभिः गन्धाक्षतपुष्पमालायज्ञोपवीतकमण्डलुवस्त्रादिभिरमुकगोत्रम् अमुकवेदाध्यायिनम् अमुकशर्माणं त्वामहं ब्रह्मकर्मकर्त्तुं ब्रह्मत्वेन वृणे।" यह कहकर द्रव्यादि ब्रह्मा के हाथ में दे दे। ब्रह्मा उसे हाथ में लेकर "ॐ वृतोऽस्मि" कहे।

पुनः ब्रह्मा कुश से यजमान के शिर पर जल छीटता हुआ यह मंत्र पढ़े "ॐ व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्। दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते।"

प्रार्थना - यजमान हाथ जोड़कर प्रार्थना करे।

ॐ यथा चतुर्मुखो ब्रह्मा सर्ववेदविदां वरः। तथा त्वं ममयज्ञेऽस्मिन् ब्रह्मा भव द्विजोत्तमः।।

इसके बाद कुण्ड के दक्षिण से जाकर ब्रह्मा को पूर्व ओर से लावे और कुण्ड से दक्षिण एक आसन पर पूर्वाग्र तीन कुशों को रखकर उसी पर बैठावे। साथ ही आचार्य को कुण्ड से पश्चिम उत्तर मुख और स्वयं आचार्य से उत्तर पूर्व मुख बैठकर दाहिना घुटना टेक दे।

प्रणीता स्थापन - प्रणीता पात्र को बायें हाथ में लेकर कर्मपात्र से जल भरे और ब्रह्मा की ओर देखकर पूर्व वाले आसन पर रख दे। साथ ही उसे तीन कुशों से ढक दे।

परिस्तरणः - पुनः 48 कुशों को लेकर उनको एक चौथाई 12 कुशों को दाहिने हाथ में ले और पूर्व ओर -

अग्नि मीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम् मंत्र से वेदी से पूर्व में उत्तर अग्रभाग कर ईशान कोण से अग्नि कोण तक कुशों को रख दे। पुनः **- दक्षिण -** ॐ इषेत्वोर्जेत्वा वायस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागम्प्रजावती रनमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत माघस ँसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतो स्यात वह्णीर्येजमानस्य पशून पाहि। इस मन्त्र से वेदी से दक्षिण में पूर्व ओर अग्र भाग कर के कुशों को फैला दे। इसके बाद पुनः 12 कुशों को लेकर इन मन्त्रों से **- पश्चिम -** ॐ अग्न

आयाहि वीतये गृणानो हव्य दातये निहोता सत्सि बर्हिषि। वेदी से पश्चिम में उत्तर ओर अग्रभाग करके फैला दे। **उत्तर** - ॐ शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभि स्रवन्तु नः। इस मन्त्र से वेदी के उत्तर में पूर्व ओर अग्र भाग करके शेष **12** कुशों को फैला दे।

पदार्थासादन -**1**. वेदी से उत्तर पवित्र छेदन के तीन कुश रखे। **2**. पवित्र के लिए दो पत्ते वाला कुश उससे उत्तर रखे। **3**. प्रोक्षणी पात्र जिसके जल से मार्जन किया जाता है तथा संश्रव रखा जाता है। **4**.आज्यस्थाली (हवन करने का वर्तन)। **5**. चरूस्थाली (खीर या भात का वर्तन)। **6**. सम्मार्जन के लिए पाँच कुश (दोहरे सूत से समूचा लिपटे)। **7**. स्रुवा जिससे हवन किया जाता है। **8**. गौ का घी। **9**.पूर्ण पात्र जिसमें **64, 128** या **256** मुट्ठी चावल हो। **10**.शेष सामान दक्षिणा आदि।

पवित्रच्छेदन - ॐ पवित्रेस्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। इस मंत्र से कुशों का छेदन करे, पुनः उसपर जल छीटे।

प्रोक्षण - इसके बाद प्रणीता से जल प्रोक्षण पात्र में भरकर पवित्र से उसे दो बार ऊपर उछाले। पुनः उसी पर पवित्र को रखकर प्रणीता का जल दाहिने हाथ की अनामिका और मध्यमा से प्रोक्षणी के जल पर छींटे।

परिशोधन - सभी यज्ञीय वस्तुओं पर पवित्र से जल छींटे।

चरु और खीर पाक - अग्नि से उत्तर हवन और पिण्ड के लिए चरू और खीर पकावे।

पर्यग्निकरण - जलती लकड़ी या कुश पाक के चारो ओर घुमा दे।

इध्म दान - इसके बाद खड़ा होकर वायें हाथ में एक साथ **3, 5** या **7** दोहरे सूत से इध्म बांधे। उपयमन कुश को लेकर पलाश की तीन समिधों को क्रमशः घी में डुबो डुबो कर चुप चाप डालता जाय।

पर्युक्षण - प्रोक्षणी पात्र से पवित्र सहित जल लेकर ईशान कोण से आरम्भ कर उत्तर तक चारों ओर गिरावे साथ ही पवित्र को प्रणीता पात्र में रखकर प्रोक्षणी को उसके और कुण्ड के बीच में रख ले।

रक्षण - इसके बाद कर्त्ता यज्ञस्थल की रक्षा के लिए अपने बायें हाथ में अक्षत लेकर दाहिने हाथ से क्रमशः छींटता जाये।

पूर्व में - ॐ अग्नये नमः। अग्नि कोण में - ॐ जातवेदसे नमः। दक्षिण में - ॐ सहोजसे नमः। नैऋत कोण में - ॐ अजिरा प्रभवे नमः। पश्चिम में - ॐ वैश्वानराय नमः। वायु कोण में - ॐ नर्यापसे नमः। उत्तर में - ॐ पंक्तिराधसे नमः। ईशान कोण में - ॐ विसर्पिणे नमः। चारो ओर - ॐ यज्ञपुरुषाय नमः। अपने शिर पर - ॐ आत्मने नमः। सभी वैष्णवों के शिर पर - ॐ सर्वेभ्यः वैष्णवेभ्यो नमः।

इस प्रकार कुश कण्डिका समाप्त कर प्रायश्चित होम करे जिसमें आघार के दो-दो, आज्य के दो-दो, महाव्याहृति के तीन -तीन और वारुणी के पाँच-पाँच कुल **12** होम कर ले। शेष प्रजापति और स्विष्टकृत की आहुति अन्त में दे। साथ ही ब्रह्मा का अन्वारम्भ और संश्रव रखता जाय।

अन्वारम्भ - ब्रह्मा अपने दाहिने हाथ में कुश लेकर यजमान के दाहिने कंधे पर रखे रहे।

संश्रव - यजमान आहुतियों को अग्नि में छोड़ने के बाद स्रुव में लगे शेष भाग को प्रोक्षणी पात्र में काछता जाये।

आघार होम (**1**)- मन ही मन ॐ प्रजापतये स्वाहा इदं प्रजापतये नमम। बोलकर (**2**)- ॐ इन्द्राय स्वाहा इदं इन्द्राय नमम।

आज्य होम (**3**)- ॐ अग्नये स्वाहा इदं अग्नये नमम। (**4**)ॐ सोमाय स्वाहा इदं सोमाय नमम ।

महाव्याहृति होम (**5**)- ॐ भूः स्वाहा इदं अग्नये नमम। (**6**)ॐ भुवः स्वाहा इदं वायवे नमम। (**7**)ॐ स्वः स्वाहा इदं सूर्याय नमम।

इसके बाद ॐ यथा वाणप्रहाराणां कवचं वारकं भवेत् तद्वद्दैवोपघातानां शान्तिर्भवति वारिका। ॐ शान्तिरस्तु पुष्टिरस्तु यत्पापं तत्प्रतिहतमस्तु द्विपदे चतुष्पदे सुशान्तिर्भवतु। यह पढ़कर यजमान के शिरपर जल छींटे।

पञ्चवारुणी (**8**) - ॐ त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडो अवयासि सीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वाद्वेषा ँसि प्रमुमुग्ध्यस्मत्स्वाहा इदमग्नीवरुणाभ्यां नमम।

(9)ॐ सत्वन्नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसोव्युष्ठौ । अवयक्षनो वरुण ँरराणो वीहि मृडीक ँसुहवो न एधि स्वाहा इदमग्नी वरुणाभ्यां नमम ।
(10)ॐ अयश्चाग्नेऽस्यनभिशस्ति पाश्च सत्यमित्व मया असि । अयानो यज्ञं वहास्ययानो धेहि भेषज ँस्वाहा इदमग्नये नमम ।
(11)ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशावितता महान्तः । तेर्भिनो अद्य सवितोतविष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यश्च नमम ।
(12)ॐ उदुत्तमं वरुणपाशमस्मदवाधमं विमध्यम ँश्रथाय । अथ वयमादित्य व्रते तवा नागसो अदितये स्याम स्वाहा । इदं वरुणाय नमम ।
प्रजापत्य (13) - ॐ प्रजापतये स्वाहा इदं प्रजापतये नमम । इसके बाद अन्वारम्भ छोड़ दे । संश्रव भी न रखे । साथ ही नीचे के 30 मन्त्रों के लिए 120 बार श्रुवा से घी निकाल कर हवन के पात्र में रख ले । इसे चतुर्गृहीत घी कहते हैं और चार वैष्णव मिलकर हवन प्रारम्भ करे ।

चतुर्गृहीत होम

1 । ॐ युञ्जते मन उत यजते धियो विप्रा विप्रस्य वृहतो विपश्चितः । वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः स्वाहा इदं विष्णवे नमम ।
2 । ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्य पा ँसुरे स्वाहा इदं विष्णवे नमम ।
3 । ॐ ईरावती धेनुमती हि भूत ँसूयवसिनी मनवे दशस्या । व्यस्कभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः स्वाहा इदं विष्णवे नमम ।
4 । ॐ देवश्रुतौ देवेष्वा घोषन्त प्राची प्रेतमध्वरं कल्पयन्ती ऊर्ध्वं यज्ञं नयतं मा जिह्वरतम् । स्वं गोष्ठमावदतं देवी दुर्ये आयुर्मा निर्वादिष्टं प्रजां मा निर्वोदिष्टमत्र रमेथां वर्ष्मन् पृथिव्याः स्वाहा इदं विष्णवे नमम ।
5 । ॐ विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजा ँसि । यो अस्कभायदुत्तर ँसधस्थं विचक्रमाणस्त्रे धोरुगाय विष्णवे त्वा स्वाहा इदं विष्णवे नमम ।
6 । ॐ दिवो वा विष्ण उत्त वा पृथिव्या महो वा विष्ण उरोरन्तरिक्षात् । उभा हि हस्ता वसुना पृणस्वा प्रयच्छ दक्षिणादोत सव्याद्विष्णवे त्वा स्वाहा इदं विष्णवे नमम ।
7 । ॐ प्रतद्विष्णु स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः । यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा स्वाहा इदं विष्णवे नमम ।
8 । ॐ विष्णोरराटमसि विष्णोः श्नप्त्रेस्थो विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्धुवमसि वैष्णवमसि विष्णवे त्वा स्वाहा इदं विष्णवे नमम । इसके बाद पुरुष सूक्त के 16 मंत्रों से हवन करे ।
9 । ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । स भूमि ँसर्वत स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् स्वाहा इदं विष्णवे नमम । इसी प्रकार पुरुष सूक्त के सभी मन्त्रों द्वारा अन्त में इदं विष्णवे नमम । इतना त्याग वाक्य जोड़कर हवन किया जायेगा । इसके पश्चात् पुरुष सूक्त के उत्तरानुवाक के 6 मंत्रों से हवन किया जायेगा ।
यथा - 1 । ॐ अद्भ्य संभृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्तताग्रे । तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे स्वाहा इदं विष्णवे नमम । 2 । ॐ वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात । तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति नान्यः पन्था अयनाय विद्यते स्वाहा इदं विष्णवे नमम । 3 । ॐ प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तः अजायमानो वहुधा वि जायते । तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा स्वाहा इदं विष्णवे नमम । 4 । ॐ यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः । पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये स्वाहा इदं विष्णवे नमम ।
5 । ॐ रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन् । यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात् तस्य देवा असन् वशे स्वाहा इदं विष्णवे नमम ।
6 । ॐ श्रीश्च ते लक्ष्मीश्चपत्न्यौवहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपम् अश्विनौ व्यात्तम् । इष्णन्निषाणमुं म इषाण सर्व लोकं म इषाण स्वाहा इदं विष्णवे नमम । इन आहुतियों के आगे नारायणानुवाक और नारायण मन्त्र से इस प्रकार आहुतियाँ देवे ।
यथा - ॐ सहस्रशीर्ष देवं विश्वाक्षं विश्वशम्भुवम् । विश्वं नारायणं देवमक्षरं परमं प्रभुम् स्वाहा इदं नारायणाय नमम ।
इसी प्रकार नारायणानुवाक (सू सं प्रकरण) के सभी मन्त्रों से आहुतियाँ दे । सभी मंत्रों के अन्त में "स्वाहा इदं नारायणाय नमम" जोड़ता जावे ।
इसके पश्चात् तिल घी से 108 बार नारायण मन्त्र से हवन करे । यथा - ॐ नमो नारायणाय स्वाहा इदं नारायणाय नमम । इसके आगे

चरु (भात), गुड, घी मिलाकर विष्णु सूक्त के (सू सं प्रकरण) प्रत्येक मंत्र से एक-एक आहुति दे। यथा - ॐ विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजा ँसि । यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रे धोरुगायः स्वाहा। इदं विष्णवे नमम। इस प्रकार सभी मन्त्रों से हवन करे। पुनः चरु गुड़ और घी से ही द्वादश नारायण केशवादि नामों द्वारा अन्त में त्याग वाक्य जोड़ कर हवन करे।

1। ॐ केशवाय स्वाहा इदं केशवाय नमम। 2। ॐ नारायणाय स्वाहा इदं नारायणाय नमम। 3। ॐ माधवाय स्वाहा इदं माधवाय नमम। 4। ॐ गोविन्दाय स्वाहा इदं गोविन्दाय नमम। 5। ॐ विष्णवे स्वाहा इदं विष्णवे नमम। 6। ॐ मधुसूदनाय स्वाहा इदं मधुसूदनाय नमम। 7। ॐ त्रिविक्रमाय स्वाहा इदं त्रिविक्रमाय नमम। 8। ॐ वामनाय स्वाहा इदं वामनाय नमम। 9। ॐ श्रीधराय स्वाहा इदं श्रीधराय नमम। 10। ॐ हृषीकेशाय स्वाहा इदं हृषीकेशाय नमम। 11। ॐ पद्मनाभाय स्वाहा इदं पद्मनाभाय नमम। 12। ॐ दामोदराय स्वाहा इदं दामोदराय नमम। पुनः केवल गोघृत से ॐ विष्णवे स्वाहा इदं विष्णवे नमम इस मंत्र से 108 बार आहुति देकर पुनः आगे के मन्त्रों से आहुतियाँ दे।

1। ॐ नारायणाय स्वाहा इदं नारायणाय नमम। 2। ॐ संकर्षणाय स्वाहा इदं संकर्षणाय नमम। 3। ॐ प्रद्युम्नाय स्वाहा इदं प्रद्युम्नाय नमम। 4। ॐ अनिरुद्धाय स्वाहा इदं अनिरुद्धाय नमम। 5। ॐ वासुदेवाय स्वाहा इदं वासुदेवाय नमम। 6। ॐ अनन्ताय स्वाहा इदं अनन्ताय नमम। 7। ॐ गरुडाय स्वाहा इदं गरुडाय नमम। 8। ॐ विष्वक्सेनाय स्वाहा इदं विष्वकसेनाय नमम। 9। ॐ चण्डाय स्वाहा इदं चण्डाय नमम। 10। ॐ प्रचण्डाय स्वाहा इदं प्रचण्डाय नमम। 11। ॐ कुमुदाय स्वाहा इदं कुमुदाय नमम। 12। ॐ कुमुदाक्षाय स्वाहा इदं कुमुदाक्षाय नमम। 13। ॐ जयाय स्वाहा इदं जयाय नमम। 14। ॐ विजयाय स्वाहा इदं विजयाय नमम। 15। ॐ सुमुखाय स्वाहा इदं सुमुखाय नमम। 16। ॐ जयन्ताय स्वाहा इदं जयन्ताय नमम। 17। ॐ धात्रे स्वाहा इदं धात्रे नमम। 18। ॐ विधात्रे स्वाहा इदं विधात्रे नमम। 19। ॐ सर्वजिते स्वाहा इदं सर्वजिते नमम। 20। ॐ प्रियंकराय स्वाहा इदं प्रियंकराय नमम। 21। ॐ ज्ञाननिकेतनाय स्वाहा इदं ज्ञान निकेतनाय नमम। 22। ॐ सुप्रतिष्ठिाय स्वाहा इदं सुप्रतिष्ठाय नमम। 23। ॐ भद्राय स्वाहा इदं भद्राय नमम। 24। ॐ सुभद्राय स्वाहा इदं सुभद्राय नमम। 25। ॐ नन्दाय स्वाहा इदं नन्दाय नमम। 26। ॐ सुनन्दाय स्वाहा इदं सुनन्दाय नमम। 27। ॐ नित्येभ्यो स्वाहा इदं नित्येभ्यो नमम। 28। ॐ मुक्तेभ्यो स्वाहा इदं मुक्तेभ्यो नमम। 29। ॐ सर्वेभ्यो वैष्णवेभ्यो स्वाहा इदं सर्वेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमम।

इसके बाद ब्रह्मा का अन्वारम्भ करके सभी चीजों को मिलाकर स्विष्टकृत की आहुति दे।

स्विष्टकृत - ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा इदं अग्नये स्विष्टकृते नमम। पुनः अन्वारम्भ सहित महाव्याहति, पञ्चवारुणी और प्रजापति (जो पहले लिखा जा चुका है) की आहुतियाँ देकर संश्रव रखता जाय।

संश्रव प्रासन - प्रोक्षणी पात्र में प्रत्येक होम के पश्चात् काछे गये घी को या तो पी ले या सूंघ ले।

पूर्णपात्र दान - ॐ अद्यामुक तिथौ अमुकशर्माहम् अस्मिन् नारायणवलिश्राद्धहोमकर्मणि कृताकृतावेक्षणरुप ब्रह्मकर्म दक्षिणात्वेन इदं सद्रव्यं पूर्ण पात्रं यथानाम गोत्रायं ब्राह्मणाय सम्प्रददे, ॐ तत्सन्नमम कहकर ब्रह्मा के हाथ में दे, ब्रह्मा ॐ स्वस्ति कहकर लेवे।

सेंचन - इसके बाद प्रणीता का जल पवित्र से सिर पर छींटते हुए यह मन्त्र पढ़े -ॐ सुमित्रिया न आप औषधयः सन्तु । पुनः इस मन्त्र से ॐ दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यञ्च वयं द्विष्मः, प्रणीता का जल ईशान कोण में उलट देवे।

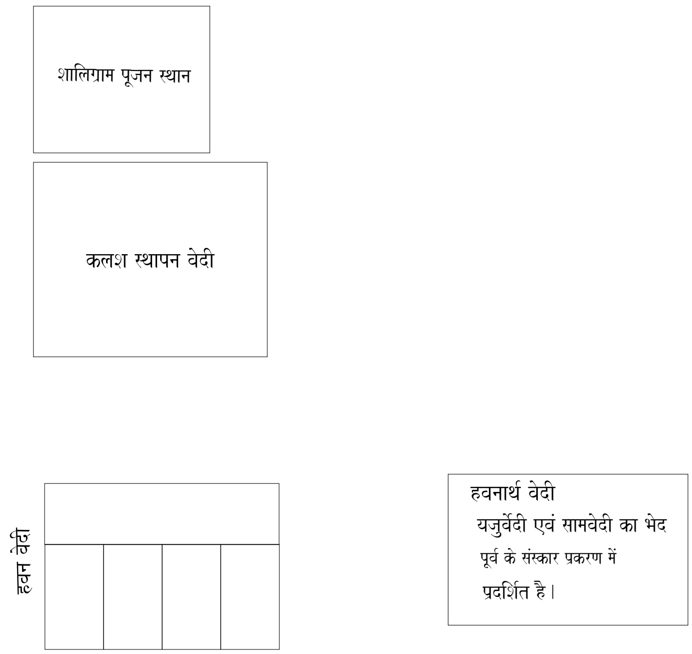
पवित्रहोम - पवित्र को ॐ स्वाहा इदं प्रजापतये नमम कहकर अग्नि में डाल देवे। पुनः बर्हि होम करे।

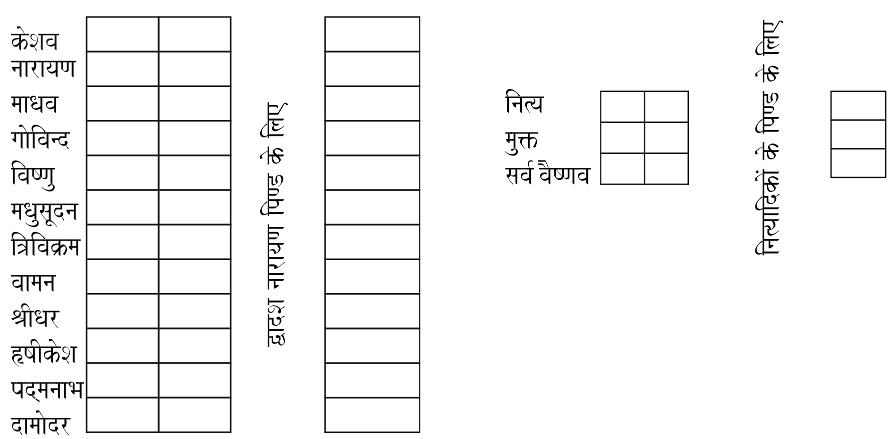
बर्हि होम - परिस्तरण के कुशों में से एक मुट्ठी कुश जिस क्रम से विछाया है उसी क्रम से उठाकर घी लगा ले और इस मन्त्र से आहुति दे। ॐ देवा गातु विदो गातुंमित्वा गातुमित मनसस्पत इमं देव यज्ञ ँ स्वाहा वातेधाः स्वाहा इदं वाताय नमम।

पूर्णाहुति - नारियल में घी लगाकर लाल वस्त्र लपेट दे और फल पुष्प अक्षत पान सुपारी घी लेकर यह मन्त्र पढ़कर अग्नि में छोड़ दे "ॐ प्रजापति ऋषिर्विराड गायत्री छन्द इन्द्रो देवता यशस्कामस्य यजनीयप्रयोगे विनियोगः। ॐ पूर्ण होमं यशसे जुहोमि योऽस्मै जुहोति वरमस्मै ददाति वरं वृणे यशसा भामि लोके स्वाहा इदमिन्द्राय नमम। इस प्रकार हवन समाप्त करे।

स्थण्डिल से पश्चिम भूमि को लीप-पोत कर पिण्ड के लिए उत्तर दक्षिण बालू या पीली मिट्टी की चित्र के अनुसार वेदी बनावे। उसे चावल के चूर्ण से 12 खण्ड करे साथ ही द्वादश नारायण के लिए विष्णु ग्रन्थि के कुशों पर आवाहन और पूजन करे।

पुनः उनके पश्चिम बालू की वेदी बनाकर उनपर दक्षिण से आरम्भ कर **12** द्वादश पिण्ड दे। इसके पश्चात् नित्य मुक्त और सर्व -वैष्णव को भी तीन पिण्ड दे। इस प्रकार सब मिलाकर **15** पिण्ड होंगे।





शुरु के ऊपर से नीचे वाले बारह प्रकोष्ट द्वादश भगवान के पूजन के लिये हैं। उसके बाद के प्रकोष्ट भोजन एवं उसके बाद पिण्ड के लिए प्रकोष्ट हैं। इसीतरह से नित्यादिकों के लिए भी चित्र बने हैं, क्रमशः पूजा भोजन एवं पिण्ड हेतु। पिण्ड के लिए सभी घरों में चक्र * का भी चिन्ह बना देना चाहिए।

द्वादश नारायण श्राद्ध

संकल्प - कर्त्ता पूर्व मुख बैठकर हाथ में तिल अक्षत द्रव्य कुश और सुपारी लेकर इस तरह संकल्प करे। ॐ अद्य इह अमुकगोत्रस्य अमुकप्रेतस्य प्रेतत्वविमुक्तिद्वारामोक्षप्राप्त्यर्थं नारायणवलिश्राद्धे केशवादि दामोदरपर्यन्तानां देवानाम् आवाहनपूजनपूर्वकं पिण्डदानम् अहं करिष्ये। पढ़कर अक्षतादि भूमि पर रख दे।

आसन संकल्प - ॐ अद्य इह अमुकगोत्रस्य अमुकप्रेतस्य प्रेतत्वविमुक्तिद्वारामोक्षप्राप्त्यर्थं नारायणवलिश्राद्धे केशवादि दामोदरपर्यन्तश्राद्धेषु इमानि आसनानि विभज्य युष्मभ्यं स्वाहा नमः। यह कहकर पूर्वाग्र बारह पत्तों को रखकर उनपर विष्णु ग्रन्थि वाले **12** कुशों को पूर्वाग्र ही रखे। फिर अक्षत पुष्प लेकर आवाहन करे।

आवाहन - ॐ केशवाय नमः केशवमावाहयामि। क्रमशः कुश पर अक्षत रखे।

ॐ नरायणाय नमः नारायणमावाहयामि। ॐ माधवाय नमः माधवमावाहयामि। ॐ गोविन्दाय नमः गोविन्दमावाहयामि। ॐ विष्णवे नमः विष्णुमावाहयामि। ॐ मधुसूदनाय नमः मधुसूदनमावाहयामि। ॐ त्रिविक्रमाय नमः त्रिविक्रममावाहयामि। ॐ वामनाय नमः वामनमावाहयामि। ॐ श्रीधराय नमः श्रीधरमावाहयामि। ॐ हृषीकेशाय नमः हृषीकेशमावाहयामि। ॐ पद्मनाभाय नमः पद्मनाभमावाहयामि। ॐ दामोदराय नमः दामोदरमावाहयामि। इसके वाद अर्घ पात्र बनावे।

अर्घ्य- प्रत्येक के आगे एक-एक अर्घ पात्र या दोना रखकर उनमें एक-एक पवित्र डालकर मन्त्र से जल दे।

जल - ॐ शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पोतये शंय्योरभिस्रवन्तु नः।

यव - ॐ यवोऽसि यवयाऽस्मद्द्वेषो यवयारातीः।

पुनः चन्दन, पुष्प डालकर कहे "ॐ द्वादश अर्घपात्राणामर्चनविधेः परिपूर्णताऽस्तु।"

इस प्रकार अर्घ पात्र बनावे और दक्षिण से प्रारम्भ कर एक अर्घ पात्र को उठावे और इसका पवित्र पूर्व रखे हुए आसनों में प्रथम दक्षिण के आसन पर एक दूसरे दोने में रख दे और अर्घ पात्र को बायें हाथ में रख दायें हाथ से ढक बायें कन्धे पर ले जाकर यह मंत्र पढ़े। ॐ या दिव्या आपः पयसा संवभूवुर्या आन्तरिक्षा उतपार्थिवीर्याः। हिरण्यवर्णा यज्ञियास्तान आपः शिवाः श ँ स्योना सुहवा भवन्तु। अनन्तर कन्धे पर से हटाकर दायां हाथ में संकल्पार्थ जलादि ले संकल्प करे - ॐ अद्य अमुकगोत्रस्य अमुकप्रेतस्य भगवत्लोकप्राप्ति कामः नारायणवलिश्राद्धे एष अर्घः नारायणाय स्वाहा। पढ़कर उसी पवित्र पर जल गिराकर अर्घ पात्र को आगे रख दे। इसी प्रकार शेष नामों द्वारा शेष स्थानों में भी अर्घ देवे। "ॐ या दिव्या ......" यह प्रत्येक अर्घ देने के पूर्व बार बार पढ़ा जायगा। द्वादश नाम आवाहन प्रकरण या हवन प्रकरण में आया है।

पूजन - क्रमशः अर्घ के पश्चात् सभी आसनों पर चन्दन, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, पान, सुपारी, यज्ञोपवीतादि रख और सबों को स्पर्श करते हुए संकल्प करे। ॐ एतानि गन्धपुष्पादीनि केशवादि दामोदरपर्यन्तेषु अक्षय्यमस्तु स्वाहा। और पुनः हाथ जोड़कर प्रार्थना करे ॐ अभीप्सं श्राद्धनामर्चनविधेः परिपूर्णतास्तु।

भोजन - प्रत्येक आसन के आगे चावल चूर्ण से चौकोन मण्डल बनाकर सबों में किसी पात्र या पत्ते पर ही भोजन परोसे और पात्र को स्पर्श कर यह मंत्र पढ़े। ॐ पृथिवी ते पात्रं द्यौरपिधानं ब्राह्मणस्य मुखे अमृते अमृतं जुहोमि स्वाहा। विष्णो हव्य रक्षस्व पढ़कर अन्न में दाया हाथ का अंगूठा लगा अनन्तर हाथ में जौ लेकर पंक्ति वारण करे। ॐ अपहता असुरारक्षांसि वेदिषदः पढ़कर पात्र के चारो ओर गिरा दे। पुनः हाथ में कुश अक्षत जौ लेकर संकल्प करे।

संकल्प - ॐ एतदन्नं सोपस्करम् अमृतरुपं हव्यं केशवाय स्वाहा सम्पद्यताम् नमम। इसी प्रकार शेष **11** स्थानों में भी इसी प्रकार अन्न परोसना और मन्त्र बोलना होगा।

इस क्रिया के पश्चात् उपरोक्त सभी आसनों के आगे एक हाथ हट कर पिण्ड देने के लिए **12** वेदियाँ बालू या मिट्टी की एक हाथ

लम्बी चौड़ी और चार अंगुल ऊँची बनावे।

रेखोल्लेखन - **ॐ अपहता असुरा रक्षांसि वेदिषदः** पढ़कर पिंजली से (एक साथ 7 बन्धे कुशों) से एक वित्ता की रेखा प्रत्येक वेदी पर बीच में बनावे।

अंगार भ्रमण - **ॐ ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना असुरा सन्तः स्वधया चरन्ति। पुरा पुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टाँल्लो कात्प्रणुदात्यस्मात्।** यह पढ़कर वेदी के चारो ओर अंगार घुमावे।

आस्तरण - प्रत्येक वेदी की रेखाओं पर तीन तीन कुशों को विछावे और अवनेजन के लिए प्रत्येक के आगे एक-एक पात्र रखकर उसमें चन्दन-पुष्प-तुलसी-जौ-कुश लेकर अवनेजन दे।

अवनेजन - "**ॐ अद्य अमुकगोत्रस्य अमुकप्रेतस्य नारायणवलिश्राद्धे केशवपिण्डस्थाने अत्रावनेनिक्ष्व स्वाहा**" यह पढ़कर वेदी के कुशों पर थोड़ा सा जल देवतीर्थ से गिराकर पात्र को पुनः यथा स्थान पर रखे।

पिण्ड - बना हुआ हविष में मधु घी तिल और पंचमेवादि मिलाकर विल्व का आकार बनाकर बांया हाथ में रखकर दायां हाथ में संकल्पार्थ अक्षतादि लेकर संकल्प करे **ॐ अद्य अमुकगोत्रस्य अमुकप्रेतस्य नारायणवलिश्राद्धे एष पिण्डः केशवाय स्वाहा** कहकर पिण्ड दे दे।

प्रत्यवनेजन - अवनेजन से बचे जल या दूसरा ही जल उसी अवनेजन वाले पात्र में रखकर पिण्ड पर दे **ॐ अद्य अमुकगोत्रस्य अमुकप्रेतस्य नारायणवलिश्राद्धे केशवपिण्डस्थाने प्रत्यवनेनिक्ष्व स्वाहा।** और आगे भी शेष सभी पिण्डों पर इसी क्रम से देकर एक बार अन्त में सबों को चन्दन-पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्य-सुपारी-पान-तीन सूत इत्यादि द्वारा पूजन कर संकल्प करे - **ॐ अद्य अमुकगोत्रस्य अमुकप्रेतस्य भगवत्लोकप्राप्तिकामः केशवादि दामोदरपर्यन्तेषु गन्धाद्युपचाराः स्वाहा।** और सभी पिण्डो पर अक्षतादि डाल दे।

प्रार्थना - **ॐ पिण्डार्चनविधे परिपूर्णतास्तु। ॐ एभिर्पिण्ड दानैः अमुकगोत्रस्य अमुकप्रेतस्य भगवत्लोकप्राप्तिरस्तु।**

अक्षय्योदक - सभी पिण्डों के समीप एक-एक दोना रख उनमें अक्षत-पुष्प और जल देकर अलग अलग संकल्प करे - **ॐ केशवस्य दत्तम् अन्नपानादिकम् उपतिष्ठताम्। ॐ नारायणस्य दत्तमन्नपानादिकमुपतिष्ठताम्।** इसी प्रकार सभी द्वादश नामों में षष्ठी विभक्ति जोड़ वाक्य बना सभी पिण्डों पर जल डाल दे। इसके पश्चात् किसी पात्र में -

पयोधारा - दूध जल चन्दनादि लेकर नारायणानुवाक के एक एक मंत्र द्वारा द्वादश पिण्डों पर गिरावे। मंत्र के अन्त में **ॐ प्रथमे केशवपिण्डे पयोधारा स्वाहा।** नीचे के श्लोकों को पढ़ते हुए सभी पिण्डों पर एक ही साथ दूध की धारा देवे।

ॐ अनादिनिधनो देवः शंखचक्रगदाधरः। अक्षय्यः पुण्डरीकाक्षः प्रेतमोक्षप्रदो भव।।1
अतसीपुष्पसंकाशं पीतवाससमच्युतम्। ये नमस्यन्ति गोविन्दं न तेषां विद्यते भयम्।।2
कृष्ण कृष्ण कृपालु त्वम् अगतीनां गतिर्भव। संसारार्णवमग्नानां प्रसीद पुरुषोत्तम।।3
नारायणसुरश्रेष्ठलक्ष्मीकान्त वर प्रद। अनेनतर्पणन अथ प्रेतमोक्षप्रदो भव।।4

इसके पश्चात् नित्य, मुक्त और सर्व वैष्णव निमित्त श्राद्ध करे। उपरोक्त विधि से ही इन सबों के निमित्त भी तीन पूर्ववत् वेदी बनावे और विष्णुग्रन्थि वाला तीन कुश पूर्वाग्र आसनों के ऊपर हाथ में अक्षत पुष्प तुलसी सुपारी आदि लेकर संकल्प करे - **ॐ अद्य अमुकगोत्रस्य अमुकप्रेतस्य भगवतलोकप्राप्तिकामः नारायणवलिश्राद्धांगभूतं नित्यमुक्तसर्ववैष्णवानां श्राद्धत्रयं करिष्ये।** यह बोलकर अक्षतादि भूमि पर रख दे।

आसन - **ॐ अद्य अमुकगोत्रस्य अमुक .... नित्यमुक्तसर्ववैष्णवेभ्यः इमानि आसनानि स्वाहा।** अमुक शब्द जहां भी लिखा है वहां सभी उच्चारणीय विषयों को उच्चारण कर लेना चाहिए। पूर्वलिखित द्वादशनारायण श्राद्व के ही सदृश यह श्राद्ध भी होगा।

अतः अक्षरशः वे सब विधियाँ यहां नहीं दुहरायी गयी हैं। अतः इस श्राद्ध में आसन दान के पश्चात् पूर्ववत् ही अर्घ्य पूजन भोजन पंक्तिवारण संकल्प अवनेजन पिण्ड प्रत्यवनेजन देकर पूजन करे। उपचार अर्चन के समय **ॐ तत्तत्** के स्थान में **नित्येभ्यः मुक्तेभ्यः सर्ववैष्णवेभ्यः** नाम बोलता जावे।

पूजन - चन्दन पुष्प धूप दीप नैवेद्य दक्षिणा आदि चढ़ाकर **ॐ पिण्डार्चनविधेः परिपूर्णताऽस्तु।**

प्रार्थना - ॐ एभिः पिण्डदानैः अमुकगोत्रस्य अमुकप्रेतस्य प्रेतत्वविमुक्तिद्वाराभगवत्प्राप्तिरस्तु।

फिर नित्य मुक्त और सर्ववैष्णव स्थानीय कुशों के ऊपर जल गिरावे - ॐ शिवा आपः सन्तु। उत्तर - सन्तु शिवा आपः। **फूल** - ॐ सौमनस्यमस्तु। **उत्तर** - अस्तु सौमनस्यम्। जौ और तिल - ॐ अक्षतं चारिष्टमस्तु। **उत्तर** - ॐ अस्तु अरिष्टम्।

अक्षय्योदक - प्रत्येक पिण्ड के समीप एक एक दोना रखकर उसमें जल देकर और हाथ में कुश तिल जल लेकर पूर्व रखे हुए दोने को भी हाथ में ले संकल्प करे - ॐ अद्य......नित्यानां दत्तमन्नपानादिकम् उपतिष्ठताम्। ॐ अद्य......मुक्तानां दत्तमन्न पानादिकम् उपतिष्ठताम्। ॐ अद्य......सर्ववैष्णवानां दत्तमन्नपानादिकम् उपतिष्ठताम्। और सभी पिण्डों के ऊपर डाल दे। पुनः एक पात्र में दूध जल तुलसी और चन्दन डालकर प्रत्येक पिण्ड पर इन मंत्रों को पढ़ते हुए क्रमशः गिराता जाय।

प्रथम पिण्ड पर - ॐ तदस्य प्रियमपि पाथो अस्यां नरो यत्रदेवयवो मदन्ति। उरुक्रमस्य सहि बन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः।

दूसरे पिण्ड पर - ॐ परो मात्रया तनु वा वृधान न ते महित्वमन्वश्नुवन्ति। उभे ते विद्म रजसी पृथिव्या विष्णो देवत्वम् परमस्य विथ्से।

तीसरे पिण्ड पर - ॐ प्रविष्णवे शषमेतु मन्म गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे। य इदं दीर्घ प्रयतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित पदेभि।

इसके पश्चात्भगवान एवं सभी पिण्डों को कर्पूर की आरती कर प्रदक्षिणा और साष्टांग प्रणाम करे।

दक्षिणा - हाथ में द्रव्य सुपारी और अक्षत कुश लेकर संकल्प करे - ॐ अद्य इह अमुकगोत्रस्य अमुकप्रेतस्य प्रेतत्वविमुक्तिद्वारा भगवत्प्राप्त्यर्थं कृतैतन्नारायणवलिश्राद्धकर्मणः प्रतिष्ठार्थम् यथाशक्ति द्रव्यं यथानामगोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो दातुमहमुत्सृजे ॐ तत्सन्नमम। यह पढ़कर ब्राह्मणों के हाथ में द्रव्यादि दे देवे।

पञ्चकलशदान - ॐ अद्य इह अमुकगोत्रस्य अमुकप्रेतस्य प्रेतत्वविमुक्तिद्वाराभगवत्प्राप्त्येऽनुष्ठित नारायणवलिश्राद्धप्रतिष्ठार्थम् इमे पञ्चकलशाः नारायणादि देवताकाः सप्रतिमाः सजल वस्त्रोपवितनारिकेलास्तत्तद्ब्राह्मणेभ्यः संप्रददे ॐ तत्सन्नमम।

विसर्जन - ॐ भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षिभिर्यजन्नाः स्थिरै रङ्गैस्तुष्टवा ँसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः। यह पढ़कर सभी कुशों के ऊपर (जिन कुशों के ब्राह्मण बनाये गये हैं)अक्षत डाल दे और कुशों के दिये गये ग्रन्थियों को खोल दे।

आचार्य दक्षिणा - ॐ अद्येहानुष्ठित नारायणवलिकर्मणः साङ्गतार्थं इमां सुपूजितां सवत्सां धेनुं तन्निष्क्रयं वा आचार्याय तुभ्यमहं सम्प्रददे ॐ तत्सन्नमम। यह पढ़कर दक्षिणा में गो या द्रव्य आचार्य को देकर प्रार्थना करे -

प्रार्थना - ॐ अद्य अमुकगोत्रस्य अमुकप्रेतस्य प्रेतत्वनिवृत्तयेऽनुष्ठित नारायणवलिकर्मणि पूजनतर्पणश्राद्धहोमादिषु यन्नयूनाधिकम्तद्भवतां वैष्णवब्राह्मणानां तीर्थविष्णोः प्रसादाच्च सर्वपरिपूर्णमस्तु। यह सुनकर ब्राह्मण उत्तर देवे - अस्तु परिपूर्णम्।

विष्णु स्मरण - प्रमादात् कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत्। स्मरणाद्देव तद्विष्णोः सम्पूर्णस्यादिति श्रुतिः।

ॐ यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु। न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम्।

इसके पश्चात् पिण्ड सहित भगवान की प्रदक्षिणा कर साष्टांग करे। और हाथ में जल लेकर भगवान के संमुख हो यह मंत्र बोलकर सभी कृत्यों को ब्रह्मार्पण करे।

ब्रह्मार्पण -

ॐ ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविः ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणाहुतम्। ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना। ॐ तत्सद् ब्रह्मार्पणमस्तु। यह पढ़कर जल भगवान् के सामने गिरा दे और पूर्व पृष्ठ में लिखे हुए विष्णुसूक्त का पाठ करे तथा सभी पिण्डों को पवित्र जलाशयादि में प्रवाहित कर या गौओं को खिलाकर स्वयं स्नान कर पुनः शालिग्राम भगवान् का पूजन कर वैष्णवों को भी चन्दन-पुष्प-माला-वस्त्रादि से अलंकृत कराकर भोजन करावे और दक्षिणा देकर आदरपूर्वक विदा करे। या अपने गृहसूत्र के अनुसार शेष क्रियाओं को कर ले। अन्त में स्वयं भी भोजन करे और बचे हुए जूठे अन्न से थोड़ा सा अन्न भूमि पर तीन कुशों के ऊपर रख कर श्राद्ध को समाप्त करे।

उपसंहार

माघे शुभे शुचिदले भुजगेशतिथ्याम्। चन्द्रे दिविन्दु नभसाक्षि पराभवाब्दे।।
संगृह्य पुस्तकममुं गरुडध्वजस्य।पादाम्बुजे जनहिताय समर्पयामि।।

समस्त श्री वैष्णव जनों के उपराकार्थ ब्रह्ममेध संस्कार और नारायणवलि श्राद्धपद्धति श्री **1008** श्री स्वामी पराङ्कुशाचार्य सरौती मठाधीश द्वारा संकलित और श्रीमन्नारायण के युगल श्रीचरणों में सादर समर्पित।

।।इति शुभंस्यादनिशम्।।

मुद्रक ः पं चन्द्रदेव शर्मा 'साहित्य रत्न'
नं **286 - 1000** **18** अगस्त **1954** ई
चान्द प्रेस जहानावाद गया ।